सावरकर समग्र

स्वातंत्र्यवीर

विनायक दामोदर सावरकर

'सावरकर' शब्द साहस, शौर्य, पराक्रम और राष्ट्रभक्ति का पर्याय है। क्रांतिकारी इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों पर अंकित स्वातंत्र्यवीर सावरकर का समूचा व्यक्तित्व अप्रतिम गुणों से संपन्न था। मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए प्राण हथेली पर रखकर जूझनेवाले महान् क्रांतिकारी; जातिभेद, अस्पृश्यता व अंधश्रद्धा जैसी सामाजिक बुराइयों को समूल नष्ट करने का आग्रह करनेवाले महान् द्रष्टा; 'गीता' के कर्मयोग सिद्धांत को अपने जीवन में आचरित करनेवाले अद्भुत कर्मचोगी; अनादि-अनंत परमात्मा का प्राणमय प्रस्फुरण स्वयं के अंदर सदैव अनुभव करते हुए अंदमान जेल की यातनाओं को धैर्यपूर्वक सहनेवाले महान् दार्शनिक, अपने तेजस्वी विचारों से सहस्रों श्रोताओं को झकझोर देने और उन्हें सम्मोहित करनेवाले अद्भुत वक्ता तथा कविता, उपन्यास, कहानी, चरित्र, आत्मकथा, इतिहास, निबंध आदि विभिन्न विधाओं में उच्च कोटि के साहित्य की रचना करनेवाले प्रतिभाशाली साहित्यकार थे स्वातंत्र्यवीर विनायक दामोदर सावरकर।

स्वतंत्रता-संग्राम एवं समाज-सुधार जैसे क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण कार्य करनेवाला व्यक्ति उच्च कोटि का साहित्यकार भी हो, यह अपवाद है— और इस अपवाद के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं वीर सावरकर।

भारतीय वाङ्मय में उनके साहित्य का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है; किंतु वह अधिकांश मराठी में उपलब्ध होने के कारण इस महान् साहित्यकार के अप्रतिम योगदान के बारे में अन्य भारतीय भाषाओं के पाठक अधिक परिचित नहीं हैं।

वीर सावरकर के चिर प्रतीक्षित समग्र साहित्य का प्रकाशन हिंदी जगत् के लिए गौरव की बात है।
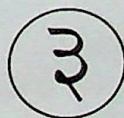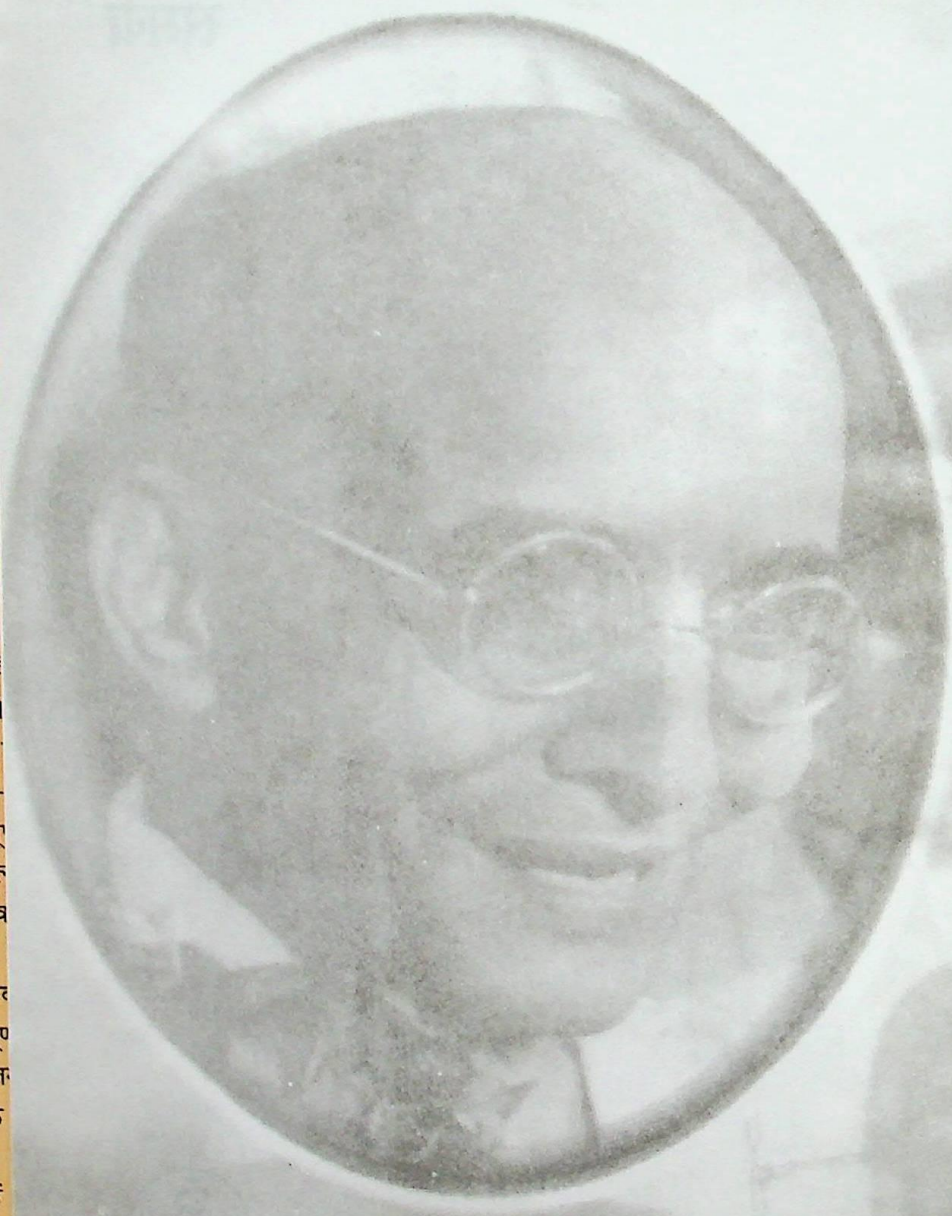
सावरकर
समग्र

सावरकर समग्र

स्वातंत्र्यवीर

विनायक दामोदर सावरकर

प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
ISO 9001:2008 प्रकाशक

विनायक दामोदर सावरकर : संक्षिप्त जीवन परिचय

श्री विनायक दामोदर सावरकर भारतीय स्वाधीनता-संग्राम के एक तेजस्वी तथा अग्रणी नक्षत्र थे। 'वीर सावरकर' शब्द साहस, वीरता, देशभक्ति का पर्यायवाची बन गया है। 'वीर सावरकर' शब्द के स्मरण करते ही अनुपम त्याग, अदम्य साहस, महान् वीरता, एक उत्कट देशभक्ति से ओतप्रोत इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ हमारे सामने साकार होकर खुल पड़ते हैं।

वीर सावरकर न केवल स्वाधीनता-संग्राम के एक तेजस्वी सेनानी थे अपितु वह एक महान् क्रांतिकारी, चिंतक, सिद्धहस्त लेखक, कवि, ओजस्वी वक्ता तथा दूरदर्शी राजनेता भी थे। वह एक ऐसे इतिहासकार भी थे जिन्होंने हिंदू राष्ट्र की विजय के इतिहास को प्रामाणिक ढंग से लिपिबद्ध किया तो '१८५७ के प्रथम स्वातंत्र्य समर' का सनसनीखेज व खोजपूर्ण इतिहास लिखकर ब्रिटिश शासन को हिला डाला था।

इस महान् क्रांतिपुंज का जन्म महाराष्ट्र के नासिक जिले के ग्राम भगूर में चितपावन वशीय ब्राह्मण श्री दामोदर सावरकर के घर २८ मई, १८८३ को हुआ था। गाँव के स्कूल में ही पाँचवीं तक पढ़ने के बाद विनायक आगे पढ़ने के लिए नासिक चले गए।

लोकमान्य तिलक द्वारा संचालित 'केसरी' पत्र की उन दिनों भारी धूम थी। 'केसरी' में प्रकाशित लेखों को पढ़कर विनायक के हृदय में राष्ट्रभक्ति की भावनाएँ हिलोरें लेने लगीं। लेखों, संपादकीयों व कविताओं को पढ़कर उन्होंने जाना कि भारत को दासता के चंगुल में रखकर अंग्रेज किस प्रकार भारत का शोषण कर रहे हैं। वीर सावरकर ने कविताएँ तथा लेख लिखने शुरू कर दिए। उनकी रचनाएँ मराठी पत्रों में नियमित रूप से प्रकाशित होने लगीं। 'काल' के संपादक श्री परांजपे ने अपने पत्र में सावरकर की कुछ रचनाएँ प्रकाशित कीं, जिन्होंने तहलका मचा दिया।

सन् १९०५ में सावरकर बी.ए. के छात्र थे। उन्होंने एक लेख में विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का आह्वान किया। इसके बाद उन्होंने अपने साथियों के साथ मिलकर विदेशी वस्त्रों की होली जलाने का कार्यक्रम बनाया। लोकमान्य तिलक इस कार्य के लिए आशीर्वाद देने उपस्थित हुए।

सावरकर की योजना थी कि किसी प्रकार विदेश जाकर बम आदि बनाने सीखे जाएँ तथा शस्त्रास्त्र प्राप्त किए जाएँ। तभी श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा ने सावरकर को छात्रवृत्ति देने की घोषणा कर दी। ९ जून, १९०६ को सावरकर इंग्लैंड के लिए रवाना हो गए। वह लंदन में 'इंडिया हाउस' में ठहरे। उन्होंने वहाँ पहुँचते ही अपनी विचारधारा के भारतीय युवकों को एकत्रित करना शुरू कर दिया। उन्होंने 'फ्री इंडिया सोसाइटी' की स्थापना की।

सावरकर 'इंडिया हाउस' में रहते हुए लेख व कविताएँ लिखते रहे। वह गुप्त रूप से बम बनाने की विधि का अध्ययन व प्रयोग भी करते रहे। उन्होंने इटली के महान् देशभक्त मैझिनी का जीवन-चरित्र लिखा। उसका मराठी अनुवाद भारत में छपा तो एक बार तो तहलका ही मच गया था।

१९०७ में सावरकर ने अंग्रेजों के गढ़ लंदन में १८५७ की अर्द्धशती मनाने का व्यापक कार्यक्रम बनाया। १० मई, १९०७ को 'इंडिया हाउस' में सन् १८५७ की क्रांति की स्वर्ण जयंती का आयोजन किया गया। भवन को तोरण-द्वारों से सजाया गया। मंच पर मंगल पांडे, लक्ष्मीबाई, वीर कुँवरसिंह, तात्या टोपे, बहादुरशाह जफ़र, नानाजी पेशवा आदि भारतीय शहीदों के चित्र थे। भारतीय युवक सीने व बाँहों पर शहीदों के चित्रों के बिल्ले लगाए हुए थे। उनपर अंकित था —'१८५७ के वीर अमर रहें'। इस समारोह में कई सौ भारतीयों ने भाग लेकर १८५७ के स्वाधीनता-संग्राम के शहीदों को श्रद्धांजलि अर्पित की। राष्ट्रीय गान के बाद वीर सावरकर का ओजस्वी भाषण हुआ, जिसमें उन्होंने सप्रमाण सिद्ध किया कि १८५७ में 'गदर' नहीं अपितु भारत की स्वाधीनता का प्रथम महान् संग्राम हुआ था।

सावरकर ने १९०७ में '१८५७ का प्रथम स्वातंत्र्य समर' ग्रंथ लिखना शुरू किया। इंडिया हाउस के पुस्तकालय में बैठकर वह विभिन्न दस्तावेजों व ग्रंथों का अध्ययन करने लगे। उन्होंने लगभग डेढ़ हजार ग्रंथों के गहन अध्ययन के बाद इसे लिखना शुरू किया।

ग्रंथ की पांडुलिपि किसी प्रकार गुप्त रूप से भारत पहुँचा दी गई। महाराष्ट्र में इसे प्रकाशित करने की योजना बनाई गई। 'स्वराज्य' पत्र के संपादक ने इसे प्रकाशित करने का निर्णय लिया; किंतु पुलिस ने प्रेस पर छापा मारकर योजना में बाधा डाल दी। ग्रंथ की पांडुलिपि गुप्त रूप से पेरिस भेज दी गई। वहाँ इसे प्रकाशित कराने का प्रयास किया गया; किंतु ब्रिटिश गुप्तचर वहाँ भी पहुँच गए और ग्रंथ को प्रकाशित न होने दिया गया। ग्रंथ के प्रकाशित होने से पूर्व ही उसपर प्रतिबंध लगा दिया गया। अंततः १९०९ में ग्रंथ फ्रांस से प्रकाशित हो ही गया।

ब्रिटिश सरकार तीनों सावरकर बंधुओं को 'राजद्रोही' व खतरनाक घोषित कर चुकी थी। सावरकर इंग्लैंड से पेरिस चले गए। पेरिस में उन्हें अपने साथी याद आते। वह सोचते कि उनके संकट में रहते उनका यहाँ सुरक्षित रहना उचित नहीं है।

अंततः वह इंग्लैंड के लिए रवाना हो गए।

१३ मार्च, १९१० को लंदन के रेलवे स्टेशन पर पहुँचते ही सावरकर को बंदी बना लिया गया और ब्रिक्स्टन जेल में बंद कर दिया गया। उनपर लंदन की अदालत में मुकदमा शुरू हुआ। न्यायाधीश ने २२ मई को निर्णय दिया कि क्योंकि सावरकर पर भारत में भी कई मुकदमे हैं, अतः उन्हें भारत ले जाकर वहीं मुकदमा चलाया जाए। अंततः २९ जून को सावरकर को भारत भेजने का आदेश जारी कर दिया गया।

१ जुलाई, १९०९ को 'मोरिया' जलयान से सावरकर को कड़े पहरे में भारत रवाना किया गया। ब्रिटिश सरकार को भनक लग गई थी कि सावरकर को रास्ते में छुड़ाने का प्रयास किया जा सकता है। अतः सुरक्षा प्रबंध बहुत कड़े किए गए। ८ जुलाई को जलयान मार्सेल बंदरगाह के निकट पहुँचने ही वाला था कि सावरकर शौच जाने के बहाने पाखाने में जा घुसे। फुरती के साथ उछलकर वह पोर्ट हॉल तक पहुँचे और समुद्र में कूद पड़े।

अधिकारियों को जैसे ही उनके समुद्र में कूद जाने की भनक लगी कि अंग्रेज अफसरों के छक्के छूट गए। उन्होंने समुद्र की लहरें चीरकर तैरते हुए सावरकर पर गोलियों की बौछार शुरू कर दी। सावरकर सागर की छाती चीरते हुए फ्रांस के तट की ओर बढ़ने लगे। कुछ ही देर में वह तट तक पहुँचने में सफल हो गए किंतु उन्हें पुनः बंदी बना लिया गया।

१५ सितंबर, १९१० को सावरकर पर मुकदमा शुरू हुआ। सावरकर ने स्पष्ट कहा कि भारत के न्यायालय से उन्हें न्याय की किंचित् भी आशा नहीं है, अतः वह अपना बयान देना व्यर्थ समझते हैं।

२३ दिसंबर को अदालत ने उन्हें ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध षड्यंत्र रचने, बम बनाने तथा रिवॉल्वर आदि शस्त्रास्त्र भारत भेजने आदि आरोपों में आजन्म कारावास की सजा सुना दी। उनकी तमाम संपत्ति भी जब्त कर ली गई।

२३ जनवरी, १९११ को उनके विरुद्ध दूसरे मामले की सुनवाई शुरू हुई। ३० जनवरी को पुनः आजन्म कारावास की सजा सुना दी गई। इस प्रकार सावरकर को दो आजन्म कारावासों का दंड दे दिया गया। सावरकर को जब अंग्रेज न्यायाधीश ने दो आजन्म कारावासों का दंड सुनाया तो उन्होंने हँसते हुए कहा, 'मुझे बहुत प्रसन्नता है कि ईसाई (ब्रिटिश) सरकार ने मुझे दो जीवनों का कारावास दंड देकर पुनर्जन्म के हिंदू सिद्धांत को मान लिया है।'

कुछ माह बाद महाराजा नामक जलयान से सावरकर को अंदमान भेज दिया गया। अंदमान में उन्हें अमानवीय यातनाएँ दी जाती थीं। कोल्हू में बैल की जगह जोतकर तेल पिरवाया जाता था, मूँज कुटवाई जाती थी। राजनीतिक बंदियों पर वहाँ किस प्रकार अमानवीय अत्याचार ढाए जाते थे, इसका रोमांचकारी वर्णन सावरकरजी ने अपनी पुस्तक मेरा आजीवन कारावास में किया है।

सावरकरजी ने अंदमान में कारावास के दौरान अनुभव किया कि मुसलमान वॉर्डर हिंदू बंदियों को यातनाएँ देकर उनका धर्म-परिवर्तन करने का कुचक्र रचते हैं। उन्होंने इस अन्यायपूर्ण धर्म-परिवर्तन का डटकर विरोध किया तथा बलात् मुसलिम बनाए गए अनेक बंदियों को हिंदू धर्म में दीक्षित करने में सफलता प्राप्त की। उन्होंने अंदमान की कालकोठरी में कविताएँ लिखीं। 'कमला', 'गोमांतक' तथा 'विरहोच्छ्वास' जैसी रचनाएँ उन्होंने जेल की यातनाओं से हुई अनुभूति के वातावरण में ही लिखी थीं। उन्होंने 'मृत्यु' को संबोधित करते हुए जो कविता लिखी वह अत्यंत मार्मिक व देशभक्ति से पूर्ण थी।

सावरकरजी ने अंदमान कारागार में होनेवाले अमानवीय अत्याचारों की सूचना किसी प्रकार भारत के समाचारपत्रों में प्रकाशित कराने में सफलता प्राप्त कर ली। इससे पूरे देश में इन अत्याचारों के विरोध में प्रबल आवाज उठी। अंत में दस वर्ष बाद १९२१ में सावरकरजी को बंबई लाकर नजरबंद रखने का निर्णय किया गया। उन्हें महाराष्ट्र के रत्नागिरी स्थान में नजरबंदी में रखने के आदेश हुए।

'हिंदुत्व', 'हिंदू पदपादशाही', 'उ:श्राप', 'उत्तरक्रिया', 'संन्यस्त खड्ग' आदि ग्रंथ उन्होंने रत्नागिरी में ही लिखे।

१० मई, १९३७ को सावरकरजी की नजरबंदी रद्द की गई।

नजरबंदी से मुक्त होते ही सावरकरजी का भव्य स्वागत किया गया। अनेक नेताओं ने उन्हें कांग्रेस में शामिल करने का प्रयास किया; किंतु उन्होंने स्पष्ट कह दिया, 'कांग्रेस की मुसलिम तुष्टीकरण की नीति पर मेरे तीव्र मतभेद हैं। मैं हिंदू महासभा का ही नेतृत्व करूँगा।'

३० दिसंबर, १९३७ को अहमदाबाद में आयोजित अखिल भारतीय हिंदू महासभा के अधिवेशन में सावरकरजी सर्वसम्मति से अध्यक्ष चुने गए। उन्होंने 'हिंदू' की सर्वश्रेष्ठ व मान्य परिभाषा की। हिंदू महासभा के मंच से सावरकरजी ने 'राजनीति का हिंदूकरण और हिंदू सैनिकीकरण' का नारा दिया। उन्होंने हिंदू युवकों को अधिक-से-अधिक संख्या में सेना में भरती होने की प्रेरणा दी। उन्होंने तर्क दिया, 'भारतीय सेना के हिंदू सैनिकों पर ही इस देश की रक्षा का भार आएगा, अत: उन्हें आधुनिकतम सैन्य विज्ञान की शिक्षा दी जानी जरूरी है।'

२६ फरवरी, १९६६ को भारतीय इतिहास के इस अलौकिक महापुरुष ने इस संसार से विदा ले ली। अपनी अंतिम वसीयत में भी उन्होंने हिंदू संगठन व सैनिकीकरण के महत्त्व, शुद्धि की आवश्यकता पर प्रकाश डाला। भारत को पुनः अखंड बनाए जाने की उनकी आकांक्षा रही।

ऐसे वीर पुरुष का व्यक्तित्व और कृतित्व आज भी हमारे लिए पथ-प्रदर्शक का काम करने में सक्षम है।

—शिवकुमार गोयल

हिंदू महासभा के अध्यक्ष के रूप में सावरकरजी

कैदी के रूप में वीर सावरकर : ब्रिक्स्टन जेल में

सावरकरजी डॉ. मुंजे के साथ

सावरकरजी सेनापति बापट के साथ

▲ १३ मार्च, १९१० को विक्टोरिया स्टेशन पर गिरफ्तारी के बाद लिया गया वीर सावरकर का चित्र

सावरकरजी की स्मृति में ८ जून, १९८५ को ग्रेटर लंदन काउंसिल द्वारा स्थापित नीला फलक ▶

GREATER LONDON COUNCIL
VINAYAK
DAMODAR
SAVARKAR
1883-1966
Indian Patriot
and Philosopher
lived here
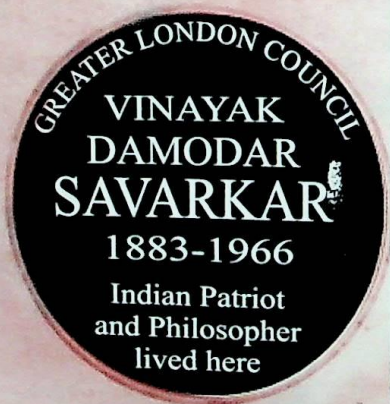
सावरकर समग्र

प्रथम खंड

पूर्व पीठिका, भगूर, नाशिक
शत्रु के शिविर में
लंदन से लिखे पत्र

द्वितीय खंड

मेरा आजीवन कारावास
अंदमान की कालकोठरी से
गांधी वध निवेदन
आत्महत्या या आत्मार्पण
अंतिम इच्छा पत्र

तृतीय खंड

काला पानी
मुझे उससे क्या? अर्थात् मोपला कांड
अंधश्रद्धा निर्मूलक कथाएँ

चतुर्थ खंड

उ:शाप
बोधिवृक्ष
संन्यस्त खड्ग
उत्तरक्रिया
प्राचीन अर्वाचीन महिला
गरमागरम चिवड़ा
गांधी गोंधल

पंचम खंड

१८५७ का स्वातंत्र्य समर
रणदुंदुभि
तेजस्वी तारे

षष्टम खंड

छह स्वर्णिम पृष्ठ
हिंदू पदपादशाही

सप्तम खंड

जातिभंजक निबंध
सामाजिक भाषण
विज्ञाननिष्ठ निबंध

अष्टम खंड

मैझिनी चरित्र
विदेश में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम
क्षकिरणे
ऐतिहासिक निवेदन
अभिनव भारत संबंधी भाषण

नवम खंड

हिंदुत्व हिंदुत्व का प्राण
नेपाली आंदोलन
लिपि सुधार आंदोलन
हिंदू राष्ट्रदर्शन

दशम खंड

कविताएँ
भाषा-शुद्धि लेख
विविध लेख

अनुवाद :

प्रो. निशिकांत मिरजकर, डॉ. ललिता मिरजकर,
डॉ. हेमा जावडेकर, श्री वामन राव पाठक, श्री काशीनाथ जोशी,
श्री शरद दामोदर महाजन, श्री माधव साठे, सौ. कुसुम तांबे,
सौ. सुनीता कुट्टी, सौ. प्रणोति उपासने

संपादन :

प्रो. निशिकांत मिरजकर, डॉ. श्याम बहादुर वर्मा,
श्री रामेश्वर मिश्र 'पंकज', श्री जगदीश उपासने,
श्री काशीनाथ जोशी, श्री धृतिवर्धन गुप्त, श्री अशोक कौशिक

मार्गदर्शन :

श्री त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी, डॉ. हरींद्र श्रीवास्तव,
श्री शिवकुमार गोयल

अनुक्रम

काला पानी १५

आमुख १७

१. मालती २१

२. मालती कहाँ है? २९

३. योगानंद का कपट ३५

४. पुलिस की हिरासत में ४३

५. इलाहाबाद का कारागृह ५१

६. रफीउद्दीन का अंतरंग ६५

७. गुलाम हुसैन के शिकंजे में मालती ८१

८. किशन और मालती की गिरफ्तारी ९६

९. अंदमान का चालान १०७

१०. अंदमान की राह पर १२१

११. अंदमान स्थित आदिवासी जन १३७

१२. अंदमान के बंदीगृह में १५१

१३. नए उपनिवेश के लोग १७५

१४. अंदमान के बंदीगृह में मालती १९१

१५. उपनिवेशीय सिद्धांत २०६

१६. अंदमान के घने जंगल में २२२

१७. जावरों की राजधानी की ओर प्रयाण २३८

१८. जावरों का जीवन २५०

१९. रफीउद्दीन से प्रतिशोध २६१

२०. बंदिनीगृह से मालती उड़न-छू २७१
२१. किशन और मालती २८१
२२. भाई-बहन का मिलन २९४

मुझे उससे क्या अर्थात् मोपला कांड ३११
१. कुट्टम गाँव के लोग ३१३
२. संकट की सूचना ३२३
३. अहिंसा के नशे में ३३३
४. यह है वह खिलाफत ३३९
५. हरिहर शास्त्री ने तलवार उठाई ३४६
६. मुझे एक छुरी दो ३५९
७. अधमों के अत्याचार ३७१
८. संन्यासी से भेंट ३९९
९. सबको फिर से हिंदू बनाया ४१३

अंधश्रद्धा-निर्मूलक कहानियाँ ४१७
१. कुसुम ४१९
२. गोविंदा ग्वाला ४३६
३. पित्रेजी का दूसरा विवाह कैसे टूटा? ४४५
४. समय और दीमक ४५५
५. नारद पुनः पृथ्वी पर ४६८
६. एक सत्यघटित रोचक संवाद ४८३
७. दीवाली में अब सूखे का कोई डर नहीं ४९४
८. नंदी बैल और मनुष्य बैल ५०६
९. चातुर्मास ५२०
१०. ताजियों की कहानी ५२८
११. 'नकली' राजा बन गया ५३९
१२. दर्जी जो कुरते के लिए मनुष्यों को ब्योंतता है ५५१
१३. जच्चा ५५७
१४. प्रार्थना ५७०

१५. आवश्यकता है काले को गोरा बनानेवाले वैज्ञानिक की ५८१
१६. गर्दभ संगठन ५९२
१७. शेंदाड़पुर का शिवाजी उत्सव ५९८
१८. आधिदैविकता और मानवता ६१०
१९. दुर्घटना या आत्मघात ६२२
२०. भक्तिविजय का खोया हुआ नूतन अध्याय ६३३
२१. छूतछात की मूर्खता ६४२
२२. व्रतानुष्ठान ६५५

काला पानी

आमुख

'काला पानी' स्वातंत्र्य वीर सावरकर का द्वितीय गद्यात्मक उपन्यास है। उनका प्रथम उपन्यास 'मोपलों का विद्रोह' अथवा 'मुझे इससे क्या?' था। इससे पूर्व अंदमान में विरचित उनके दीर्घ काव्य 'गोमांतक' को मेरे विचार से कथा-वस्तु तथा गद्य रूपांतर की दृष्टि से उपन्यास विधा में ही सम्मिलित किया जा सकता है।

'मुझे इससे क्या?' शीर्षक उपन्यास के पश्चात् सावरकर ने 'मेरा आजीवन कारावास' के रूप में अपने आत्मकथ्य का एक अंश लिखा था। इस आत्मकथ्य में मुख्य रूप से उन राजबंदियों के जीवन का वर्णन किया गया है जो अंदमान अथवा 'काले पानी' में सश्रम कारावास का भयानक दंड भुगत रहे हैं। इस आत्मकथ्य में कुछ हत्यारों, लुटेरों, डाकुओं तथा क्रूर, स्वार्थी व्यसनाधीन अपराधियों का जीवन-चित्र उकेरा गया है। इसके अतिरिक्त इसमें दो ऐसे प्रकरण हैं जिनमें इन विषयों की चर्चा की गई है कि हमारी राष्ट्रभाषा संस्कृतनिष्ठ हिंदी हो तथा अहिंदुओं का हिंदूकरण करना आवश्यक है। 'मेरा आजीवन कारावास' में 'बालिश्त भर हिंदू राज्य—ओस का एक मोती' जैसी संकल्पना का भी समावेश है। इस पुस्तक का गुजराती भाषा में अनुवाद होने के उपरांत कुछ राजनीतिज्ञों ने ब्रिटिश प्रशासकों से यह माँग की कि इस उपन्यास पर प्रतिबंध लगाया जाय। उसके अनुसार ब्रिटिश प्रशासकों ने 'मेरा आजीवन कारावास' शीर्षक पुस्तक पर तारीख १७ अप्रैल, १९३४ को प्रतिबंध लगाया।

इस प्रतिबंध को हटाने का प्रयास जारी रखते हुए भी यह ज्यों-का-त्यों रह गया। तथापि यह दर्शाने के उद्देश्य से कि अंदमान के बंदीगृह में किस तरह कष्टप्रद, तापदायी, अमानुषिक एवं उत्पाती जीवनयापन करना अनिवार्य होता है, सावरकर ने 'काला पानी' शीर्षक उपन्यास लिखा। अगस्त १९३६ से 'मनोहर' पत्रिका में यह क्रमशः प्रकाशित होता रहा था। सन् १९३७ में 'काला पानी' का प्रथम संस्करण प्रकाशित हो गया।

'काला पानी' उपन्यास की कथा-वस्तु कल्पित अथवा मनगढ़ंत नहीं है। वह एक दंडित के न्यायालयी अभियोग पर आधारित है। वीर सावरकर की टिप्पणियों में इस तरह का उल्लेख किया गया है। यद्यपि रफीउद्दीन, योगानंद, मालती आदि नाम काल्पनिक हैं, तथापि वे उक्त अभियोगांतर्गत मूल नामों से मिलते-जुलते ही हैं। बीच में विख्यात गायक तथा चित्रपट निर्माता श्री सुधीर फड़के इस उपन्यास पर चित्रपट तैयार करना चाहते थे, परंतु नियंत्रक मंडल ने अनुरोध किया कि उसमें रफीउद्दीन नामक जो मुसलिम पात्र है, उसमें परिवर्तन किया जाय। उसके अनुसार नामांतर की अनुज्ञा की माँग जब वीर सावरकर से की गई तब उन्होंने स्पष्ट तथा ठोस शब्दों में कहा, "इस तरह नामांतरण की अर्थात् मुसलिम नाम हटाकर हिंदू नाम का समावेश करने के लिए मैं कदापि अनुमति नहीं दूँगा। यह दिखाना कि कुछ मुसलिम शिष्ट, साधु वृत्ति के होते हैं, चित्रपट की दृष्टि से यदि अत्यावश्यक हो तो आप कोई नया चरित्र गढ़ सकते हैं। परंतु मुसलिम नाम में परिवर्तन करने के लिए मैं अनुमति नहीं दूँगा।"

प्रस्तुत उपन्यास में एक ऐसे स्वतंत्रता सेनानी का चरित्र वर्णित है, जिसे सन् १८५७ के स्वतंत्रता संग्राम में दंड मिला था। दंड भुगतकर मुक्ति प्राप्त वह सेनानी अंदमान का ही बाशिंदा बना हुआ है। यह योद्धा कपोलकल्पित नहीं है। जब सावरकर अंदमान में थे, उस काल में इस तरह के दो-तीन योद्धा थे जिनकी आयु अस्सी-पचासी के आसपास होगी। इस आयु में भी वे पके पान उधर ही रहते थे तथा उन्होंने सावरकर से गुप्त संपर्क किया था। सावरकर के साथ उनकी साठ-गाँठ थी।

इस उपन्यास की कुछ समीक्षाओं की सावरकर ने टिप्पणियाँ रखी हैं। उन्होंने इस बात पर भी गौर किया है कि इसमें से कौन से वाक्य 'मनोहर' पत्रिका ने निकाल दिए हैं। हो सकता है, उस काल में ऐसे दो-तीन वाक्य अश्लील प्रतीत होने के कारण उन्हें निकाल दिया गया हो। सावरकर के साहित्य में काम्य अथवा ग्राम्य अश्लीलता दुर्लभ ही है, तथापि आचार्य अत्रे तथा प्रो. फड़के जैसे दिग्गजों में जो विवाद हुआ था उसमें प्रो. फड़के ने यह कहा था कि आचार्य अत्रे प्रो. फड़के के साहित्य की हमेशा यह कहकर आलोचना करते हैं कि उसमें अश्लील, बीभत्स प्रसंगों का चित्रण किया जाता है, परंतु सावरकर के साहित्यांतर्गत तत्सम वर्णनों के संबंध में वे कभी चूँ तक नहीं करते, न ही कोई फच्चर अड़ाते हैं। प्रो. फड़के के इस कथन का स्पष्टीकरण करते हुए आचार्य अत्रे कहते हैं, "फड़के-वर्णित बलात्कार के प्रसंग पढ़ते समय पाठक के मन में यह अभिलाषा उत्पन्न होती है कि वह भी उसी तरह किसीपर बलात्कार करे। परंतु सावरकर-वर्णित बलात्कार के प्रसंग पढ़ते

समय क्रोध से खून खौलने लगता है और यह उत्कट इच्छा उत्पन्न होती है कि उस बलात्कारी पापी, चांडाल पर सौ-सौ कोड़े बरसाकर उसकी चमड़ी उधेड़ें, उसे कठोर-से-कठोर दंड दें।'' आचार्य अत्रे की मीमांसा मुझे उचित प्रतीत होती है। यह उपन्यास पढ़कर सुधी पाठक स्वयं निर्णय करें।

इस उपन्यास के सिलसिले में एक पाठक श्री वाचासुंदर सोनमोह, ता. कटोल ने सावरकर को लिखे पत्र में कहा है—''मेरी यह धारणा थी कि आपका साहित्य रूखा तथा नीरस होता है। मेरा विचार था कि आपका यह उपन्यास भी रसहीन ही होगा। परंतु पहला वाक्य पढ़ते ही दूसरा वाक्य पढ़ने की ललक उत्पन्न हो गई और दूसरा वाक्य पढ़ते ही पूरा अनुच्छेद पढ़ने के लिए मन उछलने लगा। फिर अधिकारियों की ओर ध्यान न देते हुए प्रकरण पाँच और छह के बारह पन्ने लगे हाथ पढ़ डाले। आपकी मालती ने जितना मेरा दिल जलाया है, उतना योगानंद का भी नहीं जलाया होगा। आज तक मैंने सैकड़ों उपन्यास तथा कहानियाँ पढ़ी हैं परंतु मालती ने तो मेरा हृदय ही चीरकर रख दिया है। आपके रफीउद्दीन ने मेरी विचार-धारणाओं का ही कायाकल्प कर दिया।''

इस प्रकार के और अनेक पत्र तथा अभिमत समय-समय पर प्रकाशित किए गए हैं। अधिवक्ता श्री भा.गं. देशपांडे लिखित—'काला पानी—समीक्षण' नामक सात प्रकरणों और छत्तीस पृष्ठों की एक पुस्तिका नागपुर के विधिज्ञ श्री ल.वा. चलणे ने प्रकाशित की है। इस पुस्तिका में इस उपन्यास की विविध साहित्यिक निकषों पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से साहित्यिक समीक्षा की गई है। इन तमाम कसौटियों पर यह उपन्यास कुंदन हो गया है।

—बाल सावरकर

प्रकरण–१

मालती

"अम्मा री, एक ओवी[1] सुनाओ न! हम इतनी सारी मीठी-मीठी ओवियाँ सुना रहे हैं तुम्हें, पर तुम हो कि मुझे एक भी नहीं सुना रही हो। उँह···" मालती ने अपने हिंडोले को एक पेंग मारते हुए बड़े लाड़ से रमा देवी को अनुरोध भरा उलाहना दिया।

"बेटी, भला एक ही क्यों? लाखों ओवियाँ गाऊँगी अपनी लाड़ली के लिए। परंतु अब तेरी अम्मा के स्वर में तेरी जैसी मिठास नहीं रही। बेटी! केले के बकले के धागे में गेंदे के फूल भले ही पिरोए जाएँ, जूही के नाजुक, कोमल फूलों की माला पिरोने के लिए नरम-नरम, रेशमी मुलायम धागा ही चाहिए अन्यथा माला के फूल मसले जाएँगे। वे प्यारी-प्यारी ओवियाँ मिश्री की डली जैसे तेरे मीठे स्वर में जब गाई जाती हैं तब वे और भी मधुर, दुलारी प्रतीत होती हैं। अतः ऐसी राजदुलारी, मधुर ओवियाँ तुम बेटियाँ गाओ और हम माताएँ उन्हें प्रेम से सुनें। यदि मैं गीत गाने लगूँ न, तो इस गीत की मिठास गल जाएगी और मेरी इस चिरकती-दरकती आवाज पर—जो किसी फटे सितार की तरह फटी-सी लग रही है, तुम जी भरकर हँसोगी।"

"भई, आने दो हँसी। आनंद होगा, तभी तो हँसी आएगी न? मेरा मन बहलाने की खातिर तो तुम्हें दो-चार ओवियाँ सुनानी ही पड़ेंगी। हाँ, कहे दे रही हूँ।"

"तुम भगवान् के लिए ओवियाँ और स्तोत्र पठन घंटों-घंटों करती रहती हो, भला तब नहीं तुम्हारी आवाज फटती? परंतु मुझपर रची हुई दो-चार ओवियाँ सुनाते

---

१. ओवी—मराठी पद्य-विधा में प्रचलित एक छंद, जिसमें चार चरण होते हैं—गीत।

ही आनन-फानन सितार चिरकने लगती है। यदि माताएँ बेटियों की ओवियाँ सिर्फ सुनती ही रहीं तो उन ओवियों की रचना भला क्यों की जाती जो माताएँ गाती हैं? कितनी सारी ममता भरी ओवियाँ हैं जो माताएँ गाती हैं? मुझे भी कुछ-कुछ कंठस्थ हैं।''

''तो फिर जब तुम माँ बनोगी न तब सुनाना अपने लाड़ले को।'' कहते हुए रमा देवी खिलखिलाकर हँस पड़ीं।

लज्जा से झेंपती हुई मालती ने रूठे स्वर में कहा, ''भई, मैं सुनाऊँ या न सुनाऊँ, तुम मेरे लिए एक मधुर-सी ओवी गाओगी न?'' और तुरंत माँ से लिपटकर उनकी ठोड़ी से अपने नरम-नरम, नन्हें-नन्हें होंठ सटाकर वह किशोरी माँ की चिरौरियाँ करने लगीं।

''यह क्या अम्मा? तुम मेरी माँ हो न? फिर तुम नहीं तो भला और कौन गाएगा मेरे लिए माँ की दुलार भरी ओवी?''

'तुम मेरी माँ हो न?' अपनी इकलौती बिटिया के ये स्नेहसिक्त बोल सुनते ही रमा देवी के हृदय में ममता के स्रोत इस तरह ठाठें मारने लगे कि उनकी तीव्र इच्छा हुई कि किसी दूध-पीते बच्चे की तरह अपनी बेटी का सुंदर-सलोना मुखड़ा अपने सीने से भींच लें। उसे जी भरकर चूमने के लिए उनके होंठ मचलने लगे। परंतु माँ की ममता जितनी उत्कट होती है, उतनी ही सयानी हो रही अपनी बेटी के साथ व्यवहार करते समय संकोची भी होती है।

मालती के कपोलों से सटा हुआ मुख हटाते हुए उसकी माँ ने यौवन की दहलीज पर खड़ी अपनी बेटी का बदन पल भर के लिए दोनों हाथों से दबाया और हौले से उसे पीछे हटाकर मालती को आश्वस्त किया।

''अच्छा बाबा, चल तुझे सुनाती हूँ कुछ गीत। बस, सिर्फ दो या तीन! बस! बोलो मंजूर?''

''हाँ जी हाँ। अब आएगा मजा।'' उमंग से भरपूर स्वर में कहकर मालती ने झूले को धरती की ओर से टखनों के बल पर ठेला और पेंग के ऊपर पेंग ली।

''अरे यह क्या? गाओ भी। किसी कामचोर गायक की तरह ताल-सुर लगाने में ही आधी रात गँवा रही हो।'' मालती के इस तरह उलाहना देने पर रमा देवी वही ओवी गाने लगीं जो होंठों पर आई—

अगे रत्नांचिया खाणी। नको मिखूं ऐट मोठी।
बघ माझ्याही ये पोटीं। रत्न 'माला'॥ १ ॥
जाता येता राजकुँवरा। नको पाहूं लोभूनिया।
दृष्ट पडेल माझीया। मालतीला॥ २ ॥

देते माझं पुण्य सारं। सात जन्मवेरी।
माझ्या रक्षावे श्रीहरी। लेकुरा या॥३॥
पुरोनी उरू द्यावी। जन्मभरी नारायणा।
कन्या माझी सुलक्षणा। एकूलती॥४॥

[अर्थ : (१) अरी ओ रत्नों की खानि, इस तरह मत इतराना। देखो तो सही, मेरी कोख से तो इस सुंदर रत्न 'माला' ने जन्म लिया है।

(२) हे राजकुमार! आते-जाते इस तरह ललचाई दृष्टि से मत देखो, मेरी मालती को नजर लग जाएगी।

(३) मेरे सात जन्मों का सारा पुण्य संचय, हे श्रीहरि, मैं तुम्हें अर्पित करती हूँ, मेरी मालती की रक्षा करो!

(४) हे नारायण! मेरी इकलौती सुलक्षणी कन्या मुझे आजन्म मिले।]

गाने की धुन में 'इकलौती' शब्द का उच्चारण करते ही रमा देवी को यूँ लगा जैसे किसी बिच्छू ने डंक मारा है। किसी तीव्र दुःख की स्मृति से उनका मन कसमसाने लगा। ऐसे हर्षोल्लास की घड़ी में उनकी बेटी को भी यह कसक न हो, वह भी उदास न हो इसलिए रमा देवी ने अपने चेहरे पर उदासी का साया तक नहीं उभरने दिया, फिर भी उनके कंठ में गीत अटक सा गया। मालती ने सोचा, गाते-गाते माँ की साँस फूल जाने से वह अचानक चुप हो गई हैं। माँ को तनिक विश्राम मिले और उनकी गाने की जो मधुर धुन बँध गई है वह टूट न जाए इसलिए, यह समझकर कि अब उसकी बारी है, वह अपनी अगली ओवियाँ गाने लगी। उसकी माँ ने उसके लिए ममता से लबालब भरी जो ओवियाँ गाई थीं, उनकी मिठास से भरपूर हर शब्द के साथ उसके दिल में हर्ष भरी गुदगुदियाँ हो रही थीं। अपने साजन की प्रेमपूर्ण आराधना की आस लगने से पहले लड़कियों को माँ के प्यार-दुलार भरे कौतुक में जितनी रुचि होती है, उतनी अन्य किसीमें भी नहीं।

संध्या की वेला में पश्चिम की ओर के सायबान पर, जिसका सामनेवाला बाजू खुला है—हिंडोले पर बैठी वह सुंदर-सलोनी, छरहरे बदन की किशोरी अपने सुरीले गीत की मधुरता का स्वयं ही आस्वाद लेती हुई ऊँची पेंगें भरने लगी। हिंडोला जब एक तरफ की ऊँचाई से नीचे उतरता तब हवा के झोंके से उसका आँचल फड़फड़ाता हुआ लहराता रहता। तब ऐसा प्रतीत होता कि संध्या समय सुंदर पक्षियों का झुंड अपने सुदूर नीड़ की ओर उड़ रहा है और उस झुंड में से एक पखेरू पीछे रह गया है, जो पंख फैलाकर आलाप के पीछे आलाप छेड़ते हुए पता नहीं कब हर्षोल्लास के आकाश में उड़ जाएगा।

माउलीची माया। न ये आणिकाला।
पोवळया माणिकाला। रंग चढे॥ १॥
न ये आणिकाला। माया ही माउलीची।
छाया देवाच्या दयेची। भूमीवरी॥ २॥
माउलीची माया। कन्या-पुत्रांत वांटली।
वाट्या प्रत्येकाच्या तरी। सारीचि ये॥ ३॥
जीवाला देते जीव। जीव देईन आपूला।
चाफा कशाने सूकला। भाई राजा॥ ४॥
माझं ग आयुष्य। कमी करोनी मारुती।
घाल शंभर पूरतीं। भाई राजा॥ ५॥

[अर्थ :(१) माँ की ममता की बराबरी कोई नहीं कर सकता। मूँगा-माणिक रत्नों पर रंग छा जाता है।
(२) माँ की ममता की तुलना किसीसे भी नहीं हो सकती। वह ईश्वर की दया की भूमि पर बिखरी हुई छाया है।
(३) माँ की ममता कन्या-पुत्रों में बाँटने पर भी सभी के हिस्से में संपूर्ण रूप में ही आती है।
(४) हे भाई राजा, मैं आपके लिए अपनी जान दे दूँगी। यह चंपा का फूल क्यों सूख गया?
(५) हे बजरंगबली, मेरी आयु कम करके मेरे राजा भैया के सौ साल पूरे करो!]

गीतों के बहाव में जो मुँह में आया, मालती वही ओवी गाती जा रही थी। पहली ओवियाँ उसकी अपने मन की बोली में रची हुई थीं। अपनी माँ से उसे जो लाड़-दुलार भरी ममता थी, उन्हीं गीतों को चुन-चुनकर वह अपने कंठ की शहनाई द्वारा गा रही थी। परंतु अगली ओवियाँ अर्थ के लिए चुनकर नहीं गाई गई थीं। वह वैसे ही गाती गई, जैसे कोई मराठी गायक हिंदी पदों के अर्थ पर खास गौर न करते हुए उस गीत की धुन के ही कारण वह पद गाता है। परंतु उसकी माँ का ध्यान उन ओवियों के अर्थ की ओर भी था, अतः मालती गाने के बहाव में जब वे ओवियाँ गाती गई, जो उसके भाई राजा पर लागू होती थीं, तब उसकी माता की छाती दुःख से रुँध गई और उन्हें डर लगने लगा कि अब रोई, तब रोई। उनके दुःख का साया मालती के उस हँसते-खेलते हर्षोल्लास पर पड़ने से वह स्याह न हो, इसलिए रमा देवी ने मालती की ओवियाँ, जो अब असहनीय हो रही थीं, बंद करने के लिए उसे

बीच में ही टोका, ''माला, बेटी अब रुक जा। भई, मुझे तो चक्कर-सा आने लगा है। कितनी ऊँची-ऊँची पेंगें भर रही हो।'' ऐसा ही कुछ बहाना बनाकर माँ ने अपने पैरों का जोर देकर हिंडोला रोका। उसके साथ ही न केवल मालती ही झूले से नीचे उतरी, उसका मन भी, जो ऊँचे-ऊँचे आलापों के झोंकों पर सवार होकर मदहोश हो गया था, उन गीतों के हिंडोले से नीचे उतरकर होश में आ गया।

उसने देखा तो माँ के नयन आँसुओं से भीगे हुए थे। दुःखावेग की तीव्र स्मृति से चेहरे का रंग पीला पड़ गया था। मालती को तुरंत स्मरण हो गया कि अरे हाँ, अपने लापता भैया की स्मृति से अम्मा दुःखी हो गई है। अपने मुख से सहजतापूर्वक निकली हुई ओवियों को, जिनमें भैया का वर्णन है, सुनकर ही अम्मा का मन विह्वल हो उठा है। उस हादसे को इतने साल बीतने के बाद भी उसकी माँ को अपने गुमशुदा बेटे की स्मृति कभी-कभी इस तरह प्रसंगवशात् असहनीय होती थी, जैसे दुःख का ताजा घाव हो और फिर वह ममता की मूरत माता फूट-फूटकर रोया करती। मालती जानती थी, उस समय अम्मा को किस तरह समझाना है। वह यह भी जानती थी कि कौन सा इलाज है, जो माँ के दुःख को टाल तो नहीं सकता पर अचेत और संवदेनाशून्य बना सकता है।

उसने झट से माँ की गोद पर अपना सिर रख दिया। उसके साथ अपने आप उसके चेहरे का रंग उड़ गया। उसकी आँखें भर आईं और अपनी आदत के अनुसार अपना चेहरा माँ की ठोड़ी से सटाकर अकुलाते हुए उसने कहा, ''नहीं, ऐसे दिल छोटा नहीं करते, अम्मा! मैं तो तुम्हारे मन को रिझाने के लिए गा रही थी और तुम्हारे दुःख का घाव ताजा हो गया। हाय, न जाने ये निगोड़ी ओवियाँ मुझे कैसे सूझीं?''

मालती के मन को अपनी गलती के अहसास की चुभन इतनी तीव्रता से हो रही थी कि उसकी माँ से अपने पिछले दुःख की अपेक्षा अपनी रोती-सिसकती बिटिया का वर्तमान दुःख देखा नहीं गया और वह झट से अपना दुखड़ा समेटकर मालती को ढाढस बँधाने लगीं।

''चल, पगली कहीं की! अरी बावली, तुम्हारे गीतों के कारण नहीं, मैं ही ओवी गाते-गाते 'मेरा बबुआ' कह गई न, उसीका मुझे दुःख हुआ। भगवान् ने मेरी झोली में दो-दो बच्चे डाले थे, पर हाय! नियति ने एक को मुझसे छीनकर बस एक ही मेरे लिए बाकी रखा—यही कसक मुझे अचानक चुभ गई। मत रो बेटी, मत रो। चुप हो जा। तुमने मेरा जख्म हरा नहीं किया बल्कि तुम्हारे खिले-खिले मुख पर थिरकती सुखद मुसकान ही वह रसायन है जो इस दुःख को तनिक हलका कर सके। जो बीत गई सो बीत गई, वह वापस थोड़े आनेवाला है? तेरा भाई तुझपर इतनी जान छिड़कता था कि यदि मैंने तुझे उसके वियोग के दुःख से भी रुलाया तो

भी वह मुझसे नाराज होगा। उसकी आत्मा जहाँ कहीं भी होगी, उसी स्थान पर तड़पेगी। तुमने तो उसका स्थान ले ही लिया है। न, न, चुप हो जा। अरी हाँ, आज उस नए आए हुए साधु महाराज का भजन सुनने चलेंगे न? चल उठ, मैं चूल्हा जलाती हूँ, तुम झाड़-बुहारकर खाना बनाने की तैयारी करो। भोजन आदि से निपटते ही नायडू बहनजी बुलाने के लिए आ जाएँगी।''

माँ-बेटी भीतर चली गईं। रमा देवी ने यह एक छोटा सा शानदार मकान पिछले महीने ही मथुरा में रहने के लिए स्वतंत्र रूप से किराये पर लिया था।

रमा देवी के पति का दो बच्चों के पिता होने के बाद अचानक स्वर्गवास हो गया। उनके पति ने रमा देवी के लिए इतना पैसा और जेवरात छोड़े थे, जिससे उनकी दाल-रोटी आराम से चल सके। उसीके सहारे कुछ साल नागपुर के पास अपने गाँव में रमा देवी ने अपने दोनों बच्चों को पाला-पोसा था। आगे चलकर उनका बेटा जब फौज में भरती हो गया तब उनकी बेटी मालती ही उनके पास बची थी। दो-चार वर्षों में ही हिंदुस्थान से बाहर अंग्रेजों से छिड़े किसी युद्ध में भारतीय फौज भेजी गई। उसमें रमा देवी के पुत्र को भी जाना पड़ा। लेकिन वहाँ जाने के बाद वह लापता हो गया। बड़ी दौड़-धूप, कोशिशों के बाद रमा देवी को अफसरों से पता चला कि वह फौजी कुछ कारणवश अफसरों से लड़-झगड़कर फरार हो गया और हो सकता है, दुश्मनों के हाथों मारा गया हो।

यह हादसा हुए पाँच-छह साल बीच चुके थे। इस बात को कि रमा देवी का पुत्र फौज में भरती हो गया था और गुजर चुका है, उनके गाँववालों को इतना विश्वास हो चुका था कि अब इस बात को सभी भूल चुके हैं। परंतु भला रमा देवी यह पूरी तरह से कैसे भूल सकेंगी? उन्हें अपने पुत्र का विस्मरण नहीं हुआ। इतना ही नहीं, कभी-कभी तो उन्हें इस बात पर विश्वास ही नहीं होता था कि उनका पुत्र मारा गया है और अब इस लोक में वह फिर कभी नहीं मिलेगा। युद्ध में मारे गए सैनिकों के निकटवर्तियों की प्रायः इसी प्रकार की मनोवृत्ति पाई जाती है। आज भी उन्हें यह बात सच प्रतीत नहीं होती थी कि उनका पुत्र मारा गया है। कोई भी आशा बाकी नहीं रही थी, फिर भी संदेह दूर नहीं हो रहा था। इन शब्दों का उच्चारण करना भी उन्हें अप्रिय-सा लगता था कि उनका पुत्र दूर देश में युद्ध में मारा गया। यदि कभी इस बात को छेड़ने का प्रसंग आ भी जाता तो बस वे इतना ही कहतीं कि मेरा बड़ा बेटा युद्ध में लापता हो गया है।

पुत्र की मृत्यु का समाचार पाने के बाद दुःख की मारी वह हतभागिनी नारी अब अपनी इकलौती बेटी के प्यार के सहारे ही जी रही थी। वही उसकी आँख की पुतली थी। कंचन का कौर खिलाकर पाला था उसने अपनी लाड़ली को। जैसे-जैसे

वह बड़ी होती गई वैसे-वैसे ही वह चंद्रकलावत् अधिकाधिक सुंदर दिखने लगी; जैसे माथे चाँद, ठोढ़ी तारा। उसके प्यार भरे, चपल किंतु सुशील स्वभाव, सलीकेदार बोलचाल में कुछ ऐसी सुघड़ता और रमणीयता थी, मानो उसके मुख से फूल झड़ते हों। न केवल उसकी माँ, बल्कि जो भी उसे देखता, उसके नेत्रों और मन को चतुर्थी की चंद्रकला के दर्शन का आनंद एवं सुख प्राप्त होता। सुंदर मोतियों के दर्शन से इस बात का जिस तरह सहज अहसास होता है कि यह किसी शोभनीय अलंकार की सामग्री है, उसी तरह इस किशोरी को देखने के बाद भी ऐसा ही लगता कि किसी-न-किसी रमणीय, मंगल तथा सुखमय जीवन के लिए इसका निर्माण हुआ है। अब वह चौदहवाँ वर्ष पार कर चुकी थी। गुलाब चटक रहा था। उसकी अम्मा के मन में उसके भविष्य के सिलसिले में सुनहरी आशाओं तथा आकांक्षाओं का एक मनोहारी उद्यान खिलने लगा था।

रमा देवी की एक बहुत पुरानी सखी परिचारिका श्रीमती अन्नपूर्णा देवी नायडू आजकल मथुरा में नौकरी कर रही थीं। उन्हींके अनुरोध तथा रमा देवी के धार्मिक मन की तीर्थयात्रा में रुचि होने के कारण वे महीना-पंद्रह दिनों के लिए मालती के साथ मथुरा आई हुई थीं। मथुरा के दर्शनीय स्थलों, मंदिरों तथा साधु-संतों के दर्शनार्थ उनकी प्रमुख पुरोहित एवं मार्गदर्शक अन्नपूर्णा देवी हुआ करतीं। उनकी भी साधु-संतों में बड़ी रुचि थी। किसी भी नए साधु के मथुरा आते ही उसका उपदेश सुनने तथा प्रसंगवश यथाशक्ति उसकी सेवा-टहल करने के लिए भी अन्नपूर्णा देवी सहसा नहीं चूकतीं।

उनके घर के निकटवर्ती घाट पर ही पिछले महीने योगानंद नामक एक साधु अपने शिष्यों के साथ ठहरे थे। उन्हींके पास आजकल अन्नपूर्णा देवी की भजन-पूजन, दर्शनार्थ आवाजाही जारी थी। सर्वत्र यही चर्चा थी कि उन योगानंद स्वामीजी के पास अतीत-भविष्य-वर्तमान जानने की दैवी शक्ति है। रात में उस साधु के मठ में भजन का उद्घोष होते ही उस संकीर्तन के रंग में सैकड़ों लोग तल्लीन होकर भक्तिभावपूर्वक नाचने लगते। योगानंद स्वामी को जब अन्नपूर्णा देवी द्वारा रमा देवी की जानकारी प्राप्त हुई तब उन्होंने अपने हाथों अपनी विशेष कृपा के निदर्शक-स्वरूप रमा देवी के लिए भगवान् का प्रसाद भेजा। पिछली दो-तीन रातों से रमा देवी मालती के साथ भजनोत्सव में भी जा रही थीं। स्वयं योगानंदजी ने भी एक-दो बार उनके बारे में पूछताछ करने की कृपा की थी।

योगानंदजी का आचरण इतना धार्मिक, निर्लिप्त तथा सादगीपूर्ण होता कि गाँव के गुंडे-निठल्ले निंदकों की टोली में भी उनकी कभी निंदा नहीं होती। भजन में जब वे तल्लीन होते तो ऐसा प्रतीत होता कि इस सत्पुरुष को जगत् तथा अपनी

देह का भान तक नहीं है। उनकी मुख्य साधना भजन ही हुआ करती। अन्य कोई ढोंग-धथूरा उनके मठ में दिखाई नहीं देता। उनके शिष्यों की संख्या बड़ी थी जो उनके पीछे-पीछे अनुशासनपूर्वक चलते हुए मठ के अनुशासन अनुसार व्यवहार करते हुए दिखाई देते।

मथुरा से उनका पड़ाव शीघ्र ही उठनेवाला था, अत: इस अंतिम सप्ताह में भजन की धूमधाम चल रही थी। सैकड़ों लोग रात में उधर रेलपेल करते।

रमा देवी मालती को लेकर आज रात के भजन-महोत्सव के लिए उधर ही जा रही थीं। माँ-बेटी के भोजनादि से निपटते ही अन्नपूर्णा देवी ने द्वार पर दस्तक दी। तुरंत तीनों स्वामीजी के मठ की ओर चल पड़ीं।

□

प्रकरण–२

मालती कहाँ है?

रमा देवी मालती के संग जब भजन स्थल पर पहुँचीं तब भजन का रंग खूब जमा हुआ प्रतीत हो रहा था। उस घाट पर इधर-उधर दूर-दूर तक लोगों की रेलपेल, भीड़-भड़क्का हो गया था। दिंडी भजन[१] की तरह बड़े-बड़े झाँझरों के साथ पचास-पचहत्तर गोसाईं साधु-संत योगानंद को घेरकर संकीर्तन कर रहे थे। दस-बीस प्रमुख शिष्य पखावज, मृदंग, वीणा, झाँझर प्रभृति वाद्य-यंत्रों के साथ, ताल-सुर ठीक-ठाक पकड़कर योगी महंत के बिलकुल निकट तैयार बैठे हैं और बीचोबीच कभी बैठे-बैठे तो कभी भक्ति के आवेश में उठकर योगानंदजी ऊँची, बुलंद आवाज तथा तन्मय सुरों में भजन गा रहे हैं। सुदूर फैली हुई उस भीड़ में से ठेला-ठेली करके भीतर जाने की गुंजाइश ही नहीं थी। परंतु अन्नपूर्णा देवी के अनुरोध पर पहले से ही उन्हें महंत के मंदिर के आरक्षित स्थान पर बैठाने के लिए एक शिष्य नियुक्त किया गया था। उस शिष्य ने राह में ही उन्हें देखकर योगानंदजी की आज्ञा-अनुसार तीनों को वहाँ लाकर बैठाया।

इधर भजन अपनी चरम सीमा पर था। तुलसीदासजी के एक पद के चरण उन सैकड़ों भजनियों के सैकड़ों कंठों से परिपुष्ट बुलंद स्वर में गूँजते रहे—

तुलसी मगन भए। हरिगुणगान में॥
मगन भए। हरिगुणगान में॥ ध्रु.॥
कोई चढ़े हाथी घोड़ा पालकी सजा के॥
साधु चले पैंया-पैंया चिंटियाँ बचा के॥
मगन भए। हरिगुणगान में॥ तुलसी.॥

---

१. दिंडी भजन : दिंडी भजन मराठी का एक मात्रिक छंद है, जिसके चार चरण होते हैं तथा हर चरण में १९ मात्राएँ रहती हैं।

झाँझर की झनझनाहट से लहू की बूँद-बूँद थरथराने लगी।

सारा समाज भक्ति रस में डूबा हुआ था, सराबोर। हरिनाम के सिवा अन्य कोई भी ध्वनि वहाँ सुनाई नहीं दे रही थी। परंतु क्या यह कहा जा सकता है कि एक-दूसरे को सुनाई नहीं दे रही थी या जिस-तिस को भी सुनाई नहीं दे रही थी—इस संबंध में भला कौन कह सकता है?

इतने में उस शतकंठ निनादी स्वर को कुछ नीचे उतारकर योगानंदजी अकेले ही इतनी तन्मयता से गाने लगे कि शिष्यादि भजनी लोगों ने झाँझर को, जो सिर्फ हल्ला-गुल्ला, गुल-गपाड़ा ही कर रहा था, बंद करके करतालों के साथ गाना प्रारंभ किया। 'तुलसी मगन भए। हरिगुणगान में' यह चरण उलट-पुलटकर मधुर तथा धीमे स्वरों में गाते-गाते योगानंद उठकर खड़े हो गए।

उस पद का अर्थ योगानंद स्पष्ट नहीं कर रहे थे। लेकिन जिन्हें उसका बोध हो रहा था वे उस भजन का अर्थ सुन रहे थे, जैसे उन्हें गागर में सागर मिला हो। इस जीवन की साधना हर कोई अपनी रुचि के अनुसार कर रहा है—हर कोई आनंद और सुख का पीछा कर रहा है—कोई भोग द्वारा, कोई योग द्वारा। जैसी जिसकी और जितनी जिसके मन की उन्नति वैसी उसकी रुचि—'स्वभावो मूर्ध्नितिष्ठते।' इसीलिए भई, बाह्य साधनों के विवादों का पचड़ा किसलिए खड़ा किया जाए? तुम उसीमें रम जाओ जिसमें तुम्हें आनंद और सुख मिले, वे उसमें रमे जिसमें उन्हें आनंद और सुख मिले। मुझसे पूछा जाए तो 'तुलसी मगन भए। हरिगुणगान में। हरिगुणगान में।'

कुछ लोग चंदन के ऊँचे पर्यंक पर गुदगुदी मखमली सेज पर लेटने के लिए एड़ी-चोटी एक कर रहे हैं—उन्हें उसमें आनंद आता है। परंतु कुछ लोग अपने पास पलंग होते हुए भी, उसे त्यागकर, साथ-साथ कामी पत्नी को भी त्यागकर बुद्ध सदृश बोधिवृक्ष के नीचे खुले स्थान पर सिर्फ धरती पर सोते हैं—उन्हें वहीं पर गहरी नींद आती है। गाढ़ी निद्रा ही उद्दिष्ट हो तो उसे वहीं सोना उचित है, जहाँ वह चैन की नींद सो सके। भई, इस विवाद की आवश्यकता ही क्या है कि मेरा ही साधन तुम्हें भी इस्तेमाल करना होगा?

कुछ हाथी पर तो कुछ घोड़े पर और कुछ पालकी में शान से इतरा रहे हैं। भई, उन्हें उसीमें आनंद आ रहा है—उनका वही स्वभाव है। लेकिन इस साधु को देखो, उसे हाथी पर सवार होना उतना ही दुःखद प्रतीत हो रहा है जितना सूली पर चढ़ना। इस मुँहजोरी से कि पालकी में स्वयं बैठें और उसे कोई अन्य ढोए—उसे इतना लज्जाप्रद प्रतीत होता है, पालकी के स्पर्श मात्र से उसे ऐसा दुःख होता है जैसे किसी धधकते अंगारे से हाथ जल रहा हो। इसीलिए वह साधु पैदल चलता है और

पैदल चलते-चलते भी इस भय से कि कीड़े-मकोड़े या चींटियाँ उसके पैरों तले कुचलकर मर तो नहीं जाएँगी, दयाभाव से उन्हें बचाने के लिए देख-देखकर डग भरता है, उसीमें उसे सच्चा सुख मिलता है।

कोई चढ़े हाथी घोड़ा पालकी सजा के।
साधु चले पैंया-पैंया चिंटियाँ बचा के॥
पैंया पैंया। चिंटियाँ बचा के॥

उस समय सभी को यही अहसास हुआ कि क्या यह वही साधु तो नहीं जिसका तुलसीदासजी के पद में उल्लेख किया गया है। क्योंकि योगानंद की एक खास आदत थी कि राह में, घाट में, हाट में कहीं पर भी हों, देख-देखकर एक-एक कदम तनिक ऊपर उठाकर उसे आगे बढ़ाते थे।

यद्यपि वे इसी उद्देश्य से उन भजनों को इतनी तल्लीनता से तथा रसभीने स्वर में नहीं गा रहे थे कि उनका साधुत्व गोस्वामीजी के पद के इन चरणों द्वारा लोगों के मन पर अंकित हो, तथापि उसका परिणाम वही हुआ। हर कोई किसीके बिना बताए भी यह जान गया कि गोस्वामीजी के निकष पर योगानंदजी का साधुत्व कुंदन हो गया है।

इस प्रकार के भजनोत्सव में आधी रात बीत चुकी। आरती के समय स्वामीजी का चरण स्पर्श करने के लिए लोगों की रेलपेल होने लगी। लोगों के झुंड घर वापस लौटने के लिए बाहर निकलने लगे। अब तो ऐसी ठेला-ठेली शुरू हो गई कि बस अंधेर मच गया। इतने में अन्नपूर्णा देवी, रमा देवी तथा मालती जहाँ से बाहर निकल रही थीं, उधर दस-पाँच लोगों में अचानक तू-तू, मैं-मैं होने लगी; गुत्थमगुत्था शुरू हो गई और बड़ा हंगामा खड़ा हो गया। यह बखेड़ा निपटाने के बहाने स्वामीजी के दस-पाँच शिष्य छड़ियों के साथ अंदर घुस गए। जो जिधर निकल गया वह वहीं ठेलता, ढकेलता चला गया। बीच में ठसाठस भीड़ ठुँसती गई। इस बिछोह में रमा देवी किधर गईं, अन्नपूर्णा देवी किधर और मालती कहाँ गायब हो गई, इस बात का एक-दूसरी को भी पता नहीं लग रहा था। इतने में स्वामीजी के एक शिष्य ने रमा देवी का, जो लगभग कुचली जाने से बौखलाई हुई थीं, हाथ पकड़कर उन्हें इस भीड़-भड़क्के से बाहर निकाला और बताया कि 'स्वामीजी की आज्ञा से महिलाओं को विशेष तत्परतापूर्वक पहुँचाने के लिए हमें भेजा गया है। आप अपने घर चलिए।'

''लेकिन मेरी मालती? बताइए कहाँ है मेरी बिटिया?'' बौखलाई सी, घबराई सी रमा देवी ने पूछा। उस शिष्य ने आनन-फानन उन्हें आगे-आगे ले जाकर

ही बताया कि 'सब लोगों को अपने-अपने घर पहुँचाया गया है। आप लोग आगे-आगे बढ़िए। बस।'

आधी राह तो भीड़ की ठेला-ठेली ही चल रही थी, उस भीड़ से शिष्य ने रमा देवी को लगभग खींचकर ही निकाला।

''जाइए, अब सीधे घर चली जाइए। बाकी दोनों माताजी लोगों को पहले ही वहाँ पहुँचा दिया गया है।'' इस प्रकार आश्वासन देते हुए वह शिष्य भीड़ की शिकार किसी अन्य अबला को बचाकर घर पहुँचाने के लिए चलता बना और भीड़ में खो गया।

धड़कते दिल से रमा देवी जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाती अपने घर पहुँचीं। एक तरफ इस उपकार का स्मरण करते हुए कि स्वामीजी ने इतने दंगल में विशेष ध्यान रखकर महिलाओं को अपने-अपने घर पहुँचाया और दूसरी तरफ इस बात की चिंता करते-करते कि मालती द्वार पर ही मेरी प्रतीक्षा में बैठी होगी और बेचारी के होश उड़ गए होंगे, रमा देवी अपने घर के पास आ गईं। उन्होंने अँधेरे में उस बरामदे की ओर देखा। दरवाजे का ताला ज्यों-का-त्यों था। मालती या अन्य किसीकी भी आहट नहीं मिल रही थी। मालती के आगे आने का कोई सुराग नहीं मिल रहा था। उन्हें ऐसा आभास होने लगा कि भजन-कीर्तन के समय जो धक्कम-धक्का हुआ था, उसमें कुचली गई मालती फूट-फूटकर रो रही है।

''मालती, अरी ओ माला बिटिया…''

रमा देवी ने बड़ी कठिनाई के साथ न जाने किसलिए उस वीरान अँधेरे में दो बार पुकारा और तीसरी पुकार यूँ ही गले से निकल रही थी कि उनका गला भर आया, रुलाई फूट पड़ी और वे धम् से नीचे बैठ गईं। यह ध्यान होते हुए भी कि इधर ऐसा कोई नहीं है जिससे वे बार-बार पूछ रही हैं, सिसक-सिसककर पूछती ही रहीं, ''मेरी मालती कहाँ है जी? मेरी माला बिटिया आ गई?''

वस्तुत: उस समय चित्त के इतना व्याकुल होने का कोई कारण नहीं था। स्वामीजी के शिष्य ने जल्दी-जल्दी किंतु साफ-साफ बता दिया था कि 'उन सभी को आगे पहुँचा दिया जा चुका है।' उन्होंने सोचा, इधर नहीं तो हो सकता है अन्नपूर्णा देवी के घर उन दोनों को पहुँचा दिया गया हो। मैं भीड़ में अकेली फँस गई और वे दोनों साथ-साथ हो सकती हैं। नहीं, नहीं, अवश्य साथ ही होंगी। इसलिए इतने दूर तक हंगामे में मुझे ढूँढ़ते-ढूँढ़ते आने की बजाय वहीं से उन्हें अन्नपूर्णा देवी के घर पहुँचा दिया होगा जो इस घर से अधिक निकट है; अन्नपूर्णा देवी ने ही यह प्रार्थना की होगी।

इस तरह यही विपरीत विचार धीरे-धीरे उन्हें सही लगने लगा। यह सोचकर कि स्वयं उधर जाकर मालती को देख लें, वे दो-चार बार सड़क पर आ गईं। 'पर मैं उधर चली गई और मालती इधर आ गई तो? फिर वह अकेली रहेगी। मेरे यहाँ न मिलने पर शायद मुझे ढूँढ़ने वह वापस लौटेगी। दूर का रास्ता, रात का तीसरा पहर, घना अँधेरा। जाएँ या न जाएँ।' इस तरह उलट-पुलट विवंचना, मिथ्या आशा दिखा रही थी कि न जाने कब उन्हें झपकी-सी आ गई।

चौंककर वे उठ गईं। देखा तो बगल में मालती का बिस्तर खाली ही था, यह बिस्तर कभी भी इस तरह सूना-सूना नहीं दिखाई दिया था। प्रतिदिन सुबह आँख खुलते ही उस बिस्तर पर मीठी नींद में सोई हुई मालती की अस्त-व्यस्त लटें सँवारकर उसका मुख प्यार से सहलाकर, उसे कंबल ओढ़ाकर वे प्रसन्न चित्त के साथ 'सडा सम्मार्जन'[१], झाड़ू-बुहार आदि नित्यकर्मों में जुटतीं—यही रमा देवी का नित्य का निश्चित क्रम था। आज उस बिस्तर पर वह प्यारा सा दुलारा मुखड़ा नहीं दिख रहा था। उनका कलेजा सन्न हो गया—काटो तो बदन में खून नहीं। बुरे विचार मन में उमड़-उमड़कर बाहर आने लगे। परंतु उनका मन में भी उच्चारण न करती हुई रमा देवी तपाक् से उठ खड़ी हुईं और सीधी मालती को ढूँढ़ते अन्नपूर्णा देवी के यहाँ चल पड़ीं।

लेकिन थोड़ी दूर चलने पर उन्हें दिखाई दिया कि अन्नपूर्णा देवी इधर ही आ रही हैं। अकेली···।

घबराती हुई रमा देवी ने पूछा, "यह क्या? मालती कहाँ है?"

हक्की-बक्की सी अन्नपूर्णा देवी ने कहा, "आँ? स्वामीजी के एक शिष्य ने मुझे बताया कि मालती तो आपके साथ चली गई।"

"हाय राम! मेरी मालो! किधर गई होगी वह?" रुँधे कंठ में अटके हुए ऐसे ही कुछ शब्द कहकर रमा देवी किसी नन्हे बालक के समान बिलख-बिलखकर रोने लगीं।

अन्नपूर्णा देवी उनसे अधिक धैर्यशाली महिला थीं अथवा उनका धीरज इसलिए ज्यों-का-त्यों रहा होगा कि उनकी इकलौती कोखजायी सयानी बेटी नहीं खो गई थी। रमा देवी को सहारा देते हुए उन्होंने कहा, "इस तरह मन छोटा क्यों करती हैं आप? हिम्मत से काम लीजिए। आप और हमारी जैसी सभी स्त्रियों को जिस तरह स्वामीजी ने सोच-समझकर आदमी भेजकर उस हुल्लड़ से बचाया, उसी तरह मालती को भी बचाकर किसी सुरक्षित स्थान पर रखा होगा। चलिए,

---

१. पानी में गोबर-मिट्टी आदि घोलकर छिड़कना।

पहले स्वामीजी के पास चलते हैं। कुछ भी हो—मालती उधर ही सुरक्षित है—चलिए।''

रमा देवी को इस तरह ढाढस बँधाकर अन्नपूर्णा देवी स्वामीजी के मंदिर की ओर चल तो पड़ीं, परंतु उनका मन भी इसी धुकधुकी में डाँवाडोल हो रहा था कि क्या होगा, क्या नहीं।

□

प्रकरण–३

योगानंद का कपट

योगानंद जिस मंदिर में ठहरे थे, उसके अहाते में सवेरे कुछ दर्शनार्थी तथा प्रश्नार्थी तब तक इधर-उधर टहलते रहते थे, जब तक स्वामीजी का बुलावा नहीं आता। दो-दो, चार-चार परिचित लोगों के गुट योगानंदजी की प्रशंसा के पुल बाँधते रहते कि वे भूत-भविष्य-वर्तमान कितना अचूक बताते हैं। कोई संदेह व्यक्त करता, तब उसका समाधान करने की जिद पकड़कर अन्य भक्त लोग उनके अचूक भविष्य कथन के उदाहरण नमक-मिर्च लगाकर बखानते। स्वयं योगानंद कभी कीर्तन द्वारा अथवा व्यक्तिगत संवादों से धार्मिक उपदेश नहीं दिया करते थे। वे प्राय: किसी भी संबंध में किसीसे भी बातचीत नहीं किया करते थे। सिर्फ जिनके मन में भूत-भविष्य देखने की इच्छा हो जाती, उन्हें ही शिष्य द्वारा एकांत में उनके कमरे में बुलाया जाता। उधर महंतजी कुछ चुनिंदा प्रश्न पूछा करते, और सुनते। फिर जलादर्श नामक एक तांत्रिक यंत्र सामने रखा जाता और महंतजी वही कहते जो प्रत्यक्ष रूप में उस यंत्र में उनकी दिव्य दृष्टि को दिखाई देता। किसीके सच-झूठ प्रमाणित करने के प्रयासों से वे विवादों के किसी पचड़े में नहीं पड़ते। 'प्रभु ने बताया सो मैंने कह दिया। सत्य-मिथ्या प्रभु का अधिकार। मैं तो बस उसके शब्दों की ध्वनि हूँ।' यही ठोस उत्तर योगानंद दिया करते और उस शिष्य द्वारा उस प्रश्नार्थी को बाहर पहुँचा दिया जाता। महंतजी किसीसे भी उस जलादर्श स्थित भूत-भविष्य कथन के बदले एक धेला भी नहीं लिया करते—इस अपरिग्रही निर्लोभतावश उनकी दी हुई जानकारी पर सश्रद्ध जनों को ही नहीं, अपितु अर्धसंदेही लोगों की भी अधिक ही श्रद्धा होती। महंतजी वाक्संयम का पालन करते, उससे उनके मुख से एकाध जो गूढ़ शब्द निकलता, उसका स्पष्टीकरण अपने मतानुसार करने के लिए हर कोई स्वतंत्र हुआ करता। कीर्तन में स्वयं तल्लीन होकर उन्मुक्त भाव से सुरीली आवाज में बार-बार

दोहराकर भजन गाते। उस समय उस भावभक्तिभीने अभिनय से उनकी धार्मिक सिद्धि की महत्ता श्रोतावृंद को ज्ञात होती, लेकिन कीर्तन द्वारा भी वे भजन से अलग कोई प्रवचन नहीं देते। 'भजन संतों का। संतों से अधिक भला मैं क्या कह सकता हूँ।' इस वाक्य का प्रसंगवश उच्चारण करके वे मुँह में ठेपी रखते।

लेकिन योगानंदजी की इस मौनवृत्ति से ही अन्य किसी भी प्रवचनकार के किसी भी वक्तव्य की अपेक्षा उनके वेदांत ज्ञान की गूढ़ता पर मुग्ध लोगों पर असाधारण छाप पड़ती। उनका ज्ञान इतना अगाध है, गूढ़ है, प्रगाढ़ है कि भई, शब्दों की कमी तो रहेगी ही! 'गुरोस्तु मौनं व्याख्यानम्' यही परम प्रसिद्धि का चिह्न है—इस तरह भावुक लोग आपस में कहा करते। उस कुएँ की गहराई पर तर्क किया जा सकता है जिसका मुँह खुला है परंतु जिसका मुँह बंद होता है और किसीने भी उसे खुला हुआ नहीं देखा है—उसके प्रति असीम विस्मय होगा ही। इस प्रकार अथवा ऐसी ही कोई आपत्ति यदि कोई उठाने लगता तो उस गुरु का ही, जिसके लिए भाषण देना टेढ़ी खीर है, यह लक्षण हो सकता है—'गुरोस्तु मौनं व्याख्यानम्।' तब इधर-उधर से भावुक शोरगुल मचाकर कहते, 'भई, इस निंदक के मुँह कौन लगे।'

रमा देवी की उस स्वामी पर अटूट निष्ठा थी, जो उन्हें आज उस राह पर चलने लायक शक्ति दे रही थी। 'यदि मालती योगानंद के मठ में सुरक्षित नहीं हो और कल के दंगा-फसाद में खो गई हो, तो भी योगानंदजी अपने जलादर्श यंत्र में देखकर मुझे अवश्य बताएँगे कि वह कहाँ है। यह विचार उस भावुक माता के घबराए हुए मन का तनिक सहारा बन गया था। वे अपने आपको ही सांत्वना दे रही थीं कि स्वामीजी किसी-न-किसी उपाय से उनको इस संकट से उबारेंगे। निरीच्छ, निर्मोही साधु पर उनकी जो अटूट श्रद्धा थी, उसी श्रद्धा की लाठी के सहारे वे लड़खड़ाते हुए मंदिर की ओर तेजी से बढ़ रही थीं।

अन्नपूर्णा देवी भावुक होते हुए भी भोली-भाली नहीं थीं। पाखंडी, रखेड़िए बगुला भगत उन्होंने बहुतेरे देखे थे। लेकिन यदि कोई इस तरह बहस करता कि सभी साधु ढोंगी, ढपोरशंखी होते हैं तो वे उसे पराजित करतीं। किसीसे कुछ भी न लेते हुए, जो समझ में आए वह बताने की योगानंदजी की प्रवृत्ति, उनके द्वारा कथित भूत-भविष्य में किसी प्रकार की चालाकी या झूठ न होने की चर्चाएँ—इन दो प्रमाणों से योगानंद के विषय में उनका अनुकूल ग्रह हो गया था। स्पष्ट था कि वे एक सच्चरित्र, परोपकारी, साधु पुरुष हैं। इस विषय में भी अन्नपूर्णा देवी का विश्वास बढने लगा था कि उनमें भूत-भविष्य कथन करने की दिव्य दृष्टि है, वे अंतर्यामी हैं। हाँ, तनिक संदेह था, लेकिन वह इसपर कि भूत, भविष्य, वर्तमान ज्ञान की सिद्धि कितनी अचूक होगी, न कि उनकी ईमानदारी पर। मालती पर जो विपदा

आ पड़ी थी, उससे अन्नपूर्णा देवी के मन में परेशानी होने के बावजूद यह विचार आए बिना नहीं रहा कि इस बात को परखने का यह सुनहरा अवसर है।

मंदिर के प्रांगण में दोनों महिलाएँ कदम रख ही रही थीं कि इतनी देर तक दबाई हुई आह भरते हुए रमा देवी ने उसी शिष्य से पूछा, "भई, हमारी मालती बिटिया कहाँ है?"

शिष्य ने, जो उनके इस उतावले प्रश्न की मानो ताक में ही था, अपने मुख पर थिरकती आश्वासक मुसकान और दोनों पंजे वरदहस्त सदृश हिलाते हुए बताया, "सबकुछ ठीक-ठाक है।" उससे रमा देवी की जान में जान आ गई। जिस गति से उनकी चिंता कम हुई उतनी ही तेज गति से उनकी जिज्ञासा दुगुनी हो गई और व्याकुल चित्त के साथ रमा देवी गिड़ड़िाने लगीं, "उसे बुलाइए न? अं? यहाँ पर तो कहीं नजर नहीं आ रही?"

शिष्य ने इस लाचारी के आविर्भाव में उत्तर दिया, जैसेकि इसलिए बोल रहा हो कि शब्दों का उच्चारण होना ही चाहिए, "माताजी, गुरु महाराज अभी याद करेंगे आपको। घबराइए मत। शोर भी मत मचाइएगा।"

योगानंद स्वामी की तरह उनके शिष्यों को भी यथासंभव मितभाषी होने के अनुशासन का पालन करना पड़ता है और योगानंद गुरुजी की अनुज्ञा के बिना किसी भी प्रश्न का सहसा कोई भी वाचिक उत्तर देना उनके लिए असंभव था। यहाँ की रीत अन्नपूर्णा देवी जानती थीं, मिलनेवालों को बस उतने ही प्रश्न पूछने की अनुमति थी जितने महंत चाहते हैं। उन्होंने संकेत से रमा देवी को घुड़की दी, "तनिक चुप भी रहिए।"

इतने में महंतजी के कमरे का द्वार खुल गया। दो-चार प्रश्नार्थी सज्जन बाहर निकले। तब दोनों को वह शिष्य भीतर ले गया। लेकिन उधर भी मालती नजर नहीं आई। रमा देवी को संकेत से बोलने की अनुमति मिलते ही उन्होंने हाथ जोड़कर पूछा, "स्वामीजी, मैं आपका यह उपकार जन्म-जन्म तक नहीं भूलूँगी कि मेरी बेटी मालती को कल के दंगा-फसाद से मुक्त करके यहाँ सुरक्षित स्थान पर आपने रखा। मैं उसे लेने आई हूँ। कहाँ है मेरी बिटिया?"

महंतजी के संकेत से शिष्य बोलने लगा, "माताजी, आपकी कन्या को दंगा-फसाद से मैंने छुड़ाया और आपके घर ले जा ही रहा था। लेकिन उसने कहा कि मैं अपने किसी परिचित सज्जन के साथ संतोषपूर्वक घर चली जाऊँगी। वह मेरा निकटवर्ती संबंधी है।"

"क्या मतलब? कौन था वह?" रमा देवी ने घबराकर पूछा। बुझती चिंता की लपटें भभक उठीं और उनका हृदय फिर से धधकने लगा, जैसे बुझता दीपक

भभक उठता है। अकुलाती हुई वे पूछने लगीं, ''महाराज, यहाँ तो मेरा कोई संबंधी नहीं है! ओह! महाराज, अवश्य कोई धोखा हुआ है। महाराज...''

निश्चयी मुद्रा से अपने हाथों की तर्जनी उठाकर महंतजी ने उन देवियों को रुकने का इशारा किया। रमा देवी का उमड़ता हुआ आवेग, जो असंयत हो रहा था, वह घुड़की भरा लेकिन सहानुभूतिपूर्ण संकेत पाकर खट से दब गया। ढेर सारी बातें वहीं पर ठिठक गईं जो उनके मुख से बाहर निकलने के लिए उनके होंठों पर अटकी हुई थीं।

आँखें सिकोड़ते हुए महंतजी तनिक अंतर्मुख हो गए, फिर अत्यंत दयार्द्र स्वर में कहने लगे, ''देख मैया, तेरी बेटी नहीं, मेरी अपनी बेटी ही खो गई है। भगवान् की इच्छा हो तो, देख, झट से उसे ढूँढ़ निकालता हूँ। हाँ, परंतु बस उतना ही बोल माई, जितना मैं तुमसे पूछूँगा, उतना ही देख जितना दिखाई देता है, उतना ही सुन, जितना मैं तुमसे कहूँगा। सबसे पहले अपना मन मेरे हाथों सौंप दे। ऐसा कोई भी विचार मन में झाँकने नहीं देना जो तेरा अपना हो। दे दिया न अपना मन रिक्त करके?''

''हाँ जी, दे दिया, महाराज!'' यह कहते ही रमा देवी का मन सचमुच ही संवेदनाशून्य सा हो गया और वह महंतजी की गतिविधियों की ओर बस टुकुर-टुकुर देखती रहीं।

गुरुजी का संकेत पाकर एक शिष्य ने एक साफ-सुथरी परात उनके सम्मुख रख दी। उसे निर्मल, स्वच्छ जल से लबालब भर दिया। उस परात के तनिक ऊपर एक साफ-सुथरा, निष्कलंक दर्पण दीवार पर टाँग दिया गया। एक दीप जलाकर पास रख दिया गया। महंत योगानंदजी ने कड़छी से जल मंत्रित करके अपनी आँखों पर छिड़का और एकाग्रचित्त से मंत्र-जाप करते हुए उस परात में भरे जल की ओर टकटकी बाँधकर बैठ गए। सभी लोग ऐसे बुत बनकर बैठे, जैसे साँस लेने में भी उन्हें डर लग रहा हो।

थोड़ी ही देर में महंतजी ने सिर उठाकर अन्नपूर्णा देवी से पूछा, ''माई, इनका एक बड़ा बेटा है न?'' रमा देवी चौंकी, भई इन्हें कैसे पता चला? भई, वाकई यह पुरुष अंतर्यामी है!

परंतु अन्नपूर्णा देवी कुछ खास नहीं चौंकी। उन्होंने उत्तर दिया, ''जी हाँ। मैंने स्वयं ही पहले आपको यह बताया था कि रमा देवी का एक बड़ा बेटा है, जो युद्ध में मारा गया है। इस हादसे को अब पाँच-छह साल बीत चुके हैं।''

''लेकिन वह मारा नहीं गया है। मैं यही बता रहा था कि इनका बड़ा बेटा जीवित है और अच्छा-खासा हट्टा-कट्टा है। देखो-देखो, मेरे सामने प्रत्यक्ष बैठा

है, जैसे आप लोग इस समय बैठी हैं—वह मेरे संग बतिया भी रहा है।''

महंत के हर वाक्य के साथ रमा देवी के ही नहीं, अन्नपूर्णा देवी के बदन में भी आश्चर्य की बिजलियाँ सनसनाने लगीं। काँपते स्वर में रमा देवी ने कहा, ''आहा! मेरा बेटा! जीवित है! हाय भगवान्! आपके मुँह में घी-शक्कर।''

अन्नपूर्णा देवी ने विस्मय की लपेट से अपने आपको तनिक छुड़ाते हुए पूछा, ''पर महाराज, इसका क्या प्रमाण है कि वह इन्हींका पुत्र है? क्षमा करें, महाराज, परंतु मिथ्या आभास···''

''व्यर्थ तर्क-कुतर्क का झंझट नहीं चाहिए। फिर भी कान खोलकर सुनो, वह क्योंकर इन्हींका पुत्र है। उसके माथे पर घाव का एक गहरा निशान है। क्यों? है न?''

अन्नपूर्णा देवी इस मामले में कुछ भी नहीं जानती थीं, अत: उन्होंने रमा देवी की ओर देखा। रमा देवी तनिक उधेड़बुन में पड़ गईं, क्योंकि उनके पुत्र के माथे पर तो किसी भी घाव का निशान नहीं था। लेकिन अगर उसे मान लिया तो महंत झूठे सिद्ध होंगे तथा उनका अंतर्ज्ञान मिथ्या, पाखंड सिद्ध होते ही मृत पुत्र के पुनर्जीवित होने तथा खोई हुई बेटी के मिलने की सुखद संभावना भी घोर संदेह के चक्कर में लटकती रहेगी।

''भई, नहीं है तो साफ-साफ कह डालो, उलझो मत।'' महंत ने टोका।

''वैसे उसके माथे पर कोई घाव तो नहीं था···'' कहे या न कहे के पसोपेश में पड़ी रमा देवी के मुख से आनन-फानन निकल गया।

''ठीक-ठीक याद करो। फौज में भरती होने के पश्चात् तेरा बेटा युद्ध पर गया था न? ठीक है, वहीं पर उसे घाव हो गया था।''

''अरे हाँ, महाराज, अब याद आ गया। सोलह आने सच है यह बात। अपनी अंतिम चिट्ठी में उसने इसका जिक्र किया था कि उसके सिर में चोट लगी है। आपका अंतर्ज्ञान त्रिकाल सत्य है, महाराज!''

महंतजी को वह खबर इस तरह ज्ञात हो जो स्वयं रमा देवी को भी ज्ञात नहीं थी, न ही आज तक उनमें से किसीको ज्ञात थी, वह जानकारी इतनी सत्य सिद्ध हो और वह भी सहज क्रम से! अन्नपूर्णा देवी दंग रह गईं। अब उनका भी महंतजी के शब्दों पर भाविक श्रद्धा न होना उतना ही असंभव था जितना रमा देवी का। उस सर्वथा परस्थ तथा अपरिचित साधु ने इतनी जल्दी, फटाफट उनके पुत्र के हुलिये के इतने अचूक निशान एवं घरबार की जानकारी दी कि किसी महापाखंडी के लिए भी इसे नकारना कठिन होगा कि उनकी अंतर्दृष्टि उनके पुत्र को देख रही है।

रमा देवी के विस्मय का तो ठिकाना ही नहीं रहा। वह फटी-फटी आँखों से

देखती ही रह गईं। महंतजी का यह वाक्य कानों में आते ही कि 'आपका पुत्र जीवित है, सकुशल है' उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ जैसे किसीने कानों में अमृत उँडेला हो। हर्ष लहरियों से उनका दिल ऐसा उछला कि उनमें मालती के खो जाने की स्मृति भी पल भर के लिए डूब गई। जो माता अपनी खोई हुई बेटी को ढूँढ़ रही थी, उसने अब अपना इकलौता मृत पुत्र जीवित रूप में पा लिया!

"परंतु पते की बात तो अभी बाकी ही है···" महंतजी अब जल्दी-जल्दी कहने लगे, "अपने उस पुत्र का एक यह स्नेही देखो···वह तथा ···हाँ हाँ···देखा··· यह मालती आ गई। ठीक। आपका घर नागपुर के पास है न? हूँ···देखो तो सही, उस स्थान पर मालती उससे प्यार की पेंगें बढ़ा रही है। यही है वह सज्जन—जिसके साथ कल मालती चली गई। हाँ, हाँ, बिलकुल राजी-खुशी से जा रही है, देखो। यह सबकुछ मुझे दिखाई दे रहा है, इसीलिए यह सब उतना ही सच है जितना आप मुझे दिखाई दे रही हैं, इसीलिए यह यथार्थ है कि आप यहाँ हैं। देखो, अब वे चल पड़े, ट्रेन छूट गई। क्या अक्षर धुँधले से? लेकिन नागपुर चली गई है। होम-हीम-हूम-वषट्। नेत्रत्रयाय फट्।"

वह महंत, जो एकाग्रचित्त के अवधानवश परिशांत हो गया था, इस मंत्र के उच्चारण के साथ ही हलके से मृगछाला पर आँखें मूँदकर लेट गया। शिष्य ने सैकड़ों प्रश्न-शंका-जिज्ञासा आदि से अकुलाती हुई उन दो महिलाओं को इशारे से चुप रहने के लिए धमकाकर उस यंत्र को तोड़ दिया। उसके साथ ही न जाने कहाँ से एक आवाज गूँज उठी तथा घंटियों का गुच्छा खनखनाया गया। फिर उसकी ध्वनि धीमी होती गई। उस शिष्य ने जल्दी-जल्दी परात, चिरागदान, आईना आदि वस्तुओं को अपने-अपने स्थान पर रख दिया। फिर थोड़ी देर पंखा झुलाते हुए गुरुजी के पास बैठ गया। गुरुजी के तनिक हाथ ऊपर उठाकर संकेत करते ही उसने उन महिलाओं से गंभीर स्वर में आग्रह किया, "अब इससे अधिक कुछ भी नहीं कहा जाएगा—अब उनकी प्रेरणा उतर गई है। हाँ, चाहें तो बस इतना ही पूछिए कि अब आगे क्या किया जाए? बस उतना ही सुनना चाहिए जितना गुरुजी द्वारा योग निद्रा भंग होने से पहले बताया जाए। किसी प्रकार की अधिक चर्चा, ऊहापोह न करते हुए आज वापस लौटा जाए। कल का कल देखा जाएगा।"

रमा देवी का जी करता था, एक ही साँस में सैकड़ों सवाल पूछें। उनके मन में उस महंत द्वारा वर्णित मालती संबंधित वृत्त ने चिंताकुल विचारों का इतना कुछ संभ्रम उत्पन्न कर दिया था। लेकिन वे लाचार थीं। सौ सोनार की तो एक लुहार की जैसे एक ही उत्तर ने उनके सैकड़ों प्रश्नों को उसी स्थान पर पथरा दिया था। वह उत्तर था उस उग्र शिष्य की फटकार भरी वह अँगुली जो उन्हें चुप्पी साधने का

संकेत कर रही थी। अर्थात् रमा देवी ने अकुलाकर वही प्रश्न पूछा जो पूछने की उन्हें अनुज्ञा मिली थी, "अब हमें आगे क्या करना चाहिए जिससे संकट टल जाए? महाराज, कृपा करके…"

शिष्य ने 'हाँ! हाँ!' कहकर इशारे से फिर धमकाया। रमा देवी के वाक्य की लंबाई निश्चित परिमाण से बढ़ गई थी।

"हाँ! हाँ! आगे? अच्छा! इधर-उधर किसीसे भी मत बोलो! यदि तनिक भी 'चीं-चपड़' किया तो मालती बची-खुची लाज-हया त्यागकर बैरन बन जाएगी, बैरन। इधर किसीके भी सामने मालती के खो जाने के बारे में एक भी शब्द मुँह से मत निकालना। अभी इसी समय नागपुर जाओ। लड़की मैदान में मिलेगी। परंतु इधर जरा सा भी विलंब करोगी—एक रात बिताओगी तो पछताओगी—उसे तुम नहीं पाओगी। नागपुर से लड़की—बस्स—चल देगी—दूर-दूर-दूर। जाओ, जल्दी करो—मैदान में। देख-देख-देख। यह देखो मालती। आओऽ आओऽ आओ। बेटा आ जाओ, अपनी अम्मा के पास…"

महंतजी निश्चेष्ट लेट गए। शिष्य ने कहा, "माँजी, आपका संकट टल गया। अभी सुना आपने गुरुजी का अभिप्राय? साक्षात्कार का वह शब्द? उन शब्दों का पालन करेंगी तो लड़की वापस आ जाएगी—अपने पैरों से चलती हुई वापस लौटेगी। इस इलाके में यहाँ किसीसे भी कुछ न कहते हुए, चर्चा न करते हुए, आज ही यहाँ से चली जाओ। यहाँ से निकल पड़ो और नागपुर पहुँच जाओ, अन्यथा समाज में बदनामी होगी। यदि आप चाहती हैं कि मालती और अधिक बेहया बनकर दूर न चली जाए तो अब बिलकुल चीं-चपड़ न करते हुए नागपुर चली जाइए और उससे तीन-चार दिनों में भेंट कीजिए जब तक वह उधर मौजूद है। बस, अब आप विदा लीजिए। न-न-न। भई, यह क्या? फल, दक्षिणा? छीः-छीः माँजी, ये देवता किसी अन्य व्यक्ति का फूल भी स्वीकार नहीं करते। ये महंत एक पहुँचे हुए अलौकिक साधु हैं। वैसे तो लाखों जोगी, जोगड़े आप देखती हैं। परंतु, माताजी, यह तो साक्षात्कारी पुरुष हैं। अच्छा, चलिए। न, न, अब एक शब्द भी अधिक नहीं कहना। बाहर…"

उस शिष्य का वह अंतिम शब्द इतना आदेशात्मक था कि अगर एक पग भी बाहर की ओर नहीं उठाया तो लगता था, महाशय धक्के मारकर बाहर निकालेंगे। वे दोनों प्रणाम करके फल-दक्षिणा वापस लेकर चुपचाप उलटे कदम बाहर की ओर चल दीं। चुपचाप मंदिर से बाहर आ गईं। राह लगते ही रमा देवी कुछ कहने जा रही थीं कि अन्नपूर्णा देवी ने चेतावनी दी, "अंऽहं! रास्ते में नहीं! घर जाकर जो कहना है कहिए।"

वे प्रथमतः अन्नपूर्णा देवी के ही घर गईं। घर में कदम रखते ही उन्होंने पूछा, ''है कोई ऐसा आपका परिचित? आपके बेटे का कोई मित्र है जो मालती से इतना गाढ़ा मेल-जोल रखे? कहीं मालती किसीके मोहजाल में तो नहीं फँसी थी, जिसके लिए आपका विरोध था?''

बेचारी रमा देवी! सुबह से इतनी देर तक इतने चमत्कारपूर्ण आघातों से उनका मन इस तरह डाँवाँडोल हो गया था कि अब उनके दिमाग की विचार शक्ति ही अशक्त हो गई थी। फिर भी अंतिम प्रश्न से चौंककर उन्होंने कहा, ''नहीं जी! अपनी माला बिटिया को कभी इस तरह ऊटपटाँग, अनर्गल बातें करते मैंने सुना ही नहीं, तो उसके विरोध या अनुमति का प्रश्न ही कहाँ उत्पन्न होता है? हाँ, वैसे वह सैर-सपाटे के लिए अपनी सखियों के संग जाया करती थी। मंदिर में जाती, नाटक देखने भी कभी गई होगी, लेकिन इस प्रकार कोई पुरुष उससे परिचित नहीं था। अब मैं क्या कहूँ कि मेरे बेटे का कौन सा मित्र हो सकता है? भई, मेरे बेटे ने सारी दुनिया की सैर की है। परंतु हाय राम! मालती ऐसी कुलच्छनी निकली...!''

''न, न! आज नियति ने ईश्वर सदृश ही उपकार किए हैं आप पर कि पुराण की कथा इस युग में घटी? क्या आपके मृत पुत्र का पुनर्जन्म नहीं हुआ? फिर गुमशुदा बेटी से मिलने की भला चिंता क्यों? मैं कहती हूँ, अब आप सारे तर्क-कुतर्क छोड़ दीजिए। महंतजी के विगत अद्‌भुत अंतर्ज्ञान पर, जो सोलह आने सत्य निश्चित हो चुका है, विश्वास करके उसी राह जाइए जिसका उन्होंने आदेश दिया है।''

''न बाबा! आप चलेंगी तभी मैं नागपुर जाऊँगी।'' रमा देवी अपनी जिद पर अड़ गईं। अपने भरोसे वे एक पग भी आगे नहीं बढ़ा सकती थीं।

कीर्तन के समय मालती के खो जाने की खबर किसीको कानोकान न देते रमा देवी और अन्नपूर्णा देवी उसी दिन उस शहर से रवाना हो गईं।

□

प्रकरण–४

पुलिस की हिरासत में

रमा देवी अन्नपूर्णा देवी के साथ तुरंत नागपुर के लिए रवाना हो गईं। मालती के गुमशुदा होने के सिलसिले में उन्होंने कहीं भी एक शब्द तक मुँह से नहीं निकाला था, अत: पास-पड़ोस में किसीको इसकी भनक तक नहीं लगी थी, फिर भला अन्य लोगों तथा पुलिस को कैसे लग पाती?

रात के समय उसी दिन मथुरा निवासियों को योगानंद स्वामी का अंतिम बार दर्शन-लाभ होना था, अंतिम बार भजन-श्रवण का लाभ होनेवाला था, क्योंकि भजन समाप्ति के पश्चात् स्वामीजी का पड़ाव मथुरा से उठना निश्चित हो चुका था। जाहिर है, मंदिर के प्रांगण में भावुक भक्तों की रेलपेल, भीड़-भड़क्का हमेशा से भी अधिक हो गया था। अपने चार प्रमुख शिष्यों की चौकड़ी में योगानंद महाराज बीचोबीच खड़े रहकर वीणा पर भजन गाने लगे। रंगत आने लगी, अच्छा-खासा समाँ बँध गया। थोड़ी देर के पश्चात् स्वामीजी की आज्ञानुसार हजारों भक्तगण भी खड़े होकर एकमुख से जब नामघोष करने लगे, बड़ी-बड़ी पखावज, मृदंग, मँजीरा, सारंगियाँ सहस्राधिक तालिकाएँ एक साथ झंकारती हुईं उस शतकंठ निनादी नामघोष का साथ देने लगीं और भक्ति के आवेश में महंत हाथ ऊपर उठाकर लय को द्रुततर करने के लिए सतत संकेत करने लगे तथा उस द्रुततर लय पर नामघोष का घमासान उड़ाने लगे, तब उस ध्वनि सिंधु की लहरों के साथ हृदय थर्राने लगा, हर किसीकी सुधबुध बिसरने लगी। कई लोग तो भक्ति के आनंद में तल्लीन होकर नाचने लगे, कई लोगों की आँखों से प्रेमाश्रु बहने लगे। नामघोष से सारा वातावरण गूँज उठा।

लेकिन अंत में जब लय साधकर महंत ने दोनों हाथ ऊपर उठाए और सूचना दी कि 'शांत हो जाइए' तब वह विशाल गोष्ठी उसी प्रकार पूर्णतया नि:शब्द हो गई, जैसे किसी बड़े हारमोनियम के संगीत के जोश में भाथी फूटने से वह अचानक मौन

हो जाता है। कहीं भी चीं-चपड़ नहीं था। हर कोई उत्सुकता से टुकुर-टुकुर देखने लगा कि उस सत्वशील भक्त के मुख से अब पुनः कौन सा रसपूर्ण, भावभीना भजन-पद निकलता है।

भोर की वेला में पक्षी के नीड़ से जिस प्रकार पंछी का पहला आलाप गहन निद्रा में पड़े व्यक्ति के कानों में मिठास घोलता है, उसी प्रकार उस नीरव गोष्ठी की शांति में से कुछ देर बाद फिर से सारंगी का कोमल मधुर स्वर उभरने लगा। वह शिष्य, जो स्वामीजी के भजन में साथ दे रहा था, उनको प्रिय मीराबाई का पद सारंगी पर अलापने लगा—

बता दे सखि कौन गली गए श्याम ?॥
कौन गली गए श्याम ?॥ ध्रु.॥
गोकुल ढूँढ़ा। वृंदावन ढूँढ़ा।
ढूँढ़ आयो ब्रजधाम॥ बता दे सखि॥ १॥

वह भक्त 'कौन गली गए श्याम ?' जैसा रसभीना चरण इतनी आर्त अकुलाहट भरे स्वर में गाने लगा, हर शब्द को अदल-बदलकर ऊँचाई पर उठाते-उठाते मधुर, भावभीने आलाप के साथ मनुहार करने लगा कि हर किसीके हृदय में अपने-अपने प्रियतम की मूर्ति दिखने लगी। हर किसीको यह आभास होने लगा कि वही अपने प्रिय को तलाशता हुआ गली-गली घूम रहा है, डोलता फिर रहा है। 'कौन गली गए श्याम ?' 'सखी री, बता दो न, किस गली में मेरा साजन छिपा हुआ है ? मैंने उसे गोकुल में ढूँढ़ा, वृंदावन का चप्पा-चप्पा छान मारा, ब्रज में भी देखा, पर मेरे प्रिय का कुछ अता-पता नहीं है। कहो सखी, वह मनमोहन है कहाँ ? कौन गली गए श्याम ?'

संसार-प्रवण युवा-युवतियों के हृदय में अपने ऐहिक प्रियतम की स्मृति जाग उठी, एक मधुर अकुलाहट थरथराने लगी और पूछने लगी, 'बता दो न, कौन गली गए श्याम ?'

अध्यात्म-प्रवण साधु-संतों, भक्तों के हृदयों में अपने पिया मिलन की आस अकुलाने लगी। यह जो जीव जन्म-जन्मों के गोकुल-वृंदावन में जिस किसीको तलाशता हुआ, जिस किसीकी आस लेकर, रंग-रूप-रस-स्पर्श के फूलों से लदे-फदे कुंज-कुंज में से उस आनंदकंद देवकी नंदन को खोजता हुआ लगातार भाग रहा है—उसके मिलन की उत्सुकता आर्त स्वर में यही पूछने लगी, 'कौन गली गए श्याम ? बता न सखी ! कहाँ है वह ईश्वर जिसके आकर्षणवश यह जीव इस तरह छटपटाता हुआ युगों से लगातार भागता जा रहा है ? जिसकी बंसी के मधुर नाद से

मनुष्य के मन में जिजीविषा उत्पन्न होती है, वह बंसीधर, बंसीवट का नटनागर कहाँ है ? कौन गली गए श्याम ?'

उस रसभीने गीत के चलते बीच में ही उस सात्विक मधुर, सुरीले संगीत में खोई गोष्ठी के कानों को अचानक एक के पीछे एक आनेवाले दस-बारह मोटरों के भोंपुओं की कर्कश फों-फों सुनाई दी, जैसे नरम मखमली फूलों की सेज पर सोते हुए अचानक कोई गहरा विषैला डंक मारे। मंदिर के प्रांगण में, जहाँ भजन-कीर्तन की गोष्ठी जमती थी, उसकी तीनों दिशाओं के द्वारों पर उन मोटरों में से दो-दो मोटरकारें फों-फों फुँफकारती हुई मुड़कर रुक गईं। योगानंद स्वामी की चर्चा मथुरा में दूर-दूर तक फैली हुई थी, अतः उनका भजन सुनने के लिए अनेक धनी-मानी लोग मोटरें लेकर हमेशा आया करते थे। हो सकता है ये कारें उनमें से ही किसीकी हों, फिर भी इन मोटरवालों को जमी-जमाई भजन-गोष्ठी में रस भंग कर इस तरह खीर में नोन डालने की धृष्टता करने में रत्ती भर भी संकोच नहीं होता ? लोग-बाग तनिक झल्लाते हुए आपस में खुसुर-फुसुर करने लगे। परंतु महंत योगानंदजी उसी तल्लीनता से भजन गाते रहे, जैसे पहले गा रहे थे।

इतने में एक हट्टा-कट्टा, उद्दंड, उग्र, लंबा-तड़ंगा आदमी सामनेवाले दरवाजे से अंदर घुसकर धृष्टतापूर्वक रास्ता बनाते हुए सीधा मंच पर उस तरफ जाने लगा जहाँ महंतजी अपनी भजन-मंडली के साथ विराजमान थे। आसपास के लोग चिल्ला-चिल्लाकर उससे कहने लगे—'नीचे बैठो', 'अरे सुनो, अक्लमंद की दुम', 'अजी देखते क्या हो, उसे नीचे खींचो', 'हाथ पकड़कर नीचे बैठाओ।' परंतु उनके चीखने-चिल्लाने पर कान न देते हुए, उनके व्यंग्य-बाणों की उपेक्षा कर वह सीधे मंच के निकट चला गया और बिना किसीसे पूछे मंच के ऊपर चढ़ गया। जो भक्त भजन के रंग में मनःपूर्वक तन्मय हो जाता है, उसमें किसी दैवी आवेश का संचार होता है अथवा कोई नीम पागल व्यक्ति को विशाल सभा-गोष्ठियों के केवल जनसमुद्र के दृश्य मात्र से ही उन्माद चढ़ जाता है। परंतु यह व्यक्ति तो नीम पागल भी नहीं दिखाई देता, न ही भोला-भाला। सलीकेदार वेशभूषा, शानदार, समझदार भद्र मुद्रा देखकर मंच पर चढ़ते ही महंत की चौकड़ी में से एक शिष्य ने विनम्रतापूर्वक पूछा, "आपको क्या चाहिए महाराज ? इस प्रकार सीधे मंच पर चढ़ना सभा-शिष्टता नहीं है, न ही यह उचित है।"

परंतु उस सज्जन के कानों पर जूँ तक नहीं रेंगी। उसे अनसुना करके वह सीधा महंत के निकट आया। उसने उससे कहा, "बाहर आपको कोई महान् व्यक्ति मिलने के लिए बुला रहा है—चलिए।"

महंत ने स्वयं उस व्यक्ति को कोई उत्तर नहीं दिया, उन्होंने अपने शिष्य की ओर संकेत किया। शिष्य ने कहा, ''वह महान् व्यक्ति स्वयं भीतर आ जाए। महंत केवल ईश्वर के सम्मुख जाते हैं, उसकी अगवानी करते हैं, न कि मनुष्य की।''

उस शिष्य की उपेक्षा करके उस व्यक्ति ने योगानंद को धमकाते हुए कहा, ''आपको बाहर आना ही होगा।''

उस ठोस, सधे स्वर से महंत भी चौंक से गए।

''जब तक भजन समाप्त नहीं होता, हम नहीं आ सकते।'' किसी संदेह के कारण अटक-अटककर उन्होंने उत्तर दिया।

''आप स्वयं नहीं चलेंगे, तो मैं आपको ले चलूँगा। कहिए, अब आप चल रहे हैं या नहीं?''

''यह धृष्टता आपको शोभा नहीं देती।'' शिष्य ने तमककर उस व्यक्ति को फटकारा, ''भई, कौन है वह सज्जन? तनिक नाम तो बताइए।''

''पुलिस सुपरिंटेंडेंट साहब!''

इन शब्दों के साथ ही योगानंद स्वामी की प्रशांत मुद्रा ही नहीं, वह नख-शिख भक्तिशील आविर्भाव भी पलट गया और उसके स्थान पर कोई दूसरा ही चालाक, काइयाँ, मक्कार, शीघ्रकोपी, कलहप्रिय पुरुष दिखाई देने लगा। उस व्यक्ति ने, जो उन्हें बुलाने आया हुआ था, पुलिस सुपरिंटेंडेंट के नाम का पूरा उच्चारण भी नहीं किया था कि इतने में योगानंद स्वामी ने उसकी नाक पर मजबूत वज्रमुष्टि सदृश घूँसा जमाया और बड़ी लंबी छलाँग लगाई। अच्छा-खासा हट्टा-कट्टा होते हुए भी उस व्यक्ति को अपनी नाक पर जमे हुए घूँसे के कारण दिन में तारे नजर आने लगे थे। उसने अपने आपको सँभालकर योगानंद के पीछे छलाँग मारी। वह छलाँग योगानंद की छलाँग के पीछे इतनी दूर भी नहीं थी। वे चार शिष्य भी योगानंद की छलाँग के पीछे-पीछे अपने तेज धारवाले चिमटे बाहर निकालकर मंच से कूद पड़े थे। इतनी घिचपिच, भीड़-भड़क्के में इन साधुओं के इस तरह धड़ाधड़ कूदते ही उधर एक भगदड़ ही मच गई। चीखते-चिल्लाते उधर के लोग उठ खड़े हुए। फिर ठेला-ठेली शुरू हो गई।

परंतु यह सारा कांड इतने आनन-फानन में हो रहा था कि जब तक लोगों ने छलाँगें नहीं लगाईं और वहाँ से लोगों की भीड़ हो-हल्ला के साथ उठ नहीं खड़ी हो गई, तब तक अन्य बाजुओं के लोगों को इस बात की इतनी अधिक खबर नहीं थी। उन लोगों को केवल इतना ही देखने का अवसर मिला कि धक्कम-धक्का शुरू हुआ है और महंत कूदकर भागे जा रहे हैं। उन लोगों को इस बात का अहसास रंचमात्र भी नहीं था कि यह सब क्या हो रहा है। बस एक ही प्रश्न हर कोई जोर से

पूछ रहा था, 'भई, हुआ क्या है?' इस प्रश्न पर मन में झाँकने के लिए भी समय नहीं मिला कि यह सब माजरा क्या है? यह सब क्यों हो रहा है? धड़ाधड़ छलाँग लगाते हुए वे साधु लोग भीड़ में घुस गए और धैर्य के साथ भीड़ को चीरते, रास्ता काटते हुए दृष्टि से ओझल हो गए। सैकड़ों लोगों ने उस आकस्मिक हंगामे के साथ ठेला-ठेली करके आगे घुसकर उस प्रांगण में एक ऊधम मचाया था, यह सारा गुलगपाड़ा उनके लिए अनायास अनुकूल हो गया।

किसीने कहा, "महंतजी में महावीरजी का संचार हो गया। हनुमानजी का संचार हो गया। इसीलिए वे उड़ान भरते हुए प्रभु रामचंद्रजी के मंदिर की ओर भाग रहे हैं।" कोई कहने लगा, "किसी पागल ने महंतजी को परेशान किया, अतः झुँझलाहट में उठकर वे चले गए।" उस प्रशांत भक्तिरस की शांति में निमग्न कुछ लोगों के अचानक हुए शोरगुल से पल भर के लिए होश उड़ गए। इस प्रकार आकस्मिक दृश्य परिवर्तन होते ही उन लोगों को यह अहसास हो गया कि उन्हें उस प्रशांत प्रांगण से उठाकर, जहाँ उस स्वामी के सुरीले भजन जारी थे, सहसा किसी अन्य स्थल पर अन्य हंगामे में फेंक दिया गया है।

सामनेवाले जिस द्वार से वह व्यक्ति, जो पुलिस सुपरिंटेंडेंट का संदेश लाया था, घुसा था, उस द्वार की ओर से उन लोगों ने जान-बूझकर छलाँग नहीं लगाई थी; और दूसरे द्वार की ओर कूदकर भीड़-भाड़ में शामिल होने का प्रयास किया था। उस द्वार की ओर प्रायः ऐसे ही लोग बैठाए जाते थे जो प्रतिदिन भजन के लिए आया करते, बहुत भावुक दिखाई देते तथा सबसे पहले आकर आस्थापूर्वक अपना-अपना स्थान ले लेते। महंत ने तुरंत तय किया था कि उस द्वार से ही वे सही-सलामत बाहर निकल सकते हैं, जिधर यह श्रद्धालु भजन-प्रेमी समाज बैठा हुआ था। सामनेवाले जिस द्वार की ओर से पुलिस सुपरिंटेंडेंट का संदेश आया, यदि वे उसी तरफ प्रस्थित हों तो उधर पुलिस की उपस्थिति की आशंका अधिक मात्रा में हो सकती है, इसीलिए वह चतुर महंत और उसके शिष्य सामनेवाला दरवाजा छोड़कर उस द्वार की ओर झपट पड़े जहाँ भावुक लोग भरे हुए थे। उनके पीछे-पीछे उस पुलिस सुपरिंटेंडेंट के संदेशवाहक के हाथों से खिसककर वे साधु भी वहाँ पहुँच गए, जहाँ उन भावुक, श्रद्धालु लोगों को बैठाया गया था। तब एक और झपट्टा लगाया कि दरवाजे के पास, और फिर तुरंत द्वार के बाहर। मन में यही ठानकर वे पाँच साधु उस द्वार से टकरा गए। फिर वे जल्दी-जल्दी अपने नित्य नियमित रूप में आनेवाले उन श्रद्धालु श्रोताओं से रास्ता देने के लिए कहने लगे जो वहाँ ठसाठस भरे हुए थे।

इतने में सहसा ही उन श्रद्धालु भक्तों की द्वार के सामने जो भीड़ जम गई थी,

वही भीड़ एक पंक्ति में कंधे-से-कंधा मिलाते हुए उन पाँचों साधुओं को बीचोबीच में घेरकर खड़ी हो गई। उनमें हरेक ने अपना-अपना पिस्तौल निकालकर उन साधुओं पर तान दिया। फिर उनके नेता ने योगानंद को आज्ञा दी, ''ठहरो! एक कदम भी आगे बढ़ाया तो जान से हाथ धोना पड़ेगा।''

हाय-हाय! बेचारे सत्वशील सत्पुरुषों की जान लेने पर वही श्रोतावृंद तुले थे जो वैष्णवी गंध, वैष्णवी मुद्रा, माला, गेरुए वस्त्र आदि धारण करके आया करते थे, भजन में सुधबुध बिसराकर तन्मय होते और नियमित रूप से शुरू से आकर चेहरों पर मासूमियत पोतकर बैठते थे, सीधे-सादे असाधारण लोगों की तरह दिखाई देते थे। वे उन्हींकी जान के ग्राहक बन गए जिन्हें तारणहार भगवद्भक्त समझकर उनके चरण छुआ करते। सभी लोगों को जैसे काठ मार गया। वे आपस में खुसुर-फुसुर करने लगे। कुछ लोगों के मन में सहानुकंपा जागी और वे यह भी सोचने पर उतारु हो गए कि इन धर्मपरायण भक्तों की मुक्ति के लिए दंगा-फसाद खड़ा करें।

परंतु उस महंत को अब पूरा-पूरा विश्वास हो गया कि इन नानाविध ढंगों तथा ढोंगों से, छद्‌म वेश में, गुप्तचर विभाग के ये तीस-चालीस पुलिस के लोग ही प्रतिदिन तीनों द्वारों के निकट भजन के बहाने बैठते थे। यह सच है, उनकी कुटिल साजिश से हम अनभिज्ञ थे। हम अब उनके चंगुल में पूरे-पूरे फँस गए हैं। फिर भी अंतिम उपाय के रूप में उन्होंने अत्यंत कर्कश और ऊँचे स्वर में प्रक्षुब्ध जनता को ललकारा, ''क्या यहाँ पर एक भी माई का लाल नहीं जिसे अपने धर्म का अभिमान है? किसीने भी अपनी माँ का दूध नहीं पिया है? हे भगवन्, अब तुम ही अपने इस अनन्य भक्त के लिए दौड़े-दौड़े चले आओ।''

इस पुकार के साथ ही समाज के कई सच्चे सज्जन आपे से बाहर होने लगे। उन्हें महंत के संबंध में जो कुछ प्रत्यक्ष जानकारी थी, वह उनके मन में उनके प्रति अटल श्रद्धा स्थापित करने के लिए पर्याप्त थी। हो सकता है, इस निर्मोही, अपरिग्रही, स्वधर्मप्रचारक भक्त पर मिशनरी परधर्मियों ने ही कुछ तोहमत लगाई हो! इसी भावना के साथ कुछ साहसी स्वधर्माभिमानी लोग आग-बबूला हो गए, पुलिसवालों पर दो-तीन पत्थर भी फेंके गए, गाली-गलौज की तो अखंड बौछार होने लगी।

इतने में मुख्य द्वार से लाठीबंद पुलिस के दलबल सहित स्वयं पुलिस सुपरिंटेंडेंट भीतर आ गए, मंच पर चढ़कर उन्होंने बुलंद आवाज में सभी लोगों को संबोधित करके आदेश दिया, ''जानते हैं, योगानंद नामधारी इस व्यक्ति ने आज तक इधर जो पाखंड, ढकोसला रचाया था उससे आप जैसे सुशील नागरिकों की यह धारणा बनना स्वाभाविक ही है कि ये महाशय कोई पहुँचे हुए भगवद्भक्त हैं। परंतु इस व्यक्ति के संबंध में हमें जो जानकारी है, उसे सुनते ही आप सब

जान जाएँगे कि आपकी सहानुभूति भले ही स्वाभाविक हो पर यह बिलकुल ही अनुचित है। इस योगानंद का—इस रखेड़िया साधु का, जो स्वामी का स्वाँग रचाकर डोल रहा है—असली नाम सुनेंगे तो आपके विस्मय का ठिकाना नहीं रहेगा, दंग रह जाएँगे आप। इस पांखडी का—इस योगानंद स्वामी का असली नाम रफीउद्दीन अहमद है। यह पंजाबी मुसलमान है। इसपर पहले दो अत्यंत क्रूरतापूर्ण डाकेजनी के आरोप सिद्ध हो चुके हैं और पंजाब में सात वर्षों की काले पानी की सजा हो चुकी है। उस दंड के अनुसार इसे काले पानी में भेजा गया था, परंतु यह महाशय वहाँ से चार साल पहले रफू-चक्कर हो गए। पिछले दो सालों से इसने अपने इन चार शिष्यों की तरह ही अनेक दुष्ट प्रवृत्ति के लोगों को इकट्ठा करके फिर से चोरी, डाकेजनी, अपहरण आदि भयंकर कांड करना शुरू किया है। पिछले वर्ष पुलिस ने इसके गिरोह को जंगल में घेर लिया था, परंतु उस गिरोह ने अचानक पुलिस पर गोलियाँ चलाईं और पुलिस अधिकारी को घायल करके उसीके घोड़े पर सवार होकर यह धृष्ट, दुष्ट नौ-दो ग्यारह हो गया। उसके बाद यह लापता ही था। परंतु जब हमें संदेह हो गया कि यह वही है, तब से इसके मथुरा आने के दिन से ही गुप्तचर पुलिस विभिन्न रूपों में हर तरह इसपर कड़ी नजर रखे हुए थी, ताकि हमारी खोज पूरी होते ही वॉरंट निकलते ही इसके जैसे धृष्ट अपराधी को साथियों सहित अचानक गिरफ्तार कर सकें। इलाहाबाद से निकला हुआ यह वॉरंट देखिए जो सभी सबूत मिलने के बाद, इसीके विश्वस्त साथी के समाचार के अनुसार निकाला गया है।

"आज शाम यह हमारे हाथों में आ गया। इस गिरोह के इस इरादे का पता चलने के पश्चात् कि आज भजन समाप्ति के बाद इनका यहाँ से खिसकने का इरादा है, हमने यह तय किया कि भजन के बीच में ही इन्हें गिरफ्तार किया जाए। हमारा पहले से ही यह अनुमान था कि इक्के-दुक्के आदमी की ये बदमाश रत्ती भर भी परवाह नहीं करेंगे, अतः हमें इनपर इस तरह हथियारबंद छापा मारना पड़ा। हमने इतना विस्तृत स्पष्टीकरण इसलिए दिया कि आपमें से कुछ लोग इस विपरीत धारणा से कि एक साधु को इतनी यातनाएँ दी जा रही हैं—कुछ अड़ंगा न लगाएँ, उपद्रव या धींगामुश्ती न करें। अब दस मिनट के अंदर-अंदर आप सभी को यह मैदान खाली करना होगा। उसी तरह कल सुबह तक सड़कों पर किसी भी प्रकार का भीड़-भड़क्का नहीं होना चाहिए, अन्यथा पुलिस को लाठी चार्ज से भीड़ हटानी पड़ेगी। वॉरंट के अनुसार हमें अपना कर्तव्य निभाना होगा। उसमें से तथ्यातथ्य चुनने का काम न्यायालय का है। हवलदार, दस मिनट के अंदर इन पाँचों अपराधियों को बेड़ियाँ पहना जेल रवाना कर दो और यह मैदान भी खाली करवाओ।"

वही भीड़ एक पंक्ति में कंधे-से-कंधा मिलाते हुए उन पाँचों साधुओं को बीचोबीच में घेरकर खड़ी हो गई। उनमें हरेक ने अपना-अपना पिस्तौल निकालकर उन साधुओं पर तान दिया। फिर उनके नेता ने योगानंद को आज्ञा दी, ''ठहरो! एक कदम भी आगे बढ़ाया तो जान से हाथ धोना पड़ेगा।''

हाय-हाय! बेचारे सत्वशील सत्पुरुषों की जान लेने पर वही श्रोतावृंद तुले थे जो वैष्णवी गंध, वैष्णवी मुद्रा, माला, गेरुए वस्त्र आदि धारण करके आया करते थे, भजन में सुधबुध बिसराकर तन्मय होते और नियमित रूप से शुरू से आकर चेहरों पर मासूमियत पोतकर बैठते थे, सीधे-सादे असाधारण लोगों की तरह दिखाई देते थे। वे उन्हींकी जान के ग्राहक बन गए जिन्हें तारणहार भगवद्भक्त समझकर उनके चरण छुआ करते। सभी लोगों को जैसे काठ मार गया। वे आपस में खुसुर-फुसुर करने लगे। कुछ लोगों के मन में सहानुकंपा जागी और वे यह भी सोचने पर उतारु हो गए कि इन धर्मपरायण भक्तों की मुक्ति के लिए दंगा-फसाद खड़ा करें।

परंतु उस महंत को अब पूरा-पूरा विश्वास हो गया कि इन नानाविध ढंगों तथा ढोंगों से, छद्म वेश में, गुप्तचर विभाग के ये तीस-चालीस पुलिस के लोग ही प्रतिदिन तीनों द्वारों के निकट भजन के बहाने बैठते थे। यह सच है, उनकी कुटिल साजिश से हम अनभिज्ञ थे। हम अब उनके चंगुल में पूरे-पूरे फँस गए हैं। फिर भी अंतिम उपाय के रूप में उन्होंने अत्यंत कर्कश और ऊँचे स्वर में प्रक्षुब्ध जनता को ललकारा, ''क्या यहाँ पर एक भी माई का लाल नहीं जिसे अपने धर्म का अभिमान है? किसीने भी अपनी माँ का दूध नहीं पिया है? हे भगवन्, अब तुम ही अपने इस अनन्य भक्त के लिए दौड़े-दौड़े चले आओ।''

इस पुकार के साथ ही समाज के कई सच्चे सज्जन आपे से बाहर होने लगे। उन्हें महंत के संबंध में जो कुछ प्रत्यक्ष जानकारी थी, वह उनके मन में उनके प्रति अटल श्रद्धा स्थापित करने के लिए पर्याप्त थी। हो सकता है, इस निर्मोही, अपरिग्रही, स्वधर्मप्रचारक भक्त पर मिशनरी परधर्मियों ने ही कुछ तोहमत लगाई हो! इसी भावना के साथ कुछ साहसी स्वधर्माभिमानी लोग आग-बबूला हो गए, पुलिसवालों पर दो-तीन पत्थर भी फेंके गए, गाली-गलौज की तो अखंड बौछार होने लगी।

इतने में मुख्य द्वार से लाठीबंद पुलिस के दलबल सहित स्वयं पुलिस सुपरिंटेंडेंट भीतर आ गए, मंच पर चढ़कर उन्होंने बुलंद आवाज में सभी लोगों को संबोधित करके आदेश दिया, ''जानते हैं, योगानंद नामधारी इस व्यक्ति ने आज तक इधर जो पाखंड, ढकोसला रचाया था उससे आप जैसे सुशील नागरिकों की यह धारणा बनना स्वाभाविक ही है कि ये महाशय कोई पहुँचे हुए भगवद्भक्त हैं। परंतु इस व्यक्ति के संबंध में हमें जो जानकारी है, उसे सुनते ही आप सब

जान जाएँगे कि आपकी सहानुभूति भले ही स्वाभाविक हो पर यह बिलकुल ही अनुचित है। इस योगानंद का—इस रखेड़िया साधु का, जो स्वामी का स्वाँग रचाकर डोल रहा है—असली नाम सुनेंगे तो आपके विस्मय का ठिकाना नहीं रहेगा, दंग रह जाएँगे आप। इस पांखडी का—इस योगानंद स्वामी का असली नाम रफीउद्दीन अहमद है। यह पंजाबी मुसलमान है। इसपर पहले दो अत्यंत क्रूरतापूर्ण डाकेजनी के आरोप सिद्ध हो चुके हैं और पंजाब में सात वर्षों की काले पानी की सजा हो चुकी है। उस दंड के अनुसार इसे काले पानी में भेजा गया था, परंतु यह महाशय वहाँ से चार साल पहले रफू-चक्कर हो गए। पिछले दो सालों से इसने अपने इन चार शिष्यों की तरह ही अनेक दुष्ट प्रवृत्ति के लोगों को इकट्ठा करके फिर से चोरी, डाकेजनी, अपहरण आदि भयंकर कांड करना शुरू किया है। पिछले वर्ष पुलिस ने इसके गिरोह को जंगल में घेर लिया था, परंतु उस गिरोह ने अचानक पुलिस पर गोलियाँ चलाईं और पुलिस अधिकारी को घायल करके उसीके घोड़े पर सवार होकर यह धृष्ट, दुष्ट नौ-दो ग्यारह हो गया। उसके बाद यह लापता ही था। परंतु जब हमें संदेह हो गया कि यह वही है, तब से इसके मथुरा आने के दिन से ही गुप्तचर पुलिस विभिन्न रूपों में हर तरह इसपर कड़ी नजर रखे हुए थी, ताकि हमारी खोज पूरी होते ही वॉरंट निकलते ही इसके जैसे धृष्ट अपराधी को साथियों सहित अचानक गिरफ्तार कर सकें। इलाहाबाद से निकला हुआ यह वॉरंट देखिए जो सभी सबूत मिलने के बाद, इसीके विश्वस्त साथी के समाचार के अनुसार निकाला गया है।

"आज शाम यह हमारे हाथों में आ गया। इस गिरोह के इस इरादे का पता चलने के पश्चात् कि आज भजन समाप्ति के बाद इनका यहाँ से खिसकने का इरादा है, हमने यह तय किया कि भजन के बीच में ही इन्हें गिरफ्तार किया जाए। हमारा पहले से ही यह अनुमान था कि इक्के-दुक्के आदमी की ये बदमाश रत्ती भर भी परवाह नहीं करेंगे, अतः हमें इनपर इस तरह हथियारबंद छापा मारना पड़ा। हमने इतना विस्तृत स्पष्टीकरण इसलिए दिया कि आपमें से कुछ लोग इस विपरीत धारणा से कि एक साधु को इतनी यातनाएँ दी जा रही हैं—कुछ अड़ंगा न लगाएँ, उपद्रव या धींगामुश्ती न करें। अब दस मिनट के अंदर-अंदर आप सभी को यह मैदान खाली करना होगा। उसी तरह कल सुबह तक सड़कों पर किसी भी प्रकार का भीड़-भड़क्का नहीं होना चाहिए, अन्यथा पुलिस को लाठी चार्ज से भीड़ हटानी पड़ेगी। वॉरंट के अनुसार हमें अपना कर्तव्य निभाना होगा। उसमें से तथ्यातथ्य चुनने का काम न्यायालय का है। हवलदार, दस मिनट के अंदर इन पाँचों अपराधियों को बेड़ियाँ पहना जेल रवाना कर दो और यह मैदान भी खाली करवाओ।"

दस मिनट के अंदर उन पाँचों साधुओं के हाथ-पाँवों में बेड़ियाँ ठुकवाकर उन्हें जेल रवाना किया गया और वह जमावड़ा अपने आप छँट जाने से उस मैदान में सन्नाटा छा गया।

परंतु हिरासत में लिया हुआ वह गोसाईं वास्तव में था कौन?

स्वामी योगानंद या रफीउद्दीन अहमद?—और मालती? उसका क्या हुआ?

□

प्रकरण–५

इलाहाबाद का कारागृह

इलाहाबाद की बंदीशाला के प्रमुख जमादार को कड़ा आदेश दिया गया था कि 'आज छँटे हुए बदमाश और डाकू रफीउद्दीन को, जो काले पानी से भागकर आया है, उसके साथियों के साथ इस जेल में लाया जाएगा। अत: किसी भी बंदी के कानों में पहले से इसकी भनक तक नहीं पड़नी चाहिए। उसका पक्का बंदोबस्त रखा जाए। इसमें जरा सी भी ढील या लापरवाही बरती तो हवलदार, तुम्हारे पैरों में बेड़ियाँ ठोंकी जाएँगी, याद रखना।'

बंदीपाल साहब ने स्पष्ट चेतावनी दी।

बंदीपाल के उस मुसलिम ज़मादार ने, जो तनकर खड़ा था, अंग्रेजी तरीके से फौजी 'सैल्यूट' करते हुए कहा, ''जी हुजूर! वह लाख छँटा हुआ डाकू क्यों न हो, पर मैंने तो ऐसे छप्पन बदमाशों को इसी जेल में छठी का दूध याद दिलाकर दाँतों में तिनका दबाने के लिए बाध्य किया है। वह भले ही काले पानी से उड़न-छू होकर आया हो परंतु उससे कहना कि यह लाल पानी है, लाल। इस डंडे की एक फटकार से लहू उगलवाऊँगा, लहू। कमर ही तोड़ दूँगा साले की।'' जमादार ने अपनी कमर का लटकता डंडा हाथ में पकड़कर हवा में ही एक धौल जमाया। बंदीपाल ने उसे टोका, ''हाँ! हाँ! मारपीट बिलकुल नहीं करना। भई, ये गुंडे जान हथेली पर लिये हुए घूमते हैं। उन्हें पुचकारकर यदि अपना उल्लू सीधा कर लो तभी तुम्हारी कुशलता मानूँगा। तुम लोग एकदम मारपीट पर उतर जाते हो, और निपटाना पड़ता है हमें।''

''अच्छा सरकार! यह लटका लिया डंडा अपनी कमर में और अपनी लचीली जीभ निकाल ली बाहर। यह डंडे से भी अधिक कुशल, करामाती है, हुजूर! इस डंडे से आदमी सिर्फ घायल होता है पर इस जीभ से तो वह जान से ही

हाथ धो बैठता है। तलवार से गरदन काटकर जान ली जा सकती है, पर खून टपकता है। जीभ से गरदन ज्यों-की-त्यों रखकर जान ली जा सकती है, प्रमाण के लिए उसपर खून की एक भी बूँद नहीं मिलती। आम के आम, गुठलियों के दाम। इसीलिए तो तलवार से की गई हत्या पकड़ी जाती है, पर जो जीभ द्वारा प्राण ले सकता है, उसे तो सौ-सौ हत्याओं की छूट…''

''चुप! हो गई बकबक शुरू। जाओ, यहाँ से दफा हो जाओ। तुम्हारे डंडे की तरह तुम्हारी कैंची जैसी कतर-कतर करती जबान सँभालते-सँभालते भी मेरे कन्ने ढीले पड़ जाते हैं।''

''अच्छा सरकार! देखिए, यह जीभ तालू में चिपका ली, जैसे डंडा कमर में लटकाया था।'' फिर से एक सलाम बजाकर जमादार बाहर चला गया।

''ऐ जमादार, अंदर आओ, हमारे जूते किधर हैं? महामूर्ख, भूल गए तुम? जाओ, लेकर आओ।''

जमादार ने इस संतोष के साथ बंदीपाल के मुँह से निकली वह गाली सुनते ही लज्जा से जीभ बाहर निकाली, जैसे वह गाली उसके भुलक्कड़ स्वभाव का प्रशंसासूचक एक अंग्रेजी शब्द हो। जीभ बाहर दिखाकर और तुरंत ही अपने ही अभिनय से लज्जित होकर मुँह पर हाथ रखते हुए मुसकराया और तुरंत खिसियाना सा होते हुए बाहर से जूते लेकर आ गया। अपने मुँह पोंछने से लेकर नाक साफ करने तक हर काम में आनेवाले रूमाल से जूते झटककर चुपके से बंदीपाल के सामने रख दिए और रूमाल साफ करने के लिए वह उसे झटकने लगा। तभी मुँह में ठुँसी सिगरेट निकालकर बंदीपाल ने कहा, ''किसलिए रूमाल झटकते हो, भाई? मेरे जूतों से तुम्हारा रूमाल मैला नहीं हुआ, बल्कि उस गंदे रूमाल से मेरे जूते ही मैले हो गए।''

''सच बात है, हुजूर! आपके जूते ही मेरे अन्नदाता हैं, माई-बाप! आपके जूतों की सेवा आज बारह सालों से कर रहा हूँ जी, इसीलिए तो आज एक मामूली सिपाही से जमादार बन गया है यह बंदा।''

इस भय के मारे कि कहीं इस कथक्कड़ की चपड़-चपड़ फिर से शुरू न हो जाए और बकने के लिए उसे कोई नया विषय न मिले, बंदीपाल साहब ने निकट बैठे हुए क्लर्क से, जो टाइप कर रहा था, कहा, ''अच्छा दादा, तनिक अपने कागज तो लाना। कहो कि किसपर हस्ताक्षर चाहिए आपको?''

जमादार को जाते हुए देखते ही उस नीम-गोरे जेलर ने उस क्लर्क की ओर देखकर, लेकिन कुछ मन-ही-मन कहा, 'कैसी चाशनी में पगी भाषा है इस विश्वासघाती की। बिलकुल शहद की छुरी है यह पाजी। भई, इस बंदीशाला के छँटे

हुए बदमाश भले, पर इन बगुलाभगत सिपाहियों से तो तोबा!''

क्लर्क भी जानता था कि जेलर साहब उस बात में उसका नाम न लेते हुए यही सूचित करना चाहते हैं कि वह भी उसी थैली का चट्टा-बट्टा है।

बंदीपाल क्लर्क के साथ उस सिपाही के सिलसिले में जो यह अभिमत दे रहा था, वही अभिमत वह क्लंक तथा वे सिपाही एकांत में उस जेलर के संबंध में दिया करते। इसीलिए हमेशा लेन-देन बराबर होने के कारण कोई भी किसीकी पीठ पीछे की गई निंदा का बुरा नहीं मानता था। हर कोई जानता था, कौन कितने पानी में है। हर कोई दूसरे के लिए अच्छी तरह से जानता था, और हर एक के भेद में हर किसीका थोड़ा-बहुत हिस्सा होने के कारण तेरी भी चुप, मेरी भी चुप। पिछले बारह वर्षों से वह दादामुनि और वह बंदीपाल इस बंदीगृह की रियासत का कारोबार किसी संयुक्त परिवार की तरह एक-दूसरे को सँभालते हुए बड़े प्यार से चला रहे थे। नए-नए पर्यवेक्षकों (सुपरिंटेंडेंट) की आवाजाही होती रहती परंतु यह जमादार, दादा और जेलर का संयुक्त परिवार पिछले बारह वर्षों से अडिग था, अचल था, जैसे यह बंदीशाला।

बंदीपाल का आदेश सुनकर जेल के भीतर जाते-जाते जमादार मन-ही-मन सोच रहा था। उसने लोहे के दोनों पाट खुलवाकर भीतर आँगन में कदम रखा, जो बीचोबीच था। उसने तुरंत आवाज दी, ''शिवराम, शिवराम हवलदार किधर है? उसे बुलाना तो।''

थोड़ी ही देर में शिवराम हवलदार हाँफता हुआ आ गया। आते ही अपनी एड़ियाँ मिलाकर, सीना तानकर उसने 'सैल्यूट' ठोंक दिया। बाकी सभी को वहाँ से चले जाने का आदेश देकर उसने शिवराम से, जो वहाँ अकेला ही रह गया था, कहा, ''देख शिवराम, आज एक ऐसे डाकू कैदी तथा उसके साथियों को इस जेल में भेजा जा रहा है जो काले पानी से भागकर आए हैं। जेलर साहब का कड़ा आदेश है कि यह खबर किसीको कानोकान नहीं पहुँचनी चाहिए।''

''अच्छा, जमादार जी!''

''ध्यान से सुनो। उस खूँखार डाकू को दूसरी तरफ फाँसी के चौक में एक कालकोठरी में रखा जाए। तेरे या मेरे सिवा और किसीको भी भीतर नहीं जाने दिया जाए।''

''जेलर साहब और सुपरिंटेंडेंट साहब को भी?''

''अबे साले घोंचू, बकवास बंद कर। हँसी-ठिठोली में दाँत दिखाई देते हैं, वैसे क़भी-कभी ये दाँत तोड़ भी दिए जाते हैं। कोई झाड़ू-बुहार, बावर्ची, पानी देनेवाले को भीतर जाना हो तो सिर्फ तभी जब तुम या मैं साथ हों। यदि किसीको भी

उन डाकुओं के साथ बतियाते देखा तो बच्चू, तेरा गला घोंट डालूँगा, समझे?'' इस तरह अत्यंत कठोर शब्दों में उसे चेतावनी देते हुए उस नट-सम्राट् जमादार ने जाते-जाते अपने उस मुँह-लगे हवलदार का गला पकड़ लिया, ''किसीको कानोकान खबर न हो।''

''हाँ, हाँ! अभी से मेरा गला क्यों घोंट रहे हैं, जनाब। मजाल है कोई माई का लाल उनसे बात करे? कौन साला कमीने बाप का बेटा उन डाकुओं से बात करेगा? आने तो दो। फिर चाहे वह इस जेल का जमादार ही क्यों न हो। न, न, जमादार साहब, क्षमा चाहता हूँ। 'आपकी आज्ञा सिर-आँखों पर, उसका हूबहू पालन करूँगा।' यही कहने के आवेश में मैं बक गया।''

''अरे, पर तुमने वही कहा, जो एक तरह से मैं चाहता ही था। देखो शिवराम, तुम्हें ही उन डाकुओं से वह बातचीत करनी है जो ऐसे लाभ के अवसर पर विशेष रूप से करनी पड़ती है। मैं तो अपने मुँह में ठेपी रखूँगा। प्रथमतः तुम सारा जुगाड़ 'फिट' करो, यार! ऐसे कामों में तुम हो परले दरजे के गुरूघंटाल। तभी तो ऐसे भरोसे के स्थान पर मैं हमेशा तुम्हें ही नियुक्त करता हूँ। देखो, इस तरह का कोई घुटा हुआ डाकू जब इधर भूले-चूके कभी-कभार आता है, तभी तो तुम्हारे-हमारे पौ-बारह होंगे। ऐसे असामी सौ-सवा सौ के नीचे प्रायः नहीं जाते। यदि हो तो उन्हींके पास अशर्फियाँ होंगी अन्यथा ऐसे सैकड़ों चोर-उचक्के, लल्लू-पच्चू जो इस बंदीगृह में आते हैं, भला उनकी जेब में क्या होगा, खाक! वे हमारी मुट्ठी किस तरह गरम करेंगे? बस ऐसा पक्का बंदोबस्त करो कि वे जेल से भागने न पाएँ—बस इतना ही है हमारा सरकारी कर्तव्य। बाकी उनकी जो मरजी, गुलछर्रे उड़ाने दो। हाँ, यदि वे हम जो चाहे वह उगलकर हमारी खाली मुट्ठी गरम कर सकें तो। और हाँ, सबकुछ बड़ी सतर्कता के साथ करना। पहले उसे टटोलकर देखो, असामी कितने पानी में है, अन्यथा फट् कहते ही ब्रह्महत्या हो जाएगी। समझे न? हाँ, अब जाओ। वह चौक, अहाता, वह कालकोठरी सबकुछ झाड़-पोंछकर ताला ठोंक दो। जाओ। शाम तक वह टोली आ ही जाएगी, तब तक उनके आने के संबंध में किसीके पास चूँ तक नहीं करना।''

''बिलकुल नहीं, जनाब! आप निश्चिंत रहिए।'' इस तरह उसे आश्वासन देते हुए शिवराम हवलदार उस फाँसीवाले चौक की सफाई करने चला गया। उसने पहले सपाटे में ही अपने एक खास विश्वसनीय बंदी को बुलाया। उस बंदी को आठ-दस वर्षों की सजा हो गई थी। अपनी कार्यक्षमता की वजह से वह मुकादम बन गया था। बंदीवान के उस मुकादम को शिवराम हवलदार ने कमरों का वह चौक, जो फाँसीवाले अपराधियों के लिए अलग रखा हुआ था, वह अहाता,

कालकोठरियाँ, जो उन खतरनाक बंदियों के लिए भी कभी-कभी प्रयोग में लाई जाती थीं जो घात-पात पर उतारू होते, साफ करने को कहा। साथ ही उसे सख्त आदेश दिया, ''देखो, किसीके कानों में खबर न पहुँचे कि आज यह चौक खाली किया जा रहा है। वे बहुत पहुँचे हुए बदमाश हैं।''

मुकादम की जिज्ञासा को जैसे उफान सा आ गया था। लेकिन यह जानकर कि सीधी अँगुलियों से घी नहीं निकलेगा, सीधी तरह से पूछने पर हवलदार साहब राज को राज ही रखने की अकड़ से और ही इतराने लगेंगे, उसने बात को घुमा-फिराकर कहा, ''बस, इतनी सी बात! दरोगाजी, आपको याद है, गत वर्ष डाकुओं का वह गिरोह आया था जिसे काले पानी की सजा हो गई थी? आपकी दया से उसे मैंने तब तक सँभाला था, जब तक उसे काला पानी रवाना नहीं किया गया था? आपने उनकी चिट्ठियाँ दीं, बाजार में जेल का सामान बेचने जाते-जाते; बताइए उनके घर किसने पहुँचाई थीं? मुट्ठियाँ भर-भरके 'हलदी की गाँठें' भला कौन ले आया? इसी पट्ठे ने तो अपनी जान पर खेलकर उन्हें हासिल किया था, दरोगाजी!''

''अरे बाबा, जो काले पानी से भागकर आते हैं वे बदमाश उनसे लाख गुना अधिक भयंकर होते होंगे जो काला पानी जाते हैं। हाँ, हाँ, चुप! भई दीवारों के भी कान होते हैं। वह मैं नहीं बताऊँगा। पर क्यों रे मुकादम, यह बकरा यदि मोटा-ताजा हो तो उसकी भी चिट्ठियाँ ले जाओगे? या उन्हें काले पानी से आते हुए देखकर ही दुम दबाकर भाग जाओगे? जो हलदी की गाँठें मिलेंगी उनमें से तुम्हें भी किसी दूल्हे मियाँ की तरह पीला कर दूँगा, भैया!''

मुकादम सबकुछ जान गया जो जानना चाहता था। ''वैसे 'हलदी की गाँठों' से संबंधित कोई भी काम मेरा है, दरोगाजी! काले पानी से भागकर आने से मनुष्य भला भेड़िया थोड़े ही बन जाता है?'' (बताने की आवश्यकता नहीं कि बंदीगृह के शब्दकोश में हलदी की गाँठों का अर्थ है सोने के सिक्के।)

मुकादम को साथ लेकर दरोगाजी फाँसी के अहाते में चले गए। यह देखकर कि मुकादम अपने अधिकार में काम करनेवाले कैदियों से चौक-कोठरियों की फटाफट सफाई करने में लगा हुआ है और उन्हें प्रोत्साहित करने के लिए खास चुनिंदा मल्लाही गालियों तथा अचूक डंडों की यथोचित बौछार कर रहा है, दरोगाजी उन कालकोठरियों में से एक में कमर की पेटी, सिर का फेंटा उतारकर पाँव पसारते हुए सुस्ताने लगे। मुकादम ने एक कैदी लौंडे को उनका बदन रगड़ने के लिए भी लगा दिया। इस तुष्टि के नशे में उन्हें अहाते के बड़े दरवाजे का ताला लगाने की भी आवश्यकता महसूस नहीं हुई।

इतने में इस तरह आवेग के साथ जैसे कोई अभुआता हो, धड़धड़ाते हुए आगे

बंदीपाल उसके पीछे पूरी रफ्तार के साथ भागता हुआ जमादार और दो-तीन सिपाही धड़ल्ले के साथ खुले दरवाजे के अंदर घुस गए जैसे कोई तूफान घुस गया हो।

"हवलदार! अबे ओ हवलदार! किधर है वह उल्लू का पट्ठा?" बंदीपाल दहाड़ा।

"इधर-उधर-वे-वहाँ।" मुकादम की घिग्घी बँध गई। हड़बड़ाते हुए हवलदार को अपने भाग्य के भरोसे छोड़कर यह दिखावा करने के लिए कि वह अपने काम में व्यस्त है, कैदियों को 'यह करो, वह करो' आदेश देने लगा और उसने जमादार से कहा, "देखो, सबकुछ साफ-सुथरा, ठीक-ठाक होना चाहिए।"

इतने में बंदीपाल धड़धड़ाता हुआ 'किधर मर गया वह साला। हवलदार, अबे ओ हवलदार!' इस प्रकार बेखटके चिंघाड़ते हुए उसी कोठरी के चबूतरे पर 'ठक-ठक' जूते चटकाते हुए चढ़ गया। तब उस कोठरी के सामने ही वह हवलदार बौखलाते हुए गिरते-पड़ते हुए दिखाई दिया। बंदीपाल की पहली लरजती गर्जना अप्रत्याशित रूप से सुनते ही हवलदार साहब की सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई। उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। उसने जितना हो सके सँभलकर उठने की फुरती दिखाई, परंतु आधे-अधूरे सँभल पाने से पहले ही बंदीपाल उसके रूबरू आकर खड़ा हो गया। वह लौंडा जिस पैर को रगड़ रहा था, उसकी गणवेश की पट्टी खोली हुई थी और जूता उतारा हुआ था। दूसरी टाँग की पट्टी ठीक-ठीक लिपटी हुई, उस पाँव में जूता पहना हुआ, जल्दी-जल्दी में बँधा हुआ वह टोपनुमा फेंटा सिर पर रखते-रखते तिरछा हो गया है और उसका एक छोर किसी पहलवान के छोर की तरह कंधे से छाती पर झूल रहा है, कमर की पेटी दूर कोने में दुबकी पड़ी है और फाटक की चाभियों का गुच्छा उस बंदी लौंडे के हाथ में भूल से वैसे ही लटक रहा है—इस प्रकार उस हवलदारजी की अस्त-व्यस्त मूर्ति एक टाँग पर खड़ी रही, जिसमें जूता पहना हुआ था। उसका वह भाँड जैसा भोंडा बेढंगा रूप देखकर गुस्से से लाल-पीले हो रहे बंदीपाल, जो स्वभावतः हँसोड़ थे, हँसते-हँसते लोटपोट हुए बिना नहीं रह सके।

"क्यों जमादार, आप हमेशा कहते हैं कि आपात् स्थिति में शिवराम हवलदार एक पाँव पर तत्पर रहता है—यह बात सोलह आने सच है। तनिक देखिए तो सही, एक ही टाँग पर पुलिसिया गणवेश चढ़ाकर वे वाकई एक ही टाँग पर खड़े हैं। दूसरे पाँव में जूता भी नहीं पहना महाशय ने। क्यों बे, तेरा यह नंगा पैर इस तरह खाली… इसे रखते ही क्यों हो? बेकार ही है वह। ठहर बच्चू, मैं इस टाँग को ही काटकर फेंक देता हूँ।" क्रोध से अंगार बने बंदीपाल ने हाथ में पकड़ी सोटी से शिवराम की उस टाँग पर जोर से आघात किया।

"ओय! ओय! जेलर साहब, आपके पैरों पड़ता हूँ, पहले मेरी बात तो सुनिए—क्या हुआ कि चलते-चलते मेरी इस टाँग की पिंडली में फट् से गाँठ आ गई। पीड़ा के मारे हुजूर, मेरा बहुत बुरा हाल था। मैंने हाय-तौबा मचाई और निढाल होकर नीचे गिर गया। इसीलिए इस कोठरी में बैठकर उस गाँठ को दबा-दबाकर नीचे उतार रहा था, सरकार! माई-बाप, इसके लिए यदि मैं अपराधी हूँ तो क्षमा कीजिए।" दरोगा ने झट से नौटंकी रचाई।

"क्षमा? ड्यूटी पर होते हुए पेटी फेंककर लाट साहब यहाँ पसरे हैं, जैसे बाप का घर हो। तुम्हें माफ किया तो कल तमाम सिपाहियों की पिंडलियों की गाँठें कभी इसी तरह अकड़कर चढ़ने लगेंगी। लाओ वह पेटी इधर। जमादार, इस सिपाही की कमर की यह पेटी इसके गले में कुत्ते की पट्टी जैसी लपेटो। ऊँहूँ। हाँ, ऐसे; हाँ-हाँ, अब ठीक है। अब इस निठल्ले कामचोर को इसी हालत में—इसी तरह एक पाँव में जूता, तिरछी पगड़ी का छोर खुला, कुत्ते जैसा गले में पट्टा लपेटा हुआ—तमाम कैदियों की कतारों में से उधर दफ्तर के बड़े गेट के पास ले आओ। चलो—साले—तेरे बाप का—उस सुपरिंटेंडेंट साहब का उधर फोन आया हुआ है कि डाकुओं का गिरफ्तार किया हुआ एक गिरोह अभी आएगा—और तू यहाँ पर अपनी टाँगें दबवा रहा है, साला! चलो।"

सबसे आगे-आगे दरोगा का वह भाँड जैसा भोंडा बेढंगा विचित्र स्वाँग, उसके पीछे वह जमादार जो मुँह में रूमाल ठूँसकर हँसी दबा रहा था, उसके पीछे वह मुकादम, फिर कैदी—इस तरह वह जुलूस आगे निकल गया। रास्ते में जहाँ-जहाँ बंदियों की पंक्तियों में से गुजरना पड़ा, वहाँ-वहाँ आसपास वे हँसते-हँसते लोटपोट हो रहे थे। सबसे पीछे वह नीम-गोरा बंदीपाल, जो यह सारा तमाशा देखकर मन-ही-मन मुसकराता हुआ, लेकिन ऊपरी तौर पर क्रोध से अकड़कर चल रहा था—इस तरह वह सारी बारात बंदीशाला के बड़े द्वार के निकट प्रधान कचहरी के पास पहुँच गई।

बंदीपाल ने देखा, उस भयानक बंदीगृह के लोहे के मुख्य द्वार के सीखचों को पकड़कर बाहर की तरफ दस-पाँच सिपाहियों के साथ एक गोरा सार्जेंट खड़ा है। उन सिपाहियों की बंदूकों की संगीनें तनी हुई थीं—सार्जेंट के पीछे पैरों की बेड़ियों की झनझनाहट सुनाई दी, जो बाहर से आ रही थी। बंदीपाल ने गौर किया—अरे, यह टोली जो आनेवाली थी आ भी धमकी! इस बाहरी संकट का सामना करने के लिए अंदरूनी कलह मिटाकर मेहनती तथा विश्वसनीय जमादार-हवालदारों का आंतरिक संघटन करना निहायत आवश्यक है। इस तरह उस बंदीगृह की बालिश्त भर की राजनीति का बखेड़ा मिटाने का विचार आनन-फानन करके बंदीपाल ने

जमादार को आदेश दिया, ''छोड़ दो शिवराम को। जितनी उसकी दुर्गति कर दी, उतनी काफी है। उससे कहना, आइंदा ऐसी हरकत कभी न करे।''

जमादार भी यही प्रार्थना करनेवाला था। शिवराम वैसे बड़े काम की चीज है। अंदरूनी घपले, लफड़े उसीके जरिए तो चलते रहेंगे। उन झमेलों में बंदीपाल महाशय की भी तो साझीदारी थी। जमादार और बंदीपाल का आँखों-आँखों में यह वार्त्तालाप अनकहा होकर भी हो ही गया था। दोनों की राय का मेल हो चुका था, साठ-गाँठ हो चुकी थी। शिवराम हवलदार के दोनों जूते, साफा, पेटी, चाभियों का गुच्छा तुरंत ही उसके बदन पर अपने-अपने स्थान पर झलकने लगे। फिर क्या कहने!

'अबे ओ गधे की दुम! इधर आओ, ओ साले निखट्टू की औलाद, उधर जाओ', इस प्रकार अनुशासनयुक्त परिभाषा के आदेश देते हुए वह मुकादम और उन कैदियों में जो उसके गाँस में थे—दनदनाता हुआ इस प्रकार डोलने लगा, जिस प्रकार किसी गली में लड़ाकू मुरगा कुकड़ूँ-कूँ करता हुआ शान से इतराता है।

कर्ररर...

बंदीगृह का वह भीमकाय दरवाजा चरमराता हुआ खुल गया। सार्जेंट उन डाकुओं की टोली के साथ भीतर आ गया। डाकुओं के पैरों की बेड़ियाँ झनझना रही थीं। बंदीपाल ने अपने सामने स्थित अंदरूनी दरवाजा खुलवाकर प्रधान बंदीगृह के भयंकर परंतु भव्य, विशाल आँगन में उन दस-बारह डाकुओं का ताँता बाँध दिया। शिवराम हवलदार को उनपर कड़ी नजर रखने का आदेश देकर वह कचहरी में जाकर उस सार्जेंट से सारे कागजातों की जानकारी प्राप्त करने लगा।

इधर इस मुकादम ने उससे पहले ही कारागृह में जाकर अपने विश्वसनीय बंदी को बताया था कि 'आज यहाँ परले सिरे के कुछ अपराधी आनेवाले हैं, जो काले पानी से भागकर आए हुए हैं। हाँ, यह बात अपने पेट में ही रखना। किसीको कानोकान इसकी खबर नहीं होनी चाहिए।'

उस बंदी ने दूसरे कैदियों को—उन्होंने तीसरों को बताया और इस प्रकार वह गुप्त खबर कानोकान दावानल की तरह फैल गई—इसी शर्त पर काना-फूसी करते-करते उस कारागृह का हर कैदी इस खुले रहस्य से परिचित हो गया कि 'आज कोई घुटा हुआ बदमाश, पुराना चांडाल यहाँ आनेवाला है जो काले पानी से भागकर आया है, परंतु यह खबर किसीको कानोकान नहीं होनी चाहिए।' इसीलिए जिसे जो भी बहाना मिला उसीसे वह कैदी, वॉर्डर, मुकादम, सिपाही उस गिरोह के दर्शनार्थ उस आँगन के आसपास रुक रहे थे। सिपाहियों का जमघट भी वहीं पर खड़ा रहा था। शिवराम के फूले-फूले सीने में इस बात का दर्पयुक्त अहसास नहीं

समा रहा था कि इतने सारे लोगों के सामने वह इतने परले सिरे के डाकुओं पर डंका बजा रहा था। इस दुर्दम्य अभिलाषा से कि अपने कठोर अनुशासन का प्रदर्शन करके सब लोगों पर अपना दबदबा जमाए, हवलदार ने उन डाकुओं में से एक को, जो तनिक भयभीत और सौम्य प्रकृति का दिखाई दे रहा था, यूँ ही डंडे से छेड़ते हुए कहा, ''ऐ, सीधे खड़े रहो। यह तेरे बाप का घर नहीं है, बच्चू! इलाहाबाद की जेल है यह—इधर हर एक को कायदे से अनुशासन के साथ खड़ा होना चाहिए, समझे?''

शिवराम का यह कठोर आदेश उस शांत, सौम्य स्वभाव के डाकू ने सुना। परंतु उनमें जो एक लंबा-तड़ंगा, घुटा हुआ और देखने में बड़ा सुंदर डाकू था, जिसके होंठों पर सतत कुटिल मुसकान थिरक रही थी, वह जैसे हवलदार की अकड़ के मजे ले रहा था। हवलदार के पीठ फेरते ही वह उसके ठसके की नकल उतारते हुए जोर से गुर्राया, ''ऐ सीधा चलो, यह तेरा घर नहीं है। इलाहाबाद की जेल है यह।''

शिवराम ने गौर किया कि कोई उसे मुँह चिढ़ा रहा है। आसपास के लोगों के कहकहे छूट गए। शिवराम के मन में यह संदेह उभरा कि काले पानी का वह छँटा हुआ डाकू यही होगा। उसने यह अनुमान किया, सीधे उसे छेड़ने में उसने गलती की है और इस अंदाज से कि उसका मुँह चिढ़ाना उसने देखा ही नहीं, वह दूसरी तरफ घूमने लगा।

इतने में सार्जेंट का पालतू कुत्ता टॉम उस अहाते में घुस गया। उस कठोर अनुशासनयुक्त जेल में उसकी किसीने रोक-टोक नहीं की। भई, गोरे सार्जेंट का लाड़ला कुत्ता जो ठहरा! कुछ इलाकों में मनुष्य से अधिक कुत्तों को स्वाधीनता होती है। शिवराम हवलदार उसे प्यार से सहलाने, पुचकारने लगा। टॉम ने अपनी दो टाँगें उठाकर हवलदार के कमरबंद पर रखीं। इतने में उस निर्लज्ज डाकू ने बड़े अनुनयपूर्वक कहा, ''तनिक इधर तशरीफ लाइए, सरकार, एक अर्ज करता है यह बंदा।''

लगता है इस उद्दंड, दुष्ट मनुष्य पर भी अपना सिक्का जम गया। 'सरकार' जैसे विनम्र संबोधन से हवलदार ने अनुमान किया और उसके प्रति दयालुता के साथ बड़प्पन दिखाते हुए उसने कहा, ''क्या चाहिए? बोलो, बिलकुल डरना नहीं।'' उस लुच्चे काइयाँ डाकू ने मुसकराते हुए ऊँचे स्वर में कहा, ''भई, मैंने आपको कहाँ बुलाया? मैंने तो उस टॉम को बुलाया। उससे यह कहने जा रहा था, इस तरह लापरवाही से मत खड़े रहो। यह इलाहाबाद की जेल है। इधर हर एक को अनुशासनबद्ध खड़े रहना चाहिए।''

एक बार फिर सभी बंदियों तथा सिपाहियों ने जोर से ठहाका लगाया।

हवलदार क्रोध से भूत बन गया, ''निपट गधे हो तुम सब लोग।'' विनम्रता से मुसकराते हुए डाकू ने उत्तर दिया, ''और आप हमारे सरदार। आप जो बोलेंगे वही सत्य वचन है, सरकार!''

इतने में बंदीपाल उस आँगन में उन बंदियों से सार्जेंट द्वारा बाकायदा परिचय करने सार्जेंट के साथ आ गया। पहले धड़ाके में सार्जेंट ने बंदीपाल को दिखाया वही बेशरम, लंबा-तड़ंगा अपराधी जिसके होंठों पर कुटिल मुसकान हमेशा थिरकती रहती थी।

''यही है वह योगानंद—अर्थात् रफीउद्दीन—काले पानी से भागा हुआ बंदी—डाकुओं के इस भयंकर गिरोह का सरगना, अव्वल दरजे का अपराधी।''

जैसे किसी भाट से अपना प्रशस्ति-गायन सुनकर कोई राजा अधिकाधिक शान से फूलता जाता है, आकाश के दिये जलाने लगता है, उसी तरह वह आरोपी योगानंद ऊर्फ रफीउद्दीन सार्जेंट से अपनी प्रशंसा बड़ी अकड़ से सुन रहा था। लज्जा अथवा भय छोड़िए, चिंता का भी कोई चिह्न उसके मुख पर नहीं झलक रहा था। अपने भरे-भरे से गाल और होंठ बाईं ओर सिकोड़कर, आँखें मटकाकर, भीतर-ही-भीतर कुटिल मुसकान बिखेरने की उसकी जो खास अदा थी, उसीका प्रदर्शन करते हुए उसने उस सार्जेंट से कहा, ''इस तरह अन्याय क्यों करते हैं, हुजूर! अजी, मुझपर चार बार कोड़े बरसाए गए हैं और कम-से-कम चौदह बंदीशालाओं का दीदार यह खाकसार कर चुका है। मेरा इतना पराक्रम तो प्रिजनर साहब के सामने बखानना चाहिए, हुजूर, ताकि मेरी असली योग्यता जानकर ये प्रिजनर साहब मेरा यथोचित आतिथ्य तथा मान-सम्मान कर सकें।''

महीने भर से यह डाकू सार्जेंट के कब्जे में था। इस कारण दोनों की खूब छनने लगी थी और उस अपराधी की इस तरह की निरुपद्रवी बकबक में जो एक चुटीला व्यंग्य था, वह सार्जेंट को भाने लगा था। बंदीपाल को जेलर साहब संबोधित करने की बजाय रफीउद्दीन के 'प्रिजनर साहब' कहते ही उसके अंग्रेजी भाषा के अज्ञान की खिल्ली उड़ाने के लिए सार्जेंट ने जोर से ठहाका लगाया, ''वाह, वाह! बहुत खूब! जेल का जो अधिकारी है, वही यदि 'प्रिजनर साहब' हो तो तेरे जैसे डाकू-बदमाश जेल के कैदी को 'जेलर साहब' कहना होगा, समझे?''

''ऑफ कोर्स! मि. सार्जेंट साहब! आपके बावर्ची अंग्रेज को भले ही वह रास नहीं आता हो लेकिन जो मैं कहता हूँ वही व्याकरण-शुद्ध अंग्रेजी है। अगर प्रिजन का अर्थ कैदखाना और जेल का अर्थ भी कैदखाना ही है तो क्या प्रिजनर और जेलर इन दो शब्दों का कोई एक अर्थ नहीं होगा? भई, व्याकरण के अनुसार तो जो जेलर है, वही प्रिजनर है। प्रिजनर और जेलर एक ही तरकश के तीर हैं। सार्जेंट

साहब, मैं भी जानता हूँ, अंग्रेजी किस चिड़िया का नाम है।''

''योगानंद ही हो तुम। अच्छा, क्यों रे रफीउद्दीन, तुमपर चार बार कोड़े बरसाए गए, भला वह किस खुशी में? यह नहीं बताया तुमने?'' सार्जेंट की जिज्ञासा उमड़-उमड़कर बहने लगी।

''उसका कारण तो बिलकुल सीधा है, महाशय! बताता हूँ, यदि ये जेलर साहब नाराज न हुए तो। दो बंदीपालों ने इसलिए मेरी खाल उधेड़ी कि उन्होंने मेरे कहे अनुसार मुझे चोरी-चोरी अफीम नहीं खाने दी, सो मैंने भी ताव खाकर उनके सिर पर थाली-पाट मारा और दो बार इसलिए कि मैंने जेलर साहब की माँग के अनुसार उन्हें उतने चाँदी के जूते नहीं मारे थे जितने वे चाहते थे।''

चलते-चलते घूसखोरी की बात छिड़ते ही सार्जेंट के हाथ-पाँव फूल गए। उसने सोचा, कहीं यह वाहियात आरोपी, जो मगज के कीड़े उड़ा रहा है, उसकी पोल तो नहीं खोल देगा, क्योंकि पिछले पखवाड़े इस सार्जेंट के बच्चे को भी उस आरोपी ने चालीस-पचास रुपए खिलाए थे। हाथघड़ी देखने का बहाना बनाकर सार्जेंट ने रफीउद्दीन की वह बात अनसुनी कर दी। बंदीपाल ने घंटी बजने की सूचना दी और वह सार्जेंट उस पूरी टोली को उस बंदीपाल के हाथों बाकायदा सुपुर्द करके जेल के फाटक से बाहर निकल गया।

लगे हाथ डाकुओं के उस गिरोह को फोड़कर अलग-अलग कोठरियों में फाँसी के उस आरक्षित चौक में बंद किया गया। उनमें से दो-तीन जनों के चेहरे दारुण चिंता की छाया से घिरे हुए थे। एक डाकू, जिसका नाम किशन था, बेचारा पूरा पश्चात्तापदग्ध दिखाई दे रहा था। शेष सभी बंदीशाला में गारद में डालने पर भी निश्‍चिंत, निडर तथा निस्संकोच शान से ऐसे इतराते फिरते थे, मानो वे किसी नाट्यशाला में डोल रहे हैं। सबसे निडर, निश्‍चिंत गैंडे की चमड़ी ओढ़े हुए था योगानंद अर्थात् रफीउद्दीन अहमद, जिसे फाँसी की कालकोठरी में कैदे-तनहाई की सजा हुई थी। उसे खास बंदोबस्त में रखा गया था। इसका अर्थ यह था कि उसकी कोठरी के पास जमादार और शिवराम हवलदार के अतिरिक्त कोई भी नहीं जा सकता था। परंतु इससे तो वह सबसे अधिक मजे में था और चैन की बंसी बजा रहा था। शिवराम के पिट्ठु ने जो बंदीगृह में एड़ियाँ रगड़ रहा था, जैसाकि अपेक्षित ही था, उन डाकुओं के जो साथी इलाहाबाद में अभी तक चोरी-छिपे आजाद रह रहे थे, उन्हें रफीउद्दीन की चिट्ठियाँ पहुँचाईं। फिर क्या, शिवराम आदि की पाँचों अँगुलियाँ घी में! कारागृह में बेशुमार 'हलदी की गाँठों' की आवाजाही शुरू हो गई। थोड़ी सी अफीम, प्रचुर मात्रा में तंबाकू और कभी-कभी मिठाई गुप्त रूप से रफीउद्दीन की कालकोठरी में पहुँचने लगी और अप्रत्यक्ष रूप से वह नगद नारायण—पीले सोने के सिक्के से

जमादार, दादा तथा जेलर की जेबें गरम करने लगा।

रफीउद्दीन की योगानंद के रूप में जो जटाएँ, दाढ़ी-मूँछें थीं, अब उन्हें उतारकर फेंक दिया गया था। अब वह एक छिछोरा मुस्टंडा मुसलमान बन गया था। वे लोग, जिन्होंने उसे योगानंद के वेश में तथा पूजा-पाठ, भजन में तल्लीन होते हुए देखा था, कभी सपने में भी नहीं सोच सकते थे कि यह जहर का बुझा हुआ, परले सिरे का मुसलिम डाकू है। उसी प्रकार जिसने इसे फाँसी की कालकोठरी में एक छँटे हुए मुसलिम बदमाश के रूप में देखा है, उसे यह कहने से रत्ती भर भी विश्वास नहीं होगा कि इस महापाजी ने कभी हिंदू साधु के वेश में हजारों लोगों को झाँसा दिया है तथा लुभाया है। तथापि यह कहा जा सकता था कि योगानंदत्व का एक निशान एक तरह से उसमें था ही—वह था—'सुख दुःखे समे कृत्वा तुल्यनिंदा स्तुतित्व' का। जब उससे यह पूछा जाता कि तुम्हें कड़ी-से-कड़ी सजा होने का भय या चिंता कैसे नहीं सताती, भई?, तब होंठ सिकोड़कर आँखें मटकाते हुए वह हमेशा की तरह मुसकराता, "धत् तेरे की। इसमें चिंता काहे की, भाई? फाँसी तो मुझे होने से रही—और आजीवन कारावास, काले पानी की सजा तो भुगतनी ही पड़ेगी। यार, हमें काले पानी के दंड में जो पुण्य तथा आनंद मिलता है वह तुम्हें काशीजी में भी नहीं मिल सकता, न ही मक्काजी में। काला पानी ही हम लोगों की काशीजी है।"

"परंतु यह दावे के साथ कैसे कह सकते हो कि तुम्हें फाँसी होगी ही नहीं? तुमने तो दारुण घृणा के साथ कितने लोगों की जानें लीं, कितने युवक-युवतियों की गरदनें मरोड़ीं, सिर काटे। बड़े ही गंभीर, नृशंस आरोप हैं तुमपर। स्वयं जेलर साहब दावा कर रहे थे कि तुम फाँसी पर चढ़ोगे।" शिवराम उसे टोकता तो वह बस मुसकराता, "अरे, जेलर क्या खाक जानता है मेरे जैसे डाकू को जिसने घाट-घाट का पानी पिया है? सबूत, दंड, अपराध, प्रतिबंध, नियमों का जो अनुभव हमें होता है वह ऐसे जेलरों को ही क्या, बड़े-बड़े जजों को भी नहीं होता। इसी ज्ञान के बलबूते डाके भी हम कानूनी तौर पर डालते हैं। ऐसी हत्याएँ हम कभी नहीं करते, जिन्हें करके फाँसी हो। बाबा, तुम्हारी हिंदुओं की गीता मैंने पढ़ी है 'हत्वाऽपि स इमाँल्लोकन् न हंति न निबध्यते'। इसे ही कहते हैं 'योगः कर्मसु कौशलम्'।" हिंदू अधिकारियों के पहरे में वह संस्कृत श्लोक का पाठ करता, भजन गाता और उन भोले-भाले लोगों को सम्मोहन होता कि सत्य ही यह कोई अंतर्यामी अवधूत है, पहुँचा हुआ संत है। कारागृह में उसे उन हिंदू सिपाहियों की सहानुभूति मिलती।

मुसलिम अधिकारियों के पहरे में गप्पें हाँकते समय वह कुरान की दस-पाँच सच्ची-झूठी आयतों का पाठ करने का नाटक करता। नमाज तो अपनी बची-

खुची बित्ता भर दाढ़ी सहलाते हुए बड़ी गंभीरता के साथ, तल्लीन होकर दिन भर पढ़ता रहता। वह कहा करता, ''देखो, मैंने जो-जो डाके डाले, जिन-जिन लड़कियों को भगाया, जिनके-जिनके हाथ-पाँव तोड़े, प्राण लिये, लूट-पाट की वे सारे काफिर हिंदू थे, समझे? ईमानदारों (मुसलिमों) का बाल भी बाँका नहीं किया। अल्लाह रहीम है। काफिरों को सजा देने के बदले खुदाताला मुझपर तो रहम ही करेगा। क्यों?''

''अलबत्ता!'' वह मुसलिम जमादार कहता और फिर जिस प्रकार किसी पुराने अँधेरे कुएँ में, जिसकी थाह पाना मुश्किल है, झाँका जाए उसी तरह उसकी आँखों में झाँकते हुए मन-ही-मन बड़बड़ाता, ''वाकई, यह कोई औलिया, कोई खुदाई खिदमतगार दिखता है।''

कारागृह में घुटे हुए बदमाश, डाकू जो मुसलिम होते हैं, उनमें से सिंधी, बलूची, पठान, पंजाबी अपराधी अपने खून, चोरी, डाकेजनी का समर्थन इसी तर्क से करते हैं कि 'भई, हम तो सिर्फ काफिर हिंदुओं को ही मारते हैं, लूटते हैं।'

और इस समर्थन के साथ उनका पाप कृत्य भी पुण्य कृत्य समान भासमान् हो उठता है और अनेक धर्मांध मुसलिम सिपाही-जमादारों को उनसे हमदर्दी होने लगती है। इस प्रकार के सैकड़ों उदाहरण स्वयं देखने-सुनने का अनुभव हमें भी हुआ है। इस सिलसिले में अपवाद निकलने पर इतनी ही बात अच्छी है कि कम-से-कम बंगाली, मराठी मुसलिम इतने धर्मांध नहीं होते। इसीलिए डाकुओं में उत्तर प्रांतीय मुसलिमों का दक्षिण देश के मुसलिमों पर इतना भरोसा नहीं होता।

इस योगानंद ऊर्फ रफीउद्दीन के गिरोह में भी अंत में वही अनुभव प्राप्त हुआ। जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है कि उनमें जिन आरोपियों के कारागृह में कदम रखते ही सकपकाकर होश उड़ गए उनमें से एक हसन भाई नामक महाराष्ट्रीय मुसलिम और दूसरा वह किशन जो पश्चात्ताप की आग में जल रहा था, दोनों ने पुलिस को उस गिरोह की काफी जानकारी दी और अपने अपराधों को स्वीकार किया। उनकी इस स्वीकृति के आधार पर सरकार ने उनपर मुकदमा दायर किया और उस मुकदमे की मुकर्रर तारीख रफीउद्दीन वगैरह सबको सूचित की गई थी।

मुकदमे के दिन ज़िस तरह शादी के दिन दूल्हे मियाँ जिस उत्सुकता तथा शान से सज-धजकर तैयार होता है, उसी प्रकार अपने बाल, पेंट आदि परिवेश का कारागृह में जितना संभव है, उतना श्रृंगार करके बड़ी अकड़फूँ के साथ पैरों की बेड़ियाँ झनझनाते रफीउद्दीन डाकू बड़े ठसके के साथ कहकहे लगाता बाहर निकला। 'यही है वह काले पानी से आया हुआ भगोड़ा पराक्रमी पुरुष सिंह', उसे लग रहा था कि समूचा त्रिभुवन उसकी ओर देखता चल रहा है। वह मन-ही-मन

यही योजना बना रहा था कि अब अदालत में वह किन-किन हँसी-मजाक से जज साहब को भी हँसते-हँसते लोटपोट करे। उसके मन में इस बात के लिए रत्ती भर भी धुकधुकी नहीं हो रही थी कि उसके घोर अपराधों की नृशंस कथा सुनते ही किसके बदन के रोंगटे नहीं खड़े होंगे। कुछ लोग उसे राक्षस समझकर छी:-थू करेंगे; उसे कठोर दंड भुगतने पड़ेंगे। भूत-प्रेत, रोना-धोना, चिता-कपाल से अभ्यस्त बने श्मशान की धर्मशाला के चौकीदार को जिस प्रकार श्मशान से भय नहीं लगता, ये तमाम कार्यक्रम जिस तरह अपने नित्य कर्मों की तरह वह स्वाभाविक समझता है, उसी तरह उस गैंडे की चमड़ी पहना वह डाकू अदालत, सबूत, दंड, गवाह, बेड़ियों, बंदीशाला, आजन्म कारावास, काला पानी, कैदे-तन्हाई इन तमाम बातों के परिपाठ का इतना अभ्यस्त बन चुका था कि वह उसे बिलकुल भी हौवा नहीं समझता था; न ही उसे इतनी अहमियत देता था। शैतान की तरह ही उसका मन 'Oh Evil ! Thou be my good' यही शिक्षा लिये हुए था।

उसका मन हैवानियत तथा इनसानियत, इन दोनों का एक संयुक्त परिवार बना हुआ था। जिस प्रकार राजमहल में रहनेवाला वह नीरो था, उसी प्रकार काले पानी पर रहनेवाला यह रफीउद्दीन।

नीरो को जिस प्रकार मृत्यु का भय था, उसी तरह इसे फाँसी का डर था; और अगर इसे किसीकी परवाह हो, किसीमें रुचि हो तो वह थी अफीम और नारी।

अदालत जाते-जाते भी उसका मन एक-दो बार धक-धक करने लगा—न जाने अगर फाँसी हो गई तो? और एक-दो बार तो वह क्रूरकर्मा भी गौ बनकर दीन-हीन होकर बेचैन हो उठा, 'मालती! हाय! हाय! अब फिर से कहाँ आएगी वह लौंडिया मेरी मजबूत बाँहों में।'

□

प्रकरण–६

रफीउद्दीन का अंतरंग

अदालत में उन डाकुओं का मुकदमा यौवन पर था। वकील, उनके कारिंदे, सिपाहियों का हथियारबंद झुंड, पंखेवाले वे सज्जन, गृहस्थ तथा गाँव के गुंडे जिन्हें इस प्रकार के डाकुओं के मुकदमों का खास चस्का लगा हो आदि लोगों से अदालत ठसाठस भरी हुई थी। उन क्रूर नर-पशुओं के क्रूर, नृशंस कृत्य सुनते समय कई बार स्वयं न्यायमूर्ति के अभ्यस्त मन पर भी घनाघात हो जाता। निष्पक्षता भी आपे से बाहर हो जाती। ग्रामकंटकों के भी रोंगटे खड़े हो जाते। मनुष्य नृशंस, क्रूर श्वापदों को मनुष्यों की बस्ती से दूर जंगल में खदेड़ सका, परंतु मनुष्य के मन ही में कितने सारे नृशंस श्वापद कैसे घात लगा बैठे, घर बनाकर विचर रहे हैं ! मन के तहखाने के ताले जब कभी इस तरह से खुले, वे नृशंस श्वापद तितर-बितर होकर भगदड़ मचाते हैं। तभी इस दारुण सत्य को नकारना असंभव होता है। जिसे हम मानवता, मनुष्यता कहते हैं वह एक सजी-सँवरी क्वेट्टा नगरी है। उसके नीचे भूचालीय राक्षसी वृत्तियों की कई परतें फैली हुई हैं। मात्र दया, दाक्षिण्य, माया-ममता, न्याय-अन्याय की नींव पर ही यह मानवता की क्वेट्टा नगरी उभारी जाने के कारण, इस भ्रम में कि वह अटल-स्थिर-दृढ़ होनी चाहिए, जो लापरवाही से घोड़े बेचकर सोता है उसका सहसा ही विनाश हो जाता है, पूरा राष्ट्र पलट जाता है।

रफीउद्दीन अहमद भी एक मनुष्य था, क्योंकि वह हमेशा हँसता रहता था। अनेक जीव-वैज्ञानिकों के अनुसार अन्य प्राणियों से मनुष्य अलग-थलग है। यह दर्शाता है उसकी प्रमुख विशेषता—उसकी मुसकराहट। सिर्फ मनुष्य ही हँस सकता है। न्यायाधीश ऑक्लैंड साहब, जिनके सामने यह मुकदमा जारी था, इस तरह के पैशाचिक आरोपियों को मात्र अपराधी के नाते से नहीं देखा करते, अपितु जिस तरह कोई वैद्य रोगियों की ठोक-बजाकर परीक्षा करता है अथवा मांत्रिक सर्पों की विष-

परीक्षा करता है, उसी आलोचक दृष्टि से इस प्रकार के अघोरी पापियों के स्वभाव विशेषों की छानबीन किया करते। उनकी यह धारणा होती कि अपराध-विज्ञान मनोविज्ञान का ही एक हिस्सा है। इसीलिए वे प्रमाण की तरह पैशाचिक तथा विक्षिप्त अपराधियों के मनोविकारों, मुद्राओं एवं भाषणों की तथा गतिविधियों की मन-ही-मन छानबीन करने में उलझे रहते। वे अपराधियों को आरोपी के कटघरे में खड़े करते हुए भी यथोचित सीमित स्वाभाविक बोलचाल तथा हँसने-रोने देते, उनसे स्वयं बातचीत करके कभी उन्हें बोलने के लिए भी बाध्य करते, ताकि उनकी छानबीन करना आसान हो। जिस संकट के घात में आते ही बड़े-बड़े दुष्ट भी बेंत की तरह काँपते हैं, लज्जित होते हैं, उस संकट में भी रफीउद्दीन को निश्चिंत, निर्लज्जता से हँसते हुए देखकर न्यायाधीश ऑक्लैंड साहब सोचते कि अच्छा होता यदि शेक्सपियर एक बार इसे इस तरह मुसकराता हुआ देखते, क्योंकि शेक्सपियर ने एक चरित्र द्वारा एक दुष्ट, धोखेबाज तथा गुरूघंटाल, काइयाँ व्यक्ति का एक लक्षण बताया है कि 'He seldom laughs' (उसे किभी-कभी ही हँसी आती है।) उसने यह भी किसी अन्य चरित्र द्वारा किसी अन्य स्थान पर कहलवाया होता कि वह लक्षण भी किस प्रकार मिथ्या प्रमाणित हो सकता है। क्रूरकर्मा होते हुए भी रफीउद्दीन जिस प्रकार हँसोड़ था वैसे ही दुर्वृत्त, काला नाग होते हुए भी वह अत्यंत सुंदर था। न्यायाधीश ऑक्लैंड साहब मन-ही-मन सोचते, 'बच्चू ने एक महाकवि के उक्त सूक्त को ही नहीं अन्य महाकवि के 'नट्याकृति सुसदृशं विजहानि वृत्तम्' इस कालिदासीय सूक्ति को भी झुठलाया है। ऐसा नहीं कि सुंदर मनुष्य सद्शील होता ही है। इतना ही नहीं, उसके दुराचरण से भी कभी-कभी उसकी सुंदरता अधिक विषाक्त होती है, जैसे इंद्रायन का फल। कभी समझ में नहीं आता, गुलाब की घनी फुलवारी की ओट में छल-कपट की चरम सीमा है।

डाकुओं के उस गिरोह द्वारा किए गए नृशंस क्रूरतापूर्ण अत्याचार, पुलिस ने ठोस सबूत के साथ उनके पल्ले बाँध दिए। उनमें जिस एक अप्रत्यक्ष लेकिन महत्त्वपूर्ण प्रमाण की जोड़ रफीउद्दीन के गिरोह में हसन भाई नामक आरोपी ने दी, वह सरकारी माफी का साक्षीदार हो गया था। उसकी स्वीकारोक्ति में से चुनिंदा आशय भी यहाँ प्रस्तुत करें तो भी वह रफीउद्दीन के राक्षसी कृत्यों की रूपरेखा पाठकों के ध्यान में लाने के लिए पर्याप्त है। उस स्वीकारोक्ति के आशय का पुलिस के स्वतंत्र प्रमाण ने समर्थन किया था।

''मेरा नाम हसन भाई। मैंने हाई स्कूल तक शिक्षा प्राप्त की है। मैं क्लर्क भी था। आगे चलकर जुए की लत पड़ने से मैं पैसे चुराने लगा। मेरा जन्म-स्थान खानदेश में है। रफीउद्दीन से मेरा परिचय उसके काले पानी जाने से पहले ही हुआ

था। पंजाब, उत्तर प्रदेश से लूटपाट कर लाई गई संपत्ति का कुछ अंश वह मेरे पास छिपाकर रखता था। लेकिन अपने गिरोह में प्रत्यक्ष डकैती के लिए वह मुझे साथ कभी नहीं ले जाता तथा मेरे पास खुल्लम-खुल्ला नहीं आता था ताकि पुलिस का ध्यान मेरी ओर आकर्षित न हो। आगे चलकर उसे सजा हो गई, वह काला पानी चला गया और हम दोनों में कोई संपर्क नहीं रहा। कुछ वर्षों के उपरांत एक दिन मैंने देखा कि वह अचानक मेरी चौखट पर खड़ा है। तब मुझे ऐसा लगा, जैसे कोई मृत व्यक्ति जीवित होकर आया है। मुझे मालूम भी नहीं था कि वह व्यक्ति, जो काला पानी गया है, जीवित लौट सकता है। उसने बताया कि वह मंत्रशक्ति से अदृश्य होकर सागर पर चलकर वापस आया। उसने मंत्र से अभिभूत एक ताबीज भी मुझे दिखाया। उसने मुझे आश्वस्त किया कि अपनी तीन-चार हजार की अमानत जो उसने मेरे पास रखी थी वह भी मुझे उपहार-स्वरूप मिल जाएगी। उसकी इस प्रकार की तमाम चिकनी-चुपड़ी बातों का मुझपर विलक्षण प्रभाव पड़ा। मुझे वह एक अद्भुत मांत्रिक तथा असाधारण साहसी पुरुष प्रतीत होने लगा और मैं वैसा ही करने के लिए तैयार हो गया जैसा वह कहे। उस समय उसकी बात पर मैंने विश्वास किया। उसने कहा, 'सिंध और पंजाब में मुसलिम धर्म प्रचारार्थ मैंने एक बड़ी संस्था शुरू की है। यह एक तरह का जेहाद—धर्मयुद्ध है और उसकी सहायता करना हर मुसलमान का फर्ज है।' मुसलमान बनाने के लिए खानदेश में जो हिंदू लड़के-लड़कियाँ मिलेंगी, उन्हें फुसलाकर उसके हाथ सौंप दिया जाए; उसे जो चीजें और द्रव्य छिपाना हो वह पूर्ववत् छिपाए; जब भी वह बुलाए, मुझे उसके पास चला जाना चाहिए, और इस काम के लिए वह मुझे खर्चा और हर महीने सौ रुपए दे देगा। इस प्रकार हम दोनों में करार हो गया।

मुझे उसकी दहशत-सी लगती कि उसका अगला काम मैंने नहीं किया तो यह क्रूरकर्मा अपनी पिछली अमानत के लिए मुझे जान से मार डालने में भी नहीं हिचकिचाएगा। पहले-पहले डरते-डरते मैं उस गिरोह की सहायता करता रहा, परंतु इनकी डाकेजनी के वर्णन सुनते-सुनते मैं भी लोगों को इकट्ठा करके छोटे-मोटे डाके डालने लगा। यात्राओं, धर्मशालाओं और स्टेशन से भले घरानों की हिंदू लड़कियों का अपहरण करने में इतना अभ्यस्त तथा निपुण हो गया कि जिनकी बेटियों का हम अपहरण करते उन्हें आठ-आठ आँसू बहाते देख हमारा बड़ा मनोरंजन होता था। इससे रफीउद्दीन मुझपर निहायत प्रसन्न हो गया। उन लड़कों, लौंडे-लौंडियों को सुदूर सिंध, बलूचिस्तान तक भेजा जाता, उधर उनके गिरोह उन्हें बेचते अथवा किसीपर दिल आने पर उसका आपस में बँटवारा कर लेते। धर्म-प्रचार की ओट में बड़े-बड़े मौलवी भी हमारे इन दुष्ट कृत्यों की अथक प्रशंसा किया

परीक्षा करता है, उसी आलोचक दृष्टि से इस प्रकार के अघोरी पापियों के स्वभाव विशेषों की छानबीन किया करते। उनकी यह धारणा होती कि अपराध-विज्ञान मनोविज्ञान का ही एक हिस्सा है। इसीलिए वे प्रमाण की तरह पैशाचिक तथा विक्षिप्त अपराधियों के मनोविकारों, मुद्राओं एवं भाषणों की तथा गतिविधियों की मन-ही-मन छानबीन करने में उलझे रहते। वे अपराधियों को आरोपी के कटघरे में खड़े करते हुए भी यथोचित सीमित स्वाभाविक बोलचाल तथा हँसने-रोने देते, उनसे स्वयं बातचीत करके कभी उन्हें बोलने के लिए भी बाध्य करते, ताकि उनकी छानबीन करना आसान हो। जिस संकट के घात में आते ही बड़े-बड़े दुष्ट भी बेंत की तरह काँपते हैं, लज्जित होते हैं, उस संकट में भी रफीउद्दीन को निश्‍चिंत, निर्लज्जता से हँसते हुए देखकर न्यायाधीश ऑक्लैंड साहब सोचते कि अच्छा होता यदि शेक्सपियर एक बार इसे इस तरह मुसकराता हुआ देखते, क्योंकि शेक्सपियर ने एक चरित्र द्वारा एक दुष्ट, धोखेबाज तथा गुरूघंटाल, काइयाँ व्यक्ति का एक लक्षण बताया है कि 'He seldom laughs' (उसे किभी-कभी ही हँसी आती है।) उसने यह भी किसी अन्य चरित्र द्वारा किसी अन्य स्थान पर कहलवाया होता कि वह लक्षण भी किस प्रकार मिथ्या प्रमाणित हो सकता है। क्रूरकर्मा होते हुए भी रफीउद्दीन जिस प्रकार हँसोड़ था वैसे ही दुर्वृत्त, काला नाग होते हुए भी वह अत्यंत सुंदर था। न्यायाधीश ऑक्लैंड साहब मन-ही-मन सोचते, 'बच्चू ने एक महाकवि के उक्त सूक्त को ही नहीं अन्य महाकवि के 'नट्याकृति सुसदृशं विज़हा़नि वृत्तम्' इस कालिदासीय सूक्ति को भी झुठलाया है। ऐसा नहीं कि सुंदर मनुष्य सद्शील होता ही है। इतना ही नहीं, उसके दुराचरण से भी कभी-कभी उसकी सुंदरता अधिक विषाक्त होती है, जैसे इंद्रायन का फल। कभी समझ में नहीं आता, गुलाब की घनी फुलवारी की ओट में छल-कपट की चरम सीमा है।

डाकुओं के उस गिरोह द्वारा किए गए नृशंस क्रूरतापूर्ण अत्याचार, पुलिस ने ठोस सबूत के साथ उनके पल्ले बाँध दिए। उनमें जिस एक अप्रत्यक्ष लेकिन महत्त्वपूर्ण प्रमाण की जोड़ रफीउद्दीन के गिरोह में हसन भाई नामक आरोपी ने दी, वह सरकारी माफी का साक्षीदार हो गया था। उसकी स्वीकारोक्ति में से चुनिंदा आशय भी यहाँ प्रस्तुत करें तो भी वह रफीउद्दीन के राक्षसी कृत्यों की रूपरेखा पाठकों के ध्यान में लाने के लिए पर्याप्त है। उस स्वीकारोक्ति के आशय का पुलिस के स्वतंत्र प्रमाण ने समर्थन किया था।

''मेरा नाम हसन भाई। मैंने हाई स्कूल तक शिक्षा प्राप्त की है। मैं क्लर्क भी था। आगे चलकर जुए की लत पड़ने से मैं पैसे चुराने लगा। मेरा जन्म-स्थान खानदेश में है। रफीउद्दीन से मेरा परिचय उसके काले पानी जाने से पहले ही हुआ

था। पंजाब, उत्तर प्रदेश से लूटपाट कर लाई गई संपत्ति का कुछ अंश वह मेरे पास छिपाकर रखता था। लेकिन अपने गिरोह में प्रत्यक्ष डकैती के लिए वह मुझे साथ कभी नहीं ले जाता तथा मेरे पास खुल्लम-खुल्ला नहीं आता था ताकि पुलिस का ध्यान मेरी ओर आकर्षित न हो। आगे चलकर उसे सजा हो गई, वह काला पानी चला गया और हम दोनों में कोई संपर्क नहीं रहा। कुछ वर्षों के उपरांत एक दिन मैंने देखा कि वह अचानक मेरी चौखट पर खड़ा है। तब मुझे ऐसा लगा, जैसे कोई मृत व्यक्ति जीवित होकर आया है। मुझे मालूम भी नहीं था कि वह व्यक्ति, जो काला पानी गया है, जीवित लौट सकता है। उसने बताया कि वह मंत्रशक्ति से अदृश्य होकर सागर पर चलकर वापस आया। उसने मंत्र से अभिभूत एक ताबीज भी मुझे दिखाया। उसने मुझे आश्वस्त किया कि अपनी तीन-चार हजार की अमानत जो उसने मेरे पास रखी थी वह भी मुझे उपहार-स्वरूप मिल जाएगी। उसकी इस प्रकार की तमाम चिकनी-चुपड़ी बातों का मुझपर विलक्षण प्रभाव पड़ा। मुझे वह एक अद्‌भुत मांत्रिक तथा असाधारण साहसी पुरुष प्रतीत होने लगा और मैं वैसा ही करने के लिए तैयार हो गया जैसा वह कहे। उस समय उसकी बात पर मैंने विश्वास किया। उसने कहा, 'सिंध और पंजाब में मुसलिम धर्म प्रचारार्थ मैंने एक बड़ी संस्था शुरू की है। यह एक तरह का जेहाद—धर्मयुद्ध है और उसकी सहायता करना हर मुसलमान का फर्ज है।' मुसलमान बनाने के लिए खानदेश में जो हिंदू लड़के-लड़कियाँ मिलेंगी, उन्हें फुसलाकर उसके हाथ सौंप दिया जाए; उसे जो चीजें और द्रव्य छिपाना हो वह पूर्ववत् छिपाए; जब भी वह बुलाए, मुझे उसके पास चला जाना चाहिए, और इस काम के लिए वह मुझे खर्चा और हर महीने सौ रुपए दे देगा। इस प्रकार हम दोनों में करार हो गया।

मुझे उसकी दहशत-सी लगती कि उसका अगला काम मैंने नहीं किया तो यह क्रूरकर्मा अपनी पिछली अमानत के लिए मुझे जान से मार डालने में भी नहीं हिचकिचाएगा। पहले-पहले डरते-डरते मैं उस गिरोह की सहायता करता रहा, परंतु इनकी डाकेजनी के वर्णन सुनते-सुनते मैं भी लोगों को इकट्‌ठा करके छोटे-मोटे डाके डालने लगा। यात्राओं, धर्मशालाओं और स्टेशन से भले घरानों की हिंदू लड़कियों का अपहरण करने में इतना अभ्यस्त तथा निपुण हो गया कि जिनकी बेटियों का हम अपहरण करते उन्हें आठ-आठ आँसू बहाते देख हमारा बड़ा मनोरंजन होता था। इससे रफीउद्‌दीन मुझपर निहायत प्रसन्न हो गया। उन लड़कों, लौंडे-लौंडियों को सुदूर सिंध, बलूचिस्तान तक भेजा जाता, उधर उनके गिरोह उन्हें बेचते अथवा किसीपर दिल आने पर उसका आपस में बँटवारा कर लेते। धर्म-प्रचार की ओट में बड़े-बड़े मौलवी भी हमारे इन दुष्ट कृत्यों की अथक प्रशंसा किया

करते। उससे अपनी नीच विषय-वासना तथा धर्मलाभ में एक धर्मोन्माद आ जाने से हम जनलज्जा तथा मनोलज्जा दोनों से मुक्त हो गए। भय मात्र सरकारी दंड से रह गया, वह भी खासकर अंग्रेज और कुछ कठोर हिंदू पुलिस अफसरों से ही।

हमारे जैसे दक्खनी मुसलमानों को उत्तर के ये पठान, बलूची डाकू अविश्वसनीय समझते थे। हमारा परिवेश, भाषा, रीति-रिवाज हिंदुओं जैसे होने के कारण आनन-फानन क्रूर कर्म हमसे नहीं हो सकते, इसलिए वे हमें कायर, डरपोक तथा 'आधे काफिर' समझते थे। डाकेजनी में हमें सीधे हिस्सा नहीं लेने देते थे। परंतु बिहार में एक डकैती में इस गिरोह की पकड़-धकड़ हो गई, तब रफीउद्दीन कुछ साथियों के साथ वहाँ से खिसककर खानदेश आ गया और उसे मेरे गिरोह में शामिल होना पड़ा। तबसे वह हिंदू गोसाईं के वेश में घूमने लगा। वह एक मँजा हुआ बहुरूपिया है। अंग्रेजी, संस्कृत, बँगला, मराठी भाषाओं में से थोड़ा-थोड़ा जबानी याद करके रखा है उसने। फिर झूम-झूमकर गाता है, नाचता है। चाहे लावनी हो (मराठी संगीत की एक विधा), चाहे भजन, किसीमें भी रंग भरकर ऐसा समाँ बाँधता है कि क्या कहने! योगानंद का स्वाँग रचाकर तो उसने हजारों हिंदू लोगों को सम्मोहित किया। उसे सिर्फ पाँच-दस भजन ही कंठस्थ हैं। शास्त्रार्थ आदि तो वह कुछ जानता नहीं, इसलिए मौन व्रत का ढोंग करता है या फिर भजन गाता है। पाँच-दस संस्कृत श्लोक उसे कंठस्थ थे, परंतु वह ऐसे ढंग से बीच में ही बोलता, कभी बीच में ही मौन हो जाता कि जिस-तिसको यही भ्रम होता कि आहा! महाराज प्रगाढ़ विद्वान् होते हुए भी कितने विनम्र हैं। उसने योगानंद का जो चोला पहना था, उस पहनावे का हमें काफी फायदा हो गया। हिंदू बिना माँगे हमें हजारों रुपयों का दान देते। ये महाशय स्वयं किसी चीज को स्पर्श नहीं करते, परंतु जो जबरदस्ती रख जाते उन उपहारों को हम लोग इकट्ठा करते और आपस में बाँट लेते। भजन के समय जब भीड़-भड़क्का होता था, तब लगभग सौ-सवा सौ हिंदू लड़कियों को भगाकर हमने पिछले साल-डेढ़ साल में गुलाम हुसैन नामक एक बलूची के हाथों उत्तर में रवाना किया। उस हर शिकार के पीछे हमें स्वतंत्र उपहार मिलता। मुसलमानों को न लूटने का यह जो बहाना बनाता, वह भी झूठा था। इस सत्य से हम सब तब परिचित हो गए जब इसका हमारे गिरोह से प्रत्यक्ष संबंध हुआ। किसी मुसलमान को लूटना हो तो वह उसे सिर्फ 'काफिर का दोस्त' जैसी गाली देता और फिर अपनी कसम से मुक्त होता। भई, हमें भी यह सुविधाजनक शासन बहुत पसंद था। यह जितना क्रूर, जहरीला भुजंग है उतना ही हँसोड़ और मजाकिया है। परंतु हाँ, यह इतना गजब का बहुरूपिया है कि मैं नहीं बता सकता। इसका बुनियादी स्वभाव मजाकिया है या निर्घृण।

पागलपन का स्वाँग रचाने में भी इसका मसखरापन बहुत काम आता है। कुछ भी हो, यह सोलह आने सच है कि यह तभी भारी मसखरी करता है जब अत्यंत नृशंस, निर्घृण कृत्य करता है।

इसकी नृशंसता के दो प्रसंग जो मैंने अपनी इन आँखों से देखे हैं, जिनसे मुझे भी इसकी नृशंसता से घिन हुई है, जिनका मैं चश्मदीद गवाह हूँ, सबूत के तौर पर बताता हूँ। इस मुकदमे में खानदेश के जिस मुसलिम डॉक्टर के घर पड़ी डकैती का हमपर आरोप लगाया गया है, उस डकैती में मैं भी शामिल था। हमारे दरवाजा तोड़कर भीतर घुसते ही डॉ. रहमान की, जो अटारी से खिसक रहा था, टाँगों पर हमने कुल्हाड़ी से प्रहार किया। उसकी टाँग के टुकड़े-टुकड़े हो गए। डॉक्टर ने तो वहीं पर दम तोड़ दिया लेकिन फिर भी सिर्फ कुठाराघात करने के आनंद में इसने जोर-जोर से कहकहे लगाते हुए मेरी 'ना-नु' की परवाह किए बिना उस डॉक्टर की बोटी-बोटी काट डाली। इतने में उस डॉक्टर के दो बच्चे दिखाई दिए जो पलंग के नीचे दुबककर बैठे हुए थे। मैंने तड़पकर कहा, 'भाई, इन मासूमों पर तो रहम करो, इन्हें तो बख्शो। बेचारे डर के मारे अधमरे, गुमसुम तथा बदहवास हो गए हैं।'

उसने कहा, 'अरे यार, बेहोशी की हालत में सभी आँखें मूँदकर मुँह में ठेपी रखते हैं, लेकिन होश में आते ही उनकी जबान खुल जाती है, आँखें भी खुल जाती हैं। फिर भरी अदालत में ये ही खुली जबान और खुली आँखें पहचानेंगे कि वे डाकू कौन थे और फिर तेरे-मेरे गले में फाँसी का फंदा पड़ जाएगा।' इतना कहकर उसने कुल्हाड़ी के एक-एक प्रहार से उन मासूम बच्चों के एक-एक के दो-दो टुकड़े उड़ा दिए। वह पैशाचिक कृत्य देखकर मैं भी गश खा गया। लेकिन उस डाके में हमारे हाथ में दस हजार की लूट लगी। हो सकता है मेरे मन को इसी कारण उस चक्कर की बाधा अधिक मात्रा में नहीं पहुँची हो और उसी कुमार्ग पर वह पूर्ववत् चलता रहा हो।

दूसरी नृशंस घटना जो मैंने अपनी आँखों से देखी, उसके सामने तो उपर्युक्त घटना भी फीकी पड़ जाती है। रफीउद्दीन हरदम हमसे बड़ी शान से कहता कि आजकल वह हर साल में एक सुंदर स्त्री रखता है। वर्ष समाप्त होते ही वह उसे जान से मार डालता है और फिर दूसरी रखता है। अन्य लोग-बाग अपने सत्कर्मों को राई का पहाड़ बनाकर बखान करते हैं, उसी प्रकार यह घनचक्कर प्राणी अपने दुष्कर्मों को भी बड़ी शान से तिल का ताड़ बनाकर बखानता था। उसपर इठलाता था। हाँ, जब यह खानदेश से भाग आया था तब इसके साथ एक हिंदू कायस्थ युवती थी, जिसका बिहार से जबरदस्ती अपहरण किया गया था। वह इसके कड़े पहरे में थी। उससे वह स्त्रैणबुद्धि होकर इतना प्यार करता था कि ऐसा लगता, इसके जैसा

प्यार करनेवाला चिराग लेकर ढूँढ़ने से भी नहीं मिलेगा। वैसे देखा जाए तो हमारे गिरोह के साथियों से भी जब तक मित्रता करता तो अच्छी तरह से करता। उस युवती पर वह बेहद लट्टू था, लेकिन वह किसी दुःख से कुढ़ती हुई दिखती। कभी-कभी तो ऐसा आभास होता कि वह अपनी जान को जान ही नहीं समझ रही है। एक बार उसे हिंदू धर्म के तौर-तरीके से हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हुए रफीउद्दीन ने देखा।

'क्या मन्नत माँग रही हो, मेरी जान, पत्थर के इस भगवान् से?'

तब गुस्से से भन्नाकर उसने कहा, 'तुम्हें फाँसी पर लटकाने की।'

'फाँसी' शब्द सुनते ही रफीउद्दीन ने मारे क्रोध के साँप जैसा फन उठाया। तैश में आने का झटका आते ही वह हमेशा ठहाका लगाता है—उसी तरह अट्टहास करते हुए उसने कहा, 'वाकई, इसका साल पूरा हो रहा है न?'

उस दिन उसने मुझसे कहा, 'शाम को मैं तुम्हें एक दिलचस्प बात दिखाऊँगा, यार! जंगल की घाटी में ऊँचे मीनार पर जाकर बैठ जाओ।'

शाम के समय मैं उस जंगल की घाटी की ऊँची मीनार पर जाकर बैठ गया। वर्षा की झड़ियाँ लगी हुई थीं। पानी से लबालब नदी सैलाबवश दोनों किनारों को छूती-उफनती, फूँ-फूँ फुफकारती हुई बह रही थी। फिलहाल उस वीरान जंगल में घाटी की मीनार तक नदी का पानी चढ़ने पर उसे सैलाब समझा जाता। इस प्रकार नदी में प्रचंड बाढ़ आई हुई थी।

थोड़ी ही देर में रफीउद्दीन उस सुंदर रमणी के साथ वहाँ आ गया। उसे बेपरदा करके हिंदू युवती की तरह कंधे पर आँचल लपेटकर वह उसे खुली हवा में बाढ़ का नजारा दिखाने ले आया था। बहुत लंबे अरसे के बाद चेहरे का अवगुंठन दूर होने से विशुद्ध, ताजा, खुली हवा साँसों में भर लेने के कारण उसके मुख पर तनिक संतोष झलक रहा था। रफीउद्दीन निर्लज्ज छेड़खानी, चापलूसी और खुशामद की परिसीमा के साथ उसका प्रणयाराधन कर रहा था। मुझे इस बात से आश्चर्य हुआ कि वह मेरे सामने इस तरह उसे बेपरदा करके खुले दिल से इस एकांत स्थान पर ले आया। उसपर विषयांध सा होकर जब वह उसे अपनी बाँहों में भरने लगा तब तो मेरी मति ही मारी गई। दरअसल मेरे मन में भी दुर्दम्य अभिलाषा उत्पन्न हो गई थी कि चाँद के उस टुकड़े को मैं भी अपनी बाँहों में भर लूँ।

रफीउद्दीन ने उसे हाथ से निकलने की कोशिश करते हुए देख कसकर दबोचा और फिर ऊपर उठाया। तत्पश्चात् छोटे बच्चे की तरह उसे दोनों हाथों में लिटाकर 'मेरी प्याली-प्याली नन्नी-मुन्नी' कहकर प्यार से दुलारा, पुचकारा, झुलाया और फिर एक झटके के साथ उसकी साड़ी लगभग आधे से अधिक उतारकर कामोन्मत्त

निर्लज्जता के साथ मुझसे कहने लगा—'देख ले यार, जी भरकर देख ले इस जन्नत की हूर को!'

मैं भी इस विचार से कि इस विकृत सनक में यह विषयांध पुरुष न जाने क्या करेगा, कामावेश में थरथराते हुए उसे देख ही रहा था।

इतने में···

उसने उस सुंदर सुकुमार युवती को आवेशपूर्ण ताकत के साथ उस मीनार से नदी के सैलाब में दूर फेंक दिया, जैसे हम एक पत्थर को जोर से घुमाकर झटके के साथ फेंकते हैं।

'भई, साल जो पूरा हो गया था इस लौंडिया का···' कहकर उसने जोरदार ठहाका लगाया।

'अरे शैतान की औलाद!' मैं जोर से चीख पड़ा।

'अरे यार, पहले मजा तो देख। यही दिलचस्प नजारा दिखाने के लिए तो मैंने तुम्हें यहाँ पर बुलाया था।'

दो बार वह मासूम निरपराध रमणी मौजों पर सवार हो गई। लगे हाथ दो बार वह नीचे डूब गई। उस सैलाब के बीच में ही एक ऊँची चट्टान सिर उठाकर खड़ी थी। एक महाकाय प्रचंड लहर कलकल, हर-हर-हर-हर हहराती ध्वनि के साथ उधर मुड़ गई। उसमें फँसी हुई वह युवती तथा उसकी गुलाबी साड़ी साफ-साफ नजर आ रही थी।

बहुत ऊँचे लटकाया हुआ सुंदर बिल्लौरी झाड़फानूस अचानक टूटकर, तेजी से नीचे भहराते ही जिस तरह चकनाचूर होता है और उसकी चिनगारियाँ बिखरकर, झड़कर ज्योति अचानक बुझ जाती है, उसी तरह उस प्रचंड लहर के चट्टान से टकराते ही उस जलौघ की हिमधवल धज्जियाँ उड़ गईं और उस अत्यंत निरीह भोली-भाली कंचन-गौर युवती का मस्तिष्क तार-तार होकर उसकी पंच प्राण-ज्योतियाँ एक साथ अस्तंगत हो गईं। फिर वह पानी की ऊपरी सतह पर नहीं आई।

'अरे नीच, शीशमहल के कुत्ते, अरे तुमने यह क्या कर डाला? मौत के मुँह में ढकेल दिया उसे?' मैंने शोकावेश में सिसकते हुए उससे साफ-साफ दो टूक सवाल किया।

'अरे पगले, मौत के मुँह में नहीं, उसके बारे में बात करनी है तो उसकी जबान में बोलो। उसकी संस्कृत भाषा में पानी को मौत नहीं कहते, बेटा! पानी को जीवन कहा जाता है। भई, मैंने उसे जीवन के सैलाब में फेंका है।' यह कहकर उसने अट्टहास किया।

'अरे, आज उसे मौत के घाट नहीं उतारता तो कल वह खुफिया पुलिस को मेरा अता-पता बता देती, समझे?'

महाराज, मैं उसके जैसा जल्लाद, नीच नहीं हूँ फिर भी पाप-कर्मों का मुझे चस्का सा लग गया था। अलौकिक सत्कर्मों की तरह ही अलौकिक, असाधारण दुष्कर्मों का भी एक दुस्साहस होता ही है, ताकि लोगों पर सिक्का जमाया जाए। उसी प्रकार हमारा दबदबा जमने से इसके भीषण दुष्कर्मों का हमपर जो प्रभाव था, वह दिन दूना रात चौगुना होता गया। उसके योगानंद बाबावाले ढकोसले से हमारी पाँचों अँगुलियाँ घी में होने के कारण हम भी उसका साथ निभाते ही रहे।

इसके बाद हम मथुरा आ गए। इसने कर्णपुतली समान एक जलादर्श यंत्र का पाखंड रचाया। कहा कि उस यंत्रबल के जरिए अतीत, भविष्य, वर्तमान बिलकुल ठीक-ठीक बताया जा सकता है। इस बात को हम सर्वत्र फैला रहे थे। कहीं भी चले जाने पर हम परस्थ, सौदागर, वकील, डॉक्टर, इस तरह विविध स्वाँग रचाकर पृथक् रूप से गाँव में घूमते और पृथक्-पृथक् रूप से गप्पें हाँकते कि योगानंदजी ने अमुक-अमुक चमत्कार हमारे रू-ब-रू किए, अमुक भविष्य कथन ठीक-ठीक बताया। जब हमें इस बात की खबर मिलती कि कोई सज्जन इसके पास भूत-भविष्य पूछने आ रहे हैं, तो हममें से कोई एक किसी अपरिचित रईसजादे के भेष में इसके सामने बैठकर इससे कुछ प्रश्न पूछता और यह चाहे कुछ भी कह देता।

'अहो आश्चर्यम्! आहा! कैसी अद्‌भुत दिव्य दृष्टि! हूबहू वैसा ही सिद्ध हुआ जो हम कहते थे। सोलह आने सच।' इस तरह इसकी 'वाहवाही' करके जबरदस्ती एक मोटी-तगड़ी रकम इसके देवस्थान को देकर वापस लौटते। अर्थात् जिनके सामने हम यह नाटक करते, उन लोगों में प्राय: सभी स्त्री-पुरुष अंधविश्वास की मनोवैज्ञानिक छूत की बीमारी का निश्चित रूप से शिकार बनते। जिस सिलसिले में योगानंद के उत्तर असत्य सिद्ध होते उन्हें वैसे ही छोड़कर जो संयोगवश, काकतालीय न्याय से सत्य सिद्ध होते उन्हींका हम इधर-उधर ढिंढोरा पीटते फिरते। मथुरा में भी हमारा यह ढकोसला इसी तरह फलता-फूलता गया। उसी समय डॉ. नायडू नामक एक महिला हमारे झाँसे में आ गईं। बातचीत के दौरान उन्होंने नागपुर स्थित एक महिला और उसकी इकलौती बेटी, जिनसे उनकी मित्रता थी, दोनों की रामकहानी सुनाई। उन्होंने यह भी बताया कि वे दोनों मथुरा आई हुई हैं।

यह जानकारी प्राप्त होते ही यह बदमाश योगानंद अकेले में मुझसे कहने लगा, 'मैं जब काले पानी पर गया था तब मेरे साथ एक कैदी था जिसे फौज में दंड हुआ था। अन्य कोई कैदी मेरे पास कभी नहीं रखा जाता। अत: हम दोनों में गहरी घुटने लगी। उसने समय-समय पर अपने घर की सारी जानकारी मुझे दे

दी। डॉ. नायडू नागपुर की जिस महिला और उसकी बेटी को यहाँ लाने का जिक्र कर रही थीं, अवश्य वही उस कैदी की माता और उसकी युवा बहन होंगी। डॉ. नायडू ने जो बताया वह नाम, गाँव, वृत्त सबकुछ हूबहू मेल खाता है। वही है वह लड़की। अब मेरे हाथ आ गई। माल···माल···मालती···हाँ-हाँ यह मालती ही है। हाय री मेरी मालती, उसे तो दसों बार मैंने अपनी शय्या की शोभा बनाया है। मालती! मेरी मालती··· ।'

'अरे भाई, तुम तो काले पानी पर थे न? फिर उस लौंडिया को अपने बिस्तर की शोभा बनाया कैसे बनाया? सपने में? उसका नाम लेने से ही दिल में लड्डू फूटने लगे जनाब के।' मैंने व्यंग्य कसा।

'देख हसन! किसी खूँखार जानवर को भूखे पेट बंद करो, उसे मांस मत दो। फिर खून से सनी एक हड्डी उसके सामने डालो और देखो वह खूँखार जानवर उस हड्डी को कितने चटकारे ले-लेकर चचोड़ता है। ठीक उसी प्रकार काम विकार जहाँ बरसों से मन के पिंजड़े में भूखे भेड़िये की तरह बंद रखा जाता है, उस काले पानी पर औरत का जो भी नाम कानों पर आ जाता है, वही नाम तन-मन में ऐसा बस जाता है कि वह उस नारी की एक मूर्ति बन जाता है, उस काल्पनिक मूर्ति पर मन विषयी हो जाता है। यथार्थ में नहीं अपितु सपने में उससे रत होता है। हिंदू लोगों में उषा का एक सुंदर आख्यान है, कभी सुना भी है तुमने? स्वप्नस्थित प्रिय पुरुष उसे प्रत्यक्ष दृश्यमान पुरुष की अपेक्षा अधिक काम-विकल कर किया करता है। मेरा भी ठीक वैसा ही हाल हो गया था। मजबूरन बार-बार सिर्फ उसी साथी कैदी के साथ बातचीत करने के कारण और उसकी बातों में बार-बार उस सयानी, पर कच्ची कली का, जो अनबिंधा मोती थी, जिक्र आने के कारण मेरी बुभुक्षित कामेच्छा पर उस कल्पनारम्य मूरत की, उस नाम की जो एक अमिट छाप अंकित हो गई, वह अब अन्य किसी भी प्रत्यक्ष नारी के संबंध में नहीं हो सकती; और दिलचस्प बात देखो, उसी नाम की रमणी का, उस कामातुर कल्पना का ही अब मैं प्रत्यक्ष रूप में भोग कर सकूँगा। बस! हम उसका अवश्य अपहरण करेंगे।'

उसके अपहरण का निश्चय होते ही हमने अपनी हमेशा की चाल चली। भजन समाप्त होते ही जन-समूह के वापस जाते समय जहाँ से मालती अपनी माँ के साथ रेलपेल में चल रही थी, वहाँ हममें से ही दो-तीन जनों ने झूठ-मूठ की हाथापाई शुरू की। उसके साथ ही उस भीड़-भड़क्के में एकदम भगदड़ मच गई। उस ठेला-ठेली में मालती को उसकी माँ से अलग किया गया। फिर हमारे इस योगानंद स्वामी के एक शिष्य ने बनावटी मासूमियत का पुतला बनकर उसे घर तक छोड़ने का बहाना बनाकर अपने कब्जे में ले लिया और सीधे गुलाम हुसैन के अड्डे

पर पहुँचा दिया। वहाँ वह रात इस दुष्ट ने मालती की सेज पर ही बिताई।

दूसरे दिन इसलिए कि इस अपहरण की बात शहर में न फैले, मालती के सगे-संबंधियों को हमने माया-ममता के जाल में फँसाकर उन्हें दूसरी ही राह पर लगा दिया, जो बहुत लंबी थी। यह लफंगा काले पानी में रहते समय इस मालती के भाई के रंग-रूप वृत्तांत को जानता था। वह सारी जानकारी अंतर्दृष्टि से प्राप्त होने का इसने नाटक किया। उसकी माँ को भी, उसके सिर पर घाव का जो निशान था, वह याद नहीं था। वह भी जब इसने जलादर्श यंत्र-मंत्र का ढिंढोरा पीटकर कहा कि वह अंतर्ज्ञान से उस निशान को देख सकता है, तब वे महिलाएँ इसकी दैवी अंतर्दृष्टि पर मुग्ध हो गईं। तब लगे हाथ इसने भूत, भविष्य, वर्तमान के बारे में बताया कि 'मालती नागपुर की ओर अपने एक गुप्त प्रेमी के साथ भाग गई है, आप लोग इधर इस बात का हो-हल्ला न मचाते हुए गुप-चुप चली जाएँगी तो उसे वापस ला सकती हैं।' उसपर भरोसा करके मथुरा की पुलिस तथा अन्य किसीको कानोकान खबर न देते हुए वे महिलाएँ नागपुर रवाना हो गईं। हम लोग भी मथुरा से चंपत होने लगे थे कि अचानक दूसरे ही पाप-कर्म का परिपाक होने से हमें उसका फल भुगतना पड़ा। इलाहाबाद का यह वॉरंट निकल जाने से हम लोग लगे हाथ पकड़े गए। इस धाँधली में इसका सुराग अभी तक किसीको भी नहीं मिला कि उस बेचारी विवाह योग्य मालती को लेकर वह जालिम गुलाम हुसैन किधर फरार हो गया। उस पापी ने उस निहायत मासूम, निरपराध, बेबस कोमलांगी की कैसी दुर्गति की होगी, इज्जत की कैसी धज्जियाँ उड़ाई होंगी—अल्लाह ही जाने।''

भावुक न होते हुए भी उस न्यायाधीश के होंठ क्रोध के मारे फड़कने लगे और दूसरी तरफ आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई। श्रोताओं में भी कइयों की आँखों में आँसू छलकने लगे।

…और एक व्यक्ति की आँखों से दया के आँसू झरझर बह रहे थे, लेकिन वह न न्यायाधीश था, न न्यायालय में बैठा श्रोता। वह था उन्हीं डाकुओं में से एक आरोपी, वह पश्चात्तापदग्ध किशन…

देखने में वह बदसूरत, बातचीत में संयत, उम्र से नौजवान, नरमदिल, आचरण से आत्मसम्मानी लग रहा था। उस संपूर्ण मुकदमे में वह सिर झुकाकर बैठता था। किंतु जब वह अपना बयान देने खड़ा हुआ तब तनी हुई गरदन और सिर ऊपर उठाकर इतमीनान के साथ सधे, नपे-तुल शब्दों और अपनी आँखों में मालती की दुर्गति के जिक्र के साथ भर आए आँसू पोंछता हुआ कहने लगा, ''मैं काशी में वेदांत विद्या का एक छात्र था। मेरा चित्त विरागी बनकर किसी गुरु का सान्निध्य प्राप्त कर भक्ति और योग की साधना की कामना करने लगा। आगे चलकर मैं मथुरा

आ गया। उसी समय वहाँ इस योगानंद गोसाईं के भजन की और अंतर्यामी होने की काफी धूम मची थी। उससे रीझकर मैं इसक. शिष्य बन गया। मैं अच्छा सारंगी-वादक हूँ। भजन भी गाता हूँ। इसके भजन में मैं इसका साथ देने लगा। एक सप्ताह भी नहीं हुआ था कि इस गिरोह के कुछ लोगों ने कहना शुरू किया कि यह हिंदू नौसिखिया है, इस कारण इसे चार हाथ दूर ही रखा जाए। कुछ इस प्रकार की खुसुर-फुसुर मैंने सुनी। मुझे यह संदेह भी हुआ कि दाल में कुछ काला है। गुप्त रूप से कुछ गोलमाल चल रहा है। परंतु उस समय इस मनुष्य को, जो अपने आपको योगानंद कहता था, मैं गुरुदेव की भावना से देखा करता था। अत: इसका कोई भी दुराचार मुझे दिखाई नहीं दिया। इसलिए अन्य शिष्यों के अपराधों का ठीकरा मैंने इसके माथे नहीं फोड़ा। बिना बुलाए मैंने इसकी मठी में या मजलिस में कभी कदम भी नहीं रखा। इसके आगे दो-तीन दिनों के बाद रात में भजन के पश्चात् लोगों के वापस लौटते समय जो दंगा-फसाद हो गया, उस रात योगानंद ने मुझे बुलाकर कहा कि इस बलवे में मालती अपनी माँ से बिछुड़ गई है। उसे उसके अपने घर या अन्नपूर्णा देवी के घर सही-सलामत पहुँचा दो। अन्नपूर्णा देवी के साथ जब वह आई थी, तब मैं तुम्हें ही उनके साथ उनके घर भेजा करता था। अत: वह तुमपर भरोसा करती है। यदि तुम साथ जाओगे तो वह इसी रात मेरे ड्राइवर के साथ मेरी कार से वापस जाना चाहती है। तो उसे ले जाओ।

मैंने इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार किया। अंधा क्या चाहे दो आँखें? मालती के साथ कार में जा बैठा। मैं उसे सांत्वना देने में तनिक उलझ गया। इतने में मोटर मथुरा के किसी अजनबी इलाके में घुसकर किसी अजनबी घर के पास खड़ी हो गई। मेरे पूछने पर ड्राइवर ने बताया, 'अन्नपूर्णा देवी ने यहीं पर उतरने के लिए कहा था। वे भीतर ही हैं।' इतना कहकर वह मालती को लेकर उस घर के पास गया। तुरंत बाहर आते हुए उसने मुझसे कहा, 'चलो, वापस चलें।' इस प्रकार किसी प्रकार की धोखेबाजी तथा कुटिल षड्यंत्र का रत्ती भर भी आभास या आशंका मन में न होने के कारण कार से उतरते समय मालती के भीतर बुलाने पर भी उसके पीछे भीतर न जाते हुए ड्राइवर के कहने मात्र से मैं तुरंत वापस लौटा। परंतु उसके पश्चात् मुझे मठ में न बुलाते हुए एक दूसरे ही शिवालय में रखा गया। दूसरे दिन रात के भजन के समय केवल साथ करने के लिए उस गोष्ठी में लाया गया। उस सभा में अंत में इसी गिरोह में होने के कारण मैं भी पकड़ा गया। मुझे इस बात का अत्यंत खेद है कि मैं मालती के विश्वास के लिए अपात्र तथा उसकी सहायता के लिए अक्षत सिद्ध हुआ। यदि मेरा कोई अपराध है तो मेरे विचार से बस यही है। न्यायाधीश के मतानुसार अन्य कोई अपराध सिद्ध होगा तो होने दो।''

आरोपियों में से सभी के बयान, पुलिस के सारे प्रमाण, मुकदमे का सारा काम लगभग समाप्त हो गया। परंतु रफीउद्दीन अर्थात् योगानंद ने अभी तक अपनी सफाई के सिलसिले में कुछ भी नहीं कहा था। बस उसका हँसी-मजाक जारी था, वह जी खोलकर हँस रहा था। इन सभी आरोपियों की तरफ से मिलकर सरकार ने अपनी ओर से एक वकील दिया था। परंतु रफीउद्दीन ने बीच में उसकी भी खिल्ली उड़ाने से ही संबंध रखा था। उसके विरुद्ध उसके गिरोह के फुट्टैल साथियों ने उसके नृशंस कर्मों का जो तूमार बाँधा था, उस समय वह उनसे भी नाराज नहीं दिखाई दे रहा था। न्यायाधीश के साथ उसकी काफी घनिष्ठता बनी हुई दिखाई दे रही थी। इस पैशाचिक वृत्ति के मनुष्य के अघटित मन को किसी वैज्ञानिक विषय की तरह गहराई से अध्ययन करने के लिए न्यायाधीश उससे कुरेद-कुरेदकर बात करते, उसे हँसने-बोलने देते, उसे गौर से देखते। आखिर अभियोग समाप्ति से पहले फिर से एक बार उन्होंने रफीउद्दीन से पूछा, "तुम्हारे ऊपर जो आरोप लगाए गए हैं उनके सिलसिले में तुम्हें कुछ सफाई पेश करनी है?"

"अच्छा उगलता हूँ, थोड़ा-बहुत···" रफीउद्दीन किसी शेखीबाज वक्ता की भाँति, जो सभा के अत्याग्रहवश बोलने के लिए खड़ा रहता है, शान के साथ हिंदी-उर्दू झाड़ने लगा, "इन चालीस-पचास साथियों ने मुझपर इतने असंख्य आरोप लगाए हैं कि मुझे आज उनका अलग-अलग स्मरण भी नहीं रहा है। भला तब उनके अलग जवाब भी कैसे दूँ? इन सभी का मिलकर जिसे एक सर्वसाधारण आरोप कहा जा सकता है, वह यह है—मैं एक दुर्दांत अपराधी हूँ तथा मुझे कड़ी-से-कड़ी सजा फरमाना ही न्यायसंगत सिद्ध होनेवाला है।

इस सर्वसाधारण आरोप के लिए मेरा सर्वसाधारण जवाब यह है कि मैं पूरी तरह निर्दोष हूँ, अतः मुझे कुछ भी सजा न फरमाते हुए मेरी अकारण बदनामी के लिए पुलिस की ओर से मुझे हरजाने के तौर पर एक मोटी रकम मिले, यही न्यायसंगत होगा।

इन पुलिसवालों ने और इन आरोपियों ने कहा है कि मैंने इतने लोगों को जान से मार डाला और इतनी कोमल कन्याओं की अस्मत लूटी, जैसे मैं कोई उपन्यासकार, नाटककार अथवा न्यायाधीश हूँ। अपने उपन्यास के एक ही पृष्ठ पर चाहे कितनी भी कन्याओं की भरपूर नग्न दुर्गति किसीसे भी करा लीजिए और चाहे तो उस मानसिक कामचेतना को सभ्यता, शिष्टता का चोला पहनाकर स्वाद लीजिए अथवा नाटक के लिए एक ही प्रवेश में इतने सारे मुरदों को फटाफट गिरा दीजिए कि रंगमंच पर उनका समाना भी मुश्किल हो अथवा अपने निर्णय-पत्रक के एक स्तंभ में 'फाँसी' के दो अक्षरों के गड्ढे में दो सौ जीवों को जिंदा गाड़ दीजिए, ऐसा करते

हुए कलम से स्याही की बूँदें टपटप भले ही गिर जाएँ पर आँखों से आँसू का एक कतरा भी नहीं झरेगा। इस प्रकार किसी शिष्ट उपन्यासकार, फनकार, नाटककार अथवा सदय न्यायाधीश के अतिरिक्त अन्य कोई मनुष्य इतने भीषण कृत्य इतनी चालाकी तथा इतनी शीघ्रता से भला कैसे कर सकता है—आप ही सोचिए।

मेरा कहना है कि क्या इन तमाम पुलिसों ने, गवाहों ने, आरोपियों ने जान-बूझकर गठबंधन तथा साँठ-गाँठ करके मुझपर इतने सारे मिथ्या आरोप लगाए? नहीं महाराज, नहीं। मैं पुलिस आदि लोगों को उतना ही शरीफ तथा पापभीरु समझता हूँ जितना कि अपने आपको। मैं भी बेकसूर, ये भी बेकसूर। फिर भला यह सारा अजब घपला होने का कारण ही क्या हो सकता है? इसका कारण जिस एक शब्द में कहा जा सकता है और जिस शब्द का उच्चारण करते ही पुलिस ने मेरे विरुद्ध जो जबरदस्त प्रमाण इकट्ठा किया है, उसे न झुठलाते हुए भी मुझे बेगुनाह सिद्ध करने की खूबी आपकी विवेकबुद्धि के हाथ लगेगी। वह शब्द है—गलतफ़हमी—धारणाओं, विचारों का सरासर घालमेल।

और हुजूर, उसका कारण है मुझमें विद्यमान एकमेव दोष। अल्लाहताला ने मुझे किसी शरीफ, सदय, दूध के धुले न्यायाधीश जैसा शरीरिक डीलडौल, गठन न देते हुए एक खूँखार डाकू सदृश बनावट दी। लेकिन माईबाप, इस दोष के लिए जो कुछ दंड देना हो वह अल्लाह को दिया जाए, न कि मुझे।

क्या कहूँ सरकार! दुर्भाग्यवश मेरा चेहरा-मोहरा तथा मेरे शरीर का हूबहू बाल-बाल उसी रफीउद्दीन नामक खूँखार, हत्यारे, नृशंस, अधमाधम डाकू जैसा होगा जो पंजाब में डाकाजनी करके काला पानी गया था, वहाँ से फुर्र हो गया था और भागकर बिहार, खानदेश आदि इलाकों में अक्षम्य अत्याचारों का भीषण अंधेरखाता जिसने मचाया था। इसलिए हो सकता है इन सभी सज्जनों ने उसके प्रति सात्विक क्रोध के आवेश में यही सोचा होगा कि मैं ही वह कमीना, मक्कार पापी हूँ।

हुजूर, अपने इस कथन को मैं ठोस प्रमाण द्वारा सिद्ध करना चाहता हूँ। इसलिए वह असली पापी डाकू रफीउद्दीन अहमद जब तक नहीं मिलता तब तक तो मुझे निरपराध समझकर छोड़ दिया जाए अथवा पुलिस उसे गिरफ्तार करे, ताकि उसे देखते ही आपको पता चले कि मेरा कथन हर्फ-ब-हर्फ सही है। माईबाप, आरोपी की स्वरक्षार्थ आवश्यक प्रमाण प्राप्त कराने में जो भी सहायता देना मेरे लिए संभव है, उसे देने के लिए मैं भी जो सहायता माँग रहा हूँ वह देना आपके लिए भी उचित है। मुझे निरपराध समझकर छोड़ दीजिए, फिर मैं उस असली रफीउद्दीन अहमद को पकड़कर लाता हूँ। मुझे जमानत पर छोड़ दिया जाए, बस! यही है मेरा

अपनी सफाई का बयान—मेरा defence (पुलिस की ओर देखकर) क्यों भई, सौ सोनार की तो एक लोहार की, है न?''

अदालत में बैठे लोगों की यथासंभव दबी-दबी हँसी जब तक यथासंभव हलकी पड़ी, तब तक न्यायाधीश महाराज भी होंठों से फाउंटेनपेन का पेंदा सटाकर छत की ओर विचारपूर्वक ताकते रहे। फिर उन्होंने पूछा, ''रफीउद्दीन उर्फ योगानंद, अब भी मुझे तुमसे कुछ मामूली जानकारी के आखिरी प्रश्न पूछने हैं। उनके सही और सच उत्तर देने में ही तुम्हारा कल्याण है।''

हाथ जोड़कर उस आरोपी ने विनम्रतापूर्वक खड़े होते हुए कहा, ''पूछिए सरकार!''

''तुम्हारा असली नाम?''

''योगानंद गोसाईं (गोस्वामी)।''

''तुम्हारा व्यवसाय? तुम क्या करते थे?''

''वैसे व्यवसाय तो कुछ भी नहीं करता था, माईबाप! बस, भगवान् का भजन किया करता था।''

''इन आरोपियों में से कुछ डाकू तुम्हारे चेले ही बने हुए थे, क्या यह सच है?''

''यह सच है कि इनमें से कुछ लोग मेरे चेले बन गए थे, पर भला मैं क्या जानूँ कि ये डाकू-चोर हैं या साव?''

''अच्छा, इस हसन भाई को, जिसने तुम्हारे खिलाफ बयान दिया है, जानते ही हो। पर इसके बारे में तुम और क्या जानते हो?''

''इस आदमी को तो मैं जानता हूँ, सरकार! पर इसके इस नाम को बिलकुल नहीं। दूसरी बात यह है इसे भाँग, गाँजे, चरस की जबरदस्त लत है। जब देखो गाँजे का दम लगाता रहता है ससुरा। उनके नशे में इसे न जाने कैसे-कैसे अजीब-अजीब आभास होते हैं। जिस तरह भूत-प्रेतों से डरे हुए व्यक्ति पर उसकी छाप पड़ती है, उसी तरह इस प्रकार के नशे में भी सबको ऐसे आभास होते हैं। परंतु इसकी विशेषता यह है कि उन आभासों की छाप इसके दिलो-दिमाग पर इतनी उत्कटता से पड़ती है कि होश में आने के बाद भी इसकी यही धारणा होती है कि वे सत्य घटना ही थीं, न कि आभास। मेरे संबंध में इसने जो घटनाएँ बताईं वे इसके गाँजा के रंजक तथा भंग के नशे में देखे हुए आभास ही थे। यदि जेल में उसे भाँग, गाँजा, चरस का रंजक नहीं मिलता तो पुलिस उस नशे में कही हुई सारी सच्ची-झूठी बातों को सच समझकर उसे गप्पीदास पुराण कभी नहीं बताती, जो उसने अपने बयान में कहा है।''

"अच्छा! तुम मालती को जानते हो?"

"जी सरकार! वाह जी वाह! कैसे पूछ रहे हैं आप कि मैं मालती को जानता हूँ या नहीं। मैं उसे अच्छी तरह से जानता हूँ। इतना ही नहीं, वह मुझे बहुत प्यारी लगती है।"

"मालती को तुमने सबसे पहले कहाँ देखा था?"

"रानी के बाग (विक्टोरिया गार्डन) बंबई में, सरकार! वहाँ सबसे पहले बचपन में मैंने उसे देखा। तभी से वह मेरे दिल में ऐसी रच-बस गई कि उसका कलम लाकर मैंने अपने बगीचे में लगाया। क्या कहूँ हुजूर, मुझे तो जुही-चमेली से भी ज्यादा अच्छी लगती है मालती। भजन के समय मैं मालती के फूलों का हार ही अपने गले में डालता था। क्यों, है न बड़ा प्यारा पेड़?"

न चाहते हुए भी न केवल श्रोताओं के मुख पर अपितु न्यायाधीश के मुख पर भी इस निर्लज्ज, वाहियात आरोपी की इस अप्रत्याशित शब्द-क्रीड़ा से मुसकराहट उभरी। उसे तुरंत दबाकर न्यायाधीश ने प्रश्न किया, "क्या यह सच है कि तुम यह कहकर लोगों की आँखों में धूल झोंकते हो कि तुम्हें भूत-भविष्य-वर्तमान बताने की अंतर्दृष्टि है?"

"महाराज, यह सोलह आने सच है कि भगवत्‌भजन में तन्मय होते ही मेरे अंत:चक्षुओं के सामने भूत-भविष्य का चलचित्र खड़ा हो जाता है। हाँ, पर यह सफेद झूठ है कि मैं उसका आडंबर बनाकर लोगों को उल्लू बनाता हूँ। मैं कभी किसीसे यह नहीं पूछता कि मेरे भविष्य कथन सत्य सिद्ध होते हैं या झूठ। न मैं किसीसे ज्यादा बातचीत करता, न ही किसीसे एक भी धेला लेता। मैंने लोगों से कभी ठग विद्या नहीं खेली। बल्कि अब इस बात का अहसास हो रहा है कि यदि किसीने छू-छू बनाया है तो मुझ जैसे भोले-भाले अलल बछेड़े को इन लुच्चे-लफंगे लोगों ने ही, क्योंकि संत, साधु, शिष्य बनकर और मेरे इर्दगिर्द इकट्‌ठा होकर इन बगुलाभगतों ने ही मुझे खबर किए बिना गुरुडम का ढिंढोरा पीटा और न जाने कितने भोले-भाले लोगों को लूटा, तंग किया और ठगा।"

"तुम्हारा अंत:चक्षु क्या आज भी खुला है? यदि हो तो अभी इसी वक्त मेरे बारे में एक-दो भविष्य-कथन बताओगे?"

"जी हाँ, सरकार! जिस तरह मेरे बहिर्चक्षुओं को अभी दिखाई देता है, उसी प्रकार कल से आपके भविष्य की दो-तीन बातें मेरे अंत:चक्षुओं के सामने बिलकुल साफ-साफ प्रकट हो गई हैं। मैं भविष्य की उन बातों को बताने ही वाला था, परंतु…"

"परंतु, यदि वे दोनों भविष्य-कथन झूठ सिद्ध हो गए तो…"

"धत् तेरे की। फिर तो आप मुझसे तीसरा भविष्य मत पूछिए। किस्सा खत्म।"

"अच्छा, बताओ तो सही मेरे बारे में। याद रखो, गोल-मोल, संदिग्ध भाषा में नहीं, बिलकुल साफ भाषा में, जिसका अर्थ साफ नजर आए। चलो बताओ।"

"बिलकुल साफ, सीधी भाषा में, हुजूर, मैं आपको भविष्य बताता हूँ जो आपके लिए शुभ है—अपनी मौत अपनी ही आँखों से देखने के दुःखद प्रसंग का सामना आपको कभी नहीं करना होगा। दूसरा उतना ही अचूक परंतु मेरे लिए अशुभ भविष्य यह है कि इस अभियोग के निर्णय में आप मुझे निर्दोष सिद्ध करके कभी छोड़ेंगे नहीं। हिम्मत है तो मेरा भविष्य आप झुठलाकर दिखाइए।"

अबकी बार उस बेहया, बेमुरव्वत आरोपी के बनावटी वीर-रस तथा उस कुटिल मुसकान का आविर्भाव देखते ही न्यायालय में कोई भी हँसते-हँसते लोटपोट हुए बिना नहीं रह सका। वे आरोपी भी हँस पड़े जिनके हृदय चिंता और भय के मारे धकधक कर रहे थे। हाँ, जिसके चेहरे पर मुसकान की एक रेखा भी नहीं उभरी वह था सिर्फ किशन···।

इस अभियोग के आरोपियों के जीवन में यह अंतिम प्रसंग था, जिसमें वे जी भरके हँसे थे। अब हँसते-हँसते किए हुए भीषण पाप-कर्मों का फल भुगतने का समय समीप आ चुका था, क्योंकि न्यायाधीश न्यायदान का उस दिन का कार्य समाप्त करके तुरंत उठ गए और अभियोग की शेष विधि से फारिग होकर उन्होंने घोषणा की—'निर्णय चौथे दिन घोषित किया जाएगा।'

□

प्रकरण–७

गुलाम हुसैन के शिकंजे में मालती

अखिल भू-तल पर खाल्डियन, ग्रीक़, पारसी, यहूदी, ईसाई, मुसलिम प्रभृति जो धर्मक्षेत्र विद्यमान हैं, उनमें अति प्राचीन होते हुए भी अत्याधुनिक काल तक अपने महत्त्व तथा आकर्षण को अक्षुण्ण बनाए रखनेवाले और द्वापर युग की तरह ही आज भी कोटि-कोटि हिंदुओं का ज्ञानतीर्थ बने रहनेवाले श्रीकाशी क्षेत्र के आसपास एक उपवन के एकांत से बहती गंगा के किनारे एक प्राचीन घाट था। आसपास आबादी कहने लायक कुछ भी नहीं था। एक छोटा सा वीरान शिवालय था और उसके निकट बेला तथा चंपा के पौधे, बस इतना ही उस स्थल का खास अलंकार था।

जिस तरह कोई महारानी दिन भर राजसभा स्थित सामंत, नृपतियों, सेनापतियों, प्रधान मंडलों के मान-सम्मानों को राजसी शान से स्वीकारते-स्वीकारते संध्या तक थकी-हारी अपने अंत:पुर में आती है, केश संभार मुक्त करती है, दपदप दमकते अलंकार, जगर-मगर करती वेशभूषा उतारकर बहुत ही साधारण सी घरेलू धोती-चोली पहनती है, फिर एकांत उद्यान में निश्छलता के साथ फुलवारियों में स्वच्छंद विहार करती है, पल में मंचक पर लेटती है, उसी तरह भागीरथी काशी नगरी के सार्वजनिक घाटों पर लाखों भक्तगणों, राजा-महाराजाओं, सैनिकों, पुरोहितों, पंडों के पूजा-पुरस्कारों के टीमटाम, ठाट-बाट को स्वीकारती हुई अब साँझ की वेला में इस एकांत, विजन स्थल पर स्वच्छंदतापूर्वक लहर-लहर बह रही थी। सामने आकाश में शफक फूल रहा था। संध्याकालीन सूरज ने लाल गुलाबी जर्कमुर्क जमुर्रदी रंगों से लबालब पश्चिमी क्षितिज के हौज में से रंगों की बौछार करते, फव्वारे छोड़ते, झिलमिल करते फुहारों से फाग खेलते हुए पश्चिम को सतरंगों से सराबोर किया था।

उस विजन स्थल पर, उस प्राचीन घाट पर, भागीरथी के सलिल संथ प्रवाह

में एक ब्राह्मण युवक स्नानविधि के मंत्रोच्चारण करते हुए उस संध्या समय अपना स्नान कर रहा था। स्नान पूर्व ही उसने अपने वस्त्र धोकर उस शिवालय के निकट स्थित चंपा के पेड़ पर सुखाने के लिए डाले थे। स्नान से निवृत्त होते ही गीले अँगोछे के साथ ही उसने सूर्यनारायण को अर्घ्य समर्पित किया। फिर उन अधसूखे वस्त्रों को धारण करके कुछ बिल्व दल और चंपा के चार फूल तोड़कर वह शिवालय में गया और उन्हें सद्भाव से शिवलिंग पर चढ़ाकर हाथ जोड़ते हुए मन-ही-मन प्रार्थना करने लगा—'हे ईश्वर, मेरी मूर्खतावश मुझपर थोपे गए दोषारोपणों का निरसन कर उस पिशाच योगानंद के शिकंजे से तुमने मुझे मुक्ति दिलाई। उस पापी के संसर्ग-दोषवश मुझपर थोपे गए डाकेजनी तथा मनुष्य-वध के भयंकर आरोप से न्यायाधीश महाराज ने मुझे निर्दोष घोषित कर मुझे मुक्त किया। यह सब तुम्हारी ही दया का फल है। इन दुष्टों के कारण आई हुई विपदा से मेरे जैसे निरपराध मनुष्य का तो पुनर्जन्म हो गया है। यह तेरी ही दया है, प्रभु, जो तुम्हारी न्यायी वृत्ति लौकिक प्रतिष्ठा रखती है।

परंतु हे ईश्वर, न्यायी दया भी निष्पक्ष ही होनी चाहिए न?' वह तनिक झिझक गया, 'फिर तुम्हें अभी तक उस कन्या पर दया क्यों नहीं आती जो मुझसे भी अधिक निरपराध तथा निष्पाप है? यद्यपि न्यायाधीश ने मुझे उस भयंकर मुकदमे से निर्दोष छोड़ा है, तथापि एक दोष के कारण मेरा कलेजा फट रहा है। जाने-अनजाने में क्यों न हो मैंने अपने इन हाथों से मालती को उसके अपने घर छोड़ने की बजाय किसी अन्य स्थान पर छोड़ दिया। मुझे ज्ञात था, वह उसके घर का पता नहीं है। बेचारी 'मेरे साथ भीतर चलो' कह भी रही थी लेकिन व्यर्थ···। बेपेंदे के लोटे की तरह मूर्खतापूर्ण विश्वास के कारण उसके साथ उस अपरिचित घर में नहीं गया और उस दुष्ट नरपशु के, उस नीच, कमीने गुलाम हुसैन के हाथों उस बेसहारा, लाचार कन्या को सौंपने के दोष में अंशभागी बन गया। मैं बिलकुल अनभिज्ञ था, परंतु उस समय मैंने जिस कार्य को स्वीकार किया था उसमें मेरा कर्तव्य था कि वह बात ज्ञात करूँ जो ज्ञात नहीं है। अपने कर्तव्य के प्रति मैंने ईमानदारी नहीं दिखाई। मेरी यह लापरवाही भी एक दंडनीय अपराध है। सामाजिक अपराध न भी हो, पर नैतिक अपराध अवश्य है।

हे भगवन्, जो अपराध मुझसे नहीं हुए थे उन अपराधों के आरोपों से पहली बार मेरी मन्नत पूरी करके तुमने मुझे मुक्ति दिलाई। अब इस अपराध के दोष से भी मुझे मुक्ति दिलाओगे न प्रभु? मेरी यह दूसरी मन्नत भी पूरी करोगे न दयाधन? उस बेचारी मालती को उस खूँखार नरपशु के चंगुल से छुटकारा दिलाने का एक अवसर और सामर्थ्य तो मुझे दिया जाए। परंतु यह तो लगभग असंभव

ही प्रतीत होता है। किसीको भी मालूम नहीं कि वह है कहाँ? उसपर मैं कितना दुर्बल, अदना सा तुच्छ इनसान। उस निघरघट, बेमुरव्वत, मक्कार पापी के सशस्त्र कपटाचारों से सर्वथैव अपरिचित। अत: अवसर और शक्ति-प्राप्ति मेरे लिए दुर्घट ही है। फिर भी हे प्रभु, कम-से-कम अपनी न्यायपूर्ण दया का सुदर्शन चक्र तो उसके पीछे-पीछे भेजकर उन दुष्टों का संहार करो, तुम ही उसे मुक्त करो। हे ईश्वर, तुम सर्वसमर्थ हो। सज्जनों के संकटों का तुम निवारण करते हो, इसलिए ही तुम्हें दयासागर कहा जाता है।'

भक्ति-गद्गद वाणी से ईश्वर की प्रार्थना करते-करते इस अंतिम वाक्य के साथ उस युवक का मन भर आया, 'तुम सर्वशक्तिमान हो, सज्जन-रक्षक तथा परम दयाधन हो।' तल्लीन होकर एक-एक शब्द का उच्चारण करते-करते वह हाथ जोड़ते हुए खड़ा हो गया। पल भर के लिए उसका मन बिलकुल निस्तब्ध, नि:शब्द हो गया। परंतु उसके उस बहिर्मन की जड़ता और अंतर्मन दोनों में उस विधान पर अनजाने में न जाने क्या चर्चा हो गई, उसकी वह तल्लीन संज्ञाहीनता हलकी होते ही एक स्पष्ट संदेह उसके मन से निकलकर उसे टोकने लगा—

'ईश्वर यदि सज्जनों का संकट मोचन करने योग्य परम दयालु तथा सर्वसमर्थ है भी, तो वह उन निरपराध सुजनों को पहले ही संकट में क्यों ढकेलता है भला? दुर्जनों को इतना बलवान क्यों बनाता है कि वे उन सज्जनों पर असंगत अत्याचार करें, उन्हें शिकंजे में लें? सज्जनों की परीक्षा के लिए? फिर भगवान् सर्वज्ञ, अंतर्यामी कैसे हो सकते हैं? इस तरह का विधान कि दुष्टों के हाथों से उस भक्त को दारुणिक यंत्रणा, पीड़ा पहुँचाए बिना भगवान् को यह ज्ञात नहीं होता कि यह भक्त खरा है या खोटा, ईश्वर की सर्वज्ञता तथा परम दयालुता को क्या कलंक लगाना ही नहीं है? डाकुओं से गाँव की रक्षा करने की शक्ति होते हुए भी तथा इसका पूर्व ज्ञान होते हुए भी कि डाका डाला जानेवाला है, जो अधिकारी पहले गाँव के निरपराध लोगों को भरपूर लुटवाता है, मारधाड़, आगजनी करने देता है और फिर उनकी आर्त, करुण पुकार तथा मिन्नतों को पूरा करने के लिए उनके लहूलुहान घावों पर मुफ्त मरहम-पट्टी लगवाने की व्यवस्था करता है, भला उस अधिकारी की दयार्द्रता सराहनीय कही जाएगी? क्यों···'

एक के बाद एक उमड़-उमड़कर उछलती आशंकाओं के प्रचंड तथा आकस्मिक सैलाब में उस युवक का दम घुटने लगा और उसने उनका वह रेला बड़े साहस तथा बल से रोककर अपने मन को डूबने से बचा लिया।

'पाखंड! पाखंड!' इस तरह अपने आपसे जोर से कहते हुए वह युवक तेजी के साथ चहलकदमी करने लगा। उसका चित्त तनिक स्थिर होने पर जैसेकि उन

संदेह-विचारों से मलिन हुए चित्त को अक्षरश: प्रक्षालनार्थ ही उसने गंगा मैया के उस पवित्र तथा शीतल जल का आचमन किया। विचार-प्रवाह अन्यत्र मोड़ने के लिए वह उसकी शोभा देखने लगा, जहाँ सूरज अपने रंग बिखेरकर पश्चिम दिशा के संग इंद्रधनुषी फाग खेल रहा था।

उस रक्ताभ, गुलाबी, मखमली, सुनहरी रश्मियों के झकोरे भागीरथी के प्रवाह में नीचे गहराई में प्रतिबिंबित हो रहे थे—लहर-लहर में, नदिया की गहराई में सतरंगों का नर्तन जारी था। उन लहरों के ऊँचाई पर टकराने से उनका सहस्राधिक फुहार उड़ते ही नन्हे-नन्हे इंद्रधनुषों की बौछार ही प्रवाह के जल पर तरंगित हो रही थी।

धीरे-धीरे पश्चिमी क्षितिज पर लाल, गुलाबी, मखमली, सुनहरी, सुरमई छटाएँ हलकी, फीकी फिर विरल होती गईं। तेजस्वी राष्ट्रधुरंधर पुरुष के दूर होते ही जिस प्रकार राष्ट्र का जीवन कुम्हला जाता है, उसी तरह रश्मिरथी के अपनी रश्मियों के समूह को नि:शेषता से समेटकर अस्ताचल के पीछे पूर्णतया ओझल होते ही वह गंगा-प्रवाह रंगहीन, निस्तेज तथा मलिन दिखाई देने लगा। किसी सुंदर रमणी की देह से चेतना के निकल जाते ही उसपर तुरंत मुर्दनी छा जाती है, उसी तरह पश्चिम दिशा के मुखमंडल पर तुरंत कृष्ण छाया फैल गई। जो प्रफुल्लित मेघ ताजा गुलाब पुष्पों से भरी चंगेरी सदृश शोभायमान थे, वे कुछ ही क्षणों में सड़ी-गली सूखी पत्तियों की राशि बन गए।

अँधेरे की चपेट में आकर सुहानी सुनहरी पश्चिम दिशा स्याह पड़ते ही उसकी रंग-सज्जा में रँगे उस युवक की आनंदमग्न स्मृतियाँ भी अस्तंगत हो गईं और उसके चित्त में भी दु:खद स्मृतियों का घनघोर अँधेरा छाने लगा। 'एक, दो, तीन, चार। हाँ, चार दिन पहले ही इस समय मैं इलाहाबाद की उस भीषण कालकोठरी में 'कैदे-तनहाई' की सजा भुगत रहा था। उस घुप अँधेरे में, इस दारुण चिंता में टटोल रहा था कि कल क्या होगा। मेरे पैरों की बेड़ियाँ टूट गईं, मैं निर्दोष छूट गया। आज मैं यहाँ इस खुली ताजा हवा में साँस ले रहा हूँ। परंतु मालती! हाय! यह मखमली गुलाबी पश्चिम दिशा जिस तरह अँधेरे के चंगुल में फँसते ही स्याह पड़ गई, उसी प्रकार वह सुंदर किशोरी भी उस खूँखार भेड़िए के शिकंजे में फँस जाने से स्याह पड़ गई होगी। अस्त-व्यस्त, उलझे-बिखरे बाल, भयाकुल अवस्था ने जिसकी मुसकराहट की हत्या की है और इसी कारणवश जिसके मुख पर चिंता की मुर्दनी फैली हुई है—ऐसी अवस्था में वह कहीं बेकल-सी पड़ी होगी। इस बात का कुछ अंदाजा भी नहीं लगाया जा सकता कि जालिमों ने उसे कहाँ भगाया होगा?'

वह उठकर घाट पर इधर-उधर चक्कर काटने लगा। पिछले कई दिनों की आदत से महसूस हुआ कि पैरों में अब भी बेड़ियाँ हैं। चलते समय उन्हें समेटने के

लिए उसके हाथ कमर के नीचे टटोलने लगे। फिर यह याद करके वह मन-ही-मन मुसकराया कि वह मुक्त है, बेड़ियाँ टूट चुकी हैं, वह जेल की कोठरी में नहीं सड़ रहा है। सुदूर शून्य में ताकते हुए मालती के ठौर-ठिकाने के बारे में तर्क-वितर्क करते, उसके संबंधों में कई कल्पनारम्य प्रसंगों की रचना करते वह कभी चक्कर लगाकर डोलता-फिरता तो कभी रुक जाता।

वह युवक किशन था। योगानंद उर्फ रफीउद्दीन अहमद की डकैती के अभियोग में फँसने से पूर्व न्याय, वेदांत शास्त्रों का अध्ययन करने के लिए वह जब काशी में ही रहता था तब इसी शिवालय में आकर बैठता, उस ईश्वर को ही वह अपना आराध्य देवता समझता। आगे चलकर वह योगानंद के ढोंग-धतूरे का शिकार बन जाने पर जब पकड़ा गया तब बंदीशाला में उसने इसी देवता से अपनी निर्दोष मुक्ति के लिए मन्नत माँगी थी। इस मुकदमे का निर्णय इलाहाबाद की अदालत में चार-पाँच दिन पहले ही घोषित हो चुका था। रफीउद्दीन अहमद को आजन्म काला पानी कारावास और उसके साथियों में से प्राय: सभी को सात से दस वर्ष काला पानी की कड़ी सजाएँ घोषित की गई थीं। मुक्ति सिर्फ दो को मिली थी—एक हसन भाई, जो माफी का गवाह हो गया और दूसरा किशन, जो संपूर्ण निर्दोष सिद्ध हो गया।

उधर से छुटकारा पाते ही वह सीधे काशी आ गया और अपने उस प्रिय विजन शिवालय में ठहरा। उसका अपना घरबार, परिवार कुछ भी शेष नहीं था। उसके छप्पर पर फूस तक न होने के कारण कोई उसे पूछता तक नहीं था। वह देखने में कुछ बदसूरत था, अत: कभी किसीका मन उसमें नहीं उलझा था। मथुरा में जब वह था तब मालती को लिवाने और फिर घर तक छोड़ने के लिए बावन गज का वह शोहदा रफीउद्दीन उर्फ योगानंद किशन को ही उसके साथ भेजा करता था। उसका चुनाव वह उसके अन्य किसी गुणों के कारण नहीं, उसकी थोड़ी सी बदसूरती के दुर्गुण के कारण ही करता। कम-से-कम इस दृष्टि से तो उसकी कुरूपता का उसपर उपकार ही हुआ था, क्योंकि उसीके कारण मालती से उसका परिचय हो गया था और उस परिचय में उसे जीवन में वह पहला व्यक्ति मिला जिसने उससे प्रेम तथा सहानुभूति से बात की, उसे भला कहा। मालती तथा उसकी माँ किशन की सुशीलता की भूरि-भूरि प्रशंसा किया करतीं। उनसे दो-चार बार जो मुलाकातें हुईं उनसे किशन ने सोचा, वाकई दोनों उससे स्नेह करती हैं। तब तक पूरे जीवन में उसे किसीने पूछा तक नहीं था। इसीलिए हो सकता है, मालती और उसकी माँ के सीधे-सादे दो मीठे बोल उसे विशेष ममता के द्योतक प्रतीत हुए हों। हाँ, उसके मन में उन दोनों माँ-बेटी के प्रति स्नेह-भावना अवश्य अंकुरित हुई थी, और पूरे जीवन में

मिली इसी ममता से उसे इस प्रकार वंचित होना पड़ा। उसीकी छोटी सी भूल के कारण उन दोनों पर इस प्रकार संकटों का पहाड़ टूट पड़ा जिसमें उनका विनाश हो सकता है। यह बात उसे निरंतर शूल की तरह चुभने लगी। मालती सहज तथा मधुर स्वर में जिस प्रकार उसे पुकारा करती थी, उस प्रकार जीवन में उसे किसीने भी नहीं पुकारा था।

'मालती, फिर एक बार उसी तरह मुझे मधुर आवाज दो न, किशऽऽन।' उसने अपने आपसे मालती सदृश मधुर स्वर में हाँक मारने का प्रयास किया। फिर से एक बार तनिक विसंगत विचारों के प्रवाह में वह शिवालय में आ गया—उधर भी चहलकदमी करता रहा और फिर अपने आपसे ऊँचे स्वर में कहने लगा—

'नहीं! बड़े-बड़े पुलिस अफसरों को इस नीच, कमीने गुलाम हुसैन का ठौर-ठिकाना नहीं मिल सका, फिर भला मुझे कहाँ से मिलेगा? और मिलने पर भी मैं लाचार, अकेला उस चांडाल-चौकड़ी के हाथों से मालती को छुटकारा कैसे दिलाऊँगा? असंभव, असंभव। यदि संभव है तो हे भगवन्, सिर्फ तुम्हारे लिए ही, तुम ही अनहोनी को होनी में बदल सकते हो, प्रभु! दिला दो न उसे मुक्ति, मुझसे मिलवा दो न उसे। तुम्हारी इच्छा मुझ जैसा पापी भला कैसे जान सकता है? मैं उसके बारे में पूछूँगा भी नहीं। परंतु अपनी इच्छा मैं जानता हूँ। उसे कहे बिना मुझसे रहा नहीं जाता। मुझे मालती से मिलवाओ न, प्रभु!'

उसने भगवान् को साष्टांग प्रणाम किया। आँखों से सावन-भादों की झड़ी लगी हुई थी। झरझर बह रहे आँसू उसने पोंछ डाले। निष्फल विचार करते-करते थका-हारा दिमाग संज्ञाविहीन हो गया। आंतरिक विचार कुंठित होने पर वह बेल के तने से पीठ टिकाकर बैठ गया। बिछुड़े हुए दो-चार पंछी तेजी से उड़ रहे थे। गहरी शाम में जब तक मनुष्य मनुष्य को देख सकता तब तक जल्दी-जल्दी अपने नीड़ तक वे पहुँचना चाहते थे। वह युवक उन्हें देखकर अपना मन बहलाने लगा।

इतने में उसे इस बात का अहसास हुआ कि निकट ही उस घाट की सीढ़ियों की ओर से कोई सीटी बजा रहा है। उसने मुड़कर देखा तो सीढ़ी पर औंधा मुँह करके कोई झाँकता हुआ उसे धुंधला सा दिखाई दिया। इतने में पानी भरने के लिए गागर डुबोने की डब-डब आवाज भी सुनाई दी।

'इतनी गहरी शाम को पानी भरने के लिए गंगा पर कौन आया होगा? इधर मनुष्य की बहुत ही कम आवाजाही होती है। उसपर यह पनघट तो है ही नहीं। इस समय पानी की गगरी भरनेवाला व्यक्ति कहीं आसपास ही ठहरा होगा। होगा बेचारा कोई राहगीर।' मन-ही-मन सोचते हुए किशन उस व्यक्ति की धुंधली सी आकृति को सहज भाव से देखने लगा जो पानी भरकर उठ रहा था। गागर कंधे पर उठाकर

सीटी बजाता हुआ वह व्यक्ति दूसरी तरफ आए हुए रास्ते से न जाते हुए मंदिर के निकटवाली राह से जैसे-जैसे निकट आता गया वैसे-वैसे किशन भी मन-ही-मन अधिकाधिक चौंकता गया और चौकन्ना होकर गौर से देखने लगा—वह बेल की ओट में छिपता गया और वह आदमी जो सिर्फ दिल बहलाने के लिए सीटी बजाते गागर ले जा रहा था, उसके मंदिर के निकट से पगडंडी पर अपनी धुन में आगे बढ़ते ही किशन तीव्र संताप, भय तथा आनंदावेश में बड़बड़ाया, 'हाँ, हाँ, यही है वह। सोलह आने यही है वह गुलाम हुसैन। अभियोग में हसन भाई कथित कहानी यदि सत्य है तो मालती का अपहरण करने का काम इसीका है। परंतु इसने उसे बलूचिस्तान के दूर-दराज इलाके में रवाना तो नहीं किया? या उसे बेच डाला? या अपने पास ही रखा? यह यहाँ क्या कर रहा है? परंतु वह उसीके पास हो तो? उसका दर्शन होगा मुझे? कम-से-कम एक बार मालती फिर से दिखेगी? अरे, यह अँधेरे में जाने लगा और मैं मूरख यहीं पर क्यों रुका हुआ हूँ? यह मन कितना कायर है! कहता है, अपने हाथ में कुछ भी नहीं; और यह तो भेड़िया जैसा क्रूर, नृशंस है ही, इसके पास हथियार भी होंगे ही। अति विचार से इस तरह इनसान कापुरुष बन जाता है। इसके पीछे-पीछे अवश्य जाऊँगा। मालती को भी इसने यहीं कहीं छिपाया होगा तो? कैसा संयोग? जान लूँगा। अपने प्राणों की बाजी लगाऊँगा, पर उसे छुड़ाऊँगा।'

इस अंतिम विचार से उसमें गजराज की शक्ति तथा वनराज का साहस आ गया। उसे इस बात का आभास हुआ कि 'किशन, मुझे मुक्त करो', इस तरह मालती की आर्त चीख-पुकार उसे सुनाई दे रही है।

किशन तुरंत डग भरते हुए उस व्यक्ति के पीछे-पीछे लग गया, जो पानी लेकर जा रहा था। किशन जब उसके इतने निकट आया कि उसका रास्ता दिख सके तब वह दबे पाँव चलने लगा। अब किशन को संदेह की कोई गुंजाइश ही नहीं रही कि आगे जा रहा आदमी गुलाम हुसैन ही है। गुलाम हुसैन तनिक आगे जाते ही पगडंडी से हटकर एक बंजर मैदान की ओर मुड़ गया। आगे एक टूटी-फूटी बड़े से पथरीले चबूतरे जैसी ऊँचाई पर अलग छिपने लायक जगह थी, उसके चक्कर लगाकर वह बिना गारे के, सिर्फ एक के ऊपर एक पत्थर रखकर रची हुई पत्थरों की बाढ़ जैसी दीवार के पास आ गया। फिर उस मेंड़ पर गागर रखकर उस बाँध पर से अंदर कूदकर और वह गागर पुनः कंधे पर रखकर बड़े से एक बरगद के तने की ओट में छिपे हुए एक खपरैलवाले घर के द्वार पर आ गया। किशन उसके पीछे-पीछे सुरक्षित फासला रखकर आ रहा था। अब तक वह उस पत्थर की दीवार तक पहुँच चुका था। वह आँखें फाड़-फाड़कर यह देख रहा था कि उस घर के अंदर से कोई द्वार खोलकर सामने तो नहीं आ रहा। घर से हिलती-डोलती रोशनी देखते ही

उसके मन में एकदम यह विचार कौंधा कि अवश्य घर में कोई है। क्या वह मालती तो नहीं होगी? उत्सुकतावश उसका दिल धौंकनी के समान धड़कने लगा। परंतु गुलाम हुसैन के गागर नीचे रखकर कमर से कुछ निकालकर उस बंद दरवाजे की ऊपरी चौखट के पास हाथ रखते ही किशन समझ गया कि दरवाजे को बाहर से ताला लगा है। इससे यह जानकर कि भीतर कोई नहीं, उसका दिल खट्टा हो गया। उसका जी इसीलिए छटपटाने लगा कि मालती हाथ लगते-लगते जैसे फिर अदृश्य हो गई। इतने में गुलाम हुसैन ने ताला खोलकर दरवाजा पूरा खोल दिया और वह तनिक घुड़की भरे स्वर में गुर्राया, ''रोशन, अरी ओ रोशन, बत्ती बाहर ले आओ। बाहर क्यों नहीं आ रही? झोंटा पकड़कर घसीटकर ले आऊँ?''

यह सुनते ही किशन का पूरा बदन थर्रा उठा। उसका दिल उछला। हाँ, भीतर कोई स्त्री है। उसे अंदर कड़े पहरे में बंद किया होगा। बाहर जाना हो तो यह राक्षस उसे अंदर ही बंद करके ताला लगाकर जाता है। वह इसकी बात दिल से नहीं मानती। यह उसे वक्त आने पर घसीटकर लाने में भी नहीं हिचकिचाता। उस एक छोटे से वाक्य से किशन को इतनी विस्तृत जानकारी मिल गई। उसकी अपेक्षा के साथ वह सौ फीसदी तालमेल खा रही थी। वह होंठों-ही-होंठों में बड़बड़ाया, 'हाँ। अवश्य यह मालती होगी। यह रोशन ही मालती है। क्या वह दिया लेकर बाहर निकलेगी?'

संचित जिज्ञासावश उसके दिल में धुकधुकी होने लगी। क्रोध के मारे होंठ फड़फड़ाने लगे। यह देखते ही कि दिया दरवाजे के पास आ रहा है, वह उस पत्थर की दीवार की ओट में अँधेरे में छिपकर गौर से देखने लगा।

धुँधुआती हुई आग जिस प्रकार ढकोसने से बस उतनी देर तक फिर धधकने लगती है, उसकी लौ तनिक लपलपाती है, उसी प्रकार गुलाम हुसैन के 'आती है या नहीं? इधर और आगे।' इस प्रकार घुड़की भरे शब्दों तक ही हठीले कदम बढ़ाती हुई फिर अड़ियल बनकर रुकती हुई हाथ में दीपक लेकर मुसलिम वेश धारण की हुई एक युवती आखिर बाहर आई। वह दीपक गुलाम हुसैन के दिखाए हुए हुक पर उसने लटकाया और फिर भीतर जाने लगी, इतने में गुलाम हुसैन ने उसे पकड़ लिया। पास ही वृक्ष का एक बड़ा सा ठूँठ पड़ा था। उसपर वह टाँगें लटकाकर इस तरह बैठा जैसे कुरसी पर बैठा है और जबरदस्ती युवती को अपनी गोद में खींचते हुए उसने कहा, ''आ जाओ, मेरी जान! तुम चाहे हँसो या रोओ, पर मैं अब तेरे संग प्रेम का मजा लूटूँगा-ही-लूटूँगा। जरा देखूँ तो यह चाँद सा मुखड़ा। नहीं उठाएगी मुँह ऊपर? तो मैं ऐसे जबरदस्ती उसे ऊपर उठाऊँगा और अपनी आँखों से तेरी खूबसूरती की शराब पिऊँगा।''

इस तरह प्यार में मनुहार करते हुए उसने उस रमणी का मुखमंडल बलात् ऊपर उठाकर दोनों हाथों से उसे दीपक की रोशनी में पकड़ा। जी भरके नेत्रों से वह उसकी सुंदरता का मदिरा-पान करने लगा। उसपर उसका नशा सा छाने लगा। झूमते हुए वह उसके मुख के चुंबन लेते हुए बोला, ''आहा! इस अँधेरी रात में यह नया चाँद निकला। ऐ रोशन, क्या बोलती थी तुझे तेरी अम्मा? मालती? ऐ मालती, मेरी जान!''

मालती का मुखमंडल उस घनी अँधेरी रात में गुलाम हुसैन को वैसा ही सुंदर प्रतीत हुआ, जैसे कोई नया चंद्रमा उदित हुआ हो। यह देखते ही वह कृष्ण रजनी किशन को अधिकाधिक काली-कलूटी प्रतिभासित होने लगी। दीपक की रोशनी में उठाया हुआ उसका मुखमंडल साफ-साफ नजर आते ही किशन को निस्संदेह रूप से ज्ञात हुआ कि वह मालती ही है। जिस मालती को एक स्वर्ण की थाली में सजाकर रखी पूजा की शुभ्रधवल पवित्र पुष्पमाला सदृश उसने मथुरा में देखा था, उसे ही उस विरूप तथा उजड्ड धोकड़े, नीच, मुस्टंडे की गोद पर गँदले कीचड़ से लथपथ निर्माल्यवत् अत्यधिक घिनौनी दुर्दशा में देखकर उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया।

''मालती, मेरी चश्मे-बुलबुल! तुम मेरी जबान नहीं समझती? ठीक! मैं ही तेरी टूटी-फूटी मेरठी में बात करता हूँ। सुन, तुम ऐसी उदास क्यों हो? क्या तुम्हें अपनी अम्मा की याद आती है? इसलिए तुम अभी तक धींगामुश्ती करती हो, मुझे दुत्कारती हो? हर रोज मैं तुम्हें अपने बिस्तर पर लेता ही हूँ। फिर जबरदस्ती जो तुमसे मैं छीन लेता हूँ वह सुख तुम मुझे राजी-खुशी क्यों नहीं देती? तेरी अम्मा को तेरे पास लाकर रखूँ? बोल। तेरी अम्मा को भगाकर यहाँ ले आता हूँ। फिर तू खुशी से हँसते-हँसते सोएगी न मेरे बिस्तर पर? तेरी अम्मा···।''

''कलमुँहे, नाम मत लाना मेरी माँ का अपनी गंदी जबान पर। आग लगे तेरे मुँह को।'' उसके हाथों से ऊपर उठाया हुआ और अब क्रोधवश रुआँसा बना अपना मुख एक झटके के साथ छुड़ाने के लिए मालती ने अपना सिर खट से घुमाया। उसके सिर का एक जोरदार आघात गुलाम हुसैन की ठोड़ी पर पड़ा और उसकी दंतपंक्तियाँ एक-दूसरी पर दरक गईं और उसके मस्तिष्क में झमझमाकर एक तीव्र टीस उठ गई। उस चोट से आग-भभूका होकर उसने मालती के कोमल गाल पर एक करारा चाँटा रसीद किया? फिर उसे ढकेला और जमीन पर पटक दिया।

''राक्षस! नीच! साले का अभी तसमा खींचता हूँ।'' इस प्रकार बड़बड़ाते हुए दया और आवेश में किशन एकदम दीवार पर चढ़ने लगा। ''या तो तेरी जान लेता हूँ या अपनी जान दे देता हूँ।'' इस सनक के साथ उसने दीवार पर जो अपना

एक पैर गाड़ दिया, इतने में नीचे का पत्थर खिसक गया और पत्थर की दरार में वह पैर फँस गया। उसके साथ उसका आवेश, उसकी सनक ठंडी पड़ गई। पैर को छुड़ाते हुए अन्य विचार तुरंत उसके मन से कहने लगा, 'इस प्रकार की टक्कर में इस विकल्प की अपेक्षा कि गुलाम हुसैन की जान लेता हूँ अन्यथा अपनी जान देता हूँ यही विकल्प सफल होना अधिक संभव है। यह कमीना हुसैन हथियारबंद तो अवश्य होगा। मैं ठहरा निहत्था। इस छीना-झपटी में 'ठोकर लगी पहाड़ की, तोड़े घर की सिल' इस न्याय से वह मेरा गुस्सा मालती पर उतारकर उसकी जान तो नहीं ले लेगा? उसपर ऐसा भी नहीं कि इस घर में उसका और भी कोई साथीदार न हो। इस प्रकार के निर्लज्ज अधमों का शृंगार भी कई बार साझे का होता है। उसके साथी हसन भाई ने शपथ लेकर इस बात को उजागर किया था। नहीं, अभी इस तरह सहसा साहस करना उस अद्‌भुत संयोग का सुवर्णावसर खो देना है, जो मालती को मुक्ति दिलाने के लिए मुझे मिला है।'

ऊपर का पैर पत्थरों की पकड़ से छुड़ाने के बाद किशन अँधेरे में फिर से अलक्षित रूप में छिपने के लिए उतावला हो गया। एक तरफ वह फिर दीवार की ओट में दबकर देखने लगा कि अब क्या होता है तो दूसरी ओर उसके मन में 'अब मैं करूँ तो क्या करूँ' इससे संबंधित उलटे-सीधे भागते विचारों की कशमकश चल रही थी।

उधर मालती धड़ाम् से धरती पर लुढ़क गई। बेचारी रोती-सिसकती हाथ सिरहाने रखकर यूँ ही पड़ी रही। गुलाम हुसैन सीना तानकर खड़ा हुआ लार टपकाता उसे जी भरकर देख रहा था और फिर वह कुछ अधिक ही आतुरता से मुसकराया।

''वाह री सुंदरता! ऐ छोकरी, किसी संगमरमरी मूर्ति जैसा तराशा हुआ साँचे में ढला तेरा यह डील-डौल! हाय! कितना प्यारा, सुंदर लगता है, जैसे माथा चाँद, ठोड़ी तारा। तुम खड़ी रहती हो, उससे भी अधिक जब तुम अपनी ये लंबी-लंबी हसीन टाँगें करवट पर लंबी तानकर लेटती हो न तब तुम्हारी यह तनुलता एक अनूठी शोभा से मन को लुभाती है। सैकड़ों औरतों के खिलखिलाकर हँसने पर भी उतना मजा नहीं आता जितना तुम्हें इस प्रकार रोती-सिसकती करवट पर पूरा बदन ढककर लेटती हुई देखकर मुझे आ रहा है। तेरा यह सिसकता सीना कैसे ऊपर-नीचे हो रहा है, बिखरी हुई घुँघराली लटें किस तरह परिंदों के झुंड जैसी तुम्हारे माथे पर खिली-खिली लहरा रही हैं। उठो, मेरी बुलबुल! अब यह नाजो-नखरा छोड़ दो। मैं तुम्हें क्या ऐसे ही छोड़ दूँगा कि तुम मुझे दुत्कारती रहो। मेरी जान, सुनो, गाय जो खूब दूध देती है, वही गाय जब हठ पकड़कर अड़ियल-सी बैठ जाती है,

बिगड़कर लातें मारने लगती है, तब उसे बहल्ली देकर (कुश्ती का एक दाँव-पेंच), उसकी टाँगें बाँधकर उसे जबरदस्ती खड़ी कर ग्वाला उसे दुहता है। गाय लतही है, इसलिए जो ग्वाला उसके कुंभ सदृश अयनों को दुहने का विचार त्याग देता है वह उस बेमुरव्वत गाय को पालता ही किसलिए है? उठो जानेमन, उठो, तेरी जवानी की खूबसूरत गाय मैं दुह के ही रहूँगा।''

गुलाम हुसैन ने स्वयं नीचे बैठकर पुनः उसे जबरदस्ती उठाया और अपने पास खींचकर सहलाने लगा।

''प्यारी मालो, तू इसलिए फूलकर कुप्पा हो गई है कि मैं तुझे दिन भर ताले में बंद रखता हूँ। तेरा अता-पता न लगे, तुझे पकड़कर ले गए तो पुलिस मुझसे भी मारपीट करेगी। किसी दूसरे दरिंदे के पिजड़े में यह नाजुक परिंदा फँस जाएगा। तुम्हारी इन नाजो-अदाओं के पर वे काट देंगे। सुन री मेरी प्यारी मैना, चश्मे बुलबुल, तेरे ये सारे नाजो-नखरे एक मैं ही उठाता हूँ। ऐ मेरे राजदुलारे प्यारे मेमने, मैं तुम्हें इस मवेशीखाने में इसलिए बंद करके जाता हूँ कि कोई भेड़िया तुम्हारी दुर्गति न बनाए। लेकिन सब्र करो प्यारी, अब दो-चार दिनों में ही तुम्हें मैं एकदम इतनी दूर और ऐसे जंगल में ले जाऊँगा जहाँ कोई परिंदा भी पर नहीं मार सकेगा। उधर यहाँ की पुलिस का बाप भी सुराग नहीं पा सकेगा। वह हरामी रफीउद्दीन तो अब सड़ रहा है काले पानी में। आजन्म कारावास, कैदे-हयात। उस पूरे मुकदमे का फैसला हो चुका है। अब पुलिस हमें भी अपने आप भूल जाएगी। उसपर अब मुझे ठीहा भी इतने रमणीय जंगल में मिला है कि जहाँ तुम खुले आम आराम से रह सकोगी। डाके में कमाए हुए ये दो रत्नहार, यह सोना-जेवर और मेरी प्यारी जान, तू! बस! भोग-ही-भोग। जिंदगी भर गुलछर्रे उड़ाऊँगा, घोड़े बेचकर सोऊँगा। तुम सब मेरे लिए काफी से भी ज्यादा हो। आज तक काफी धन-दौलत की कमाई की। अब ठाठ से चैन की बंसी बजाऊँगा। भरपूर कमाई का जी भरके भोग। प्यारी बुलबुल, तनिक मुसकराओ तो मेरी जान! अरे हँसो, हँसो!'' यह कहकर वह उसे गुदगुदाने लगा।

मालती को ये गुदगुदियाँ भालू की जानलेवा गुदगुदियों सदृश प्रतीत हुईं। वह मुसकराई, लेकिन आकुलित होकर। परंतु इन गुदगुदियों से किशन को असली गुदगुदियाँ हो गईं और वह मुसकराया, निहायत संतोष के साथ। गुलाम हुसैन के मुख से पुलिस का नाम निकलते ही उसे एकदम जैसे एक गुर मिल गया।

ऐसा लगा, अँधेरे में एक हैंड-बैटरी अचानक मिल गई। उस बैटरी का स्विच, जो उसके मन में था, दबाते ही भावी उपाय की राह लकालक दिखाई दी।

बस। हलवाई की दुकान, दादा का फातेहा। अभी इसी वक्त पुलिस थाने जाकर गुप-चुप यह खबर दे दी जाए। अठारह साल से कम उम्र की एक नाबालिग

कुँवारी लड़की का अपहरण—यह गुलाम हुसैन का एक संवैधानिक घोर अपराध है, न कि मालती का। उसपर गुलाम हुसैन पर डकैती के वॉरंट भी जरूर होंगे। मुकदमे का वह एक फरार गुनहगार है। अब बच्चू फाँसी के फंदे पर झूलेगा और मालती पुनः अपने उस मथुरा स्थित आनंद के हिंडोले पर। वैसी ही उन मधुर ओवियों को अलापती हुई उमंग, हर्षोल्लास के आकाश में किसी सुंदर गीत-पखेरू की तरह उड़ने के लिए लालायित पुनः झूलेगी। अहो आनंद! उसकी वह प्यारी-प्यारी 'किशऽऽऽन' जैसी लाड़ भरी, मधुर पुकार उसे फिर से सुनाई दी।

हर्षावेग में यह खबर पुलिस को देने के लिए किशन छिप-छिपकर दीवार की ओट से इतना दबे पाँव रास्ते की ओर जाने लगा कि किसीको उसकी आहट तक न लगे। इतने में उसने एक हृदय विदारक चीख मारी, वह 'हाय! हाय' कर कराहने लगा।

'भों! भों! गुर्रर गुर्रर!' करते हुए एक महाकाय कराल कुत्ता किशन की पिंडली को नोच-खसोट रहा था। वह गुलाम हुसैन का ही पालतू शिकारी कुत्ता था।

दीवार के भीतर कहीं टहलते-टहलते कुछ आहट पाकर वह दीवार पर चढ़ आया था और किशन की चोरों जैसी गतिविधियों को देखते ही उस खूँखार कुत्ते ने एक ही छलाँग में झपट्टा मारकर उसकी पिंडली को जोर से काटा था। अँधेरे में अनजाने इस प्रकार काटने की असहनीय पीड़ा से किशन जोर से चीखा, फिर भी वह कुत्ता पिंडली नहीं छोड़ रहा था बल्कि अधिकाधिक आवेश से उसे लगातार भँभोड़ता रहा।

दीवार के पास किसीकी जोरदार चीख सुनकर कामातुर गुलाम हुसैन भी चौंक पड़ा। अवश्य अपने उस ऊधमी, फसादी, झगड़ालू कुत्ते ने अँधेरे में किसी राहगीर को चित किया होगा। इस बस्ती में चोरी-छिपे रहते हुए वह किसी प्रकार का हो-हल्ला नहीं चाहता था। अतः यह मामला झटपट साम-दाम से रफा-दफा करने के लिए वह लालटेन के साथ बाहर निकला। उसने मालती को भीतर जाने का आदेश दिया और भागते-भागते उस दीवार के पास आ गया। तब तक किशन ने दीवार का एक पत्थर निकालकर उस कुत्ते के सिर पर मारा था और वह उसकी पिंडली छोड़कर बिलबिलाता-किकियाता हुआ तनिक हटकर, पर फिर से आवेशपूर्ण आक्रमण करने के लिए जूझ रहा था।

किशन की पिंडली से खून की धारा बह रही थी। दर्द के मारे उसका बुरा हाल था। हिलने-डुलने की तो गुंजाइश ही नहीं थी। गुलाम हुसैन के पास आते ही उसने बहाना किया, ''इस घने अँधेरे में यहाँ रोशनी देखकर मैं एक रात के लिए आसरा माँगने आया, तभी तुम्हारे इस पागल कुत्ते ने मेरी जान ले ली। ओह! ओ!''

''चुप रहो, इतना गला फाड़कर चिल्ला क्यों रहे हो?'' गुलाम हुसैन इस बला से जान छुड़ाने के लिए उसे समझाने लगा, ''वैसे इस पागल कुत्ते को मैंने नहीं पाला। तनिक ठहरो, तुम्हारे जख्म पर पट्टी बाँधता हूँ। मेरे घर के पास सो जाओ और फिर पौ फटते ही अपनी राह पकड़ो या अस्पताल में जाओ।'' गुलाम हुसैन को इस झंझट को रफा-दफा करने की यही तरकीब सबसे अधिक ठीक लगी।

बड़ी मुश्किल से गुलाम हुसैन ने किशन को सहारा देकर दीवार पार कराई और आँगन में ले गया जहाँ लालटेन की फीकी सी रोशनी टिमटिमा रही थी। पानी से उसका घाव धो-पोंछकर उसने नित्य नियम की रामबाण औषधियाँ उसपर लगाईं जिससे खून बहना रुक गया, पट्टी बाँधी और फिर किशन को लकड़ी के उस ठूँठ पर गलतकिया जैसे बैठाकर लालटेन को उस हुक में टाँग दिया।

जब तक लालटेन नीचे रखी थी तब तक दवा-दारू की जुगत में गुलाम हुसैन का ध्यान उस राही के पैर की ओर था क्योंकि उसे किसी भी छल-कपट का संदेह नहीं हुआ था। उसपर उसने किशन को मथुरा में जो देखा था वह योगानंदी संप्रदाय के गोसाईं के वेश में, जबकि आज किशन का वेश किसी कंगाल खानाबदोश जैसा था। इसी वजह से उसके लिए उसे पहचानना मुश्किल था। लालटेन ऊपर टाँगने के पश्चात् कुंदे के पास थके-हारे बैठे किशन के चेहरे पर साफ रोशनी पड़ गई।

इतनी देर तक घर में बैठी रहने पर भी मालती उस राही की सारी गतिविधियाँ देख रही थी। उसके मन में दसों बार यही एक संदेह उभरा कि यह बटोही कौन हो सकता है। लालटेन की रोशनी में किशन का चेहरा साफ-साफ निहारने के बाद मालती का संदेह ठोस निश्चय में बदल गया। 'किशऽऽन' मालती के होंठों-ही-होंठों पर यह आवाज भी थरथराई। उसे कुछ भी मालूम नहीं था कि मथुरा में देखने के बाद उसका क्या हाल होगा। उसे पहचानते ही यह विचार पहले ही झटके में उसके मन में कौंधा, जरूर इसे उसकी अम्मा की खबर होगी। परंतु परपुरुष के साथ योगानंद, गुलाम हुसैन आदि की चांडाल चौकड़ी ने उसका अपहरण किया, उनके अधम अपराध की जानकारी होने की उत्कट संभावना है और जिसका उसके साथ भाईचारे का संबंध है, प्रकट रूप में बतियाते देखकर गुलाम हुसैन उसका ही नहीं अपितु किशन का भी घात-पात किए बिना नहीं रहेगा। इस भय से मालती का जी लरज उठा। वह बौखला गई। लेकिन जिज्ञासावश तुरंत प्रकटतः न सही, पर उसी समय उसने ठान लिया कि इस राक्षस के सोने के बाद किशन से अकेले में जरूर मिलूँगी। आँखों से झरझर आँसू बहाती वह किशन की ओर टुकुर-टुकुर देखती रही। इतने में उस खिड़की की ओर गुलाम हुसैन की निगाहें उठते ही मालती पीछे हट गई और अपने आपसे पूछने लगी, 'हे भगवान्! यह राक्षस अचानक आग का

पुतला क्यों हो गया? मुए को कुछ संदेह तो नहीं हुआ?'

खिड़की से परे हटकर वह दरवाजे की दरार से झाँकने द्वार के पास आई। इतने में बाहर गुलाम हुसैन के किसीपर बरस पड़ने की, उस कराल कुत्ते से भी अधिक पागल क्रूरता के साथ भौंकने की आवाज सुनाई दी।

क्योंकि किशन थकावट से आँखें बंद कर उस ठूँठ से पीठ टिकाकर बैठा था, उसके निश्चल मुख पर उस लालटेन की रोशनी पड़ते ही गुलाम हुसैन के मन में भी वही संदेह उभरा जो मालती के मन में उभरा था। उसपर मालती, जो खिड़की से किशन की ओर लुब्ध दृष्टि से ताक रही थी, उससे तो उसका संदेह सौ गुना दृढ़ हो गया। इतने में उसे तुरंत ठोस निर्णय की युक्ति सूझी। उस घायल आदमी को, जो बेखबर तथा अर्धमूर्च्छित अवस्था में लेटा हुआ था, गुलाम हुसैन ने जान-बूझकर संदेहपूर्ण नाम से आवाज दी, ''किशन, ओ किशन!''

किशन चौंककर जग गया और इससे पहले कि वह सतर्कता से सोचता कि अपने नाम की पहचान नहीं देनी है, उसने उत्तर दिया, ''हाँ जी! हाँ जी!''

''अरे हरामखोर! पाजी! कैसे पकड़ लिया तुझे। छद्मवेष में चोरी-छिपे टोह लेने आया था न? बोल किशन, बोल?'' मुट्ठी कसते हुए क्रोध से लरजती, दरकती फटी आवाज में गुलाम हुसैन चीखा, ''बोल, मालती की टोह लेते-लेते यहाँ तक आया है न? तुम और वह पाजी हसन भाई विश्वासघात करके सरकारी गवाह बन गए थे। अब मेरा गला फँसाना चाहता है? काफिर, बेईमान!''

''बेईमान तेरा बाप और तू! तेरा क्या ईमान?'' किशन आवेश में उठकर खड़ा हो गया।

''छुरा घोंपकर अब तेरा पेट फाड़ता हूँ, ठहर। मेरा छुरा-छुरा…'' उस ठूँठ पर गुलाम हुसैन ने देखा। वहाँ पर छुरा नहीं था। फिर उसे स्मरण हुआ, छुरा घर में खाट पर रखा है।

भीतर दरवाजे के पास खड़ी मालती को भी तुरंत इसी बात का स्मरण हुआ। उसने झट से खाट से छुरा उठाकर अपने वस्त्रों में कमर के पास उसे छिपाया और वह एक कोने में जाकर खड़ी हो गई। इसी छुरे को भोंककर मालती के रूबरू गुलाम हुसैन ने अपने एक बिगड़ैल साथी की मथुरा से भागते समय हत्या की थी। अब इस भय के मारे कि किशन की भी मौत आई है, वह बेंत की तरह थरथर काँपने लगी। क्रोध से उसपर जैसे उन्माद चढ़ने लगा।

इतने में छुरा लेने गुलाम हुसैन धड़ल्ले के साथ दरवाजा खोलकर भीतर घुस गया। पीछे-पीछे आवेश तथा जोश से तमतमाया हुआ किशन भी अंदर घुसा और गुलाम हुसैन की कमर को दृढ़तापूर्वक पकड़कर उससे उलझते हुए गुलाम हुसैन

समेत खाट पर गिर पड़ा। सिर कटा हुआ कबंध भी रणावेश से थोड़ी देर तक रणभूमि में जूझता रहता है। किशन को अपने घायल पैर का भी होश नहीं था।

मालती भी उस प्राणघातक संकट में विवेकहीन हो गई थी। उसे भी होश नहीं था। किशन के गले को गुलाम और गुलाम के गले को किशन पकड़ते-छुड़ाते हुए दोनों के खाट पर गिरते ही गुलाम हुसैन दहाड़ा, ''अरे ले आओ। ले आओ मालती, वह छुरा लाओ।'' उसके साथ ही मालती छुरा लेकर भागी भी। लेकिन उस बेहोश अवस्था में भी एक दृढ़ आशंका उसके मन में आई कि इतने छोटे छुरे से यह इतना हट्टा-कट्टा, मोटा-ताजा इनसान कैसे मरेगा? वह यकायक ठिठक गई।

'कैसे क्या? अरी कायर छोकरी, तेरी आँखों के सामने ही उस साथी का प्राण इसी छुरे से भोंककर बाहर निकाला था न इसी गुलाम हुसैन ने?' उसीके दिल ने उसे फटकारा।

''लाओ, छुरा लाओ।'' गुलाम हुसैन ने उस गुत्थम-गुत्थी से एक हाथ छुड़ाते और ऊँचा उठाते हुए चिल्लाकर कहा।

''ले हरामजादे, ले यह छुरा।'' दाँत किटकिटाकर चीखती-चिल्लाती उन्मादिनी मालती छुरा निकालकर भागी। गुलाम हुसैन ने किशन को दबोच रखा था परंतु वह भी किशन की पकड़ में खाट के एक कोने में सीधा चित लेटा था—मालती ने उसकी तोंद में वह लंबा तीक्ष्ण छुरा सारी शक्ति लगाकर घोंप दिया।

अरे, कितनी आसानी से भीतर चला गया! आरी की तरह पेट चीरता हुआ! उस आवेश में भी मालती की हँसी छूट गई।

'मैंने बेकार में ही अपनी पूरी शक्ति दाँव पर लगाई। आधी शक्ति से भी वह आर-पार चला जाता!'

''आँ-आँ-आँ।'' दो-तीन भयंकर चिंघाड़ों के साथ गुलाम हुसैन का बलदंड शरीर धम् से नीचे लुढ़क गया, वह फिर उठा ही नहीं। अपने ही लहू के उबाल में उसके प्राण डूब गए।

''मर गया! मर गया!'' किशन ने ताली बजाई।

''किशन, अब आगे?'' किशन की आँखों में टकटकी बाँधकर देखते और थरथर काँपते हुए मालती ने पूछा।

''आगे? मालती, आगे⋯''

वे दोनों, जिनकी सुध-बुध बिसरी हुई है, जिनकी विवेकशक्ति थम गई है, पल भर के लिए एक-दूसरे की आँखों में आँखें गड़ाकर एक-दूसरे की ओर ताकते रहे। चारों ओर रात का घनघोर अँधेरा-ही-अँधेरा था।

□

प्रकरण–८

किशन और मालती की गिरफ्तारी

'आगे क्या?' मालती के इस प्रश्न का किशन को कोई भी उत्तर नहीं सूझा। वैसे देखा जाए तो पाँच-दस उत्तर एक साथ सूझे और उनके उलटे-सीधे और परस्पर एक-दूसरे को काटने की धाँधली में अंत में कुछ भी निश्चित राय चित्त में न टिकने के कारण किशन सिर्फ 'आगे-आगे' ऐसा ही कुछ बड़बड़ाता हुआ मालती की ओर शून्यवत् ताकता रहा। वह विकराल लाश उनके कदमों तले बीच-बीच में दम उखाड़ती हुई पड़ी थी। उसके ताजा-हरे घाव से रुक-रुककर खून का फव्वारा छूट रहा था। इस प्रकार दस-पाँच पल बीतने के बाद किशन ने सुना, वही कुत्ता जोर-जोर से दहाड़ें मारकर रो रहा है, दूर दीवार पर चीख रहा है और जोर-जोर से भौंकते हुए आक्रोश प्रकट कर रहा है।

वास्तव में जब उनकी जानलेवा मुठभेड़ जारी थी, तभी से वह कुत्ता पास जाने से डर रहा था, लेकिन भागना छोड़कर वहीं दीवार पर निरंतर इधर-उधर भागता, कभी रुकता और उसी तरह जोरं-जोर से किकियाता रहा था। बीच-बीच में बलात् भौंकता था। उस प्रकार जैसे किसीकी सहायता माँगी जाए, लोगों को इकट्ठा किया जाए, ऐसे पुकारता था—'बचाओ-बचाओ।' लेकिन इतनी देर तक इस जानलेवा प्रसंग में उसका शोरगुल किशन-मालती को सुनाई ही नहीं दिया—अपने सिवा बाहरी दुनिया उन्हें विस्मृतप्राय हो गई थी। परंतु उस कुत्ते के हंगामे की ओर ध्यान बँटते ही किशन ने चौंककर उधर मुड़कर देखा तो उसे ऐसा लगा कि बाहरी दुनिया उन दोनों की ओर, उनके खून से सने हाथ-पाँवों, कपड़ों की ओर, उन दोनों के बीच पड़ी गुलाम हुसैन की अगरुन, भारी-भरकम लाश से बीच-बीच में रिसते खून—इन सभी की ओर घूर रही है। उनकी ओर अँगुलियाँ उठाकर सब लोग हल्ला मचा रहे हैं कि 'यही हैं वे हत्यारे, पकड़ो इन्हें।' उनका

नशा हिरन हो गया। इधर यदि पल भर की भी देर लगा दी तो यह जीव, जो उस दुष्ट के छुरे से बचा हुआ था, फाँसी के चंगुल में फँस जाएगा और वह आग से निकलकर कुएँ में गिरना होगा और इस मालती के गले में फाँसी का फंदा···उफ्! कल्पना भी कितनी भयंकर···

उस सदमे के साथ उसने एक बड़ा सा पत्थर उठाकर पहले कुत्ते को मारा। इतने में उसने देखा कि पड़ोस के खेत में दो-तीन आदमी लालटेन लेकर उनकी ओर ही घूर रहे हैं और आपस में खुसुर-फुसुर कर रहे हैं।

उस कुत्ते के किकियाने तथा लगातार भौंकने के कारण वे लोग अपने खेत की खुली भूमि पर कब से भौंचक खड़े थे। उसके बाद उस कुटिया के पास गुलाम हुसैन और किशन के बीच हुई झड़पा-झड़पी, गाली-गलौज, हाथापाई, चीखना-चिल्लाना और अंत में गुलाम हुसैन के पेट में छुरा घोंपे जाते ही जब वह नीचे ढह गया, तब उसकी चिंघाड़ आदि बातों के धुँधले दृश्यों तथा गुल-गपाड़ों से उन काश्तकारों ने यह अनुमान लगाया था कि उधर कुछ अघटित घटना घट रही है। परंतु भय ने उनकी जिज्ञासा पर अंकुश लगाया था। उन्होंने यह समझदारी दिखाई कि वे उधर गए तो स्वयं ही किसी झंझट में फँस जाएँगे। अत: वहीं से जो दिखाई और सुनाई दे रहा था, उसकी चर्चा करते हुए तथा इस प्रकार के तर्क करते हुए कि बीच-बीच में दिखाई दे रही तेजस्विनी स्त्री से संबंधित ही यह सब चल रहा है, वे लोग वहीं पर वैसे ही खड़े थे।

उन्हें देखते ही किशन का दिल इस प्रकार धड़का कि उनके हाथों हुई हत्या अब मुखर हो गई। उसके कहने की अपेक्षा उससे बिना पूछे उसके हाथों ने ही फट् से लालटेन बुझाई। अँधेरे में मालती का हाथ पकड़कर उसने कहा, "अब इधर से खिसकना चाहिए। हमें कैद करने लोग-बाग इकट्ठे हो रहे हैं; वह देखो वहाँ घेरा बन रहा है, चलो।"

"अरे, लेकिन कहाँ?"

"जिधर राह मिले उधर। इस स्थान से दूर-दूर-दूर···जितना हो सके दूर और जल्दी। एक पाँव घायल हो गया है तो क्या, दूसरा तो है न? जितना चला जाएगा उससे चलूँगा।"

"और यह लाश?"

"मरने दो, सड़ने दो इस दुष्ट को। नहीं तो इसके कुत्ते को ही इसे खाने दो। खिसको यहाँ से, पहले चलो। वह छुरा दे दो। इस लाश की शिनाख्त भी किसीको नहीं होनी चाहिए।" इतना कहकर उस छुरे से लाश के मुँह पर अँधेरे में ही कचाकच वार करके किशन ने उसे विरूप कर दिया।

"हाँ! अब ताला ले आओ।"

मालती ने अँधेरे में ही टटोलकर कमरे से ताला ले लिया। बाहर निकलते समय उसका पाँव 'डब' से खून के उस थक्के पर गिरा। उसका दिल भी धौंकनी की तरह धड़कने लगा। उसने वह छुरा अपनी टेंट में खोंस लिया। वैसे ही आगे बढ़कर टूटा-फूटा दरवाजा ज्यों-त्यों करके बंद करके वह उसे ताला लगाने लगी। उसका हाथ काँप रहा था पर आखिर ताला लग ही गया। मनुष्य को एक पैदाइशी आदत होती है, तदनुसार ताला लगाते ही उसने चाभी कमर में खोंस ली। उसने फिर टटोलकर देखा कि खून से लथ-पथ वह छुरा, जो उसने अपनी टेंट में खोंसा था, ठीक-ठाक है या नहीं। उस छुरे की निकटता के अहसास से ही उसमें हिम्मत, साहस तथा बारह हाथियों का बल ठाठें मारने लगा।

"हाँ, चलो, ऐसे सनसना क्यों रहे हो? किशन, मेरे हाथ पर अपना सारा बोझ डाल दो, हाँ-हाँ ठीक है, मेरा सहारा लेकर चलो जितना तुमसे चला जाता है। यह राह मेरी परिचित है। ठहरो, दो-चार पत्थर उठाने दो मुझे। सावधान रहना उस पागल कुत्ते से। मुआ पीछे से चोरी-छिपे आकर फिर काटेगा तुम्हें।"

अँधेरे में वह दीवार पार करके चबूतरे का चक्कर काटकर उन दोनों ने ज्यों-त्यों करके वह राह पकड़ी।

"अब किधर मुड़ेगी? नगर की ओर··· ?"

"कदापि नहीं। अरे पगले, सिर से पाँव तक हम लोग खून से सने हुए हैं न? पहले गंगा तक चलते हैं, वहाँ नहा-धोकर साफ-सुथरे होंगे और तनिक शरीफ बनेंगे—चलो पहले।"

"वाकई···आओ इधर से। पहले शिवालय में चलेंगे, रात वहीं पर गुजारेंगे। आजकल मैंने उधर ही अपना डेरा-डंडा जमाया है। अभी थोड़ी देर पहले उधर ही से मैं आया था। वहीं पहले रात में तनिक झपकी लेंगे। भोर के समय नहाना-धोना और फिर भाग्य में जो होगा वह। ओय! ओय! पाँव की पीड़ा सही नहीं जाती। चलो, पहले शिवालय ही चलेंगे।"

शिवालय में पहुँचते ही अकेले किशन ने ही नहीं मालती ने भी, जिनके मन और तन दोनों इतनी देर तक उत्तेजनावश दुर्बल हो रहे थे, अपने आपको धरती पर छोड़ दिया। दूर से ही लेटे-लेटे किशन ने उसे आश्वासन दे दिया, "तुम आराम से सो जाओ। वह छुरा मुझे दे दो। मैं पहरा देता हूँ। दुःख-दर्द को अब कुछ देर के लिए भूल जाओ।"

"दुःख? बिलकुल नहीं। बताऊँ, इस समय मुझे क्या प्रतीत हो रहा है? आनंद। साहस कैसे कहूँ? हमारे घर में एक बार एक भुजंग निकला। दरवाजे के

बरगद के पेड़ के आसपास ही कहीं रहता था। मेरी अम्मा ठहरी देवलसी। वह उसके लिए एक कटोरे में दूध रखती। दूध पीते समय कई बार हम उसे दूर से देखा करते। माँ कहा करती, 'भई, साँप भी तो एक जीव है न? वह उसे कभी नहीं डँसता जो उसे दूध पिलाता है। लेकिन पता नहीं किसीने उसका क्या बिगाड़ा। एक दिन वह घर में पाया गया और मेरी एक नन्ही सी मौसेरी बहन को, जो मेरे साथ खेल रही थी, डँसकर मुझे भी डँसने के लिए दौड़ा। हम सारे बच्चे बदहवास होकर भाग गए। 'साँप-साँप' का हंगामा मचाया हमने। हमारे नौकर ने एक ही प्रहार से उसकी खोपड़ी तोड़ दी। फिर भी वह कुलबुला रहा था। उसे मुँह खोले पड़ा देखकर एक बड़ी सी सोटी उठाकर मैंने दूर से ही इतनी ताकत से उसपर मारी कि उसका बीच का हिस्सा बिलकुल ही पिचक गया। अपना क्रोध, संताप इस तरह मुखर होते देखकर जीवन में पहली बार मैंने जाना कि प्रतिशोध का आनंद कैसा होता है। आज मैं हर्षोन्माद से झूम रही हूँ। मेरी यह सारी हिम्मत उस प्रतिशोध के आनंद की, प्रतिशोध के इस छुरे की है। जब तक वह मेरे पास है तब तक मेरी जान में जान है। रहने दो उसे मेरे सिरहाने ही। मुझे नींद—किशन, अरे, पर मेरी अम्मा? पहले मुझे यह तो बताओ, मेरी अम्मा किधर है? तुम जानते हो? मैं उठकर बैठ जाती हूँ। हाँ, अब बताओ।'' वह बड़ी मुश्किल से अपनी देह को मूर्च्छित होते-होते सँभालकर बैठ गई। परंतु उसकी बातचीत उस मनुष्य जैसी ही असंगत और खंडित थी जो नींद से घिरा हुआ हो।

किशन ने मालती को संक्षेप में बताया। मालती के गुलाम हुसैन के घर कैद होने के बाद श्रीमती अन्नपूर्णा देवी और उसकी अम्मा के साथ उस कपटी योगानंद ने ठग विद्या खेली। उसपर भरोसा करके वे दोनों मालती को ढूँढ़ने किस प्रकार नागपुर गईं और उसके पश्चात् उनका पता उसे भी नहीं है। परंतु उसकी बात समाप्त होते ही मालती के मनोव्यापार लगभग ठप हो चुके थे। वह कुछ सुनती, कुछ अनसुनी करती नीचे लेट गई और उसे पता तक नहीं चला कि वह कब निद्राधीन हो गई। किशन भी जमीन पर लेट गया। उसके मन में उस कृत्य के भावी भीषण परिणामों के विचार कोहराम मचा रहे थे। कभी ग्लानि, कभी यह कोलाहल, कभी पैर की असह्य पीड़ा। उसने उठकर बाहर झाँककर देखा, कोई नहीं है। फिर वह अंदर आकर लेट गया। आँखें मुँदते ही पुलिस की आकृतियाँ उसके सामने खड़ी हो जातीं। उसे लगता वे उसे पकड़ रही हैं। तब वह फिर आँखें खोलता, ढाढस बाँधता और अर्धचेतनावस्था में ही योजना बनाता कि पौ फटते ही यहाँ से खिसकने के लिए क्या-क्या करना होगा।

मालती का चेतन मन यद्यपि उस घड़ी के समान बंद पड़ा था जिसकी

चाभी खत्म हो चुकी है, तथापि मूर्च्छा की गहरी निद्रा में भी उसके चेतन मन की सतह से किशन के चित्त के कोलाहल सदृश ही धृति, भय-माया-ममता-विद्वेष की नानाविध स्मृतियों तथा वृत्तियों का एक हंगामा जरूर मच रहा होगा। वह कभी चौंकती, कभी मुसकराती तो कभी खर्राटे भरती। सपने देखते-देखते उसे यह आभास हुआ कि वह अपनी अम्मा के साथ मथुरा के उस हिंडोले पर प्रेमपूर्ण ओवियाँ गाती हुई एक रस्सी से ऊँची-ऊँची पेंगें भरती झूल रही है। इतने में उसकी गरदन जोर से कसने से वह लटक गई है। गलफाँसी लगने से दम घुट रहा है और उसकी जीभ बाहर निकल आई है। ऐसी भीषण अवस्था में भी वह स्वयं ही अपने आपको देख रही है। उस सदमे से वह 'हाय, मर गई। बचाओ। बचाओ। अम्मा, मुझे गलफाँसी हो गई।' इस तरह स्पष्ट रूप से चीखती-चिल्लाती मालती झट से उठ गई, वह थरथर काँपने लगी।

किशन भी तपाक् से उठ गया। अँधेरे में घबराकर वह जहाँ खड़ी थी, वहाँ टटोलकर उसके कंधे पर उसने अपना एक हाथ रखा, दूसरे हाथ से उसकी पीठ पर थपकियाँ देते हुए वह उसे ढाढस बँधाने लगा। इतने में बेंत की तरह काँपती, थरथराती मालती कसकर उससे लिपट गई।

"किशन, मुझसे खड़ा नहीं रहा जाता। मुझे अपने सीने से कसकर लगा लो और मेरे पास सो जाओ। शरमाओ मत। तुम ही पहले पुरुष हो जिसे मैं स्वयं अपने पास सोने के लिए कह रही हूँ।"

किशन के सीने से लगाकर सोते ही वह पुनः इतनी गहरी नींद में सो गई जैसे वह बीच में पूरी तरह से जगी ही नहीं थी। उसे नींद में चलने-फिरने, बोलने की जो एक बीमारी होती है, उसीका एक झटका सा आ गया था।

फिर बेलवृक्ष से कोयल की प्रातःकालीन कुहुक सुनाई दी। तब किशन ने बड़ी कठिनाई से उसे झिंझोड़कर जगाया।

"मालती, मैंने भविष्य की योजना निश्चित की है। तुम्हें धीरज रखना होगा। धैर्य से विचलित तो नहीं होगी?"

"अरे पगले, अब मैं सपने में थोड़े ही हूँ? स्वप्न-स्थित गले के फंदे से जो डरते हैं, उनमें से कितने ही असली गलफाँसी से रंचमात्र भी नहीं डरते।"

"हट पगली, गलफाँसी का जिक्र ही क्यों कर रही हो? संक्षेप में बताता हूँ, ध्यान से सुनो। अब तुम जाकर अपना यह मुसलिम वेश और खून से लथपथ कपड़े गंगा में डुबा दो, नहा-धो लो और मेरी इस गठरी में से एक धोती किसी भिखारन सदृश पहनकर यह कटोरा हाथ में थामकर इस पगडंडी से खिसक जाओ और गाँव-गाँव से राह निकालते अपनी अम्मा के पास चली जाओ...और..."

''नहीं, हरगिज नहीं। मेरी अम्मा का नाम अब पूरी तरह से भूल जाओ। अरे, मुझे देखते ही वह मेरा मुख सहलाने यदि पुनः लपककर आ जाए तो उसके निर्मल हाथ भी मेरे मुख के खून के धब्बों से रक्तरंजित होंगे। उसके शरीर पर मेरे हाथों के कर्मों के छींटे पड़ेंगे और उस सती-साध्वी की निर्मलता भी डाँवाडोल होगी। मैं कभी अपनी अम्मा के आँगन का एक निर्मल फूल थी, तब मुझे मालती नाम से पुकारा जाता था, लेकिन अब मैं वह फूल नहीं हूँ। अब मैं समाज की राह का एक कंटक बन गई हूँ। कहीं भी धूल से सनी पड़ी रहूँगी लेकिन पुनः माँ के आँगन में गिरकर उसके पैर में काँटे की तरह टूटूँगी नहीं, न ही उसे सालूँगी। अब मैं अपना नाम भी बदलूँगी। फूल नहीं, काँटा। कंटकी, न कि मालती। अब याद रखना हाँ, अब मुझे मालती मत कहना, कंटकी नाम से पुकारना।''

''ठीक है। परंतु अब तुम मुझे अकेला छोड़ चली जाओ। मुझसे अब चला नहीं जाता। मैं भी पीछे से ज्यों-त्यों करके खिसकता आऊँगा। यदि पकड़ा गया तो अकेले ही अपने सिर इस हत्या के सिलसिले में सबकुछ कबूल लूँगा। यदि खिसक गया तो तुमसे मिलूँगा। मुझे भी नाम में परिवर्तन करना होगा। गौर से सुनो, मेरा नाम कंटक है। इससे पिछले मुकदमे के सूत्र मेरे, तेरे तथा तुम्हारी अम्मा के इर्दगिर्द फिर से सहसा नहीं उलझेंगे। उस अधम का नाम बताने का प्रसंग भी नहीं आएगा, जिसका सिर कुचलकर नामोनिशान तक मिटा दिया। 'हमें कुछ भी नहीं मालूम' यही कहेंगे। बस! अगर हम इकट्ठे घूमते रहे तो दोनों फँसेंगे। इसलिए कम-से-कम तुम तो यहाँ से निकल लो। सच कहता हूँ, मालती, तुमसे बिछुड़ते हुए मेरी जान उसी तरह छटपटा रही है जैसे पानी से बाहर फेंकी हुई मछली छटपटाती है। लेकिन तुम्हारा अहित होने से बच गया तो ताल में गिरी मछली सदृश वह फूले नहीं समाएगी। न-न, अब सारी चर्चा बंद। देखो, पौ फटने लगी।''

वे दोनों बातें कर रहे थे कि इतने में दूर से फिर कुछ शोरगुल सुनाई दिया। इस आशा से कि रात में जिस तरह उसे जूतों की टापों की आवाज का आभास हुआ और वह जिस तरह मिथ्या सिद्ध हुआ, उसी प्रकार यह भी एक आभास ही होगा। किशन ने बाहर झाँका तो वाकई कुछ लोग हंगामा करते हुए शिवालय की ओर राह में ही ठिठके, धुँधले से नजर आ गए।

गौर से देखने पर एक चबूतरे पर खड़े दो जने नजर में आ गए और वे निस्संदेह वर्दीधारी पुलिसवाले थे।

अपेक्षित होने पर भी निश्चित रूप में ऐसे भयंकर संकट का पहाड़ टूटते ही मन को जो जबरदस्त धक्का पहुँचना होता है, वह पहुँचे बिना नहीं रहता। किशन को थोड़ी-बहुत आशा थी कि संकट टल जाएगा। अतः वह भयंकर संकट टलते-

टलते उसके इस तरह सौ फीसदी गले से टकराते ही उसके होश उड़ना स्वाभाविक ही था। परंतु उसने तुरंत साहस बटोरा। वह झट से भीतर मुड़ा और दबे स्वर में उसने मालती को समझाया, ''पुलिस आई है। अब ध्यान से सुनो। अब मैं आगे बढ़कर जो कहूँगा सिर्फ उसीको तुम दोहराओ—मेरी हाँ में हाँ मिलाती रहो। जरा भी चीं-चपड़ कम-अधिक कभी, कहीं भी, आगे-पीछे भी, मुँह से मत निकालना। कारागृह में मियाद काटते समय सैकड़ों घुटे हुए हत्यारे, चोर-डाकुओं के गिरोह में रहकर मैं अब इस प्रकार के कानून के छक्के-पंजे अच्छी तरह से सीख चुका हूँ। ऐसे प्रसंग में सबकुछ नकारना सर्वथा असंभव है। उन किसानों ने ही रातोरात यह खबर पुलिस को दी होगी। खून से सने कदमों के निशान उभरे हुए और कपड़े, हाथ भी खून से सने हुए हैं।''

इतने में—

''कौन है बे अंदर? चलो बाहर निकलो।'' दूर से ही पुलिस का घुड़की भरा आदेश आया।

किशन तपाक से बाहर आया। आगे बढ़ा। उसके साथ ही 'पकड़ो-पकड़ो' चिल्लाते हुए दो-तीन सिपाहियों ने हमला किया और उन्होंने किशन के हाथों में हथकड़ियाँ पहना दीं।

''भई, यह हथकड़ियाँ काहे के लिए? और इतना कसकर भी क्यों पकड़ रहे हो मुझे? आप न भी आते तो भी मैं स्वयं पुलिस को खबर करने उधर आ ही जाता।''

''इस तरह सीधी तरह से चलोगे तो उसमें तुम्हारे ही अनावश्यक कष्ट टलेंगे।'' पुलिस अफसर ने समझदारी की बात करते हुए शांत स्वर में कहा, ''सच-सच बताओ, वहाँ उस तरफ एक झोंपड़ी में एक आदमी की हत्या तुमने की? तुम्हारा नाम? हाँ, यही है वह स्त्री। पकड़ो उस औरत को भी।''

''ठहरो! उस आदमी का कत्ल मैंने किया न कि उस औरत ने, वह भी इसलिए कि वह इनसान नहीं, हैवान था, एक नृशंस राक्षस। मेरा नाम कंटक है और यह है मेरी बहन कंटकी। हम जब छोटे थे तब हमारी माँ उज्जैन की तरफ मेले में भीख माँगती घूमती थी। वह हैजे से मर गई। उससे पहले की हमें कुछ भी जानकारी नहीं है। अगली जानकारी यह कि हम दोनों भीख माँगते हुए इस मेले से उस मेले में घूमते-घामते वैसे ही भटकते हुए इधर आ गए। कुछ दिन पहले मेरी बहन भीख माँगने अकेली घूम रही थी। इसे अकेली पाकर उस मुसलमान गुंडे ने इसे जबरदस्ती खींचकर अपने घर में कैद किया। मैं टोह लेता हुआ उसके घर के सामने जैसे ही पहुँचा और 'मेरी बहन को छोड़ दो' कहकर उसे घुड़की दी तो वह छुरा निकालकर

मुझपर टूट पड़ा। धींगामुश्ती में वही छुरा छीनकर मैंने उसे मार डाला और अपनी बहन को छुड़ाया। हमारे कन्ने ढीले पड़ने के कारण यहीं पर रात गुजारकर अभी उठे हैं और पुलिस में अपने आप सारी खबर देने ही वाले थे कि इतने में आप लोग यहाँ पहुँच गए।''

मालती से पूछने पर उसने भी सूझबूझ से ढिठाई के साथ बयान दिया जो किशन के उक्त बयान से हूबहू मिलता-जुलता था। पुलिसवालों ने जब कुरेद-कुरेदकर पूछा तब उसने 'उस मुसलमान गुंडे का नाम, गाँव, पूर्ववृत्त कुछ भी जानकारी मुझे नहीं है' यही ठोस और टका सा जवाब दे दिया।

तलाशी में मालती के शरीर पर उसके खून से सने वस्त्र, कमर में खोंसी हुई उस टूटे-फूटे घर की चाभी, वह रक्तरंजित छुरा, इतनी चीजें बरामद हो गईं। उन सभी को नोट करके उन दोनों को गिरफ्तार करके वे चल पड़े। उनके साथ वे किसान भी लौट गए। उन्होंने ही उस टूटे-फूटे घर में चल रहे इस भीषण कांड की खबर उसी रात पुलिस को दे दी थी, ताकि उनके ऊपर कोई आरोप न आ जाए। उस कांड की पूरी रिपोर्ट लिये जाने पर ही उन्हें अपने-अपने घर रवाना किया गया। 'अपराध मैंने किया है। मेरी बहन को छोड़ दीजिए, उसे वापस भेज दीजिए', इस प्रकार गिड़गिड़ाने पर किशन को अच्छी-खासी डाँट पिलाई गई। 'प्रत्यक्ष प्रमाण तुम दोनों के विरुद्ध हैं।' हमारे लिए तुम दोनों को ही गिरफ्तार करना अनिवार्य है। अपराधी कौन है, इसका फैसला अदालत करती है, न कि हम या तुम।

किशन और मालती दोनों पर मुकदमा दायर किया गया। अपराधी लगे हाथ मिल गए। उस हत्या के लिए प्रमाण एकदम तैयार। अपराध के सूत्र कहीं भी उलझे हुए नहीं थे। उस मृत व्यक्ति का पूर्व इतिहास बिलकुल अज्ञात। छुरे के घावों से छिन्न-विच्छिन्न हुई उसकी मुद्रा के कारण उसकी शिनाख्त करना भी दुर्घट। जहाँ तक उस मुकदमे का सवाल है, उस पचड़े में पड़ने का कोई कारण नहीं था। इन सभी हालात के मद्देनजर किसी भी तरह की अधिक गहराई में न पैठते हुए उस हत्या का आरोप लगाकर पुलिस ने छुट्टी की। बचाव के रूप में उनके अपने बयान छोड़कर अभियुक्तों की ओर से कुछ भी नहीं था।

अंतिम दिन न्यायाधीश ने फैसला सुनाया, ''यह स्पष्ट रूप से सिद्ध नहीं हुआ है कि किस अभियुक्त ने इस प्रकार जानलेवा हमले किए। यह सिद्ध हुआ है कि दोनों ने ही इस हत्या में जान-बूझकर हिस्सा लिया है। इसलिए कंटक और कंटकी दोनों भाई-बहन को अदालत सजा देती है—आजन्म कारावास, काला पानी।''

ये शब्द सुनते ही किशन की आँखों से यद्यपि टपटप आँसू गिरने लगे, तथापि

फाँसी टलने के कारण उसका कलेजा ठंडा हुआ, उसने राहत की साँस ली। परंतु इस तरह धुँधला सा आभास होते हुए भी कि उन शब्दों में कुछ भयंकर अर्थ समाया हुआ है, उसकी भीषणता का स्पष्ट चित्र मन में अभी तक नहीं उभरा था। न जाने इसीलिए 'आजन्म कारावास, काला पानी' जैसे शब्द सुनते ही मालती संज्ञाशून्य होकर देखती रही। लेकिन जज साहब के उठने लगते ही उसने एकदम गद्गद होकर प्रार्थना की, ''एक पल रुक जाइएगा, कृपालु महाराज! मुझे बस इतना ही बताइएगा कि काले पानी जाने पर भी मेरा यह भाई कंटक मेरे साथ ही रहेगा न? क्या अपने बंदीपाल को आप तनिक उतना आदेश दे देंगे कि काले पानी में भी हम दोनों को एक साथ रखा जाए। इतनी दया की जाए, हुजूर!''

''नादान लड़की, यह न्यायाधीश के बस में थोड़े ही होता है? काले पानी में पुरुषों और महिलाओं के बंदीगृह अलग-अलग होते हैं, बेटी! वहाँ एक ही अभियोग के सभी अपराधियों को भी पुरुष-पुरुषों में अथवा महिला-महिलाओं में साधारणत: एक साथ नहीं रहने देते।''

यद्यपि जज साहब के इन शब्दों का सहानुभूति के स्वर में उच्चारण किया गया था, तथापि इससे पूर्व सजा सुनाते समय उन्होंने जिन भावनाहीन शब्दों का उच्चारण किया था उनसे भी वे मालती को अधिक दारुण प्रतीत हुए। 'आजन्म कारावास, काला पानी' जैसे शब्दों की भीषणता से इस कल्पना की भीषणता कि किशन अब उससे बिछुड़ जाएगा, उसके मन को हुई अत्यंत असहनीय पीड़ा से वह तड़प उठी और सिसक-सिसककर 'नहीं ऐसा मत करो, ऐसा मत करो' ऐसा ही कुछ आधा-अधूरा वाक्य ही बार-बार दोहराकर प्रार्थना करने लगी।

जज साहब के मन को पहले से ही उसके अपराध का निरपराध पक्ष रिझा रहा था। परंतु कानून कानून होता है—वह अनुल्लंघनीय होता है। इसीलिए जब तक मुकदमा जारी था, उनके मुँह से ममता का एक भी शब्द नहीं निकला था। परंतु पूरे मुकदमे के चलते जो लड़की धीरज और साहस की प्रतिमा बनी रही, आजन्म कारावास और काला पानी जैसा भयंकर दंड सुनकर भी जो बिलकुल अडिग रही, उसी लड़की को अपने भाई से बिछुड़ने की कल्पना मात्र से सिसक-सिसककर रोती हुई देखकर जज साहब का दिल भी पसीजा और कुछ-न-कुछ सांत्वना देने के लिए उन्होंने कहा, ''मत रो, बेटी! काले पानी पर यदि तुम्हारा आचरण ठीक रहा तो दस-पाँच वर्षों के पश्चात् तुम्हें विवाह की अनुज्ञा मिलने की सुविधा है। फिर उस द्वीप में भी तुम लोग मजे से एक साथ रह सकते हो।''

इस बात को सुनते ही जैसे काले पानी की सजा रद्द हो गई और उसने छुटकारा पा ही लिया, इस प्रकार विपदाओं के उस बवंडर से घिरकर बौखलाई हुई

मालती मन-ही-मन खुशी से झूम उठी। उसकी आँखों में सरसों खिल गई।

"हुजूर, आपके मुँह में घी-शक्कर। क्या मैं जिससे चाहूँ उससे शादी कर सकती हूँ? कारावास के अनुशासन का मैं पूरा पालन करूँगी, सरकार!"

उसकी नारी प्रकृति की तमाम यौवन सुलभ भावनाएँ उस कल्पना मात्र से जैसे तृप्त, तुष्ट हो गईं। उसे अहसास हुआ कि किशन के साथ उसके फेरे भी हो चुके। परंतु अरी बावली, कल्पना-लोक भला कभी यथार्थ हो सकता है? अरे पगली, तुम्हें अभी तक यह समझ में नहीं आया कि मनुष्य केवल अपने ही अनुशासन का, पाप-पुण्य का तथा कर्माकर्म का फल नहीं भोगता। इस प्रत्यक्ष जगत् में उसे समाज के पाप-पुण्य का और कर्माकर्म का फल इच्छा न होते हुए भी भोगना पड़ता है। उसे दूसरों के कृत्यों का फल ठीक उसी तरह भोगना पड़ता है जैसे ताऊन (प्लेग) जैसे संक्रामक, छूत की बीमारी में सिर्फ वातावरणीय संसर्ग से स्वस्थ आदमी को भी उस रोग का कष्ट भोगना पड़ता है। क्या अभी तक तुम्हें इस बात की प्रतीति नहीं हुई कि तुम्हारे भाग्य में क्या लिखा है? अन्यथा तुमने ऐसा कौन सा पाप किया है कि इतनी कच्ची उम्र में तुम्हारी देह, मन, भावनाओं की इतनी कठोर, असहनीय तथा दारुण दुर्गति हुई? कौन सा गुनाह किया था तुमने? किसका नुकसान किया था? अपनी माँ की ममता के आँगन में खिली हुई मालती, तुम एक मालती वल्लरी पर कोमल निर्मल फूल की अर्धोन्मीलित चटकी हुई कच्ची कली हो। हमने तुम्हें जब पहली बार देखा, तब तुम शरद ऋतु की चंद्रकला सदृश थीं, तब कोई जनमजला भी ऐसी भविष्यवाणी करने की हिम्मत नहीं करता कि बिना किसी अपराध के तुम्हारी इस प्रकार दुर्गति होगी। दुष्ट-से-दुष्ट पिशाच भी तुम्हें इस तरह यूँ ही अभिशाप नहीं देता।

यह असहनीय दुर्गति इतनी लज्जास्पद है कि सहानुभूति के सामने भी इसे स्पष्ट नहीं किया जा सकता। जब तुम्हें उस कसाई के खूँटे से बाँध दिया गया, उस उजड्ड, अड़बंग, घिनौने, अमंगल नरपशु की अघोर वासना पर जब-जब तुम्हारी लाज की बलि चढ़ाई गई, तब तुम्हारे कोमल बदन की जो आग बनी होगी तथा कोमल भावनाओं की जो राख बनी, हे निष्पाप कुमारी, वह क्या इसलिए हुआ कि तुमने कोई नीति, नियम, विनय, अनुशासन का भंग किया था? उस अघोर दुर्दशा से तुम्हें और तुम्हारी जैसी अनेकों को छुटकारा दिलाने के लिए यह किशन आगे बढ़ा, उसने नीति-नियमों का, परोपकार तथा विनय-मर्यादा का आदर किया और उस राक्षस के खून की नदी बहाकर उसके अत्याचारों का शमन किया। इसलिए तुम लोग अत्याचारी सिद्ध हो गए। समाज में तुम्हारे मुँह पर कालिख लग गई। अब समुद्र पार उतार दिया जाएगा तुम लोगों को। समाज की पीड़ा, अत्याचारों का जो

विध्वंस करता है, वही कभी-कभी समाज-पीड़क अत्याचारी के रूप में दंडित होता है। नीति-नियमों के असली अनुशासन का पालन करना ही अपराध सिद्ध हो जाता है और उसके लिए ही उसे अनुशासनहीनता का फल भुगतना पड़ता है।

किसका है यह दोष? क्यों होता है ऐसा? अथवा ऐसा न हो, इसके लिए किन उपायों की योजना की जाए? ये प्रश्न यहाँ बिलकुल अप्रासंगिक हैं। हाँ, पर यह सत्य है कि ऐसा होता है। और इसीलिए मालती, तुम यह दृढ़ धारणा मत कर बैठना कि तुमने अनुशासन का पूरा-पूरा पालन किया तो उसका फल, उसका पुरस्कार तुम्हें अवश्य मिलेगा। इस तरह खयाली पुलाव मत पकाना।

परंतु ऐसा भी नहीं कि सुख-स्वप्न सत्य होते ही नहीं। अत: यदि किसी सुखद सपने में मुसकरा रही हो, रममाण हो तो पल भर के लिए अवश्य मुसकराओ, रममाण हो जाओ। हाँ, पर उसे मात्र एक सपना समझकर। जग जाने पर ऐसी दृढ़ धारणा मत करना कि वह सपना सत्य सिद्ध होगा।

□

प्रकरण–९

अंदमान का चालान

कलकत्ता बंदरगाह के जहाज घाट पर एक मैदान खाली करवाने के लिए पुलिस दौड़-धूप कर रही थी। सबके-सब आदमियों को वहाँ से हटाया गया था। वे हटाए गए लोग दूर खड़े होकर, जो जगह मिली वहाँ रेलपेल करके यह देखने के लिए कि आगे क्या होना है, एक-दूसरे के कंधे पर तो कोई आगे खड़े लोगों को ठेलाठेली करते हुए टखनों पर खड़े थे।

इतने में इधर-उधर से हंगामा हो गया, 'आया! चालान आ गया। चालान आ गया।'

चालान का अर्थ है उस जहाज घाट का वह गुट, जिसके साथ विभिन्न कारागृहों में पड़े काले पानी के दंडितों को इकट्ठा कर समुद्र पार अंदमान भेजने के लिए लाया जाता है।

सारे अपराधों में जो अत्यंत घातक तथा नृशंस अपराध होते हैं और ऐसे अपराध जिनके लिए बाएँ हाथ का खेल होता है, इस प्रकार के आग उगलनेवाले, विषदायी, परले दरजे के डाकुओं को प्राय: काले पानी की सजा दी जाती है। इसमें भी पुन: छँटनी होती है और जो अतिवृद्ध, अल्पवयस्क, यहाँ तथा बंदीशालाओं में सदाचरण द्वारा सुधरे हुए पाए जाते हैं, उन्हें छोड़कर शेष उस्तादों के भी उस्ताद अपराधियों को प्राय: काले पानी पर भेजा जाता है। राजनीतिक कांड छोड़कर उग्र, हिंसक, उच्छृंखल खलसर्पों की इस काले पानी पर रवाना करने के लिए छँटनी की जाती है और उन्हें 'चालान' में भरती किया जाता है। किसी भी सुघड़, सुनियंत्रित समाज में इनका अस्तित्व किसी महामारी की तरह भयप्रद प्रतीत होता है। कुछ अपवादों को छोड़कर यही नियम है।

इस अहाते में चालान पर आते हुए यदि कोई नवागंतुक अथवा भोला-भाला

संत—जिसे इसकी रत्ती भर भी जानकारी नहीं है—इसे देखता तो? तो उस 'चलान' से वह अनुकंपा ही दर्शाता न कि क्रोध, क्योंकि वे बेचारे कितने अनुशासनबद्ध थे—प्राय: सभी के सिर झुके हुए तथा आँखें डबडबाई हुई थीं। कम-से-कम मन में तो भय समाया ही हुआ था, चेहरे उतरे हुए थे, पास खड़े व्यक्ति से एक शब्द भी न बोलते हुए; और यदि बातचीत करें भी तो किसी लड़की जैसे शरमाते, सकुचाते, छुईमुई बनते, धीमे स्वर में फुसफुसाते हुए, चार-चार की कतार में निहायत फटीचर वेश में नपे-तुले डग भरते हुए वे चल रहे थे। सिपाही के 'ठहरो' कहते ही वे रुक जाते, 'बैठो' कहते ही बैठ जाते और 'उठो' कहते ही उठ जाते। सौ-सवा सौ लोग जरा भी हो-हल्ला न करते हुए चल रहे थे। इतने शांत, संयत जीवों का वह समुदाय! सौ-सवा सौ भेड़-बकरियों का झुंड बूचड़खाने में ले जाते समय उससे अधिक शोरगुल करता होगा, इससे कम दीन-हीन दिखता होगा। इस प्रकार इन गरीब, बेचारे, दीन-हीन, दुर्बलों पर अपने माँ-बाप, बीवी-बच्चों से आजीवन बिछुड़ने का प्रसंग थोपकर काले पानी पर असंगत संत्रास तथा कष्ट का शिकार बनाने के लिए इस तरह ले जाया जा रहा था? राजहठ की यह कैसी निष्ठुरता तथा दंड की यह कैसी क्रूरता! जो उन्हें मात्र दुर्दशा में तड़पते देखते हैं अथवा उनकी पीड़ा देखते ही इसकी विवंचना छोड़कर कि वह पीड़ा रोगहारक शल्यक्रिया की है या मारक शस्त्राघात की है, जिनके मन सिर्फ आठ-आठ आँसू बहाती पिलपिली उबासीयुक्त दया का अनुभव करते हैं, ऐसे लोगों के मन में उन घोंघा सदृश हीन-दीन दिखनेवाले चलते हुए दंडितों के प्रति अनुकंपा और हार्दिक सहानुभूति ही उत्पन्न होती और मन-ही-मन क्रोध का उफान यदि किसीके प्रति उमड़ता हो तो वह पुलिसवालों की निर्दय, निष्ठुर, नृशंस, जुल्मी लट्ठबाजी के प्रति। बंदूकों से संगीनें ठूँस-ठूँसकर पुलिसवालों के दल कुछ पीछे, कुछ आगे, कोई डंडे तानकर चारों ओर अंगार उगलते, कठोर स्वर में बरसाते हुए समूह को ठीक उसी प्रकार ठेल-ठेलकर आगे हाँक रहे थे जैसे कोई कसाई चौपायों के झुंड को आगे ठेलता है। कोई तनिक भी ऊँचे स्वर में बोलता या सुस्ताने की कोशिश करता तो उसे डंडे के बल पर आगे खदेड़ दिया जाता; तनिक भी कोई 'तू-तड़ाक' पर उतरता तो पुलिसवाले के तीन-चार डंडे उसकी खोपड़ी पर बरसने लगते। न पूछताछ, न गवाह, न ही कोई प्रमाण। सीधे डंडे से बातचीत। तमाम न्यायनिर्बंध उसीमें समाए हुए। ऊपरी तौर पर देखनेवालों को असली अत्याचारी और निर्दयी लगती पुलिस तथा असली दीन-दुखियारे, दुर्बल 'बेचारे' लगते 'चालान' वाले।

परंतु यदि तेज धारवाली संगीनें ठूँसी हुई उन बंदूकों का तथा डंडों का घेरा पल भर के लिए हटाकर 'चालान' के उन 'बेचारों' को—जिनके सिर झुके हुए थे

तथा जो आँसू बहा रहे थे—घड़ी भर के लिए निरंकुश, खुला छोड़ दिया जाता तो? आँखों से दया की एक बूँद भी न बहाते चालान के प्राय: सभी 'बेचारों' ने आधा कलकत्ता जलाकर राख कर दिया होता और शेष आधे कलकत्ता की गरदनें मरोड़कर त्राहि-त्राहि मचा दी होती। वह 'चालान' वैसे अनुशासनबद्ध रूप में चल रहा था, इसलिए कि संगीनों तथा डंडों ने उसे घेर लिया था, जैसे किसी सर्कस के घेरे में भाले तथा कँटीले चाबुक चमकाते हुए नियंत्रक जब तक सामने तथा आसपास होते हैं तब तक सिंह, व्याघ्र भी शिष्ट नागरिकों के सदृश घेरे में कायदे से चलते हैं। कुछ अपवादों को छोड़कर इस चालान में प्राय: सभी की आँखों के आँसू सभ्यता, विनय, दीनता, नीति के नहीं थे, अपितु थे मात्र मजबूरी के, भय के। इस प्रकार के पेंदे के हलके, छिछले खलपुरुषों को भी सामाजिक स्वास्थ्य के लिए पोषक अनुशासन में बाँध सकते हैं, लेकिन गीता के पारायण से नहीं अपितु संगीनों के इस्पात से ही।

बिलकुल घोंघा सदृश 'बेचारे' प्रतीत होनेवाले इस चालान के दस-पाँच व्यक्तियों का आपसे परिचय कराया जाए तो यह ज्ञात होगा कि पिलपिली, लिचलिची उबासीयुक्त दया को इनकी दुर्गति देखकर जहाँ अनुकंपा होती है, वहीं यहाँ के तथा इस प्रकार के हिंस्र श्वापदों में भी जो मानवता होती है, उसीको जीवित रखकर उन हिंस्र कीटाणुओं का प्रतिरोध करने के लिए इन तीक्ष्ण संगीनियों का टीका लगाना कितना आवश्यक है, भले ही वह ऊपरी तौर पर अत्याचारी क्यों न प्रतीत होता हो। देखिए 'चालान' आ ही गया।

पुलिस की संगीनों तथा डंडों के चारों ओर से पिंजड़े में बंद सौ-सवा सौ हिंस्र जानवर चार-चार की कतारों से इस अहाते में एक गुट के साथ आ गए, जैसेकि वह भीमकाय पिंजड़ा ही पूरा-का-पूरा आगे ठेलते हुए मैदान में खड़ा कर दिया गया हो। उस हर एक दंडित के, जो काला पानी जा रहा है, पाँवों में ठुकी हुई बेड़ियाँ खनखना रही हैं जो ऊपर कटि में चमड़े के तसमे से बँधी हुई थीं। हर एक की छाती पर जस्ते का एक-एक तमगा—उसपर दंड के वर्ष तथा दंडित का नाम खुदा हुआ। हर एक की बगल में अपना-अपना बिछौना। एक हाथ में जस्ते की थाली। इनमें से जो कच्चा, ढुलमुल, निर्बल है वह बंदी झुकते, कराहते और जो बेमुरव्वत, कड़ा, मजबूत, मुस्टंडा है वह अकड़कर, लेकिन फिर भी डंडे से दबकर भुनभुनाता हुआ अपनी-अपनी पंक्तियों में खड़ा हो रहा है। चलिए, उनमें से प्रथम पंक्ति में ही जो काले पानी का नागरिक है, नमूने के रूप में उसका परिचय करें।

यह पहला 'बेचारा'—सीने पर लटके तमगे के अनुसार इसका नाम रामदयाल तथा चौदह वर्ष काले पानी की सजा। इसने अपने सगे भाई की मृत्यु के बाद उसके इकलौते बच्चे को विष-प्रयोग से जान से मारने की साजिश की; और इस वजह से

बालक की मृत्यु हो गई। उद्देश्य? ताकि उस सगे भतीजे का काँटा रास्ते से हटाकर, उसको निर्वंश कर सारी संयुक्त जायदाद यह अकेला ही हड़प सके।

यह जो दूसरा दंडित है उसे एक तरह से सुधारणीय अपराधी कहा जा सकता है—आयु सत्रह-अठारह वर्ष। नाम गोपाल। मुद्रा—लापरवाह। उसके घर-परिवार के पिता, चाचा आदि बुजुर्गों ने अपने खेतों की नीलामी होने के गुस्से से अपने गाँव के साहूकार से प्रतिशोध लेने के लिए उसकी हवेली पर डाका डाला। बुजुर्गों के साथ यह लड़का भी चला गया। साहूकार को नीचे गिराकर उसके धुर्रे उड़ाते समय इसने चक्की का पाट उठाकर उस बेचारे साहूकार के सिर पर मारा। उसका तो भेजा ही बाहर निकल गया। उस महाजन का अपराध यह था कि इसके परिवार ने उसका ऋण चुकाना तो दूर रहा, बल्कि उसके घास के टाल, जानवर भी जला दिए, उनकी हत्या की, इसलिए साहूकार ने इनपर मुकदमा दायर किया और कायदे के अनुसार नीलाम करके इनका खेत बेच दिया। इसके बाप को फाँसी की सजा हो गई। यह लड़का दूसरे नंबर का अपराधी अर्थात् गौण था, अत: इसे आजन्म कारावास—काला पानी।

परंतु 'बेचारा' नंबर तीन की ओर तो एक नजर डालिए। तीक्ष्ण संगीनों के जगर-मगर में कैसे सलीके से खड़े—कितने सलीकेदार कानून को माननेवाले दिखाई दे रहे हैं जनाब। लेकिन जब यह चमक-दमक उसकी राह पर नहीं पड़ी थी और उस राह को वह अपने स्वाभव की अंधी रोशनी में ही निहारकर स्वतंत्र रूप से जा रहा था तब जानते हैं आप, यह नागरिक किस तरह जा रहा था? यह उसके दंड की इस टिप्पणी में पढ़िए—इसमें क्या दर्ज किया गया है—यह बलूची—वहाँ के असंख्य गिरोहों में से एक व्यक्ति—नाम—अल्लाबख्श। सिंध प्रांत के कामयाम, विरला हिंदू बस्ती पर ये टोलियाँ बार-बार डाकाजनी करतीं। उसमें हिस्सा लेते-लेते यह इतना क्रूर बन गया कि उसे हिंदू लड़के-लड़कियों के मांस की बोटियाँ हबकने का राक्षसी चस्का लग गया। आखिर एक बार एक रेल में, जो पेशावर की ओर जा रही थी, इसने टोह ली कि जनाना डिब्बे में एक हिंदू महिला अपने दूध-पीते बच्चे को लेकर अकेली बैठी है। यह उस डिब्बे में घुस गया। छुरा तानकर इसने उस अबला की इज्जत लूट ली और उसी आसुरी आवेश में इसने उसके दोनों कपोलों के मांस की बोटियाँ अपने दाँतों से काटकर उन्हें चबर-चबरकर गटक लिया। वह और उसका नन्हा सा शिशु, दोनों जोर-जोर से बिलबिलाने लगे। इससे यह क्रोध से और भी पागल हो गया। इस उन्मत्त पशु ने वही छुरा उस बेबस नारी के उस मासूम शिशु के पेट में घोंप दिया और उस अबला के चेहरे पर वार करने लगा। क्रोध के मारे यह इतना बेसुध हो गया कि इसने यह भी गौर नहीं किया कि रेलगाड़ी रुक चुकी है। ट्रेन

रुकते ही इसने नीचे छलाँग लगा ली, मारधाड़ करते-करते यह भागने की कोशिश करने लगा पर पकड़ा गया। तो जिस पुलिसवाले ने पकड़ा उसकी अँगुली को यह खीरा-ककड़ी की तरह तड़ाक् से तोड़कर कचर-कचर चबाने लगा। अदालत में इसने पागलपन का स्वाँग भरा परंतु नरमांस भक्षण की अघोरी हवस के अलावा इसमें अन्य कुछ भी पागलपन का निशान नहीं दिखाई दिया, बल्कि हिंदुओं के ही कोमल बच्चों की बोटियाँ नोच-खसोटकर खाने और उनका लहू चटकारे ले-लेकर पीने के कारण यह सिद्ध हो गया कि इसकी नृशंसता एक शैतानी धर्मबद्धता है तथा इसकी पैशाचिकता का भी एक तरीका है। इसे आजन्म कारावास, काले पानी की सजा हुई तथा कुछ दिनों के लिए पागलखाने में बंद किया गया। उधर भी वाहियात व्यवहार के कारण जब इसपर दो बार पचास-साठ कोड़े बरसाए गए तबसे इसने पागलपन की यह नौटंकी बंद की और अनुशासन के साथ रहने लगा और अब इसे काला पानी भेजा जा रहा है। कोड़े पड़ने से जनाब का पागलपन ठीक हो गया। संगीन की तेज धार पर राक्षसी वृत्ति तराशी जाने पर ही कभी-कभी इस प्रकार राक्षसों को मानवी आकार दिया जाता है। अटकलपच्चू के मंत्र के पानी से जो हिंस्र जानवर नहीं हिल-मिल जाते या परचे नहीं जाते, वे स्पष्ट रूप से संगीन के पानी से साधे जा सकते हैं। कम-से-कम इस प्रकार उपद्रवहीन तो बनाए ही जा सकते हैं।

पिलपिली, लसलसी उबासीयुक्त दया ने जिन्हें 'बेचारा' समझा, वे इस काले पानी के चालानांतर्गत उस समय इस प्रकार 'बेचारे' क्यों प्रतीत हो गए, यह समझने लायक उनमें से जिन तीनों का परिचय नमूने के तौर पर ऊपर कराया, उनकी पृष्ठभूमि में मात्र उपन्यास की सनसनीखेज अनूठी अद्‌भुतता बढ़ाने के लिए कल्पनाजन्य भूमिकाएँ नहीं हैं। मात्र उभरे हुए रोमांचों की थरथराहट का अनुभव करने के लिए मानव जाति की मानवता की मिथ्या दुर्दशा करना उपन्यास की मानवता के लिए भी कलंक है।

परंतु यह भूमिका इस उपन्यास का कल्पित सत्य नहीं है, अपितु प्रकृति का एक यथार्थ है। काला पानी स्थित दंडितों के इतिवृत्त का पोथा, उनका कच्चा चिट्ठा उलट-पुलट करेंगे तो आप इस पैशाचिक नगरी के पचहत्तर फीसदी नागरिकों की जीवनयात्रा उक्त दो-तीन जनों के लेखे-जोखे से मिलती-जुलती ही पाएँगे। अपवादस्वरूप पच्चीस फीसदी, और फिर भी अपनी धार्मिक यात्राओं में भी जितनी हुल्लड़बाजी होती है, उतनी भी इस राक्षस राष्ट्र में सहसा नहीं होती। उधर हत्या, डाकेजनी की वारदातों के सालाना आँकड़े अमेरिका के आँकड़ों से कम पड़ते हैं। इसका कारण वह पिलपिली, लसलसी उबासीयुक्त सहिष्णु दया नहीं अपितु संगीन दंड है। वह दुर्धर्ष दंड ही उन राक्षसों को मनुष्य बनाता है।

देह में जिस प्रकार व्याधि होती है, उसी प्रकार मानवता में राक्षसी वृत्ति उपजाऊ होती है। आसुरी वृत्ति को सुधारने का उपाय है दंड, मानवता को सुधारने का उपाय है दया।

'चालान' के दंडितों को अपने पैरों की बेड़ियों की झनझनाहट तथा किसी फौजी दल के अनुशासन के साथ चार-चार की पंक्तियों में मैदान में आते ही ठोस आदेश दिया गया, 'ठहरो।' तत्काल वे तमाम दंडित खट से खड़े हो गए। 'बैठो'—इस आदेश की सनसनाती गोली छूटने से बेड़ियों की झनझनाहट के साथ ये सारे झट से नीचे उकड़ूँ बैठ गए। सामने जिस सागर में उन्हें अब उतरना था, वह ऊँची-ऊँची विशाल लहरों को लहराता, बाद में उस जहाज घाट पर उन लहरियों से धड़ाधड़ टकराता, उमड़-उमड़कर बहती-छलकती फेनिल लहरियों द्वारा प्रचंड क्रोधावेग से गर्जन-तर्जन के साथ फुफकारता हहर-हहर नाद करता था। दंडितों में से प्राय: सभी ने जीवन में पहली बार सागर दर्शन किया था, इसलिए उस विशाल जलाशय का इस तरह प्रचंड क्रोधावेग से उमड़ता-उछलता-लरजता रूप देखकर उस भीषण दृश्य के आघात के साथ ही उनका दिल धौंकनी के समान धड़कने लगा। एक-दूसरे से बातचीत करना उनके लिए सख्त मना होने के बावजूद इस अनिवार आघात से, किसीसे और कुछ उद्गार सुनने की इच्छा से हर एक निकटवर्ती दंडित से खुसुर-फुसुर करने लगा, 'यही है वह काले पानी का सागर।' 'बाप रे, बाप! ये उत्तुंग जोरदार लहरें उमड़ती हुई देखकर मेरा जी तो साँय-साँय करने लगा है।' 'अरे, क्या यह सच है कि काले पानी पर जब भेजते हैं तब उन्हें, इस असीम सागर के उस पार कोई द्वीप है, वहीं ले जाते हैं?' 'मैंने सुना है वह निरी चंडूखाने की गप है।' 'इसी गप ने झाँसा देकर तो हमें इस जहाज पर सवार करवाया और भरे समुंदर में झोंक दिया। अब हमें पूरी तरह डुबो रहे हैं—जलसमाधि ही होगी हमारी।' नौसिखिया दंडितों की कँपकँपी उत्पन्न करनेवाली शंकाएँ तथा पुराने घाघ, अनुभवी बेमुरव्वत दंडित उन्हें जो प्रत्युत्तर दे रहे थे उससे यह कानाफूसी बढ़ते-बढ़ते, दबे-दबे कोलाहल में बदल गई, यहाँ तक कि पुलिस के सब्र का बाँध टूट गया और उन्होंने फिर धमकाया, ''चुप बे! वरना अच्छी-खासी मरम्मत होगी तुम लोगों की।''

इसके साथ ही फिर सभी ने चुप्पी साधी। जो निर्लज्ज बंदी अनुभवी तथा घुटे हुए हैं तथा जो बार-बार जेल की हवा खाते हैं वे इस फन में माहिर होते हैं कि रखवाले की नजर बचाकर अनुशासन भंग कैसे किया जाता है। पर नौसिखिए बंदी उनके फंदे में फँसकर जब अनुशासन भंग करने लगते हैं, तभी झट से पकड़े जाते हैं। उसपर भी उन निर्लज्ज निघरघट दंडित बंदियों को, जो अनुशासन भंग करते हैं,

सहसा छेड़ते नहीं। जो नवागंतुक अभी नरमदिल होते हैं उनपर अनुशासन भंग का गुस्सा उतारना पहरेदारों को भी आसान होता है। इसीलिए एक गुस्सैल पहरेदार, जो यह देख रहा था कि कोई शोर तो नहीं मचा रहा—अपनी दूसरी तरफ बैठे हुए दो-तीन निघरे दंडितों को, जो कबसे खुसुर-फुसुर कर रहे थे, उनके प्रति ध्यान न देने का नाटक करके चोरी-छिपे उनपर नजर रख रहा था। थोड़ी देर में फिर से इधर-उधर धीरे-धीरे फुसफुसाहट बढ़ने लगी और हजम भी होने लगी। यह देखकर इस कल्पना मात्र से कि सागर में ले जाकर बंदियों को जलसमाधि देते हैं, उन दो-तीन जनों में जो अल्पवयस्क तथा नया था, उसकी इस कल्पना मात्र से सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई थी। वह अपने निकट बैठे बंदी से, जो शिक्षित दिखाई दे रहा था, गिड़गिड़ाकर बार-बार पूछने लगा—''बाबूजी, बताओ न! क्या इसी सागर में डुबाएँगे हम सबको?''

''नहीं बबुआ, नहीं।'' उस निघरे दंडित ने बीच में ही यह आहट लेकर कि पुलिस की पीठ है, झट से कहा, ''यह बात सरासर झूठ है। मैंने एक निपुण पट्ठे को अपनी आँखों से जेल में देखा है जो काले पानी से भागकर आया था। उस द्वीप को अंदमान कहा जाता है। हम सभी को उधर भेजा जाएगा।''

''आँ? क्या कहा आपने?'' उस लड़के ने पूछा, जैसे उसमें नई जान आ गई, ''भला काले पानी से कोई भागकर भी आ सकता है? बाबूजी, तुम कहो तो हम सच मानेंगे इस बात को।''

''भई, हजारों में कोई इक्का-दुक्का होगा ऐसा वीर बहादुर। इस प्रकार का एक नराधम अपराधी मैंने भी देखा है जो काले पानी से भागकर आया था।''

वह 'बाबूजी' (बंदी जगत् में 'बाबूजी' उसे संबोधित किया जाता है जो साक्षर या क्लर्क हो अथवा बड़ी योग्यता रखता हो।) सतर्कता की चरम सीमा पर जाकर यह सब बोल रहा था कि उस पुलिस पहरेदार ने, जो उन बंदियों की ओर पीठ करने का बहाना बनाकर उनपर नजर रख रहा था, लपककर भागते-भागते 'बाबूजी' को पकड़ लिया, क्योंकि 'बाबूजी' शब्द उनकी असावधानी से बहुत जोर से निकल गया। बंदीवास का प्रसंग पूरी जिंदगी में पहली बार आने के कारण वे इस विद्या से बिलकुल ही अनजान थे कि शासन के हाथ न लगते हुए अनुशासन भंग कैसे किया जाता है। उसपर जोर से सीधा सत्य बोलने की शिष्ट दुनिया की आदत छोड़कर उनमें अभी तक वह धूर्तता नहीं आई थी जो बंदीगृह में आवश्यक होती है।

पहरेदार ने झपट्टा मारकर बाबूजी के कुरते का गला पकड़कर उसे खड़ा किया और उसे घसीटते हुए अपने जमादार के सामने खड़ा कर दिया, ''बार-बार चुप रहने के लिए कहने के बावजूद यह बंदी निरंतर हल्ला मचा रहा है। इतना ही

नहीं, अन्य बंदियों को भी पट्टी पढ़ा रहा है कि 'हम सब काले पानी पर जेल की सलाखें तोड़कर भाग जाएँगे।''

''क्या?'' गुस्से से नथुने फुलाकर जमादार दहाड़ा, ''काले पानी से भागने का षड्यंत्र? क्या नाम है उस बदमाश का?''

पहरेदार ने उस 'बाबूजी' की छाती पर लटके हुए तमगे की ओर देखकर उसका नाम बताया, ''कंटक।''

जमादार ने नाम और उसके तमगे पर लिखा बंदी-क्रमांक अपनी जेब में रखे नोटबुक में नोट किया। फिर गुर्राकर उसने कहा, ''कंटक, अगर तुम्हारे गुनाह की रिपोर्ट मैं ऊपर कर दूँ तो जानते हो तुम्हें लेने के देने पड़ जाएँगे। तुम्हें पता है, काले पानी से भागते हुए बंदी को गोली से उड़ा दिया जाता है और पकड़े जाने पर उसे फाँसी दे दी जाती है? काले पानी में यह अपराध सर्वाधिक जघन्य माना जाता है।''

''पर जमादारजी, मैंने काले पानी से भागने की साजिश के संबंध में किसीको जरा भी नहीं उकसाया। मुझे…''

''चुप हो, बदमाश! तूने ऐसे ही भड़काया है।'' पहरेदार गुर्राया।

''मेरे आसपास बैठे हुए बंदियों से पूछिए कि मैं सच बोल रहा हूँ या झूठ।''

जमादार ने उस लड़के से तथा उस निघरे बंदी को उठाकर पूछा, ''क्यों रे, यह कंटक तुम्हें क्या पट्टी पढ़ा रहा था?''

लड़के के तो छक्के छूट गए; वह थरथर काँपता हुआ ऐसे खड़ा रहा कि अब मूत देगा। लेकिन वह निघरा कैदी, जो कंटक के ऊपर थोपे गए आरोप से संबंधित पुलिस से चल रही कहा-सुनी प्रारंभ से सुन रहा था, लपककर कहने लगा, ''जमादारजी, यह बाबू हमसे कह रहा था कि वह जानता है काले पानी से कैसे भागते हैं। उनका एक नेता है जो इसी प्रकार काले पानी से उड़न-छू हो गया था। यदि हम उनकी साजिश में मिली-भगत करें और गूलर का पेट न फड़वाने की शपथ लें लें तो साल भर के अंदर-अंदर सभी जेल तोड़कर काले पानी से खिसककर घर वापस लौटेंगे। मैंने इससे कहा, भई, हम नहीं शरीक होंगे इस भयंकर साजिश में और शपथ वग़ैरह भी नहीं लेंगे।''

इस छँटे हुए शोहदे लफंगे की गवाही सुनते हुए कंटक हक्का-बक्का सा खड़ा रहा। इतना सफेद झूठ! फिर अचानक उसने कहा, ''अरे, यह कैसी तोहमत लगाई जा रही है? मनुष्य इतना दरिंदा हो सकता है? अँ? जमादारजी, एक अक्षर भी सच नहीं है जो इसने कहा, भगवान् की कसम मैं…''

तड़ाक् से डंडे का एक प्रहार कंटक की जाँघ पर करके जमादार दहाड़ा, ''चुप!'' इस तमाम गवाह-प्रमाण, आरोप-बचाव, न्याय-निर्णय का समारोप बस

उस एक डंडे ने कर दिया।

इतने में एक घंटी घनघनाने लगी। ''उन तीनों को अलग-अलग पंक्तियों में बैठा दो।'' पुलिस पहरेदार को आदेश देकर वह जमादार भागा-भागा उधर चला गया, जहाँ घंटी बज रही थी। जब तक वह चालान अंदमान जानेवाले धुआँकश पर चढ़ाया नहीं जाता, तब तक जमादार की जिम्मेदारी समाप्त नहीं होती और वह घंटी उसके आगमन की सूचना दे रही थी, अत: कंटक के पचड़े को जमादार वहीं पर भूल गया। एक बार जैसे-तैसे चालान की यह बला उस वाष्प-चालित बोट पर चढ़ाई कि अपनी छुट्टी। फिर उधर ये साले भाग जाएँ या जल जाएँ—भाड़ में जाएँ। भला यह जमादार इस प्रकार के झमेलों के प्रतिवृत्त वरिष्ठ अधिकारियों तक पहुँचाकर स्वयं झंझट किसलिए मोल लेगा?

जमादार चला गया। वह यह कांड भूल भी गया। परंतु बेचारा कंटक अपनी जाँघ पर मारे हुए डंडे के घनाघात को यूँ ही थोड़े भूल सकता है भला? उसकी जाँघ में तीव्र पीड़ा हुई और छटपटाता हुआ वह उसी पंक्ति में बैठ गया, जहाँ उसे बैठाया गया था। उस अन्याय, अपमान तथा खासकर उसका प्रतिरोध करने की संपूर्ण अक्षमतावश कंटक जीवित रहने में भी लज्जा अनुभव करने लगा। काले पानी पर जीवित रहने के लिए जितनी लज्जाहीन सहनशीलता आवश्यक है, उतनी वह उस सद्गुणी में पैदा हुई नहीं थी।

परंतु ऐसे निघरघट बेशरमों में वह दंडित, जिसने कंटक के विरुद्ध गवाही दी थी; और कारागृह तथा काला पानी दोनों का जीवन जिनके अस्तित्व पर आधारित तथा समर्थ होता है, वे बैठे-ठाले कंटक की ओर देखकर बड़े ही वाहियात ढंग से दाँत निकाल रहे थे। पास में बैठे अन्य कैदियों से वह कंटक पर लगाए गए मिथ्या लांछन के सिलसिले में डींग हाँक रहा था, ''भई, मेरी तो जान पर बीत रही थी पर मैंने इस नामर्द बाबू की पूँछ पर टाल दी वह बला। कंटक की टाँग पर ऐसा तड़ातड़ धौल जमाया कि ओह!''

कंटक की टाँग में तीव्र वेदना होने के कारण उसे लगातार काफी देर तक उकड़ूँ बैठना मुश्किल हो गया। सिपाही तो बार-बार चीख रहा था, ''हाँ, उकड़ूँ बैठो। सीधा बैठो।'' कंटक पर अब अनुशासन भंग का दूसरा आरोप लगना अटल था।

लेकिन इतने में यहाँ-वहाँ चारों ओर से वे संगीनधारी पहरेदार गरज उठे, ''उठो! महाराजा आ गया।''

कंटक चौंक पड़ा और कौतूहलवश टुकुर-टुकुर देखने लगा। भई, ऐसे कौन से महाराजाधिराज पधार रहे हैं?

निघरे अनुभवी बंदी उठकर सागर की ओर निर्देश करके फुसफुसाए,

''महाराजा! देखो, आ गया।''

कंटक ने देखा तो एक महाकाय जहाज भों ऽऽ धुआँ छोड़ता, उन उमड़ती-दलकती लहरों के जंगल से राह काटता, हौले-हौले जहाज घाट की ओर आ रहा है, उसपर अगड़धत्त मोटा-ताजा नाम लटक रहा है—'महाराजा।'

'महाराजा आया' का अर्थ है जलयान, यानी जहाज आ गया। क्या यही मुझे अब काला पानी ले जाएगा? उस विशालकाय जलयान को देखते ही कंटक के दिल में सनसनी सी दौड़ी।

आज तक सहस्राधिक भले-बुरे स्त्री-पुरुष अपराधियों को इस 'महाराजा जलयान' ने इस घाट से उठाकर समुद्र पार काले पानी तक छोड़ा होगा, परंतु उन हजारों में से एक को भी पुन: इस घाट पर वापस नहीं लाया होगा। जो काले पानी के एक दंडित रूप में इस जलयान पर सवार होकर काले पानी गया, सो हमेशा के लिए गया। इस दुनिया के लिए वह मर चुका और यह दुनिया उसके लिए मर गई। श्मशान घाट ले जाते समय शव को अगर कुछ अहसास होता हो, तो उसे जो लगता होगा, वही काले पानी पर जाते दंडितों को तब होता होगा, जब उन्हें 'महाराजा' पर चढ़ाया जाता है। कम-से-कम जिनमें महसूस करने की मानवीयता शेष है, उन्हें यही अहसास होता है कि 'महाराजा' एक कब्र है, न कि जहाज। इसमें जो दफनाया गया वह बाहर भी निकलेगा तो काले सागर के उस पार यमलोक में, यमपुरी में, न कि इस लोक में। कंटक को इस बात का अहसास अवश्य था, इसीलिए उस 'महाराजा' के दर्शन मात्र से उसका कलेजा काँप उठा। अब तक वह अपने मन से पूछता था, 'भई, उस सागर को काला पानी क्यों कहा जाता है?'

वैसे देखा जाए तो समुद्रोल्लंघन का अर्थ है जात-पाँत, धर्म नष्ट होना। हिंदू समाज के लिए तो एक सामाजिक मृत्यु ही समझिए। इस प्रकार सिंधुबंदी की रूढ़ि जब से हिंदू समाज में पनपने लगी, दृढ़ होने लगी, तब से प्रत्येक सागर ही काला पानी होने लगा—कराल काल का—मृत्यु का—सागर प्रतीत होने लगा। परंतु जो भी अंदमान आजन्म कारावास के लिए जाते हैं, उन्हें ही काले पानी के यात्री का भयंकर नाम क्यों मिल गया? कंटक कितनी देर तक बैठे-बैठे उस सागर के पानी को देख रहा था लेकिन उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह विशेष रूप से काला क्यों है? अब 'महाराजा' जलयान देखते ही, यह यथार्थता मन में साकार होते ही कि 'अब यह जहाज मुझे अपने आज तक के रिश्तेदारों, स्वजातियों की दुनिया से ही नहीं अपितु जीवन से भी खसोटकर अत्यंत दुर्गति के किसी मृतशंड में, काल के गाल में ले जाकर निश्चित ही दफनाएगा' उसका दिल जोर-जोर से धड़कने लगा। इस विचार के साथ ही उसे वह सारा समुद्र वाकई उलटे तवे जैसा गहरा काला

दिखाई देने लगा। उसे इस बात का बोध हो गया कि इसे काला पानी क्यों कहा जाता है। उसने इस तथ्य को भी स्वीकार किया कि नहीं, काले पानी से भिन्न दूसरा कोई यथार्थ नाम इसे दिया जाता तो किस प्रकार यह अपने पूर्व कथन के विरुद्ध कहा हुआ होता।

यह कंटक आपका जाना-पहचाना किशन है। उसे और मालती को काले पानी की सजा होने पर वे एक-दूसरे से बिछुड़ गए। लाख कोशिशों के बावजूद वह यह नहीं जान सका कि उसकी रवानगी किस बंदीशाला में की गई है। उसे विभिन्न गारद में बंद करते-करते हर चार-पाँच महीने के बाद जमा किए गए काले पानी के दंडितों को इकट्ठा करके एक-एक दल काले पानी पर रवाना करने की पद्धति के अनुसार इस दल को जब कलकत्ता लाया गया, तब उस जानलेवा खतरे में भी एक स्निग्ध जिज्ञासा उसे चैन से जीने नहीं देती थी। कहीं मालती को भी तो इसी 'चालान' में लाया नहीं जाएगा? हाय! हाय! उसे इस दुर्दशा में देखना, ठेलना कितना असहनीय, कितना कटु होगा। हाँ, पर उसी बहाने क्यों न हो, कम-से-कम उसे देखना; संकट भोगना ही है तो साथ-साथ बाँटकर भोगना कितना प्यारा लगेगा। उसने गुपचुप उसकी तलाश की, लेकिन उस चालान में दंडित महिलाएँ नहीं भेजी जानेवाली थीं; और भेजना भी हो तो उन्हें मर्दाना चालान की निगाहों से ओझल रख भेजने की जो स्वतंत्र व्यवस्था की गई है, वही उचित है। इस प्रकार के छिछले, छाकटेबाज कलिपुरुषों तथा क्रूर पशुओं के झुंड में उन क्रूर और दंडित स्त्रियों का भी सर्वनाश हुए बिना थोड़े ही रहेगा। इस बात का पता लगने के बाद कि मालती इस चालान में नहीं है, किशन को एक तरह से अच्छा लगा; पर कुछ बुरा भी लगा, इसलिए वह बैचैन हो गया कि उसे देखने का अवसर भी साध्य नहीं हो रहा। इसके विपरीत एक और व्यक्ति को उस चालान में न पाने के कारण उसे इतनी राहत मिली कि जैसे जान का खतरा टल गया। वह व्यक्ति है रफीउद्दीन। उसे भी आजन्म कारावास, काले पानी का दंड हो चुका था। किशन को सजा होने से कुछ ही दिन पहले। कहीं वह भी इसी चालान में साथ तो नहीं आ रहा। उसका नाम बदला गया—किशन का कंटक किया गया पर रूप तो वही है। यदि उसने मुझे पहचान लिया तो? वह क्रूरकर्मा नराधम उससे प्रतिशोध लेने के लिए कुछ भी अत्याचार कर सकता है। किशन पर भी प्रत्याघात किए बगैर नहीं रहेगा। पहले से ही भीषण संकट झेलते-झेलते दूसरी आफत गले पड़ जाएगी, जैसे कंगाली में आटा गीला। चलो जो होना है होने दो। जितना अनिष्ट होना है हो चुका—अब क्या आजन्म कारावास—क्या काला पानी—मृत्युदंड—भई, उड़द की दाल में काला-सफेद क्या देखना? इस विचार से किशन उस आपत्ति का सामना करने के लिए मन-ही-मन तैयार होता रहा

था। फिर भी उसकी उत्कट इच्छा थी कि अच्छा ही होगा, यदि वह विपत्ति टल जाए। इसीलिए उस चालान में रफीउद्दीन अथवा उसका अन्य कोई साथी नहीं दिखाई देने पर उसे बहुत अच्छा लगा कि एक नई बला तो टल गई। फाँसी पर चढ़ाया जाता है, तो उस समय भी आँखों पर पट्टी बाँधकर चढ़ाया जाना थोड़ा अच्छा लगता है।

आखिर वह संपूर्ण चालान खन्-खन् करती बेड़ियों की झनझनाहट के साथ, हर एक की बगल में बिस्तरा, हाथ में थाली, चार-चार की कतारें अब एक-एक बनाकर 'महाराजा' पर—झिझकते, लुढ़कते-पुढ़कते उस जलयान की—जो लहरों पर जोर-जोर से हिलकोरे ले रहा था—सँकरी सी सीढ़ी द्वारा चढ़ गया। वह 'महाराजा' जलयान सिर्फ काले पानी पर आवाजाही के लिए ही आरक्षित था। पिछले तीस-चालीस वर्ष में इस प्रकार के सैकड़ों 'चालानों' को इसने आजन्म कारावास पर पहुँचाया। उसपर कदम रखते ही लहरों के हिलकोरों का आदी न होने के कारण किशन को चक्कर सा आ गया। उसे अहसास हो गया कि यह अग्नियान आजन्म कारावास पर नहीं, मृत्युवास पर ले जा रहा है। एक खंभे का सहारा लेकर वह स्वयं को सँभाल ही रहा था कि इतने में एक सिपाही ने 'आगे बढ़ो' कहते हुए उसे डंडे से टोका। उसके साथ ही वह फिर से पंक्ति में ठीक-ठाक खड़ा रहकर—मोटे से तल पर उतर गया। उधर देखा तो एक पूरा पिंजड़ा ही सामने था, जो लोहे की सीखचों से बना हुआ था। उस जलयान पर यह एक विशेष प्रबंध था जो काले पानी के बंदियों के लिए ही किया गया था। वह पिंजड़ा ही उन सम्माननीय अंदमानी यात्रियों का आरक्षित कक्ष—Reserved Cabin—था। उस एक छोटे पिंजड़े में, जिसमें पचास-एक व्यक्ति सो सकते हैं—उन सौ-सवा सौ दंडितों को फटाफट ठूँसा गया। जिसे जहाँ भी खाली जगह मिली, उसने वहाँ अपना बोरिया-बिस्तर फैलाया। कोई पंजाबी ब्राह्मण, कोई बंगाली चमार, कोई बलूची मुसलिम, कोई मद्रासी अय्या, कोई भील, कोई मछियारा, कोई क्लर्क, कोई भिखारी, कोई सेठ-साहूकार, कोई ज्वर से पीड़ित, कोई अतिसारी, कोई आँव से पीड़ित—इस प्रकार विभिन्न लोगों का बेमेल मिश्रण—जैसे तिल-तंडुल का मेल—सभी एक साथ ठेलते-ठालते सटकर समान रूप से इकट्ठे ठूँसे हुए। चलो, विपत्काल में ही सही, लेकिन यह समानता ऐसी कि वर्ण भेद, जाति भेद, धर्म भेद, स्थिति भेद आदि को नकारने का साहस रूसी बोलशेविकों को भी नहीं होता।

किशन भी उस रेलपेल में अपना बिस्तर रखकर धम् से बैठ गया। पहले से ही, नाव से जहाज में आते-आते कई बंदी जिस तरह धड़ाधड़ उलटियाँ करने लगे, उसी तरह उसे भी मतली-सी आ रही थी। परंतु इधर कै करने के लिए अलग जगह

कहाँ थी? हर कोई वहीं पर उलटियाँ करने लगा, जहाँ वह बैठा था। इसमें भी बेशरम ज्यादती में जो जितना अधिक दुस्साहसी, उसे उतनी ही अधिक सुविधा। बलपूर्वक धक्के देकर स्वयं यथासंभव ज्यादा-से-ज्यादा पैर पसारकर बैठ जाते। सिपाही चाहे लाख पानी पी-पीकर कोसें, डंडों से मरम्मत करें, उसकी उन्हें रंच मात्र भी लाज-शरम नहीं थी। अभ्यस्त होने के कारण उन्हें उतना डर नहीं था, न ही लिहाज। परंतु जो इस भय का लिहाज करते, जिन्हें दूसरों की गरदन मरोड़ने में रत्ती भर क्यों न हो, शरम महसूस होती; उन कायरों को अथवा जिन्होंने शरम-हया घोलकर नहीं पी है, उन्हींको पुलिसवालों तथा उन नीच दंडितों की गाली-गलौज और घिनौनी गंदगी अधिक पीड़ादाई प्रतीत होती। किशन को भी एक उग्र दंडित, जो उसकी बगल में बैठा था, बार-बार ढकेल रहा था। किशन ने वहीं पर उलटी की। उसके छींटे बिस्तर पर पड़ने के कारण वह उसे गंदी-गंदी गालियाँ दे रहा था। दूसरी ओर दमे का एक मरीज लगातार खाँसता जा रहा था, बलगम थूक रहा था। इतने भीड़-भड़क्के में मजबूरन उसकी थूक किशन के बिस्तर तथा पैरों पर गिरती। यथासंभव शरीर समेटकर, घुटने पेट में सिकोड़कर वह अपने बिस्तर को हाथ भर ही बिछाते हुए बाकी वैसा ही लपेटा रखकर उससे पीठ टिकाकर लेट गया। उस भीमकाय जलयान की कर्णकटु घरघराहट छूटने से पहले ही कान खाने लगी। जहाज की चिमनी बीच-बीच में हड़काए हुए राक्षसी कुत्तों की किसी टोली सदृश 'भोंऽऽ भों' करते पागल कुत्ते जैसी चीखने लगी।

उस अगड़धत्त धुआँकश की वह घरघराहट किशन को साक्षात् मृत्यु की ही घरघराहट महसूस होने लगी। चिमनी का वह 'भोंऽऽऽ भोंऽऽऽकार' यमराज के किसी काले-कलूटे, रक्त-पिपासु, विशालकाय, कराल कुत्ते के बुभुत्कार सदृश भीषण प्रतीत होता। पेट में निरंतर मतली, दिल में घबराहट, तड़प, सिर में चक्कर और मन में इस अहसास की सतत चुभन कि 'मैं काले पानी में आजन्म कारावास भुगतने जा रहा हूँ। अब जीवित भी रहा तो इसी प्रकार की गंदगी भरी दलदल, गाली-गलौज, लात-घूँसों की असहनीय दुर्गति में मुरदा जीवन जीऊँगा और इसकी रत्ती भर भी आशा नहीं कि इस दुर्गति का कभी अंत भी होगा।' किशन अपने विचारों में लीन वैसे ही बिस्तर के सिरहाने लेटा रहा। इतने में उसके इस अस्त-व्यस्त चिंतन में अचानक एक विचार की चीख सुनाई दी।

'क्यों? भला क्यों अंत नहीं इस दुर्गति का? काला पानी, कैदे-हयात, आजन्म कारावास। ठीक है, मुक्ति नहीं हो सकती; पर छुटकारा क्यों नहीं हो सकता? पट्टा क्यों नहीं तोड़ सकते? वह रफीउद्दीन नहीं भाग गया काले पानी से? भला मैं क्यों नहीं भाग सकता उसकी तरह?'

इसी मूर्च्छितावस्था में अस्त-व्यस्त लेकिन दृढ़ विचारों के साथ उसकी मृतप्राय आशा अचानक उछलकर चौंक उठी। मरणासन्न व्यक्ति जिस प्रकार आकस्मिक प्रबलतावश हाथ-पाँव झटकता है, उसी प्रकार उसकी आशा सहसा ही झड़झड़ाकर प्रबल हो उठी। उसने तर्कशास्त्र का अध्ययन किया था और कुतर्क भी तो एक तर्क ही है। संभवासंभवनीयता, साध्य-साधनों की रुकावट, आशा तथा वात-विकार के झटके में बाधा नहीं डालती। डूबता हुआ जो तिनके का सहारा लेता है, वह इसलिए कि लिये बिना रहा नहीं जाता। उसी तरह उसकी आशा ने, जो काले पानी के अथाह सागर में गोता खा रही थी, इन विचारों को झट से अपनी बाँहों में कस लिया और उस बेभान मूर्च्छितावस्था का संपूर्ण होश भी उसी एक वाक्य को संगठित करके उद्घोष करने लगा—'काले पानी से भागना है। बस! भागना ही है।'

खड् ऽऽऽ खड् ऽऽ···

खड़खड़ाते हुए धुआँकश के पहिए, पंखयंत्र सागर के पेट में गुड़गुड़ाने लगे। 'निकल पड़ेगा। शुरू होगा। जहाज काले पानी की ओर चल पड़ेगा।' पुलिस, कैदी, जहाज का कप्तान, मल्लाह, अधिकारी, नौकर-चाकर सभी के मुँह से यही एक ध्वनि उभरने लगी।

इतने में खट-खट जूते खटखटाते दो गोरे सार्जेंट एक कैदी को, जिसके हाथ-पाँवों में बेड़ियाँ, हथकड़ियाँ ठुकी हुई थीं, कड़े पहरे में नीचे उतारते पिंजड़े के द्वार के पास आ गए। धड़ाम से द्वार खुल गया और उस पिंजड़े में उस घुटे हुए दंडित के साथ, जिसे खास पहरे में लाया गया था, वे सार्जेंट अंदर घुस गए।

उस खट-खट के साथ चौंकते हुए यह देखने के लिए कि सार्जेंट आदि किसे लेकर आ रहे हैं, किशन ने लेटे-लेटे ही आँखें खोलीं—उधर देखा—वही! कौन? यह तो···? अरे, यह तो वही रफीउद्दीन अहमद है! सिर्फ चार हाथ के फासले पर अकड़कर खड़ा है!

मुट्ठियाँ कसते हुए झटके के साथ आधा उठते हुए क्रोध, भय और आश्चर्य से थरथर काँपते हुए किशन फुसफुसाया, ''रफीउद्दीन! यही है वह रफीउद्दीन अहमद!''

उससे जो पुराना बैर था, किशन के हृदय में वह यकायक खौलने लगा। स्थान, काल और स्थितियों का होश उसे नहीं रहा। जैसेकि देखते ही रफीउद्दीन शेर जैसा उसपर झपट्टा मारेगा। इसी प्रकार की लहर किशन के लहू में भी उमड़ने लगी और झपट्टा मारने के लिए घात लगाकर वह बिस्तर की ओट में बैठ गया।

इतने में रफीउद्दीन की निगाहें भी उसकी निगाहों से टकराईं।

□

प्रकरण–१०

अंदमान की राह पर

रफीउद्दीन की दृष्टि किशन की दृष्टि से टकराते ही, यह सोचकर कि यह साला अभी इसी वक्त हमला करेगा, हाथापाई के जोश से किशन की मुट्ठियाँ अपने आप कसने लगीं। परंतु पल भर में ही किशन को इस बात का अहसास हो गया कि रफीउद्दीन अन्य बंदियों की ओर भी उसी तरह देख रहा था। वह किसी भी तरह से विचलित नहीं हुआ है, और इसी विवंचना की ओर उसने अपना सारा ध्यान बटोरा है कि अपना बोरिया-बिस्तर किस तरह सबसे अधिक प्रशस्त जगह डाला जाए। उस अवकाश में उसे तनिक सोचने के लिए भी फुरसत मिली। यदि इसने मुझे साफ नहीं पहचाना तो न सही? वह भी उसे पहचानने से इनकार करेगा। यथासंभव उसकी यही धारणा बनी रहनी चाहिए कि वह कंटक नामधारी कोई दूसरा ही कैदी है। उस अवकाश काल में किशन ने यही निश्चय किया कि जितना भी हो सके, इससे परिचय करना टाल देना ही उचित है। और फिर अपने बिस्तर पर लेटकर आँखें मूँदने का नाटक करते हुए वह रफीउद्दीन की गतिविधियाँ देखने लगा।

रफीउद्दीन ने अपना बिस्तर पिंजड़े के एक ऐसे कोने में बखूबी रखा कि पहरेदार सिपाही से बातचीत करना सुविधाजनक हो। गोरे सार्जेंट के उसे इतने खास पहरेवाले पिंजड़े में छोड़कर, पिंजड़ा बंद करके जाते हुए देखकर पहले से ही सारे कैदियों पर उसका अच्छा-खासा रौब पड़ गया था। अधिकारी जिसे अत्यंत भयंकर दंडित समझकर भारी-से-भारी हथकड़ियाँ, बेड़ियाँ ठोंकते हैं, अन्य दंडित लोग उसे तिरस्कारास्पद व्यक्ति न मानते हुए अत्यंत पराक्रमी नरसिंह समझने लगते हैं। उन गुनाहगारों में उसका दबदबा, प्रतिष्ठा बढ़ जाती है और वे अनायास ही भयमिश्रित आदर के साथ उसके अधीन हो जाते हैं। दंडितों की इस प्रवृत्ति के कारण ही इतनी घिचपिच में रफीउद्दीन को उस महत्त्वपूर्ण कोने के दंडितों ने किसी भी प्रकार की

हुज्जत, चखचख न करते हुए स्वयं को एक-दूसरे में ठूँसकर थोड़ी खुली जगह बना दी। हर कोई इस प्रकार की जिज्ञासा करता कि 'भई, यह है कौन?' यह जानकारी बातचीत के दौरान दो-चार लोगों से, जिन्हें जानकारी नहीं थी उन सभी को, प्राप्त हो गई कि यह पहले काले पानी गया हुआ एक कुख्यात बंदी है। रफीउद्दीन को इस बात का पूरा-पूरा अहसास था कि हर कोई उसकी तरफ शिष्टता और आदर के साथ देख रहा है। वह इस शान से खाँस-खँखार रहा था, पुलिस की नजरें बचाकर यथासंभव बातचीत कर रहा था, जैसे उन दंडितों का एक शहंशाह हो। उसकी आलमपनहाई के जो विशेष राजचिह्न थे—वे थीं उसके पैरों में पड़ी अन्य सभी कैदियों से भारी बेड़ियाँ—उन्हें बार-बार झनझनाता हुआ वह इतरा रहा था।

अब अँधेरा घिर आया था। वह जलयान कलकत्ता बंदरगाह छोड़कर काले पानी की राह पर तेज गति के साथ सूँ-सूँ करता जा रहा था। कलकत्ता से अंदमान जाने के लिए जो चार-पाँच दिन लगते हैं, उनमें बंदियों को सिर्फ चिउड़ा तथा चने जैसा कच्चा भोजन मिलता था, क्योंकि उनमें से प्रायः सभी घबराए हुए होते हैं। समुद्र यात्रा का वह पहला ही प्रसंग होने के कारण कई दंडितों को लगातार उलटियाँ होती हैं। उन्हें कुछ खाने-पीने की इच्छा ही नहीं होती। दूसरा कारण यह कि इतने सारे, सैकड़ों लोगों के लिए भोजन-पंगत की व्यवस्था तथा व्यय करने का अधिकारियों में भी इतना जोश नहीं होता। उसीके अनुसार चना-चिउड़ा जो शाम के समय पिंजड़ा बंद करते ही बाँट दिया गया था, प्रायः सभी कैदियों ने जो उलटियों से बेजार थे, उस खाद्य सामग्री को ज्यों-का-त्यों रखा था। परंतु रफीउद्दीन का जैसे काले पानी से जनम-जनम का रिश्ता था—वह रत्ती भर भी डरा-सहमा नहीं था—न ही उसे उलटियाँ हो रही थीं, बल्कि उसके पेट में तो चूहे कूद रहे थे। उसका रौब तो पहले से ही सभी दंडितों पर पड़ गया था—भई, वह तो उनका आलमपनाह ही था। अतः उसने, जिस प्रकार राजे-महाराजे अपना लगान प्रजा से वसूल करते हैं, उसी अधिकार से, अपने आसपास के दंडितों से उनका वैसे ही रखा हुआ खाने का हिस्सा स्पष्ट रूप से माँग लिया। एक-दो ने देने में अगर-मगर की तो इसने किसी दूसरे बहाने से झगड़ा छेड़कर गाली-गलौज करते हुए उन्हें धमकाया और उनका हिस्सा हड़प लिया। लाय-चना तथा चिरा-चिउड़ा का फाँका मार-मारकर—इधर-उधर बिखेरकर रफीउद्दीन अब पिंजड़े की सीखचों के पास किसीकी प्रतीक्षा में खड़ा था। किसी कैदी के कुछ पूछने पर वह कहता, 'तनिक ठहरो, फिर बात करेंगे।'

इतने में उसे वह अवसर मिल गया जिसकी ताक में वह था। रात नौ बजे ही पिंजड़े का पहरा बदला गया। उस 'चालान' को काला पानी लाने के लिए काला पानी

पुलिस के कुछ आदमियों को कलकत्ता भेजा जाता है। उनमें दो जनों का यह दूसरा पहरा था। काले पानी से आए हुए उन पुलिसवालों से रफीउद्दीन की गाढ़ी छनने लगी थी। वह उन्हींके पहरे की प्रतीक्षा कर रहा था। उनके आते ही रफीउद्दीन ने सीखचों में से अपना हाथ तनिक आगे बढ़ाकर उन पहरेदारों से परिचयसूचक हाथ मिलाया। परंतु पहरेदारों के हाथों में हलदी की गाँठ कहिए या मिश्री की छोटी सी डली, अर्थात् सोने या चाँदी का एक सिक्का आ ही गया। पहरेदार आनन-फानन दूसरे सिरे तक चक्कर लगाता हुआ गया। फिर तनिक सन्नाटा होते ही रफीउद्दीन के पिंजड़े की सीखचों में से बीड़ी का एक बंडल तथा दियासलाई टप् से गिर गई। उसी समय से पिंजड़े की उस रियासत में सर्वाधिकारी सदृश उसकी अच्छी तरह से पटरी बैठ गई। उस सर्वाधिकार का लाभ भी वह कुछ बातों में भलीभाँति उठाने लगा।

जिस तरह आगे चलकर पिंडारियों[१] के नेताओं की रियासतें बन गईं उसी प्रकार कुछ साहसी, दिलेर लुटेरे जब-जब राज्यों की स्थापना करके राजे-महाराजे बन जाते हैं तब-तब वे राजा-महाराजाओं जैसा व्यवहार भी करने लगते हैं। स्वयं द्वारा किए जा रहे अन्याय के प्रति आँखें बंद करके अन्य लोगों के न्यायान्याय का वे चोखा फैसला करते हैं। स्वयं अपनी लूटपाट छोड़कर अन्य लोगों को आपस में लूटपाट नहीं करने देते। उनकी चाहत के अनुसार मचाया गया फसाद छोड़कर अन्य मामलों में अन्य लोगों को आपसी उपद्रव, फसाद कम करने के लिए अपनी दयाशीलता का, उदारता का भी अच्छा खासा प्रदर्शन करते हैं।

रफीउद्दीन अतिक्रूर व्यक्ति था। वह तब तक मनुष्यता का व्यवहार करता था जब तक कोई उसका मन नहीं तोड़ता था, ताकि उसकी क्रूरता अपना फन न उभारे। उसने कई कैदियों को ढाढस बँधाया, जिनके काले पानी के नाम से छक्के छूट जाते हैं, "अरे यार, घबराओ मत। वहाँ तो दस हजार लोग पच्चीस-तीस-चालीस सालों तक जीवित रहते हैं। कई लोग तो बीवी-बच्चों का खलेरा फैलाकर अपनी घर-गृहस्थी भी बसा लेते हैं। खेती, पशु, घरबार सबकुछ तो होता है उधर। अरे, तुम्हारी ही तरह मेरे हाथों के भी तोते उड़ गए थे। लेकिन उधर रहने के बाद हजार रुपए गाँठ में बाँधकर लौटा था। घबराओ मत पट्ठो, घबराओ मत।" कई लोग दस्त-उलटियों से परेशान थे, तब सिपाहियों से लड़कर, आवश्यकता पड़ी तो डॉक्टरों से भी लड़कर उन्हें इस प्रकार फटकार कर कि बंदियों से कैसे पेश आएँ—इस संबंध में जो नियम हैं उनको भंग क्यों कर रहे हैं—कप्तान साहब को शिकायत

---

१. पिंडारी—वेतन के बदले शत्रु के इलाके में लूटपाट करने की आज्ञा प्राप्त लोगों का दल, जो मराठों की सेना के साथ रहता था।

करने की धमकी देता और दवा-दारू देने के लिए उन्हें बाध्य करता। जो कैदी उसे अपने हिस्से का चना-चिरा-चिउड़ा अर्पण करते, बदले में वह उन्हें बीड़ियों के वे टुकड़े दे देता जो उसे नहीं चाहिए थे। अपने जीवन के सच्चे-झूठे प्रसंगों का वर्णन इस प्रकार बाल का कंबल बनाकर कहता; ऐसे पद, भजन गाता कि उन बंदियों को अपनी बीमारी तथा अत्यधिक कष्टों का घड़ी भर को ही क्यों न हो, विस्मरण हो जाता, उनका दिल बहलता। आजन्म कारावास सजा प्राप्त प्रत्येक बंदी के आगे-पीछे, ऊपर-नीचे पिशाचवत् एक ही प्रश्न इस दुर्धर प्रसंग में उभरता, 'काला पानी कैसा होगा? उधर कैसी-कैसी दारुण यातनाओं को भोगना होगा? उसमें से यदि संभव हो तो छुटकारा कैसे पा सकते हैं?' जिस प्रकार मनुष्य को यह असह्य जिज्ञासा होती है कि यमलोक कैसा होगा, उसी प्रकार 'महाराजा' के ये आजन्म कारावास दंड प्राप्त बंदी भी एक ही प्रश्न के दीवाने होते हैं, 'काला पानी कैसा होगा?' जिससे जो भी मिलता उससे उसका यही प्रश्न पूछने के लिए जी ललचाता।

इस प्रकार की मानसिक अवस्था में वह रफीउद्दीन, जो काले पानी का प्रत्यक्ष अनुभव गाँठ में बाँधकर आया है, उन्हें साक्षात् गरुड़ पुराण ही प्रतीत होता। उसने यमपुरी का भूगोल उकेरा था। किशन के मन में भी यही लालसा उछल रही थी कि इससे उधर की जानकारी ले और खासकर वह रोमांचकारी कथा सुने कि काले पानी से वह कैसे चंपत हो गया था? लेकिन पहचाने जाने के डर से 'भीख मत दो, पर अपने कुत्ते को तो रोको' की नीति का अवलंबन करके किशन ने पहले एक-दो दिन तो रफीउद्दीन की तरफ देखा ही नहीं।

परंतु रफीउद्दीन ने कच्ची गोलियाँ नहीं खेली थीं। वह हाथ पर हाथ धरे बैठनेवाला थोड़े ही था? उसका पहला कार्यक्रम था जो-जो बंदी उसे दिखाई देता, उस विशेष कैदी के अभियोग तथा चरित्र की जानकारी लेता। उस प्रत्येक बंदी की, जो आजन्म कारावास की सजा प्राप्त है, रामकहानी एक-एक उपन्यास का कथ्य होती है। असाधारण दुष्टता, सुष्टता, विक्षिप्तता, संकट, मुक्ति, खून-खराबा, हत्या, उत्पात, उपद्रव, प्रतिशोध, सुख-दुःख, दुर्गति इन सभी का एक विलक्षण कोलाहल। वह पिंजड़ा उपन्यासों से भरी हुई एक अलमारी है, भानुमती का पिटारा है। इन उपन्यासों में उमड़-उमड़कर बहनेवाली तथा उखाड़नेवाली भावनाएँ हैं। ऐसे उपन्यास दुनिया के किसी भी ग्रंथालय में नहीं मिलेंगे। प्रथम श्रेणी का यात्री जिस प्रकार धुँआकश पर अपने केबिन में आराम से बैठकर रोमांचक उपन्यास के पन्ने उलटने में तल्लीन होता है, उसी प्रकार रफीउद्दीन उस पिंजड़े में उस एक-एक कैदी के सनसनीखेज रोमहर्षक चरित्र के पन्ने उलटने में लीन हो गया था। यद्यपि सागर यात्रा

से परेशान होकर किशन निढाल होकर चुपचाप अपने बिस्तर पर ही लेटा था तथापि दो-चार बार रफीउद्दीन का ध्यान उसकी ओर चला गया, जो जाना ही था। रफीउद्दीन को इस बात का आश्चर्य था कि उसके मुकदमे में जो वह 'उल्लू का पट्ठा किशन' था, उससे इस कैदी का चेहरा-मोहरा कितना मिलता-जुलता है। परंतु किशन जैसा बेमुरव्वत उल्लू एक बार इतने भयंकर अभियोग से निर्दोष छूटने के बाद फिर कभी ऐसे झंझट में क्यों पड़ेगा? यह विचार बिलकुल असंभव प्रतीत होने के बावजूद रफीउद्दीन के मन को एक बार स्पर्श तो कर गया, पर वह उससे चिपककर नहीं बैठा। तथापि ये जीवित रहस्यकथाएँ पढ़ते-पढ़ते रफीउद्दीन ने जिज्ञासावश एक-दो जनों से पूछा ही कि इस पुस्तक का परिचय क्या है।

"यह प्राणी कौन है, भई? न हिलता है, न डुलता है, न मुसकराता है, न ही कुछ बोलता है; बिलकुल बुत बनकर लेटा है। बिलकुल ही छिछोरा—कोई साधारण सा लल्लू-पंजू, चोर-उचक्का, ऐरा-गैरा पचकल्यानी ही लगता है।"

उसपर उसे दो-एक जनों ने बताया, "नहीं-नहीं मियाँ, हमारे चालान में वह आज दस-बारह दिनों से है। 'बाबू' है वह। सुना है, फर्राटेदार अंग्रेजी और क्या कहते हैं, 'संसकुरित' पढ़ा है। दंडित होने पर जेल में लिखा-पढ़ी का काम दिया था उसे। आदमी पर आदमी है वह बाबू।"

रफीउद्दीन की जिज्ञासा बढ़ गई, "क्या नाम है उसका?"

"साहब लोग इसे कंटक बाबू कहते हैं।"

"इसका अपराध क्या है?"

"हत्या! खून!"

यह जानकारी दो-तीन बार सुनते ही रफीउद्दीन की खुशी का ठिकाना नहीं रहा—अंधा क्या चाहे दो आँखें। उसे वही मिल गया जो वह चाहता था। कंटक बाबू को साहब लोग भी मानते थे, जेल में उसे बंदी लेखक का काम पहले ही मिल चुका था, यह सुनते ही कि इसे केवल हत्या के आरोप में सजा हुई है, रफीउद्दीन ने, जो काले पानी के नियमों का पर्याय बन गया था, तुरंत गौर किया कि इस आजन्म कारावास की सजावाले कैदी को काले पानी पर पहुँचते ही 'बाबू' का महत्त्वपूर्ण काम मिलेगा। मात्र एक हत्या का अपराधी एक सौम्य अपराधी समझा जाए—यह उस यमलोक में न्यायसंगत ही था, क्योंकि वहाँ तो रफीउद्दीन जैसे जालिम, निघरे नृशंस पापी ही यहाँ-वहाँ बिखरे पड़े हैं। इसलिए उधर गए हुए दंडितों में जो इस तात्कालिक आवेश में घटित हत्या सदृश अपराध का बंदी होता है, उसे सुधारणीय बंदियों की श्रेणी में दर्ज किया जाता है और उसके साथ काफी सौम्य—काले पानी की क्रूरता एवं कठोरता के विपरीत—व्यवहार किया जाता है। उसपर इस प्रकार के

'सुधारणीय' वर्ग के बंदियों में यदि कोई पढ़ा-लिखा हो तो उसे काला पानी स्थित बंदियों में लेखक का स्थान प्राप्त होता है। उसके हाथ में साहब की निकटता की कुंजी होने से अन्य निघरे लुटेरों आदि बंदियों के भवितव्य के बहुत सारे सूत्र इन लेखक कैदियों के प्रतिवृत्तांत से निर्धारित किए जाते हैं। वॉर्डर की नियुक्ति, वॉर्डरों को ऐसे ही सुविधाजनक काम जिसमें लाभ हो बाँटना, जेलद्वार की आवाजाही दर्ज करना, सिपाहियों की उपस्थिति रखना, बड़े-बड़े कारखानों के आय-व्यय का हिसाब रखना आदि कार्य इन लेखक बंदियों के हाथों में धीरे-धीरे सौंपे जाते हैं। अतः निघरघट बंदी वॉर्डर प्रभृति दंडितों पर ही नहीं, अपितु स्वतंत्र सिपाही कामगारों पर भी इस बंदी लेखक वर्ग की अच्छी-खासी छाप होती थी। घूसखोरी का उनका सारा कच्चा चिट्ठा खोलना अथवा उसे छिपाना, अधिकांशतः इन लेखक बंदियों के हाथ में होता है। आजन्म कारावास प्राप्त दंडित लेखक को 'बाबू' कहा जाता है।

रफीउद्दीन काले पानी से भागने के घोर अपराध में पुनः काले पानी की सजा मिलने के कारण यह जानता था कि उसे वहाँ प्रथमतः बहुत ही कठोर अवस्था में रहना होगा। ऐसी स्थिति में उसने गौर किया कि उसीके चालान का एक व्यक्ति यदि इस प्रकार बाबू बनकर आनेवाला हो तो उससे दृढ़ परिचय होना उसके लिए अवश्य लाभदायी होगा। इसीलिए वह कंटक बाबू का कृपा प्रसाद पाने के लिए लालायित हो उठा। उसने तुरंत कंटक बाबू के पास जाकर उनसे परिचय किया। उसका नाम कंटक, अपराध सिर्फ हत्या; अतः उसका चेहरा-मोहरा किशन से मिलता-जुलता प्रतीत होने पर भी अन्य किसी भी बात का किसीसे तालमेल न होने के कारण रफीउद्दीन काफी निस्संदिग्धता के साथ कंटक बाबू से घनिष्ठता बढ़ाने लगा। कंटक बाबू की सहायता का भरसक प्रयास करके उन्हें पुचकारने लगा। अपने परिचित तथा ऋणानुबंधवाले सिपाहियों का पहरा शुरू होते ही अपनी अंतिम दो रातें उसने कंटक के पास ही जाकर गुजारीं। कंटक भी उससे बहुत सारी जानकारी प्राप्त करना चाहता था। इससे साँठ-गाँठ करने से काले पानी से नौ-दो ग्यारह होने का रास्ता भी मिल सकता है, इस प्रकार एक दुस्साहसपूर्ण आशा भी उसे लुभाने लगी। सपेरा जिस तरह काले भुजंग के साथ उसके विषाक्त डंक के दायरे से यथासंभव बाहर रहकर खेलता है, उसी तरह कंटक भी रफीउद्दीन के साथ खेलने लगा। रफीउद्दीन के मन पर दृढ़तापूर्वक यह बात अंकित करने के लिए कि वह उसे बिलकुल नहीं जानता, रात में गपशप का अड्डा जमते ही किशन ने कहा, ''लेकिन मियाँ, आप जैसा दिलेर, साहसी, चतुर पुरुष पुलिस को चकमा देकर काले पानी से भागने की दुष्कर, साहसपूर्ण आँख-मिचौनी में तो सफल हो जाता है लेकिन अपने देश में सही-सलामत पहुँचने

के बाद भारतीय पुलिस के जाल में पुनः फँस जाता है! भई, यह क्या माजरा है? ग्रह हुआ कैसे? चोरी, लूटपाट, डकैती आदि दुष्कर्मों के कारण एक बार जबरदस्त ठोकर खाकर आप हिंदुस्थान में भागकर जाने के पश्चात् पुनः इस प्रकार के संकटमय झंझट में न फँसते तो ही अच्छा था न? मुझे इस बात का बड़ा दुःख होता है कि आपको काले पानी से भागकर आने के लिए जिन जानलेवा संकटों का सामना करना पड़ा होगा, वे सारे-के-सारे इसी एक गलती के कारण निष्फल हो गए और आपके सारे किए-कराए पर पानी फिर गया। फिर वही दुर्दशा आपके भाग्य में आ गई। इसीलिए पूछे बिना नहीं रहा जाता।''

''क्या कहूँ कंटक बाबू! मैंने तो सचमुच ही बड़ी ईमानदारी के साथ जीवन बिताने का निश्चय किया था। काले पानी से भाग जाने के पश्चात् मैंने फकीरी ही ग्रहण की थी। हिंदू साधुओं पर भी मेरी भक्ति थी, अतः मैं योगाभ्यास करने लगा। कंटक बाबू, आप विश्वास करें या न करें लेकिन मैं भगवान् की सौगंध खाकर कहता हूँ कि इससे पहले मैंने डाके डाले, चोरी-लूटपाट की, फसाद किया, लेकिन काले पानी से लौटने के बाद मुझे यदि किसी बात का मोह था तो वह भक्ति तथा योग का। भोग-विलास मुझे फूटी आँख नहीं सुहाता। दरअसल मुझपर यह जो संकट का पहाड़ टूट पड़ा वह मेरे किसी नए दुष्कृत्यवश नहीं, अपितु धर्म-न्यायसंगत व्यवहार करने का दृढ़ निश्चय करने के बाद भगवान् जो एक सत्कृत्य मेरे हाथ से करवाना चाहते थे, उसी सत्कृत्यवश।'' फिर वह अचानक मौन हो गया जैसे किसी गंभीर विचार में उलझ गया हो।

अनेक बंदियों के मुख से, जो यह सब बड़े ध्यान से सुन रहे थे, एक साथ एक ही सवाल निकला, ''अच्छा? बोलो न मियाँजी, कहो ऐसी, क्या बात हो गई? कौन सा सत्कर्म था वह?''

इस बात से निश्चिंत होकर कि ऐसा कोई कैदी यहाँ उपस्थित नहीं, जो उसका पूर्वकालीन कच्चा चिट्ठा जानता हो, रफीउद्दीन किसी धर्मवीर की शान से कहने लगा, ''क्या कहूँ बाबूजी! अच्छा, आपने ग्वालियर नगरी देखी है कभी?''

कंटक बाबू ने कहा, ''जी नहीं।''

यह सुनते ही उसे इस बात का विश्वास हो गया कि अब चाहे झूठ के जितने भी पुल बाँधे जाएँ, किसीको रत्ती भर भी संदेह नहीं होगा, अतः रफीउद्दीन हिंदी में कहने लगा, ''सुनो, ग्वालियर के एक कबड़े सरदार की बेटी थी, जिसका नाम था मालती। उठती कोंपल, गोरी-चिट्टी, शोरे की पुतली, साँचे में ढली, नूर बरसाती। वह गुलाब की कली अभी चटक ही रही थी। जितनी सुंदर उतनी ही ईश्वरभक्ति-परायण, धार्मिक प्रवृत्ति की। मैं योगाभ्यास करते हिंदू साधुओं के

पास गेरुए वस्त्र पहनकर मंदिर में बैठता। उधर ही वह पूजा के लिए आती। मुझे देखते-देखते ही मेरी साधुता पर कहिए या मेरे राजसी रूप के कारण, उसकी मुझपर अटूट श्रद्धा हो गई। पूजा के फूल वह मुझपर ही चढ़ाती। मुझे भोग चढ़ाती, रात-रात तक भजन सुनने के लिए रुकती। एक दिन उसे काफी रात हो गई। तब उसने मुझसे प्रार्थना की, 'मुझे अकेले घर जाने में डर लग रहा है, कृपया आप मुझे घर तक छोड़ दीजिए।' तब मैं अपने गुरु की आज्ञा लेकर निस्संकोच उसे घर तक छोड़ने निकल पड़ा। मंदिर गाँव से दूर, बीच में एक आम का बागान, बिलकुल सुनसान। उधर पहुँचते ही घबराकर मालती मुझसे लिपट गई। भई, नारी-स्पर्श हमारे लिए सर्वथा निषिद्ध था; पर क्या किया जाए? उसने तो गलबहियाँ ही डाल दीं। सूखी पत्ती जैसी थरथराकर उसने कहा, 'मुझपर बुरी नजर रखकर कितने दिनों से एक पापी मुझे सता रहा है, मेरा जीना हराम किया है उस कलमुँहे ने। आपको मैं भगवान् समझकर आपकी पूजा करती हूँ, आपके पास आती-जाती हूँ—वह उससे सहा नहीं गया। उसने कल मुझे यहीं पर रोका और जान से मार डालने की धमकी दे दी। इसीलिए तो आज आपको साथ ले आई। ऐसा लगता है, अभी-अभी मुझे उसकी आहट लगी है!'

मैंने पूछा, 'देवी, कौन है वह? क्या नाम है उसका?'

उसने कहा, 'किशन! उस नीच पापी का नाम है किशन।'

यह सुनते ही मेरे रोंगटे खड़े हो गए, क्योंकि उस व्यक्ति से मैं भलीभाँति परिचित था। इससे पूर्व काला पानी गया था, उससे पहले हम डाकेजनी करते थे। उसी गिरोह में किशन जैसा जल्लाद पापी शामिल था। भागकर आने के बाद वह मुझसे ग्वालियर में ही गुप्त रूप से मिला और कहा कि मैं पुन: उसके कुकर्मों में हिस्सा लूँ। पर मैंने उससे कहा, 'मैंने अपने हाथ ही नहीं अपितु मन भी सभी पापों से शुद्ध करके ईश-सेवा में अर्पित किए हैं, तुम भी वैसा ही करो।' यह सुनते ही उसके तलुवों में आग लग गई। उपहास करके वह मुझसे प्रतिशोध लेने की धमकी देने लगा। सभी पूर्व जानकारी के कारण मैं किशन को अच्छी तरह से जानता था। किशन एक अधम था, निर्दयी बदमाश था, भयंकर दुराचारी था। कर्मों से दुष्ट होने के साथ-साथ वह अक्ल का भी दुश्मन था, निपट मूर्ख। कंटक बाबू, आप क्षमा करें तो सिर्फ एक मजेदार बात बताऊँगा। बता दूँ? मुझे ही बहुत हँसी आ रही है। लेकिन इस पिंजड़े में बंद होने के बाद पहले-पहले जब मैंने आपको देखा, तब मुझे उस साले किशन के चेहरे···'' उसने ठहाका लगाया और अन्य बंदी भी खी-खी करने लगे। तत्काल कंटक का जी काँप उठा। उसका रंग फक पड़ गया। कंटक को संदेह हुआ कि यह बदमाश कहीं यह तो नहीं टटोल रहा कि मैं ही किशन हूँ। यदि यही

उसका उद्देश्य हो तो उसे निष्फल करने के उद्देश्य से रफीउद्दीन द्वारा किशन को दी हुई गालियाँ, उनसे पैदा हुई खीझ, मालती की 'उद्धार-कथा' उसके प्रति सोपहास घृणा और संदेह—इन सभी विचारों की खलबली को भीतर-ही-भीतर दबाकर कंटक ने रफीउद्दीन के ठहाकों में अपना भी ठहाका मिलाते हुए कहा, "ठीक मियाँजी, ठीक। वह किशन निपट गँवार का लट्ठ और मेरी शक्ल-सूरत उसीसे हूबहू मिलने की बात, अर्थात् आपका क्या यही कहना है कि मेरा चेहरा उसके जैसा है?" हँसते-हँसते लेकिन हाथ जोड़ते हुए रफीउद्दीन क्षमा याचना करने लगा, "यह क्या बाबूजी? किशन की बुद्धि गधे जैसी थी, पर उसकी सूरत-शक्ल तो अच्छी-खासी थी—यही बात मैं आपकी सूरत से नाप-तोलकर सुझाने जा रहा था। कहाँ आप और कहाँ वह दुराचारी किशन।"

"अच्छा, आगे क्या हुआ?" एक कैदी जल्दी मचाने लगा जो कहानी में तन्मय हो गया था।

"आगे क्या कहूँ, भाई! मैं मालती को धीरज बँधा रहा था, इतने में पेड़ों के झुरमुट में से पत्थरों की वर्षा शुरू हो गई। उस अबला की रक्षा ही अपना धर्म समझकर मैंने उसे एक हाथ से कसकर भींच लिया और मैं भी उलटे पत्थर फेंकने लगा। अपनी हवेली पर आते हुए वह गद्गद होकर कहने लगी, 'मेरी अटारी कोटद्वार की चाभियाँ मेरे पास हैं। मेरी अटारी स्वतंत्र रूप से मेरे ही पास होती है। जब तक मेरे दिल की धुकड़-पुकड़ बंद नहीं होती, आप ऊपर आकर मेरे साथ रहिए, फिर चले जाइएगा।' उसका कहना न मानना अबला के साथ कठोरतापूर्वक व्यवहार करने का पाप करना था। मैं उसकी अटारी पर चला गया। भीतर कदम रखते ही उसने भीतर से दरवाजे को ताला लगाया। भीतर देखा तो चारों ओर साज-सज्जा, खानदानी सुंदरता, सुरभि-ही-सुरभि। चमचमाते दर्पण, तसवीरें, मंचक, पुष्पपात्र—जैसे इंद्रभवन। बीच में वह तराशी हुई संगमरमर की मूर्ति-सी मालती—माथे पर चाँद, ठोड़ी पर तारा—अप्सरा-सी। फिर वह मुझसे लिपट गई। कामोन्मत्त पुरुषों के नारी पर किए हुए बलात्कार के किस्से तुमने बहुत सुने होंगे, परंतु कामलंपट स्त्री—मालती ने मेरे जैसे एक साधु पुरुष पर—बलात्कार किया—कभी सुनी है तुमने ऐसी विचित्र कथा?"

"वह सब छोड़ दो, यार! लेकिन···" एक लुच्चा बंदी व्यंग्यपूर्ण मुसकराने लगा।

"सच बोलो मियाँ, बलात्कार क्यों न हो, पर आपको वह मनचाहा लगा कि नहीं? उसकी उस संगमरमर-सी गोरी-चिट्टी, बेदाग, नरम-मुलायम मखमली देह से दृढ़ आलिंगनबद्ध होते ही आप मालती से नाराज हो गए क्या? भगवान् की

सौगंध, सच-सच बताइए।''

ठहाका मारकर रफीउद्दीन लार टपकाते हुए बोला, जैसे वह इसी लपक में था, ''दोस्त! भगवान् की सौगंध, मालती से गुस्सा? ऐसी अवस्था में साक्षात् शुकदेव भी आते तो वे भी नाराज नहीं होते। मालती··· ! हाय-हाय! मेरी गोरी-गोरी, नरम-नरम मालती। उससे नाराजगी! अरे दोस्त, वह तो मेरी जान है जान।''

रंगमंच पर किसी काले-कलूटे अभिनेता के मुँह पर पोता गया पाउडर बीच में ही कहीं मिट जाता है, तब उसका काला रंग जैसे उतनी ही जगह पर तारकोल के चट्टे-पट्टे जैसा दिखाई देता है, उसी तरह उस पाखंडी के मन की मूलभूत कालिमा, साधुत्व का वह धवल रंग झट से पोंछते ही अनावृत हो गया। परंतु मँजा हुआ अभिनेता जिस प्रकार लोगों के ही-ही करते ही सावधान होकर रूमाल से काला पट्टा ढककर मूलभूत अभिनय जैसे-तैसे समाप्त करता है, उसी प्रकार उस गड़बड़झाला में रफीउद्दीन ने अपने मन की लीपापोती की, ''अजी, मुझे 'ना-नु' करने का उसने अवसर ही नहीं दिया। किसी मोहिनी शक्ति का रूमाल उसने मेरी नाक पर कसकर रखा, उस साँस से मुझे मूर्च्छा-सी आ गई और मैं निढाल होकर पलंग पर गिर गया—अर्धमूर्च्छित-सा—प्रतिकार के लिए सोलह आने अक्षम। फिर क्या पूछते हो यार, मोहनास्त्रवश मेरी गतिविधियाँ रुक गई थीं और मैं मूर्च्छितावस्था में ही था, पर ऐसी अवस्था में ही वह प्यारी मालती मेरे साथ भरपूर आनंद का भोग करती रही। पौ फटते ही उस मूर्च्छाचूर्ण का, जो उसने मुझे सूँघने के लिए दिया था, प्रभाव समाप्त हो गया और मुझे होश आ गया। तब मैंने कहा, 'ऐ जादूगरनी, अब तो मुझे छोड़ दे। सवेरा होते ही तेरे लोग मुझे पकड़ेंगे। तुझे भी पकड़ेंगे।' वह कहने लगी, 'नहीं-नहीं, मेरे प्रीतम, कामरूप देश के एक तांत्रिक ने मुझे एक विद्या सिखाई है। मैं तुम्हें एक तोता बनाकर इस सोने के पिंजड़े में दिन भर रखूँगी। रात में फिर तुम्हें निजी रूप प्राप्त हो जाएगा, तब तुम फिर से मेरे साथ इसी तरह रँगरलियाँ मनाना।'

उसकी बात सुनते ही मेरे तो तोते ही उड़ गए। प्राचीन कथाओं में इस प्रकार कामरूप स्थित ओझाओं से विद्या सीखकर मनुष्य को पंछी बनानेवाली जादूगरनी राजकुमारियों की अजब, अद्भुत कहानियाँ हमने सुनी थीं, जिनका मुझे स्मरण हो आया।''

बीच में ही एक बंदी उपरोध से मुसकराया, ''मियाँजी, कहीं उन्हीं अजब दास्तानों में से नाम-वाम बदलकर तो एक कहानी नहीं कह रहे आप?''

''भगवान् की सौगंध! मेरे रूप पर मोहित होकर मालती ने वाकई ऐसा कहा था, भाई! और क्या कहूँ? तुम्हें तोता बनाती हूँ, यह उसके मुँह से निकलते-

निकलते ही मुझे साफ-साफ यही दिखाई देने लगा कि मेरा मुँह चोंच में और हाथ पंखों में बदल रहे हैं तथा देह का आकुंचन होकर मैं तोता बन रहा हूँ।

'न न, प्यारी मालती, मैं तुम्हारे पाँव पड़ता हूँ, मुझे छोड़ दो,' इस तरह मैं गिड़गिड़ाने का प्रयास तो कर रहा था पर मेरी मानव वाणी मेरे उस नए मुख से अर्थात् उस तोते की चोंच से निकलना बंद हो गई थी और मैं सिर्फ तोते जैसा 'चक्-चक्' करता रहा।'' रफीउद्दीन ने ऐसा प्रकट किया, जैसे उस याद से ही उसके रोंगटे खड़े हो गए।

जो बड़े भोलेपन से इस प्रकार के किस्से सुनते हैं उन्हें वह व्यक्ति भी कुछ देर तक अजूबा सा लगता है, जो इस प्रकार की अलौकिक तथा अजब-अजब कहानियाँ सुनाता है। उन बंदियों में प्राय: सभी अनाड़ी, आश्चर्यप्रिय, अपरिपक्व बुद्धि के तथा अलल-बछेड़े ही थे, अत: वे भी इन बातों से दंग होकर टुकुर-टुकुर रफीउद्दीन की ओर देखने लगे। इस कल्पना के साथ ही कि उस राजकुमारी जादूगरनी ने उसे तोता बना दिया, रफीउद्दीन का बदन थरथराते ही उनके भी रोंगटे खड़े हो गए। कभी-कभी किसी एक के जम्हाई लेने से हमें भी उसी तरह जम्हाई आती है। जो बंदी उस कहानी में तल्लीन हो गए थे, वे अनुरोध करने लगे, ''अच्छा! आगे क्या हुआ? बोलो न, फिर क्या हुआ?''

''फिर हुआ कैदे-हयात—काला पानी, और क्या?'' कंटक बाबू ने खीझकर कहा। मालती की दुर्गति के कारण जहर का घूँट पीकर उसके मन में दबा हुआ क्रोध थोड़ा सा ही क्यों न हो, उफनकर बाहर आ ही गया। परंतु उतनी देर में जिस एक किताबी तूमार को अपने ऊपर थोपकर रफीउद्दीन वह कहानी कह रहा था—उसका अंतिम अंश भी—जो उसे याद नहीं आ रहा था, कुछ-कुछ याद कर आगे कहने लगा, ''फिर क्या पूछते हो भाई? मुझे तोता बनाकर वह एक पिंजड़े में कैद कर रखने लगी। परंतु मेरा सौभाग्य कि मुझे अपने एक इंद्रजालिक गुरु की अचानक याद आ गई। उसी गुरु ने मुझे सागर पर चलने की विद्या सिखाई थी, जिसके बलबूते पर मैं काले पानी से अदृश्य होकर स्वदेश वापस लौटा था। उस गुरु ने मुझे बताया था कि कोई तुमपर जादू-टोना करे तो तुम तीन बार मेरा नाम ले लो। बस, तीन बार गुरु का नाम लेते ही मैं फट् से फिर तोते से इनसान बन गया। उस जादूगरनी रूपसी के देखते-देखते ही मैं दौड़कर दरवाजे के पास पहुँच चुका था। लेकिन सब टाँय-टाँय फिस्स। दरवाजे पर भारी-भरकम ताला था। झट से मैं खिड़की के पास गया और बदहवास होकर खिड़की से नीचे जो कूदा तो सीधे नीचे राजमार्ग पर गिरा।

परंतु हाय-हाय! आसमान से गिरा और खजूर पर अटका। राजमार्ग पर गिरने के बाद मैं अपने आपको सँभालकर भागने ही लगा था कि मेरी कमर को

किसीने घपची मारकर पकड़ लिया और जोर-जोर से चिल्लाने लगा। वह किशन था। हाँ, वही नीच, पुराना चांडाल किशन जो मेरी घात में रहकर गुपचुप मेरा पीछा कर रहा था। आम के उस बागान से वह यहीं पर आकर छिप गया था। गुस्से के मारे भूत बनकर मैंने हाथ में रखा अपना धारदार चिमटा उसके पेट में घोंप दिया। वह पाजी नीच वहीं पर ढेर हो गया। परंतु इसी बीच उस हंगामे को सुनकर लोग-बाग इकट्ठा हो गए। उन्होंने मुझे पुलिस के हवाले कर दिया और आखिर मालती को बदनाम करने की अपेक्षा मैंने अपने ही ऊपर हत्या का दायित्व ले लिया, जिस कारण मुझे फिर एक बार आजन्म कारावास, काला पानी हो गया। एक अबला की रक्षा करते-करते मैं स्वयं ही इस सारे जंजाल में फँस गया। धर्म की खातिर मैंने यह बलिदान दिया।''

''और वह राजकुमारी? मालती का आगे क्या हुआ?'' एक बंदी ने ठंडी आह भरते हुए पूछा।

''क्या पूछते हो, भाई! वह प्यारी-प्यारी गुलछड़ी मालती मेरे वियोग में पागल हो गई। हाथ में माला जपते 'हाय रफीउद्दीन! हाय रफीउद्दीन!' का जाप करते हुए मथुरा की गली-गली में जो भी मिलता है, उसके सामने यह सुरीला गीत गाती-पूछती दर-दर भटक रही है—बता दे सखि, कौन गली गए श्याम?''

रफीउद्दीन उस पद को गाकर दिखाने ही जा रहा था कि अपनी बेइज्जती करनेवाली उस कहानी का तूमार असहनीय होने के कारण उस विषय को ही बदल देने का अवसर पाकर कंटक ने पूछा, ''पर मियाँ, मंत्र विद्या द्वारा सागर पर चलने की अद्भुत शक्ति यदि आपमें है तो आप अभी इसी समय छलाँग लगाकर अपने देश वापस क्यों नहीं लौट जाते?''

''आप भी कितने भोले हैं कंटक बाबू! पुलिसवालों के समक्ष कूदने पर अपनी धरती पर कदम रखते ही उनके आदमी मुझे फिर से हथकड़ियाँ पहना देंगे। दूसरी बात यह है कि वह विद्या नारी का स्पर्श होते ही निष्फल हो जाती है। मालती से पहले मैंने नारी-स्पर्श कभी किया ही नहीं था। अब पुन: कम-से-कम तीन साल तक अखंड ब्रह्मचर्य का पालन किए बिना देह इतनी हलकी नहीं होगी कि वह पानी पर आराम से चल सके। वीर्य-संचय होने से उसका तेजोमय ओज मस्तिष्क से ऊँची उड़ान भरना चाहता है। इससे देह अपने आप ऊपर उठती है। इसे ही योग विद्या में लघिमा सिद्धि कहा जाता है। इसकी सिद्धता से जल-स्तंभन मंत्र सफल होता है। फिर क्या कहने? काले पानी का सागर घर में बिछाई गई एक दरी सा बन जाता है, जनाब! जब तक मन करे, उसपर आराम से चलते रहो।''

''पर बड़े मियाँ, इस आजन्म कारावास के स्थल को काला पानी क्यों कहा

जाता है ?'' एक दंडित ने पूछा।

''भई, अनाड़ी-गँवार लोग इस तरह संबोधन करते हैं। उसका असली नाम काला पानी नहीं है अपितु अंडेमान है, अंडेमान।''

''लेकिन उसका अंडेमान नाम ही क्यों रूढ़ हो गया? उधर कहीं मुरगी के अंडों की उपज तो नहीं होती?'' एक कैदी ने कौतूहलवश पूछा।

रफीउद्दीन इस प्रकार मुसकराया जैसे उसे उसके अज्ञान पर तरस आ रहा हो, फिर किसी इतिहासान्वेषक के ठाठ से कहने लगा, ''बड़े-बड़े अतिरथी, महारथी अंग्रेज भी नहीं जानते कि अंडेमान नाम कैसे रूढ़ हो गया। हिंदुओं के कुछ गँवार लोगों का कहना है कि लंका से वापस लौटते समय हनुमानजी ने सीताजी से प्रार्थना की कि अपनी यादगार स्वरूप इस द्वीप को 'हनुमान' कहा जाए। पर यह सफेद झूठ है। सच बात तो वही है जो मेरे गुरु ने कही है। सुनो भाइयो! इस सृष्टि से पहले यहाँ-वहाँ सर्वत्र पानी-ही-पानी था। तब मक्का शरीफ में एक ईश्वर का प्यारा सिद्ध पुरुष रहता था। ईश्वर ने उसे आदेश दिया, 'एक नौका लो और पूरब की ओर चले जाओ। सीधे उधर जाओ जहाँ सूरज उगता है—जहाँ तुम्हारी इच्छा हो और जितने आकार का तुम चाहो उसी आकार का पदार्थ सागर में डालते ही धरती का निर्माण होगा। अब सागर में मनुष्यों के लिए अधिक स्थान निर्मित करने की मेरी इच्छा है।' ईश्वर की आज्ञा होते ही वह सिद्ध पुरुष नौका में बैठकर सागर में चला गया। मक्का छोड़कर काफी अरसा होने के बावजूद उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि सागर में मनचाहा स्थल कहाँ निर्मित किया जाए। उसके साथ ही उस सिद्ध पुरुष ने अपनी बेल-बूटियों से सजी-धजी दरी सागर पर बिछाई। और अहो आश्चर्यम्! लगे हाथ उस दरी की नाना लता-वल्लरियों-फूलों से खिली-खिली लहलहाती हुई एक विस्तीर्ण उपजाऊ समतल भूमि बन गई। वही उर्वर भूमि है हिंद—यह हिंदुस्थान। उसपर ईश्वर को एक भेड़-बकरे की बलि चढ़ाकर वह सिद्ध पुरुष वहाँ से नौका लेकर चक्कर लगाते हुए आगे बढ़ा। इतने में प्रचंड बवंडर आ गया, उसकी नैया उलट गई और सबकुछ उलटा-पुलटा हो गया! सबकुछ डूब गया। वह सिद्ध पुरुष भी गोते खाने लगा—उसे भी जल-समाधि मिलती, पर कुरान शरीफ उसके हाथ में था जिस कारण बादलों का बाप भी उसका बाल बाँका नहीं कर सकता था। उस कुरान शरीफ को ऊँचा उठाने से ही वह बच गया। उसने अपनी नैया सीधी की। इतने में आकाशवाणी हो गई—'इस सागर में ऐसे तूफान अकसर आते हैं—अतः यहाँ एक स्थान ऐसा निर्मित किया जाए जिससे यह सागरीय जल यात्रा सुरक्षित हो जाए।' यह आकाशवाणी सुनते ही उधर कोई चीज फेंकने के लिए वह औलिया देखने लगा, पर उसके पास कुछ भी तो नहीं था। एक हाथ में कुरान शरीफ और

दूसरे हाथ में खाने के लिए बहुत ही सावधानी के साथ पकड़ा हुआ मुरगी का अंडा। तब उस सिद्ध पुरुष ने वह अंडा समुद्र में फेंक दिया और कहा, 'बन जाओ धरती।' बस तुरंत ही उस अंडे से द्वीप बना, इसलिए उसका नाम पड़ा 'अंडेमान' अर्थात् 'अंडे का द्वीप।''

''या खुदा, तेरी करामात!'' दंडितों में एक मुसलमान फकीर था जो धर्माभिमानवश फुसफुसाता हुआ अपने निकटवर्तीय तमाम हिंदू बंदियों को नीचा दिखाने लगा।

''देखा हमारे इसलाम का बड़प्पन। कैसे-कैसे फक्कड़ औलिया। कुरान शरीफ में ईमान रखने से इनसान कैसे-कैसे करिश्मे दिखाता है। क्यों कंटक बाबू, आप इस किस्से को सच मानते हैं या नहीं?''

तमाम हिंदू बंदी कंटक बाबू के चेहरे को इस आदेशात्मक लालसा से देखने लगे कि इस फकीर द्वारा हिंदू धर्म की निकाली गई खामियों की अवश्य सूद के साथ अदायगी होगी।

कंटक बाबू मुसकराए, ''भई, यदि मियाँजी द्वारा कथित सिद्ध पुरुष की यह अजब दास्ताँ सच है तो हमारे पुराणांतर्गत जो अगस्त्य ऋषि की कथा है, वह भी सोलह आने सच ही होगी। और अगर यह सिर्फ सिद्ध पुरुषों का ही मामला है तो आप ही बताइए, क्या यह जाहिर नहीं कि वह हिंदू सिद्ध पुरुष इससे अधिक करामाती था, क्योंकि भई, वह सागर ही अगस्त्य के लिए मात्र लघुशंका थी जिसके नाक-मुँह में भरने पर भी वह मुसिलम सिद्ध पुरुष उसमें गोता खाता रहा।''

तमाम हिंदू बंदी विजयानंद में अट्टहास करने लगे। हर कोई कहने लगा, ''अच्छा किया जो घमंड चूर-चूर किया, इस मगरूर का सिर नीचा किया।''

परंतु अचानक उठ खड़े हुए इस हंगामे से पिंजड़े का पहरेदार आँखें तरेरकर गुर्राया, ''बदमाश लोग! तुम लोगों को धीरे-धीरे बातचीत करने की सहूलियत जो दी, क्या यही इसका नतीजा है? अरे बेशरमो, नालायको, तुम लोग काले पानी के पिंजड़े में हो या अपने बाप के बँगले में? चलो उठो। जाओ, अपने-अपने बिस्तर पर जाकर सो जाओ। जाओ, उठो।''

इस कठोर आदेश के साथ सभी कैदी फटाफट अपने-अपने बिस्तर में घुस गए, तथापि रफीउद्दीन की आधी 'हलदी की गाँठ' से पीला होने के कारण पहरेदार ने अपने आदेश का प्रकट रुख उसकी ओर नहीं किया। अत: अकेला रफीउद्दीन वैसे ही कंटक बाबू के बिस्तर के पास डटा हुआ, लेकिन चुपचाप थोड़ी देर बैठा रहा। फिर वातावरण सामान्य होते देखकर एकांत साधते हुए कंटक बाबू के कानों आ लगा और कहने लगा, ''कंटक बाबू, इस पिंजड़े में इतने खुलकर बातचीत

करने की यह अंतिम रात है। कल यह जहाज काला पानी पहुँच जाएगा। हम सभी को उस भयानक जेल की कालकोठरियों में तालाबंद किया जाएगा। मुझे पहले-पहले कड़े पहरे में रखा जाएगा; बहुत कठोर, सख्त काम दिया जाएगा; कठोर यातनाएँ दी जाएँगी। पर आप तो बहुत जल्दी ही 'बाबू' बनेंगे। आपका संबंध कचहरी के मुंशी आदि लोगों के साथ होगा। आपको ऐसे हजारों अवसर मिलेंगे और आप मुझे सहूलियत देंगे तो बाबूजी, मैं आपके इतने काम आऊँगा कि जिसके बारे में आप सोच भी नहीं सकेंगे। देखिए, मेरे लिए प्रथम वर्ष बड़ा ही कठिन होगा। एक वर्ष बीतने पर वहाँ के रिवाज के अनुसार और मेरी पहचान, पैसा तथा सिफारिश के कारण मुझे जल्द-से-जल्द जेल से बाहर छोड़ देंगे। मैं दंडितों का जमादार बनूँगा—लिखकर रख लीजिए यह। पत्थर की लकीर समझिए इसे। फिर मैं आपके पहले उपकार की अदायगी आपसे सौ गुना अधिक काम में आकर करूँगा। और एक बात कहूँ? यदि आप मेरे शब्दों पर भरोसा करते हैं तथा मुझसे भाईचारे का रिश्ता दिलो-जान से जोड़ना चाहते हैं तो जब फिर एक बार काले पानी के अधिकारियों को झाँसा देकर उस पिंजड़े से यह पंछी फुर्र होगा तब बाबूजी, आप देखेंगे कि आजन्म कारावास की असहनीय जंजीर आपके पैरों से अचानक उतर चुकी है—अर्थात् आपकी इच्छा हो कि वह टूट जाए—तो…''

''इच्छा? मियाँजी, नेकी और पूछ-पूछ। मेरा तो वह संकल्प है—मात्र इच्छा नहीं। पर किस रास्ते से? साधन क्या है? भला मैं कैसे जानूँ कि आप ईमानदारी से कह रहे हैं? वह सच्ची जानकारी इस तरह बताएँ ताकि मैं उसपर विश्वास कर सकूँ।''

''अच्छा कंटक बाबू, अवसर पाते ही मैं आपको सारी बात सच-सच बता दूँगा। देखिए, भाईचारे का नाता जितना अपने धरम में प्यारा लगता है, उतना ही वह नाता काले पानी में प्यारा समझा जाता है। यह 'चालानी' रीति है। एक ही 'चालान' में जो आते हैं, वे सारे दंडित 'चालानी' के नाते भाई-बंद हो जाते हैं। यहाँ उनका एक नया खानदान ही बनता है। हमारा भी वही रिश्ता जुड़ गया है। आप मेरे 'चालानी' हैं—मेरे भाई हैं। कंटक बाबू, आप चाहे मुझपर भरोसा न करें, परंतु मैंने आपको वचन दे दिया, आप मेरे भाई, मेरे चालानी हैं, मैं आपके लिए अपनी जान भी दे दूँगा। आपका हित ही करूँगा, विश्वासघात कभी नहीं करूँगा। यह सच है कि हम लोग डाकू हैं, परंतु हमारी बिरादरी में भी एक विशेषता है कि हम जितने दुष्ट हो सकते हैं, उतने ही ठान लेने पर सुष्ट भी हो सकते हैं। आप मुझसे निश्छलता से भाईचारे का संबंध आजमाके तो देखिए जनाब! उपकार करने से हम जैसे हिंस्र पशु भी कभी-कभी अपने उपकारकर्ताओं को नहीं भूलते। न ही उन्हें किसी प्रकार की

तकलीफ देते हैं। प्रतिउपकार किए बिना नहीं छोड़ते—जिस प्रकार एंड्रोक्लीज के लिए वह सिंह।''

''रफीउद्दीन!'' पहरेदार जल्दी-जल्दी चिल्लाया ''उठो, उठो। पहरा बदलने के लिए जमादार आ रहा है। अपनी जगह जाओ। हमारा पहरा अब खत्म होगा।''

रफीउद्दीन तुरंत उठ गया, ''बंदियों को आपस में बातचीत करना सख्त मना है। भई, जाना-पहचाना पहरेदार होने से यह साध्य हो गया। अब कल सवेरे काले पानी पर यह धुआँकश लगेगा। अब यहीं सलाम। जो कुछ बातें आज, अभी हुईं, उन्हें मत भूलिएगा। आज से कंटक बाबू, आप मेरे भाई हैं। आप चाहे कुछ भी समझें।''

कंटक से जल्दी-जल्दी बात करके रफीउद्दीन अपनी जगह पर आ गया। सवेरे ही इधर-उधर सभी जगह हंगामा हुआ, ''आ गया, काला पानी आ गया!''

उसके साथ-साथ कठोर, क्रूरकर्मा, आजन्म कारावास की सजा प्राप्त दंडितों का कलेजा भी सन्न हो गया।

''आ गया! काला पानी आ गया!!''

उन दंडितों के हृदयों की तरह ही मानो उसका भी दिल धक्-धक् कर रहा हो, इस प्रकार वह अगड़धत्त धुआँकश हिचकोले खाता, धड़धड़ाता बंदरगाह में प्रविष्ट हुआ और उसकी चिमनी दहाड़ें मार-मारकर 'भों ऽऽऽ भों ऽऽ' बुभुत्कार करने लगी।

''आ गया। काला पानी आ गया!!''

□

प्रकरण–११

अंदमान स्थित आदिवासी जन

इस विश्व में आज भी भूमि के कुछ ऐसे अंश हैं—जहाँ का भूगोल है, पर इतिहास नहीं। आज जिसे काला पानी कहा जाता है, अंदमान का वह द्वीप-पुंज भी इसी भू-भाग में गिना जाना चाहिए।

जिस कालखंड में हिंदू राष्ट्र ने अपने ही पैरों में सिंधुबंदी की बेड़ियाँ अपने आप ही नहीं डाली थीं; विधर्मियों के साथ ही नहीं, स्वधर्मी हिंदुओं में भी विजातियों के साथ खान-पान करने से जाति नष्ट होती है, धर्म डूब जाता है, आदि वाहियात, अंटशंट, अंधविश्वासमय धर्मपरायणता के कारण हिंदुस्थान की सीमाओं का उल्लंघन करने से विधर्मी, विदेशी विजातियों के संग अन्नोदक व्यवहारसंपन्न होकर हमारी जाति नष्ट होगी, इस तरह का भ्रामक भय हिंदू राष्ट्र में उत्पन्न नहीं हुआ था। और इस भय के कारण तीनों दिशाओं के अनुसार ही नहीं, अपितु चौथी दिशा की ओर भौमिक सीमा पर भी 'अटक' की धार्मिक चौकियाँ बैठाकर एक भी हिंदू का देश के बाहर कदम रखना जिस काल से बंद हुआ, उस लगभग ईसवी सन् के नौवीं-दसवीं शताब्दी से पहले हिंदू राष्ट्र के त्रिविक्रमशील चरण सिंधुबंदी की इस बेड़ी से बद्ध न होने के कारण पूरब-पश्चिम-दक्षिण के सागरों तथा महासागरों का उल्लंघन करके राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक दिग्विजय करते हुए तत्कालीन ज्ञात जगत् में हम हिंदुओं के महासाम्राज्य की धूम मचा रहे थे। इस काल में विदेश-गमन निषिद्ध होने की शामत सवार नहीं हुई थी—अतः हिंदू रण-नौकाओं (War-Ships) का प्रचंड नौ-साधन अर्थात् युद्धपोतों का बेड़ा दिग्दिगंत में अप्रतिहत रूप से संचार कर रहा था। हमारे हिंदुस्थान के आधुनिक धर्मभ्रष्ट भूगोल में विदेशियों ने लिखने तथा रटवाने के कारण जिसे 'अरबी समुद्र' जैसे अपमानजनक नाम से संबोधित किया जाता है—हमारे उस प्राचीन 'पश्चिम सागर' से एक तरफ और जिन्हें हमारे आधुनिक

गूलर के कीड़ों ने 'काला पानी' जैसा समुद्र-गमन भीरु नाम दिया है उस पूर्व सागर से (जिसमें यह अंदमान द्वीप है)—कम-से-कम चंद्रगुप्त मौर्य के अर्थात् ई. पूर्व तीन-चार सौ वर्षों के ऐतिहासिक कालखंड से शताधिक वणिक-नौकाओं तथा रण-नौकाओं की सुदूर के विदेशों में अव्याहत रूप से आवाजाही चलती रहती थी। यह सागर हिंदू राष्ट्र की एक सड़क ही हो गई थी।

इसी पूर्व सागर मार्ग द्वारा मागध, पांड्य, चेर, चोल आदि हिंदू राज्यों ने बड़े-बड़े दिग्जयी युद्धपोतों के बेड़े भेजकर स्याम, जावा, बोर्निओ से लेकर फिलिपींस तक हिंदू उपनिवेश, राज्य, धर्म तथा संस्कृति की स्थापना की। हिंद-चीन (इंडो-चायना) और फिलिपींस में हिंदू राज्य की स्थापना होने के निर्विवाद प्रशस्ति-पत्र, शिलालेखादि प्रमाण विदेशी अन्वेषकों ने ही आज उजागर किए हैं। बौद्ध हिंदुओं के ही नहीं अपितु वैदिक हिंदुओं के ये क्षत्रियवंशीय राज्य, भारतीय प्रांत-नगरों के उधर प्रस्थापित उपनिवेशों तथा नगरों के नाम, शिव, विष्णु, बुद्ध प्रभृति देवताओं के मंदिर; वेद, मनुस्मृति आदि शताधिक संस्कृत ग्रंथों के ग्रंथालय; हिंदू वाणिज्य, कला और संस्कृति स्याम, जावा, ब्रह्मदेश, हिंद-चीन, बाली, फिलिपींस तक सदियों से पनपती गई थी—जी हाँ, यह विशुद्ध इतिहास है।

उस काल की प्राचीनतावश तथा इतिहास-विरलतावश इस तथ्य पर आश्चर्य व्यक्त करने की आवश्यकता नहीं कि इस इतिहास के अंदमान द्वीप-पुंजों सदृश छोटे-छोटे द्वीपों का नाम-निर्देश तक उपलब्ध नहीं है।

तथापि अंदमान से हम भारतीयों का संबंध होने का आज उपलब्ध पहला चिह्न है उसका नाम। जावा जैसा नाम जिस प्रकार उस देश की आकृति को दृष्टि में रखते हुए यवद्वीप रखा गया, उसी तरह हो सकता है, अंदमान नाम भी उसकी अंडाकृति का कारण भारतीयों ने रखा हो। जब तक भविष्य में कोई और प्रमाण नहीं उपलब्ध होता, तब तक यही धारणा लेकर चलने में कोई आपत्ति नहीं है। इसके आगे निर्विवाद ऐतिहासिक प्रमाण है पांड्य राजाओं की शिलालेख प्रशस्ति, जिससे ज्ञात होता है कि इन द्वीप-पुंजों पर भारतीय प्रत्यक्ष रूप में गए थे और उन्होंने उन द्वीपों को जीत लिया था। इस एक ही प्रशस्ति से यह सिद्ध होता है कि पांड्य राजाओं का एक प्रबल सेनापति ईसवी सन् की दसवीं सदी के आगे-पीछे दिग्विजय के लिए बड़ी-बड़ी रण-नौकाओं का एक बलशाली बेड़ा लेकर निकल पड़ा था। उस पार तट स्थित वर्तमान पेगू पर उसकी जलसेना चढ़ आई थी और उसने उस देश पर विजय प्राप्त की थी। वापसी पर उस भारतीय हिंदू सेना ने अंदमान आदि द्वीपों पर स्वामित्व स्थापित करके उन्हें पांड्य साम्राज्य से जोड़ दिया। इस स्पष्ट उल्लेख से इस द्वीप-पुंज के इतिहास की सिर्फ प्रथम पंक्ति लिखी जा सकती है।

लेकिन वह पंक्ति भी लिखते-लिखते अधूरी ही रह जाती है, क्योंकि यह तो निश्चित है कि भारतीय सेना उधर गई थी, पर इस बात का अभी तक कुछ भी पता नहीं लग सका कि उस हिंदू सेना अथवा हिंदू राज्य के कोई अधिकारी अथवा नागरिक उधर रहे अथवा नहीं। जब हम अंदमान गए थे तब एक विश्वसनीय अंग्रेज अधिकारी ने हमसे कहा था कि अंदमान में खुदाई के समय कहीं पर एक राजमहल के अवशेष मिल रहे हैं, यद्यपि हमें इसका कुछ पता नहीं चला कि आगे उसका क्या हुआ। उसी तरह कोई उत्खननीय खोज हो या न हो, तथापि एक बात तो निश्चित है कि पिछले तीन हजार वर्षों के ऐतिहासिक कालखंड में अंदमान में बाहर के लोगों का कोई भी उपनिवेश टिक नहीं पाया।

पांड्य राजा की उक्त प्राचीन प्रशंसा को छोड़कर अंदमान के स्पष्ट उल्लेख अर्वाचीनकालीन मार्को पोलो, निकोलो, यूरोपियन और कुछ अरब सैलानियों के यात्रावृत्तों में पाए जाते हैं। परंतु यह उल्लेख उस द्वीप पर उपनिवेश स्थापित करने का नहीं है, अपितु मात्र उन द्वीपों के अस्तित्व का है; मात्र भौगोलिक है।

यह कहने की कोई गुंजाइश नहीं है कि जिस तरह विदेशी लोगों के वर्णनों में अंदमान का इतिहास नहीं है, उसी तरह वहाँ के निवासियों द्वारा लिखित इतिहास भी नहीं है; क्योंकि अंदमान में उस द्वीप के बाशिंदे तो हैं, लेकिन उनके लिए वह आज भी काला अक्षर भैंस बराबर ही है।

और परंपरा के 'दंतकथात्मक' इतिहास के संबंध में कहा जाए तो अंदमान के मूल निवासियों के 'दाँत' अत्यंत मजबूत तथा तीक्ष्ण हैं, तथापि उनमें 'कथा' बिलकुल ही नहीं है। कथा की धारणा ही उनके लिए अपरिचित है, क्योंकि कथा वहीं संभव होती है, जहाँ स्मृति का अस्तित्व होता है। अंदमान के जो आदिम निवासी हैं, उनकी स्मृति शक्ति इतनी अपरिपक्वावस्था में है कि उन्हें दो-चार वर्ष पहले की घटनाएँ भी अपने अर्थ में स्मरण नहीं रहतीं। हम जिसे स्मृति कहते हैं, वैसा स्मरण उन्हें रहता ही नहीं। जान-पहचान भी वे शीघ्र ही भूल जाते हैं। फिर जातीय सुसंगति, तालमेल, सांधिक स्मृति तथा परंपरागत प्राचीन कथाओं की बात ही क्या! पशुओं के झुंड को अथवा वानरों के समूह को जितनी परंपरा और समाज की स्मृति होती है, उससे कुछ ही अंश अधिक, बस! इतनी ही उनकी सामाजिक स्मृति, शक्ति विकसित होती है। अत: किंवदंती स्वरूप कुछ भी अलिखित इतिहास अंदमान के बाशिंदों का नहीं है।

सारांश स्वरूप क्या कहा जाए? विश्व के अन्य राष्ट्रों के साहित्य में एक पांड्य राजाओं की प्रशस्ति छोड़कर अंदमान विषयक कुछ भी ऐतिहासिक उल्लेख नहीं किया गया है। यूरोपियन और अरब यात्रियों के मध्यकालीन उल्लेख मात्र

भूगोल विषयक हैं, न कि अंदमान के इतिहास विषयक। अंदमानी जाति में सिर्फ बर्बर, आदिम अविकसित मानव ही हैं। उनकी स्वलिखित कथाएँ तो छोड़िए, जातीय पूर्ववृत्त की जनश्रुतियाँ भी नहीं हैं। अंदमान एक प्रचंड विशालकाय भू-भाग है जिसका सिर्फ भूगोल है, इतिहास नहीं। उसका समग्र इतिहास एक ही पंक्ति का है—पांड्य राजा की प्रशस्ति।

अंदमान का इतिहास नहीं, पर वहाँ मनुष्य-समाज अवश्य है। इतना ही नहीं, आज अंदमान में जो मूलभूत मानव-समाज है, वह ऐतिहासिक गणना की परिभाषा में तो बिलकुल ही अनादि है, क्योंकि वहाँ जो मूलभूत जंगली, बर्बर, आदिम मनुष्यों की जातियों का निवास है, उनके अस्तित्व का प्रारंभ ही नहीं मिल रहा। बिलकुल प्राचीनतम काल से, शायद जब से मर्कट का मानव होता आ रहा है, तब से वे ज्यों-की-त्यों आज भी, लगभग वैसी ही रह रही हैं, जैसी उस समय रहा करती थीं।

जब बंदर का आदमी बन रहा था, तब प्रथमत: उसकी दुम झड़कर दुमची की हड्डी मात्र रह गई। दुमची की हड्डी का नाम यद्यपि हम भी उसी स्थान की रीढ़ की एक हड्डी के लिए लेते हैं, तथापि वह हड्डी अब मूलभूत हड्डी से बिलकुल सपाट हो गई है। अंदमान में न भी हो पर उस द्वीप-पुंज के आसपास के भू-खंड में आज भी कभी-कभी ऐसे आदमी पाए जाते हैं, जिनकी दुमची की हड्डी डेढ़-दो इंच ऊँची उठी हुई होती है। जब हम अंदमान में थे तब गुण-विशेष का एक जंगली मानव दवाखाने में आया हुआ था, डॉक्टर ने दिखाया था। उसकी दुमची की हड्डी इसी तरह आगे बढ़ी हुई और इस तरह लंबी हो गई थी जिससे वह कुरसी पर पीठ टिकाकर सीधा न बैठ सके। उससे सटा दुम के बालों के गुच्छेवाला स्नायु वहाँ नहीं लटक रहा था। वह लुप्त हो चुका था। उसके जबड़े की हड्डियाँ वानर से कितनी मिलती-जुलती थीं। उसकी चालीस-पचास शब्दों की ही क्यों न हो पर एक भाषा थी जो असली मर्कट मानव (ओरांग-ओटांग) गोरिल्लाओं की होती है। इन ओरांग-ओटांग अथवा गोरिल्ला बंदरों की एक भाषा है। उसके काफी शब्दों को कुछ प्राणिशास्त्रज्ञों ने गिनने का प्रयास किया है। परंतु फिर भी वह मानव-भाषा के वर्ग के अंतर्गत नहीं आती। परंतु इस महत्त्वपूर्ण अंतर का हमें अहसास हुआ कि पुच्छ स्थित अवशिष्ट मानव को, जिसे हमने देखा, कोई भाषा अवगत तो थी जो मानवी भाषा के अंतर्गत आती थी।

यह प्राणी अपवादस्वरूप बताया, लेकिन अंदमान स्थित तज्जन्य जाति 'जावरा', जो अनादिकाल से वहाँ बसी हुई है, उसे तो कोई दुमची की हड्डी नहीं होती। इस जाति के लोगों का कद आम तौर पर चार-साढ़े चार फुट, रंग उलटे तवे

जैसा गहरा काला, कड़े रूखे, छोटे-छोटे बाल गुच्छों में मुड़े हुए। मर्द की दाढ़ी-मूँछ तो उगती ही नहीं, सब नंगे बदन। मानव-प्राणी सुधार होते-होते हमारे यहाँ वर्तमान यांत्रिकी युग में जिस अवस्था पर पहुँच चुका है—वह विकास और वह यंत्रयुग हमारे जिस एक संप्रदाय को मानव जाति का एक दुर्धर अभिशाप मानता है, उस सादगीपूर्ण रहन-सहन के यंत्रयुग-विद्वेषी पंथ के मुँह में पानी भर आए, इतना सीधा-सादा रहन-सहन इस 'जावरा' जाति में अनादिकाल से सीधे आधुनिक काल तक चला आ रहा है। वस्त्र आवरण का मोह उन्हें कभी नहीं आकृष्ट करता। नग्नावस्था यदि साधुता का प्रतीक हो, तो जावरा हमारे यहाँ के साधु-संतों से भी बढ़े-चढ़े सवासेर साधु हैं। हमारे साधु कटि पर एक अँगोछा लपेटने का, कम-से-कम लँगोट कसने के मोह पर काबू नहीं पा सकते। परंतु इस जावरा जाति में पुरुष ही नहीं, अपितु स्त्रियाँ भी कमर में जरा सी धज्जी भी नहीं बाँधतीं; और न ही उनमें कभी यह कृतार्थता छूती है कि इस तरह नंग-धड़ंग रहने में वे कोई अकृत्य कर रहे हैं। उनका रहन-सहन इतना सादा कि किसी मिल का ही नहीं, चरखे या अटेरन का अभिशाप भी उन्हें नहीं लगा। इस विवेचना से कि टाम-टूम, बनाव-सिंगार की लत के कारण विकसित इनसान जिस ओर बढ़ रहा है और जिससे उसका खाना-पीना हराम हो रहा है, उन्हींका—'सादगी' पर जान छिड़कनेवालों का दिल इसीसे फड़क उठेगा कि ये जावरा इस प्रकार बनाव-सिंगार के प्रति पूर्णतया उदासीन हैं। उनके महिला वर्ग में इक्की-दुक्की युवती विलास-लोलुप, छैल-छबीली निकली तो किसी पेड़ का एकाध पत्ता कटि के आगे लटकाती है और इक्का-दुक्का मर्द अलबेला, बाँका निकला तो उसका बनाव-सिंगार रंगीन रक्तवर्णी मिट्टी की धारियाँ अपने बदन पर खींचने तक ही सीमित होता है—उसीमें वह संतुष्ट होता है। उनकी दृष्टि से कहना हो तो यंत्रयुग को वे अधोगति मानते हैं, अपितु जावरा लोग बहुत ही प्रगतिशील तथा विकासशील हैं, यंत्रयुग के प्रलोभनों से उदासीन हैं। मोटर कारें, रेल तो छोड़िए, बैलगाड़ी से भी वे अनभिज्ञ हैं। उन्हें कुरसी, दियासलाई, अंगूर, बँगला, बाजरा कुछ भी मालूम नहीं। मनुष्य जाति पर मनुष्य के असंतोष का, कलह का, कृत्रिम जीवन का संकट जिस एकमेव कारण से उफन पड़ा है इस प्रकार के 'सादगीपूर्ण रहन-सहन' के अध्वर्यु (चार ऋत्विजों में यज्ञ कराने वालों में एक) समझनेवाले उस 'सुधार' के नाम से ही नहीं, अपितु उस अभिलाषा से भी निर्लिप्त हैं।

परंतु इसलिए कि सादगीपूर्ण रहन-सहन, यंत्रयुग के अभिशाप से विमुक्त होने से, प्रकृति की ओर वापस लौटने से मानव में निरपवाद समाधान रहेगा—Back to Nature वादी लोगों का यह जो कहना है, उसके अनुसार इन जावरों में तुष्टि का

वह भाव है या नहीं ? बिलकुल नहीं। काश्तकारी नहीं, हल नहीं, बैंकों में पैसा नहीं, बँगला नहीं, परंतु किसी घने जंगल में ऊबड़-खाबड़ गढ़ी गुफा में पनाह अथवा मांस का टुकड़ा अस्थायी अग्राधिकारवश किसी जावरे के पास हो, उसपर दूसरे की निगाह पड़े अथवा न पड़े, इसके लिए जो सावधानी बरतनी अथवा चिंता करनी होती है, वह व्यवस्था करनी पड़ती है, आवश्यकता पड़ने पर टक्कर भी देनी पड़ती है। यह सब उसके लिए उतना ही उत्कट अथवा भयंकर होता है जितना किसी कैसर, जार अथवा लेनिन के लिए। आपको और हमें खेती-बाड़ी में जितना कष्ट और चिंता होती है, उससे अधिक चिंता वन्य फल अथवा मृगया संपादन करने और नित्य सवेरे जावरे को करनी पड़ती है और यही चिंता उसे घुला-घुलाकर, सुखाकर काँटा बना देती है कि वह मिलेगी या नहीं। सूअर के पीछे तीर लेकर भागते हुए अथवा मच्छीमारी में कितने पापड़ बेलने पड़ते हैं, डर के मारे सिर पर पाँव रखकर भागना पड़ता है, बीमारी में कराहना पड़ता है, विषाक्त जंगली मक्खी-मच्छरों के डंक मारते ही विह्वल होना पड़ता है। आपसी जलन, डाह से छाती पर साँप लोटता है, गाली-गलौज, मारधाड़, टोली-युद्ध, मारी गई मछलियों के लिए, मेरी-तेरी जैसी पूँजीवादी समस्याओं पर जावरों-जावरों में भी मुठभेड़ होती है और उन्हें मरते दम तक टकराना पड़ता है, जैसे हम, सोने की यह खान मेरी या तेरी, यह राजपाट मेरा या तेरा—इसके लिए घमासान मचाते हैं। मात्र सादगीपूर्ण रहन-सहन से 'यंत्रयुग का अभिशाप' ही छूटकर यदि संतोष तथा शांति मिलती हो तो इन जावरा लोगों को जीवनमुक्त ही समझना होगा, क्योंकि वे लगभग उतने ही सादगीपूर्ण रहन-सहन के उपासक हैं जितने वानर प्रकृति के साथ हैं। परंतु असंतोष, जीवन-कलह के स्तर और प्रकारों में भिन्नता भले ही हो, तथापि उनकी तीव्रता तथा अपरिहार्यता हर जावरे के 'प्राकृतिक' युग में भी हमारे यंत्रयुग से कुछ कम दिखाई नहीं देती। बल्कि उनका जीवन-विषयक विकास जो वानर के जीवन से अधिक नहीं हो पाता—उसका कारण यह सादगीयुक्त मर्कट रहन-सहन ही है।

अंदमान स्थित ऊपर निर्दिष्ट आदिम, बर्बर जावरा जाति हम जैसे आधुनिक विकसित संस्कृति के लोगों से साफ-साफ भय तथा विद्वेष से चार हाथ दूर रहना चाहती है, तथापि अंदमान में मूल निवासियों की अन्य जातियाँ भी हैं जो जावरा लोगों से रीति-रिवाज, रहन-सहन, घटना प्रभृति मामलों में भिन्न हैं और उसकी तुलना में प्रगत, उन्नत हैं। कुछ अंग्रेज समाजशास्त्रियों ने इनकी पृथकता तथा समानता का बारीकी से अध्ययन करके उनके संबंध में जो जानकारी दी है, उसकी साधारण रूपरेखा हम दे रहे हैं, जितनी हमारे इस कथानक से संबंध रखती है।

अंदमान में जो दस-बारह तत्रस्थ मूल लोगों की जातियाँ हैं, उनके नाम इस

प्रकार हैं—कारी, कोरा, टबो, बी, बलवा, जावरा, जुबई, कोल आदि। अंतिम जो 'कोल' नाम है, उसपर गौर करना चाहिए, क्योंकि हमारे यहाँ के जंगली अथवा पहाड़ी मछेरों से यह नाम तथा इन लोगों का चरित्र तुलनीय हो सकता है। इस जाति की संघठनाएँ कुछ के घने जंगलों, कुछ के ऊँचे पहाड़ों तो कुछ के समुद्र तट पर रहने के कारण उनके रीति-रिवाज, भाव-भंगिमाएँ, रंग-रूप उक्त स्थितिभेद तथा थोड़े-बहुत वंशभेद से भिन्न हैं। अत: सरसरी तौर पर किए गए उनके वर्णनों में जो कुछ विसंगति पाई जाएगी, उसका स्पष्टीकरण पाठक कर सकते हैं।

जावरा प्रभृति जातियाँ गजब की क्रूर होती हैं। प्राचीन काल में कितने ही विदेशी जलयान इन द्वीपों के निकट तूफान में घिर या फँस जाते थे, तब उनपर यात्रा करनेवाले बेबस, असहाय यात्रियों का जावरा प्रभृति अंदमानी लोग निहायत नृशंसता के साथ कत्ल किया करते थे। आज भी उनसे परिचित तत्रस्थ जातिबाह्य किसी भी विदेशी अथवा अंदमानीय जातियों के लोग दिखाई देते ही ये जंगली, बर्बर लोग घने वृक्षों की झुरमुट की ओट से उनपर तीक्ष्ण बाणों की बौछार करके अथवा इक्के-दुक्के व्यक्ति को पकड़कर उसकी जान ले लेते हैं। कभी-कभार किसीको जीवनदान मिल गया तो उसका अहोभाग्य। जावरों द्वारा जान से मारे गए लोगों की लाशों पर पत्थरों के ढेर लगाए जाते हैं।

उनमें से कुछ जातियों की यह धारणा होती है कि उनके हाथों जंगल में मारे गए विदेशी लोगों की वार्त्ता उन विदेशी दुश्मनों को पंछियों से मिलती है, क्योंकि वे पशु-पक्षी और मानव-प्राणी में अधिक भेद-भाव नहीं रखते।

इन लोगों में स्त्री-पुरुष संबंधित रीति-रिवाज अलग-अलग होते हैं। प्राय: स्त्री-पुरुषों के कार्य विभाजित होते हैं। स्त्री का स्थान पुरुष से निम्नस्तरीय समझा जाता है। वृद्ध महिलाओं से सम्मानपूर्वक व्यवहार किया जाता है। विवाह से पूर्व नारी पुरुष से मेल-जोल रखती है। अनब्याही, कुँवारी स्त्रियों के लिए लैंगिक प्रतिबंध कुछ खास नहीं होते। कुछ जातियों में वे अपना वर स्वयं चुनती हैं। कुछ जातियाँ माँ-बाप द्वारा तय की गई शादी उचित मानती हैं। इधर बहुपत्नीत्व तथा बहुपतित्व भी कुछ अधिक मात्रा में दिखाई नहीं देता। उसी प्रकार अपनी पत्नी की बहनों को वे कभी स्पर्श तक नहीं करते। लड़के-लड़कियों के नाम अलग-अलग रखने का रिवाज प्राय: सभी जातियों में नहीं है। माँ ही नामकरण करती है। प्राय: किसी नारी का पेट गदराने लगते ही गर्भ का नामकरण किया जाता है। परंतु कुछ जातियों में लड़कियों के सयानी होते ही निश्चित किए गए सोलह फूलों में से किसी एक फूल का नाम रखा जाता है, जो उस लड़की के सयानी होने के समय खिलते हैं। इन जंगली, बर्बर लोगों की यह ललित प्रवृत्ति तथा रसिकता क्या हमारे उन नागर

लोगों की अरसिक, रूखी प्रवृत्ति से, जो फूल-सी सुकुमार लड़कियों के दगड़ी (पत्थर), धोंडी (बड़ा गोल पत्थर), भिमी जैसे बेढंगे नाम रखते हैं, अधिक सुंदर नहीं है? प्राय: पुरुष का विवाह पच्चीस वर्ष की आयु के पश्चात् तथा नारी का विवाह अठारह के बाद संपन्न होता है।

इन लोगों को बच्चों से बहुत लगाव होता है, परंतु कुछ जातियों में बच्चे सात-आठ साल के होते ही अपने माँ-बाप से अलग होकर पृथक् जीवनयापन करते हैं। वैसे आम तौर पर सभी का जीवन-क्रम एक-सा और नपा-तुला होता है। भक्ष्य के लिए दिन भर शिकार करना और रात में तब तक नाचना, जब तक नींद नहीं आती। नृत्य-समारोह में स्त्री-पुरुष नग्नावस्था में इकट्ठे रहते हैं।

इन लोगों में, तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो, पुरुष ही देखने में अच्छे लगते हैं। महिलाएँ निरी बुद्धू, लंठ—गोबरगणेश। स्त्रियों के कूल्हे बेडौल, भद्दे और शरीर की तुलना में बहुत ही स्थूल होते हैं। शायद अपनी सुंदरता को चार चाँद लगाने के लिए स्त्रियाँ अपने सिर के बाल उतारकर खोपड़ी बिलकुल सफाचट चिकने किए रहती हैं। ऐसा लगता है कि उस अंदमानीय सौंदर्य दृष्टि में युवा रमणी की यही छवि अधिक सुंदर मानी जाती है। हमारे कवियों की यह अतिप्रिय उपमा है कि सुंदरी के होंठ पक्व बिंबाफल सदृश हैं (पक्व बिंबाधरोष्ठी)। उसी तरह उनमें जो कोई कवि मन का होगा उसे यह उपमा सूझती होगी तथा प्रिय भी होगी कि सुंदरी का मस्तक छीले या तराशे हुए नारियल सदृश विलोभनीय होता हो, क्योंकि छीला हुआ नारियल अंदमानीय जंगल के प्राकृतिक नागरिकों का अति प्रिय पदार्थ है, जहाँ नारियल के वृक्षों की विपुलता है।

उन लोगों की बुद्धि बचपन में बड़ी चतुर-चालाक होती है, परंतु उसमें शीघ्र ही गतिरोध आ जाता है। स्मरणशक्ति बहुत ही साधारण, अर्थात् बौद्धिक दूरदर्शिता उनमें नहीं के बराबर ही होती है। मनुष्यत्व की एक व्याख्या है कि मनुष्य वही है जो आगे-पीछे देखकर व्यवहार करता है। इस व्याख्या के अपवादस्वरूप अंदमानी लोगों को देखा जा सकता है। काम, क्रोध, लोभ आदि विकारों की जो सनक उनपर सवार होगी उसीके अनुसार वे चलते हैं। अतीत और भविष्य का गणित वे नहीं जानते। क्षुधा, तृष्णा, क्रोध, द्वेष आदि भावनाओं की तत्कालीन तृप्ति होने पर वह समस्या वहीं समाप्त हो जाती है। शत्रु अथवा अपराधियों से प्रतिशोध भी बस उसी मनोवेग में लेंगे। कुछ समय के पश्चात् वही विपक्षीय व्यक्ति यदि फिर से उनमें आ जाए तो उसके प्रति खुन्नस, क्रोध, अपराध तथा प्रतिशोध लेने का निश्चय सबकुछ प्राय: वे भूल जाते हैं। वह व्यक्ति फिर उनमें घुल-मिल जाता है। अर्थात् उनके बारे में जो कहा जाता है कि उनकी स्मृति शक्ति अपर्याप्त होती है, वह हमारी स्मृति

शक्ति तथा बौद्धिक दूरदृष्टि के प्रदीर्घकालीन स्थायित्व की तुलना में ही कहा जा सकता है, क्योंकि उन जातियों को भी कुछ स्मृति, कुछ दूरदृष्टि अवश्य होगी। जातिगत, पैदाइशी तथा व्यक्तिगत अर्जित स्मृति तथा दूरंदेशिता बंदरों के झुंड में भी होती है। फिर ये आदिम क्यों न हों, हैं तो मनुष्य ही न?

उनकी भाषा बिलकुल इने-गिने शब्दों की नपी-तुली। बस, उसे व्यक्त करने के लिए जो विश्वासयुक्त शारीरिक तथा प्राथमिक भाव-भावनाएँ आवश्यकताएँ हैं, वही। उसपर वे तनिक अपर्याप्त ही हैं, क्योंकि उनकी भाषा में एक प्रमुख शब्द के उच्चारण से उसका वाक्य बनाने का काम हाव-भावों से ही पूरा होता है। हाथ हिला, सिर-आँखों की भंगिमाओं और शब्दों से वे परस्पर अधिक संवाद साधते हैं। कोई अतिथि मिल जाए तो प्रथमत: दोनों एक-दूसरे की ओर चौकन्ना होकर देखते हैं—यही उनका प्रथम शिष्टाचार है। अर्थात् एक-दूसरे को पहचानने में जो धोखा कमजोर स्मृतिवश तथा विदेशियों के कपटवश उन्हें सहना पड़ता है, उस जातीय अनुभूति के कारण ठीक से जाँच-परख करने से पहले किसीसे भी बातचीत न करने का रिवाज उनमें आया होगा। फिर खाँस-खँखारकर आगतों से वार्त्तालाप का श्रीगणेश करना उनका दूसरा शिष्टाचार है। हर जाति की एक पृथक् बोली होती है। साधारणतया बीस मील पर यह बोली बदलती है।

किसीकी मृत्यु पर सगे-संबंधी बिलख-बिलखकर रोते हैं। छोटा बच्चा मर जाए तो उसे माँ-बाप की कुटिया में ही दफनाया जाता है। अन्य किसी, खासकर किसी बड़े आदमी की मृत्यु पर उसकी गठरी बाँधकर प्रथमत: वृक्ष के कोटर में अच्छी तरह से रखा जाता है तथा उस स्थान के चारों ओर बेंत के पत्तों की मालाएँ लटकाई जाती हैं। उस स्थल के पास महीनों तक कोई फटकता भी नहीं। यह श्मशान स्थल अलग-थलग ही रखा जाता है। इस सूतक काल में वे भूरी मिट्टी बदन पर पोतते हैं और उन दिनों में नाच-गाना बंद कर दिया जाता है। कुछ महीनों बाद मृत व्यक्ति की अस्थियाँ धोकर उनके टुकड़े किए जाते हैं। फिर उनके तरह-तरह के गहने बनवाकर उन्हें उस मृत व्यक्ति के स्मरणार्थ प्रयुक्त किया जाता है। ऐसा विश्वास भी दिखाई देता है कि रोग-पीड़ित होने पर उन अस्थियों के गहनों के स्पर्श मात्र से अमुक रोग से मुक्ति मिलती है। परंतु इन सभी अस्थियों में मृतक के कपाल का विशेष आदर-सम्मान किया जाता है। अन्य अस्थियों के साथ इस खोपड़ी को एक माला में पिरोकर उसे गरदन के ऊपर पहना जाता है और इस कपाल का प्रयोग करने का अधिकार विधवा, विधुर और अत्यंत निकटतम संबंधियों को ही होता है।

कुछ जातियों का विश्वास होता है कि मरणोत्तर काल में भूत-पिशाच योनि प्राप्त होती है। कुछ लोगों की यह धारणा होती है कि अंदमान क्षेत्र में सभी प्राणी जो

विचरते हैं, उनके रूप में अपने पूर्वज ही डोलते फिरते हैं। अपना ही भूत होने की धारणा उनकी छाया की अपेक्षा अपनी परछाईं से आई होगी, जो उन्हें सागर जल में दिखाई देती है, क्योंकि परछाईं को ही वे भूत मानते हैं और समझते हैं कि मरणोपरांत यह भूत अन्यत्र रहने के लिए चला जाता है।

धार्मिक दृष्टि से कर्मकांड इन लोगों में नहीं के बराबर ही है। शादी-ब्याह, मृत्यु आदि अवसरों पर निश्चित रिवाज, व्यावहारिक रस्में होती हैं, परंतु धार्मिक स्वरूप में किसी देवी-देवता की प्रार्थना, पूजा अथवा मंत्र-तंत्र, इतना ही नहीं अपितु कोई धर्मधुरीण पंडित-पुरोहित भी नहीं होता। हाँ, कोई उन्हें साग-पात समझकर नीचा न दिखाए कि उनमें से कइयों को ब्रह्मज्ञान नहीं है, क्योंकि उनमें जो थोड़ा सा ब्रह्मज्ञान तथा कुरान-पुराण है, उसका हमारी ईश्वरदत्त पुस्तकों में कथित कुछ धर्मधारणाओं तथा ब्रह्मज्ञान को भी लोहा मानना पड़ेगा। जैसेकि पुलगा नामक देवता ने इस विश्व का निर्माण किया। मरणोपरांत जिस दुनिया में भूतों का डेरा जमता है, उस अनूठे-अद्‌भुत विश्व को एक प्रचंड जंगली नारियल के वृक्ष ने उठाया हुआ है, जैसे शेष के मस्तक पर वसुंधरा। आजकल पुलगा उसी अद्‌भुत ऊँचे आकाश में रहता है, परंतु प्राचीन काल में वह अंदमान के सबसे ऊँचे पहाड़ 'सैड्ल पीक' पर रहता था। कैलाश पर्वत पर यदि हमारे शंभु महादेव भोलेनाथजी का निवास है, मूसा—पैगंबर के महादेव अल्लाह ताला यदि सीनाय की चोटी पर निवास करते हैं, आई.सी.एस. के महादेवजी गवर्नर जनरल यदि शिमला में रहते हैं तो भला अंदमान का महादेव पुलगा 'सैड्ल पीक' पर क्यों न रहे? मरणोपरांत जीव एक वायु-रूप पुल से पाताल लोक में जाता है और ईसाई, मुसलिम की तरह कब्र में इस जगत् के न्याय-निर्णय के दिन तक प्रतीक्षा करता है। यह अंदमानी महादेव पुलगा मुसलिम महादेव की तरह निपट एकांतप्रिय नहीं, हमारे हिंदू महादेव की तरह उसकी भी एक पत्नी है तथा ईसाई महादेव को जिस प्रकार जीसस जैसा पुत्र है, उसी प्रकार उसका भी एक पुत्र है। इतना ही नहीं, कई कन्यारत्न परिवार में होने का सौभाग्य भी उसके हिस्से में है और यह सुख ऐसा है, जो हमारे यहाँ के किसी भी महादेव के भाग्य में नहीं है।

इस पुलगे के अतिरिक्त अदृश्य शक्तियों में सागर का भूत 'जुरूबीन' तथा जंगल का भूत 'एरम चौग' दोनों ही बड़े घाघ तथा शीघ्रकोपी हैं। पुलगा को भी वे नहीं मानते, जिस प्रकार शैतान अल्लाह की भी परवाह नहीं करता। लेकिन इतना अच्छा है कि यह जंगली शरारती भूत 'एरम चौग' आग से डरता है। इसी धारणा के कारण वे अंदमानी जंगली जातियाँ हमेशा अपने साथ आग रखती हैं, उसे बुझने नहीं देतीं, जैसे हम हिंदू, पारसी लोग भी अखंड अग्निहोत्र का पालन और उसकी

रक्षा करते हैं।

उत्तरी ध्रुव सदृश सर्वथा बर्फीले प्रदेश में ऐसा चिल्ला जाड़ा पड़ता है कि हमारी एकदम कुल्फी जम जाती है—मनुष्य के बसने के समय उसे तपिश के लिए अग्नि की अखंड निकटता अत्यावश्यक है; और इसीलिए अत्यंत प्रिय होगी। परंतु उस जमाने में आग जलाने के लिए दियासलाई जैसा फुरतीला साधन मनुष्य के लिए उपलब्ध नहीं था इसलिए उसे लकड़ी पर लकड़ी अथवा चकमक पत्थर को एक-दूसरे पर घिसकर आग की चिनगारी उत्पन्न कर अग्नि जलानी पड़ती थी, अत: एक बार जलाने के बाद उसे बुझने न देना, निरंतर धधकती रखना अपरिहार्य था। अत: उत्तरी ध्रुव के आर्यों में अग्नि का महत्त्व बढ़ा होगा और प्रथमत: सदाचार का और बाद में धर्म कर्तव्य का स्वरूप पाकर हमारी अग्निहोत्र संस्था अस्तित्व में आ गई। इस प्रकार हमारी चलाई परंपरा अग्निहोत्र की उत्पत्ति का अंदमान का यह वन्य अनार्य दृढ़ समर्थन करता है, क्योंकि इस घने जंगल में बड़े-बड़े जहरीले मच्छरों और मक्खियों के झुंड-के-झुंड, साँप-गिरगिट, जोंकों-चिंचड़ों की भरमार, यहाँ-वहाँ दलदल, प्राय: घना अँधेरा; और गुण विशेष की 'जंगलों' का वह भूत डरेगा तो सिर्फ आग से ही डरेगा। उधर आग अत्यंत उपयुक्त है। लेकिन उन जंगली लोगों में आज भी दियासलाई के अभाव में आग जलाना बहुत ही कष्टप्रद है। चकमक घिसकर चिनगारी उठानी पड़ती है। अत: एक बार जलाई हुई आग ही आगे फिर से जलाने के लिए यथासंभव जलती रखना आवश्यक था। साथ ही जंगल के भूत 'एरम चौग' को दहशत फैलाकर दूर रखने के लिए भी प्रदीप्त अग्निहोत्र एक आवश्यक चीज हो गई।

तथापि दैवीकरण की उनकी कल्पना-शक्ति के उस अग्नि समान ज्वलंत न होने के कारण आग का अग्निदेव नहीं बना। न ही उसका अग्निहोत्र बना। आग उत्पन्न करनेवाली हमारी लकड़ियों का भी जिस प्रकार अरणि देवता (निहाई देवता) होता है, उसका मंत्रोच्चारण के साथ आह्वान किया जाता है, उसी प्रकार उनको चकमक पत्थरों की 'चमक गिराओ, प्रसन्न हो जाओ' ऐसी प्रार्थना नहीं करनी पड़ती। उनकी अग्नि कभी प्रसन्न नहीं होती, सिर्फ जलती है। क्रोधित नहीं होती, सिर्फ बुझती है। वह आग भले ही जंगल के भूत को भगाती हो, तथापि वह मात्र एक पदार्थ, मात्र एक वस्तु है, न कि देवता।

आम तौर पर उनमें से प्राय: सभी जातियों में किसी भी देवता की प्रार्थना अथवा मंत्र-तंत्र अथवा पूजा-अर्चना ऐसी नहीं जो परलोक में काम आ सके। स्वर्ग-नर्क की उनकी धारणा हमारे पुराण-कुरान-बाइबिल के छबढब की बिलकुल नहीं होती। 'पुलगा' की भी संकटमोचनार्थ पूजा-प्रार्थना नहीं होती।

इस प्रकार ये अंदमानीय जंगली नागरिक इन एक-दो जिले जितने टापुओं में लगभग तीन-चार हजार होंगे या नहीं भी—वे भी बिखरे हुए—बाकी सब घना जंगल-ही-जंगल। इतना घना और दुर्गम जिसमें उपनिवेशी मनुष्य ने कदम भी नहीं रखा था—पिछले तीस-एक वर्षों तक इसका निश्चित सर्वेक्षण नहीं किया गया था। बड़े-बड़े पेड़, उनपर और उनमें से सैकड़ों कँटीली, बिना काँटों की लता-वल्लरियों, तृणों की घनी जटिल गुत्थमगुत्थी की रेलपेल के साथ लगभग बारह महीने—कम-से-कम नौ महीने—निरंतर बारिश—गोलाधार बरसती—कभी धुआँधार तो कभी रिमझिम-रिमझिम—इसलिए तलहटी पर सतत जल-संचय—उसपर वृक्ष लता-वल्लरियों की, अथाह घने जंगल की सूखी पत्तियों, छिलकों की बरसों से परतों-पर-परतें जमा होती हैं। बरसों से वह सब उधर ही सड़-गल जाता है। इधर-उधर हर तरफ उस दलदल में लाखों मक्खियाँ, बड़े-बड़े राक्षसी मच्छर, जोंक, चिंचड़ियाँ, भयंकर जहरीले साँप—जिनका काटा पानी भी नहीं माँग सकता, गिरगिट, विषाक्त जीव-जंतुओं की भरमार। वृक्ष में वृक्ष, बेलों में बेलें, काँटों में काँटे, छोटे-छोटे पौधों के झुरमुट एक-दूसरे में उलझकर इस तरह एक जंगली छत, मीलों दूर-दूर तक फैली हुई कि सूरज आसमान में दपदप दमकता रहने पर भी उसकी सहस्रों रश्मियों का स्पर्श उस जंगल की तलहटी को, उस दलदल को सुखाने के लिए युगों से नहीं हुआ था, रोशनी भी छनछन करती सदियों से यहाँ नहीं आती। सिर्फ मैदानों में ही नहीं अपितु उन पहाड़ों पर भी जंगल की वृद्धि जो बीच-बीच में दिखाई देती थी, उस जंगल ने उसी प्रकार आक्रमण किया था। इस योग में ये द्वीप यद्यपि दूर से हरे-भरे तथा मनमोहक भले ही दिखाई देते, पर प्राचीन काल से मनुष्य-बस्ती के लिए प्रतिकूल ही सिद्ध हुए हैं। जो कुछ साहसी अंग्रेज बहादुरों ने उपनिवेश स्थापित करने का प्रयास किया, उनके लिए भी अठारहवीं सदी के साधनों द्वारा पैर जमाना दुष्कर था। दो बार उनके द्वारा स्थापित उपनिवेश को वहाँ के लाखों जहरीले जीव-जंतुओं तथा दलदल स्थित रोगाणुओं ने रेजा-रेजा कर दिया। एक-एक आदमी रोगग्रस्त होकर मर गया और जो बचे वे डेरा-डंडा उखाड़कर चलते बने।

यह सच है कि इन अंदमान द्वीप-पुंजों पर जो विदेशी लोग दुर्घटनास्वरूप जलयान के तूफान की चपेट में आ जाने के कारण अथवा उपनिवेश स्थापित करने के लिए आते हैं, उनपर जावरा प्रभृति तत्रस्थ बर्बर लोग विषाक्त तीरों की बौछार करके, उन्हें पकड़कर फाड़ डालते हैं। परंतु उस द्वीप की स्वाधीनता अनादिकाल से सत्रहवीं शताब्दी तक जो अक्षुण्ण रही, वह कदापि न रहती, यदि उनकी ओर से यह प्रतिकार न किया जाता। इस द्वीप की स्वाधीनता जो अबाधित

रही, वह तत्रस्थ साँप, गिरगिट, जोंक, चिंचड़े तथा दलदल में बसी असंख्य जहरीली मक्खियों, मच्छरों, रोगाणुओं आदि कट्टर देशभक्तों, लक्षाधिक सूक्ष्म सैनिकों की 'स्वतंत्रता भक्ति' के ही कारण।

वहाँ के ऐसे घने जंगल स्थित जावरों से जोंकों-चिंचड़ों की सेना का ही पराक्रम अतुलनीय है। आज भी इस जंगल में कटाई के लिए बंदियों की टोलियाँ जब जाती हैं तब ये चिंचड़े उन्हें लहूलुहान करके वापस भेज देते हैं। पेड़ों पर इन जोंकों की परतों-पर-परतें चढ़ जाती हैं। पैरों तले सूखे पत्तों की परतों पर इनके दल-के-दल, उन जोंकों के लाखों 'देशभक्त' फौजी छिपकर घात लगाए बैठे होते हैं। लोगों के अंदर घुसते ही, उनकी गंध सूँघते ही पेड़ों पर से जोंकें फटाफट उनके बदन पर कूदती हैं, पैरों की ओर से फटाफट जाँघों पर चढ़ती हैं और जहाँ भी चिपक गईं वहीं से लपालप लहू सुड़कने लगती हैं। हाथों से उनके गुच्छे निकालने की लाख कोशिश करें तो भी टस-से-मस नहीं होतीं, वहीं पर डटी रहती हैं। डंक-ही-डंक, दंश-ही-दंश—उसपर विषैले मच्छर, कँटीले पौधे, भयंकर साँप जैसे गिरगिट—एक-एक फीट लंबे, सौ-सौ पैरों के—उनकी भी परतों-पर-परतें—बंदी उन्हें 'कनखजूरे' कहते हैं। उसका डंक इतना जहरीला होता है कि बदन में भयंकर सूजन आ जाती है, जलन होने लगती है, कभी-कभी बदन सुन्न पड़ जाता है जैसे लकवा मार गया हो। कभी-कभी प्राणघात भी हो जाता है। इनकी तुलना में उधर साँप बहुत ही कम हैं। परंतु 'फुरसे'[१] की तरह एक साँप होता है। वह इतना विषाक्त होता है कि उसका काटा पानी भी नहीं माँगता। सुना है, पहले बिच्छू नहीं थे, पर आजकल वे भी मिलते हैं।

ऐसे ही उस जंगल में जब बंदियों में सबसे अधिक कंटक तथा क्रूरतम बंदियों को टोलियाँ बनाकर जबरदस्ती जंगल कटाई के लिए ले जाया जाता तब उनकी भी घिग्घी बँधती। मारपीट करके लाए गए सौ-सौ कैदी दिन भर उस भयंकर जंगल में सख्त-से-सख्त काम निपटाकर जब शाम ढले वापस लौटते तब उनके बदन पर चिपकी हुई जोंकों के डंक से खून की पतली धाराएँ बहतीं; पाँवों में काँटे चुभे हुए होते और वे दलदल की कीचड़ से लथपथ होते। ऐसी अवस्था में भला इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है कि बंदियों की टोलियों के कलेजे पक जाते, दिल दहल जाते। उसपर उस जंगल में मधुमक्खियों तथा ततैयों का अबाधित साम्राज्य। यदि उनकी सार्वभौमकता को कोई तुच्छ मनुष्य ललकारे, जरा सा भी छेड़े तो मधुमक्खियाँ तथा ततैया भी उन विदेशी शत्रुओं पर आवेश के साथ टूट पड़तीं—

---

१. फुरसे—महाराष्ट्र में कोंकण में पाया जानेवाला एक जहरीला साँप।

अपने स्वदेश तथा स्वराज्य की रक्षार्थ देशप्रेमी जोंकों-चिंचड़ों, कनखजूरों तथा रोगाणुओं द्वारा छेड़े गए स्वाधीनता संग्राम में हिस्सा लेने में वे भी पीछे नहीं रहतीं।

इन तमाम स्थितियों से टक्कर लेकर—इन जावरों, जोंकों तथा रोगाणुओं का डटकर मुकाबला करते हुए जूड़ी (मलेरिया) आदि रोगों से अनेक उपनिवेश तहस-नहस हो गए। तथापि आज अंग्रेज पुन: उसी अंदमान द्वीप में आखिर एक चिरस्थायी तथा संपन्न औपनिवेशिक राज्य स्थापन करने में सफल हो ही गए—इसी राज्य को 'काला पानी' कहा जाता है।

आजन्म कारावास प्राप्त बंदियों के दिल 'महाराजा' धुआँकश के अंदमान के किनारे पर लगते ही धौंकनी की तरह धकधक करने लगते हैं—

'आ गया! काला पानी आ गया!!'

□

प्रकरण–१२

अंदमान के बंदीगृह में

काला पानी पहुँचते ही कैदियों को धुआँकश से उतारा जाता है और उन्हें सीधे उस द्वीप पर, सागर की ढलान पर बनाए हुए भव्य, मजबूत, विशाल तथा प्रमुख कारागृह में सशस्त्र पुलिस-पहरे में पहुँचाया जाता है।

इस प्रकार के कारागृह को 'कक्ष-कारागार' (Cellular Jail) कहा जाता है। बंदियों की बोली में इसी 'सेल्युलर जेल' का 'सिलबर जेल' (रुपहली बंदीशाला) जैसा मनमोहक रूपांतर हो गया है। जो अर्धशिक्षित बंदी थे—वे पुलिस के यह कहने पर कि 'इन्हें सिलबर जेल में ले जाओ' हक्के-बक्के-से देखते रहे। भई, रुपहली बंदीशाला में जाना है? क्या बात है! कुछ मंदिरों के खंभों अथवा कंगूरों पर जिस प्रकार चाँदी की चादरें जड़ाई जाती हैं, उसी प्रकार उनकी नजरों के सामने 'सिलबर जेल' नाम सुनते ही किसी विलक्षण तथा भव्य कारागृह, जिसका कम-से-कम दर्शनी हिस्सा रुपहला हो, दृश्य आ जाता। भई, काले पानी की सारी बातें ही न्यारी हैं। क्या कहा जाए, जिस तरह काला पानी उसी तरह बंदीशाला रुपहली क्यों नहीं हो सकती?

कम-से-कम कैदियों तथा पुलिसवालों के मुँह से बार-बार 'सिलबर जेल' नाम सुनकर कंटक को बड़ा आकर्षक प्रतीत हुआ। वास्तव में भयानक पापियों को उनके भीषण पापों का कठोर दंड देने के लिए जिस द्वीप में ले जाना है, उसका नाम जिस तरह 'काला पानी' प्रचलित हो गया जिससे रोंगटे खड़े होना स्वाभाविक है, उसी तरह उस कारागृह का नाम भी 'नारकीय विवर' अथवा 'छलघर' प्रचलित होना चाहिए था, जिससे अच्छा-खासा दबदबा निर्मित होता। परंतु यह नाम कम-से-कम लुभावना तो है—वाह! 'सिलबर जेल'—रुपहली बंदीशाला!

भई, केवल नाम ही प्यारा नहीं है—वह देखिए, वह भव्य बंदीगृह दिखाई दे

रहा है—वही है सिलबर जेल। आँ वह? बिलकुल सिलबर—रुपहला न सही, पर कितना आकर्षक है वह भवन। रेखांकन करके ठीक-ठाक, साफ-सुथरा, टीप-टाप, बिलकुल कोरा, प्रदीर्घ, प्रशस्त, समांतर, बढ़िया खिड़कियाँ-ही-खिड़कियाँ—एक मंजिल पर खड़ी तीन सुघड़, सुडौल मंजिलें, बीचोबीच पक्का सुगठित टावर। पल भर के लिए कंटक को अहसास हुआ, कहीं यह पुलिस मेरा मजाक तो नहीं उड़ा रही? काले पानी के प्रमुख बंदीभवन के बहाने कहीं कोई आरोग्य भवन तो नहीं दिखा रहा, जो रईस धनवान अफसरों के लिए बनाया गया है? भई, यह सिलबर जेल है या सैनिटोरियम?

भीतर कदम रखते ही बंदीगृह नाम से जो एक उदास, दारुण, वीरान अँधेरे दबदबे का अनुभव आम भारतीय बंदीगृह में भी होता है, उसका यहाँ नामोनिशान तक नहीं है। रोशनी, हवा की विपुलता। तीन मंजिलों के पाँच-छह 'विंग्ज'—जिनमें एक जैसी कोठरी से कोठरी सटाकर बनाई गई हैं—सुडौल, सुगठित मध्यस्थित उस टावर के चारों ओर दूर-दूर तक कायदे से फैले हुए। बीच में बड़े-बड़े आँगन रखे हुए—गोलाकार—चारों ओर नारियल—केले का घना वन। अंदमान के घने जंगल में कभी-कभी नरम-नरम मुलायम, सुस्त, तीस-तीस फीट लंबे, सुंदर प्रचंड अजगर कुंडली मारकर लेटे हुए पाए जाते हैं, उसी तरह यह वन भी जैसे एक अजगर ही है। अजगर जैसा ही मनमोहक!

उसपर हर बंदी के लिए अलग-अलग कालकोठरी, जिसमें लोहे की सीखचों का बंद दरवाजा। इस प्रकार उसमें सात-साढ़े सात सौ काल कोठरियाँ हैं। इसीलिए उसका सेल्युलर जेल जैसा सार्थक नाम रखा गया था।

उसे हर कोठरी में भरपूर रोशनी दिखाई देती। परंतु उस रोशनी की विशेषता यह थी कि उस कोठरी में कदम रखने और द्वार को एक बार बाहर से ताला लगने के बाद चर्मचक्षुओं को भले ही साफ-साफ दिखाई दे, परंतु दिल में घुप अँधेरा छा जाता, एकदम घुटन सी महसूस होती; वह प्रशस्त, विशाल कमरा कालकोठरी बन जाता।

उसी प्रकार की एक-एक कालकोठरी में बंदियों के उस चालान के भी एक-एक कैदी को अलग-अलग बंद किया गया। तीन-चार दिन तक उन कालकोठरियों में अकेले-अकेले कैदी को गाड़ने के बाद उनके दंडपत्रक की जानकारी का निरीक्षण करके उनके अपराध तथा पूर्ववृत्त के अनुसार विभिन्न श्रेणी विभाजन किया गया। जो तात्कालिक उत्क्षोभ में अपराध कर गए और प्रथम बार दंडित हुए थे, उनकी गणना सुधारणीय श्रेणी में की गई। जो घुटे हुए अपराधी थे, उनकी भयंकर दुःसुधारणीय के रूप में दूसरी श्रेणी—इस प्रकार अपराधी विज्ञान

(Criminology) के अनुसार दो वर्ग किए गए। कंटक प्रथम श्रेणी में था और अंग्रेजी, हिंदी शिक्षित होने के कारण महीने-दो-महीने में ही उसे लेखालय में, जो बंदी लेखक-वर्ग होता है उसमें, थोड़ा-बहुत लिखा-पढ़ी का काम मिल गया और यह स्पष्ट हो गया कि चंद दिनों में बंदियों में 'बाबू' के रूप में उसका बोलबाला होगा। परंतु रफीउद्दीन के दंडवृत्तांत की 'भयंकर' श्रेणी में गणना हुई, अर्थात् पाँच वर्षों तक उसे उसी कारागार में बंद रखने तथा तब तक कड़े पहरे में सख्त काम करने का दंड दिया गया जब तक उसका आचरण चोखा नहीं दिखाई देता।

आजकल अंदमान में भयंकर तथा निघरघट बंदी नहीं भेजे जाते, अत: वहाँ के कैदियों को काफी सहूलियतें मिलती हैं। परंतु तीस-पैंतीस वर्ष पूर्व भयंकर, निघरे, छँटे हुए दंडितों को प्राय: उधर भेजे जाने के कारण उनसे कड़ी मेहनत लेने के लिए वैसे ही कठोर नियम तथा उनकी दुष्ट मस्ती झाड़ने के लिए उतना ही कठोर काम आयोजित करना पड़ता था। इसके अतिरिक्त अन्य किसी भी ढुलमुल, कमजोर व्यवस्था से इस प्रकार के राक्षसी दंडितों को सही रास्ते पर लाना, उनसे वह कार्य करवाना जो समाज के लिए हितकर था, कम-से-कम समाज को उनके स्वैर अस्तित्व से जो उपद्रव भोगना पड़ता था, उसे टालना लगभग असाध्य ही होता था।

रफीउद्दीन जैसे निर्दयी कैदी उस प्रकार की कठोर, कड़ी व्यवस्था के भी दाँत खट्टे करके काले पानी से भाग जाते, स्वदेश वापस जाते और पुन: समाज पर घोर अत्याचार करते। इस बात पर गौर करते हुए रफीउद्दीन के कारागार से भाग निकलने पर बीच के कालखंड में यह व्यवस्था और भी अधिक सख्त की गई थी। इस बीच उस कक्ष-कारागृह पर ऐसे अधिकारियों की नियुक्ति की गई थी, जो उसके लिए नहले पर दहला हों, आवश्यकता पड़ने पर उससे भी कठोर व्यवहार करें, चालाक हों। रफीउद्दीन को अब जब पुन: काला पानी भेजा गया, तो उसकी मुठभेड़ ऐसे ही एक सवाई दंडम बंदीपाल के साथ होनेवाली थी।

रफीउद्दीन ने आते ही इस बात पर गौर किया तथा अपनी पूर्वपरिचित व्यवस्था तथा अधिकारियों की आँखों में धूल झोंकने के लिए जहाँ जो-जो इलाज लागू हो, वहाँ क्रमश: चुगलियाँ, मनुहार करना, पाँव पकड़ना, वाहियात अंटशंट बकबक, गाली-गलौज, पागलपन का स्वाँग, धींगामुश्ती, हँसते-खेलते मुख प्रशंसा, शोख निर्लज्जता आदि विविध प्रकार के व्यवहारों का प्रयोग करना प्रारंभ किया।

उस नए बंदीपाल ने, जो भयंकर तथा अधम बंदी था, आते ही उनके पूर्ववृत्त की सरकारी टिप्पणियों के अनुसार, मन में निश्चित किया था कि उनके संबंध में कौन सी नीति अपनानी चाहिए। और फिर उनकी प्रस्तुत मनोवृत्तियों को टटोलने के लिए वह एक-दो बार उनसे प्रत्यक्ष साक्षात्कार करता। जहाँ आवश्यकता पड़ती

वहाँ खुल्लम-खुल्ला बातचीत करने का दिखावा करता। नरमी से पेश आता और फिर उनका पुरजा उतना ही कसता जितना वह चाहता था। अपनी पद्धति के अनुसार उसने उस नए चालान के बंदियों को भी धीरे-धीरे टटोलना आरंभ किया। पाँच-छह दिनों तक उन्हें कालकोठरी में सड़ने देने के बाद एक दिन वह मुखिया जमादार के साथ रफीउद्दीन की कोठरी के सामने अचानक आ धमका।

बंदीपाल साहब स्वयं जिसकी कालकोठरी (Solitary Cell) में बिन बुलाए जाते हैं, अन्य उपेक्षित कैदियों में उस बंदी का तुर्रा एकदम सातवें आसमान पर चढ़ जाता है। वह यह समझकर अभिमान करने लगता है कि इन नगण्य साधारण लोगों में वह भी एक गण्य हस्ती है। रफीउद्दीन मियाँ भी घमंड से छाती फुलाने लगे। वह इतने कड़े पहरे में, 'कैदे-तनहाई' में सड़ रहा था कि जहाँ परिंदा भी पर नहीं मार सकता था। ऐसे में किसीका भी वहाँ आना वह अपना अहोभाग्य समझता। अब दस्तुरखुद 'जेलर साब' उसके पास अपनी मरजी से आए और आते ही पूछने लगे, "क्यों रफीउद्दीन! ठीक-ठाक हो न? कुछ शिकवे-शिकायत?"

"सरकार, आप हमारे माँ-बाप! मैं तो आपके गुलाम का तिलाम हूँ जी!" रफीउद्दीन विनम्रता का चोला पहनकर घिघियाने लगा। फिर बोला, "हुजूर, चाहे मुझे फाँसी पर लटकाओ। लेकिन इस कालकोठरी में अकेले मत ठूँसो। अरे हुजूर, तनिक चीं-चपड़ करना भी दुश्वार हो गया है जी! यदि इस प्रकार मैं अकेले इस भयानक सन्नाटे में कुछ दिन और रहा तो पागल हो जाऊँगा, पागल!"

"अकेले रहने से उकता गए हो?" बंदीपाल मुसकराया, "बस इतनी ही है न तुम्हारी छटपटाहट, परेशानी की वजह? अच्छा, जमादार सुनो, भई मियाँ को एक जोरू ला दो सोहबत के लिए। हमारे जनाना कैदखाने में तो बीवियाँ-ही-बीवियाँ हैं।"

यह सूँघकर कि बंदीपाल बड़ा हँसोड़ तथा खुशमिजाज है, रफीउद्दीन भी खुल गया—उसपर बात छेड़ी गई बीवी की। उसकी मुद्रा एकदम रंगीन हो उठी। कहने लगा, "सरकार, उसे आप जनाना बंदीखाना कहते हैं? लगभग सभी कैदी उसे बीवीघर कहते हैं, हुजूर! लेकिन हम लोगों में जो असली शौकीन, रंगीन तबियत के हैं वे उसे चिड़ियाखाना कहते हैं—'पाँखीवन'। लेकिन सरकार, उस पाँखीवन का पाँखी, पँखेरू आप हमारे भाग में थोड़े ही आने देंगे? वह सामने बैठकर नारियल की जटाएँ जो कूट रहा है—अजी वही काला-कलूटा, भद्दा कोयला, ऐसे भद्दे डोमकौओं को ही तो आप हसीन बुलबुल देंगे। हुजूर, वाकई सरकार, आप उनके इतने हिमायती क्यों हैं जी? वह डोमकौआ—अजी वही कंटक—मेरा चालानी है—वह भी धोखेबाज, दंडित, आजन्म कारावासी, काला

पानी पानेवाला अपराधी। मैं भी बिलकुल उसीकी तरह हूँ। लेकिन मुझे पूरे पाँच साल तक इस बंदीशाला में, इस एकांतवास में, कैदे-तनहाई में सड़ने का दंड और उस साले बदमाश को फौरन कालकोठरी से निकालकर नारियल की जटाएँ कूटने का हलका-फुलका काम दिया गया और कहा गया कि जल्दी ही उसे बंदी लेखकों में नियुक्त किया जाएगा। भई, उस बाबू को लिखना-पढ़ना आता है तो हुजूर, हमें लड़ना आता है—फौज में था सरकार। मर्द का बच्चा हूँ, साब! लेकिन यह कैसा अन्याय है, मेरे मालिक! ककड़ी के चोर को कटारी से मारा जाता है यहाँ। हमपर 'खतरनाक' का ठप्पा मारकर इस काले पानी पर कालकोठरी में सड़ने के लिए डाल देते हैं और बाबू लोगों को, उन ससुरे डोमकौओं को, उन पुरुषों को 'सुधारणीय' के रूप में चुनकर उन्हें शादी करने की अनुमति दे देते हैं, और उन चिड़ियों में से कोई भी चिड़िया पालने की उन्हें अनुमति दे देते हैं। क्या यह सरासर अन्याय, नाइनसाफी का नियम नहीं है जी! हम ठहरे सिपहसालार, दर के शिकारी कुत्ते। जान पर बीतने से उसके लिए अपनी जान की बाजी लगाने में पीछे नहीं हटेंगे जो हमें पालेगा। ऐसे मर्द के बच्चों को कोठरी में सड़ने के लिए छोड़ने की बजाय सरकार हमें किसी भी जंग पर भेजे, दुश्मनों की तोपों के मुँह में दे दे। सरकार के लिए अपने सिर पर कफन बाँधने के लिए भी पीछे नहीं हटूँगा, हुजूर!''

''वा भई, वाह! बिलकुल उचित समय पर अपना इरादा प्रकट किया तुमने। सरकार को वैसे एक शेर की आवश्यकता आ ही पड़ी है। वे जर्रेवाले हैं न? अरे वही इस काले पानी के घने जंगल के राक्षस। सुना है, मनुष्य की खोपड़ी उतारकर उसे तराशते हैं—अच्छी तरह से घिस-घासकर उसमें रंग-बिरंगी सीपियाँ खोंसते हैं और उसका एक ऐसा खूबसूरत मदिरा-चषक बनाते हैं कि बस देखते ही बनता है। उसी तरह का एक प्याला सरकार लंदन की एक प्रदर्शनी में रखना चाहती है। उस जर्रेवालों के यहाँ अभी रवाना करता हूँ तुझे। ऐसी खोखली खोपड़ी की पूर्ति करने में जैसी वे लोग चाहते हैं, तुम्हारा सिर सोलह आने फिट और बढ़िया है।''

''मेरा सिर! बिलकुल नहीं। अजी, सामने बैठे उस डोमकौए की—उस कंटक की खोपड़ी ही इस काम के लिए अधिक उचित है, हुजूर! जनाब, दिमागी काम के लिए बाबू लोग ही अधिक अक्लमंद होते हैं। बड़ी ही लचीली खोपड़ी होती है उनकी, और इस प्रकार के जड़ाऊ काम के लिए तराशने-घिसने में आसान होती है।''

''लेकिन, भई उस कंटक का सिर तो ब्राह्मण का है। क्यों ठीक है न जमादार? ब्राह्मण की खोपड़ी तो भरी-भरी-सी होती है—उसमें भेजा होता है। हमें तेरी जैसी खोखली—थोथी खोपड़ी की आवश्यकता है। थोथा चना बाजे घना।

पुलिस ने हमें सूचित किया है कि उस कंटक का खानदान ऊँचा, कुलीन तथा बुद्धिमान समझा जाता है और सुना है, उसका पिता प्रकांड पंडित, शास्त्री था।''

''हाँ जी हाँ। न केवल शास्त्री, भई उस कंटक का बाप बड़ा ज्ञानी तथा परोपकारी ब्राह्मण था, हुजूर! उसके बाप ने अपनी अपार धन-दौलत अंत में एक अनाथालय को धर्मार्थ दान की!''

''अच्छा? भला कितना धन था उसके पास?'' फटी-फटी आँखों से जमादार ने बीच में ही पूछा।

''तीन मरियल, अस्थि-पंजर बने बेटे और एक बेटी।'' खी-खी करके रफीउद्दीन ने अपनी बत्तीसी दिखाई। बेचारा भोला-भाला जमादार खिसिया सा गया। रफीउद्दीन आगे कहने लगा, ''उन सभी बच्चों को उसने अनाथालय में भेज दिया। उन कंगले, खंगर लगे, घटिया बच्चों में यह कंटक सबसे बड़ा भाई था जो यहाँ बाबू बनना चाहता है, और वह बहन कलकत्ता में पूरे मछली-बाजार की दुल्हनिया बनकर पनवाड़ी की दुकान में बैठती है, हुजूर! मैंने खुद अपनी आँखों से उसे देखा है, पान भी चबाया है उसकी दुकान का। कैसा खानदान और काहे का चरित्र जी! पुलिस को इसीने छू-छू बनाकर सफेद झूठ बोला जिसे उन्होंने भी अपनी रिपोर्ट में दर्ज किया। और क्या! ऐसे घटिया किस्म के, दो टके के आदमी को आप बाबू बनाते हैं, उसे सिर-आँखों पर बैठाते हैं और हमारे जैसे सरकार के वफादार जाँबाज, दिलेर फौजियों को कुत्ते की मौत मरवाते हैं इन कोठरियों में। यह कैसी अंधेर नगरी है!''

''लेकिन तुम यह मत भूलना कि तुम पहले काले पानी से भागे हुए कैदी हो।''

''सरकार, वह मेरा अक्षम्य अपराध है। लेकिन पहले से ही पश्चात्ताप से मेरा मन बिलकुल राख हो चुका है। उस दुष्कर्म से क्या पाया मैंने? पहले से सौ गुना अधिक यातनाओं में फँस गया, फिर से उसी कोठरी में आकर बेड़ियों से हाथ-पाँव जकड़े बंदियों में सड़ने लगा हूँ। अब आपके निकाल देने पर भी मैं इस काले पानी से जाने का नाम भी नहीं लूँगा जी! कुछ भी काम करूँगा, जो आप देंगे, जब आप कहेंगे तब यहीं घरबार बसाऊँगा! हाँ, पर मेरी शादी सरकार रचाएँ तो बड़ी कृपा होगी। अब मेरी माटी इसी धरती पर गिरेगी। आपके चरणों में यही प्रार्थना है कि इस कालकोठरी से मुझे निकाला जाए।''

''अच्छा, जमादार, कल से इसे कोल्हू में लगा देना। यदि तुम यह काम ठीक-ठीक पूरा करते रहोगे तो तुम्हें छह महीनों के बाद कुछ हलका-फुलका काम दूँगा। हाँ, पर देखो, तुम्हें यह वाहियात, ऊलजलूल बकबक, बेकार मगज के कीड़े

दौड़ाकर दूसरों का दिमाग चाटने की बुरी आदत छोड़नी होगी। किसीसे भी अवज्ञाकारी, चीं-चपड़ नहीं करनी होगी और याद रखो, यदि आइंदा फिर कभी इस बंदीगृह के रास्ते को भंग किया, धींगामुश्ती या कोई हंगामा खड़ा किया तो तुम्हारी हड्डी-पसली एक कर दूँगा। भगोड़े दंडित को एकदम गोली से उड़ाने का नया अधिकार अब हम लोगों को दिया गया है। पिछली सरकारी ढील के भरोसे पर पहले जैसा चक्कर मत चलाना। बच्चू, अब मुझसे तुम्हारा पाला पड़ा है। तुम्हारे पिछले गुनाहों को चलो मैं भूल जाता हूँ। हाँ, आइंदा समाज को किसी भी प्रकार का उपद्रव न देते हुए मेहनत की रोटी कमाओगे, तभी। जमादार, इसे इस कालकोठरी से निकालो और कोल्हू पर भेज दो। दिन भर वहीं पर वहाँ के बंदियों में घुल-मिलकर रहने दो। रात में इसे यहीं पर बंद किया करो।''

उस कक्ष-कारागृह में हर इमारत के आँगन में एक छपरी बनाई गई थी। उसीमें कोल्हू का—जो पाँव से चलाया जाता था—काम चलता था। लकड़ी के एक बड़े से कोल्हू में एक जुए जैसा बड़ा सा डंडा जोड़कर उसके हर तरफ दो आदमी लगाए जाते। कोल्हू में सरसों डाल हर एक व्यक्ति को तीस पौंड तेल शाम तक निकालना अनिवार्य था। बैलों के स्थान पर लगाए गए ये आदमी दिन भर उस कोल्हू के चारों ओर गिरगिराते रहते। इसमें किसीने काम से जी चुराकर जरा सी भी ढिलाई की तो ऐसे वॉर्डरों की वहाँ नियुक्ति की गई थी जो उन्हें बैलों जैसे ही हाँकते थे। उस छपरी में इस प्रकार के कोल्हुओं की लंबी कतारें थीं और उन सभी लोगों की निगरानी के लिए एक मेट या मुखिया नियुक्त किया जाता। यह मेट उन दंडितों में से ही चुना गया एक दूसरी श्रेणी का जमादार होता। उस काम की मेहनत इतनी कठिन तथा पीड़ादायी होती कि परले दरजे का घुटा हुआ कैदी भी इस छपरी में कदम रखते ही रुआँसा होकर निढाल हो जाता और उसे नानी याद आ जाती। उनमें से जो पहुँचे हुए शोहदे होते वे जब टालमटोल करने लग जाते तो शाम को उन्हें तब तक उसी तरह जोता जाता, जब तक तेल का निश्चित कोटा पूरा नहीं हो जाता। आवश्यकता पड़ने पर रात सात-आठ बजे तक भी। शाम का भोजन भी उन्हें तब तक नहीं दिया जाता जब तक तेल का कोटा पूरा नहीं होता। इस प्रकार सख्ती बरती जाती, इसीलिए तो बड़े-बड़े पहुँचे हुए डाकू-लुटेरे, हत्यारे, ग्रामकंटक आदि छँटे हुए कैदियों पर भी कुछ अंकुश रहता, उनसे थोड़ा-बहुत काम लेना संभव होता। जो दुर्बल अथवा उस बंदीशाला में रहते हुए भी सदाचारी रहते हैं, उन्हें इस कठोर परिश्रम के काम पर सहसा नहीं लगाया जाता, कम-से-कम यही रिवाज था कि उन्हें इस तरह के काम पर नहीं लगाया जाना चाहिए।

इस कोल्हू के काम से रफीउद्दीन पूर्वपरिचित था ही, इसलिए वह उन

अंतस्थ खूबियों से भी परिचित था कि यह काम न करते हुए किस प्रकार किया जा सकता है। उसपर वह कोल्हू ही नहीं, वह मेट जो कैदियों में से ही दूसरे दरजे का अधिकारी था और जिसे उसपर निगरानी के लिए नियुक्त किया गया था, वह रफीउद्दीन से उस जमाने से परिचित था जब उसका काले पानी पर पहले वास्तव्य था। अत: वही कोल्हू, जो बंदीपाल ने कठिन से भी कठिन काम के रूप में उसे दिया था, उसे बाएँ हाथ का खेल लगने लगा। पहले ही दिन उस मेट के हाथ में रफीउद्दीन के हाथ चलाते-चलाते 'हलदी की एक गाँठ' चुपचाप देते ही उनकी पुरानी यारी नई, तरोताजा बन गई और रफीउद्दीन कुंडली मारकर बैठा इतमीनान से गप्पें हाँकते रहने लगा। उसके स्थान पर वह मेट किसी अन्य कैदी को झाँसा-पट्टी देकर चोरी-छिपे लगाता। शाम ढलने से पहले रफीउद्दीन के हिस्से का तेल पूरा-पूरा रफीउद्दीन के नाम पर नाप-तोलकर दे दिया जाता। यह कार्यक्रम तीन-चार दिन तक चलता रहा।

इस दंडित मेट के अधिकार में जो दंडित वॉर्डर थे, उनमें जोसेफ उसका बड़ा मुँह-लगा बन गया था, क्योंकि वह उसे चोरी-छिपे बड़े-बड़े लोटे भर-भरके दही ला देता। बंदियों को हफ्ते में दो बार दही मिलता। उसका बँटवारा होते ही इस इमारत के कैदियों के हिस्से का सारा-का-सारा दही जोसेफ डाँट-डपटकर, डरा-धमकाकर छीन लेता और वह उस मेट को दे देता। वह छपरी की ओट में बैठकर गुपचुप उसे गटक लेता। इस जोसेफ को जेवर और पैसे हड़प लेने के लालच से अपने दोनों नन्हे-नन्हे सालों को बहला-फुसलाकर भोजन के लिए घर बुलाकर भोजन में विष मिलाकर उन्हें जान से मारने के घोर अपराध के लिए आजन्म कारावास हो गया था। और यह मेट जलनवश कुल्हाड़ी से अपनी बीवी की बोटी उड़ाने के अपराध के लिए पिछले दस वर्षों से काला पानी, आजन्म कारावास का दंड भुगत रहा था। इस प्रकार मेट तथा जोसेफ वॉर्डर की अनूठी जोड़ी थी। इस इमारत में कोल्हू के बैल बनाए गए चालीस-पचास बंदियों को धता देकर निकालने का काम और साम-दाम-दंड-भेद किसी भी उपाय से उनसे तेल पिसवाने का दायित्व इस जोड़ी पर होता। जो पैसे खिलाते अथवा अत्यंत धृष्ट इस मेट के दास होते उन्हें आराम से बैठाया जाता और उनके काम की कसर उनकी तुलना में सुशील, कायर, सहिष्णु कैदियों से कलेजा तोड़-तोड़कर मेहनत करवाकर पूरी की जाती।

मेट के सारे कर्मों की सहायता करने के कारण उसका जोसेफ पर पूरा-पूरा विश्वास था। वह उससे कुछ भी नहीं छिपाता। हाँ, छिपाना भी मुश्किल था। रफीउद्दीन ने जोसेफ को भी भरपूर तंबाकू तथा कभी-कभी जरा सी सरसों जितनी अफीम की गोली चटाकर वश में किया था। लेकिन जोसेफ कभी इस बात को

भुलाता नहीं था कि वह मेट चाहे कितना भी प्रसन्न क्यों न हो, उसे वॉर्डर के ऊपर तरक्की देकर अपना नेता पद तो कभी अर्पित नहीं कर सकता। यह अनहोनी होनी में तभी बदल सकती है, जब वह बंदीपाल का कृपापात्र बन सके। अतः बंदीपाल की कृपा पाने के लिए जोसेफ सतत प्रयत्नशील रहता था। कारागृह में उसका तरक्की का प्रायः एक ही महापुण्यदायी साधन होता—चुगली खाना। इसके लिए कोल्हू की छपरी के उस मेट के अनेक दुष्कर्मों का कच्चा चिट्ठा, जिसमें अपने गुप्त व्यवहार का खास संबंध नहीं होता, जिसमें अपनी खास हानि नहीं होती, जोसेफ इस सावधानी के साथ और समय साधकर कि किसीको कानोकान खबर तक न हो, बंदीपाल के पास जाकर गुपचुप उसके कानों में उगलता था। 'ठठेरे-ठठेरे बदलाई' अर्थात् जैसे-को-तैसा वाले न्याय से ठगों के राज्य की व्यवस्था रखना अनिवार्य होने के कारण बंदीपाल साहब भी ऐसे जासूसों को हमेशा अपनी सहायतार्थ रखते। वह उन चुगलियों में से अनेक दुष्कर्म अटल समझकर पेट में रख लेता और जो बिलकुल ही अक्षम्य होते, उन्हें स्वयं जाकर अचानक रँगे हाथ पकड़ लेता। लेकिन इस अंदाज से कि बंदीवान सहसा इस बात पर गौर न करें कि जोसेफ जैसे एक निपुण जासूस ने ही यह चुगली खाई है और इस बात की पोल न खुले कि लोग जासूसी करते हैं, अन्यथा उनके समक्ष उन्हींपर भरोसा रखकर कोई भी माई का लाल कभी दुष्कर्म नहीं करेगा।

आठ दिन बाद दोपहर बारह बजे लेखालय के तमाम लेखक, गणक घर गए थे तब बंदीपाल असमय अकेले ही लेखालय में टपक पड़ा और उसके 'सिपाही' पुकारते ही पहरे पर खड़ा सिपाही भीतर आ गया।

''जोसेफ वॉर्डर को बुलाओ!'' बंदीपाल के यह आदेश देते ही सिपाही ने बंदीगृह में जाकर जोसेफ को बंदीपाल के पास भेजा और स्वयं बाहर पहरे पर जाकर खड़ा रहा।

''क्यों जोसेफ?'' बंदीपाल ने पूछा, ''तुम्हारी इमारत की छपरी में कोल्हू का काम कैसे चल रहा है? वह नया कैदी रफीउद्दीन अपने हिस्से का तेल पूरा करके देता है कि नहीं? उसकी किसीसे साठ-गाँठ तो नहीं हो रही?''

''हुजूर, अपना तेल वह पूरा नाप-तौलकर देता है...''

''ऐं? पहले दिन से ऐसा अड़ियल, जिद्दी दंडित भी पूरा काम करता है? सच बताओ, घबराओ मत।''

''सरकार, तेल तो पूरा-पूरा नापकर देता है लेकिन पूरा वह स्वयं नहीं निकालता। सुबह बंदीगृह का चक्कर लगाने का आपका समय जब तक नहीं टलता, वह ज्यों-त्यों करके कोल्हू खींचता है। लेकिन इसके बाद बैठा रहता है और उसका

काम कोई दूसरा कैदी दिन भर कोल्हू खींचकर पूरा करता है। वह मेट ही दूसरा आदमी देता है।''

''क्या?'' बंदीपाल ने त्योरियाँ चढ़ाईं, ''तुमने इतने दिन मुझे अँधेरे में क्यों रखा? फिर तुम्हें टोह लेने के लिए किसलिए रखा था?''

''क्षमा चाहता हूँ, हूजूर! पीछे एक बार मैंने ऐसे ही चुपचाप आपको सूचित किया था कि कुछ दंडितों को इसी तरह बैठालकर मेट दूसरा आदमी देकर काम करवाता है, परंतु आपने उसपर कान नहीं दिया, अतः अब भी मैं आपसे कुछ कहने से डरता था।''

''यह मेरी मरजी है, कब कान देना चाहिए और कब नहीं। जो सचमुच ही दुर्बल या सुधारणीय होते हैं, उनके सिलसिले में कभी अनुशासन में ढील भी चल सकती है—बस काम पूरा होने से मतलब है। लेकिन यह रफीउद्दीन—कई अधमाधम अपराधों का जनक है। उसपर काले पानी से भागा हुआ। उसका किसीसे भी गठबंधन नहीं होना चाहिए। बोलो, मेट उसे क्यों बैठाता है? वह उसके किस उपकार के बोझ तले दबा हुआ है?''

''सरकार, यह मैं अभी तक निश्चित रूप से समझ नहीं सका हूँ, अन्यथा वह रहस्य मैं आपको कब का बता देता। पर हो न हो, रफीउद्दीन ने मेट को पैसा खिलाया होगा।''

''पैसा? और रफीउद्दीन ने? सुबह-शाम स्वयं जाकर उसकी तलाशी लेता है न? मेरा ऐसा सख्त आदेश है।''

''जमादार कसके तलाशी अवश्य लेता है जी, पर यह सच है कि रफीउद्दीन के पास नकद नारायण जरूर हैं जो उसने कहीं छिपाकर रखे हैं। वरना वह मेट अपने पैसों से उसके लिए चोरी-छिपे बंदीगृह में तंबाकू और अफीम किसलिए ले आता है भला?''

''हाँ। और उसमें से कुछ तंबाकू और अफीम तुम्हें भी खिलाते होंगे, इसीलिए अभी तक तुमने मेरे पास उनकी चुगली नहीं की।''

''भगवान् कसम, सरकार! मैंने उसकी चुटकी भर तंबाकू को भी कभी छुआ तक नहीं जी! परंतु जब तक इसका निश्चित प्रमाण नहीं मिलता कि वह मेट को पैसा खिलाता है, मैं आपसे चुगली करता तो आप ही मुझे झुठलाते, इसलिए मैं उसपर सिर्फ नजर रखता था। मेट के पेट में घुसकर जल्दी ही सारा भंडा फोड़ दूँगा, हुजूर! शायद उनमें कल ही पुनः कुछ लेन-देन होनेवाला है। मैंने ऐसा कुछ छपरी की ओट में छिपकर सुना है। हुजूर, मुझे मेट से डर लगता है। आप मालिक मुझे मेट बनाएँगे न?''

"फिर तो तुम उस मेट से भी ज्यादा पैसे खाकर दुर्जन बनोगे। अच्छा, तुम सप्रमाण उस मेट को रफीउद्दीन से पैसे लेते हुए रँगे हाथों पकड़ा दो अथवा कम-से-कम यह तो बताओ कि रफीउद्दीन पैसे कहाँ छिपाता है। फिर मैं देखूँगा तुम्हारी तरक्की का। जाओ, अपना काम शुरू करो। हाँ, तनिक ठहरो, मैंने तुम्हें अकेले ही बुलाया, अतः बंदीवानों को तुम्हारे जासूस होने का संदेह होगा। इसलिए कुछ प्रकट काम लेते जाना। मेट को बताना, सरसों के तेल के तीन बड़े ड्रम्स अभी इसी वक्त भरो। तुरंत उन्हें मद्रास के जहाज पर चढ़ाना है। हाँ, यह लो चिट्ठी। अब जाओ, बताना कि इसीके लिए बुलाया था।"

प्रायः सभी बंदीगृहों में दोपहर बारह से दो का समय ढिलाई का होता है। सभी वरिष्ठ उत्तरदायी अधिकारी अपने-अपने घर जाते हैं। अतः सिपाही, बंदी अधिकारी (Convict Officers) अनुशासन की पाबंदी छोड़कर पाँव पसारे लेटते हैं। बस, उतनी ही व्यवस्था, अनुशासन और काम किए जाते हैं जो बिलकुल अपरिहार्य होते हैं।

इस समय हमेशा की तरह बंदीपाल कक्ष-कारागृह के महाद्वार के पास स्थित अपनी कोठी की खिड़की के निकट खड़ा था। इतने में उसने नीचे से जोसेफ वॉर्डर को अपने पास आते हुआ देखा। ऊपर से ही बंदीपाल ने उसे कोठी पर आने की आज्ञा दे दी। जोसेफ को पहरेदार सिपाही ने कोठी के भीतर जाने दिया।

आते ही बंदगी बजाकर जोसेफ ने कहा, "सरकार, अभी इसी वक्त चलेंगे तो मेट को रँगे हाथ पकड़ा जा सकता है। रफीउद्दीन ने मेट को सोने का सिक्का दिया, उसे मेट ने अपने कुरते के नीचे की पट्टी की गुप्त जेब में रखकर सी लिया है। रफीउद्दीन के बदन पर कम-से-कम और दो सिक्के हैं। मेट उसके लिए अफीम और तंबाकू ले आया। उसे भी सरसों के बोरे में फिलहाल ठूँसकर वे दोनों छपरी के पिछवाड़े की ओर किसीकी आड़ में लेटे लापरवाही से ऊँघ रहे हैं। मैं कपड़े धोने का बहाना बनाकर इमारत के बाहर खिसक गया और यह देखकर कि आसपास कोई नहीं, सीधा आपकी कोठी में आया हूँ। लेकिन मालिक, मेरा नाम मत लेना, अन्यथा वे किसी कैदी से मेरी खोपड़ी तुड़वा देंगे।"

"ठीक है। तुम चले जाओ। ये सारे लोग पकड़े गए तो तुम्हें तरक्की मिलेगी। तुम अपने काम पर चुपचाप उस छपरी में जाकर बैठ जाओ।"

जोसेफ के जाते ही बंदीपाल ने जमादार को अपने साथ ले लिया और हमेशा की नीचेवाली राह छोड़कर ऊपर टावर की तीसरी मंजिल के चक्कर में आया। संपूर्ण इमारत के दरवाजे जो उस गोलाकार टावर में लगे हुए थे उनमें से, जिस इमारत में रफीउद्दीन था, उसकी तीसरी मंजिल का द्वार ऊपर ही खोलकर वह

बंदीपाल अचानक नीचे उस छपरी के आँगन में उतर गया। कोई उसे देखे न देखे, इतने में ही वह झट से उसके पीछे उस आड़ की ओर चला गया। उसने देखा, जैसाकि जोसेफ ने कहा था, रफीउद्दीन और वह मेट ऊँघ रहे थे और रफीउद्दीन के कोल्हू को एक दूसरा ही बंदी—जिसे मेट ने धौंस देकर लगाया था—रुआँसा, पसीने से तर-बतर पैर से चलनेवाला कोल्हू घुमा रहा था।

"मेट!" बंदीपाल दहाड़ा।

मेट चौंकता हुआ हड़बड़ाकर उठ गया। उसकी टाँगें लड़खड़ाईं। चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। हाथ जोड़ता हुआ वह खड़ा रह गया।

"तुम्हारे पास कोई नियम जैसी चीज है? नहीं? उस कुरते में क्या सीकर रखा है? कुछ नहीं? जमादार, इसकी तलाशी ले लो। उस कुरते की नीचे की पट्टी फाड़ डालो।"

बंदीपाल उस जमादार के साथ बातें कर रहा था। इतने में रफीउद्दीन पीछे से ही खिसककर अपने कोल्हू के पास जाने लगा।

"ठहरो। ऐ बंदी—रफीउद्दीन! ठहरो। पकड़ो उसे।" दो-तीन वॉर्डरों ने रफीउद्दीन को रोका, जो बंदीपाल की आवाज को अनसुनी कर छपरी की ओर खिसक जाना चाहता था। वह खड़ा रह गया। लेकिन भय से बौखलाकर नहीं, बल्कि किसी बिफरे हुए सर्कस के शेर की तरह। अपनी संपूर्ण हिंस्र प्रवृत्तियाँ उछालकर, आँखें तरेरता, ऐंठता हुआ वह उन वॉर्डरों के, जो उसे रोक रहे थे, बीच-बीच में हाथ झटक रहा था।

जमादार ने मेट का कुरता फाड़कर पट्टी फाड़ डाली। सोने का वह सिक्का खनकता हुआ छन्न से नीचे गिर पड़ा।

"उस साले रफीउद्दीन की भी तलाशी लो।" बंदीपाल ने आदेश दे दिया। जमादार आगे बढ़ा। जमादार के बंदीपाल की तनिक आड़ में आते ही रफीउद्दीन ने अपनी अंटी में खोंसी हुई गिन्नी चालाकी से निकाली। उसके साथ ही जमादार चिल्लाया, "हुजूर! हुजूर! इसने अपनी टेंट में रखे पैसे हाथ में ले लिये हैं। सिक्के हैं हुजूर, इसके हाथ में। इस हाथ में। पकड़िए इसका हाथ।" जमादार वॉर्डर के हाथ से उलझते ही रफीउद्दीन ने चक्कर खाकर बंदीपाल की ओर पीठ करके मुँह में कुछ डाल लिया।

"इसने मुँह में डाल लिये सिक्के। जी हाँ मालिक, बिलकुल सिक्के ही थे। मैंने देखे। अभी इसके मुँह में हैं।" जमादार, वॉर्डर सब दावे के साथ चिल्लाने लगे।

बंदीपाल दहाड़ा, "मुँह खोलो, रफीउद्दीन, मुँह खोलो।"

एक-दो बार जमादार के हाथ झटककर गरदन को ऊपर-नीचे करने के

बाद रफीउद्दीन ने साफ और ठोस शब्दों में कहा, ''क्यों बिना वजह मुझ गरीब के पीछे हाथ धोकर पड़े हैं, इस धूर्त मक्कार की चुग़लियाँ सुनकर। यह देखिए—मुँह खोल रहा हूँ। आँ-आँ···क्या है अंदर? मुँह में सोने की गिन्नियाँ रखता तो क्या मैं बोल पाता?''

मुँह फाड़कर रफीउद्दीन जमादार को मुँह चिढ़ाने लगा। बंदीपाल के सामने खड़े होकर मुँह दिखाने लगा। 'जीभ ऊपर लो, पीछे करो, जबड़ा ठीक से पूरा खोलो।' वह वही करता गया जो बंदीपाल कहता गया। लेकिन उसके मुँह में कुछ भी नहीं मिला।

''क्यों जमादार? किधर हैं इसके मुँह में सिक्के?'' बंदीपाल ने पूछा।

जमादार खिसिया गया। अपना सा मुँह बनाकर वह बगलें झाँकने लगा। फिर भी तनिक हिचकिचाते हुए वह फिर वही बात दोहराने लगा।

''कुछ भी कहिए, हुजूर! इसके मुँह में जरूर कुछ था।''

''हाँ। कुछ-न-कुछ तो मेरे मुँह में था ही। है—अबी भी है—लेकिन वह कुछ है—सोने की टिकलियाँ जड़े मेरे दाँत। उनकी चमक-दमक देखकर तेरे जैसे घटिया, कमीने लोगों को वे सोने जैसे दिखाई देते हैं। अरे दुष्ट, पापी, आज या कल यही दाँत तेरा गला फाड़े बिना चैन से नहीं रहेंगे।''

रफीउद्दीन बेदरकारी से जमादार पर गालियों की बौछार करने लगा। पर बंदीपाल ने भी कच्ची गोलियाँ नहीं खेली थीं। यह देखते ही कि यह दुर्जन बेकाबू होने लगा है, बंदीपाल चिंघाड़ा, ''अभी इसी वक्त बेड़ियाँ ठोंको इसके हाथों में। देखते क्या हो? पकड़कर रखो यहीं पर। गरदन को झटके दे रहा था। तभी किसीको पता नहीं लगने देता। सबकी आँखों में धूल झोंकते हुए सिक्के निगल लिये होंगे इसने।''

रफीउद्दीन के हाथों में बेड़ियाँ कसवाकर बंदीपाल छपरी में गया और कोने में पड़ा सरसों से भरा बोरा उलीचकर देखने लगा तो अंदर एक बड़ी सी गड्डी और उसीमें अफीम की एक डिबिया निकली।

जोसेफ की दी हुई गुप्त खबर सोलह आने सच थी। दूर खड़ा होकर जोसेफ यह सारा तमाशा एक अजनबी की तरह देख रहा था। लेकिन इतने सारे घपले में ऐसा कुछ भी नहीं मिला, जिससे मुख्य अपराधी रफीउद्दीन फँस जाए। तथापि बंदीपाल को दो-तीन बार इसका अनुभव हो चुका था कि हजारों में इक्का-दुक्का बंदी इतना निडर, उद्दंड और शरारती होता है कि पकड़े जाने पर चीज निगलकर उसे गुम करना वह नहीं छोड़ता। इन्हीं अनुभवों के सहारे उसने हाथ धोकर रफीउद्दीन के पीछे लगने की ठान ली। मेट को अस्थायी रूप से पदच्युत करके उसपर

अभियोग लगाया। डॉक्टर को बुलाकर बंदीपाल ने जब रफीउद्दीन के सामने उलटी की दवा रखी, तो उसने वह प्याला दीवार पर दे मारा, और जैसे पागल हो गया। 'जबरदस्ती पिला दो।' बंदीपाल की आवाज लरज-गरज उठी। वॉर्डर, जमादार, सिपाही, लपककर आगे बढ़े। खींचातानी, लातें, घूँसे खाते-खिलाते धींगाधींगी करते-कराते आखिर रफीउद्दीन नीचे गिर गया। उसके हाथ-पाँव दबोचकर, मुँह में चिमटा ठूँसकर, उसका मुँह खुलवाकर आखिर उसे दवा पिलाई गई। पहरे बैठाए गए। शाम तक उसे दो-चार उलटियाँ हुईं, पर उनमें कुछ भी नहीं निकला। तब बंदीपाल भी, जो चट्टान की तरह अडिग था, तनिक सकपकाया, क्योंकि रफीउद्दीन को पैसे निगलते हुए उसने स्वयं अपनी आँखों से तो नहीं देखा था। रफीउद्दीन अब 'इस जमादार ने ही तोहमत लगाई है' कहते हुए जमादार को धड़ाधड़ गंदी-गंदी गालियाँ बकने लगा। लेकिन वॉर्डर भी, जिन्होंने पहले उसकी तलाशी ली थी, डंके की चोट पर शपथपूर्वक कहने लगे कि 'उसने सोने के सिक्के निगल लिये थे।' डॉक्टर की राय से भी उसे रेचक दवा देनी चाहिए, उससे कुछ गड़बड़ नहीं होगी, बल्कि पेट में सिक्के अटके रहे तो कैदी की जान को खतरा है। अत: रफीउद्दीन को फिर से जबरदस्ती नीचे गिराकर उसका मुँह खुलवाया गया और उसे दस्तावर दवा तब तक पिलाई गई जब तक वह पेट में तूफान नहीं उठाने लगी। उसकी कोठरी में हर बंदी की कालकोठरी में जो एक गमला रखा जाता है, उससे भी बड़ी मिट्टी की एक नाँद रखवाई गई। उसकी कोठरी पर पहरा बैठाकर कोठरी ताला-बंद की गई। डॉक्टर, बंदीपाल आदि सभी रात के नियमानुसार गिनती करने के बाद इमारत को ताला ठुकवाकर अपने-अपने घर चले गए।

वह रात रफीउद्दीन ने अत्यंत असहनीय तथा बेचैन अवस्था में करवटें बदल-बदलकर व्यतीत की। दस्त होते समय पेट के दर्द के कारण शरीर बेचैन होता है—वह बेचैनी तो थी ही। पर साथ ही दिन भर संत्रास तथा अन्याय की जो भरमार हो गई थी, उससे भी वह जल-भुनकर कबाब बन रहा था। भई, उसने पहले कभी अथवा अभी तक इस दुनिया को कुछ कष्ट दिया था अथवा दूसरे को कुछ परेशान किया था? इस प्रकार के प्रश्न उसके आसपास भी नहीं फटकते। उसकी इच्छा के खिलाफ कोई भी जो कुछ करेगा, जिससे उसे कष्ट पहुँचे—बस इतनी ही उसकी छल-पीड़ा विषयक धारणा थी। अन्याय वही है जो उसके विरुद्ध किया जाए। इससे अलग उन शब्दों का उसके कोश में कोई अर्थ नहीं था। वह जमादार उसे सिक्के छिपाते समय न भी देखता तो यह सारी रामायण ही क्यों होती भला? देखकर भी वह ससुरा यदि अपना मुँह बंद रखता तो सबकुछ ठीक-ठाक होता। उसपर भी बंदीपाल यदि उसकी ओर कान न देते हुए उसे अपनी इच्छानुसार जो किया है, वह

करने देता तो क्या बिगड़ता? अर्थात् ऐसा कुछ न करते हुए वह जमादार देखे, उसकी चुगली करे और बंदीपाल उसे इस वजह से तंग करे, उसकी तंबाकू-अफीम पर बंदिशें लगाए, उसके सिक्के पकड़वाने की गुंडागर्दी करे! कितने मक्कार हैं ये लोग! तमाम लोग अन्यायी हैं, जल्लाद हैं। मुझे अकेले को पकड़ा, गिराया, रुई की तरह मेरी धुनाई की और दवा पिला दी मुझे। ये ही विचार आँवे के समान धधकते, भाँय-भाँय करते उसके दिमाग में निरंतर मँडरा रहे थे। तीव्र संताप, संताप और संताप से वह आग-भभूका हो गया था। उस जमादार और इस बंदीपाल का गला घोटूँ या उनका खून पी जाऊँ! पर इसका क्या उपाय? फिर भी प्रतिशोध अवश्य लेना चाहिए। कोठरी बंद करते समय जमादार ने उसके हाथों की हथकड़ी निकाली हुई थी। पर खाली हाथ क्या खाक करेगा? अरे हाँ, लाहौर के बंदीगृह में उस नूर मोहम्मद ने जो किया था। बस, मैं भी प्रतिशोध के लिए वही करूँगा जो उसने अपना स्वाँग सिद्ध करने के लिए किया था। यंव रे यंव्। अब दरवाजा खोलने सवेरे आने दो उस जमादार को। बंदीपाल और डॉक्टर भी उसी समय आ जाए तो सोने पे सुहागा। दस्त लाने की दवा देता है सा···ला मरजादा। हा: ! हा: ! हा: ! कैसी मुँह की खानी पड़ेग एक-एक को कि यंव रे यंव्।

उसने इस तरह प्रतिशोध की योजना बनाई जो साध्य होते ही उसके अपमान का परिशोध होकर उस पुष्ट जालिम जमादारादिकों की जो दुर्गत बनेगी, उसका चित्र उसे अभी दिखाई देने लगा, जैसेकि अभी-अभी वह हो चुकी है। इससे संतुष्ट होकर अपने आप हँसते-हँसते उसके पेट में बल पड़ गए।

बंदीगृह में हजारों में एकाध अघोर दंडित जब कभी इस तरह कोई गलत चीज निगलता है और उसे दस्त की दवा जबरदस्ती पिलाई जाती है, तब सवेरे उसकी कोठरी स्वयं अधिकारी खोलते हैं और मेहतर द्वारा उसके दस्त की नाँद की तलाशी ली जाती है। इसका निरीक्षण किया जाता है कि वह चीज पेट से बाहर निकली या नहीं। इस रिवाज के अनुसार मेहतर के साथ जमादार और दो वॉर्डर सवेरे-सवेरे रफीउद्दीन की कोठरी के पास आ गए। सीखचों से ताला निकालकर जमादार भीतर कदम रख ही रहा था कि रफीउद्दीन ने पानी पीने का लामलोट तड़ाक् से जमादार के मुँह पर दे मारा। उस टंबलर में उसने दस्त किया था। वह सारा मैला जमादार के मुँह पर, आँखों पर, मूँछों, कपड़ों पर फव्वारे जैसा गिरा और जमादार का पूरा बदन मैले से लथपथ हो गया। उसका दम घुटने लगा। उसे मतली-सी होने लगी। वह एकदम 'छी:-छी:-छी:' चिल्लाने लगा और वह अघोरी रफीउद्दीन 'हा:-हा:-हा:' करके ठहाकों-पर-ठहाके लगाने लगा।

"अबे पाजी, भंगी की औलाद! मेरे पेट का सोना जो चाहिए था तुझे। ले

यह सोना—इसे खा-पी। इस सोने में जी भरके सराबोर कर दूँगा तुझे। हरामी…''
रफीउद्दीन गिन-गिनकर गंदी, मल्लाही गालियाँ बकते हुए एक कोने के सहारे उस टंबलर को ऊपर उठाकर कुंडली मारकर बैठ गया।

शर्म, तीव्र संताप तथा गंदगी से बौखलाया जमादार चिल्लाया, ''अरे देखते क्या हो? वॉर्डर, बाहर खींच लो सूअर को!'' वॉर्डर लपककर धावा बोल ही रहे थे, लेकिन एकदम ठिठक गए। इतने सारे लोग होते हुए भी किसीकी उसे छूने की हिम्मत नहीं हो रही थी, क्योंकि उस बेशरम पशु ने एक विलक्षण, गंदी, घिनौनी युक्ति पहले से ही आयोजित की थी, ताकि कोई भी उसे छूने का साहस न करे। उसने अपना पूरा बदन अपने ही मैले से लथपथ कर रखा था! उन वॉर्डरों को उस गंदगी से घिन आ गई और उससे बचने के लिए वे रफीउद्दीन से लिपटने में झिझक रहे थे। क्रोधावेश में अपना ही डंडा रफीउद्दीन के सिर पर मारने के लिए जमादार लपका। लेकिन इस भय से कि कहीं इस बंदी की खोपड़ी फूट गई तो बेकार लेने के देने पड़ेंगे, उसने अपने क्रोध पर काबू पा लिया। वह इसलिए ठिठक गया कि रफीउद्दीन पर वह केवल हाथों से अकेला काबू नहीं पा सकेगा।

बंदीपाल आ ही रहा था। तभी यह सारा हल्ला-गुल्ला सुनकर वह सिपाहियों के साथ-साथ भागा-भागा आ गया। सारा मामला देखकर वह क्रोध से भूत बन गया। उसने अपनी भारी-भरकम सोटी, जिसकी सीसे की ठोस मूँठ थी, रफीउद्दीन के सिर पर दे मारी। रफीउद्दीन ने भी टंबलर का मैला बंदीपाल पर फेंका—इसके साथ ही जमादार, सिपाही सभी उसपर टूट पड़े। दनादन डंडे बरसने से रफीउद्दीन नीचे ढेर हो गया और जोर-जोर से गुरगुराने लगा—''हाथ मत उठाओ हुजूर, तुम्हें कैदियों को मारने का हुक्म नहीं है। बंदीगृह का नियम तोड़ रहे हो तुम! यह सरासर अन्याय है, अन्याय। दगाबाज, कपटी! कसाई, तुम सब लोग कायर हो।''

''अरे सूअर की औलाद''—बंदीपाल दहाड़ा, ''अब तुझे बंदीगृह के नियमों की याद आ रही है अं? लोगों की गरदनें खट से काटनेवाले राक्षस, अपनी गरदन मरोड़ी जाते ही तुझे न्याय-अन्याय का अहसास होने लगा अं? दगाबाज! यह एक गाली है! अब तेरी समझ में आया? ठोंको—चिंता नहीं अगर मर भी जाए। पशु—गंदगी का कीड़ा।''

रफीउद्दीन अब वाकई ढीला हो गया था। वह हाँफता हुआ बैठ गया।

मेहतर ने रफीउद्दीन की नाँद में पड़ा दस्त बंदीपाल के सम्मुख उँडेलकर देखा कि उस गंदगी में रफीउद्दीन के पेट से कोई निगली हुई चीज तो नहीं निकल आएगी। रफीउद्दीन को यह भय बिलकुल नही था कि उसमें से कुछ इनके हाथ लग जाएगा, क्योंकि उसने कोई सिक्का-विक्का निगला ही नहीं था। बंदीपाल की

फजीहत देखकर बल्कि उसके दिल में लड्डू फूट रहे थे, उस तरह घायल, जख्मी अवस्था में भी उस निघरघट सूअर ने गंदे ओछे मनोविनोद के साथ व्यंग्य किया—

''क्यों? सोना भी नहीं निकला मेरे पेट से? लो, तुम सब बाँटकर ले लेना मेरे पेट का यह सोना चाहे जितना।''

डॉक्टर भी खिसिया सा गया।

''व्यर्थ इसे परेशान किया। पर्यवेक्षक महाशय (सुपरिंटेंडेंट) नाराज तो नहीं होंगे? लगता है इसने कुछ भी निगला नहीं है।'' बाहर आते हुए डॉक्टर ने अंग्रेजी में बंदीपाल से कहा। लेकिन बंदीपाल ने व्यर्थ भाड़ नहीं झोंका था। उसने दृढ़तापूर्वक कहा, ''वह जिम्मेदारी मेरी है। आप मनुष्य के स्वास्थ्य के बारे में जानते हैं, न कि राक्षस अथवा किसी जंगली सूअर के। आप जैसे इस इलाके में नई-नई नौकरी करनेवाले डॉक्टरों को ठीक से प्रतीति नहीं कि बंदीगृह की दुनिया क्या चीज होती है। इसे फिर एक बार उलटी की दवा पिलानी होगी।''

''क्या कहा? उलटी की दवा? मगर उसका कोई फायदा नहीं। इसके पेट में सिक्का वगैरह कुछ भी नहीं होगा, वरना पहली बार ही उसका जी मिचलाता।''

''भई पेट में तो नहीं है। लेकिन ठहरो, देखकर बताता हूँ कि निश्चित रूप में कहाँ हैं।'' इतना कहते हुए बंदीपाल ने जमादार को आदेश दिया, ''हाँ। इसकी हथकड़ियाँ ठुकवा दो और इसकी धुलाई करो।''

उसकी बात समाप्त होते-न-होते ही रफीउद्दीन फिर उफन पड़ा। उसने बिफरकर कहा, ''क्या कहा? भंगी से मेरी धुलाई? क्या मैं किसी पाखाने का फर्श हूँ? मेरी जात-पात डुबाओगे? मैं उस मेहतर की जान ले लूँगा। तुम साब नहीं हो, किसी भंगी—मेहतर की औलाद...''

यह अपशब्द सुनते ही पुन: सभी ने लात-घूँसों से उसका ठौर-ठौर तोड़ दिया। बंदीपाल ने पूरी ताकत से उसकी हँसलीवाली पसलियों को दबोचा कि रफीउद्दीन के मुँह से एकदम चीख निकली। डॉक्टर घबराया। उसने आगे बढ़कर बंदीपाल का हाथ पकड़कर उसे एक तरफ खींच लिया और समझाया, ''यह क्या कर रहे हैं? गुस्से में कहीं इसका गला घोंटकर इसकी जान तो नहीं ले रहे थे? भई, लेने के देने पड़ जाएँगे।''

''देना तो नहीं पर लेना तो सचमुच पड़ेगा ही।'' अब बंदीपाल मुसकराया, ''डॉक्टर साहब, इसमें कोई संदेह नहीं कि इसके गले में खाँच है जो पूरी तरह से भरी हुई है। इसीलिए तो मैंने इसका गला दबाकर देखने का मौका ढूँढ़ा, आई बात समझ में? वह खाँचा दबाते ही अंदर की चीज इसे अचानक चुभ गई, इसीलिए तो चीख मारकर बार-बार यह उसे निगल रहा था और मुँख-स्नायुओं द्वारा उसे दबा

रहा था। इसे जोरदार उलटी की दवा दो, ताकि वह 'खाँच' खुल ही जाय।''

''लेकिन यह 'खाँच' क्या बला है, भई?'' डॉक्टर ने जिज्ञासावश पूछा।

''संक्षेप में समझाता हूँ। पशु जुगाली करने के लिए गले के जिस थोथे स्थान में चर्वित घास जमा करते हैं उसी तरह का पोला, खोखला स्थान मनुष्य भी अपनी उसी जगह पर बना सकता है। जो परले दरजे के बावन गजे अपराधी होते हैं, वे गुरु-परंपरा से इस विद्या में निपुण होते हैं। सीसे की एक गोली लेकर उसपर एक ऐसा रसायन लगाते हैं जिससे वहाँ का मांस जल जाता है और उस गोली को वह अपने मुँह में रखते हैं। काफी दिन गले के कान की ओर वाले कोने में वे उसे इस तरह गड़ाते हैं कि उसके वहाँ लगातार रहने से वह गोली वहाँ खाली स्थान बना लेती है। कई लोगों को यह पूरी तरह साध्य नहीं होता। उनके गले में उथला छेद होता है; बस दुवन्नी-चवन्नी भर के लिए ही। लेकिन जिन्हें यह पूरी तरह साध्य होता है, उनके गले में बड़ा सा गड्ढा हो जाता है। एक जादूगर जब अपने मुँह से नाना चीजें निकालकर दिखाता है तो वे इसी खाँचे में जमा की हुईं चीजें होती हैं। उलटी के कारण उन्हें ऊपर न आने देना केवल मँजे हुए दंडित ही रोक सकते हैं। लेकिन स्नायु थक गए तो उस दबाव के साथ वे चीजें ऊपर आ सकती हैं। मैंने दो-तीन बार इस बात का अनुभव किया है। मैं तब तक इसका पीछा नहीं छोड़ूँगा जब तक मेरे संदेह का ठीक निरसन नहीं होता। अब उलटियाँ होने पर भी वे सूखी ही होंगी। इसकी दमन शक्ति भी जवाब देने लगी है। जिम्मेदारी मैं लेता हूँ। मेरा आदेश मानकर इसे दवा पिलाओ।''

डॉक्टर 'हाँ-ना' करते-करते पुनः उलटी की दवा पिलाने के लिए राजी हो गए। लेकिन दवा लाने जाते हुए वह मन-ही-मन कहने लगा, 'यह बंदीपाल भी घनचक्कर है जो अपनी जिद पर उतर आया है। बेकार उस अपराधी को इतनी यातनाएँ दिए जा रहा है। कहता है, गले में सिक्के होते हैं। कल यह मुझे यह भी समझाने की धृष्टता कर सकता है कि दंडित की छिगुनी में प्याज का बोरा छिपा हुआ है। आखिर फजीहत इसकी ही होगी।'

उलटियों की दवा सबने मिलकर रफीउद्दीन को फिर से पिलाई। कुछ ही देर बाद उस दुष्ट को फिर से जोर-जोर से सूखी उलटियाँ होने लगीं। उसकी सारी आँतें तन गईं और वह हिम्मत हारने लगा। इतने में ही बंदीपाल ने रफीउद्दीन के गले की पसलियों को कनपटी के नीचे दोनों ओर जोर से दबोचा और वही अंगलियाँ धीरे-धीरे ऊपर सरकाने लगा, तो एक ही धचके के साथ उसके मुँह से तीन, चार, पाँच सिक्के खनकते हुए धरती पर गिर गए और अफीम की छोटी सी एक डिब्बी।

''सिक्के! सिक्के! उखड़कर गिर गए सिक्के।' डॉक्टर, वॉर्डर, सिपाही

सभी ने कोहराम मचाया।

लेकिन सबसे अधिक खुशी से पागल हुआ वह जमादार। उन सिक्कों की सुख प्रसूति देखकर उसे पुत्र-जन्म की खुशी हुई। उसपर झूठ बोलने का इलजाम जो आनेवाला था सो टल गया, बल्कि अब वह एक ऐसा निपुण जमादार सिद्ध होनेवाला था जो अपराध पकड़ता है।

आज तक रफीउद्दीन खाँचे में सिक्के भर-भरकर ले जाता। उन्हीं सिक्कों के बल पर वह कई बंदीगृहों में जीवित भी रहा और चैन की बंसी बजाता रहा। परंतु अब पहली बार ही कारावास में उसके हाथ-पाँव फूल गए। वह हिम्मत हार बैठा। बंदीगृह में इस प्रकार के पाँच सिक्के पाँच लाख के बराबर समझे जाते हैं, क्योंकि चुटकी भर तंबाकू बंदीवानों की दुनिया का एक रुपया होता है। एक रुपए से जो काम बाहरी दुनिया में करवाया जाता है, वह चुटकी भर तंबाकू से तथा सौ रुपयों में जो काम बाहर करवाया जाता है, वह सरसों जितनी अफीम की एक गोली से बंदीगृह में करवाया जा सकता है। इस प्रकार 'एक चुटकी एक रुपया' के भाव से पाँच सिक्के उसके पाँच हजार रुपए थे। इनके बलबूते वह स्वयं तिनका तक न उठाते हुए पचास बंदीवानों को अपने निजी सेवक बनाकर पाँच साल तक इस कक्ष-कारागृह में अपनी रईस गृहस्थी बसानेवाला था। परंतु अब वह निष्कांचन कौड़ी-कौड़ी के लिए मोहताज बना दिया गया। अब इधर इसकी क्या साख होगी? आज पहली बार उसका दिल इतना छोटा हो गया। और तो और, उस दिन किए गए समूचे आततायी दुराचरण के संदर्भ में जो अभियोग उसपर लगाए गए थे, पर्यवेक्षक महोदय ने मुकदमे का निर्णय देते समय बंदीगृह के नियमानुसार उसे तीस कोड़ों की सजा सुनाई थी।

कोड़े शब्द सुनते ही रफीउद्दीन का दिल धकधकाने लगा। हिंस्र जानवरों की तरह हिंस्र पशुतुल्य मनुष्य भी यदि किसी दंड से सचमुच डरते हैं तो शारीरिक दंड से, न कि मानसिक। मन अर्थात् मान के संदर्भ में डर उन्हें लगभग नहीं के बराबर होता है। हिंस्र जानवर हिलता है कोड़ों की फटकार से। हिंस्र श्वापद मनुष्य भी कोड़ों से ही हिलता है। उस बंदीपाल के अनुमान, जिसकी जिंदगी इस प्रकार के सैकड़ों अघोरी दंडितों को हिलाने में बीती है, रफीउद्दीन के संदर्भ में भी सही साबित होने के आसार नजर आने लगे। आजन्म कारावास की सजा वह हँसते-हँसते सुनता, पर कोड़े बरसाने की सजा सुनते ही आज पहली बार उसके बदन में डर के मारे एक सनसनी सी दौड़ गई।

कोड़े बरसाने की सजा लागू होने से एक रात पहले रफीउद्दीन की आँख बिलकुल ही नहीं लगी। कोड़ों की सटासट आवाजें उसे सुनाई देती रहीं। उसका जी

उड़ गया। तथापि अपने जैसे ही अघोरी आततायियों के संप्रदाय में उसने एक वैद्यशास्त्र सीखा था, जिसका उसे विस्मरण नहीं हुआ था। न ही उसपर से उसका विश्वास उठ गया था। उन अघोर आततायियों-दंडितों में यह धारणा प्रचलित थी कि कोड़े सहने से एक रात पूर्व यदि वह व्यक्ति अपना ही मूत पी ले तो उसका पूरा तन-मन सुन्न हो जाता है और उसके अनुसार वे 'ओखद'—'वह' दवा लेते हैं। यह सोलह आने सच है। रफीउद्दीन भोर होते ही उठ गया और उसने पानी पीने के टंबलर में अपना पेशाब घोलकर यथाविधि उसका पान किया। उसने कुरान की चंद आयतों-मंत्रों का भी उच्चारण किया और नमाज पढ़कर अल्लाह की प्रार्थना की, 'या खुदा! कोड़ों के आघात ऊपर ही झेल लो। चमड़े को मत जलाओ।' मनुष्य की तरह राक्षसों में भी एक भगवान् होता है। रफीउद्दीन ने जमीन को नाखून से कुरेदकर उस मंत्र द्वारा चुटकी भर मिट्टी भर ली और वह विभूति लगाई। फिर अल्लाह का अखंड जाप करते-करते वह उस कालकोठरी में तब तक चहलकदमी करता रहा जब तक पौ फटने का समय हुआ। भई, अल्लाह का नाम लेकर वह एक बड़े 'जिहाद' पर जो जानेवाला था।

परंतु यह सच है कि आततायी तथा आठों गाँठ कुम्मैत अपराधी ऐसी स्थिति में यही करते हैं। हम स्वयं ऐसे दो-तीन उदाहरणों से परिचित हैं, और यह भी सौ फीसदी सच है कि यमलोक सिधारना हो तो मखमली कालीन बिछे पलक-पाँवड़ों से ठुमक-ठुमककर नहीं जा सकते, नागफनी एवं सेमल के कँटीले जंगल में से ही राह निकालते जाना पड़ता है। भई, मरघट में डेरा डालना हो तो वहाँ जलती चिताएँ, हड्डियों के टुकड़े, पैरों को जलाती गरम राख, तड़ातड़ फूटती कपालों के स्वर और भूतों की चीखें ही संगी-साथी होती हैं। घोर भयानक निराशा ही यह। भई, यदि मन में यही जिज्ञासा ठाठें मार रही है कि मानवी मन का काला पानी क्या चीज है तो उस काले पानी का वही यथार्थ रूप दिखाना चाहिए जैसे होता है। उसके ऊपर यूँ ही शिष्टाचारस्वरूप गुलाब जल छिड़का तो वह घोर वंचना होगी। गुलाब जल उस काले जल की विडंबना है, न कि शोभा।

"अल्लाह। तू रहीम। या खुदा, तू बड़ा दयालु है।" इस प्रकार नामघोष करते उस कालकोठरी में चक्कर काटते-काटते उन मंत्र-तंत्रों से भी रफीउद्दीन का तनिक ढाढस बँध गया। इतने में सिपाही ने आकर खड़ाखड़ दरवाजा खुलवाया। बंदीशाला के बीचोबीच चौक में उसे इस तरह खड़ा किया गया कि उस इमारत के सभी कैदी उसे देख सकें। तीन भारी-भरकम लकड़ियों का एक तिकोन होता है, जिसे 'तिखूँटा' कहा जाता है। उस तिखूँटे को इधर लाया गया, उसे सीढ़ी पर चढ़ाया गया, फिर रफीउद्दीन को उसपर झुकाया गया, उसका मुँह मोड़कर उसे बाँधा

गया। उसकी दोनों टाँगें दोनों ओर स्थित उन कड़ियों में उलझाई गईं। उसके हाथ ऊपर उठाकर उन्हीं दो लकड़ियों के ऊपर के छोरों पर लोहे की दो दूसरी कड़ियों में बाँधे गए। गरदन एक पट्टे में फँसाई गई।

एक थाली में जंतुघ्न दवा तथा कोड़े मारना समाप्त होते ही घावों पर लगाई जानेवाली मरहम-पट्टियाँ लेकर औषधालय का मिश्रक (कंपाउंडर) तथा उसके पीछे-पीछे डॉक्टर भी वहाँ आ धमके। सिपाही पंक्ति में खड़े हो गए। बदन पर मात्र लँगोटी छोड़कर रफीउद्दीन को सिर से पाँव तक नंगा किया गया। उसने मुँह से चूँ तक नहीं किया। उसकी वह उद्दंड-उजड्ड आदत जो हमेशा फन उभारकर फुफकारती थी, न जाने कहाँ गायब हो गई। यद्यपि वह चेतनाशून्य अवस्था में अपनी दुर्दशा निहार रहा था, तो भी कट्टर दुश्मन बने उस जमादार से, जो सारी व्यवस्था खड़ा रहकर करवा रहा था, उसने एक शब्द भी नहीं कहा। वह बोल ही नहीं सका।

ढन ढन ढन···।

घंटी बजने लगी। तत्काल टपटप जूते चरमराते टावर में बैठा बंदीपाल वहाँ उपस्थित हुआ। उसके पीछे कोड़े बरसानेवाला वह व्यक्ति जिसके बदन पर केवल जाँघिया और जैकेट ही था, जिसके बाल बिखरे हुए थे, भुजाओं के स्नायु मजबूत, ऐंठे हुए तथा पपोरे हुए थे, उसके हाथों में बेंत की मोटी सी छड़ी थी।

रफीउद्दीन की पीठ थी। उसे दिखाई नहीं दिया, परंतु उसे ऐसा ही आभास हुआ कि वह थरथर कँपकँपाया।

'मारो' बंदीपाल की गरजती-लरजती आवाज गूँज उठी। उसके साथ ही रफीउद्दीन को अहसास हुआ, जैसे वह बेंत ही उसके कूल्हों पर सटका है। वह घिघियाते हुए कहने लगा, "आहिस्ता हुजूर, आहिस्ता! कम-से-कम हलके से तो मारो।"

हाथों में पकड़े बेंत को आगे बढ़ाते और उसे सिर के इर्दगिर्द घुमाते हुए कोड़ेवाले ने निशाना लगाया। "एक!" बंदीपाल दहाड़ा, और फट् से रफीउद्दीन के कूल्हों पर बेंत सनसनाया।

"अय्याया···" रफीउद्दीन भी चीख उठा।

"दोऽऽ!" कोड़ेवाले ने फिर पूरी ताकत लगाकर दूसरा बेंत जमाया। रफीउद्दीन गाय-भैसों की तरह बँबाने लगा। आसपास के बंदीवानों के बदन भी बाँस की तरह थरथर काँपने लगे। कइयों को तो तरस आ गया। उनमें कंटक भी था। परंतु साथ ही उसे यह भी याद आ गया कि यही है वह रफीउद्दीन। कुल्हाड़ी से मनुष्य को ऐसे चीरता था जैसे लकड़ियाँ चीर रहा है। वही नृशंस नर-राक्षस जो

साल में कम-से-कम एक युवा लड़की की जान लेता था।

''तीन! चार! पाँच! छह… !''

बेंत की हर फटकार के साथ रफीउद्दीन के कूल्हों से खून के फव्वारे छूटने लगे और मांस का भूसा बिखरने लगा। कभी वह रंभाने लगता तो कभी 'छोड़ो जी, मैं पैरों पड़ता हूँ।' इस तरह दहाड़ें मार-मारकर रोने लगता और कभी उस जमादार तथा बंदीपाल को माँ-बहनों की बीभत्स, घिनौनी गालियाँ बकने लगता।

''सात! आठ, नौ, दस।'' बेंतों के पीछे बेंत सटकारते जा रहे थे, जो मांस में धँस रहे थे। रफीउद्दीन निढाल होकर अर्धमूर्च्छित हो गया। कुचला हुआ साँप जिस प्रकार डंडे का स्पर्श पाते ही कुछ देर तक कुलबुलाता है, उसी तरह बेंतों की फटकार के साथ उसके मुँह से चीख निकलने लगी। मारते-मारते उसका कचूमर निकाल दिया गया।

''अट्ठाईस! उनतीस! तीस!''

तीसवाँ कोड़ा मारते ही कोड़े मारनेवाला ही बेंत छोड़कर पसीने से तर-बतर हाँफता हुआ धम् से नीचे बैठ गया। वह भी थककर इतना चूर हो गया।

डॉक्टर झट से आगे बढ़ा। उसने तिखूँटे से छुड़ाकर नीचे औंधे लिटाए गए लहूलुहान रफीउद्दीन की नब्ज टटोली, सिर्फ यह देखने के लिए कि वह जिंदा है या नहीं। फिर उसे उसके घावों पर तात्कालिक मरहम-पट्टी लगवाकर बंदीगृह के रुग्णालय की एक कालकोठरी में ले जाया गया और कोठरी को ताला जड़ दिया गया।

उस रात घावों में तीव्र वेदना तथा जलन से रफीउद्दीन को तेज बुखार चढ़ गया। बुखार बढ़ने से मज्जा केंद्र (Brain Cells) भी उत्क्षुब्ध होते हैं। उस मज्जा केंद्र में विचारों के झटके से जिसे अचानक छेड़ा जाता है, उसकी चित्रावली (Film) तत्काल इतनी उत्कटता के साथ प्रकाशित होती है कि वह प्रत्येक घटना मूर्च्छित जीव को सजीव रूप में प्रतिभासित होती है। इतने में ही उस विचार संबंध द्वारा दूसरा मज्जापिंड विचलित होता है और वह उसका चित्रपट शुरू करता है। देश-काल क्रम का अभिज्ञान ही वह स्थिर नहीं कर सकता। उस योग से स्मृत घटना भाव-भावनाओं का अजीब सा मिश्रण होकर अनेक असंभवनीय दृश्य प्रत्यक्ष रूप में प्रतिभासित होने लगते हैं। रफीउद्दीन की ठीक वैसी ही हालत हो गई।

बुखार चढ़ने के बाद जब तक वह साधारणत: होश में था, तब तक घावों की पीड़ा की ठनक से कराह रहा था। उस समय उसे इस बात का बार-बार तीव्र पछतावा हो रहा था कि अपने कुकर्मों के कारण ही उसने अपनी यह दुर्गत बना ली है। पूरे जीवन में पहली बार उसे पश्चात्ताप हो रहा था। यद्यपि उसे इस बात का रत्ती

भर भी पछतावा नहीं हो रहा था कि उसने पाप किया ही क्यों, तथापि उसे इस बात का अवश्य खेद होने लगा था कि पाप हजम होते ही उसका त्याग क्यों नहीं किया? अपच, बदहजमी होने तक उसने आततायी मार्ग को क्यों अपनाया? विवेक उससे कह रहा था—काले पानी से भागकर आए, स्वदेश पहुँचे। फिर डाका, लूटपाट करके अपार धन जोड़ा। असंख्य इंद्रिय भोग किए। यहाँ तक जो कुछ किया ठीक ही किया, लेकिन आगे हाथ खींचकर जो कमाया उसीमें संतोष मानकर कहीं दूर किसी इलाके में सुस्थिर जीवनयापन करता तो आजीवन संकट से मुक्त रहता। अपने उस विचित्र विवेक द्वारा उसने अपनी गलती इतनी ही महसूस की कि काफी सारा पैसा और ऐयाशी के कारण समाज पर अनन्वित अत्याचार करते-करते जिस समय वह उस बिहारी युवती को भगाकर बागलोण आकर छिप गया, उसी समय उसे चाहिए था कि वह इन भयंकर उत्पाती दुष्कर्मों को हमेशा-हमेशा के लिए अलविदा कर देता। उस युवा स्त्री और उस धन-दौलत को लेकर सिंध के आसपास कहीं एक सज्जन की तरह नियंत्रित रूप में भोग करते हुए शांतिपूर्ण जीवन बिताना चाहिए था। मन की भाषा में अपने कृत्यों को वह कुकर्म भी कहता गया। जैसे-जैसे ज्वर की ग्लानि तथा जलन बढ़ने लगी, वैसे-वैसे ही उसके चित्त में अंतिम विचार कोहराम मचाने लगा।

''हाय हाय! उस बिहारी को, बिहार की उस खूबसूरत लौंडिया को ही कायदे से निकाह करके बीवी बनाकर मजे से घर क्यों नहीं बसाया मैंने? हाय! हाय! मैंने उसे सैलाब में क्यों फेंका? हाय! पानी में दम घुटकर उसकी जान गई। हाय! सिर तड़ाक् से चट्टान से टकराया। फूट गया। ओ माँ! कितनी भयानक पीड़ा!''

फिर कराहते, बड़बड़ाते, ग्लानि की अवस्था में ही कुछ देखते हुए, उसके दिमाग में गुलाम हुसैन की स्मृति का केंद्र कहीं से उभर आया···

''हरामी कुत्ता···! ऐ दुष्ट! मेरी मालती मुझे वापस दे दे। अपनी अमानत के तौर पर उसे तुम्हारे पास रखा था।···वह मेरी है···मेरी है···तेरे बाप ने रखी है। गुलाम, देते हो कि नहीं? मारो-पीटो···मेरी टाँग खिंची! हाय-हाय! मैं मर गया रे, मर गया!''

···फिर वह जाग गया। तेज बुखार से वह जल रहा था। ग्लानि में गुलाम हुसैन से जो मुठभेड़ हुई थी, उसे याद कर तैश में उसने पैर पटके। उससे उसके घाव को झटका लगने से वह तड़प उठा। उसे वही बातें याद आती रहीं। मालती को गुलाम हुसैन ने नहीं भगाया? कहाँ होगी वह? हाय-हाय! क्या उसने नहले पे दहला नहीं मारा। अपने पिंजरे में ही कैद करके रखा होगा मेरी मैना को!

मथुरा में उस रात मालती को रफीउद्दीन ने गुलाम हुसैन के घर जो

छिपाया, उसके बाद वह नहीं जानता था कि उसका क्या हुआ। और किशन को, जो उसके साथ था और जिसे हत्याओं, डकैती के षड्यंत्र के मुकदमे से निर्दोष मुक्त किया गया, उसकी भी वही अंतिम जानकारी रफीउद्दीन को थी। वही विचार उसके मन में अब निरंतर मँडराने लगे और उसे ग्लानि और वात का झटका आने लगा।

'मालती का क्या हुआ होगा? गुलाम हुसैन के जनानखाने में, हाँ जनानखाने में ही। लेकिन मालती-ती आँ? लाहौर में? इधर बाजार में…कहाँ से टपक पड़ी?'

वह फिर से अचानक बुखार की उत्क्षुब्ध ग्लानि में जैसे कोई एक ही विचार की ढलान से कुएँ में गिर पड़े, उसी तरह नीचे लुढ़कता चला गया।

…लाहौर के बाजार में खड़ी मालती पर अचानक नजर पड़ते ही जैसे उसने उसे कसकर भींच लिया, 'ओ, प्यारी मालती!' मालती ने भी जैसे तुरंत ही कहा, 'ओ प्यारे रफीउद्दीन! मुझे छोड़कर कहाँ गए थे प्रीतम?' गलबहियाँ डालती हुई मालती उसे कोठी में ले गई है, दरवाजा बंद किया, उसके सारे कपड़े उतारे, लेकिन इतने में उधर रखे एक बड़े से बक्से में से खट्‌ाक से छुरा निकालकर किशन बाहर निकला। बाप रे, दगा! दगा! इस दुष्ट स्त्री ने दगाबाजी की। इस हत्यारे किशन के बच्चे के हाथ मुझे क्यों सौंप दिया? हे चांडाल नारी, मालती, राक्षसी…

'चुप राक्षस! किशन, बाँध दो इसे तिखूँटे पर। बाँधो। मेरे आवेश का यह प्रमाण देखो। मैंने एक मजबूत, बटा हुआ बेंत बनाया है। किशन, जिस पलंग पर यह शैतान मेरे संग बैठना चाहता था, उसी पलंग का तिखूँटा बनाओ…'

पलंग अचानक तिखूँटा बन गया। मालती के आवेश का भयंकर बेंत बन गया। बात करते-करते स्वयं मालती एक कराल कृत्या बन गई—बाल बिखरे हुए, माथा सिंदूर से सना हुआ, मुँह से साँप जैसी लाल-लाल सुर्ख जीभ बाहर लपलपाती हुई। किशन ने रफीउद्दीन को तिखूँटे पर दृढ़तापूर्वक जकड़ लिया और आवेश के साथ उस बेंत को ऊपर उठाकर रफीउद्दीन के पीठ पर एक ही महाभयंकर सनसनाता कोड़ा बरसाया, जिससे खून का फव्वारा छूट गया।

'अब्ब! हाय-हाय! मैं पैरों पड़ता हूँ, मालती छोड़ो। आयय्याय्या, धीरे मालती! माफी-माफी-माफी…'

लेकिन मालती गिन-गिनकर मारती ही जा रही थी, वही रक्तरंजित कँटीले कोड़े।

''तीन! चार! पाँच! पचास! सौ!'' वात के झटके में वह स्वयं ही चिल्लाया—''सौ…''

□

प्रकरण–१३

नए उपनिवेश के लोग

''उषा, अरी ओ उषा! अरी, बोलती क्यों नहीं? उधर घर में क्या कर रही हो? तनिक इधर तो आ जाओ।''

एक पुरुष, जो उम्र के साठ साल पार कर चुका है, तथापि अब भी जिसकी बुलंद खनकती आवाज है तथा सुगठित, मजबूत डील-डौल—अपने सादा और संपन्न घर के सामने आँगन में बिछी खाट पर बैठा था। वह आँगन साफ-सुथरा, झाड़ा-बुहारा था तथा उसकी लीपा-पोती भी की हुई थी। खाट पर बैठते-बैठते ही वह अपनी सात-आठ साल की नन्ही सी पोती को अनुरोधपूर्वक बुला रहा था। आजकल दोपहर में उस आँगन में दो-तीन बजे छाँव आते ही वह उस खाट पर आकर बैठता। वह वृद्ध पुरुष उस खाट पर तब तक बैठा रहता, जब तक कामकाज को निपटाकर ढलते दिन के समय ढोर-डंगर, चौपाये खेत से, बच्चे स्कूल से तथा उसकी बहू—उन पोते-पोतियों की अम्मा—अपनी नौकरी से वापस नहीं आतीं। उस समय उसके संगी-साथी हुआ करते थे; उसका अपना पान-चूना, तंबाकू रखने का बटुआ और उसके दो नन्हे-मुन्ने पोता-पोती—उषा और बारह वर्षीय मोहन। वह उन दोनों को पढ़ाता; कभी कहानी सुनाता, कभी बीच में उठकर फूल-पौधों को झारी से पानी देता अथवा बौरे हुए आम-कटहल के मौसम के दिनों उस आँगन से सटकर जो बगान था, उसके पेड़ों की रखवाली करने में अपना जी बहलाता।

उसके घर के आसपास ही उसी प्रकार के करीब तीस-चालीस मकानों तथा उनसे भी सादगीयुक्त झोंपड़ियों का एक गाँव बसा हुआ था। यद्यपि यह गाँव अंदमान में स्थित था, तथापि वह महाराष्ट्र के समुद्र तट स्थित कोंकण प्रदेश के एक गाँव की प्रत्यक्ष प्रतिमा दिखाई देता था। आमतौर पर देखा जाए तो स्वयं अंदमान ही पूर्व-समुद्र स्थित एक प्रति-कोंकण है। वृक्ष, मौसम, पक्षी, फसलें प्रायः सभी

कोंकणी ठाठ-बाठ। यदि पश्चिम-समुद्र स्थित कोंकण तट को पल भर के लिए तह करके पूर्व-समुद्र तट पर उठाकर रखा जाए तो उस पूर्व-समुद्र में कोंकण का जो धुँधला सा प्रतिबिंब दिखाई देगा, वही अंदमान का स्वरूप है। कोंकण के जंगलों में मनुष्य ने आज तक जो कायाकल्प किया है, बस उतना ही दोनों में अंतर होगा।

''उषी, अरे भई कुछ जवाब क्यों नहीं देती? मोहन, उषा कहाँ है?'' उस वृद्ध ने फिर से पूछा।

''वह इधर ही अपनी गुड़िया के साथ खेल रही है। वह कह रही है कि मैं अप्पाजी से रूठ गई हूँ आज।'' मोहन ने भीतर से ही कहा।

''भई, वह क्यों? मैंने ऐसा कौन सा अपराध किया है? अच्छा मोहन, तुम्हीं आ जाओ। पके-पके पत्तोंवाला बीड़ा मैं आज उषारानी को जो देनेवाला था, अब गुड़िया हमसे रूठ गई है तो चलो, तुम्हीं ले लो पान।''

वृद्ध अप्पाजी का निमंत्रण स्वीकार कर मोहन तुरंत भागा-भागा आ गया। यह देखकर कि मोहन अब पान उड़ाएगा, उषा गुड़िया को रखकर हौले से उठ गई। दरवाजे के पास से ही अपना प्यारा-प्यारा सा मुखड़ा निकालकर अपना मुवक्किल आप ही बनते हुए उसने रूठे-रूठे स्वर में कहा, ''अप्पाजी, हम आपसे रूठे हैं, हाँ!''

''अरी पगली, यह तो बताओगी नहीं कि क्यों रूठी हो? यह गहरा पीला पान का बीड़ा क्या तुम्हें नहीं चाहिए?''

''हाँ, चाहिए तो सही। लेकिन वहाँ से मोहन के हाथों भेज दीजिए। मैं वहाँ नहीं आऊँगी आपके पास। आप कल जैसी मेरी पप्पी लोगे। क्या आपकी मूँछें मुझे नहीं चुभतीं? आप जान-बूझकर मेरे गालों को चुभोते हैं। चाहें तो बीड़ा इधर ही भेज दीजिए।'' उषा ने समझौते की शर्त स्पष्ट की।

''ठेंगे से! जिसे पान चाहिए वह पप्पी भी देगा। अच्छा, मूँछें न चुभोते हुए पप्पी ली तो दोगी?'' अप्पाजी ने उलटी शर्त बताई।

यद्यपि इस उलटी शर्त के लिए उसने मुँह से हामी नहीं भरी, तथापि जमीन पर एक-एक कदम घसीटते हुए धीरे-धीरे वह अपने दादाजी के पास आने लगी। उसपर तुर्रा यह कि वह अपनी मरजी से नहीं आ रही थी। दादाजी उसे बलात् खींचकर ले जा रहे थे, इसीलिए वह आगे बढ़ रही थी। आखिर 'राम-राम' करके दादाजी ने उसके हाथों को पकड़कर मुसकराते हुए उसे अपने पास खींच लिया, और फिर कायदे के अनुसार एक मधुर पप्पी की खंडनी वसूल करने के पश्चात् दादाजी ने एक बीड़ा उषा को और एक मोहन को दिया; और अपने उन प्यारे, राजदुलारे पोता-पोती को अपनी बगल में लेकर अपने हाथों पर तंबाकू मलने लगे,

जिसे वे अपने पान के साथ खाते थे।

ज्यों-ज्यों पान का बीड़ा उषा को मीठा लगने लगा, त्यों-त्यों ही उसकी दिल की कली खिलने लगी। उसे पता भी नहीं चला, वह स्वयं ही कब दादाजी की गोद में जा बैठी और हँस-हँसकर उनसे घुल-घुलकर मीठी-मीठी बातें करने लगी। उषा और मोहन दोनों बच्चे बड़े प्यारे, खिलाड़ी, हँसोड़, बातूनी, फुरतीले और तेज थे।

इतने में सामनेवाली पहाड़ी पर एक व्यक्ति को उतरते देखकर मोहन ने ताली बजाई।

"अप्पाजी, अप्पाजी, कंटक बाबू आ रहे हैं, कंटक बाबू। वह देखो..." उषा ने समर्थन किया।

"हाँ जी। हाँ, कंटक बाबू ही हैं।"

अप्पाजी उस समय पास पड़ा कलकत्ता का हिंदी अखबार पढ़ रहे थे। उसे दूर हटाकर आँखों पर जोर देकर वे दूर देखने लगे। लेकिन उन्हें साफ-साफ नहीं दिखाई दिया। उन्हें प्रतीत हुआ कि कोई दूसरा ही आ रहा है।

"भई, कंटक बाबू नहीं हैं वे। कुछ भी चिल्लाते हो।"

उनका नकारना न सहते हुए उषा ने ठुनककर कहा, "ओफ्फो! अप्पाजी, वे कंटक बाबू ही तो हैं। आपको साफ-साफ दिखाई नहीं दे रहा तो मेरी आँखों से देखिए। हाँ-हाँ, देखिए न। ना, ना, मेरी आँखों से देखिए।"

उसने अपना नन्हा सा मस्तक अप्पाजी के बिलकुल मुँह के पास रखा। वह उनकी गोद पर चढ़ गई, ताकि उनकी आँखों के सीधे सामने पहुँच सके। अपने नरम-नरम रेशमी बालों से आच्छादित सिर का पिछला हिस्सा उनके मुँह से सटाकर वह इस तरह पीठ करके बैठ गई कि उसकी आँखें उनकी आँखों के सामने आ जाएँ। फिर वह नन्ही-मुन्नी सी बालिका अनुरोध करने लगी, "अप्पाजी, देखिए न मेरी आँखों से। कुछ दिखाई देता है? अच्छा अब? अब दिखाई देता है?" पल भर के लिए उसके लिए यही एक खेल हो गया।

उस अल्हड़ बालिका का दिल खट्टा न हो इसलिए दादाजी ने अपनी उस नन्ही-मुन्नी पोती का वह कुंतल-मृदुल मस्तक अपनी आँखों के सामने गंभीरता-पूर्वक पकड़ा, जैसे कोई दूरबीन पकड़ी हो और उसकी आँखों से गौर से देखने का अभिनय किया। फिर बताया कि उन्होंने क्या-क्या देखा।

"बिलकुल सच है। उषा रानी, तुम्हारी आँखों से मुझे साफ-साफ नजर आ रहा है। देखो, वे कंटक बाबू ही आ रहे हैं। और वह देखो हमारी नन्ही-मुन्नी उषारानी किसी बड़ी चतुर तथा समझदार लड़की की तरह अपनी तख्ती-पेंसिल और पहली किताब लेकर उनके पास कैसे पढ़ने जा रही है, देखो तो सही। वह

हमारा मोहन पाठ पढ़ रहा है। देखो-देखो, मुझे तुम्हारी आँखों से सबकुछ कितना साफ-साफ नजर आ रहा है। अब यह सबकुछ बिलकुल सही-सही ऐसा ही घटना चाहिए, समझी? वरना मैं कहूँगा, तुम्हारी आँखों से झूठ दिखाई देता है। फिर टाल-मटोल, औना-पौना न करते हुए कंटक बाबू के आते ही पढ़ने बैठोगी न? कोई बहानेबाजी नहीं…''

''हाँ, हाँ—पढ़ने तो बैठूँगी…लेकिन…'' उषा के चेहरे पर असंतोष की झलक दिखाई दी।

''मैं आपके पास बैठूँगी, न कि कंटक बाबू के पास।''

''क्यों री? वे कितना अच्छा पढ़ाते हैं तुम दोनों को…बहुत नामी गुरुजी हैं।''

''आहा रे! खाक अच्छे हैं। अप्पाजी, सच कहती हूँ उन्हें कुछ भी नहीं आता।''

''तुम यह कैसे कहती हो कि कंटक बाबू को कुछ नहीं आता? और यह तुमने कैसे समझा?''

''अजी, इसमें कौन सी बड़ी बात है? साफ-साफ पता चलता है। सच कहती हूँ, अप्पाजी, कंटक गुरुजी मोहन से और मुझसे सबकुछ पूछ लेते हैं। यदि उन्हें स्मरण नहीं रहा तो झट से मोहन से पूछ लेते हैं, 'कलकत्ता कहाँ है? बंबई कहाँ है? अंग्रेजी में माँ को क्या कहते हैं? बिल्ली को क्या कहते हैं?' और मुझसे पूछते हैं, 'दो पंजे कितने? तीन दाही कितने?' इस तरह दिन भर हमसे ही सबकुछ पूछते रहते हैं। यदि उन्हें ही सबकुछ आता है तो भला हमसे क्यों पूछते? भई, पहाड़े भी नहीं आते उन्हें!''

इसके साथ ही 'वाह रे वाह! पगली रे पगली! सिडी!' इस तरह चिढ़ाते हुए मोहन खिलखिलाकर हँसने लगा। दादाजी की भी हँसी छूट गई। उषादेवी फुनफुना ही रही थी कि कंटक बाबू आँगन में आ गए। हमेशा की तरह भेंटस्वरूप मिठाई का दोना उनके हाथ में देखते ही खीझ भरा आवेश उनकी ओर केंद्रित हो गया और वह मुसकराती हुई कंटक बाबू के सम्मुख आ गई।

''क्यों कंटक गुरुजी!'' अप्पाजी मुसकराए, ''परीक्षा में आप ही के छात्रों ने आपको अनुत्तीर्ण किया है।''

''भला वह कैसे?'' कंटक गुरुजी ने कौतूहलवश पूछा।

''अजी, हमारी उषारानी का कहना है कि आपको पहाड़े भी नहीं आते। जब आप स्वयं अटक जाते हैं तो उससे बार-बार पूछते हैं—दो पंजे कितने? तीन दाहे कितने? और उसके कहने पर आपको समझ में आ जाता है। आपको उतना भी

नहीं आता, जितना उसे आता है!''

''अच्छा!'' कंटक बाबू इस आक्षेप का आनंद उठाते हुए मुसकराए।

''अच्छा, अब मैं जो हिसाब पूछूँगा उसका उषारानी यदि सही-सही उत्तर दे तो मैं इसे सच मानूँगा। पूछूँ?''

''हाँ, हाँ, जरूर पूछिए—अभी जवाब हाजिर है। हाँ, पर वही पूछिएगा जिसका मैं उत्तर दे सकती हूँ।'' इस शर्त पर उषारानी ने इस चुनौती को स्वीकार किया।

''अच्छा, तो बताओ—एक औरत टोकरी भर पके आम ले आई। उसका दो रुपए दाम तय हो गया। वे आम आधे-आधे करके उसने समान रूप से छोटी-छोटी दो टोकरियों में भरे। समझ में आई बात? आधे-आधे आम दो समान टोकरियों में भर दिए तो उन दो टोकरियों का मूल्य क्या होगा। तुम भी बताना मोहन।''

मोहन ने झट से उत्तर दिया, ''हर टोकरी का एक-एक रुपया दूँगा मैं।''

थोड़ी देर तक आँखें सिकोड़कर सोचने पर उषा ने जैसे इस प्रस्ताव को ही ठुकराते हुए कहा, ''मैं तो एक धेला भी नहीं दूँगी इन टोकरियों का?''

''क्यों?''

''क्यों का मतलब? भई बाजार में इतने अच्छे पके आम विपुल मात्रा में मिलते हैं, फिर ये आधे-आधे बँटे आम कौन खरीदेगा?''

''आधे-आधे बँटे आम''—अनजाने में ही यह शब्द-क्रीड़ा करके उषारानी ने बिलकुल ही अप्रत्याशित उत्तर दिया।

उस बच्ची की भोली-भाली लेकिन स्वतंत्र बुद्धि की झलक पाकर और वह बिलकुल ही अप्रत्याशित उत्तर सुनते ही दादाजी ने उषा की पीठ थपथपाते हुए कंटक बाबू से कहा, ''क्यों गुरुजी, यह बात सोलह आने सच निकली न कि हमारी उषा को जितना ज्ञान है, उतना आपको भी नहीं है?''

''हाँ, बिलकुल सही निकली। भई गुरु तो गुड़ ही रहा पर चेला शक्कर हो गया। हमारी इस नन्ही सी छात्रा ने गुरुजी को जो पाठ पढ़ाया उसके लिए इस छात्रा को यह शुल्क दे देंगे।''

कंटक ने मिठाई का एक दोना उषा को थमा दिया और दूसरा मोहन को पकड़ा दिया।

कंटक बाबू खाट पर बैठने लगे। उन्हें जगह देने के लिए अप्पाजी अपनी एक बैठक तोड़कर एक ओर हटने लगे, लेकिन इतने में ही उनके घुटनों में जबरदस्त पीड़ा हुई और वे 'मैया री' कहकर कराहने लगे।

''ओह! अचानक इतनी जोर से पीड़ा होने लगी? क्या हुआ है पैर को?''

कंटक झट से पूछकर उनका वह पैर दबाने लगा।

''इधर, इधर घुटने में,'' अप्पांजी ने घुटना धीरे-धीरे आगे-पीछे करके पाँव पसारने का प्रयत्न करते हुए कराहकर कहा, ''इस ससुरे घुटने में पिछले दो दिन से इसी तरह पीड़ा उभर रही है। पाँव पसारने से कुछ समय के बाद रुक जाएगी। एक बहुत पुराना घाव दबा पड़ा है उधर। अब कमजोरी के दिन आए, अत: वह फिर से हरा होकर कष्ट दे रहा है।''

''पुराना घाव? किसका है वह?'' कंटक ने कौतूहलवश पूछा।

''वह? वह एक इतिहास है। सन् १८५७ के स्वाधीनता संग्राम में मुझे लगी अंग्रेजों की एक गोली का है वह घाव। जी हाँ, अंग्रेजों की गोली का, क्योंकि मैं विद्रोहियों की ओर से लड़ रहा था। मैं एक विद्रोही था।'' बात करते-करते वह वृद्ध पुरुष, जो दूसरे पाँव को खाट से उटंगकर एक पाँव पर सीधा तनकर खड़ा था, जितना था, उससे अधिक ऊँचा लगने लगा।

''आप बागी थे? प्रत्यक्ष रूप में उस बगावत में भाग लिया था आपने अंग्रेजों के खिलाफ?'' कंटक यह सवाल खंडित शब्दों को जोड़कर कर रहा था और वह वृद्ध पुरुष गर्व से तना, हामी भरने के लिए अपना सिर हिला रहा था। कंटक विस्मयपूर्ण आदर के साथ उनकी ओर देख रहा था और इस तरह देखते ही उसे वही वृद्ध पुरुष एक मँजा हुआ, जुझारू, वंदनीय वीर एवं पौराणिक योद्धा प्रतीत होने लगा जो आज एक साधारण आदमी था।

पल भर उसी तरह विस्मयपूर्ण आदर के साथ देखने के पश्चात् कंटक ने पूछा, ''अप्पाजी, आज तक आपने मुझसे कुछ नहीं कहा। पिछले छह महीनों में आपके इस स्नेहशील परिवार से इतना परिचित होते हुए भी मैंने आपसे आपका पूर्ववृत्त क्यों नहीं पूछा? इसका कारण जाहिर है। आजन्म कारावास प्राप्त जो बंदी अपनी कठोर कैद के दस-बारह वर्ष बिताते हैं और उन्हें अपना आचरण ठीक रखने के कारण इसी द्वीप में स्वतंत्र परिवार बसाकर रहने की आप जैसी अनुमति प्राप्त होती है, वैसे अंदमान के दाखिला प्राप्त (Pass Holder) आजन्म कैदी गृहस्थों को प्राय: जिस घृणित अपराध के लिए पहले दंड हुआ था, उसके संदर्भ में कुछ कहने में संकोच होता है। इस वर्ग के दाखिलाधारी स्त्री-पुरुष प्राय: अपना पूर्व चरित्र छिपाना चाहते हैं। इसीलिए कई बार अपार जिज्ञासा के बावजूद आपसे आपका पूर्व वृत्तांत पूछना हमेशा टालता आया था। परंतु सन् १८५७ के स्वाधीनता संग्राम में लड़ना राजनीतिक अपराध माना जाने पर भी जाहिर है कि किसी तरह अपराध नहीं है। फिर आपने स्वयं ही मुझे अपना पूर्वेतिहास क्यों नहीं बताया? सन् १८५७ के विद्रोह के किस्से सुनने का तो मुझे बचपन से शौक रहा। बचपन में मेरे पिता कहा

करते थे कि मेरे दादाजी ब्रह्मावर्त में श्रीमंत नाना साहब पेशवा के ही आश्रित थे। सेनापति तात्या टोपे का नाम तो उनके होंठों पर हमेशा ही रहा करता था।''

''उन्हीं वीरपुंगव तात्या टोपे की सेना का एक सैनिक था मैं।''

''क्या कह रहे हैं आप? सेनापति तात्या टोपे की सेना के एक सैनिक थे? जिनका नाम बचपन में हम लोगों को किसी पौराणिक वीर जैसा अद्‌भुत प्रतीत होता था, आज मेरे सामने उन्हींका एक सैनिक खड़ा है, और उसने स्वयं सेनापति तात्या टोपे का साक्षात् दर्शन किया है। यह उद्‌भावना मेरे लिए अभी इस वक्त भी एक अजूबा है। देखिए अप्पाजी, यदि आपको इसमें कुछ खतरा महसूस नहीं होता हो तो वह सब सुनने की मेरी उत्कट इच्छा है, जो-जो आपने वहाँ प्रत्यक्ष देखा, अनुभव किया। क्या इसमें कुछ खतरा है?''

''खतरा? अजी, पहले यदि मैं इतना ही कहता कि मैं तात्या टोपे को पहचानता हूँ, तो जो पेड़ सामने नजर आता उसीपर मुझे लटकाया जाता, फिर यह बताना तो दूर की बात रही कि मैं तात्या टोपे के पक्ष में लड़ रहा था। उस समय यह वृत्तांत सुनाने का जो आतंक हमारे मन में समा गया था और उन स्मृतियों को चित्त के अगम विवरों में हमने जो दबाकर रखा था, उन्हें कुरेदना चाह कर भी अब कुरेदना असंभव है। वैसे देखा जाय तो अब जमाना बदल गया है। वह स्वतंत्रता संग्राम अब एक इतिहास बन चुका है। सद्य:कालीन स्थिति से उसका सीधा संबंध नहीं रहा। यदि रहा भी हो तो बस इतना ही, जितना इतिहास का वर्तमान से संबंध होता है। स्वयं अंग्रेज लेखकों ने तत्कालीन जानकारी के संदर्भ में सैकड़ों ग्रंथों का लेखन किया है। इक्के-दुक्के अंग्रेज सज्जन बिलकुल खुले दिल से तत्कालीन आँखों-देखा हाल पूछने इधर आए थे। परंतु पहले से ही मन पर जो आतंक छाया हुआ था, उससे हम अपने दिल की सारी भड़ास नहीं निकाल सके। शायद यही कारण है कि मैं स्वयं आपसे भी खुलकर वह वृत्तांत नहीं कह पाया। वरना भई, अब उसमें छिपाने लायक है ही क्या? उसकी वजह से जो दंड भुगतना था, उसे ही भुगतने के लिए हमें इस अंदमान में लाया गया और हम उस आजन्म कारावास को भुगत भी चुके हैं।''

''अर्थात् सन् १८५७ के विद्रोह में लड़ने के कारण ही आपको आजन्म कारावास हुआ था? अंदमान में तभी से आजन्म कारावास प्राप्त कैदियों को भेजा जाता था?''

''सन् १८५७ से भी पच्चीस-पचास वर्ष पहले एक-दो बार अंदमान में उपनिवेश स्थापित करने का प्रयास अंग्रेजों ने किया था। परंतु उस समय जो थोड़े-बहुत भारतीय लोग यहाँ लाए गए वे इस भयानक जंगल तथा दलदल में अनादि

काल से रह रहे रोग-जंतुओं तथा उनसे व्याप्त वातावरण का शिकार बन गए। खासकर जड़ेया बुखार ने तो उनका पूरा सफाया किया। मनुष्य बस्ती के लिए इस द्वीप को सर्वथा अयोग्य घोषित कर इसपर बसने का विचार त्याग दिया गया। परंतु सन् १८५७ के विद्रोह के पश्चात् शायद इस द्वीपखंड के इन्हीं गुणों के कारण इस गदर में अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ते समय शिकस्त खाए हम जैसे सैकड़ों विद्रोहियों को इसी द्वीप पर आजन्म कारावास के लिए भेजा गया। पर, आश्चर्यजनक बात तो यह है कि यहाँ आकर भी हम सारे मर-खप नहीं गए। उन घने जंगलों, उन सड़ी-गली दलदलों, उन भीषण रोगाणुओं, उस असाध्य जड़ेया बुखार तथा उस विघातक वातावरण में हम सफल सिद्ध हो गए। इस प्रकार इन वर्तमान उपनिवेशों के हम मूलभूत संस्थापक, आद्य पुरखे एवं कुलपुरुष सिद्ध हुए। इस द्वीप में उपनिवेशार्थ भेजे गए आद्य बागियों के समूह में से ही मैं एक हूँ। अभी तक जीवित रहनेवाले चार-पाँच विद्रोहियों में से वृद्धतम। परंतु इस दीर्घायु के आनंद से अधिक आनंद तब होता जब हमारे सेनापति तात्या टोपे फाँसी पर चढ़ाए गए…''

''क्या? तात्या टोपे को जब फाँसी हुई तब आप वहाँ पर थे?''

''नहीं, नहीं। वही कसक मेरे मन में शूल की तरह चुभ रही है। काले पानी भेजने की अपेक्षा यदि हमें अपने सेनापति साहब के साथ फाँसी पर चढ़ाया जाता तो अधिक खुशी होती, अधिक सुख मिलता—यही तो मैं कह रहा था। यद्यपि उस समय अंग्रेज हमारा कट्टर शत्रु था, तथापि अंग्रेज हैं असली वीर। इस बात का हमें अहसास था कि वीरता की अंग्रेजों को सही परख थी। वह हीरे का खरा पारखी था। देखो, सशस्त्र युद्ध में तात्या टोपे मरते दम तक इस तरह जान की बाजी लगाकर लड़े कि अंग्रेजों ने भी दाँतों तले अँगुली दबाई। मृत्युदंड के समय सीधे फाँसी पर चढ़ते समय उन्होंने बताया कि 'मैं महाराष्ट्र के राजा का—श्रीमंत नाना साहब पेशवा का सेनापति हूँ। मैं अंग्रेजों का अंकित प्रजाजन नहीं हूँ। अपने राजा की आज्ञा के अनुसार हमने अपनी स्वाधीनता के लिए टक्कर दी, डटकर मुकाबला किया। इसके लिए मैं विद्रोही, बागी, अपराधी हो ही नहीं सकता।' इस वीरोचित दृढ़ता का अंग्रेजों पर भी प्रभाव पड़ा। उनके मन में भी इतना आदर-भाव उत्पन्न हो गया कि तात्या टोपे को फाँसी होते ही उन्हें देखने के लिए इकट्ठे हुए सैकड़ों गोरे लोगों ने उस शूर पुरुष के शव को घेर लिया और उसके स्मृति-चिह्न के तौर पर अनेक अंग्रेज, फ्रेंच स्त्री-पुरुषों ने उनकी जुल्फें काटकर अपने पास रखीं। फ्रांस के अखबारों में उनकी दुःखद मृत्यु पर लेख प्रकाशित हुए। परंतु उनके सैनिक होते हुए भी हमें उन्हींके साथ उसी स्वतंत्रता संग्राम में मृत्यु पाने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। न ही उनका अंतिम दर्शन हम कर सके।'' उस वृद्ध वीर ने ठंडी आह भरी।

"आप पहले से ही तात्या टोपे की फौज में थे? उनकी मृत्यु से कितने दिन पहले आप घायल हो गए? आप अंग्रेजों के चंगुल में कैसे फँस गए?"

"वह एक लंबी रामकहानी है, कंटक बाबू! संक्षेप में बताता हूँ—मेरा और पेशवा लोगों का प्रत्यक्ष परिचय पहले बिलकुल नहीं था। हम ठहरे महाराष्ट्रीय ब्राह्मण, मूल रूप में बुंदेलों के आश्रित। इसीलिए उत्तर हिंदुस्थान में बसने आ गए। आगे चलकर मेरे पिता की पीढ़ी में अरा नगरी की ओर हमारा परिवार बस गया। सन् १८५७ से एक-दो वर्ष पूर्व श्रीमंत नाना साहब के दूत हमारे गाँव में आकर कहते थे कि जल्दी ही गदर होनेवाला है; और हम नौजवानों में महाराष्ट्र की हिंदू पदपादशाही की पुनः स्थापना करने की चेतना सनसनाते हुए चले जाते। इस उद्भावना के साथ ही कि मराठों का राजा स्वराज के लिए पुनः एक बार शस्त्र उठाएगा—मेरा युवा खून खौलने लगा। इतने में समाचार आया कि कानपुर में बड़ा गदर हुआ है, श्रीमंत नाना साहब पेशवा ने कानपुर पर कब्जा कर लिया है और अब खुल्लमखुल्ला उन्होंने युद्ध का आह्वान किया है। इसके पीछे-पीछे प्रतिदिन खबरों से सारा वातावरण आँवे की तरह तप रहा था। दिल्ली, लखनऊ, जगदीशपुर—यहाँ-वहाँ सर्वत्र उस राष्ट्रीय युद्ध का दावानल धधकने लगा और राजे, महाराजे, सरदार, जमींदार, सैनिक, नागरिक सारे हिंदुस्थान ने बगावत का झंडा उठाया। तब हमारी अरा नगरी में भी एक सेना-पथक विद्रोह पर उतर आया और हम नौजवान उसका एक हिस्सा बन गए।"

"फिर? वहाँ की अंग्रेज फौज ने आपको लगे हाथ कैद नहीं किया?"

"भई, हर तहसील में अंग्रेजी फौज थोड़े ही होती थी? भारतीय सैनिक थे, वे ही उलट गए थे। अंग्रेज अधिकारी तो एक ही था। वह था ए.ओ. ह्यूम साहब जिसे कलेक्टर, मजिस्ट्रेट के सभी अधिकार प्राप्त थे। सारी अरा नगरी को अचानक पलटी खाते हुए देखकर ह्यूम साहब ने कलेजा थामकर और दुम दबाकर भागने का निश्चय किया। लेकिन किधर भागें? और भागकर जाएँ तो जाएँ कहाँ? तब अपने थाने को घेरने से पहले उन्होंने एक तरकीब निकाली। हाथ, पाँव और मुँह पर काला रंग पोता, अपनी एक भारतीय नौकरानी का बुरका मँगवाया, उससे सारे बदन, मुँह को लपेट लिया; और स्त्री-वेश में रातोरात अरा से खिसक गए। उस समय जहाँ कहीं भी अंग्रेज नजर आता, बागी उसे जान से मार डालता और जहाँ बागी दिखता वह अंग्रेज की गोली का शिकार बनता। परंतु इतनी गंभीर स्थिति में भी दो-तीन सैनिकों की—जो उनके वफादार थे—सहायता से कई अवसरों पर उनकी जान बच गई और आखिर ह्यूम साहब दूसरे थाने पर स्थित अंग्रेजी छावनी में सही-सलामत पहुँच गए।"

"ए.ओ. ह्यूम साहब? अच्छा, जिन्होंने राष्ट्रीय सभा शुरू की थी?"

"हाँ-हाँ, उन्होंने ही आगे चलकर वह संस्था शुरू की। इतना ही नहीं, उन्हें जिस कठिन अवस्था से गुजरना पड़ा, उससे उन्हें पूरा विश्वास हो गया कि भारतीय जनता में पुनः ऐसा भयंकर असंतोष न फैले, उसीमें अंग्रेजी शासन की खैर है। अंदमान में एक सज्जन से मुझे उनके कुछ भाषण पढ़ने का अवसर मिला, जिससे मुझे इस बात का ज्ञान हो गया।

"सन् १८५७ के गदर में अंग्रेजी शासन पर विपदाओं का जो पहाड़ टूट पड़ा, जिसने उसका अनुभव किया ऐसे किसी भी अंग्रेज अफसर को इस तथ्य को स्वीकार करना ही होगा कि हिंदुस्थान में फैले असंतोष को भीतर-ही-भीतर खौलने या बढ़ने नहीं देना चाहिए। उसकी भाप संचित होने से पहले ही यह व्यवस्था करनी चाहिए कि वह बाहर निकलती रहे। यह भाप बेहतर रूप में निकलने के लिए यदि आप कोई सुरक्षित छिद्र—सेफ्टी वॉल्व—नहीं रखोगे तो वह इंजन को फोड़कर बाहर निकलेगी। वही सुरक्षित छिद्र है वह राष्ट्रसभा जिसका जिक्र मैंने किया है। इस प्रकार उन्होंने आगे चलकर बुद्धिमानी के जो भाषण झाड़े, वह अक्लमंदी ह्यूम साहब अरा नगरी के संकट काल में ही सीख गए थे।"

"फिर 'अरा' से आप कहाँ गए?'

"जाने दो वह सारी रामकहानी। जो बीत गई, सो बीत गई। अब इससे क्या? अब नए-नए हकीम, और नई-नई बातें। जो है उसे निभाना चाहिए।"

"सो तो है ही। अपने बारे में तो बताइए। आप पकड़े कैसे गए?"

"अरा नगरी से हम सीधे कानपुर गए और सेनापति तात्या टोपे की फौज में भरती हो गए। जनरल विंड्हम से, जिसने बीस हजार सेना के साथ आक्रमण किया, कानपुर में घमासान युद्ध हुआ। उसमें सेनापति तात्या टोपे ने विंड्हम को पराजित किया। उस युद्ध में बागियों का पक्ष लेकर मैं स्वयं लड़ा था और उसी रणांगण में इस घुटने पर अंग्रेजों की गोली से घायल होकर अंग्रेजों के हाथ लग गया। परंतु समय-सूचकता के साथ मैंने यह बहाना बनाया कि मैं अंग्रेजों के भारतीय सिपाहियों में से ही एक हूँ। इस प्रकार के अंधाधुंध हुड़दंग में जिस प्रकार असंभव घटनाएँ घटती हैं, उसी तरह मेरी युक्ति सफल हो गई। जनरल विंड्हम तात्या टोपे से पराजित होकर जब उखड़ा-उखड़ा सा वापस लौटा तब अपने सैकड़ों घायल सैनिकों को उसने जल्दी-जल्दी किसी सुरक्षित अंग्रेज छावनी में रवाना किया। उनमें मैं भी था। उधर स्वस्थ होकर मैं फिर वहाँ से खिसकनेवाला ही था कि एक भारतीय सिपाही ने चुगली की कि मैं विद्रोही था। परंतु कई अन्य सैनिकों ने चुगली की कि वह चुगलखोर ही बागी है।

उस काल में इस प्रकार उलटी-सीधी चुगलियों की भरमार हो गई थी। इस अंधेर नगरी में तथा तत्कालीन अंग्रेजों की जान पर बन आने की धाँधली में व्यक्तिगत पूछताछ जैसी कोई भी बात नहीं थी। कुल मिलाकर सजा होती—जैसे फाँसी तो फाँसी—आजन्म कारावास तो आजन्म कारावास। अंत में सभी को क्षमा—ताकि विद्रोह की आग जल्दी ठंडी हो जाए। उस धाँधली और उसी मुक्ति में मैं था। उन बंदियों के कुल दल के नाम से आजन्म कारावास का टिकट निकला। इस शर्त के कारण कि हिंदुस्थान में बाग़ियों का वंश नहीं बढ़ना चाहिए, सैकड़ों विद्रोहियों की आजन्म कारावास प्राप्त टोलियों की किश्तियाँ भरकर इस अंदमान द्वीप में—जिसे अंग्रेज अधिकारियों ने ही उस समय 'मनुष्य बस्ती के लिए अनुचित तथा मारक' के रूप में घोषित किया था—लाकर छोड़ी गईं। उनमें से एक मैं भी था—बिलकुल नौजवान—पच्चीस के अंदर-अंदर। मनुष्य बस्ती के लिए मारकस्वरूप इस द्वीपखंड में हम जैसे सैकड़ों बागियों को जो छोड़ा गया था, उन्हींके जी-तोड़ परिश्रम, घोर असहनीय यातनाओं, जमे हुए खून, भग्न आशाओं, घिसी हुई हड्डियों तथा लाशों की गरम-गरम राख का खाद-पानी पाकर इन द्वीपों को अब मनुष्य-बस्ती लायक किया गया है। वही अंदमान अब हमारे हिंदुओं का समृद्ध—फूला-फला एक नए-नवेले उपनिवेश के रूप में सामने आ रहा है। बस इतनी ही हमारे जन्म की अथवा हमारे आजन्म कारावास की सार्थकता है।''

''लेकिन अब आप एक बार हिंदुस्थान में हो आने की अनुज्ञा क्यों नहीं माँगते? आप दाखिलेवाले स्वतंत्र वर्ग के हैं। इस तरह के फ्री-पास होल्डरों को स्वदेश जाने की अनुज्ञा दी जाती है न? कुछ मामलों में हिंदुस्थान अब बहुत सुधर गया है। आप देखिए न जाकर।''

''अजी क्या खाक देखना है अब? जिस तरह मैंने कहा कि काले पानी का यह उपनिवेश संपन्न हो रहा है, उसी तरह आप कहते हैं कि हिंदुस्थान विकसित हो रहा है। सन् १८५७ के दाखिलेवालों को भी कोई वापस नहीं भेजता। वह नियम हमपर लागू नहीं है। और यदि गए भी तो अब वह हिंदुस्थान है भी कहाँ, जिसे हम देखना चाहते थे? अब जिस प्रकार यह आजन्म क़ारावासीय अंदमान, उसी तरह वह हिंदुस्थान।'' उस वृद्ध पुरुष ने एक ठंडी आह भरी, जैसे अपने दिल में धँसी कोई चुभन, कसक को छेड़ दिया हो।

कंटक ने सोचा, उसने बेकार उनकी दुखती रग छेड़ी। इसीलिए उन्हें सांत्वना देने के लिए कुछ बोलने के इरादे से उसने कहा, ''कुछ भी हो, पर ईश्वर न्याय का रक्षक तो है। आखिर न्याय की ही...''

''नहीं, नहीं। न्याय-अन्याय का जय-पराजय से सुतराँ संबंध नहीं होता।

इस तथ्य को हम जितनी जल्दी सीख लें उतना ही अच्छा है। न्याय-अन्याय का मामला अलग है और जय-पराजय का अलग। जय-पराजय का यदि किसीसे वास्ता है तो वह पराक्रम से है, न कि न्याय से। याद रखो। रट लो यह शब्द—पराक्रम। जयमंत्र। यह शब्द सीखो।''

''अप्पा, अप्पा, अप्पाजी···'' उनके चित्त को उस ऊँचे उदात्त वातावरण से खींचकर खट से इस धरती पर लाते हुए नन्ही उषा ने कहा, ''देखिए अप्पाजी, आप भी कंटक बाबू को नए शब्द सिखा रहे हैं। मैंने कहा था न, इन्हें कुछ भी नहीं आता, वही सच है। वही सोलह आने सच है।'' उस बालिका को उस विषय में बस इतना ही समझ में आया।

अप्पाजी मुसकराए और 'बड़ी चालाक है री तू' कहते हुए कंटक ने प्यार से उसके गाल पर चुटकी काटी।

इतने में मोहन, जो फाटक के पास गया था, खिलखिलाता हुआ आ गया।

''अम्मा आ गईं। आ गईं। अम्मा आ गईं।''

उन दोनों बच्चों में आपस में यह होड़ लगी कि कौन पहले जाकर अम्मा से चिपकता है, उससे गले लगता है। दोनों बच्चे दौड़ पड़े। फाटक के पास माँ के आते ही मोहन ने पहले उसे पकड़ लिया, पीछे-पीछे उषा ने उसकी टाँगों को कस लिया। माँ भी उनके फटाफट चुंबन लेती-लेती, उनके गलबहियों के पेंच से जितना चलना संभव था, उतना चलती-चलती उनके रेशम जैसे मखमली बालों को सहलाती खाट के पास आ गई। इतने में उसने कंटक को देखा।

''दैया री दैया! आप मेरी इधर प्रतीक्षा ही कर रहे थे न? आखिर आपकी सखी से मेरी मुलाकात हो ही गई। उसके साथ मैंने जी भरके बातें कीं।'' कंटक से इतनी बात करके उसने निहायत आत्मीयता के साथ अपने ससुर से कहा, ''वाकई, अप्पाजी, लड़की हीरा है हीरा। कितनी निश्छल, विनम्र, कट्टर, दृढ़, आत्मसम्मान से भरपूर, पर स्नेहशील। और कितनी सुंदर जैसे सरसों फूली है उसके पूरे बदन पर। उसमें यदि कुछ दोष है तो बस एक ही—उसका नाम। 'कंटकी' नाम शायद किसी रूखे, अरसिक आदमी ने रखा हो। ऐसी फूल-सी सुकुमार, कोमल, चाँद-सी सुंदर लड़की का नाम तो गुलाब, मालती, चमेली—ऐसा ही कुछ होना चाहिए था। भई, कंटक बाबू उसके लिए इतना यूँ ही नहीं तड़प रहे थे। वाकई आपकी सखी आपका दिल जलानेवाली ही है।'' उसने मजाक में आँखें मटकाते हुए अपना द्विअर्थी भाव सूचित किया।

आज पूरे पाँच साल बाद वही प्रिय नाम 'मालती'—अनजाने में ही क्यों न हो—लेकिन इस महिला के मुख से उसने सुना। पिछले पाँच वर्ष काले पानी पर जो

उसने बिताए, उस अवधि में यही नाम उसके मन में सतत गूँजता रहा था लेकिन सिर्फ एक नाम के रूप में। आज वही नाम सजीव होकर उसके सामने आ गया, जैसे वह प्रिय मूर्ति प्रत्यक्ष रूप में बिलकुल निकट यहीं कहीं खड़ी है। कंटक का जी इस विचार के साथ ही इतना भर आया कि इस संदर्भ में अधिक कुछ पूछने के लिए भी उसके मुँह से शब्द नहीं निकल रहे थे। वह स्वयं जब से काले पानी आया था, तब से उस कंटक को—किशन को—इस बात का पता नहीं था कि सजा प्राप्त होने के बाद मालती का क्या हाल है। आज वही मालती जैसे फिर से मिल गई।

उस महिला से उसने कई दिन हुए, मालती की खोज लेने के लिए कहा था। वह औरत काले पानी पर महिला बंदीगृह में एक स्त्री-जमादार थी। आज उसे काले पानी के बंदीगृह में कंटकी नामक एक युवती मिली, जिसके बारे में कंटक ने बताया था और उस औरत ने आज कंटक को उसका पता दे दिया।

'तुम्हारी सखी कितनी अच्छी है। हाँ, बिलकुल दिल जलानेवाली है जी!' इस प्रकार आँखें मटकाकर उसने हँसी-हँसी में यह सूचित किया था कि 'वह कंटक की प्रिया है।' इसी बात से कंटक का सीना गर्व से तन गया। यह कहने के लिए उसका जी मचलने लगा कि 'वाकई वह मेरी सखी ही है और मैं उसका साजन, जो उसपर जान छिड़कता है।'

'उस सुंदर रमणी में यदि कोई दोष है तो वह उसका विसंगत, अटपटा सा नाम ही है।' इस तरह उस महिला ने जब कहा था तब कंटक को उस संदर्भ में प्रतिवाद के रूप में यह कहने का मोह हो रहा था कि 'नहीं, उसमें तो उस विसंगत नाम का भी दोष नहीं है जी! उसका असली नाम 'मालती' है जो तुम्हें नहीं मालूम न कि कंटकी।'

ये सारी भाव-भावनाएँ उसके मन में कौंधने के लिए पाँच-दस क्षणों की भी अवधि नहीं लगी होती, जितनी वे भावनाएँ लिखते समय प्रदीर्घ प्रतीत होती हैं। उसपर उसने यह भी सोचा कि अभी कुछ भी कहना उचित नहीं है। पहले से वह जो कहता आया है कि 'वह मेरी बहन कंटकी है—सरकारी बयान के अनुसार ही हमारे हाथों से उस दुष्ट का वध हो गया जो उसे भगा रहा था—यही हमारा अपराध है। उसके लिए ही हम दोनों को आजन्म काले पानी की यह सजा मिल गई।' आगे चलकर भी यही कहना उचित होगा। उसकी अम्मा का अथवा अपनी मथुरा की पुरानी जान-पहचान का अथवा मुकदमे का अथवा रफीउद्दीन का कोई भी संबंध नहीं दिखाया जाए—उसने मन-ही-मन यही निश्चय किया, हाँ, यही उचित है। परंतु···

उसके मन में इन सारे विचारों की उथल-पुथल में उस महिला ने गौर किया

कि वह अपनी ओर देखकर कुछ अनुच्चरित शब्द होंठों-ही-होंठों में बुदबुदाकर बौखला सा गया है, तब वह मधुर ठिठोली भरे स्वर में कहने लगी, ''ओह! शरमा रहे हैं? किससे? शायद अप्पाजी के सामने यह बात छेड़ने में आपको संकोच हो रहा है?''

''हाँ, लगता तो कुछ ऐसा ही है,'' अप्पाजी मुसकराए, ''अच्छा, आप भीतर जाइए और दिल खोलकर अनुसूया को बताइए—जो जानकारी आपको चाहिए या आपकी सखी को कुछ संदेश देना-भेजना है। यह सोलह आने सच है कि आपकी प्रेम-भावनाओं के साथ हम जैसे बूढ़े, रूखे, खूसटों की अपेक्षा इस अनुसूया जैसी वत्सल, दयालु स्त्री का, जिसके मुँह से फूल झड़ते हैं, हृदय ही अधिक समरस होगा। जाओ अनुसूया, पहले चाय तो पिलाओगी न?''

उस सहानुभूतिशील वृद्ध ने अपनी बहू को ऊपरी तौर पर तो चाय का बहाना सुझाया लेकिन अनुसूया ने उनका इशारा समझकर अंदर जाते-जाते कंटक बाबू को बुलाया, ''आइए न कंटक बाबू, भीतर ही आइए। मैं चाय बनाती हूँ, तब तक हम बातें करेंगे। आपकी खोई हुई सखी के ढेर सारे प्यारे-प्यारे समाचार देती हूँ आपको। आइए न।''

बातें करते-करते उसने नीचे झुककर नन्ही उषा के माथे की बिंदी ठीक की, मोहन के कुरते की कॉलर की तह सँवारी। फिर उन दोनों बच्चों का हाथ पकड़कर वह भीतर चलने लगी। घर के भीतर प्रवेश करते-करते भी उसके 'आइए न, भीतर ही चले आइए' इस प्रकार दिए गए निमंत्रण के साथ तथा मोहन के, जो उसे खींचकर ले जाने के लिए वापस आया था, अपने नन्हे से हाथ में उसकी अँगुली थामकर उसे बलपूर्वक खींचना आरंभ करने के बाद कंटक उठ गया और मोहन को इस तरह तसल्ली देने के लिए कि मोहन की ताकत से ही वह खिंचा चला जा रहा है, परंतु वास्तव में ऊपर-ऊपर बहाना बनाने के लिए 'अरे बेटा, आ रहा हूँ, आ रहा हूँ। मेरी अँगुली तोड़ डाली न!' इस तरह मुसकराकर बनावटी शिकायत करते हुए वह मोहन के साथ भीतर गया। यह देखकर अप्पाजी के चेहरे पर एक स्मित उभर आया। फिर पास पड़ी 'साप्ताहिक टाइम्स' अंग्रेजी पत्रिका उठाकर वे उसके पन्ने पलटते रहे।

कंटक के भीतर आने के बाद अनुसूया ने उसे जो-जो जानकारी चाहिए थी, वह सब यथासंभव बड़े ही मनोरंजक ढंग से दी। बिछुड़े हुए नहीं, विलुप्त प्रियजनों का इस प्रकार अप्रत्याशित रूप से पता लगने पर प्रेमी हृदय चाहता है कि उनके संबंध में क्या-कुछ नहीं पूछूँ। यह जानने की सहृदयता अनुसूया में अवश्य थी कि ऐसे समय बीच-बीच में उसकी उकताहट भरी जिज्ञासा को भी निराश न करते हुए

उसका समाधान करना प्रेमी के दूतों का किस तरह कर्तव्य होता है। कंटक ने एक महीना पूर्व उससे पहली बार प्रार्थना की थी कि 'जिस महिला कारागार पर वह जमादारन थी उसमें उसकी एक बहन आनी चाहिए। उसके साथ ही उसे आजन्म कारावास की सजा हो चुकी है।' लेकिन इस बात की बहुत खोजबीन करने के बाद भी वह कोई पता नहीं लगा सका कि उसे हिंदुस्थान में ही पृथक् कारागृह में रवाना किया गया था, अत: उसका आगे का पता क्या है; उसे भी उसके समान ही काले पानी पर भेजा गया है या हिंदुस्तथान के ही किसी कारागृह में रखा गया है ? अत: उसका अता-पता अनुसूया यथासंभव पाने की चेष्टा करे। कंटक के प्रार्थना करते ही अनुसूया उसकी खोज में लग गई थी। लेकिन ऐसी कोई भी लड़की उस समय काले पानी के स्त्री कारागृह में नहीं थी जैसी कंटक ने बताई थी या जो उसकी बहन 'कंटकी' जैसी हो। इससे पहले भी उसके आने का सुराग नहीं मिल सका था। आठ-दस दिन पहले अनुसूया ने इस बात पर गौर किया था कि इस महीने में जो 'चालान' आया है, उसमें कंटकी नामक एक युवती है जिसे आजन्म कारावास की सजा हो गई है, और जो कंटक के अनुसार बीस के आसपास की उठती हुई कोंपल है, रूपसी है तथा जिसके सजावृत्त की जानकारी कंटक वर्णित जानकारी से बिलकुल मिलती-जुलती है। अनुसूया ने सात-आठ दिन पूर्व ही कंटक को इस बात की सूचना दी थी। उससे प्रत्यक्ष मुलाकात करके यथासंभव उसीके मुँह से अपनी जानकारी दिलाने का काम अनुसूया ने अपने जिम्मे ले लिया था। उसके अनुसार मौका पाते ही 'कंटकी' से मिलकर कारागृह की हड़बड़ी में भी उसने जितनी हो सके, उसकी जानकारी लेकर रखी थी। कंटक अत्यंत आकुलित होकर उसीकी प्रतीक्षा कर रहा था; और वह इस आशा से कि उस संदर्भ में, जैसेकि पूर्वनियोजित था, अनुसूया से आज कुछ-न-कुछ समाचार मिलेगा। वह उस विभाग के वरिष्ठ अधिकारी की नजरें बचाकर तथा नीचे के चौकीदार की मुट्ठी गरम करके बड़े साहस के साथ उनके घर आया था।

कंटक यद्यपि बंदियों का 'बाबू' था, तथापि स्वयं भी बंदी होने के कारण उस 'दाखिलाधारी' स्वतंत्र गाँव में इस तरह समय-असमय आने-जाने की अनुमति उसे नहीं थी और इसीलिए चौकी-चौकी पर संध्याकालीन नाकाबंदी होने से पहले ही उसे वहाँ से खिसकने की जल्दी थी।

उसी जल्दी में घर के भीतर प्रवेश करते ही उसने अनुसूया के सामने प्रश्नों की ऐसी झड़ी बाँधी कि उनकी सुसंबद्ध वाणी पर गौर करने और उसके अनुसार जो कुछ निश्चित संदेश भेजना था, उसकी रूपरेखा निश्चित करने का अवसर तथा अवधान भी उसे नहीं रहा। उनमें से कुछ प्रश्न बीच-बीच में पूछे गए थे, कुछ

ब्योरेवार नहीं थे, कुछ यूँ ही बार-बार दोहराए गए थे, तो कुछ आधे-अधूरे थे। कोई चौपाया चोरी-चोरी जब किसी खेत में घुसता है तब वह जो भी नजर आए उसी घास-फूस, दूब, चारा को तोड़-ताड़कर जल्दी-जल्दी मुँह में ठूँसता है, उसी प्रकार उस अल्पावधि में उसने उतना पूछा या सुना जितना पूछा या सुना जा सकता था। इतने में साढ़े पाँच का टोल हो गया, वापसी में सबसे अधिक विलंब का समय। आखिर अनुसूया को यही संदेश दिया कि 'मेरी बहन से कहिए—डरे नहीं। मैं हफ्ते भर के अंदर-अंदर अगली योजना सूचित करूँगा। तब तक धीरज रखे और खूनी बंदीगृह की यातनाओं में यथासंभव अपने स्वास्थ्य का खयाल रखे।'

कंटकी के लिए अनुसूया को इतना संदेश देकर कंटक जल्दी-जल्दी अप्पाजी को प्रणाम करके चोरी-छिपे उस घर से बाहर निकला और वृक्षों के झुरमुट में छिपी पहाड़ी के घुमावदार मोड़ को पार करते हुए आगे बढ़ता गया।

□

प्रकरण–१४

अंदमान के बंदीगृह में मालती

अप्पाजी को प्रणाम करके कंटक उन पहाड़ी वृक्षों के झुरमुट में छुपते-छुपाते तेजी से निकलता हुआ बिलकुल सही-सलामत वहाँ पहुँच गया, जहाँ दाखिलाधारियों की बस्ती के टापू की चौकी थी। चौकीवाला उसके भरोसे का आदमी था, अतः उसने भी उसे अनदेखा करके झट से आगे बढ़ने का इशारा किया। वह आरक्षित मार्ग शाम को बंद होने से पूर्व ही कंटक आगे बढ़ा और आखिर बंदियों के लिए खुले राजमार्ग को पकड़ते ही उसकी जान में जान आई।

अंदमान में काले पानी के बंदियों को लाए जाते ही उस जमाने में जिस कक्ष-कारागृह में पहले बंद किया जाता, वहाँ वर्गीकरण के अनुसार प्रथम दंडित और न्यूनापराधियों को अच्छे आचरण के कारण प्रायः छह महीनों के पश्चात् कारावास के बाहर छोड़ा जाता। जो परले दरजे के, कई बार दंडित अपराधी होते हैं उन्हें अपराध-भीषणता तथा कारागृह में उनके व्यवहार की तुलना कर एक से पाँच वर्षों के बाद आमतौर पर कारागृह से बाहर भेजा जाता। कंटक जब काले पानी पर गया तब कारागृह के बाहर छोड़े हुए बंदियों को, जो सरकारी इमारतें बनवाई गई थीं, उन्हींमें रखा जाता था। लकड़ी का काम, जंगल कटाई, ईंटों का काम, निर्माण कार्य, चाय बागान, रबड़ बागान आदि विभिन्न कामों के कारखाने अंदमान के विभिन्न इलाकों में शुरू किए गए थे, बंदी टोलियों से भेजे गए बंदी भी उन्हींमें रखे जाते। उनसे कठोर काम करवाया जाता। लेकिन कुछ निश्चित इलाकों में उन्हें खुले तौर पर विश्राम करने की, मनचाहा खाने-पीने की, चुनिंदा मित्रों से मिलने की, उन्हें लेकर अन्य इलाकों में आवाजाही करने की, बातें करने की छूट थी। उनमें से चुनिंदा दंडितों को बंदी जमादार आदि बनाया जाता तथा महीने में दो-चार रुपए जेबखर्च भी मिलता। ऐसी दशा में कुल दस-एक वर्षों तक यदि उनका व्यवहार सही रहा तो

उनमें से जो अच्छे होते, उन्हें 'दाखिला' दे दिया जाता और वे स्वतंत्र रूप से घरबार बसाकर काश्तकारी कर सकते थे। यही 'दाखिलाधारी' स्वतंत्र कहलाए जाते थे। इन दाखिलाधारियों के छोटे-छोटे गाँव बंदियों के इलाके से अलग आरक्षित बस्ती में बसाए जाते। इन 'दाखिलाधारी' स्वतंत्र गाँवों में बिना दाखिलाधारी बंदी विशेष अनुज्ञा के बिना नहीं जा सकते थे। इन दाखिलाधारियों का दाखिलाधारी बंदिनी से ब्याह रचाए जाने के पश्चात् जिसके बाल-बच्चे होते उन बाल-बच्चों को जन्मतः संपूर्ण स्वतंत्र नागरिक माना जाता। ये परिवार स्वयं खेती-बाड़ी, मवेशी-ढोर-डंगर अथवा कुछ अन्य व्यवसाय करके अपना पेट पालते। उनमें से कई करतबी अपने बलबूते पर धन्नासेठ भी बन जाते।

काले पानी पर गई बंदिनियों की भी यही अवस्था हुआ करती थी, लेकिन उन्हें तरक्की जल्दी दी जाती। उन्हें मर्दों जैसा कठोर काम नहीं दिया जाता। बंदिनी-गृह में प्रथम पाँच-एक वर्ष उन्हें कैद में रखा जाता। फिर एक विहार-स्थान में अवकाश के समय वे घूमने-फिरने जा सकती थीं। वहाँ उन पुरुषों को भी भेजा जाता जिन्हें विवाह की अनुज्ञा मिलती। सख्त पहरे में उन स्त्री-पुरुष बंदियों को उस छुट्टी में एक-दूसरे का प्रेम-परिचय दिया जाता। यह विहार-स्थल लंदन स्थित 'हाइड पार्क' और पुणे के 'बंड गार्डन' की तरह ही काले पानी स्थित 'पापियों' का प्रेमोद्यान था। उधर प्रत्यक्ष परिचय के बाद यदि कोई स्त्री-पुरुष आपस में विवाह करने का निश्चय करें, दोनों की सम्मति हो तो सरकार इस बात का निरीक्षण करती कि यह उचित है या अनुचित। फिर सरकार जिन्हें अनुमति दे देती, उनका रजिस्ट्री (पौर) विवाह कराया जाता और 'दाखिला' देकर उस जोड़े को दाखिलाधारी स्वतंत्र गाँव को रवाना किया जाता। विवाह के लिए जात-पाँत की आवश्यकता बिलकुल नहीं होती। तलाक भी कुछ निश्चित कारणों से ही दिया जाता।

कोई फिर से अपराध करे तो दाखिला रद्द हो जाता और उस व्यक्ति को फिर से बंदीगृह में बंद किया जाता। फिर बाकायदा पैरवी होती और उसे फाँसी तक की सजा भी मिलती। हत्या करने का प्रयास भी अंदमान के बंदियों के मामले में हत्या का अपराध समझा जाता। उद्दंड, अघोरी एवं अमानुषिक प्रवृत्ति के सैकड़ों आजन्म कारावास प्राप्त कैदियों को इस प्रकार कठोर अनुशासन में नहीं रखा जाता तो उस द्वीप में जीवन-सुरक्षा, शांति तथा सुव्यवस्था रखना आमतौर पर दुर्घट ही था।

अपराध विज्ञान के तीन ध्येय होते हैं—प्रतिशोध, प्रायश्चित और प्रगति। अपराधी से प्रतिशोध लेना मनुष्य की सहज प्रवृत्ति है। 'दाँतों के लिए दाँत और आँखों के लिए आँख' यह यहूदियों का धर्मदंडक था। जिस अवयव द्वारा अपराध

किया, उसका उच्छेद करना कुछ मामलों में मनुस्मृति, विश्व के प्राचीन ग्रीक प्रबंधों, पठान जैसी अत्यंत बर्बर जातियों में 'जिसने हत्या की वह यदि नहीं मिला तो उसीके खानदान के किसीको जान से मारना' जैसा रूढ़ाचार—ये सभी प्रतिशोध के सामान्य एवं उग्र रूप हैं। उसके आगे का विवेक इस प्रकार है कि शासन अपराधी से कम-से-कम प्रतिशोध, बदला ले—यही उद्‌देश्य रखते हुए बस इतना ही दंड दे कि जिसके द्वारा उसपर धाक जमे। इसके आगे की सीढ़ी यह निश्चित की गई कि चोर का हाथ कलम न करके, वही हाथ अन्य उपयुक्त कामों के लिए रखा जाए और उसे बस इतना ही दंड देना उचित है कि चोरी करने से डर लगा रहे। दंड के डर से वह चोरी से दूर भागे और उसे देखकर अन्य कैदियों को भी दहशत हो। प्रतिशोध ध्येय नहीं, प्रायश्चित जैसा दूसरा ध्येय ही इष्टतर प्रतीत होने लगा। उससे भी अधिक अपराधी का मन मात्र दंड के भय से नहीं, अपितु स्वेच्छा से ही अपराध से परावृत्त हो। वे हालात ही बदलें जिनसे सुशील मन भी अपराध करने को विवश हो जाता है। प्रशिक्षा, सत्संग, मनोविकास आदि के पोषण द्वारा उनके मन को ही समाजशील एवं सुसंस्कृत बनाएँ; उनके स्वभाव, उनकी मनोवृत्ति में ही सुधार करें जिससे उनमें मानवता की भावना उत्पन्न हो—अपराधियों के साथ व्यवहार का यह तीसरा उद्‌देश्य होना चाहिए।

आमतौर पर देखा जाए तो अंदमान के अपराधियों से पेश आने संबंधी जो नीति तीस-चालीस वर्ष पहले बनाई गई थी उसमें इन तीनों उद्‌देश्यों का अवैज्ञानिक ही सही, परंतु सोद्‌देश्य मिश्रण किया गया था। यह हमारे द्वारा वर्णित काले पानी के दंडितों के तत्कालीन वर्णन, श्रेणी विभाजन, तरक्की के क्रम, सुधारणीय और दुःसुधारणीय निकषों के अनुसार प्रत्येक की पात्र-अपात्रता के अनुसार कठोर अथवा परिवर्तनशील व्यवहार-नीति से स्पष्ट होगा।

जिन बंदियों ने दस-बारह वर्ष कठोर अनुशासन में रहते हुए सख्त काम किया है और किए हुए का यथेष्ट प्रायश्चित करने से उनके शील में सुधार होने का अहसास होता है, उन्हें 'दाखिला' देकर अंदमान में स्वतंत्र रूप से रहने की अनुज्ञा प्राप्त होने के पश्चात् उनके गाँव बसाने में और उन सुधरे हुए कैदियों के गाँव में ऐसे अन्य दंडितों की, जिनके सद्‌वर्तन के अभी बारह वर्ष पूरे नहीं हुए हैं, खुल्लमखुल्ला आवाजाही पर पाबंदी लगाने में भी अधिकारियों की प्रवृत्ति होती कि इस प्रकार के पृथक्करण द्वारा इन चंड प्रकृति बंदियों के उपद्रवों से, जो अभी सुधरे नहीं हैं, सुधरे हुए बंदी सुरक्षित रहें और उनकी कुसंगति से उन दाखिलाधारियों का अथवा वहीं पर जन्मी उनकी नई पीढ़ी का अधःपतन न हो।

कंटक की भी काले पानी में पाँच-एक वर्ष से रहने के बावजूद अभी तक

बंदी वर्ग में ही गणना होती थी। कक्ष-कारागृह में चंद दिनों तक कठोर हस्तश्रम करने के बाद उसे लिखने का काम मिल गया। उधर अपने बहुत ही बढ़िया बंदीवासीय व्यवहार के कारण छह महीनों के पश्चात् उसे कारागृह से बाहरी इलाके में लेखक के ही काम पर भेजा गया। उसने अपने अंग्रेजी लेखन-पठन में भी प्रगति की, चोखा काम किया, पूरा अधिकारी वर्ग उसकी 'वाहवाही' करने लगा। जंगल कटाई का काम जो अंदमान में अत्यंत कठिन तथा कष्टप्रद समझा जाता था, उसपर उसकी नियुक्ति गिनती, हिसाब तथा देखरेख करनेवाले 'बंदी बाबू' (convict clerk) के नाते की गई और उसके अधिकार में सौ सश्रम बंदियों का दल घने जंगल की कटाई के काम पर भेजा जाने लगा, परंतु फिर भी काले पानी पर आए उसे चूँकि पाँच ही वर्ष हुए थे, अत: नियमानुसार उसकी गणना बंदी वर्ग में ही की जाती थी और इसीलिए दाखिलाधारियों की उस बस्ती में जब वह चाहे, तब आने-जाने की अनुज्ञा उसे नहीं थी। अप्पाजी के परिवार से जंगल कटाई के लिए आते-जाते संयोगवश परिचय हो गया था और अब उनसे भाईचारे का नाता भी जुड़ गया था। लेकिन वह नाता भी अंतस्थ रूप में ही था और इसलिए आज भी उस बस्ती में वहाँ के चौकीदार के अंतस्थ फुसलाने से ही वह हमेशा की तरह चोरी-छिपे मिलने गया। वह मुलाकात उसने शाम के समय चौकी पर आवाजाही रुकने से पहले ही समाप्त कर ली तथा अप्पाजी से विदा लेकर वह इस तरह पहाड़ी पर से चोरी-छिपे चलकर अंत में जब उस सड़क पर पहुँचा, जो बंदियों के लिए खुली थी और उसके जंगल कटाई के दल का निश्चित रास्ता था, तब उसकी जान में जान आई।

निश्चिंत मन से अपनी राह चलने लगते ही कंटक के मन में उन विचारों का चक्र घूमने लगा जो बहुत दिनों बाद अनुसूया से मालती संबंधी जानकारी मिलने से जुड़ा था। पिछले पाँच वर्षों का संपूर्ण इतिहास उसकी आँखों के सामने आ खड़ा हुआ। इन दो विषयों में ही उस दिन अप्पाजी ने सन् १८५७ के स्वाधीनता संग्राम में हिस्सा लेने का जो किस्सा सुनाया और उस अभिज्ञान के साथ उस परिवार के संबंध में उसके हृदय में जो एक राष्ट्रीय आदर उपजा, उसके बारे में भी सोच रहा था। उन्हीं विचारों के अनुषंग के साथ उस परिवार के साथ कंटक का किस प्रकार परिचय हो गया—वह किस तरह बढ़ता गया—वह सारा चरित्र भी उसके इस विचार चक्र में गुँथ गया। सबसे महत्त्वपूर्ण चिंता थी कि 'आगे क्या करना है?' फिर वह भविष्यकालीन घटना—अतीत की उन स्मृतियों को पुन:-पुन: दूर हटाती हुई उसे यह आगाह करती हुई उसके सामने आ धमकती कि 'पहले अपने बारे में कुछ निर्णय ले लो।'

ये तमाम विचार विषय-क्रम से उसके मन में नहीं आते थे, अपितु बीच-

बीच में आगे-पीछे—इस विषय में यह, उस विषय में वह—इस तरह सबकुछ जटिल गुत्थमगुत्था रूप से आ रहा था। डेढ़-दो मील के रास्ते पर तेजी से चलते हुए कंटक इन विचारों की गुत्थियों में बिलकुल फँस गया था। विचारों की गुत्थमगुत्था को सुलझाकर यदि ब्योरेवार विषय-क्रम लगाया जाय तो मालती के मामले को साधारण तौर पर इस तरह संकलित किया जा सकता है—

अप्पाजी के परिवार से कुछ महीने पहले परिचय होने के बाद कंटक को इस बात का पता चला कि उनकी बहू अनुसूया स्त्री-बंदीगृह की एक 'दाखिलाधारी' जमादारन है। काले पानी पर आते ही उसने इस बात की बारीकी से छानबीन की कि मालती अंदमान के महिला-बंदीगृह में आई है या नहीं अथवा उसे आजन्म कारावास की सजा होने के बाद हिंदुस्थान के ही किसी कारागृह में रोका गया है। लेकिन उस महिला-बंदीगृह पर सख्त पहरा था और उसपर इतना पक्का बंदोबस्त कि पुरुष बंदियों में से कोई भी उधर नहीं आ सके। अत: कंटक को उस बात का कुछ भी सुराग नहीं मिला था। जो थोड़ी-बहुत जानकारी उसे मिली थी, उससे यही पता चला था कि कंटकी नामक कोई भी बंदिनी हिंदुस्थान से इस बंदीशाला में नहीं आई है। जब अनुसूया से उसने यह जानकारी छह महीने पूर्व ली थी तब उसे निश्चित रूप में यही सुनने को मिला था कि कंटकी उस महिला-बंदीगृह में नहीं आई है। इसीलिए मालती को आजन्म कारावास की सजा होने के बाद उसे यही चिंता सता रही थी कि उसका क्या हाल है। उसकी याद आते ही उसे खाना-पीना अच्छा नहीं लगता। वह उसे जब प्रत्यक्ष रूप में मिला करती थी, तब भी वह उसके स्पर्श से इतना रोमांचित नहीं होता था, लेकिन अब उसकी स्मृति मात्र से उसका रोआँ-रोआँ खड़ा हो जाता। जब हमें भोजन प्राप्त होता है तब उसका स्वाद आनंदित करता है, पर जब हम दाने-दाने के लिए मोहताज होते हैं तब उस भोजन की स्मृति मात्र से ही वह सैकड़ों गुना अधिक जायकेदार लगता है। ऐसे ही आजकल उसके मन में मालती के उस स्पर्श की स्मृति मात्र से केवल स्नेह भावना जाग्रत नहीं होती, अपितु उपभोग की भावना का उद्दीपन भी होने लगता। 'प्रत्यक्ष रूप में इतने निकट होते हुए भी न जाने क्यों मैं उसे अपनी बाँहों में भरने का साहस नहीं जुटा पा रहा।' इसी बात के लिए तब वह रह-रहकर मन मसोसकर रह जाता था। आखिरी रात में उस मुसलिम गुंडे को, जो उसे सता रहा था, जान से मार डालने के बाद जब उस भयंकर साहस के परिणाम से बचने के लिए किशन मालती के साथ उस शिवालय के घुप अँधेरे में जाकर छिप गया था, उस रात तो मारे भय के थरथर काँपती, चौंकती हुई मालती उसके साथ सोने की जिद पकड़कर बिलकुल उसके सीने से सटकर सो गई थी। तब उस रात जिस प्रकार उसकी लटें उसके गालों पर लहरा रही थीं, अब उसे

यही आभास हुआ कि उसके मुख पर तथा गालों पर वे अब भी लहरा रही हैं। उसका समूचा अंत:करण काम-कंपित होकर थरथराने लगा, वह पश्चात्ताप से छटपटाने लगा कि 'हाय! उस रात व्यर्थ ही मात्र संयम तथा भीरु संकोच से अभिभूत क्यों हो गया? अमृत का प्याला इतना समीप था, पर उसका पान करना मैं भूल ही गया। उसके संग-सुख से आजीवन वंचित रह गया।'

प्रेमी व्यक्ति के प्रत्यक्षत: निकट होने पर अनुरक्त प्रणयी जनों के हृदय पर उनके आलिंगन में भी उसकी इच्छा-अनिच्छा का दबाव कहीं-न-कहीं होता ही है, पर जब उस प्रेमी व्यक्ति की स्मृतियों से ही उसपर अनुरक्त प्रणयी कल्पना मंदिर में विचरने लगती है तब उसके मन की उमंगें अनिवार्य रूप से प्रकट होने लगती हैं। मन में यह धारणा होने में कोई दिक्कत नहीं होती कि सबकुछ अपना मनचाहा ही घट रहा है। उसकी अतृप्त तथा अव्यक्त वासना सारा संकोच त्यागकर अपनी कामनापूर्ति कर सकती है। उस प्रेमी व्यक्ति के सामने रहते हृदयगत भाव व्यक्त करने में जो लाज आती थी, वह उसकी स्मृति-मूर्ति के सामने दिल खोलकर व्यक्त कर सकते हैं। अपनी सनक के साथ उसकी धुन भी अपनी इच्छा के अनुसार मिला सकते हैं।

कंटक का भी अपनी उस एकांत छटपटाहट में यही हाल था। मालती जब प्रत्यक्ष रूप में उसके सामने थी, तब उससे संबंधित विषयी भावनाएँ उसके अचेतन या असंज्ञ मन में जो जड़ पकड़ती होंगी सो होंगी, लेकिन उसके संज्ञ या चेतन मन से दिल खोलकर अपना हृदयत विचार व्यक्त करने में उसे लज्जा महसूस होती। परंतु अब वे भावनाएँ विरहा के अँसुवन से पनियाते-पनियाते अंकुरित-पल्लवित होकर उसकी संज्ञ मनोभूमिका में भी लहरानी लगीं। प्रथमत: उसके कल्याणार्थ तथा अपना कर्तव्य समझकर उसे संकटमुक्त कर उसे सुखी करने के लिए उसने अपनी जान खतरे में डाल दी। लेकिन अब तो उसकी भलाई के लिए ही नहीं, अपितु उसके प्राप्त्यर्थ एवं उसके संग-सुखार्थ भी वह तड़पने लगा। उसे संकटमुक्त करने के लिए बेझिझक अपनी जान खतरे में डालने के लिए वह तत्पर हो गया।

और आज अनुसूया द्वारा बताई गई खबर के अनुसार मालती की जान उस बंदिनी-गृह में भी खतरे में थी। उसकी मुक्ति के लिए कंटक को भी अपनी जान भयंकर संकट में डालनी होगी, जैसेकि पहले हुआ था। अबकी बार यह कहने की अपेक्षा कि किसी और ने उसकी जान खतरे में डाली है, वह अपने आप ही अपनी जान खतरे में डालनेवाली थी। उसने स्वयं अनुसूया द्वारा इस तरह का तड़पता-तिलमिलाता संदेश भेजा था।

कंटक ने अनुसूया की नियुक्ति 'कंटकी' की खोज करने के लिए पाँच-छह

महीनों से की थी। परंतु उस समय उसे ज्ञात हुआ कि उस बंदीगृह में कंटकी नामक आजन्म कारावास प्राप्त कोई भी नारी नहीं आई है। तथापि उसके बच्चों—मोहन-उषा को उसके घर पढ़ाने के लिए कंटक का हमेशा आना-जाना रहता। अनुसूया को बहन मानकर वह उसे भैयादूज व किसी तीज-त्योहार के बहाने हमेशा कुछ-न-कुछ उपहार देता। अपने सुशील, स्नेहमय स्वभाव तथा अपनी सुविध मेधावी योग्यतावश, नाना विषयांतर्गत सार्वजनिक हिताहित की आस्था के कारण अप्पाजी को भी वह प्रिय था। जिस दिन उस परिवार से कंटक की उक्त भेंटवार्त्ता हुई थी, उससे आठेक दिन पूर्व ही अनुसूया को यह खबर मिली थी कि हिंदुस्थान से आजन्म कारावास दंड प्राप्त कंटकी नामक अपेक्षित बंदिनी अंदमान बंदीशाला में आई है। उसने कंटक को यह सूचित किया था। उस दिन उससे प्रत्यक्ष मुलाकात का अवसर पाकर अनुसूया जमादारन ने, बंदीगृह की उस चोरी-छिपी भेंटवार्त्ता में जल्दी-जल्दी जितना पूछ सकती थी, उतना पूछ लिया। उसपर कंटकी ने भी जैसे पहले हिंदुस्थान में धर-पकड़ होते समय कंटक के साथ जो नीति निश्चित की थी, उसके अनुसार 'मालती' के नाते से कोई भी पूर्ववृत्त उजागर न करते हुए इतना ही बताया कि वह कंटक की बहन है, उसका अपहरण करनेवाले एक दुष्ट की हत्या के कारण कंटक और उसे आजन्म कारावास काले पानी की सजा हो गई। दंड मिलने के पश्चात् उसे कंटक से अलग करके हिंदुस्थान में किसी अन्य कारावास में ठूँस दिया गया और वहीं पिछले पाँच साल से वह बेचारी सड़ती-कुढ़ती, रोती-सिसकती पड़ी थी। काफी दिन तक उसे इस बात का पता नहीं था कि कंटक का क्या हाल है, लेकिन आगे-आगे बंदियों के मुँह से यह सुराग मिला कि उसे आजन्म कारावास के लिए अंदमान भेजा गया है। तब से उसने सरकार के पास धरना दिया कि हिंदुस्थान के उस बंदीगृह में इतनी कठोर यातना-यंत्रणाओं में दिन गुजारने की अपेक्षा उसे अंदमान स्थित काले पानी पर ही भेज दिया जाए। आखिर उसके अनुसार उसका चालान हो गया और उसे काले पानी भेजा गया। इस तरह सजा-प्राप्ति के बाद का अपन्ना पूर्ववृत्त भी कंटकी ने अनुसूया को संक्षिप्त रूप में बताया।

फिर उसी भेंटवार्त्ता में कंटकी ने अनुसूया से कहा, "जमादारन बीवीजी, मैंने अभी उम्र के बीस साल भी पार नहीं किए। लेकिन जो सौ साल जीवित रहता है, उसके हिस्से में भी सहसा वे असह्य यातनाएँ कम संत्रास नहीं देतीं जो मेरे भाग में आ चुकी हैं। इतना छल, पीड़ा, यंत्रणाएँ, विडंबना, दुर्दशा, संत्रास, दुःख मैंने आज तक सहा है; और बहनजी, विशेष यह कि मैं भगवान् के सामने कहती हूँ, मेरा अपना ही दोष जो घटित हुआ, उसे छोड़कर अन्य कोई भी अपराध मेरे हाथ से नहीं हुआ कि जिसके लिए मुझे इतनी प्रताड़ना सहनी पड़े। और वह जो मेरा

एकमेव दोष था वह है मेरा यह निगोड़ा रूप—मेरी सुंदरता। मैं जहाँ-जहाँ भी जाती हूँ, वहाँ-वहाँ यही मेरे रास्ते का काँटा बन जाता है। इस रूप-सुंदरता के कारण मैं अपनी अम्मा के घर से बंदीगृह में सड़ने के लिए आ गई। इसी रूप की वजह से बंदीगृह में भी जिनके हाथों मैं लग गई, उन्होंने इसी वजह से मुझे असह्य यातनाएँ दीं बहनजी, अब मेरा जीना हराम हो गया है। हिंदुस्थान के बंदीगृह में ही मैंने एक बार आत्महत्या करने का प्रयास भी किया, लेकिन वह असफल हो गया और मुझे छह महीने हथकड़ी तथा कोठरी में बंद रखने का दंड मिला। इन यातनाओं से मुक्ति पाने की चेष्टा करने से ही मुझे अधिक यातनाएँ दी जाने लगीं। आखिर एक ही आशा-तंतु शेष बच गया था। उससे लटकते रहने के कारण मेरा जीवन मौत की खाई में ढहने से अस्थायी रूप में बच गया। वह आशा-तंतु है जज साहब द्वारा दिखाई हुई एक आश्वासक संभावना। उन्होंने कहा था, 'काले पानी पर कुछ वर्षों के पश्चात् तुम्हें मुक्त कर दिया जाएगा और फिर उस इलाके में ही क्यों न हो परंतु तुम अपने प्रिय साथी के साथ पारिवारिक सुख का भोग कर सकोगी।' जज साहब के ये शब्द अमृत की फुहारों की तरह मेरे मन की नारी-सुलभ लालसा को पुनः-पुनः अंकुरित करते थे।

इतने में मुझे पता चला कि कंटक भी अंदमान में ही है। इस आतुरता के साथ कि आत्मघात से पूर्व कम-से-कम एक बार तो उससे भेंट हो जाए, मैं लाख कोशिशें करके काले पानी पर आ गई। परंतु इधर देख रही हूँ कि इस घिनौनी गंदगी में ही मुझे बरसों सड़ना-गलना होगा। बहनजी, अब मैं एक दिन भी इस प्रकार गंदगी का कीड़ा बनना नहीं चाहती। इस देह से अब मैं ऊब चुकी हूँ। आप कंटक की चिट्ठी ले आई हैं, इसलिए सिर्फ आपपर विश्वास करती हूँ। सैकड़ों दिखावटी अपना कहनेवालों ने मुझे इतनी बार धोखा दिया है कि मैं यह दावे के साथ तो नहीं कह सकती कि आप मुझसे विश्वासघात नहीं करेंगी; आपको मैं खरी-खरी सुना रही हूँ, इसका आप बुरा मत मानिएगा; पर मैं आपको खोटा नहीं कहती, अपने भाग्य को कहती हूँ। फिर भी आपकी गोद में अपना सिर रखती हूँ—काटेंगी इसे? काटिए। मैं आपको अपनी माँ समझती हूँ, आपके पैरों पड़ती हूँ। मेरे साथ विश्वासघात मत करिएगा। अन्यथा कंटक बाबू के नाम पर मेरा अंतर्मन, जो मैंने अपना दिल चीरकर आपको दिखाया है, विश्वासघात से सरकारी अफसरों के कानों तक पहुँचाया जाएगा और मुझपर नई-नई मुसीबतों का, यंत्रणाओं का पहाड़ टूट पड़ेगा। आपसे यों डरने की आवश्यकता नहीं है न?

अच्छा, फिर कंटक बाबू को यह सूचित कीजिए कि यदि वे तीन-चार महीनों के अंदर-अंदर मेरी मुक्ति कर सकें तभी मैं जीवित रहूँगी। अब मैं इतनी

कठोर, निडर, इतनी कृत्या बन गई हूँ, दुष्ट-से-दुष्ट लोगों की संगति की मदिरा जबरदस्ती पिलाई जाते-जाते मैं इतनी दुष्ट हो गई हूँ कि अपनी मुक्ति के लिए कुछ भी साहस, कपट, क्रूरता करने में आगा-पीछा नहीं देखूँगी। परंतु यदि इन चार-छह महीनों में इस बंदीगृह से ही नहीं अपितु इस गँदली दुर्दशा से मेरी मुक्ति नहीं होती, तो आत्मघात के प्रयास मैं तब तक निरंतर करती रहूँगी जब तक वह साध्य नहीं होता। और इस कारागृह के नियमानुसार पाँच-दस साल मैं यहाँ पर बिलकुल जीवित नहीं रहूँगी। इसे पत्थर की लकीर समझिए। बहनजी, मेरी यह योजना कंटक बाबू को बताने की, और किसीको कानोकान खबर तक न होने देने की—ये दो उपकार करने की कृपा आप मुझपर करेंगी न? हाँ, एक और महत्त्वपूर्ण बात—कंटक बाबू से मेरी प्रार्थना है कि यदि वे सुख-चैन की जिंदगी बिता रहे हैं तो मेरे इस संदेश की वजह से ऐसा कोई काम न करें जिससे उनकी जान फिर से खतरे में पड़े। परंतु सच कहूँ तो मेरी पहली प्रार्थना कि मुझे छुटकारा दिलवा दें—मेरी दूसरी प्रार्थना से बिलकुल ही विसंगत है न? नहीं, नहीं माताजी, मुझसे भूल हो गई। मेरी पहली प्रार्थना उनसे बिलकुल नहीं करिएगा। बस इतना ही कहिएंगा कि मैं यहाँ मजे में हूँ और आपकी खुशहाली सुनकर मुझे बड़ी खुशी हुई। आपको मेरी कसम बहनजी, बस यही समझिए कि मैंने जो कुछ भी कहा, वह कहा ही नहीं। वरना मेरी मुक्ति के लिए कंटक बाबू कुछ-न-कुछ जोखिम उठाएँगे और फिर उन्हें लेने के देने पड़ जाएँगे। क्यों? अब आपको यह भेंटवार्त्ता समाप्त करनी ही होगी न? अच्छा, तो मैं चलती हूँ—बिलकुल गुपचुप इस दरवाजे से छिप-छिपकर खिसकती हूँ। पर बहनजी, मैं हाथ जोड़ती हूँ, आप इसी तरह फिर कभी-कभी मिलती रहेंगी न? कोई आ रहा है? देखिए, मैं चली।''

अनुसूया जमादारन ने कंटकी की भेंटवार्त्ता में बिखरे-बिखरे कई वाक्य कंटक को बताए, उनका अपने मन में सुसंबद्ध संदर्भ जोड़ते हुए कंटक ने मालती की उस भेंटवार्त्ता का वर्णन मन-ही-मन संकलित किया, उसे बार-बार दोहराया, उस तन्मय अर्धचेतनावस्था में बीच में ही उसने अपनी अँगुलियाँ ऐसे नचाईं, जैसे उसके विचार से उस समय मालती ने हाथ चमकाए होंगे, तथापि उसी तन्मय धुन में तेज गति से अपनी राह चलता रहा।

इतने में उसे स्मरण हुआ कि जब उसने अनुसूया से पूछा कि मालती कारागृह में क्या काम करती है, उसका स्वास्थ्य कैसा है तब उसने उसकी दुर्दशा का हृदयद्रावक वर्णन किया। बंदीशाला में भोजन बनाने के काम में उसे डाला गया था। वहाँ का चित्र उसके दृष्टिपटल पर साकार हो गया। उसके सामने मालती का यह रूप उभरा—वह सूखकर काँटा हो गई है, वह घटिया किस्म का मोटा, खुरदुरा

चीथड़ा जो मुश्किल से घुटनों तक पहुँच रहा है पहने हुए है। मोटी-झोटी, खुरदुरी बंदीगृह छाप चोली पहनी हुई है। सप्ताह में बस एक बार कलछी भर जो तेल मिलता है, वही बचा-बचाकर यूँ ही बालों को चुपड़ती है जिन्हें सँवारने के लिए उसके पास समय नहीं है, जो गुँथे हुए हैं और पसीने से चिपचिपे हो गए हैं। उसके सामने साकार बनी मालती ने उन गंदी, बीभत्स, क्रूर, चुड़ैल जैसी सैकड़ों बंदिनियों के संग अपने बालों का ज्यों-त्यों करके जूड़ा बनाया है, उसके बालों में जूओं, लीखों की भरमार है। शरीर में दबे ज्वर के साथ ही वह बंदीगृह की टीन की एक तप्त छपरी में आँवे जैसे धधकते बड़े-बड़े भीमकाय चूल्हों की तपिश में, मुट्ठी में न आनेवाले लोहे के प्रचंड बरतनों में चावल, घुटना भर ऊँचाई तक आटे के ढेर को कूट-कूटकर उनकी दो-दो सौ रोटियाँ सेंकती हुई, पूरा बदन आटे से सना हुआ—मालती का ऐसा ही करुणाजनक चित्र साकार हुआ। उसी दिन भोजन बनाने के काम पर नियुक्त स्त्री-वॉर्डर ने मालती को सुस्ती के आरोप का बहाना बनाकर बहुत ही गंदी-गंदी गालियाँ दी हैं, क्योंकि वह वॉर्डर मालती से चोरी-छिपे चार-पाँच सेर आटा माँग रही थी, परंतु मालती अधिकारी की चिट्ठी के बिना देने की चालाकी करने के लिए राजी नहीं हुई। मालती ने भी प्रत्युत्तर में गालियाँ बकीं। वह भी अब कितनी सारी नई-नई गालियाँ सीख गई थी। इसके साथ ही दो-तीन दुष्ट महिला-वॉर्डरों ने उसे तड़ातड़ कई तमाचे रसीद किए हैं। इतने में अनुसूया जमादारन के उधर आ जाने से मालती का पक्ष सत्य सिद्ध हो गया। वरना बिना किसी अपराध के मार खाने के बाद भी उसीको उद्दंडता के लिए वे घसीटकर अधिकारी के सामने खड़ा करतीं और उसे सजा दिलवातीं।

कंटक के मनःचक्षुओं के सामने उन राक्षसियों के उसे तड़ातड़ झापड़ रसीद करने के कारण दहाड़ें मारकर रोती, क्रोध से फौं-फौं करती, उफनती, बेबसी से कुढ़ती मालती ऐसी खड़ी रही जैसे वह रास्ता रोक रही हो। करुणार्द्र कंटक की आँखों से सावन-भादों की झड़ियाँ लग गईं। उसकी दृष्टि वाष्पधूसर हो गई। परंतु फिर भी उसके कदम सीधे उस सड़क को तेजी से काटते हुए आगे बढ़ रहे थे।

इस तमाम करुण वृत्तांत की दुःखद स्मृतियों से आप्त उसके चित्त में पनियाती हुई वाष्पाकुल दृष्टि के सामने कुछ भी आगामी योजना तैयार नहीं हुई। उसका अगला निर्णय निश्चित ही था—चाहे धरती फटे या अंबर टूटे, अब अपनी और मालती की बंदीवास से मुक्ति करानी ही होगी। उसका आत्मघात टालना ही होगा। जीवन के दो दिन ही सही, उस साहस के कारण जिंदगी के उन्हीं दिनों को आखिरी दिन सिद्ध होने पर—मरने से पहले मालती की बाँहों में, उसके प्यार की प्रगाढ़ मूर्च्छा में स्वर्ग-सुख के आनंद का भोग करके बिताना होगा। उसे सुखी करना है

और स्वयं भी सुखी होना है।

इतने में विचारों के इस असंयत कोलाहल में कोई मामूली सी अड़चन अकस्मात् सूझी। बड़े-बड़े मनोरथों की दौड़ जिस प्रकार अकस्मात् ठिठकती है, छोटे से पोर जितना बिच्छू किसी महारथी वीरपुंगव को भी जिस प्रकार झट से कराहने को विवश करता है, उसी तरह एक विचार कंटक के स्वर्ग-सुख की उस बहार को डंक मार गया। 'प्रगाढ़ आलिंगन में उसे सुखी करना है, कम-से-कम दो दिन उसकी संगत का सुख भोगा जाए,' इस रंग में उसका मन रँग ही रहा था कि मन-ही-मन किसीने उसे झटका दिया, 'अरे बावले, वह कितनी सुंदर, बिलकुल अप्सरा-सी, चाँद का टुकड़ा है। और तू? कितना कुरूप, भद्दा, बेढंगा। भई, उससे मिलन होना तुम्हें तो स्वर्ग का अनुभव दिलाएगा, पर उसे? अकस्मात् उसकी उमंगों पर ओस सी पड़ गई। पल भर के लिए किशन चेतनाशून्य हो गया, उसका दिल टूट गया। सुंदरता मालती के लिए अभिशाप बन गई और कुरूपता किशन के लिए। उसके मन को खंगर लग गया। पर यह विचित्र विचार मन में कौंधते ही उसकी हँसी छूट गई। हाँ, परंतु गति को खंगर नहीं लगा था, स्वयंचलित यंत्रवत् उसके कदम तेजी से रास्ता नापते हुए आगे बढ़ रहे थे। यद्यपि उसके मन को इस बात का विस्मरण हो गया था कि सरकारी नियमानुसार निश्चित समय पर बंदी का इमारत में पहुँचना अनिवार्य है, तथापि उसकी टाँगों के ज्ञान-तंतुओं की स्मृति लुप्त नहीं हुई थी।

उसका कमजोर, खंगर लगा हुआ मन यथासंभव अनिष्ट से भी इष्ट तात्पर्य निकालने लगा—'फिर भी चिंता किस बात की? वह मेरे जैसे कुरूप, बदसूरत पर अनुरक्त नहीं होगी पर वह मेरे निर्मल स्नेह से कभी वंचित नहीं होगी। वह स्वयं इतनी सुशील तथा सुरुचिपूर्ण है कि रूप से अधिक शील की ओर उसका आकर्षण है। उसका संग-सुख मुझे भले ही न मिले पर उसका, उसके सान्निध्य का सुख तो मेरे लिए दुष्प्राप्य नहीं होगा। इसमें कोई संदेह नहीं कि कम-से-कम उसकी तो उसे भी अभिलाषा है।'

इस प्रकार विविध भाव-भावनाओं के कोलाहल में उसका मन इतना उलझ गया था कि उसकी आँखों ने उसके मन को ऐसे झकझोरा जैसे कोई पहरेदार झंझोड़कर जगाता है, 'सावधान बच्चू! देखो, बंदियों की वह इमारत सामने नजर आने लगी। देखो, यह निश्चय करते-करते ही कि क्या करना है, रास्ता समाप्त हो गया? पर वह मार्ग कौन सा है कि क्या करना है?'

दरअसल किशन ने कोई आज ही यह निश्चय नहीं किया था कि पूरा जन्म काले पानी के बंदीगृह की गंदगी में सड़कर नहीं बिताना है। मौका पाते ही कैद की

बेड़ियाँ तोड़कर यहाँ से खिसकना है, यहाँ से पट्टा तुड़ाना है—काले पानी पर आते ही उसने यह प्रण किया था। रफीउद्दीन जैसे अघोरी को अपनी जानी दुश्मनी की पहचान न कराते हुए इसी उद्देश्य से तो किशन ने अपने निकट ले लिया था। पिछले पाँच सालों में उसके साथ काले पानी पर इसी योजना की गुप्त रूप में उसने कई बार चर्चा भी की थी और उस चर्चा के अनुसार ही जंगल कटाई के काम में ही अपनी नियुक्ति करा ली थी। सौ-डेढ़ सौ बंदियों का वह बंदी बाबू तो था ही। हस्त-परहस्ते तिकड़मबाजी करके चतुराई से रफीउद्दीन को भी उसने उस काम पर अपने अधिकार में भरती करवा लिया था। परंतु उसे मालती का कोई सुराग नहीं मिल रहा था। इसलिए उस साहस के बारे में उसने इतना ऊपर सिर नहीं उठाया था। परंतु आज उसका मन ऐसा साहस करने के लिए उद्यत हो रहा था। उसका कारण था मालती का निर्णायक संदेश, उसकी दुर्दशा और आत्मघात की योजना की अत्यंत चिंताजनक खबर।

काले पानी पर बंदीवास के आजन्म कारावास की मोटी सी बेड़ी तोड़ने का साहस कोई गुड़िया का खेल नहीं है। किशन को इस बात का ज्ञान था कि यह बात मात्र मुँह से शेखी बघारनी नहीं है, अपितु जान हथेली पर लेकर ही जो इस काम में हाथ डालेगा उसीका वह साहस है। वह आतंक उसका दिल जला रहा था, इसलिए आज तक वह सिर्फ योजना बनाते-बनाते धीरे-धीरे उस दिशा की ओर मुड़ रहा था। परंतु पासा छनछनाते हुए और उसे फेंकने की हिम्मत न रखनेवाले जुआरी की तरह वह कोई ऐसा कदम उठाने से डर रहा था जो सीमा के बाहर हो। आज उसने वह कदम उठाने की ठान ली थी। वह साहस चाहे कितना भी जानलेवा क्यों न हो, अब उसमें किसी प्रकार की ढील या विलंब करने का प्रश्न नहीं है। उसने मन-ही-मन निश्चय किया कि आज उसी तरह की अत्यंत आवश्यक चर्चा रफीउद्दीन के साथ करनी होगी।

परंतु मालती से संबंधित जानकारी? उस दुर्जन को—रफीउद्दीन को सूचित करे या न करे? कदापि नहीं। किशन ने लगे हाथ निश्चय किया। उसके संबंध में एक अक्षर भी कम-से-कम अभी तो रफीउद्दीन को नहीं बताना है। उसे इतना भी नहीं बताया जाए कि वह अपने साथ अपनी मालती को भी मुक्ति दिलाना चाहता है।

मन-ही-मन उस नाम का उच्चारण करते ही उसने खट से अपनी जीभ काटी। थोड़ी देर पहले से वह मन-ही-मन मालती विषयक स्मृतियों को दोहराते समय मालती जैसे प्यारे-प्यारे नाम का ही आयोजन करता आया था। कंटकी जैसा नाम लेते ही वे स्नेहिल भाव जाग्रत नहीं होते जो मालती नाम से ही संभव तथा संबद्ध थे। अतः जब-तब मन-ही-मन उसका स्वगत जारी था और वह उसे मालती

ही संबोधित कर रहा था। परंतु यह नाम जो मन में लबालब भरा हुआ है, होंठों पर छलके तो अपने और उसके अज्ञातवास के सारे रहस्य का भंडा फूट जाएगा जो आज तक छिपाकर रखा हुआ था। रफीउद्दीन की भी पुरानी दुश्मनी फिर से धधक उठेगी। उसकी माँ से उसके (किशन के) पहले मुकदमे का सारा संबंध उजागर होगा। व्यर्थ के झमेले अकस्मात् खड़े रहेंगे। वह अपने आपसे ही बड़बड़ाकर यही रट लगाता रहा ताकि फिर से भूल न जाए, 'मैं कंटक-कंटक। वह मालती—नहीं, कंटकी। कंटकी, मेरी सहोदरी कंटकी।'

और इमारत के अहाते में उसके कदम रखते ही बंदियों को इमारत में लौटने की सूचना देनेवाला रात की घंटी का पहला टोल घनघानाने लगा। 'आखिर समय पर पहुँच ही गया' कंटक को राहत मिली और वह धम् से द्वार के आगे ही पड़े एक बक्से पर टाँग पर टाँग रखकर बैठ गया।

थोड़ी देर बाद बंदियों के भोजन के पश्चात् कंटक बाबू इमारत के काफी आगे खुले स्थान पर टहलने लगे। इमारत के बंदियों को कुछ दूरी तक खुलकर घूमने, फिरने, बोलने, बैठने का तब तक अवसर था, जब तक रात में सोने की घंटी नहीं बजती। उसपर कंटक बाबू वहाँ के मुखिया बाबू जो ठहरे! थोड़ी देर अकेले टहलने के बाद वह एक टीले पर खड़ा हो गया, जहाँ से दूर-दूर तक साफ-साफ नजर आ रहा था।

''उद्दीन! ओ रफीउद्दीन!'' इसके साथ ही 'जी, जी, कंटक बाबू!' कहते हुए रफीउद्दीन बहुत ही आतुरतापूर्वक इस तत्परता से खड़ा रहा जैसे कब कंटक बाबू के मुँह से शब्द निकले और कब वह उसे लपक ले।

अब रफीउद्दीन कंटक बाबू की आज्ञा का बड़ी तत्परता के साथ पालन करता था। जिस दिन उसे कोड़े बरसाने की भयंकर सजा हुई थी और वह बुखार से तप रहा था, उसी दिन बंदीगृह के रुग्णालय में डॉक्टरों के नीचे काम करनेवाले शिक्षार्थी श्रमिकों में कंटक की नियुक्ति हो गई थी। उस रुग्णालय में रफीउद्दीन ने काफी दिनों के लिए बिस्तर पकड़ा था। तब कंटक ने उस असहाय अवस्था में उसकी बहुत सहायता की थी। दवा-दारू, अन्य बंदियों से अधिक सुविधाएँ, चोरी-छिपे ज्यादा दूध, चीनी की पुड़ियाँ और तंबाकू की चुटकी अधिकारियों की नजरें बचाकर उसे दी थी। रफीउद्दीन को फिर से कोल्हू के काम पर न भेजा जाए, कंटक ने डॉक्टर की चिरौरी करके उससे इस तरह लिखवाया था—'सख्त, कठोर काम के लिए अभी अयोग्य।' सिक्कों की गरमी समाप्त हो ही चुकी थी। कोड़ों से तो उसे दहशत सी हो गई थी। अत: आगे चलकर वह चुपचाप कठोर श्रम करता रहा। कंटक जैसे-जैसे तरक्की करता रहा, वैसे-वैसे रफीउद्दीन अधिकाधिक

लाचार होकर उससे दबता गया, उसकी मिन्नतें करता रहा। कंटक ऊपरी तौर पर यही दर्शाता रहा कि उसका उससे कोई संबंध नहीं, ताकि अधिकारियों को संदेह न हो। उन दोनों में यही तय हो गया था कि रफीउद्दीन भी यही नाटक करे। लेकिन कंटक ही गुप्त रूप से रफीउद्दीन की सहायता कर रहा था। इसीलिए रफीउद्दीन के दिन ठीक-ठाक बीत गए और तीन वर्षों के अंदर-अंदर ही वह कक्ष-कारागृह से मुक्त हुआ और बाहरी इमारत के बंदियों के खुले काम पर भेजा गया। इसके बाद कंटक की और तरक्की हो गई और जंगल कटाई का प्रमुख बंदी बाबू होते ही उसने चालाकी से उस कठोर परिश्रम के लिए आवश्यक हट्टे-कट्टे श्रमिकों में रफीउद्दीन की भरती करवा ली थी। रफीउद्दीन भलीभाँति जानता था कि कंटक का आश्रय न मिलता तो उसकी कैसी दुर्गत बनती। इसलिए काले पानी पर आते ही दुष्ट रफीउद्दीन की छाती पर जो साँप लोटता कि कंटक से सभी अच्छा व्यवहार करते हैं, वह डाह अब दूर हो गई और वह हमेशा हृदय से दुआ करने लगा कि 'कंटक बाबू की तरक्की-ही-तरक्की होती रहे।' यह परिवर्तन उसकी दुष्टता में नहीं हुआ, लेकिन इन दुष्टों, जालिमों की एक विशेषता होती है कि जिसके हाथों में मजबूरन उनका हिताहित जाता है, उसकी वे अपना पूरा दिल उँडेलकर पाँवचप्पी करते हैं।

रफीउद्दीन स्वभावत: ही साहसी, गुरूघंटाल तथा ऊधमी था। सत्कर्मों में वह अपने गुण दर्शाता तो उन्हें साहस, हिम्मत तथा पराक्रम कहा जाता—इतना साहसी, जैसे शिकारी कुत्ता। जो पालेगा, जिसके हाथों में उसका हिताहित होगा उसके बस छूः-छूः करने पर ही, सामने आनेवाले को वह आरी की तरह चीर दे, उसकी धज्जियाँ उड़ा दे।

अब वह कंटक बाबू का पालतू कुत्ता बन गया था। अत: कंटक बाबू के 'यूँ-यूँ' करते ही उनके सामने उछलते-कूदते आकर लार टपकाने लगता।

कंटक ने उसे बैठने के लिए कहा और इस बात की टोह लेकर कि आस-पास ही नहीं, दूर तक कोई नहीं है उससे धीमी आवाज में कहने लगा, ''उद्दीन! हम दोनों जिस दिन समुद्र पर निकल पड़े थे उसी क्षण काले पानी से भाग निकलने के कसमे-वादे हुए थे न? बस! अब उन्हीं वादों पर अमल करो। नहीं, नहीं, चर्चा नहीं, और कभी नहीं। आज से हमें जान हथेली पर लेकर वह राह पकड़नी है। तुम तैयार हो?''

''अजी, एक टाँग पर। मैं आपके लिए अपनी जान भी कुर्बान करूँगा, पीछे नहीं हटूँगा। लेकिन योजना पूरी ब्योरेवार तथा मजबूत होनी चाहिए, बंदोबस्त पक्का होना चाहिए। यह कोई गुड्डे-गुड़िया का खेल नहीं। महा दुर्घट काम है यह—फँसे तो गए!''

"हाँ, योजना ऐसी चाहिए कि जीते-जी कभी न फँसें। यदि ऐसा षड्यंत्र रचाओगे, तभी तुम असली रफीउद्दीन कहलाओगे, बच्चू! काले पानी का महा करतबी भगोड़ा!"

ये शब्द तो उसके लिए ऐसे थे जैसे चार चाँद लगवाए गए हों। सीना तानकर रफीउद्दीन ने कहा "कंटक बाबू, मैंने कई बार आपसे इस सिलसिले में काफी बातचीत की ही है और मैंने भी अपनी योजना तैयार की है। महाभंयकर।"

"भई बताओ तो सही, पहले क्या है? बाद में उस 'भयंकर' के बारे में सोचेंगे।"

रफीउद्दीन खाँसकर इसकी टोह लेते हुए कि कोई आ तो नहीं रहा, अपनी वह योजना बताने लगा जिसे कहते हुए या सुनते हुए भी दिल काँप उठता था।

□

प्रकरण–१५

उपनिवेशीय सिद्धांत

आठ-दस दिन हुए—वृद्ध अप्पाजी अपने उस 'दाखिलेवाले' गाँव की झोंपड़ी में खाट पर लेटे हुए थे। सन् १८५७ के स्वतंत्रता संग्राम में सेनापति तात्या टोपे की तरफ से लड़ते-लड़ते गोली लगने से आहत हुए अप्पाजी के पैर में कई दिन से तीव्र वेदना हो रही थी। काले पानी के आजन्म बंदीवास में कठोर और सख्त परिश्रम करने से उनका शरीर जर्जर तथा पंजर हो गया था। उम्र के सत्तर साल पार कर चुकने के बाद सारा बदन निढाल सा था और आजकल उनके दिल में भी कभी-कभी असह्य वेदना होती। इस बीमारी के कारण उनका बिस्तर हमेशा खुले आँगन में बिछा रहता था, अत: वह बैठक भी इस हफ्ते सूनी पड़ी थी। इस बीमारी में इस बात का भरोसा न होने के कारण कि न जाने कब ऊपर से बुलावा आ जाय, उन्होंने कंटक को आपात संदेश भेजा था कि वह एक बार आकर उनसे मिले। आज रविवार है। यह अटकलपच्चू लगा कि कंटक बाबू आज किसी भी तरह आए बगैर नहीं रहेंगे, अप्पाजी ने बिस्तर पर पड़े-पड़े कराहते हुए भी पहाड़ी से उतरते कंटक को देखने के लिए अपनी निगाहें जमाई हुई थीं।

उनके सामने स्थित आँगन में पच्चीस-पचास गीले नारियलों की फाँकें सुखाने के लिए रखी थीं। अंदमान में डाब या कच्चे नारियल काट-काटकर उनकी फाँकें अथवा गोले सुखाकर बेचने का व्यवसाय दाखिलाधारियों की आजीविका का एक साधन है। उनसे तेल भी निकाला जाता है। उधर नारियल के असंख्य वृक्षों का सरकारी तथा घरेलू उत्पादन किया जाता है। अप्पाजी का भी वही घरेलू व्यवसाय हुआ करता था।

उस आँगन भर बिछाई गई नारियल की फाँकों पर पंछियों के झुंड-के-झुंड आ बैठते। उन्हें भगा देने से वे फुर्र हो जाते और आसपास के पेड़ों पर कलरव करते

रहते। फिर मौका पाते ही नारियल की फाँकों पर झपट्टा मारते। इस तरह लूटमार के धंधे में वहाँ के पक्षियों के झुंड भी निपुण थे।

वहाँ के जंगल तथा उद्यानों में रंग-बिरंगे विविध सुंदर-सलोने पक्षियों की रेलपेल थी। सुना है इनमें तोता, मैना तथा नीले, सफेद, सतेज रंग का, मजबूत चोंचवाला मच्छीमारी में निपुण राघव पक्षी, दयाल और खासकर बुलबुल भी होती है। इस प्रकार कितने ही सुरीले, विविध जातीय पक्षियों को प्रथमत: हिंदुस्थान से उपनिवेश बसाते समय सरकार उधर ले आई थी। उनकी समृद्धि के लिए उधर का जंगल और धरती मूलत: बहुत अनुकूल रही होगी। यह सत्य वहाँ की वर्तमान संख्या और उनके विलासी जीवन पर नजर डालने से सहज ही ज्ञात होता है। कौए, चिड़ियों की तो बहुतायत है। यह पखेरू चिड़िया से तनिक बड़ी होती है और इसके सिर पर सुंदर, सलोनी शानदार नन्ही सी कलगी होती है। नेत्रों के कोरों के पास ईषद् ललाई, नन्ही सी, सलोनी सी पूँछ हमेशा इठलाकर ऊपर की ओर उठी हुई। किसी कुशल चितेरे की प्रमाणबद्ध कलाकृति सदृश तराशी हुई छवि, खटखट फुदकती, उछलती, कूदती, चहचहाती फुर्र से उड़न-छू होने में जो चपलता, चंचलता थी, उसके बारे में तो कुछ पूछिए मत। कलरव कितना मंजुल, सुरीला, चुनचुनाता, बारीक पर चुस्त और मधु जैसी किसी कामिनी के हाथों के कंगनों का खनकता हुआ निनाद। अदंमानी बुलबुलों के ऐसे ही झुंड-के-झुंड सुखाने के लिए बिछाई गई नारियल की फाँकों पर धावा बोलते हुए अंदमान के हर आँगन में चहकते-चहचहाते नजर आते हैं।

अप्पाजी के पूरे आँगन में सूखने के लिए बिछाई गई नारियल की फाँकों पर भी उन बुलबुलों के झुंड बीच-बीच में आक्रमण कर रहे थे और उन पंछियों को भगाकर नारियल की फाँकों पर पहरा देने का काम कर रहे थे अप्पाजी की ही दो प्रिय बुलबुल—उषा और मोहन...

कौओं, चिड़ियों, मैनाओं प्रभृत्ति अन्य पक्षियों को धता बताने में यद्यपि उषा और मोहन कोई कसर नहीं उठा रहे थे, तथापि बुलबुलों के झुंड के आँगन में उतर आने पर उन्हें भगाने की अपेक्षा उनकी मजेदार क्रीड़ा देखने में उन बालकों का रुझान अधिक दिखाई देता था। ऊपर उठी शानदार पूँछ के मृदुमुलायम मखमली परोंवाले बुलबुलों के झुंड के नारियल की मीठी-मीठी फाँकों को कोंच, कुच-कुचाकर, चटकारे लेने में लीन होते ही उनकी पूँछों के नीचे के रंगीन परों के चक्कर इस तरह शोभा देते जैसे नन्हे-नन्हे गुलाबों के गुच्छे ही इधर-उधर बिखर गए हों। मोहन और उषा को इस दृश्य में बड़ा मजा आता।

अप्पाजी भी उन बुलबुलों की क्रीड़ा देख रहे थे कि अनजाने में उन्होंने अपनी दुख रही टाँग झट से सीधी की और उसमें एकदम असह्य पीड़ा उभर आई।

'मैया री' कहकर वे तनिक चीख पड़े और कराहने लगे।

''उषा! अरी, अप्पाजी कराह रहे हैं।'' घबराते हुए मोहन और उषा आँगन से भागे-भागे अप्पाजी के कमरे में आ गए।

''क्या हुआ, अप्पाजी?'' उषा ने हिंदी में पूछा। उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। ये बच्चे मराठी की तरह ही, शायद मराठी से भी अधिक हिंदी में बातचीत करते। अंदमान के बाशिंदे बने मराठी, बंगाली, मद्रासी, पंजाबी सभी माता-पिता की कोख से जन्मे बच्चे हिंदी में बातचीत करते हैं। हिंदी ही वहाँ के बच्चों की असली मातृभाषा होती है। अपनी-अपनी प्रांतीय भाषा बस उन्हीं बच्चों को आती है, जिनके माता-पिता अपनी इच्छा से उसे बच्चों को सिखाते हैं।

''कहाँ दर्द हो रहा है मेरे अप्पाजी को? मैं दबा दूँ? देखिए तो सही, अभी यूँ ठीक हो जाएँगे।'' उषा ने कहा। मोहनं ने भी आग्रह किया। अप्पाजी के हामी भरते ही मोहन उनके कंधे दबाने लगा और उषा पाँव दबाने लगी, जिसमें पीड़ा उभरी थी। अप्पाजी खिड़की से बाहर पहाड़ी की आरे देखने लगे। कंटक की प्रतीक्षा करते-करते वे इस विचार में खो गए कि आने के बाद उसे क्या कहना है।

तीन मिनट, चार मिनट, पाँच मिनट। उषा अपने नन्हे-नन्हे कोमल हाथों से, जितना संभव था, उतना बल देकर पाँव दबा रही थी। लेकिन अप्पाजी अपने विचारों में खोए हुए थे, वे उससे कहना भूल गए—'अब बस भी करो।' बेचारी उषा के हाथों में दर्द होने लगा। वह चाहती थी अप्पाजी प्रशंसा भरे शब्दों में कहें, 'अब बस करो, हाँ!' और फिर वह कर्तव्यपूर्ति के संतोष के साथ पैर दबाना बंद करे। लेकिन वह स्वयं ही 'मैं थक गई, भई' कहते हुए पैर दबाना बंद करे तो मोहन हँसेगा। यह तो वह कदापि नहीं चाहती, पर अधिक देर तक पैर दबाना भी नहीं चाहती थी। थककर, निढाल होकर रूठ गई, रूठते-रूठते वह क्रोध से मसमसाने लगी और आखिर अप्पाजी के उस पैर पर ही गुस्सा उतारकर उसने उसपर दो-चार चाँटे लगाए और रोना शुरू किया।

''मेरे हाथ टूट गए फिर भी आप बस करने के लिए नहीं कह रहे।''

उन थपेड़ों तथा रोने की आवाज के साथ अप्पाजी होश में आ गए, मुसकराते हुए प्यार से उषा को सहलाते हुए समझाने लगे, ''बस! रो मत बेटे! अरी पगली, तू दबाती ही रही, हाथ में दर्द होने तक? क्यों? भई, मुझे तुम्हारे इस दबाने से इतना आराम मिल रहा था कि मुझसे बस करने के लिए कहा ही नहीं जाता था। हमारी उषारानी के इन नन्हे-मुन्ने रेशमी हाथों में अवश्य कुछ जादू है। वैद्य की दवा से आज तक जो पीड़ा ठीक नहीं हुई, वह तेरे दबाने से एकदम छू-मंतर हो गई, देखो।''

''वह देखो, वह देखो, अप्पाजी! कंटक बाबू आ रहे हैं पहाड़ी की ओर

से,'' बीच में ही मोहन यह बताकर उठ गया। अप्पाजी सँभलकर बैठ गए। दोनों बच्चे उछलते-कूदते भागने लगे। उनमें अब एक नई धुन सवार हो गई कि कंटक बाबू के पास जाकर उन्हें पहले कौन छूता है।

''कंटक बाबू, कभी-कभी मेरे दिल में यह दर्द उठना शुरू होने के कारण मैं जान चुका हूँ कि मेरा अंतकाल समीप आ चुका है।'' अकेले में अप्पाजी कंटक को बताने लगे, ''लेकिन इसमें दुःख की कोई बात ही नहीं। हम जैसे पके पान मौत को ही मुक्ति समझते हैं। लेकिन आपसे एक बार मिलने की इच्छा हुई। कितने दिनों से आप अपनी जान खतरे में डालकर इधर आते हैं, मेरे परिवार की यथासंभव सहायता करते हैं, प्यार करते हैं, इसलिए हमें भी आपके प्रति अपनत्व का अहसास होता है। मैं आपका बहुत आभारी हूँ।''

''लेकिन भई, मैंने ऐसा कुछ भी नहीं किया कि जिसके लिए आप आभार प्रदर्शन करें। अप्पाजी, मैं ही आपके उपकारों का ऋण कभी नहीं चुका पाऊँगा। इस भयंकर बंदीवास में जब से कदम रखा, मेरा हृदय इस प्रकार के अपनत्व से भरे लोगों का भूखा था। आपके परिवार में मुझे वह ममता मिली। पिता समान आप, भगिनी-प्रेम से ओत-प्रोत अनुसूयाजी, कोखजाए बच्चों समान ये बच्चे; इन सभी के स्नेहिल सान्निध्य में जो पल गुजारे, बस उतने ही मेरे लिए विलोभनीय थे, जिनसे जीने की उमंग पैदा हो। मुझे अहसास होता है कि दुष्टता, दुर्गण और दुराचार से भरे इस बंदीवास के उत्तप्त वातावरण से आपकी पारिवारिक ममता की शीतल छाँव में और बच्चों की प्यार भरी मुसकराहट की चाँदनी में पल भर के लिए आते ही मैं नर्कवास में नंदनवन का सपना देख रहा हूँ।''

''तो फिर कंटक बाबू, मेरी आपसे बस इतनी सी प्रार्थना है कि आप मेरे पीछे बाल-बच्चों को मेरा स्थान दे दीजिए, उन्हें अपना ही समझकर इस घर को अपनाएँ। आप जैसा सुबुद्ध, शिक्षित तथा सुशील इनसान पापियों की इस बस्ती में दुर्लभ है। इसलिए अपना यह परिवार मैं आपकी झोली में डाल रहा हूँ, आप इसे स्वीकार करें तो मैं चैन से मर सकूँगा।''

''अप्पाजी, मेरे मन में आपके प्रति उतना ही आदर है जो किसी हुतात्मा के प्रति होता है। उसपर जो स्वतंत्रता सेनानी होते हैं, उनकी अपेक्षा आप जैसे स्वतंत्रता सैनिकों के भाग में दैवी सफलता और यश नहीं, अपितु उस ध्येय की खातिर मात्र यंत्रणाएँ, छल, कष्ट लिखा होता है, अतः उनका ही मैं अधिक सम्मान करता हूँ। ऐसा कोई भी कृत्य करने के लिए मैं तैयार हूँ, जिससे आप चैन से मौत को गले लगा सकें। परंतु मैं स्वयं ही अपने सिर पर कफन बाँधकर खड़ा हूँ। मैंने अपना सिर ओखली में दे दिया है। इस काले पानी के भीषण काल-पाशों को तोड़कर भाग

निकलने का, जान पर बीतने का जोखिम उठाने का खेल मैं खेलूँगा। भला कौन कह सकता है कि इसमें मैं जीवित रहूँगा या मरूँगा।''

''मैं बताता हूँ भैया कंटक, इस खेल में मौत निश्चित है। सफलता अत्यंत विरल, अपवादस्वरूप। आज तक सैकड़ों मारे गए इस साहस में। उन्हें सागर में जल-समाधि मिल गई। भई, मुझे तो यह स्मरण नहीं कि पिछले पचास वर्षों में पचास लोग भी काले पानी से भागकर स्वदेश पहुँचे हों।''

''लेकिन फिर भी पचासों में ही इक्यावनवें को मैं पाटूँगा, अन्यथा मौत को गले लगा लूँगा। देखिए, अप्पाजी, काले पानी की इस बदनसीब दुराचारी, असहनीय यंत्रणा भरी तुच्छ, क्षुद्र दुनिया में इस तरह आजन्म जीने में क्या तुक है? व्यक्ति का विकास नहीं, भावनाओं की उड़ान नहीं, इनसानियत की इज्जत नहीं, किसी ऊँचे, भव्य, दिव्य ध्येयार्थ अथवा परोपकारार्थ देह घिसने-छीजने के पावन पुण्य से आँचल भरा नहीं। न स्वार्थ, न ही परमार्थ।''

''रुक जाओ—तुम्हारे इस अंतिम आक्षेप के सिलसिले में तुम्हें एक नया नजरिया देने की इच्छा है—परोपकार के—किसी-न-किसी राष्ट्रीय तथा उदार कर्तव्य के लिए अपने निजी जीवन को साध्य के रूप में पेश करने का आकर्षण तुम्हारे चित्त को हो तो वह तुम्हारी मानवता का विकास ही है। लेकिन इस अंदमान में प्रेम, सुख, चैन, भोग इतना ही नहीं, अन्न की भूख मिटाना चाहे जितना दुर्घट क्यों न हो, तथापि परोपकार की भूख अथवा राष्ट्रीय सेवा की भूख से अगर किसीकी आँतें कुलबुलाती हों तो कम-से-कम उसके लिए तो भुखमरी अथवा फाकाकशी नहीं होगी। इसमें कोई संदेह नहीं कि पतितोद्धार, उनका सुधार आदि कार्य राष्ट्रीय अथवा धार्मिक सेवा के महत्त्वपूर्ण उपांग हैं और अंदमान तो साफ-साफ अपराधियों और उद्दंडों का, पापियों तथा पतितों का ही डेरा-बसेरा है। अर्थात् परोपकार का चुनिंदा कार्यक्षेत्र।''

''उसका मुझे पूरा अहसास है और यदि मैं आजन्म कारावास के इस चंगुल से छूटकर और काले पानी से पट्टा तोड़कर स्वदेश वापस लौटने में सफल हो गया और वहाँ अलग नाम तथा स्वतंत्र रूप में राष्ट्रसेवा कर सका तो भारतीय बंदियों को काले पानी भेजने की क्रूर, घृणित प्रथा बंद करवाकर इस भयानक उपनिवेश को जड़ से उखाड़ने का आंदोलन यथासंभव जल्दी और पूरी शक्ति के साथ करूँगा। हिंदुस्थान में कुछ नेताओं का ध्यान इन प्रश्नों की ओर आकर्षित हुआ है और बंदियों का यह बसेरा जड़ से उखाड़ने तथा इस पापभूमि की समूची अमानुषिक यंत्रणाओं पर पूरी पाबंदी लगवाने का प्रयास जारी है।''

''परंतु ये प्रयास गलत दिशा से किए जा रहे हैं। देखो कंटक, किसी भी देश

में चोरों, डाकुओं, लुटेरों, हत्यारों का एक वर्ग जरूर होगा जो अत्यंत उद्दंड और समाज के लिए सर्वतोपरि उपद्रवकारक हो। इस प्रकार जो वर्ग हिंदुस्थान में समाज-कंटक, समाज-शत्रु हो गया है, उसके लिए नीति तथा निर्बंध की सीमाएँ लाँघना असंभव करने के लिए शक्ति तथा बल से उसका निग्रह करना चाहिए। फाँसी, आजन्म कारावास, कोड़े जैसी कठोर शारीरिक सजाएँ—इस प्रकार के कठोर दंडों के अभाव में उद्दंड कभी भी, किसीका दबदबा नहीं मानते। समाजशील नागरिकों का उनके उपद्रवों से इसी तरह बचाव किया जा सकता है और समाज में शांति तथा सुव्यवस्था रह सकती है। अतः सहस्राधिक दंडितों को इस प्रकार काले पानी के उपनिवेश पर बाँधकर रखना ही राष्ट्र के लिए हितकर होता है, अन्यथा भला उन्हें और कहाँ रखा जाए?''

''देश में बंदीगृहों की कमी है क्या? उनमें उन आजन्म कारावास प्राप्त कैदियों को डाल दो। काले पानी की इस पापभूमि और इस कठोर परिश्रम में उन्हें जीवित गाड़ना निर्दयता तो है ही, लेकिन ऐसा नहीं कि उससे राष्ट्रहित भी विशेष रूप से साध्य होता है। यह कैसे कह सकते हैं कि इस नर्कभूमि में हमें जो यातनाएँ दी जाती हैं और जो जीवन असहनीय महसूस होता है, वही हमारे साथ होनेवाले इन सभी आजन्म कारावासियों को नहीं होता? जिस दया की अपेक्षा हम करते हैं, उसीकी वे भी करते हैं, भले ही वे अत्याचारी क्यों न हों।''

''कंटक बाबू, मात्र उथली दया का ही प्रश्न लिया जाए तो दंडितों को दंड न देते हुए उन्हें खुला छोड़ना ही असली दया होगी। आपको और मुझे देश के बंदीगृह में रहना क्या अच्छा लगता है? आजन्म कारावास (कैदे-हयात) तो दूर की बात रही, एक दिन भी बंदीगृह में बंद रहने के लिए क्या कोई तैयार होगा? फिर क्या उथली भावुकता तथा दया के लिए ही इस प्रकार के उग्रप्रवृत्त अपराधियों को, जो समाज को भंयकर पीड़ा देकर ही चैन की बंसी बजा रहे हैं, खुली छूट दी जाए? उसपर मुट्ठी भर खूँखार हत्यारे, बलात्कारी और फसादी नर-श्वापदों पर दया के लिए बंदीगृहों को ही अगर बिलकुल खुला छोड़ दिया जाय तो क्या हम लाखों पापभीरु, मासूम लोगों को उन उपद्रवियों के मुँह में नहीं धकेल देंगे? क्या उनपर तरस नहीं खाना चाहिए? चार अत्याचारियों पर दया कर समाज के लाखों निरपराध लोगों पर उन्हें अत्याचार करने देना, यह निर्दयता लाखों गुना क्रूर नहीं है क्या? अतः दया दृष्टि से भी लाखों निरपराधियों को उपद्रव से बचाने के लिए अपरिहार्य रूप से यदि चार उपद्रवी अपराधियों का कठोरतापूर्वक निग्रह करना पड़ा तो वह निर्दयता कुल मिलाकर महनीय दया ही सिद्ध होगी। यही अपराधविज्ञान अथवा दंडविज्ञान का भी मूलभूत तत्त्व तथा समर्थन है।''

''इसमें कोई संदेह नहीं है। पर देश के ही बंदीगृहों में...''

''वही तो कह रहा हूँ कंटक बाबू, देश के बंदीगृहों में आजन्म कारावास प्राप्त कैदियों को गाड़ दिया जाए तो भी क्या उनसे अधिक निर्दयतापूर्वक बरतना नहीं होता? उन्हें चार दीवारों के अंदर ही छटपटाते हुए मौत को गले लगाना होगा। क्या यह मानसिक अत्याचार नहीं है? परंतु यदि इस काले पानी जैसे किसी स्वतंत्र उपनिवेश में उनसे इतने कठोर निर्बंधों में परिश्रम करवाया गया कि उनकी उद्दंड प्रवृत्ति हिल जाए, वे पालतू बनें और जितनी स्वतंत्रता उन्हें दी जा सके, उतनी दी गई तो वे पारिवारिक और व्यक्तिगत सुख का अधिक भोग कर सकेंगे और देश के स्वच्छ समाज को उन दंडितों को जिस आजादी का भोग करने की अनुमति दी गई है, उससे रंचमात्र भी उपद्रव होने की आशंका बिलकुल शेष नहीं रहेगी। इस काले पानी पर आज भी ये सहस्राधिक उद्दंड तथा उग्र लोग भी देखो कैसे खुलकर घूम-फिर सकते हैं। अपनी रुचि के, पसंद के अनुसार खा-पी सकते हैं, घरबार, खेती-बाड़ी कर सकते हैं। उनके स्नेहशील, वत्सल, विषयी भावनाओं में भी आजन्म घुटन नहीं होती और वे विवाह-सुख का आनंद उठा सकते हैं। पिछले एक अपराध के कारण उनके पूरे जीवन और उनका सर्वनाश न होते हुए उस जीवन के सुधार तथा संयमशील जीवन स्थापित करने का अवसर उन्हें बार-बार मिलता रहता है।

हिंदुस्थान में ही एक कारागार की चार दीवारों में बंद करके जीते-जी उन्हें इस तरह रखना उनके लिए जैसे कब्र खोदना ही है। यह दया ही है कि काले पानी सदृश उपनिवेश में उन्हें कठोर निर्बंधों के बल पर पालतू बनवाकर मानवता के नाते जीवन का आनंद, कुछ अंशों में ही सही, दिया जाता है; यही वास्तव में दया है। ऐसे सैकड़ों आजन्म कारावास प्राप्त बंदी जो अंदमान में हैं, काले पानी पर आने के बाद जिनमें सुधार हो गया है और 'दाखिलाधारी' बनकर अपने बाल-बच्चों से भरपूर घरों में सुख-चैन के साथ गुजर-बसर करते हैं—जैसेकि उनका पुनर्जन्म हो गया हो। उन्हींसे यह प्रश्न पूछिए कि 'क्या यह अच्छा होता कि तुम्हें हिंदुस्थान के किसी कारागृह में गाड़ दिया जाता?' इस भयंकर कल्पना मात्र से ही देखिए वे कैसे काँपते हैं और झट से कहते हैं, 'यही अच्छा है कि हमें काला पानी भेजा गया।'

यही सोलह आने सच है। आजन्म कारावास अथवा दस-दस वर्षों की प्रदीर्घ बंदीवास की सजा प्राप्त कैदियों को भारतीय कारागृहों में गाड़ने की अपेक्षा उन्हें काले पानी सदृश उपनिवेशों में ही धीरे-धीरे स्वतंत्र रूप से बसने की अनुज्ञा देना अधिक दयापूर्ण कार्य है। उद्दंडों और पतितों को सुधारने की दृष्टि से भी यही अच्छा है और राष्ट्र के सच्चरित्र नागरिकों को उनके उपद्रवों से बचाकर उन दंडितों को स्वयं निर्बंधशील एवं संयत जीवनयापन का सुनहरा अवसर देने की दृष्टि से भी

इस प्रकार के स्वतंत्र उपनिवेश ही अधिक उपयुक्त हैं।

लेकिन इसमें भी इस अंदमानी उपनिवेश का राष्ट्रीय हित की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण और एक विशेष स्थान है। वह यह है कि यह महत्त्वपूर्ण द्वीप जो रोगग्रस्त, वीरान, उजाड़ तथा मनुष्य-बस्ती के लिए प्रतिकूल खंडहर होकर पड़ा था और जिसे बसाने के उद्देश्य से हिंदुस्थान के किसी भी प्रशासन ने हजारों लोग तथा करोड़ों रुपए हेतुत: बलात् कभी खर्च नहीं किए होते—वही अंदमान का यह द्वीप आज फूलों-फलों से लदा-फदा, लहलहाता, अन्न-धान्य से समृद्ध-संपन्न, उपयुक्त उर्वर तथा मनुष्य-बस्तियों से भरा-पूरा हो गया है। उपनिवेशों को जीतने के लिए राष्ट्रों को घमासान युद्ध करने पड़ते हैं, वीरता का प्रदर्शन करना पड़ता है। लेकिन क्या यह बात सच नहीं है कि हमारे राष्ट्र को यह एक नया उपनिवेश मात्र अपने परिश्रम के बलबूते इस पतित एवं परित्यक्त बंदीवान वर्ग ने मुफ्त में दे दिया है। यदि इन तमाम बंदियों को हिंदुस्थान की बंदीशालाओं में बंद किया गया होता तो उनके परिश्रम, साहस तथा बुद्धि का इतना लाभ और इतना ठोस उपयोग हमारा राष्ट्र कभी नहीं कर पाया होता। आपसे यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इस दंडित वर्ग के सैकड़ों लोग मूलत: अत्यंत दिलेर, साहसी, जाँबाज, फुरतीले, करतबी तथा कष्टसहिष्णु होते हैं।''

''इसमें संदेह की कोई गुंजाइश ही नहीं है। उनकी इस प्रवृत्ति का यदि उपद्रवकारी दुष्ट कार्यों के लिए दुरुपयोग न होता तो उनका यही साहस, हिम्मत एवं कष्टसहिष्णुता, वीरता वीरोचित होती। ऐसे ही उद्दंड अपराधियों को फौज में भरती करवाकर फौजी अनुशासन में उनकी उसी उद्दंडता का सदुपयोग करके कई सेनापतियों ने बड़ी-बड़ी विजय प्राप्त की है। कई राष्ट्रों ने अपने स्वाधीनता संग्राम में लोहा बरसाया है। इतना ही नहीं, पिंडारियों के अमर, खान प्रभृत्ति ने ही—जो स्पष्ट रूप में डाकू-लुटेरे थे—क्या टोंक जैसी रियासतों की स्थापना नहीं की?''

''अवश्य की है, कंटक बाबू! लेकिन राष्ट्र में होते हुए भी इन दंडितों के जो गुण उपद्रवी, फसादी सिद्ध हो चुके हैं उन तमाम गुण-अवगुणों को भी कठोर नियंत्रण, सख्ती तथा दहशत के दबाव के नीचे कार्यरत करने के लिए उन्हें इस प्रकार के किसी काले पानी जैसे भूखंड पर भेजना ही इष्ट है। जो परिश्रम वे अपनी इच्छा से राष्ट्र के लिए नहीं करते, वह उनसे सख्ती से करवा लिया जा सकता है। उनके जीवन का उपयोग राष्ट्रीय धन तथा शक्तिवर्धन के काम में हो सकता है। इसके लिए अंदमान का यह बंदी-उपनिवेश राष्ट्रीय दृष्टि से बहुत ही उपयोगी है। उसमें यथासंभव सुधार लाओ। लेकिन अदूरंदेशी, जल्दबाजी अथवा अपात्र दया के कारण यह उपनिवेश कभी बंद नहीं होना चाहिए। उसपर यह देखो, काले पानी के

उपनिवेश में न भेजते हुए उन हजारों दंडितों को यदि हिंदुस्थान के ही बंदीगृहों में—स्त्री-पुरुषों की अलग-अलग कोठरियों के पिंजरों में—आजन्म गाड़ दिया गया तो वह निर्दय घुटन जो उनकी जवानी को कुचलती है—उन्हें असहनीय होगी और राष्ट्र के लिए भी भारी हानिकारक होगी, क्योंकि उससे राष्ट्र हजारों स्त्री-पुरुषों की संतानों से वंचित रहेगा। राष्ट्र का संख्याबल घटेगा। उसकी अपेक्षा काले पानी सदृश स्वतंत्र तथा नए उपनिवेश में इन दंडित स्त्री-पुरुषों को विवाहित जीवन के आनंद का अवसर दिया गया तो प्रेम तथा वत्सलता की कोमल भावनाओं से उनकी अपनी मानवता विकसित होगी और उनकी संतान उस उपनिवेश को समृद्ध कर अपने राष्ट्र में नया प्रदेश जोड़ सकेगी। तनिक वर्तमान की ओर तो एक नजर डालिए, यहाँ एक नया प्रदेश ही नहीं अपितु अपनी हिंदू संस्कृति का एक नया जनपद भी समृद्ध हो रहा है।''

''लेकिन अप्पाजी, अनुवंशविज्ञान के अनुसार जो पापी, अपराधी और दुष्ट होते हैं, उनकी संतान में भी वही अत्याचारी अथवा दुराचारी दुर्गुण आ जाते हैं। इस संबंध में आपकी क्या राय है?''

''यह एक तरह का कुतर्क है—और क्या? मैं यह नहीं कहता कि व्यक्तिगत अथवा पारिवारिक दृष्टि से इसमें तथ्य है या नहीं। परंतु उपनिवेशों की जो हमारी समस्या है, उसके सिलसिले में ऐसे सिद्धांत का प्रतिपादन मात्र एक वितंडा है। अजी, ऑस्ट्रेलिया को देखिए, कनाडा को देखिए, अफ्रीका के उपनिवेश पर एक नजर डालिए। पहले वहाँ इंग्लैंड के अत्यंत नृशंस तथा दुराचारी दंडितों तथा आजन्म कारावास प्राप्त कैदियों की किश्तियाँ भर-भरकर छोड़ी जाती थीं। तब ये देश वीरान तथा उजाड़ थे। इस तरह ये देश इंग्लैंड का काला पानी ही थे। लेकिन आज उन्हीं दंडितों के वंशज एक-एक स्वतंत्र, स्वायत्त राष्ट्र का दरजा प्राप्त कर चुके हैं। बड़े-बड़े अतिरथी, महारथी, षड्यंत्रकारी, विधिमंडल, सभासद, निर्बंध पंडित उनमें उत्पन्न हो गए। वहाँ के वर्तमान प्रतिष्ठितों में कइयों के परदादे चोर, उचक्के, डाकू, बलात्कारी, पापाचारी दंडित थे। इस अंदमान की ओर देखिए, यहाँ की युवा संतान, अबलाएँ, पुरुष, लड़के, लड़कियाँ हिंदुस्थान के किसी भी नगर में छोड़ दिए जाएँ और उन्हें सुंदरता, सुशीलता, बुद्धि, फुरती आदि गुणों की कसौटी पर परखा जाए तो आपको यही दिखाई देगा कि वे कभी असफल नहीं होंगे।

अजी, मेरे खानदान का ही उदाहरण लीजिए। मेरी पत्नी एक राजपूत रमणी थी। हिंदुस्थान में बचपन में उसकी शादी हो गई थी। उस विवाह के पूर्व उसके पति की एक पत्नी और थी। इन दो सौतनों में सौतिया डाह से भयंकर अनबन होने पर पति इसकी ही रुई की तरह धुनाई करता। इसके एक दुष्ट पड़ोसी ने इसे पट्टी पढ़ाई

कि 'मैं एक अभिमंत्रित बुकनी देता हूँ, वह अपनी सौतन को भोजन में मिलाकर खिलाना। फिर तुम्हें उसके जुल्मों-अत्याचारों से मुक्ति मिलेगी।' वह चूर्ण जहर था। इसकी सौत तत्काल मर गई और इस अठारह वर्षीय लड़की को उस भयंकर अपराध के कारण आजन्म कारावास की सजा मिली। परंतु उस दंड के झटके से उसके मन में इस प्रकार के किसी भी दुष्कृत्य से एक दहशत-सी हो गई और उसका स्वभाव अत्यंत सीधा और निर्बंधशील बन गया। बंदीगृह की मौन, कठोर पत्थर की दीवारें इन्हीं कुछ लोगों को किसी भी नीतिग्रंथ से अधिक संयम सिखाती हैं। काले पानी पर आजन्म कारावास में उस राजपूत रमणी का आचरण इतना नियंत्रित, संयमी था कि जैसे ही मुझे विवाह की अनुज्ञा मिली, मैंने उसीसे ब्याह रचाया। दस-एक सालों तक उसने गृहिणी के कर्तव्यों का निरपवाद रूप से पालन किया, सुखपूर्ण गृहस्थी बसाई। आगे चलकर उसकी मृत्यु हो गई। उससे मेरा एक बेटा हुआ जो बहुत ही भला निकला। उसीकी बीवी है यह अनुसूया—मेरी बहू। यह भी एक बंगाली कायस्थ की बेटी है जो बालविधवा थी। इसके जेठ ने इससे नाजायज संबंध रखा। आखिर पेट से रहते ही उसने अत्यंत उग्र, जालिम दवा पिलाकर इसके हाथों भ्रूणहत्या का भयंकर पाप करवाया। परंतु समाज के भय से उसने जो घोर पाप किया वही उजागर होकर उसे समाज दंड भुगतना पड़ा। जेठ लापता हो गया और इसे आजन्म कारावास की सजा हो गई। लेकिन इससे उसके स्वभाव पर चिरकालीन नृशंसत्व की छाप कहीं दिखाई देती है? उसने काले पानी पर निश्चित सजा भोगते ही जब मेरे बेटे से शादी की, तब से इतनी स्नेहमयी, सच्चरित्र तथा मेहनती होकर हमारे घर रहती आई है कि ऐसी सुशील बहू स्वदेश में भी सौ में एकाध ही मिलेगी। आगे चलकर मेरा बेटा किश्ती पर नाखुदा बन गया। दुर्भाग्यवश दो-एक वर्ष पहले एक दुर्घटना में, सागर में डूबकर उसकी मृत्यु हो गई। परंतु यह उन दो बच्चों को ही नहीं—जो उसके पीछे रह गए हैं, मुझे भी सँभाल रही है। भोजन बनाने, गृहकृत्य में मगन रहकर इस निर्धनता में भी कितनी खुश रहती है—आप ही देखिए। मेरे इन पोते-पोती पर, अपने दोनों बच्चों पर मेरी यह बहू जो जान छिड़कती है, उसमें कौन सी माता अधिक वत्सल होगी भला? नितांत सुशील, शिष्ट तथा कुलीन समाज में भी हम सभी को यह अनुभव होगा कि दुनिया के सभी देशों में कुँआरी कन्याओं की बाली उम्र में, उठती जवानी में समाज के अत्युग्र भय के कारण भ्रूणहत्या का भयंकर दुष्कृत्य होता है, लेकिन उनमें से कइयों के ये कृत्य परदे में रहते हैं और वे अन्य किसी भी कुँआरी लड़की की तरह कुलीन तथा सुशील कहलाती हैं। वे स्नेहमयी पत्नी तथा वत्सल माताएँ भी बन सकती हैं, जैसी कुंती देवी।

इसका कारण यह है कि जिस प्रकार कुछ नराधमों को दुष्कृत्यों का चसका

होता है उसी तरह ऐसे कुछ अपराधी होते हैं, जिनके हाथों दुष्कृत्यों से तीव्र घृणा करते हुए भी मानो मात्र असहनीय यंत्रणाओं के भय से इस क्षणिक बेहोशी की सनक में दुष्कर्म घटता है। दंडित वर्ग में प्रथमत: राक्षसी प्रवृत्ति के अपराधियों को कठोर दंड का भय दिखाकर काबू में लाया जा सकता है और इन दूसरी प्रवृत्ति के अपराधियों को सहानुभूतिपूर्ण अभयदान से सुधारा जा सकता है। अत: यह धारणा मन में लाना ही मूलत: अंधाधुंध वितंडा है कि एक बार दंडित होने का ठप्पा लग जाए तो वह हमेशा के लिए मानव समाज से हटकर बदमाश, जल्लाद, अशिष्ट बन गया। इतना ही नहीं अपितु उसकी संतान भी वंश-परंपरा से पापप्रवण ही होगी। और उसपर आधारित वह धारणा जितनी अंधाधुंध, ऊलजलूल, बे-सिर-पैर की है, उतनी ही अत्याचारी भी है कि दंडितों की उपनिवेशीय संतानें भी जन्मजात ही मानवता के गुण से वंचित होंगी।''

''बिलकुल, बिलकुल। और अप्पाजी, इस वितंडा को जिस प्रकार अंदमान की युवा संतति ने झुठलाया है, उसी प्रकार खासकर हिंदुओं के दृढ़ कुतर्क को भी मिथ्या प्रमाणित किया है। हिंदू समाजांतर्गत समस्त जातियों—कम-से-कम बहुतांश—में एक ही स्तर पर आने के बावजूद छुआछूत, बेटीबंदी प्रभृत्ति जो खंदकें हजारों वर्षों पूर्व के हालात में हितकारी मानी गई थी, उन्हें वैसे ही रखना आज भी हितकर है और अंतर्जातीय रोटी-बेटी का व्यवहार शुरू करने से वह संकट बड़ा अनर्थकारी रहेगा, संस्कृति निकृष्ट, प्रजा अधम होगी, इस प्रकार की जिस धार्मिक छाप के आतंक से हमारे देश का हिंदू समाज ग्रस्त है, वह डर कितना भ्रांत है, यह भी अंदमान स्थित इस नवोदित हिंदू जनपद ने प्रत्यक्षत: दिखाया है। पिछले पचास वर्षों से अंदमान में सभी हिंदू जातियाँ और समस्त प्रांतिक वर्ग सरसरी तौर पर इकट्ठे विकसित होते आए हैं। काफी मात्रा में अस्पृश्यता की बेड़ी टूटी है। रोटीबंदी की कम-से-कम स्पृश्य वर्ग में तो स्मृति ही मिट गई। बंगाली, पंजाबी, मद्रासी, मराठी, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र कौन है, कौन नहीं ऐसे विचार भी मिट गए और कम-से-कम स्पृश्य हिंदू इकट्ठे बैठकर भोजन करते हैं और अस्पृश्य भी। मिश्र विवाह आम बात होने के कारण बेटीबंदी टूट गई और जात-पाँत का नामोनिशान तक मिट गया है।''

''हमारा परिवार ही देखिए। हम महाराष्ट्रीय ब्राह्मण, पत्नी राजपूत क्षत्रिय, बेटे की शादी हो गई बंगाली कायस्थ कन्या के साथ। अब अपने इन बच्चों की जाति मात्र हिंदू ही रही। अच्छा, इस सम्मिश्र रक्तबीज के पोता-पोती हैं कैसे भला? तो यह मोहन और उषा—कितने चतुर, चुस्त, सुंदर और सुशील हैं! इन्हें पुणे, बंबई, कलकत्ता के किसी भी स्कूल के बच्चों में छोड़ दें तो प्रथम पाँच नंबरों में अवश्य

चमकेंगे। अंदमान स्थित हिंदू जनपद ने यह सप्रयोग सिद्ध करके दिखाया है कि यह भय मिथ्या है कि जाति-पाँति का बंधन तोड़कर सम्मिश्र विवाह करने से संतान निकृष्ट होगी। भाषा की दृष्टि से भी अंदमान ने एक और अभिनंदनीय सफल प्रयोग करके दिखाया है। यहाँ के सभी हिंदू जनपद की भाषा एक ही है—हिंदी। युवा पीढ़ी की मातृभाषा ही हिंदी है।''

''परंतु अप्पाजी, सरकारी नीति एक भारी भूल कर रही है कि हिंदू लड़के-लड़कियों को पूरी शिक्षा जबरदस्ती उर्दू लिपि में दी जाती है। इस सिलसिले में आंदोलन द्वारा नागरी ही अंदमान की, कम-से-कम हिंदू जनपद की एकमेव लिपि बनानी होगी। सरकारी लेखन तथा स्कूली प्रशिक्षा उर्दू में ही चलाने की सरकारी नीति, यह हठ निंदनीय है। अंदमान में इस प्रकार के कई सुधार करना और नई स्वतंत्र पीढ़ी को अपने गुणों के विकासार्थ अनुकूल स्थिति का लाभ कराना, ये दो कार्य साध्य करने के लिए कुछ त्यागी पुरुषों को अपने आपको इसी उपनिवेश में उत्कर्ष को समर्पित करना आवश्यक है।''

''हाँ, कंटक बाबू, यहीं पर इस चर्चा का धागा अपने इस संभाषण के मेरे विधेय से उलझा हुआ है। यदि आपको यह स्वीकार है कि अंदमान के उपनिवेश में निर्मित यह एक नया जनपद, जो इतना महत्त्वपूर्ण है जैसेकि हमारे हिंदू सांस्कृतिक साम्राज्य में एक नया प्रांत जीतकर जोड़ा गया हो, तो नए उपनिवेश का आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक उत्कर्ष के कार्य को ही अपने जीवन का ध्येय बना लेना क्या राष्ट्रसेवा नहीं? क्या आपके और हमारे जैसों के बंदीवासग्रस्त जीवन की महत्त्वाकांक्षा के लिए वह ध्येय पर्याप्त महान् नहीं है? फिर हम उसे ही अपने जीवन का इतिकर्तव्य क्यों नहीं समझते? कंटक बाबू, आप पाँच-एक वर्षों के पश्चात् 'दाखिलाधारी' होकर तनिक स्वतंत्र होंगे, इधर ही अपना ब्याह रचाएँगे। इस उपनिवेश में स्कूल, शिवालय, संस्था, संगठन आदि की जो कमी है, वह आप पूरी कीजिए। हमारे इस किशन सेठ की ओर ही देखिए। वे भी आजन्म कारावास पर इधर आए हुए थे—हाथ-पाँवों में जंजीरें थीं। परंतु 'दाखिलाधारी' बनकर नारियल के बड़े-बड़े बागान बनाकर चाय बागानों से मालदार, धन्नासेठ बन गए और मेरा खयाल है कि उन्होंने इस अंदमान में जन्मे स्वतंत्र हिंदू नौजवानों को आजीविका देने, स्कूल और अखिल हिंदुओं का एक मंदिर निर्मित करने तथा छात्रवृत्तियाँ, धर्मार्थ औषधालय आदि कार्यों में हजारों रुपयों का दान किया। पंडित, पुराणिक, चिकित्सक, नेता आदि लोगों की यहाँ बड़ी कमी है जो आप पूरी करें। आप आजन्म कारावास प्राप्त तो हैं ही। आप ऐसा तिलिस्म तोड़ें कि यह उपनिवेश हिंदुस्थान का, हिंदू साम्राज्य का एक बलशाली, शाक्तिशाली समुद्री दुर्ग बन जाए। इस कार्यार्थ हजारों

जीवन छीज जाने से भी वह बलिदान कभी अकारथ नहीं जाएगा।''

''अप्पाजी, आपकी बात सोलह आने सच है। सामुद्रिक दुर्ग के सिलसिले में कहें तो मैंने अंदमान की धरती पर कदम रखते ही इस द्वीप के सामुद्रिक महत्त्व पर गौर किया था। तटबंध, शस्त्रास्त्र संभार से सुसज्जित, किसी फौलादी कवच सदृश दुर्भेद्य। इस अंदमान द्वीपखंड को ही अगर एक प्रचंड जलदुर्ग का रूप दिया जाए तो हिंदुस्थान के पूर्व-सागर में नौ-सैनिक राह की एक जानलेवा सुरंग बनेगी। यह तटबंध महाद्वीप हमारे पूर्ववर्ती सागर में सिंहद्वार पर चढ़ाई हुई एक महाकाय तोप है, तोप।''

''और आजकल जो हम विदेशी खबरें सुनते हैं, उनसे यह दिखाई देता है कि मनुष्य ने हवाई जहाज बनाने की विद्या सीख ली है। आज यद्यपि लड़ाकू हवाई जहाज विरले ही हैं, तथापि इसमें कोई संदेह नहीं कि पाँच-पच्चीस वर्षों में बड़े-बड़े लड़ाकू तथा वाहक हवाई जहाजों के दल आकाश में मँडराने लगेंगे। इससे इस बात का अहसास होता है कि भविष्य में अंदमान एक ऐसा शक्तिशाली सामरिक हवाई अड्डा होकर ही रहेगा, जो हिंदुस्थान के पूर्ववर्ती समुद्र पर पहरा देगा। फिर सांस्कृतिक, सामुद्रिक तथा हवाई शक्ति की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण उपनिवेश का निर्माण करना, उसे स्थायी स्वरूप देना, उसे विकसित करना आदि कार्यार्थ जिन हजारों हतभागी भारतीय बंदियों को यातनाएँ दी गईं, उनका लहू और जीवन आज पच्चीस वर्षों तक यहाँ खर्च हुआ, वह राष्ट्रकार्यार्थ ही लग गया। कहना होगा कि पापियों का लहू भी पुण्यकार्यार्थ ही बह गया। इसके आगे भी जिन्हें यहाँ जीना है, उन आजन्म कारावासियों को अपना भी जीवन इसी कार्यार्थ खर्च करना चाहिए—यही उनका अपरिहार्य, अटल धर्म है।''

''यहाँ तक मैं भी आपसे सहमत हूँ। जिन्हें यहाँ रहना अपरिहार्य है, अन्य रास्ता जिनके लिए असंभव है, उन आजन्म कारावास प्राप्त बंदियों को चाहिए कि वे अपने जीवन की इतिकर्तव्यता, सार्थकता इस उपनिवेश की लोकसेवा में ही व्यतीत करें। परंतु मेरे लिए तो दूसरा रास्ता ही संभव है। मैं डंके की चोट पर कहता हूँ कि मैं काले पानी से भाग निकलने में सफल हो जाऊँगा। पिछली भेंटवार्त्ता में मैंने अपने कारण सूचित किए ही थे। उसपर मेरी यह बहन कंटकी तो पाँच वर्ष छोड़िए, पाँच महीने भी इस कारावास में जीवित रहना नहीं चाहती। पागलपन की सही, पर उसपर आत्मघात की सनक सवार है। अच्छा, यदि मैं सफल हो गया, यदि मैं इस वर्ष स्वदेश पहुँच गया, यदि मैं यहाँ के इस ध्येय से भी किसी महान् ध्येय को अपना जीवन समर्पित कर सका, मेरे गुणों का, शक्ति का तथा जीवन का इतना विकास तथा सद्व्यय हो सका जितना इधर कदापि नहीं हो सकेगा, तो फिर मेरा यह साहस

गलत सिद्ध नहीं होगा न?''

''कदापि नहीं। इतना ही नहीं, मैं प्रभु से प्रार्थना करूँगा कि तुम्हें इस कार्य में सफलता मिले। लेकिन तुम्हारा यह 'यदि' ही महादुर्घट है। खैर, तुम्हारी बनाई हुई योजना अधूरी थी। इसके बारे में कुछ तय किया कि निश्चित मौका कब, किस तरह साध्य होगा?'

''जी नहीं। लेकिन अनुसूया बहन ने कंटकी को वहीं काम पर लगा दिया है, जहाँ मैंने कहा था। बंदिनीशाला के बाहर विवाहेच्छु स्त्री-पुरुष बंदियों को परस्पर परिचय कराने के लिए जो थोड़ा-बहुत खुला स्थान है, वहाँ झाड़ू-बुहारने के काम पर लगाने से कंटकी निश्चित समय पर बंदीगृह से बाहर निकलकर वहाँ आती-जाती है। उधर ही हमारी आँखें चार हुई थीं। शायद मुलाकात भी होगी। सोचता हूँ, फिर कुछ ठोस कदम उठाऊँगा, तथापि मैं बेकार जल्दबाजी करने के पक्ष में नहीं हूँ। जब तक उचित अवसर नहीं मिलता, कोई कदम नहीं उठाऊँगा। अच्छा, मोहन से पता चला, अनुसूया बहन पड़ोस के गाँव में गई हैं। तब उनसे भेंट...''

''हाँ, सच है, उससे भेंट नहीं होगी। वह कल आएगी। तुम्हारा जाने का समय भी हो गया, है न? तुम्हारे साहसी षड्यंत्र के सिलसिले में बहुत-कुछ पूछना चाहता हूँ। लेकिन समय नहीं है। इस प्रकार की चर्चा सुरक्षित भी नहीं होती। तुम्हारा यहाँ आना अब तुम्हारे तथा हमारे लिए भी खतरे से खाली नहीं है।''

''जी अप्पाजी,'' कंटक ने उन्हें संबोधित किया, लेकिन जो विचार वह प्रकट करने जा रहा था, उससे ही उसका दिल भर आया। वह तनिक झिझक गया, फिर उसने कहा, ''अप्पाजी, इस बात का पल भर का भी भरोसा नहीं कि इस बीमारी की वजह से हम दोनों कराल काल के पंजे में फँस जाएँ। परंतु अप्पाजी, यदि काले पानी की सुरंग से बाहर निकलने में सफल हुआ, जीवन की निर्मुक्त हवा फिर से अपनी साँसों में भर सका—स्वदेश में निर्भयतापूर्वक रह सका तो स्वदेश में, अन्यथा यूरोप, अमेरिका—जहाँ भी कहीं रहूँगा, वहीं से आपके पोता-पोती की चिंता अपने कोखजाए बच्चों के समान करूँगा। अनुसूया दीदी तो मेरी बंदीवासीय बहन है। मेरी बदनसीबी की, संकटों की, गरीबी की भैयादूज में जिसने मुझे टीका लगाया, मेरे भाग्य में यदि कभी भाग्यशालिनी भैयादूज आ गई तो सगी बहन से भी अधिक प्रेम और सहायता का नेग दिए बिना कभी नहीं रहूँगा। अच्छा, चलता हूँ, अब मुझे जाना ही होगा।''

कंटक उठ गया। अप्पाजी को उसने खड़े-खड़े प्रणाम किया। वैसे ही थोड़ी देर देखता रहा—जाने के लिए तनिक मुड़ भी गया। लेकिन फिर वापस लौटकर आ गया और कहा, ''अप्पाजी, तकिये के सहारे तनिक सँभलकर बैठेंगे? पैर जरा धीरे-

धीरे पसारिए—नहीं-नहीं, पसारना ही होगा।''

रुग्णशय्या पर जर्जर होकर पड़े उस वृद्ध वीर को इस प्रकार बैठाकर कंटक ने उनके पैर अपने हाथों सलीके से कंबल के बाहर रखे और उनपर अपना माथा टेककर उन्हें साष्टांग प्रणाम किया।

''अप्पाजी, थोड़ी देर पहले आप कह रहे थे कि इस अंदमान का उपनिवेश हिंदू राष्ट्र के लिए कितना महत्त्व रखता है। इन द्वीपों का समुद्री एवं हवाई अड्डे की दृष्टि से बड़ा महत्त्व है। इधर एक नया हिंदू जनपद निर्माण किया जा रहा है। नारियल के, चाय के, रबड़ के, प्रचंड वृक्षों के विस्तीर्ण जंगल की विविध किस्मों के निर्माण के लिए उपयोगी लकड़ियों का बड़े पैमाने पर उत्पादन—यह सारी राष्ट्रीय संपदा महत्त्वपूर्ण है। तथापि इस प्रकार की संपदा अन्य उपनिवेशों में भी अपने हिंदू राष्ट्र को उपलब्ध हो सकती है। लेकिन जो संपदा अन्य किसी भी उपनिवेश में उपलब्ध नहीं, और सिर्फ अंदमान में ही संचित की गई है और इस भूमि पर रखी गई है, जिस अमूल्य निधि के कारण अन्य किसी भी उपनिवेश से अंदमान की यह धरती हमारे राष्ट्र को अधिक अभिलक्षणीय प्रतीत होती है, एक क्षेत्र प्रतिभासित होती है, वही इस भूमि की हमारी राष्ट्रीय संपदा, हमारी अनर्घ्य धरोहर है—सन् १८५७ के आप जैसे हजारों राष्ट्रवीरों की यहाँ पर बिखरी हुई रक्षा। हिंदुस्थान में अंदमान का नाम लेते ही इसका स्मरण सबसे पहले होगा।''

''लेकिन...लेकिन...पिछले पचास वर्षों में तुम ही पहले हिंदू हो, जिसने इस प्रकार की भावना व्यक्त की है।'' ठंडी आह भरते हुए अप्पाजी ने कहा, ''अरे खाक यादें लेकर बैठे हो। अरे, हिंदू पदपादशाही के संताजी, धन्नाजी, बाजी, चिमाजी, भाऊ, विश्वास, मल्हार, महादजी प्रभृति सैकड़ों विजयी सेनापतियों का भाग्य भले ही न सही, तथापि हिंदू पदपादशाही का आखिरी-से-आखिरी रणधुरंधर तात्या टोपे, जिन्होंने निराशा तथा अपराजय में भी कसौटी के लिए आवश्यक रण-चपलता, जीवटवृत्ति, लगन, शूरता, धैर्य, सहनशीलता तथा राष्ट्रभक्ति जैसे गुणों के बलबूते अंग्रेज शत्रुओं का भी नाकों दम किया था—जहाँ स्वराज के लिए और स्वधर्मार्थ फाँसी पर चढ़ गए उस स्थल पर उनकी स्मृति हेतु एक शिलान्यास भी इस कृतघ्न पीढ़ी ने किया नहीं। उसी पीढ़ी को भला हम सैनिकों की याद कैसे रहेगी जो अंदमान में चूर-चूर होकर, धिक्कृत होकर राख बन गए हैं? कंटक, जिस दिन सन् १८५७ की असिलता टूट गई, उसी दिन हिंदुस्थान की आशा छूट गई।''

''नहीं अप्पाजी, नहीं। यह सत्य है, आज हिंदू जाति अचेतन-सी पड़ी है—परंतु यह मूर्च्छा है, न कि मृत्यु। कम-से-कम इतिहास शपथ लेकर कह रहा है कि इस हिंदू जाति में एक ऐसी उज्जविक शक्ति का निवास है जो इस प्रकार की कई

मूर्च्छनाओं से पुनः जाग्रत हो उठी है। दशमुखी रावण गए, शतमुखी गए। अप्पाजी, यह कैसे कहा जा सकता है कि ये भी नए-नए विक्रमादित्य के अवतार होंगे ही या नहीं? शायद आपकी यह रक्षा उनके संभव होने की खाद है, आश्वासन है।''

''तथास्तु! यदि उस प्रकार का भाग्यशाली दिन पुनः सचमुच ही उदित हुआ तो इस अंदमान में बिखरी हुई हमारी रक्षा...''

''संकलित कराई जाकर उसपर यह कृतज्ञ, उपकृत राष्ट्र एक उत्तुंग स्मृति स्तूप बनाएगा। हिंदुओं की प्रत्येक राष्ट्र नौका उस स्मृति स्तूप को तोपों की रणवंदना दिए बिना आगे नहीं बढ़ेगी।''

कंटक के इस वाक्य के साथ ही उस वृद्ध पुरुष के पूरे बदन पर रोमांच की फौज खड़ी हो गई। उसकी जर्जर देहयष्टि में जैसे किसीने संजीवनी फूँक दी। सुदूर आकाश की ओर पल भर के लिए गड़ी हुई उनकी अनिमेष दृष्टि से ऐसा प्रतीत होने लगा कि जैसे उनके नेत्रों के सामने कोई उत्तुंग स्मृति स्तूप उभरा हुआ दिखाई दे रहा है। पल-दो पल के बाद उसी अनिमेष दृष्टि का रुख आकाश से कंटक की ओर करके उस वृद्ध वीर ने कंपित स्वर में कहा, ''कंटक, सन् १८५७ के क्रांतियुद्ध के बाद चालीस वर्ष के पश्चात् ऐसे शब्द आज ही मैंने सुने जो सहानुभूति और मेरे राष्ट्र के पुनरुत्थान की भव्य आशा जगाते हैं, मेरे कानों में अमृत घोलते हैं। देखो, मेरे हृदय में प्राचीन आकांक्षाओं की ऊर्मियाँ जो मैंने उसमें बड़ी गहराई से दबाई थीं, आज किसी बवंडर की तरह मेरे लहू के कतरे-कतरे से उमड़ रही हैं। कंटक, मुझसे इन अनुकूल भावनाओं का कोलाहल, उनकी उमड़-घुमड़ और हृदय की यह तीव्र गति सही नहीं जाती।''

इतने में दूर से चौकी बंद होने की घंटी घन्-घन् करती सुनाई दी।

''घंटी।'' वृद्धवीर चौंक पड़ा, ''जाओ कंटक, जाओ, वरना पकड़े जाओगे।''

कंटक जल्दी-जल्दी उठ गया और छिपते-छिपाते उस पहाड़ी पर तेजी के साथ चढ़ने लगा।

और फिर दो-तीन दिन के अंदर ही उस वृद्ध का अंत हो गया जो सन् १८५७ के क्रांतियुद्ध के कारण काले पानी पर गए हुए उन हजारों हिंदू सैनिकों में अंतिम था।

उस दिन उसकी उस उजाड़, वीरान कुटिया में दो ही फूल पीछे रह गए जो उसकी याद दिलाते थे—मोहन और उषा।

□

प्रकरण–१६

अंदमान के घने जंगल में

अंदमान के जंगल में गृह निर्माण कार्य के लिए उपयुक्त लकड़ी इतनी बढ़िया, मजबूत, शानदार, गठीली तथा सुडौल मिलती है कि यूरोप के बाजारों में उसकी भरपूर माँग होती है।

कंटक जिस जंगल कटाई-विभाग का काम किया करता था, आज उस विभाग को अरण्याधिकारियों द्वारा विशेष आदेश दिया गया कि यूरोप से आई नई माँग की पूर्ति के लिए उस जंगल के दूसरी तरफ नए जंगल में घुसकर कटाई का काम शुरू किया जाए। उन घने जंगलों में जहाँ आज तक प्रवेश नहीं किया गया था, प्रथमतः काम–चलाऊ रास्ता बनाने, उसके पश्चात् बड़े–बड़े प्रचंड वृक्षों पर तारकोल से क्रमांक लिखने और फिर बड़ी–बड़ी कुल्हाड़ियाँ, आरियाँ तथा अन्य हथियारों के साथ दो–दो सौ बंदियों की टोलियों से उन भीमकाय वृक्षों को काटकर, तोड़कर, तराशकर उनके लट्ठों के ढेर–के–ढेर बनाने का निहायत सख्त, कठोर तथा कठिन काम करवाना था।

उस आपाती आदेशानुसार कंटक अपने अधीन दल को तैयार करने में जुट गया। जंगल में जहाँ तक कटाई नहीं हुई थी, उस अत्यंत सुदूर इलाके में कदम रखना अंदमान में एक साहसपूर्ण कार्य माना जाता था। जैसे–जैसे अंग्रेजों का प्रवेश उस घने जंगल के अंतरंग में होता, वैसे–वैसे वहाँ की मूलभूत जंगली एवं कट्टर टोलियों की शत्रुता बढ़ती जाती; क्योंकि उस मात्रा में उन्हें पीछे हटना पड़ता। उनका जंगली साम्राज्य नष्ट होता। अतः ऐसे घने जंगल में अंग्रेज के एक कदम आगे बढ़ने से उस इलाके की जंगली तथा कट्टर टोलियों में से एकाध टोली अंग्रेजों और जंगल कटाई करनेवाली बंदी टोलियों पर कब धावा बोल देगी और कब उन्हें मौत के घाट उतार देगी, इसका कोई भरोसा नहीं था। इन जंगली तथा उग्र

कट्टर टोलियों में यद्यपि कई उपजातियाँ और उपनाम थे, तथापि उनमें जो अत्यंत आदिम, जंगली तथा गजब की कट्टर, उग्र जाति है उसका नाम जावरा है; और इसी कारण बंदी लोग आमतौर पर इन सभी जंगली टोलियों को जावरा ही कहते थे। यह बात नहीं कि इस तरह के घने जंगल में पहले-पहल घुसते समय उसके प्रतिकार में ये जावरे हमेशा ही 'रास्ता रोको' आंदोलन करते हों, लेकिन इसका कोई भरोसा नहीं होता था कि वे कब आ जाएँगे। अत: कंटक ने अपनी टोली में भी हमेशा के लल्लू-पंजू बंदी न लेते हुए निडर, परिश्रमी तथा जंगल कटाई के काम में मँजे हुए बंदी ही चुने। अर्थात् उनमें रफीउद्दीन तो था ही। वह एक बार काम में जुट जाता तो कलेजा तोड़कर मेहनत करता, उसपर जंगल कटाई के काम में तो वह पहले से ही इतना निपुण था कि भगोड़ा बंदी होने के बावजूद लकड़ी कटाई को बढ़ाने के लिए उसके बंदोबस्त का विश्वास दिलाकर उस टोली के मुखिया जमादार ने जान-बूझकर उसे माँग लिया था।

वह मुखिया जमादार रफीउद्दीन को मनुष्य नहीं कहता, उसने उसका नाम रखा था 'जंगल कटाई की मशीन।' आजकल अपना उल्लू सीधा करने के लिए रफीउद्दीन अपने वरिष्ठ अधिकारियों की चापलूसी करके उनकी मरजी का काम करने में लीन था। उस दिन के उस साहसपूर्ण कार्य को आगे बढ़ाने के लिए वह भी एक टाँग पर खड़ा रह गया। पिछले दो-तीन दिन में रफीउद्दीन ने कंटक से यहाँ से काफूर होने के सिलसिले में काफी चर्चा की थी, लेकिन योजना नहीं बन पा रही थी। इतने में यह सरकारी आपाती कार्य निकल पड़ा। जब तक आखिरी मौका हाथ नहीं लगता और वह जल्दी हाथ लगे, इसलिए कंटक और रफीउद्दीन दोनों सरकारी कामकाज में खून-पसीना एक करके अधिकारियों का विश्वास प्राप्त करके उनकी नाक का बाल बनकर उनकी 'वाहवाही' लूटने में कोई कसर बाकी नहीं रखते। इस नीति के कारण उस घने और भयंकर जंगल में घुसने का, जहाँ इससे पहले किसीने कदम नहीं रखा था, तथा जावरों के यदा-कदा होनेवाले जानलेवा आक्रमण का मुकाबला करने का साहस करके ये दोनों सबसे अगली टोली में घुस गए थे। उनका समूचा लक्ष्य इसी उद्देश्य पर केंद्रित हो गया था।

मुरगे की बाँग होने से पहले ही इमारत की घंटी घनघनाई। आधे घंटे के अंदर-अंदर सौ-दो सौ कैदी अहाते में एक कतार में खड़े हो गए। हर एक की एक टाँग कमर से टखनों तक मोटी-मोटी जंजीरों से जकड़ी हुई थी—एक टाँग खुली हुई। 'एक-दो-तीन' गिनती के साथ दो सौ की टोली अलग छाँटी गई।

यह सबसे अधिक चुनिंदा टोली थी और आज लकड़ियों की माँग पूरी करने का तकाजा होने के कारण इस टोली पर जो खास जमादार नियुक्त किए गए थे, वे

भी सब-के-सब 'डंडेवाले' बंदी थे। 'डंडेवाला' जमादार उसे कहते हैं, जो मेहनती और निठल्ले कामचोर, सीधे और उद्दंड—दोनों तरह के बंदियों को कोल्हू में पेर देता है, सभी से ठोंक-पीटकर, अच्छी तरह से कसकर काम लेता है। 'आगे काम, पीछे राम' यही इस जाति के जमादारों का खास बाना होता है। अर्थात् डटकर काम लेने में दया-माया का धार्मिक प्रश्न ही उनके सामने कभी नहीं होता। सभी व्यवहार थोक आर्थिक व्यवहार। उद्दंड तथा घुटे हुए दंडित भी ऐसे जमादारों के सामने गऊ बन जाते हैं। ये 'डंडेवाले' जाति के जमादार स्वयं ही कोई परले सिरे के डाकू, लुटेरे अथवा क्रूर उद्दंडवर्गीय पूर्वाश्रम के बंदी होते हैं, जो अब तरक्की पाकर दूसरे दरजे के अधिकारी बने होते हैं।

एक पैर में कमर से लेकर टखनों तक मोटी-मोटी जंजीरों से जकड़े हुए दो सौ बंदी पौ फटते ही उस मैदान में उस तरह 'गिनती' कर खड़े रहे। डंडेवाले जमादार ने आते ही आदेश दिया—'बैठो'। जंजीरों की एक साथ खनखनाहट हुई और बंदी एक कतार में धम से बैठ गए। लगे हाथ उनके कटोरों में काँजी परोसी गई। निश्चित समय होते ही 'उठो' की गर्जना हुई। इस बात का जरा भी खयाल न करते हुए कि काँजी किसने खाई है अथवा किसका खाना अभी पूरा भी नहीं हुआ, सभी को उठना पड़ा। तुरंत दो सौ बंदियों की उस टोली ने दोहरी पंक्तियों में जंगल की राह ली। हाथ में धरी बेंत की छड़ियाँ चमकाते हुए वॉर्डर और डंडों को सान धरते हुए हवलदार, जमादार उन पंक्तियों के दोनों तरफ से दस-दस कैदियों के फासले पर चल रहे थे। जंगल में लकड़ी कटाई का काम सबसे अधिक खतरनाक था। कभी-कभी कोई साहसी बंदी जंगल में गायब होकर हिरन होने में नहीं हिचकिचाता। इसके लिए एकाध बंदूकधारी सिपाही इन टोलियों के साथ हमेशा दिया जाता, ताकि यदि कोई भागने की कोशिश करे तो उसपर बेहिचक गोली दागी जाए। उसपर आज तो जंगल के उस इलाके में घुसना था जो बहुत ही घना था तथा जिसमें पग-पग पर जावरों का भय था। इसके लिए तीन बंदूकधारी सैनिक भी उन सबके पीछे उनकी सहायता करते और बीच-बीच में उन सबको चिल्लाकर 'चलो! जल्दी चलो। और जल्दी' कहते आगे ठेलते हुए आ रहे थे।

मूसलाधार वर्षा हो रही थी। अंदमान के जंगली इलाके में साल में कम-से-कम दस महीने मूसलाधार बारिश होती है। बंदियों के पास कपड़ों का एक ही जोड़ा होता है—जाँघिया और कुरता। इमारत में वापस आने पर कम-से-कम उसे तो सुखा पहन सकें, इसलिए वे उसे भी इमारत में छोड़कर ही जंगल कटाई के लिए आ जाते। बदन पर मात्र एक लँगोटी। बदन दिन भर पानी से तर-बतर।

जंगल आते ही उस टोली का निश्चित दलों में बँटवारा करके लकड़ी

तोड़ना, फोड़ना, तराशना शुरू हुआ। आधा मील लंबे जंगली इलाके में यहाँ-वहाँ हर ओर चीख-पुकार, हँकवा करना और काम का धूम-धड़क्का हो रहा था। कल जो भीमकाय शाखाएँ आरी से लगभग चीरकर रखी थीं, उनकी आरी से कटाई हो रही थी और वे कड़कड़ शोर मचाती नीचे ढेर हो रही थीं।

तब 'भागो, बचाओ' की धूम होने लगी। बड़े-बड़े लट्ठ दस-पाँच जनों के सिर पर चढ़ाकर गोदाम में जमा करने के लिए भेजे जाने लगे। बीच में ही कोई पेड़ से गिर पड़ता। किसीको जहरीले कीटाणु के काटने से एक अलग ही हो-हल्ला मचता। वॉर्डर बंदियों को और जमादार हवलदार वॉर्डरों को पानी पी-पीकर कोस रहे थे। कोई थोड़ा सा भी गिर पड़े, थक जाए, रुक जाए तो बेंत की सपसप उसकी खाल उधेड़ती। बीच में ही कोई उद्दंड अथवा कामचोर दंडित बहक गया या आदतन काम को दुत्कार कर अशिष्ट व्यवहार करने लगे तो तीन-चार वॉर्डरों को उसपर छोड़कर उसकी हड्डी-पसली तोड़ दी जाती, क्योंकि आज हमेशा के चलताऊ जमादारों का राज़ नहीं था, अपितु 'भैया, आज तो डंडेवाले जमादारों का राज है।'

दोपहर बारह बजने तक कुल्हाड़ियाँ और आरियाँ चलाते-चलाते उन बंदियों के अंजर-पंजर ढीले हो गए। घंटी घनघनाने से ही पता चला कि बारह बजे हैं। कारण, सवेरे की तरह अपराह्न को भी इस धने जंगल में तथा हमेशा उमड़ते-घुमड़ते बादलों से घिरे पानी बरसते उस वातावरण में छन-छन करती साफ रोशनी कभी नजर ही नहीं आती।

घंटी बजते ही सारे दल भागे-भागे गोदाम के सामने आ गए। फिर एक बार 'एक-दो-तीन' के क्रम से दो सौ बंदियों की गिनती की गई। उनकी संख्या उतनी ही थी, जितनी सवेरे थी। लेकिन हालात ने पलटी खाई थी। कुछ के पाँवों में विषाक्त काँटे बहुत गहराई से धँस गए थे और वे लँगड़ा रहे थे, कुछ लकड़ी के नीचे आ जाने से अथवा वॉर्डर, जमादार द्वारा धुर्रे उड़ाने के कारण इतने घायल हो गए थे कि पूरा बदन खून से लथपथ हो गया था। प्रायः सभी बंदियों ने अपने पूरे बदन पर दलदल का कीचड़ थोपा हुआ था। वर्षा में घुल जाने पर वे फिर से उसे पोत लेते, क्योंकि इस जंगल के कूड़ा-करकट में जोंकों, चिंचड़ों की जो भरमार थी वे नीचे से बदन पर चढ़ जातीं और ऊपर से लाखों मच्छर, ततैये आदि जहरीले कीड़े बदन को जलन की लपटों से घेरते। कई-कई बार उन बंदियों ने अपने बदन पर कीचड़ की लीपापोती की थी। फिर उन जोंकों को वहाँ से उखाड़ते-उखाड़ते नाकों दम आ जाता जहाँ वे चिपक जातीं। उनकी चमड़ी से लहू की पतली-पतली धाराएँ उनके कीचड़-सने बदन पर यहाँ-वहाँ ऐसी दीखतीं जैसे लंबा सा लोहितवर्णी झाग।

खुजली तो बार-बार होती, पर खुजलाने के लिए फुरसत कहाँ? जलन होती रहती पर फूँक मारकर ठंडक पहुँचाने की भी फुरसत नहीं।

इस तरह सताए, थके, माँदे, झल्लाए, खून, कीचड़ से लथपथ वे बंदी अपने आपको दयनीय एवं अन्याय से पीड़ित समझते। वे उन डंडेवाले जमादारों को दुष्ट, जल्लाद समझते हुए कोस रहे थे जिन्होंने उन्हें कठोर परिश्रम के कोल्हू में पेर दिया था। लेकिन इस डंडे का शिकार वे क्यों बन गए, 'जैसी करनी वैसी भरनी' न्याय से दूसरों पर की गई किन-किन यंत्रणाओं का प्रायश्चित वे भुगत रहे थे—इसका पछतावा कहिए तो सौ में इक्के-दुक्के को ही हुआ होगा। इतना ही नहीं, उनमें से प्राय: सभी डंडेवाली जमादारी मिलने पर उसे नकारनेवाले नहीं थे—कई कैदी तो उनसे भी अधिक बढ़े-चढ़े डंडेवाले होते।

बारह की घंटी बजते ही खाना आ जाता। सारे कैदी, जिनकी अँतड़ियों में भूख के मारे आग लगी थी, पेड़-पौधों के झुरमुट की आड़ में घिच-पिचकर बैठ गए। मोटी-मोटी रोटियों का ढेर आते ही हर एक इतना भुक्खड़ बन गया कि सारी-की-सारी रोटियाँ अकेले ही साफ करने के लिए उसका जी ललचाने लगा। दो-दो रोटियाँ और शाक-भाजी का एक-एक लोंदा उनके हाथों पर रखा गया। इस प्रकार धाँधली कि जंगल कटाई की टोलियों को थाली लेने की सुविधा भी नहीं होती। एक हाथ की थाली बनाकर वे उसपर रोटियाँ और सब्जी का लोंदा रखते और दूसरे हाथ से खाते। ऊपर से वर्षा की झड़ी लगी हुई। खाते-खाते रोटियों का लोंदा बनता और सब्जी बहने लगती।

जमादार, सैनिक और कंटक बाबू ने उधर बनी हुई अस्थायी झुग्गियों में बैठकर भोजन किया। 'हाँजी, हाँजी' खोर बंदियों में कुछ सिफारिशी टट्टू वहीं झुग्गियों में दहलीज के कुत्ते बनकर घुसते। उन पिछलग्गुओं के सामने एकाध रोटी भी फेंकी जाती। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि रफीउद्दीन का भी इन्हीं सिफारिशी टट्टुओं में समावेश होता जो हरदम 'बाबू' लोगों की दुम में घुसा रहता, क्योंकि जमादार, हवलदार, और सैनिक भी, टोली का जो मुखिया 'बाबू' होता है, उससे दबकर ही रहते। कंटक सिर्फ बाबू ही नहीं अपितु अपने चोखे काम से तथा निर्मोही बाने के कारण अंग्रेज अधिकारियों के गले का ताबीज बन गया था। उनकी कई गलतियों तथा तिकड़मबाजियों को वह छिपाता था, और इसी कंटक बाबू के पीछे पूँछ हिलाने और उसकी पाँवचप्पी करने में रफीउद्दीन निपुण था। साहस, दिलेरी एवं मेहनती कामों के कारण वह जमादार को भी प्रिय हो गया था। अत: कंटक बाबू का पिछलग्गू बनकर झोंपड़ी में जा सका। एक टाँग में जकड़ी हुई जंजीर को बड़े ठाठ से ठसके के साथ बीच-बीच में खनखनाते हुए उसने चार-पाँच

रोटियों का चारा उसी झोंपड़ी में जहाँ कंटक बाबू थे, कोने में कुंडली मारते हुए आराम के साथ बैठते तनकर गटकाया, जैसे बैल अपने घुँघरुओं की लय में चारा खाता है।

उस दिन रफीउद्दीन ने मेहनत भी उसी तरह जी तोड़कर की थी। अन्य कैदी जंगल कटाई कर रहे थे, तब अगले जंगल में जहाँ अंग्रेजों ने कभी प्रवेश नहीं किया था—घुसकर राह बनाने के लिए जिन अग्रगामियों की टोली कंटक के अधिकार में गई उसमें रफीउद्दीन भी था। कुल्हाड़ी, हँसिया, गँड़ासे से आड़ी-तिरछी शाखाएँ, पौधे, कँटीली जालियाँ तोड़कर प्रचंड पत्थर, शिलाएँ उठाकर गड्ढे में भर दिए और एक-आध मील लंबी, मजबूत अस्थायी, कामचलाऊ सड़क इन लोगों ने उन दो-तीन घंटों में बना दी। एक मोटे से अजगर का, जो हाथ की पकड़ में भी नहीं समा सकता, रफीउद्दीन ने कुल्हाड़ी से सिर कुचल दिया था। उस भीमकाय, अगड़धत्त जानवर की भयप्रद लाश अपने कंधों पर लादकर, अपने शरीर के चारों ओर उसे लपेटकर वह जमादार के सामने नाच रहा था। तीन दिन का काम तीन घंटों में करवाने के कारण जमादार के साथ सभी अधिकारी कंटक पर बड़े खुश हो गए। कंटक 'बाबू' तो था, पर मूलत: था एक कैदी ही! अत: उस घोर घने जंगल में सवेरे जब पाँच-छह चुनिंदे कैदी लेकर गया था और खासकर उसके साथ रफीउद्दीन जैसा भगोड़ा बंदी होने के कारण उन सभी पर पहरा देने के लिए एक बंदूकधारी फौजी भी दिया गया था। उसपर उस जंगल के एक नए खंड में पहली बार ही सरकारी प्रवेश हो रहा था। जाहिर है, जावरों से कुछ फसाद खड़ा करने का भय तो था ही। परंतु अब आधा मील अंदर प्रवेश कर उस जंगल में कामचलाऊ राह भी निर्विरोध बनाई जाने के कारण जावरों के उत्पात का वह डर भी दूर हो गया और उसी मात्रा में सबका कलेजा ठंडा हो गया था।

भोजन की छुट्टी समाप्त होने पर अब पूर्व योजनानुसार कंटक का उस दिन का काम बस इतना ही रह गया था—बनी हुई राह के आधे मील के टापू में उस तरफ के जो-जो उपयोगी वृक्ष हाथ लगेंगे, उनपर तारकोल से यथासंभव क्रमांक डालते जाना और शाम पाँच बजने से पहले वापस लौटना। उसके लिए रफीउद्दीन के साथ चार-पाँच और कैदी लेकर कंटक बाबू पुन: उस जंगल में बनाई गई उस राह से घुस गए। उनके आगे-पीछे पहरा देने के लिए और सुरक्षार्थ वह बंदूकधारी सशस्त्र सैनिक भी चला गया। बाकी सौ-डेढ़ सौ बंदी लकड़ियाँ तोड़ने-फोड़ने का काम वहीं करने लगे, जहाँ सवेरे कर रहे थे। बाकी बंदूकधारी सैनिक भी उन्हींमें बँटे हुए थे।

लगातार मूसलाधार पानी बरस रहा था। उसपर कंटक का जत्था जिस घने

जंगल में गया था उसमें ऊपर आसमानी बारिश घंटा भर नहीं रुकती थी, क्योंकि ऊँचे और विशाल महावृक्ष, उसके नीचे वृक्ष, उसके नीचे पेड़ सबसे लिपटकर, सबसे उलझकर एक ही जंजाल बनी लता-वल्लरियाँ, जाली -पौधे, परगाछे-बाँदे—इन सभी के इकट्ठे छप्परों के ऊपर छप्पर। आसमानी वर्षा रुकने पर भी इन जंजालों में उलझी वर्षा घंटों ऐसे जंगलों में होती ही रहती है, सरसराती टपकती रहती है। वही बात रोशनी की। धूप तो उस घने जंगल में तलहटी तक सहसा कभी पहुँचती ही नहीं, उसपर चार बजे ही उधर अँधेरा छा जाने से मनुष्य बस अपने निकटवर्तीय व्यक्ति को ही देख सकता था।

इस प्रकार अँधेरा और बारिश देखकर कंटक ने सैनिक पहरेदार से कहा, ''पाँच बजे तक नहीं, चार बजे ही वापस लौटते हैं।'' वह तो एक टाँग पर तैयार ही था। बेचारा निरंतर बंदूक कंधे पर रखने के कष्ट से जितना परेशान हो गया था, उतने तो जंगल कटाई के कष्ट से बंदी भी नहीं हुए होंगे। इस समय साथवाले दो-तीन बंदियों को निशान किए हुए वृक्षों पर क्रमांक डालने का काम सौंपकर कंटक और सैनिक उस नई सड़क के दूसरे छोर तक जंगल में घुस गए थे। रफीउद्दीन उनसे भी आगे कुछ दूरी पर स्थित एक सड़क के पास पहुँच चुका था। सागर काफी दूर था—खाड़ी भी वृक्षों के घने झुरमुट के पीछे छिपी हुई थी। उसका एक सँकरा, लेकिन गहरा रास्ता दूर तक जंगल में घुसकर वहीं पर समाप्त हो गया था। उस राह के कारण वहाँ तनिक खुला स्थान मिल गया था। कंटक उस सैनिक के साथ वापसी की योजना बना ही रहा था कि रफीउद्दीन ने, जो उस राह तक पहुँच चुका था, दबी आवाज में कंटक को पुकारा। कंटक तेजी के साथ आगे बढ़ने लगा। इतने में उसका हाथ पकड़कर उसके साथ एक दीवारनुमा विशाल वृक्ष की जड़ की ओट लेकर रफीउद्दीन संदेहपूर्ण स्वर में फुसफुसाया, ''बाबूजी! वह देखो; चील, गिद्ध और कौए इस खाड़ी की राह के किनारे मृत अवस्था में पड़े हैं। यह ठीक लक्षण नहीं है।''

''क्यों भाई? थोड़ी देर पहले उस जिंदा और प्रचंड अजगर से तुम बिलकुल नहीं घबराए, और अब इन मरे हुए पक्षियों को देखकर तुम्हारे होश उड़ गए? अँ?''

इतने में वह बंदूकधारी सैनिक भी उधर पहुँच चुका था। उसकी ओर देखकर कंटक मुसकराया, ''देखो, मरे हुए पंछियों से रफीउद्दीन डरता है। लगता है, उसके अनुसार भूत-प्रेत इन पंछियों का रूप लेकर भटकते हैं—इस प्रकार जंगली लोगों की धारणा होती है।''

''नहीं बाबूजी, नहीं। यह मजाक की बात नहीं है। देखो, जब मैं पहले भाग गया था, उसी समय से इन जंगली लोगों की धारणा है कि ये पक्षी उनकी सारी

गतिविधियों की खबर उड़ते-उड़ते जाकर शत्रुओं को दे देते हैं। जबकि ये पक्षी जो उनका हमेशा का खाद्य नहीं हैं—यहाँ आज ही मृतप्राय पड़े दिखाई देते हैं—इसका मतलब…''

'धाँय, धाँय, धाँय…' उसी क्षण बंदूके छूटने की आवाज उसी ओर से सुनाई दी जहाँ बंदियों की प्रमुख टोली काम कर रही थी। उसके पीछे हो-हल्ला, शोरगुल। इतने में टीले की उस झोंपड़ी के पास घंटी का भयसूचक 'घणघण-घणघण' सतत जारी था।

''जावरे आ गए। हमारे लोगों पर वे टूट पड़े होंगे और अपने सैनिकों ने उनपर गोली चलाई होगी।'' रफीउद्दीन ने भारी स्वर में लेकिन निर्भयतापूर्वक तर्क किया।

उसके साथ ही सबसे अधिक किसके तोते उड़ गए होंगे—उस पहरेदार के या उस बंदूकधारी फौजी के जो उनकी रक्षा के लिए आया हुआ था।

''बाप रे बाप! अब हम क्या करें? कह डालो भाई! बोलो, मैं भी बंदूक चलाऊँ?''

''ना, ना।'' कंटक ने उसे रोका, ''सिर्फ पेड़-पत्तों में धमाका करने से क्या फायदा? बल्कि अभी जो जानकारी नहीं है कि हम लोग कहाँ हैं, इससे वह हो जाएगी और जावरे इन पेड़ों में घुसकर हमें भी पकड़ लेंगे। मेरे विचार से हम हिम्मत न हारते हुए इसी प्रकार वापस जाकर प्रमुख टोली से मिल लें।''

सैनिक यही चाहता था। उसने मन में सोचा, 'जावरे धावा बोलकर आए भी तो इस दलदल की ओर से ही आएँगे। वापसी के समय हमारी पीठ इधर ही होगी। अत: इन बंदियों के आगे चला जाए ताकि जान का खतरा कम-से-कम हो। दलदल की ओर से आए हुए जावरों के तीर पहले इन्हींमें से किसीकी पीठ में घुस जाएँगे। मैं आगे से नौ दो ग्यारह हो जाऊँगा।' मन में इसी तरह की दहशत खाते हुए लेकिन ऊपरी तौर पर हिम्मते-मर्दां बनकर सैनिक ने कहा, ''हाँ, चलो तुम सब। अरे, इस तरह जान क्यों सूख रही है तुम लोगों की? देखो, मैं तो तुम्हारे चार कदम आगे चल रहा हूँ। जावरे-झावरे किस झाड़ की पत्ती हैं? उन्होंने इन पंछियों को जिस तरह फटाफट नीचे गिराया, उसी तरह मेरी यह बंदूक उन्हें टपटप् नीचे गिराएगी।''

सैनिक आगे-आगे चलने लगा। कंटक और रफीउद्दीन उसके पीछे-पीछे। लेकिन उस सैनिक की इस तरह की अगुआई पर गौर करने के बाद कंटक और रफीउद्दीन ने उसकी दिखावटी हिम्मत को पहचाना। उसने रफीउद्दीन की ओर देखकर आँखें मिचकाईं। उस संकट तथा धाँधली के मौके पर रफीउद्दीन को

मजाक के बिना चैन नहीं आया। उस कँटीली, खुरदुरी राह पर चलते-चलते ही उसने व्यंग्य में कहा, "दरोगाजी, देखिए ये जावरा लोग तो बड़े शूर होते हैं। उनमें रिवाज है कि जिनपर हमला करना है उनपर उनके पीछे से तीर नहीं चलाएँगे, राह में जो मुँहाने होगा, उससे मुखातिब होकर ही तीर चलाएँगे—सामने से, न कि पीछे से।" रफीउद्दीन की यह गप सुनकर सैनिक का मुँह उतर गया। इस विचार से कि उसने सामने आकर बेकार अपनी जान खतरे में डाल दी, वह इतना चौंका कि उसे आभास हुआ—जावरों का तीर सामने से सूँ-सूँ करते आ रहा है। अब भय को छिपाकर पीछे रहने के लिए कौन सा बहाना ढूँढ़ना होगा? खँखारते-खुँखारते उसे एक बहाना मिल गया।

अचानक रुककर बंदूक जमीन पर टिकाते हुए हवलदारजी ने कारतूसों की पेटी निकाली। उसके रुक जाने से रफीउद्दीन और कंटक भी तनिक ठिठक गए। उन्हें धमकाते हुए हवलदारजी ने आज्ञा दी, "कैसे गँवार हो। चलो, जल्दी-जल्दी। मैं बंदूक में कारतूस भरकर पेटी बाँधकर आ ही रहा हूँ। अरे, अकेले जाने में इस तरह डर काहे को रहे हो?"

वाकई यह समय पल भर के लिए भी सुस्ताने का नहीं था। कंटक को इस बात का अभिज्ञान था। दिल्लगी जानलेवा भी हो सकती है, अत: व्यंग्य का सिर्फ उतना ही मजा लेकर, जितना लिया जा सकता है, कंटक आगे बढ़ा। उसके साथ-साथ रफीउद्दीन। थोड़ी दूरी पर उन्हें आगे बढ़ते हुए देखकर कारतूसों से भरी बंदूक फिर कंधे पर डालकर हवलादारजी चलने लगे। जावरे आए भी तो सामने से ही आएँगे, उनके तीरों के सामने इन बंदियों की ढाल, उसके पीछे वह—उस हालत में अपनी जान बचाने का यथासंभव व्यूह रचा हुआ देखकर हवलदार तनिक निश्‍िंचत हो गया।

दो-ढाई सौ गज उस दुर्गम पगडंडी पर उस घनघोर अँधेरे और वर्षा टपकते जंगल से वे तीनों प्रमुख टोली की ओर वापस लौट ही रहे थे कि इतने में⋯

दलदल के किनारे घने वृक्षों में से एक ऊँचे वृक्ष से दो हट्टे-कट्टे जंगली जावरे उतरे। काफी देर से वे उन तीनों की गतिविधियों की टोह ले रहे थे। वृक्षों की झुरमुट में से साँप जैसे सनसनाते हुए वे उनके पीछे से आए और अचूक निशाना लगाने का अवकाश और अवसर मिलते ही उन्होंने अपने धनुष तानकर उस बंदूकधारी हवलदार की पीठ पर, जो सबसे पीछे था, झनझनाते हुए दस-पाँच तीर छोड़ दिए!

"बाप रे बाप! मर गया! मर गया रे! जावरे!" इस तरह अचानक चीखकर बंदूक के साथ वह मुँह के बल गिर गया। पीछे मुड़कर देखने का भी उसे अवकाश नहीं मिला। अचानक उसकी पीठ में दो विषयुक्त तीर घुस गए, वे रीढ़ की तरफ से

सीधे पेट में धँस गए। उसकी पीठ में धँसे उन तीरों के सिर उड़ती हुई चिड़िया जैसे थरथराते रहे। इतना आवेग और त्वेष उनमें कूट-कूटकर भरा हुआ था।

वह चीख सुनकर कंटक खट से पीछे मुड़कर उस सैनिक की ओर दौड़ा। लेकिन रफीउद्दीन ने फौरन उसका हाथ पकड़कर उसे झाड़ियों में खींच लिया।

"बाबूजी, छिप जाओ, छिप जाओ पहले।" कंटक और रफीउद्दीन तुरंत झाड़ियों में छिप गए। जैसेकि जान पर बीतते ही मनुष्य केवल शारीरिक प्रतिक्रियावश तुरंत कुछ करता है। काँटे, जोंक, साँप, गिरे हुए पत्तों का गीला कीचड़—आदि न्यूनतर उपद्रवों की ओर उन्होंने ध्यान भी नहीं दिया। पत्तों के गीले कीचड़ में लगभग रेंगते हुए वे जहाँ तक जाना संभव था, वहाँ तक झाड़ियों के भीतर घुसते गए। अपने हाथों में पकड़ी कुल्हाड़ियाँ उन्होंने बिलकुल नहीं छोड़ीं। पाँचेक मिनटों तक उनके दिल में चिंता और धकधक के सिवा अन्य कोई अहसास नहीं था। फिर कंटक को अचानक सूझी कि जो सैनिक ढेर हो गया है उसके हाथों में भरी हुई बंदूक और कमर पर कारतूस की पेटी वैसे ही है। अगर ये चीजें जावरों के हाथों लग गईं तो बड़ा अनर्थ होगा।

"जावरों को बंदूक में इतनी रुचि नहीं होती।" रफीउद्दीन ने कहा, "और अब झाड़ी के बाहर निकलने में जान के लाले पड़ने की आशंका है।"

"परंतु बंदूक को यूँ ही छोड़ देने में तो वह और भी खतरनाक सिद्ध होगा। वे उसे ले भी जा सकते हैं। उसपर बंदूक अपने ही हाथों में होना अधिक सुरक्षित है।" इस अनुरोधवश कंटक छिपे-छिपे, दबे पाँव फिर से झाड़ियों के मुहाने आ गया—हर तरफ सन्नाटा छाया हुआ देखकर वह झट से आगे बढ़ा। बंदूक, कारतूस की पेटी, शिकारी चक्कू, खंजर निकालकर उसने ले लिये। सैनिक के मुँह से खून की उल्टियाँ हो रही थीं—उस खून में उसकी लाश लिथड़ गई थी।

"मर गया बेचारा!" उसाँसें छोड़ता हुआ कंटक उन शस्त्रों के साथ पुनः झाड़ियों में घुस गया।

रफीउद्दीन ने कहा, "एक-दो बार हवा में चलाओ बिना छर्रे के। जावरे बंदूक के धमाके से बहुत डरते हैं। आसपास होंगे तो आगे नहीं घुसेंगे। अन्यथा सैनिक की पीठ में धँसा हुआ अपना तीर निकालने शायद वे आ सकते हैं। उनके पास इने-गिने ही तीर होते हैं। शिकार करते समय छोड़े हुए तीर ही वे प्रायः चुनकर वापस ले जाते हैं—उन्हें ही ठीक-ठाक करके फिर से काम में लाते हैं।"

कंटक ने सड़क के किनारे आकर एक-दो धमाके किए और वे फिर से घात में बैठे रहे।

एक बार उन्होंने सोचा, टोली के सैनिक और जमादार कुछ लोगों को साथ

लेते हुए उन्हें छुड़ाने अथवा उन्हें ढूँढ़ने इस राह से आएँगे ही, लेकिन संकट का घंटा जो बज रहा था और सुदूर पहाड़ियों का शोरगुल जो बीच-बीच में सुनाई दे रहा था, अब सब बंद हो चुका था। इससे उन्होंने अंदाजा लगाया कि जावरों की मार से घबराकर जमादार सभी बंदियों को लेकर सरकारी इमारत की ओर वापस लौट गया होगा। कंटक ने पूछा, ''जावरों के कितने सौ लोग हमला करने आए होंगे?''

रफीउद्दीन ने उत्तर दिया, ''कितने सौ? वे कभी सैकड़ों की संख्या में आते ही नहीं। बस पाँच-दस धनुर्धर आते हैं। झाड़ियों में छिपकर अचानक पाँच-दस जहरीले तीर छोड़कर, दस-बीस मुरदे गिराकर चंपत हो जाते हैं—यही उनका युद्ध होता है। घनी झाड़ी, घुप अँधेरा, राह का ठिकाना नहीं। उनका पीछा करने के लिए बंदूकधारियों की सेना भी बेकार सिद्ध होती है। इन सुविधाओं के कारण तो वे आज तक इस जंगल के सम्राट् हैं। अंग्रेज हाथ धोकर उनके पीछे पड़ना चाहते हैं, पर वह असंभव है। इतनी प्राणहानि, कष्ट तथा व्यय करने लायक इस तुच्छ अरण्यमय उपनिवेश में लोहा लेकर अंगेजों को मिलेगा भी क्या? इसलिए जब वे टकराते हैं तभी, और उतनों का ही कत्ल करके अंग्रेज टाल-मटोल कर रहे हैं। हाँ, अब सुना है, क्या कहते हैं वह हवाई जहाज की जो खोज हो गई है—इस तरह के साधन द्वारा आसमान से टोह लेकर जावरों के ठिकानों को अचूक खोजने में और सौ-सवा सौ भयंकर विस्फोटक गोले ऊपर से फेंककर अंग्रेज जावरों का चुटकियों में सर्वनाश कर सकते हैं। हफ्ता भी नहीं लगेगा इस काम में। लेकिन यह आगे की बात है। आज यदि जावरे आक्रमण करने आए होंगे तो उनकी संख्या काफी कम—बारह ही होगी। पीछे अंग्रेजों से इसी तरह जो मुठभेड़ हो गई थी तब उनकी संख्या बस इतनी ही थी। टोली पर तीरों की बौछार के साथ वे दूसरे जंगल में खिसक भी गए होंगे।''

''हाँ, यही हो सकता है। तो फिर हम यहाँ कहाँ चूहों की तरह इस बिल में घुसे हैं? चलो, बाहर निकलते हैं। अभी तक वह पगडंडी दिखाई दे रही है। पास में बंदूक भी है। टोली के पास चलो। टोली के अपने लोग इधर ही आ रहे होंगे तो पास ही मिलेंगे। वे भी संकट में हैं। न जाने हैं या चले गए। चले गए हों तो यहीं आसपास ही मिलेंगे। अभी छह भी नहीं बजे। घंटी के समय इमारत में…''

''फिर कैदी के रूप में अपने आप उस इमारत में जाकर गिनती दे दी जाए? नहीं, हरगिज नहीं! कंटक बाबू, मेरे मन में एक भयंकर विचार कौंध रहा है। भागने का जो मौका हमें नहीं मिल रहा था, वही कहीं स्वयं नियति ने हमारे हाथ में तो नहीं दे दिया? आज सवेरे इमारत छोड़ते समय ही छिपकली ने 'चुकचुक' आवाज की थी, जो हमारे लिए शुभसूचक थी। बाबूजी, छिपकली की 'चुकचुक' आवाज के

अनुसार शुभाशुभ का निश्चित ज्ञान होता है।''

''तो फिर उसी समय तुम्हें क्यों नहीं पता चला? आगे शुभ होने पर पिछले शगुन याद आते हैं। उसके बाद छिपकलियों की चुकचुकाहट इनसान भूल जाता है। खैर। इस बात की टोह तो लेनी ही होगी न कि जमादार ने टोली के किसी आदमी को हमारे पास भेजा है या नहीं। तो फिर चलो, निकलो बाहर।''

दोनों सशस्त्र होकर हौले से झाड़ियों के बाहर निकले। टोह लेते-लेते सड़क की शुरुआत तक वे पहुँच गए। देखा तो चारों ओर सन्नाटा-ही-सन्नाटा।

क्योंकि चार-पाँच बजे के बीच में उस टोली के कैदियों पर घनी झाड़ियों में से दस-पंद्रह जावरों ने तीन-चार अलग-अलग ठिकानों से विषाक्त तीरों की अकस्मात् बौछार की, तब उन बंदियों में से दस-बारह बंदियों को घायल होकर गिरते देखते ही टोली में भगदड़ मच गई। दो बंदूकधारियों ने बंदूकें चलाईं, लेकिन गोलियाँ और छर्रे उन घनी झाड़ियों की सूखी पत्तियों में कहीं गायब हो गए। इस प्रकार भले ही पचास बंदूकों की वर्षा क्यों न हो, जंगल में घात लगाकर जो शरसंधान कर रहे थे, उनका बाल भी बाँका नहीं होनेवाला था। शाम का समय, घुप अँधेरा तथा मूसलाधार वर्षा में उसके आगे जंगल में घुसकर आक्रमण करने की उन बीहड़ों में भला किसकी हिम्मत हो सकती थी? और उन बंदियों को भला अपनी जान खतरे में डालने की क्या पड़ी थी? भाड़ में जाएँ अंग्रेज और वे जावरे। जमादार के साथ हर कोई इसी प्रयास में लगा रहा कि यहाँ से जान बचाकर जितनी भी जल्दी हो सके, कैसे खिसक जाएँ? वे चार-पाँच बंदी जो कंटक के साथ गए थे और राह के आधे-अधूरे इलाके में वृक्षों पर क्रमांक डाल रहे थे—टोली में हाहाकार भरा शोर सुनते ही उलटे पाँव दुम दबाकर भाग गए और अपने अड्डे पर पहुँच गए। इस बात की पूछताछ करने का होश भी किसीको नहीं रहा कि कंटक आदि जो कोई भी सड़क के दूसरे सिरे तक अटक गए हैं, वे जीवित हैं या मर-खप गए। क्या बंदूकधारी सैनिक, क्या जमादार, आगे कदम न बढ़ाते, संकट घंटी घनघनाने से जितने बंदी इकट्ठा हो गए उन्हें लेते हुए, घायलों को जिस-तिस के कंधों पर लादकर वापस इमारत की ओर चल पड़े। जावरों द्वारा उस भागती टोली की पीठ पर भी और चार-पाँच तीर फेंकते ही वह पूरी-की-पूरी टोली सिर पर पाँव रखकर भागने लगी।

इमारत में पहुँचते ही जंगल विभाग के अंग्रेज अधिकारियों के सैनिकों तथा जमादारों ने सारी रामकहानी राई का पहाड़ बनाकर सुनाई।

''साब, जावरों की पूरी सेना ही उस जंगल में युद्ध करने आई थी।''

''साधारणत: कितने जावरे होंगे?'' गोरे अफसर ने पूछा।

"हुजूर, क्या बताऊँ? हजार-एक तो जरूर होंगे।"

उस टोली के लोगों के दाँत खट्टे करके वे बीस-पच्चीस जावरे भी उस जंगल से भाग निकलकर अपनी सुदुर्गम तथा सुदूर गोट-बस्ती में चले गए। जिन दो जावरों ने कंटक के दल पर तीर छोड़े थे, वे भी कंटक के बंदूक से हवा में गोली चलाते ही दलदल की ओर भाग गए थे और फिर अपने उन जावरों में जा मिले थे जो वापस लौट चुके थे। उस दिन उन्होंने अंग्रेजों के आदमियों पर जो हमला किया था वह इसलिए कि कुछ साल पहले दोनों में मुठभेड़ हुई थी, परंतु आज अंग्रेजों ने जंगल के इस इलाके में चोरी-छिपे प्रवेश किया था जो जावरों के लिए निश्चित था। अत: जावरों ने उनके बीस-पच्चीस आदमियों को घायल करके अपनी प्रतिशोध की आग ठंडी की थी, तथापि उन्हें इस बात का अभिज्ञान था कि अंग्रेज फिर बदला लेने के लिए दो-तीन दिनों के अंदर सशस्त्र सेना दल के साथ उस जंगल में जरूर घुसेंगे। हो सकता है वे कल ही आ जाएँ, क्योंकि अंग्रेजों के एक बंदूकधारी सैनिक को तो उन्होंने सीधे यमलोक ही भेज दिया था। उसकी तथा अन्य बंदियों की खोज में अंग्रेजों के आदमी कल ही आ जाएँ तो? एक ही जगह कुंडली मारकर जावरे भला कहाँ तक टक्कर दे सकते हैं? वह उनका रण-संप्रदाय नहीं है। भूत-पिशाचों जैसा उनका संचार और अदृश्यता ही उनका शस्त्र तथा शक्ति। वे उस स्थान पर अवश्य ही कभी नहीं मिल सकते जहाँ अंग्रेज उनकी खोज में जाते हैं। जहाँ उनकी खोजबीन नहीं होती वहाँ से वे निश्चित रूप में धावा बोल देंगे। इसीलिए उन्होंने ठान लिया कि वे इस जंगल की ओर अब फिर करवट नहीं लेंगे, झाँकेंगे भी नहीं। उन्होंने अब यह योजना बनाई थी कि दूसरे ही जंगल से अंग्रेजों के आदमियों पर अर्थात् कठोर काम करनेवाले अथवा स्वतंत्र गाँववाले बंदियों पर अगला आक्रमण किया जाए।

इस तरह बंदियों की टोली अथवा जावरों में से कोई भी उस राह के अगले अथवा पिछले जंगल में शेष न रहने के कारण कंटक और रफीउद्दीन दोनों को उधर आते ही उन्हें वहाँ हर तरफ सन्नाटा छाया हुआ दिखाई दिया। उस सन्नाटे में, उस प्रसंग में जिसमें जान पर बीती थी और उस घनघोर जंगल के काले भुजंग जैसे जबड़े में अपने आपको फँसे हुए देखकर तिलस्मी डर से दोनों का कलेजा सन्न हो गया। नए-नए भीषण संकटों में न पड़ते हुए सीधे सरकारी इमारत की ओर जाकर अपने बंदी बंधुओं तथा अधिकारियों से दोनों का मिलने का मन होने लगा।

लेकिन दोनों के मन में भाग निकलने की सनक, पेट की पीड़ा की तरह, लगातार उठ रही थी जो उन्हें चैन से बैठने नहीं देती थी।

थोड़ी देर पहले रफीउद्दीन ने कंटक को साफ-साफ इशारा किया था कि

'काले पानी का बंदीगृह तोड़-फोड़कर भागना है तो यही सुनहरा अवसर है।' तब उससे भी पहले कंटक के मन में वही साहसी कल्पना आ गई थी। लेकिन उस विचार के पीछे-पीछे ही उसे स्मरण हुआ, 'अरे, भागना तो है ही पर अकेले नहीं। अपनी मालती को भी छुड़ाकर उसके साथ खिसकना है। यदि इस तरह अकेला ही जंगल में घुस गया तो जैसे पुनः मालती को बंदी बस्ती से छुड़ाने का पिछला पुल ही तोड़ दिया जाएगा। एकबारगी जंगल में घुसने से फिर बस्ती में कदम रखना दुश्वार होगा। यह तो सपने में भी नहीं सोचा था कि इस प्रकार अचानक आज ही यह मौका हाथ में आएगा, वरना उसे हर प्रयत्न से छुड़ाने की कुछ पूर्वयोजना निश्चित करके फिर आज के मौके का फायदा उठाया जा सकता था।'

इस आपत्तिवश कंटक के लिए रफीउद्दीन के तत्काल भागने के अनुरोध पर स्पष्ट रूप में 'हाँ' या 'ना' कहना मुश्किल हो गया। रफीउद्दीन कंटक की इस अड़चन से बिलकुल ही अनभिज्ञ था। अत: उसने उस अवसर के अन्य लाभों को कंटक के गले उतारने का पुन:-पुन: प्रयास करते हुए अंत में कहा, ''बाबूजी, सबसे बढ़कर तो यह बात है कि आज सरकार आपका पीछा भी नहीं करेगी। कम-से-कम और चार-पाँच दिनों तक तो सरकार यही सोचेगी कि हम भाग नहीं गए, अपितु जावरों ने उस सिपाही की तरह इस जंगल में कहीं भिड़कर हमें जान से मार डाला होगा। सरकारी आदमी हमारी खोज में इधर आएँगे लेकिन 'मर गए' इसलिए, न कि 'भगोड़े' थे इसलिए; और सबसे पहले इसी जंगल में छानबीन होगी। इससे अधिक सहूलियत क्या मिलेगी भला? दरअसल जो भागना चाहते हैं, उन बंदियों को सरकार को ही चाहिए कि वह राजी-खुशी सरकारी खर्चे से बंदूक, कारतूस, अन्य हथियारों से मालामाल करके पहरे से छुड़ाकर इस घने जंगल तक स्वयं सही-सलामत पहुँचाए और ऊपर से यह आश्वासन भी दे कि 'चार-पाँच दिन हम तुम्हारा पीछा हरगिज नहीं करेंगे। जाओ, उस अवधि में जितना दूर जा सकोगे चले जाओ।' इस तरह के भाग्यशाली भगोड़े बंदी अंदमान के तमाम इतिहास में हम दोनों ही निकले। अब इतना कुछ होते जो भागना छोड़कर उलटे अपने कदमों इमारत की ओर जाकर सरकारी बंदीगृह में दुबककर बैठेगा, वह मात्र कारागृह में ही एड़ियाँ रगड़-रगड़कर मरने की योग्यता-प्राप्त कहलाएगा। तब बताइए, आप यही चाहते हैं तो आप इमारत की तरफ आगे बढ़िए, मैं हरगिज-हरगिज वापस नहीं लौटूँगा—चाहे मेरी जान भी चली जाए। बस वह बंदूक मुझे दे दीजिए कि मैं जंगल में घुस रहा हूँ और फिर हिदुस्थान पहुँचा ही समझिए।''

उसकी इस दो टूक निर्णायक बात के साथ ही कंटक के मन में 'कहें या न कहें' जैसी हलचल हो रही थी, उसका भी निर्णय किया गया। उसने निश्चय किया

कि सँभलकर, संयम से क्यों न हो लेकिन अब रफीउद्दीन के सामने अपनी दिल की गाँठ खोलनी ही होगी। उसने कहा, ''दो-चार दिन पहले यह अवसर मिलता तो मैं भागने के इस काम में आज तुमसे भी चार कदम आगे निकलता। पर तुम नहीं जानते। तीन-चार दिन के इस सरकारी आपात कार्यवश मैं तुम्हें कह नहीं सका कि मेरी बहन यहाँ के बंदीगृह में पिछले सप्ताह आ गई है, जिसे आजन्म कारावास का दंड मिल चुका है। यदि मैं भागूँगा तो उसे साथ लेकर ही भागूँगा। सभी सरकारी अफसर मेरे दंडवृत्तांत से यह जानते ही हैं कि वह मेरी सहोदरी कंटकी है। हम दोनों पर एक साथ हत्या का आरोप लगाया गया और दोनों को काले पानी की सजा हो गई। यदि मैं अकेला ही भाग निकला तो इस संदेह के कारण कि कम-से-कम उसे इसकी जानकारी जरूर होगी, मेरे प्रतिशोध में उसे अवश्य यातनाएँ दी जाएँगी। उसे कारावास की कब्र में दफनाया जाने के कारण मैं उसमें से उठकर जिंदा होकर भी मृतप्राय ही रहूँगा। यह है मेरे भाग निकलने के मार्ग का रोड़ा। एक बार यहाँ से चंपत होने पर पुनः उसे छुड़ाने की साजिश तो छोड़ो, उससे फिर मिलने की बात ही असंभव होगी। वह घबरा जाएगी—मेरे लापता होने से वह अपनी जान भी दे देगी—चिंता में घुल-घुलकर…''

''तनिक रुकिए तो। यही है आपकी अड़चन? तो मैं आपसे प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि आपकी बहन को बंदीगृह से मुक्त करने का कार्य, हम स्वयं कैदी हों, भागें नहीं, उससे अधिक भाग निकलने पर आजादी के साथ विचरण करने पर ही अधिक सुसाध्य होगी। यह डर गलत है कि आज हम जंगल से भाग निकले तो पुनः इस बंदी बस्ती में हमारा कदम रखना भी असंभव है। पिछली बार जब मैं भाग गया था, तब तीन-चार महीने रात में इन जावरों में खुल्लम-खुल्ला रहता और दिन में गुप्त रूप में इन बस्तियों में भटकता फिरता। कंटक बाबू, यह जिम्मा मेरा। आपकी बहन को बंदीगृह से चुपचाप उठाकर जंगल में जहाँ आप होंगे, वहाँ आपके सामने लाकर खड़ा करता हूँ। देखिए तो मेरा करतब। तनिक खुला छूटने तो दीजिए। जंगल का चारा इस शेर को एक बार अपने मुँह लगाने दीजिए, खुली, ताजा हवा अपनी साँसों में भरने दीजिए कि उसके नाखूनों में, जिनपर फिलहाल जंग लगा हुआ है, फिर से वही शेरोंवाली तेज धार आई समझिए। कंटक बाबू, आप मेरे पूर्व जीवन के कारनामे नहीं जानते। हमारा परिचय मेरे हाथों में जंजीरें पड़ने के बाद काले पानी पर आते समय 'महाराजा' बोट पर जो हुआ, बस वही है। लेकिन उस दिन आपसे जो भाईचारे की कसम खाई, उसपर अमल करके इस कठोर कारावास में आपने मुझपर जो अनंत उपकार किए हैं उन्हें मैं जनम-जनम भी नहीं भूलूँगा। उसी जहाज पर काले पानी पर आते समय मैंने काले पानी की जंजीरों को तोड़ने का आपको वचन

दिया था। आज उसे अंशत: सत्य प्रमाणित किया है। कल-परसों उसे पूरा सत्य सिद्ध करके दिखाऊँगा। कंटक बाबू, आपने सिर्फ उस रफीउद्दीन को देखा है जिसके हाथों को बेड़ियों से जकड़कर उसे पिंजरे में बंद किया गया था, इसीलिए आपको मेरी बातों में डींग हाँकने की, घमंड की बू आएगी। लेकिन अगर मुझमें छिपा हुआ शेर पिंजरे में बंद होने से पहले आपने देखा होता तो मेरे करतब पर मेरे कुछ बताए बिना ही आप विश्वास कर लेते।''

रफीउद्दीन के इन अंतिम पाँच-दस वाक्यों से कंटक के मन में उसके प्रति विश्वास होने की अपेक्षा उससे एक तरह की दहशत-सी बढ़ने लगी। बात तो कर रहा था रफीद्दीन कंटक के साथ, लेकिन उसकी बातें सुन रहा था किशन। यह सच है कि कंटक पिंजरे में कैद रफीउद्दीन को ही जानता था। पर किशन असली रफीउद्दीन की नस-नस पहचानता था। वह तनिक मौन रहा, फिर मन-ही-मन कहने लगा, 'फिर भी यह क्या करेगा? इसमें छिपा पहला शेर आपे से बाहर हो भी गया तो चिंता किस बात की? अंदमान में आने के बाद शेर तो मैं भी बन चुका हूँ, एक निपुण मदारी। यह बिगड़ भी जाए तो देखते-देखते इसी बंदूक से उड़ा दूँगा।'

''फिर? कंटक बाबू, बोलिए, भाग निकलेंगे न? आजीवन कारावास की जंजीर अभी इसी क्षण तोड़कर फेंक देंगे न?''

''तोड़ेंगे क्यों? वह तो तोड़ ही दी है अब। और भागने की बात क्यों? हम तो इधर भागकर ही आए हैं। अब बोलो, अगला कदम कहाँ रखा जाए?''

''भले वीर! अगला कदम—हिंदुस्थान में—अपने प्यारे वतन में।''

कंटक मुसकराया।

''लेकिन—अंधकार, तमस् और संकटों का एक अथाह सागर—इस काले पानी का सागर—फैला हुआ जो है इन कदमों और स्वदेश के बीच में। तो?''

''उसे फाँदकर।'' तैरने के पैंतरे में दोनों हाथ अंधे वातावरण में आवेश के साथ फैलाते हुए रफीउद्दीन ने उत्तर दिया।

''इस काले पानी का संकट सागर लाँघकर अपने वतन जाना ही अटल निर्णय है। जाकर ही रहेंगे, यही निश्चित है।''

□

प्रकरण–१७

जावरों की राजधानी की ओर प्रयाण

''कंटक बाबू!'' उस घने, वीरान अँधेरे जंगल में आधा-एक घंटा चर्चा करने के उपरांत रफीउद्दीन उस षड्यंत्र की चर्चा का उपसंहार करने लगा, ''उस दिन रात के समय इमारत के सामनेवाले मैदान में हम यही चर्चा कर रहे थे। उस समय आपने कहा था न कि जावरों के गाँव आश्रयार्थ जाना भयंकर मौत के आश्रय में जाना ही है।''

''हाँ। तुमने उन जावरों की शरण में जाते समय जिन मुसीबतों का वर्णन किया था, वे थीं भी वैसी ही। विजातियों की, खासकर आधुनिक लोगों की बू आते ही अगर वे प्राय: एकदम चारों दिशाओं से जहरीले तीरों की बौछार करते हैं, तो उनके आश्रय की कामना करना मौत की शरण में जाना नहीं है? पर अब उसका क्या? पिछली बार जब तुम भाग गए थे, उस समय जावरों के जंगल तथा उनकी बस्ती में तुमने स्वयं संकटों का अनुभव किया और फिर उन्हींके मुँह में कूदने की योजना बनाई। यह योजना उस समय भले ही मुझे भयंकर महसूस हो रही थी, लेकिन अब नहीं लगती, क्योंकि हमारे हाथ में वही एक योजना है। फिलहाल यह पिष्टपेषण समाप्त करो। मुझे अब यदि सचमुच ही कुछ भयंकर प्रतीत हो रहा है तो वह तुम्हारा षड्यंत्र नहीं अपितु भूख के मारे मेरी आँतें कुलबुला रही हैं।''

''हाँ, मेरी भी आँतें सूख रही हैं। परंतु पेट की आग कल पौ फटने तक बुझने का कोई उपाय नहीं है। हाँ, एक ही इलाज है, पेट की आग बुझाने का।'' अँधेरे में ही मुसकराते हुए रफीउद्दीन ने कहा।

''भला वह क्या? बताओ तो सही।''

''दूसरा क्या है भई? आप स्वादिष्ट, जायकेदार पकवानों के नाम लेते जाइए। चरपरा पुलाव, गरमागरम पूरियाँ, पकौड़े, लजीज गोश्त, मसालेदार तरीवाली

सब्जी, रसभीनी गरमागरम जलेबी; उनके नाम के साथ और नाम लेते ही उठनेवाली चटपटी खुशबू के साथ ही मेरे मुँह में पानी भर आया है। उस पानी से शायद पेट की आग बुझेगी। खाकर नहीं।'' जी भरके हँसकर रफीउद्दीन ने अपना पेट भर लिया।

''ठीक! अपने लिए पेट भरने का इलाज तुम कर रहे हो, तब तक अपने लिए मुझे और कुछ उपाय ढूँढ़ना होगा। दिन भर वर्षा में भीगते-भीगते मेरी तो कुल्फी जम गई है भई!'' झुँझलाते हुए कंटक उठ गया और बंदूक लेकर इधर-उधर दो-तीन बार चहलकदमी करते हाथ मलते, पैर पटकते बदन में गरमी लाने लगा। इतने में उसे पड़ोस में ही आधे मील पर उस जंगल के किनारे के पास जो सरकारी नारियल का बागान था, उसकी याद आ गई। वह झट से रफीउद्दीन की ओर मुड़ा, ''उठो! खाना तैयार है। अमृत पीने, मिठाई खाने चलो। दूसरी तरफ नारियल के बागान में चलना है।''

''और? नारियल कोई बेर की झाड़ी तो नहीं जो हिलाते ही बेर धरती पर गिरें और मैं इतना लंबा भी नहीं कि हाथ से नारियल तोड़ सकूँ।'' रफीउद्दीन मुसकराया।

''तुम ही पहले आदमी हो यार, जो इस अंदमान में दो बार आकर रहते हुए भी नारियल-पेड़ों से ठिगने रहे। चलो, मैं तुम्हें दिखाता हूँ कि कोई भी नारियल का पेड़ कम-से-कम मुझसे तो लंबा नहीं है।''

वे दोनों उठ गए। आगे-पीछे सन्नाटा छाया देखकर वे सरकारी सड़क पर आ गए। थोड़ी देर में वे बागान की ओर मुड़ गए। यह उनका परिचित बगीचा था। नारियल की घनी वृक्षराशि में आते ही कमर में छुरियाँ खोंसकर दोनों दो ऊँचे नारियल के पेड़ों पर चढ़ गए। उन पेड़ों में पहले से ही अँगुलियाँ गाड़ने-टिकाने के लिए खाँचे किए गए थे। दोनों पेड़ों पर चढ़ने में उस्ताद, शिखा से लिपटकर उन्होंने नारियल तोड़े। नारियल धपधप नीचे गिर गए। उसके साथ बागीचे के दूसरी तरफ रखवाले की झुग्गी की ओर से 'सूँ सूँ ण् ण् ण्' करते हुए ढेलबाँस से ढेलों की बौछार होने लगी।

दोनों को काटो तो बदन में खून नहीं। कंटक ने बंदूक और कुल्हाड़ी पेड़ पर चढ़ने से पहले नारियल के पत्तों और सूखी पत्तियों के ढेर में छिपाकर रखी ही थी। चलो, यह तो अच्छा किया। परंतु यदि वे हथियार अभी कोई दिया लेकर ढूँढ़ने आए और उसे मिल गए तो? एक बार कंटक के जी में आया कि साहस के साथ नीचे उतरे और बंदूक चलाए लेकिन उसके धमाके से सारा जंगल जग जाएगा। वह भी निरी मूर्खता ही होगी। ऊपर ही बैठे रहे तो एकाध पत्थर सनसनाता हुआ कनपटी पर

लग जाएगा और लेने के देने पड़ जाएँगे।

इस दोहरे डर के मारे वे अपनी-अपनी जगह ही चुपचाप बैठ गए। भूख के मारे उनकी अँतड़ियाँ जल रही थीं। भूख उन्हें चुप भी बैठने नहीं दे रही थी। भय से अधिक भूख से उनका कलेजा मुँह को आ रहा था। आखिर पेड़ से लिपटकर बैठे-बैठे ही उन्होंने कच्चे नारियल काटे, छुरी से छील लिये, ऊपर के मोटे-मोटे छिलके वहीं गुच्छे में लटकाए और उस डाब का शीतल मधुर जल पिया, मलाई जैसी नरम, मुलायम गरी खाई। इस समय उसकी मिठास तो इतनी अनूठी लग रही थी, जैसे वे स्वर्ण कलश युक्त किसी राजमहल की अट्टालिका पर चढ़कर स्वर्ण प्याले में मदिरा के घूँट भर रहे हों। किसी राजा-महाराजा सदृश चटकारे ले रहे हों। बीच-बीच में ढेलबाँस से पत्थर सनसनाते हुए आ रहे थे।

अब वे काफी तरोताजा हो गए। लगता था, पत्थर आना भी बंद हो गया। नीचे उतरने के विचार से रफीउद्दीन पेड़ से फिसलते हुए थोड़ा नीचे उतर ही रहा था कि दूसरी तरफ की झुग्गी में रोशनी नजर आने लगी, जैसे किसीने लालटेन जलाई हो। चौंकते हुए रफीउद्दीन पेड़ से उतरते-उतरते पुनः साँप जैसे सरसराते हुए ऊपर शिखा तक चढ़ गया। लालटेन झुग्गी के बाहर हिलती हुई दिखाई देने लगी। अवश्य कोई उन्हें ढूँढ़ने आ रहा है। एक छोड़कर दो-दो लालटेनें! कंधे पर क्या है उनके? हाँ, हाँ। बंदूक भरकर दो पुलिसवाले, जिन्हें जावरों से हुई हाथापाई के कारण उस रात उस बगीचे में विशेष निगरानी के लिए नियुक्त किया गया था, वे ही इधर-उधर चौकस निगाहों से यह देखने आ रहे हैं कि आवाज कहाँ से आ रही थीं। बीच-बीच में उनके साथ आए हुए एक-दो बंदी ढेलबाँस से पत्थर फेंक रहे थे। बिलकुल इस तरफ—आखिर वे इधर ही आ रहे हैं।

कंटक और रफीउद्दीन अगल-बगल के नारियल के जिन दो ऊँचे-ऊँचे पेड़ों पर चढ़े बैठे थे, पुलिसवाले उनके नीचे आ गए। कंटक और रफीउद्दीन को जैसे साँप सूँघ गया। तोपों के मुँह पर बाँधा हुआ व्यक्ति जिस तरह हर धड़कन में इस भय से धड़कता रहता है कि तोप कब दागी जाएगी, उसी तरह प्रति पल उनका दिल धौंकनी समान धड़क रहा था कि पुलिसवालों का ध्यान इन्हीं पेड़ों की ओर जाकर उनकी बंदूक की गोली अब छूटी तब छूटी। यह आतंक भी उनके मन में बसा हुआ था कि वे पेड़ से नीचे अब ढह जाएँगे, तब ढह जाएँगे। लेकिन अब उनके पास मौत सिर पर लेने और मौत को टालने का बस एक ही रास्ता बच गया था—पेड़ को अधिक दृढ़ता से कसकर पकड़े हुए चुपचाप बैठना। जैसे-जैसे पुलिस की लालटेन की किरणें उनके पास आने लगीं, कंटक और रफउद्दीन के प्राण उन्हें छोड़कर दूर भागने लगे।

इतने में पड़ोस के दस-पाँच माड़ वृक्षों की शिखाओं पर फड़फड़ाहट हुई। चौंकती हुई पुलिस उस तरफ भागी। एक ने तुरंत बंदूक चलाई और एक उल्लू टप् से नीचे गिर पड़ा। पुलिस हँसते-हँसते लोटपोट हो गई।

एक ने वह उल्लू दूसरे को दिखाया—

''देखा, यह है तुम्हारा चोर। उल्लू फड़फड़ा रहे थे, तुमने जिद पकड़ी—चोर नारियल तोड़ रहे हैं। चलो, वापस चलें।''

वह झुंड जैसे-जैसे आगे बढ़ता गया, वैसे-वैसे कंटक और रफीउद्दीन की जान में जान आती गई। रफीउद्दीन मन-ही-मन मुसकराया। जान पर बीती, उल्लू पर गई।

लेकिन पुनः ऐसा प्रसंग न आए, इसलिए जब तक पुलिसवाले लालटेन बुझाकर अपनी झुग्गी में वापस नहीं जाते, तब तक इसी तरह पेड़ की चोटी पर सिकुड़े हुए प्रतीक्षा करना अनिवार्य था। वैसे ही दोनों बैठ गए। लेकिन उस दिन की पहली थकावट और इस समय का हाथ पर हाथ धरे बैठना, इससे दोनों पर बेहोशी-सी छाने लगी। चोटी से कसकर लिपटकर वे दोनों झपकियाँ लेने लगे। आधा-एक घंटा बीत गया, फिर भी पुलिसवाले लालटेन के पास खड़े बीड़ी के कश ले रहे थे। कंटक और रफीउद्दीन कभी उधर देखते तो कभी ऊँघते—करते-करते गहरी नींद में वे संज्ञाशून्य हो गए।

उसी सुन्नावस्था में रफीउद्दीन की पेड़ पर कसी हुई पकड़ किसी समय ढीली पड़ गई। उसकी बैठक ढल गई और वह पेड़ से फिसलने लगा। उसके साथ जैसे उसकी देह ही मन से पहले जग गई हो, वैसे ही उसके हाथ-पैर पेड़ से साँप की तरह लिपट गए। निद्रा-रोगी की यही अवस्था होती है। नींद में होते हुए भी उसके पैर जाग्रत रहकर ऊँची, सँकरी दीवार पर भी अपनी जान बचाते हुए सँभलकर चलते हैं। उसी तरह रफीउद्दीन उस ऊँचे पेड़ से नींद में फिसल गया, लेकिन पेड़ से लिपटते हुए वह पेट के बल फिसलने लगा और सीधा नीचे तलहटी पर आ पहुँचा। उसकी छाती, जाँघें छिल गईं। लेकिन यह देखकर कि सिर तो फूटने से बच गया, छिलने की उसे कुछ ज्यादा पीड़ा नहीं हुई। नीचे आते ही उसे तमाम हालात का स्मरण हो गया। झुग्गी की ओर देखा, तो लालटेन बुझ चुकी थी—हर तरफ गहरी खामोशी। थोड़ी देर रुककर उसने उस पेड़ के पास, जहाँ कंटक था—धीरे से दो-तीन बार ताली बजाई। कंटक को नशे में भी सावधानी की आँच थी, वह जाग गया। उसने भी जवाब में धीरे से एक ताली बजाई। उस ताली में यह अर्थ था, 'तुम उतर गए? ठीक है। मैं भी धीरे-धीरे उतरता हूँ, ठहरो।'

कंटक के नीचे आते ही दोनों थोड़ी देर शांति से बैठ गए। उन्होंने यह अटकलपच्चू लगाया कि अब उत्तररात्रि का समय होगा। फिर उन्होंने वह बंदूक, कुल्हाड़ी आदि चीजें जहाँ छिपाकर रखी थीं, उस स्थान से निकालीं। भोर होने से पहले उन्हें फिर किसी घोर अरण्य में गायब होना आवश्यक था, इसलिए वे सड़क की ओर चले गए। चलते-चलते रफीउद्दीन को सूखी पत्तियों से कुछ उठाते देखकर कंटक फुसफुसाया, ''क्या कर रहे हो बेकार में?''

''बेकार में? जनाब, ये डाब क्या यूँ ही फेंक दें जो थोड़ी देर पहले तोड़े थे?''

''कितने घटिया हो तुम? कहाँ के दो कौड़ी के डाब। छोड़ो भी।''

''क्या दो कौड़ी के? जनाब, इन्हीं दो कौड़ी के डाबों की वजह से पूरे-के-पूरे दो सिर कटनेवाले थे न थोड़ी देर पहले?''

रफीउद्दीन ने, जो एक-दो कच्चे नारियल मिले, उन्हें अपनी बगल में दबा लिया। जिस सड़क से वे आए थे, वैसे ही वापस जंगल की उस नई राह के पास गए। पौ फटने के समय वे इसी राह द्वारा जंगल में घुस गए। रास्ते में कल जो पुलिस जमादार जावरों के तीर से मर गया था उसकी वर्दी और दियासलाइयाँ, बीड़ियाँ सब चीजें उन्होंने निकालीं। जावरों का वह तीर उसी स्थिति में रहने दिया। इसके बाद उन्होंने वह राह वहीं पर छोड़ दी।

फिर उन्होंने जंगल के उस ओर से दूर एक घने इलाके में घुसने का यथासंभव प्रयास किया। राह में एक चौड़ी और गहरी खाड़ी आ गई। उसका मस्थल इस समय खुला, शुष्क और सफेद पड़ गया था। इस समय वहाँ कड़ी धूप निकली थी जो अंदमान के सिंधु तट पर कभी-कभार ही निकलती है। उसकी वजह से उसपर बिखरी हुई सीपियाँ, शुभ्र-धवल चमचमा रही थीं। दरअसल वह मस्थल असहनीय रूप में तपा हुआ था। परंतु दिन-रात लगातार काम करते रहने से तथा पसीना, वर्षा, सड़ी-गली पत्तियों, कीचड़ में भीगकर पसीने की बदबू और सर्दी से वे परेशान हो गए थे। ऐसे में उन भगोड़ों को वह चंड धूप तथा रेगिस्तान की तपिश ही भली लगी। उस दुर्गम और दुःसाध्य स्थान में, जहाँ मनुष्य के कदम पड़ना भी असंभव है—तनिक खुले में भी घूमने में उन्हें कोई आपत्ति दिखाई नहीं दी। अतः दोनों ने अपने साथ जो भी कपड़े थे उन्हें इस खाड़ी पर मसलकर धो डाला और उस कड़ी धूप में सुखाने के लिए फैलाया। पिछले दिन-रात जोंक, चिंचड़े, मच्छर, काँटों के डंक से उनके बदन छलनी हो गए थे। उन्होंने पूरे बदन पर कीचड़ की मिट्टी का लेप किया जो जंगली दवा थी। उस लेप को धूप में सुखाया। फिर पत्थर-मिट्टी के ही साबुन से बदन रगड़-रगड़कर वे उसी खाड़ी में जी भरकर जलक्रीड़ा का आनंद

उठाने लगे।

फिर उनके पेट में चूहे कूदने लगे। उन बलवान और स्वस्थ आदमियों को ही उसके मूल्य का सही अहसास होगा जिन्होंने जी-तोड़कर मेहनत के बाद जी भरकर जलक्रीड़ा की है। लेकिन यहाँ तो भोजन मिलेगा सिर्फ मृगया का। उसपर बंदूक के धमाके से जंगल को जगाना उन्हें अब भी खतरे से खाली नहीं लगता था। उस जंगल में भरमार थी सिर्फ जंगली सूअरों की, और रफीउद्दीन जब पहले यहाँ से भागा था तब से वह जावरों जैसा ही सभी किस्म के शिकार में निपुण हो गया था। आधा घंटा पानी के बहाव से दो पहाड़ों में पड़ी दरार में छिपे रहने के बाद उसे एक शिकार मिल गया। रफीउद्दीन ने हाथ में पकड़ी कुल्हाड़ी के एक प्रहार से उसे धरती पर चित किया। फिर रेगिस्तान पर सूखी लकड़ियाँ जमा करके जावरों के पाक-विज्ञानानुसार उस मांस को यथाविधि भून लिया और एक पत्ते पर परोसकर वे दोनों भोजन करने लगे। फिर भी जीवन में पहली बार उस पकवान को चखते हुए कंटक मुँह बिचकाता हुआ बड़ी कठिनाई के साथ उसे निगल रहा था। साथ में नारियल के टुकड़ों का भी व्यंजन था, इसीलिए उलटी की नौबत नहीं आई। फिर भी निगलने में मुश्किल लगा। सारा सफाचट करने के बाद जब आँतों का बल खुला तो कंटक ने तृप्ति की डकार ली और उसे ऐसी तरावट आई कि बस! यह देखकर रफीउद्दीन मुसकराया।

"बाबूजी, दो-तीन दिनों के अंदर यह 'जावरी' खुराक आपको इतना रास आएगी कि मुझे डर लग रहा है, भई मेरे हिस्से में कुछ बचेगा भी कि नहीं!"

हँसी-खुशी से उनके भोजन के चलते-चलते अचानक आकाश में अँधेरा छा गया। कंटक ने कहा, "बादल उमड़-घुमड़ रहे हैं। अब जब तक अगली गतिविधियाँ निश्चित नहीं होतीं, तब तक इसी जंगल में आसरे के लिए कोई घाटी-वाटी कहीं भी ढूँढ़नी ही होगी। कल की रात पेड़ पर सोते ही गुजारी। लेकिन भैया, उस प्रकार के शयनगृह में वह विलास प्रति रात्रि सहने का मुझे कोई शौक नहीं है। इस जंगल में हमारे पथ प्रदर्शक तुम हो—तुम्हें कोई आलीशान कोठी ढूँढ़नी होगी—शाम होने से पहले। चलो उठो।"

"इसीलिए तो मैं आपको इधर ले आया हूँ, ताकि आपको सैकड़ों अलीशान कोठियाँ—एक-सी सुडौल, सुघड़ पत्थर की बनाई हुई मिलें। चलिए पहाड़ी की इन झाड़ियों को पार करें।"

झाड़ियों को पार करके वे पहाड़ी पर चढ़ गए। उधर से सुदूर अंतर पर सागर दिखाई दे रहा था। पहाड़ी की तलहटी में गुफाएँ-ही-गुफाएँ थीं और आगे रेगिस्तान तक अलग-अलग प्रचंड शिलाओं के समूह फैले हुए थे, मानो हाथियों के झुंड

सिंधु-पुलिन पर उतरे हों।

उन गुफाओं का निर्देश करते हुए रफीउद्दीन ने कहा, ''देखिए, बाबूजी! बँगले से सटकर दूसरा बँगला कैसा खड़ा है—जैसेकि बंबई की मालाबार हिल। अब देखिए, किस कोठी का किराया सस्ता है।''

वे गुफाओं का निरीक्षण करने लगे। देखते-देखते उन्होंने गौर किया, दो भीमकाय शिलाएँ तंबू जैसी एक-दूसरी से सिरों के पास टेककर खड़ी हैं। उनकी मुद्रा इस प्रकार शोभायमान थी जैसे दो मस्त हाथी भिड़ंत के समय अपने मदोन्मत्त माथे से एक-दूसरे का माथा ठेलते हैं। उन शिलाखंडों की उस तंबूनुमा दर्शनीय बनावट के भीतर दूर-दूर तक तंबू सदृश ही खाली जगह थी, पुनः उसमें दीवार की दोनों तरफ कमरानुमा दो-तीन छोटी-छोटी गुफाएँ थीं। यह देखते ही रफीउद्दीन को यही स्थान अपने वन-निवासार्थ ठीक लगा। वह तुरंत भीतर जाकर बीच के हिस्से में पालथी मारकर बैठ गया। परंतु वह बैठा ही था कि इतने में 'दगा-दगा' जैसी भारी आवाज में चिल्लाते हुए बाहर आ गया। उसका कलेजा थर-थर काँप रहा था।

''क्यों रे? बात क्या है?'' बंदूक सँवारते हुए कंटक ने कौतूहलवश पूछा।

''चाहे इनसान हो या भूत-प्रेत लेकिन भीतर एक घिनौना बीभत्स प्राणी है जो अंदर की गुफा में छिपा बैठा है। उसकी आँखें अपने मुँह के अँधेरे में मिट्टी के दिए जैसी टिमटिमा रही हैं।'' रफीउद्दीन ने अपना डर भी अपनी आदत के अनुसार हँसी-मजाक में व्यक्त किया।

''फिर? झट से गोली चलाएँ?'' कंटक ने बंदूक तानकर रखी।

''ना-ना। बेकार धमाका नहीं करना है, जब तक जान पर नहीं बीतती। शायद पूरे जंगल में हंगामा खड़ा हो जाएगा। पहले उसे छेड़कर तो देखें कि किस जाति का प्राणी है।''

बात करते-करते उधर पड़ी एक लंबी लकड़ी उठाकर रफीउद्दीन ने उस बड़ी सेंध में घुसेड़ दी—उसके साथ ही एक दयनीय चीत्कार उठी और न जाने कैसे, परंतु बिलकुल दयनीय स्वर में गिड़गिड़ाते हुए शब्द फूटे पड़े।

''अरे, यह तो कोई जावरा है।'' रफीउद्दीन जावरों की जो टूटी-फूटी बोली समझता था, उससे ताड़ गया।

''मुझे मत मारो—ऐसा ही कुछ गिड़गिड़ाकर याचना कर रहा है वह।''

''फिर जैसे-तैसे उसे समझाओ, तुम बाहर आ जाओ। हम जावरों के मित्र हैं, न कि शत्रु।''

रफीउद्दीन ने जावरों की बोली में मुश्किल से बताया और मानो उसे पूरा

समझाने के लिए उसने उस लकड़ी से उस सेंध में फिर एक बार खटखटाया।

''आ रहा हूँ। आ रहा हूँ।'' इस प्रकार तुरंत उस गढ़े से दयनीय स्वर उभरा। धीरे-धीरे पहले सिर बाहर निकालकर और फिर कूल्हों पर फिसलता हुआ एक दीन-दुःखी जावरा उस बिल से बाहर निकला। बाहर निकलते ही एक पाँव फैलाते हुए उसने अपनी पिंडली की ओर निर्देश किया और डबडबाई आँखों से कराहने लगा।

कंटक और रफीउद्दीन ने उसकी पिंडली की ओर देखा तो वहाँ कुछ जख्म दिखाई दिया, जिसमें से खून रिस रहा था। इशारे से कुछ शब्दों से रफीउद्दीन ने निश्चित रूप में इतना जान लिया कि कल जावरों ने अंग्रेज बंदियों के दल पर जो छापा मारा था उस समय अंग्रेज पुलिसवालों द्वारा की गई प्रति-गोलीबारी में एक गोली इस जावरे की टाँग में लग गई। उसके साथी जान बचाकर भाग गए पर भागना असंभव होने के कारण यह इधर ही रह गया।

स्थिति का परीक्षण करते ही रफीउद्दीन को जैसे अचानक कारूँ का खजाना हाथ लग गया। वह खुशी से फड़क उठा। कंटक को तनिक दूर ले जाकर उसने कहा, ''ताली दो बाबूजी! जावरों की बस्ती में हमें आसरा लेना था। लेकिन फिलहाल वे अंग्रेजों से खार खाते हैं। हम हैं अंग्रेजों के कैदी। शरणार्थी होकर जाने से भी, दूर से देखते ही संदेह के कारण वे तीरों की झड़ी लगाते। यह बहुत बड़ी अड़चन लग रही थी। अब लगता है, इस जावरे की मित्रता से वह अड़ंगा दूर करने का अवसर हमें मिलेगा। जावरों के राज में बेझिझक जाने के लिए यह जावरा एक जिंदा चलता-फिरता प्रवेशपत्र ही है। इसकी देखभाल हम अच्छी तरह से करेंगे।''

कंटक को भी यह योजना पसंद आ गई। अंदमान के कक्ष-कारागार में उसने प्रथमोपचार और दवा-दारू का काफी काम किया था। वही वैद्यकीय चलताऊ ज्ञान अब उसके काम आ रहा था।

उस जावरे का उन्होंने हौसला बढ़ाया। उसकी पिंडली को छुरी से ही काटकर उसने गोली निकाली। जख्म धो-पोंछकर कुछ वनस्पति लगाकर पट्टी की। गोली निकलते ही उसकी असहनीय वेदना कम हो गई और जावरे की जान में जान आ गई। उसे राहत मिल गई। अपनी कृतज्ञता वह विविध इशारों तथा शब्दों से व्यक्त करने लगा।

उसी स्थान पर वे तीनों दो-तीन दिन वैसे ही छिपे रहे। जंगल के पशु-पक्षियों का शिकार बंदूक न चलाते जितना भी हो सके उतना उन्होंने किया। उस जावरे से उन्होंने उनकी बस्ती की जानकारी भी ले ली। उन्होंने उससे यह भी कहा,

सिंधु-पुलिन पर उतरे हों।

उन गुफाओं का निर्देश करते हुए रफीउद्दीन ने कहा, "देखिए, बाबूजी! बँगले से सटकर दूसरा बँगला कैसा खड़ा है—जैसेकि बंब्रई की मालाबार हिल। अब देखिए, किस कोठी का किराया सस्ता है।"

वे गुफाओं का निरीक्षण करने लगे। देखते-देखते उन्होंने गौर किया, दो भीमकाय शिलाएँ तंबू जैसी एक-दूसरी से सिरों के पास टेककर खड़ी हैं। उनकी मुद्रा इस प्रकार शोभायमान थी जैसे दो मस्त हाथी भिड़ंत के समय अपने मदोन्मत्त माथे से एक-दूसरे का माथा ठेलते हैं। उन शिलाखंडों की उस तंबूनुमा दर्शनीय बनावट के भीतर दूर-दूर तक तंबू सदृश ही खाली जगह थी, पुनः उसमें दीवार की दोनों तरफ कमरानुमा दो-तीन छोटी-छोटी गुफाएँ थीं। यह देखते ही रफीउद्दीन को यही स्थान अपने वन-निवासार्थ ठीक लगा। वह तुरंत भीतर जाकर बीच के हिस्से में पालथी मारकर बैठ गया। परंतु वह बैठा ही था कि इतने में 'दगा-दगा' जैसी भारी आवाज में चिल्लाते हुए बाहर आ गया। उसका कलेजा थर-थर काँप रहा था।

"क्यों रे? बात क्या है?" बंदूक सँवारते हुए कंटक ने कौतूहलवश पूछा।

"चाहे इनसान हो या भूत-प्रेत लेकिन भीतर एक घिनौना बीभत्स प्राणी है जो अंदर की गुफा में छिपा बैठा है। उसकी आँखें अपने मुँह के अँधेरे में मिट्टी के दिए जैसी टिमटिमा रही हैं।" रफीउद्दीन ने अपना डर भी अपनी आदत के अनुसार हँसी-मजाक में व्यक्त किया।

"फिर? झट से गोली चलाएँ?" कंटक ने बंदूक तानकर रखी।

"ना-ना। बेकार धमाका नहीं करना है, जब तक जान पर नहीं बीतती। शायद पूरे जंगल में हंगामा खड़ा हो जाएगा। पहले उसे छेड़कर तो देखें कि किस जाति का प्राणी है।"

बात करते-करते उधर पड़ी एक लंबी लकड़ी उठाकर रफीउद्दीन ने उस बड़ी सेंध में घुसेड़ दी—उसके साथ ही एक दयनीय चीत्कार उठी और न जाने कैसे, परंतु बिलकुल दयनीय स्वर में गिड़गिड़ाते हुए शब्द फूटे पड़े।

"अरे, यह तो कोई जावरा है।" रफीउद्दीन जावरों की जो टूटी-फूटी बोली समझता था, उससे ताड़ गया।

"मुझे मत मारो—ऐसा ही कुछ गिड़गिड़ाकर याचना कर रहा है वह।"

"फिर जैसे-तैसे उसे समझाओ, तुम बाहर आ जाओ। हम जावरों के मित्र हैं, न कि शत्रु।"

रफीउद्दीन ने जावरों की बोली में मुश्किल से बताया और मानो उसे पूरा

समझाने के लिए उसने उस लकड़ी से उस सेंध में फिर एक बार खटखटाया।

"आ रहा हूँ। आ रहा हूँ।" इस प्रकार तुरंत उस गढ़े से दयनीय स्वर उभरा। धीरे-धीरे पहले सिर बाहर निकालकर और फिर कूल्हों पर फिसलता हुआ एक दीन-दुःखी जावरा उस बिल से बाहर निकला। बाहर निकलते ही एक पाँव फैलाते हुए उसने अपनी पिंडली की ओर निर्देश किया और डबडबाई आँखों से कराहने लगा।

कंटक और रफीउद्दीन ने उसकी पिंडली की ओर देखा तो वहाँ कुछ जख्म दिखाई दिया, जिसमें से खून रिस रहा था। इशारे से कुछ शब्दों से रफीउद्दीन ने निश्चित रूप में इतना जान लिया कि कल जावरों ने अंग्रेज बंदियों के दल पर जो छापा मारा था उस समय अंग्रेज पुलिसवालों द्वारा की गई प्रति-गोलीबारी में एक गोली इस जावरे की टाँग में लग गई। उसके साथी जान बचाकर भाग गए पर भागना असंभव होने के कारण यह इधर ही रह गया।

स्थिति का परीक्षण करते ही रफीउद्दीन को जैसे अचानक कारूँ का खजाना हाथ लग गया। वह खुशी से फड़क उठा। कंटक को तनिक दूर ले जाकर उसने कहा, "ताली दो बाबूजी! जावरों की बस्ती में हमें आसरा लेना था। लेकिन फिलहाल वे अंग्रेजों से खार खाते हैं। हम हैं अंग्रेजों के कैदी। शरणार्थी होकर जाने से भी, दूर से देखते ही संदेह के कारण वे तीरों की झड़ी लगाते। यह बहुत बड़ी अड़चन लग रही थी। अब लगता है, इस जावरे की मित्रता से वह अड़ंगा दूर करने का अवसर हमें मिलेगा। जावरों के राज में बेझिझक जाने के लिए यह जावरा एक जिंदा चलता-फिरता प्रवेशपत्र ही है। इसकी देखभाल हम अच्छी तरह से करेंगे।"

कंटक को भी यह योजना पसंद आ गई। अंदमान के कक्ष-कारागार में उसने प्रथमोपचार और दवा-दारू का काफी काम किया था। वही वैद्यकीय चलताऊ ज्ञान अब उसके काम आ रहा था।

उस जावरे का उन्होंने हौसला बढ़ाया। उसकी पिंडली को छुरी से ही काटकर उसने गोली निकाली। जख्म धो-पोंछकर कुछ वनस्पति लगाकर पट्टी की। गोली निकलते ही उसकी असहनीय वेदना कम हो गई और जावरे की जान में जान आ गई। उसे राहत मिल गई। अपनी कृतज्ञता वह विविध इशारों तथा शब्दों से व्यक्त करने लगा।

उसी स्थान पर वे तीनों दो-तीन दिन वैसे ही छिपे रहे। जंगल के पशु-पक्षियों का शिकार बंदूक न चलाते जितना भी हो सके उतना उन्होंने किया। उस जावरे से उन्होंने उनकी बस्ती की जानकारी भी ले ली। उन्होंने उससे यह भी कहा,

'हम जावरों की बस्ती में किस तरह शरण ले सकते हैं।' उस जावरे ने भी उन्हें आश्वासन दिया कि उसपर उन्होंने जो उपकार किया उसके लिए जब तक जावरे यथासंभव उनकी सहायता नहीं करेंगे तब तक चैन की साँस नहीं लेंगे, क्योंकि जिस जाति का वह घटक था उस जाति के नेता का ही वह जीजा लगता था तथा एक विश्वसनीय और शूर सैनिक भी।

उस जावरे को स्वस्थ होते-होते दो-तीन दिन लग गए और वे उधर ही छिपकर रहे। उस काल में रफीउद्दीन बिलकुल निश्‍िचत तथा खुश था, लेकिन कंटक मन-ही-मन बड़ा चिंतित था। रफीउद्दीन ने जो सोचा था उससे भी अधिक सहजतापूर्वक उनकी भागने की योजना इस हद तक सफल हो गई थी। कई अनुकूल अवसर अप्रत्याशित रूप से उन्हें प्राप्त हो गए थे। वह स्वयं यही समझता था कि वह काले पानी से निकल ही भागा। लेकिन कंटक को यही चिंता निरंतर जला रही थी। उसके सामने केवल उसीकी मुक्ति की समस्या नहीं थी, अपितु साथ-साथ मालती की मुक्ति का भी प्रश्न था।

उसे छुटकारा कैसे दिलाया जाए? अच्छा, मुक्त कर भी लें तो उसे इस जंगल में, इस गुफा में, इन भीषण झंझटों में अथवा जावरों की बस्ती में कैसे रखें, उसे कैसे सँभाला जाए? रफीउद्दीन के बिना तो एक कदम भी आगे बढ़ाना असंभव था। फिलहाल वह अत्यंत निष्ठावान भले ही दिखाई दे, तथापि मूलतः तो एक हिंस्र जानवर ही था। अतः उसपर कैसे भरोसा करें। यद्यपि उसके मन में यह संदेह आना असंभव था कि कंटक ही किशन है, और इसीलिए कंटक के साथ मालती के अस्तित्व की स्मृति का कोई भी धागा उसके मन में उलझना असंभव था। कंटक के मन में यह डर अवश्य था कि अगर कहीं मालती को देखते ही रफीउद्दीन ने पहचान लिया, तो फिर कोई कठिन प्रसंग भी आ सकता है। वह तो इसे जरूर पहचानेगी। अतः इसकी पहले की नीचता अथवा मालती का पूर्व क्रोध भड़क उठेगा और उस आग में सभी राख हो जाएँगे। इस तरह के जंगल में वह, मैं और यह। इसकी सहायता से उसका छुटकारा कराना, रावण की सहायता से सीता को मुक्त कराना है।

रफीउद्दीन के मन में उस समय वंचना, विश्वासघात के भाव का नामोनिशान तक नहीं था। उसकी अड़चन अगर हो तो वह थी एकमात्र—नगद नारायण। जावरों की बस्ती में लोकप्रियता प्राप्त करनी हो तो शराब चाहिए और आगे काले पानी को अलविदा करना हो तो किश्तियाँ, कपड़े, हथियार, खाद्य पदार्थ आदि साधनों को जुटाने के लिए पैसा चाहिए। उसके लिए दो रास्ते थे। एक तो बंदियों की बस्ती में रात-बेरात पुनः घुसकर डाके डालना, अथवा कंटक बाबू की जो हजार-डेढ़ हजार

की अमानत वे देनेवाले थे, उसे प्राप्त करना। पहले उनकी यह योजना थी कि कंटक वह रकम अपने साथ लेकर बंदियों की इमारत से भाग निकले, लेकिन बीच में जावरों के आक्रमण से यह अप्रत्याशित अवसर मिलने के कारण वे अचानक जंगल में घुस गए। उस योग से अन्य सारे संकट टल गए, पर पैसा साथ लाना नहीं हो सका। यही अड़चन वह कंटक को बताता और पूछता कि अब क्या किया जाए? डाका डालें या किसी युक्ति द्वारा आपकी अमानत आज भी प्राप्त कर सकते हैं? कंटक कहता, 'ना! ना! डाका नहीं डालना चाहिए। यथासंभव स्वयं मृत्यु को चुनौती नहीं देनी चाहिए। मैं अपनी अमानत किसी-न-किसी युक्ति द्वारा वापस ले लूँगा। पत्थर तले हाथ अटकने से जितना हो सके, हलके से छुड़ाना ठीक है। वरना धींगामुश्ती में हाथ ही टूट जाएगा।'

दो-तीन दिन इस प्रकार बीतने के बाद, जब रहा नहीं गया तो कंटक ने रफीउद्दीन के सामने अपनी बहन की मुक्ति का विषय छेड़ा। उलटी-सीधी कई योजनाएँ उन्होंने बनाकर देखीं। परंतु कुछ निश्चय न कर पाने के कारण वे सोने चले गए।

लेकिन उस दिन सारा समय रफीउद्दीन के मन में कंटकी की मुक्ति की कल्पनाएँ आ रही थीं। जाहिर है, उसके संदर्भ में कुछ अन्य जिज्ञासाएँ भी छेड़ी गईं। लेटे-लेटे ही वह चिंतन करने लगा, 'भला वह कैसी दिखती होगी? उसे मुक्ति दिलाकर इधर लाया जाए तो अपना समय भी बड़े मजे में कटेगा। कैसा होगा उसका स्वभाव? और यदि वह देखने में सुंदर और स्नेहमयी हो तो?' अचानक उसकी लालसा जग गई और कहने लगी, 'तो क्या उसके मन में तुम्हारी और तुम्हारे मन में उसकी चाहत उत्पन्न नहीं होगी? अच्छा, कंटक तो उसका सगा भाई ही ठहरा, इसलिए कामुक अभिलाषा में वह अपना प्रतिद्वंद्वी हो ही नहीं सकता। ज्यादा-से-ज्यादा भाई और अभिभावक के नाते उसे हम दोनों का प्रेम-संबंध अच्छा नहीं लगेगा। बस इतना ही डर है। मगर-मगर-मगर...'

रफीउद्दीन को अचानक एक उपाय सूझा, 'कंटक बाबू ने मुझपर जो इतने उपकार किए हैं उन्हें चुकाने के लिए मैं अपनी जान की बाजी लगाकर उन्हें और उनकी बहन को काले पानी से छुड़ाकर सही-सलामत तट पर पहुँचाने में कोई कसर नहीं छोड़ूँगा। इससे उनकी बहन स्वयं ही मुझसे शादी के लिए पूछेगी और कंटक बाबू खुशी-खुशी राजी होंगे।' भई, मन के लड्डू खाने में मुश्किल क्या है?

परंतु यह सच है, इसी सोच के कारण रफीउद्दीन की कंटक पर जो निष्ठा तथा अवलंब था, वह पहले से भी अधिक दृढ़ हो गया। उसपर यह बात तो अलग ही है कि धन अथवा सहयोग की आवश्यकता के कारण भी कंटक की उसे पग-

पग पर आवश्यकता थी।

इसी मनोदशा में वे उस जावरे के स्वस्थ होने की प्रतीक्षा करते हुए वहाँ जो दो-चार दिन छिपे रहे थे, उस अवधि में उनके पीछे सरकारी अधिकारियों की गतिविधियाँ उनके लिए अनुकूल ही थीं। उस शाम जावरों के हमले के साथ जंगल छोड़कर और अपनी जान बचाकर सरकारी बंदियों की टोली के वापस ठिकाने पर लौटने के बाद दूसरे दिन सशस्त्र सैनिकों का एक दल उस जंगल में रवाना किया गया। उन्हें उस राह पर जावरों के तीर से मारे गए उस जमादार की लाश मिली। तीर मिलने के कारण जाहिर था कि वह जावरों के हाथों ही मारा गया था। उससे सरकारी अधिकारियों ने यही अटकलपच्चू लगाया कि उसके साथ आए हुए दो बंदी—कंटक और रफीउद्दीन—भी अकेले पड़कर इसी जंगल में कहीं मारे गए होंगे और उसे असत्य सिद्ध करने लायक सशक्त प्रमाण जब तक नहीं मिलता तब तक उन बंदियों का नाम 'भगोड़ों' के रूप में घोषित करना भी उन अधिकारियों ने स्थगित किया। इसी वजह से कितने ही दिनों तक सरकार की ओर से न उनका पीछा किया गया, न उनकी टोह ली गई। दलदल तक उस जंगल का नया इलाका अंग्रेजों ने अपने ही उपनिवेश में समेटा और उसपर सख्त पहरा बैठाया। जावरों ने भी अपनी ताकत आजमाकर हमेशा की तरह इस इलाके में आवाजाही बंद कर दी; वे एक पाँव पीछे हट गए और यह मामला समाप्त कर दिया।

चार-पाँच दिनों के बाद यह देखते हुए कि उस जावरे का पैर ठीक हुआ है, उससे अगवानी कराके उसीकी सिफारिश से उसके जात-भाई जावरों का आसरा लेने के लिए कंटक और रफीउद्दीन उस घने जंगल के चोर रास्तों से, जिनसे वह जावरा पूरी तरह परिचित था, उनकी जंगली 'राजधानी' की ओर चल पड़े। लेकिन चलते-चलते उस जावरे के मन में यही धुकपुक हो रही थी कि कहीं उनका स्वागत पेड़ से अचानक होनेवाली विषाक्त बाणों की बौछार से तो नहीं होगा? यह सच है कि जावरे लोग कभी-कभी 'भगोड़ों' को अपनी शरण में आते ही आसरा देते हैं और उनकी अपनी जाति में वर्षों से एक ऐसा भगोड़ा रह रहा था जिसे उन्होंने आसरा दिया था, तथापि दावे के साथ यह तो नहीं कहा जा सकता कि उनकी वह सनक इस प्रसंग में भी काम करेगी, क्योंकि आजकल वे अंग्रेजों पर और अंग्रेजों के बंदियों पर भी बिगड़े हुए थे। उन्हें यह भी डर था कि कुछ बंदियों को भगोड़ों के बहाने बस्ती का अता-पता लगाने अंग्रेज भेजेंगे।

जैसे-जैसे जावरों की वह जंगली राजधानी निकट आती गई, वैसे-वैसे ही कंटक और रफीउद्दीन के दिल की धड़कनें भी तेज हो रही थीं। वे सोच रहे थे कि इस जावरे के साथ वे जा रहे हैं, इसलिए वे उन्हें आश्रय देंगे या उनके

जैसे 'अंग्रेजों के आदमियों के' साथ यह जावरा आ रहा है इसलिए उसे भी जातिद्रोही समझकर हम सभी को विषाक्त तीरों का शिकार बनाएँगे। हर कदम पर झाड़ियों में जरा सी भी 'खट' होते ही उनका कलेजा उछलता था। कहीं टोह लेनेवाले किसी जावरे का सनसनाता हुआ तीर तो नहीं आ रहा। वह राजधानी अभी दो-तीन मील दूर थी। दिन डूबता देख वे तीनों वहीं ठिठक गए और वह रात उन्होंने उन्हीं झाड़ियों में गुजारी।

□

प्रकरण–१८

जावरों का जीवन

यह देखिए जावरों की एक अनादि राजधानी। एक राजधानी इसलिए कहा कि अंदमान में आदिम मानव की जो जंगी टोलियाँ हैं वे यहाँ के विस्तीर्ण और घने जंगल में बड़ी-बड़ी पहाड़ियों पर अलग-अलग स्थानों पर बस गईं और उसी तरह आज भी पृथक् रूप में बसी हुई हैं। उन सबका मिलकर कोई संगठित राज नहीं है, संघ भी नहीं। जो टोली जहाँ रहती है, उसकी उतनी ही राजधानी—वह एक जाति ही अलग हो जाती है। इस तरह अलग-अलग जातियों में से जिस जाति ने अंग्रेजों पर उस दिन हमला किया, वह टोली यहाँ रहती है, इसलिए उसकी यह राजधानी है।

घनी झाड़ियों से घिरी उस पहाड़ी के बीचोबीच मैदाननुमा एक खाली स्थान था। उस तरफ उस पहाड़ी की चट्टानों में गुफाओं की तरह छह बड़ी-बड़ी सेंधें थीं। वे चार-पाँच फीट लंबी अंदर गहराई में गई हुई और सलग लंबी थीं। यही उस राजधानी का पत्थरों से बने परकोटे से घिरा इलाका है। किसी धर्मशाला के सलग बरामदे में यात्री धक्कम-धक्के में ही खाना खाते हैं, सोते हैं, उठते-बैठते हैं, उसी तरह उन सेंधों में तमाम नागरिक संयुक्त परिवार की तरह पीढ़ी-दर-पीढ़ी बसे हुए हैं। इस विशाल राजधानी के प्रजाजनों की संख्या—अर्थात् स्त्री-पुरुष, बाल-बच्चों के साथ भी डेढ़ सौ के ऊपर न सही, पर कम भी नहीं थी।

इन गुफाओं में दीवारें नहीं थीं, बाँस आदि की फट्टियों के पल्ले नहीं थे, उपकक्ष भी नहीं थे। पूरी राजधानी मिलकर एक ही घर परंतु उस घर में कमरा, अटारी, बीच का दालान, रसोई घर आदि कोई भी कक्ष नहीं था। सबकुछ सलग था।

उस गुफा में जो खाली मैदान था, उसे गुफा की अपेक्षा राजधानी का उपनगर कहने में कोई आपत्ति नहीं थी। कुछ प्रधान खानदानों ने उस उपनगर में वर्षा

थमने के दिनों में धूप अथवा रात की स्वच्छ चाँदनी में विलासार्थ कुछ मंदिरों का निर्माण भी किया था। वे झुग्गीनुमा भी नहीं थे। बाँस के सीधे आड़े-लंबे पतले टुकड़े जोड़कर बनाए हुए एक लंबे पल्ले को दो-तीन पेड़ों से बाँधा नहीं कि विलास मंदिर बन गया समझो। जावरों के शिल्पशास्त्र के अनुसार उसपर छप्पर होना भी वैध नहीं था, फिर खिड़कियों-दरवाजों जैसे व्यर्थ झंझटों का तो नाम ही नहीं लेना चाहिए। ऊँची चट्टान की चोटी पर लोग-बाग जब नीचे टाँगें छोड़कर बैठते तो उन्हें पीठ टिकाने के लिए उस समय तक बाँस की ठठरी बाँध दी और बस, उनका विलास-मंदिर तैयार।

इस टोली के राजा नानकोबी ने भी उस राजधानी के सामने स्थित उपनगर में अपनी रानी के लिए इसी तरह का विलास-मंदिर बनवाया था। चट्टानों के लंबे और सलग पर्यंक पर खुले आसमान के नीचे दोपहर की सोंधी-सोंधी धूप में अपनी रानी और बच्चों के साथ उस बाँस की ठठरी के सहारे और नीचे गहराई में टाँगें छोड़कर उन्हें झुलाते हुए राजा नानकोबी दिखाई देता या चाँदनी रात में उसी मंचक पर विलासरत पाया जाता। परंतु वर्षा तो अंदमान की घुट्टी में मिलती है, अतः उसका अधिकतर समय उस गुफा की प्रमुख राजधानी में ही प्रजाजनों के साथ खाने-पीने, उठने-बैठने-सोने में ही व्यतीत होता था।

वह पूरा राष्ट्र दिन भर जंगल में मृगयार्थ चला जाता। इसी वजह से पूरी राजधानी प्रायः वीरान खंडहर बन जाती। रात में नृत्य हो तो उस मैदान में सभी पुरुष, स्त्रियाँ, बच्चे—कुल मिलाकर किसी भी बिछौने-ओढ़ने के सिवा बिलकुल ही नग्नावस्था में, नींद आने पर हँसते-खेलते सो जाते—विवाहित स्त्री-पुरुषों के जोड़े और अनब्याहे स्त्री-पुरुष; किसीमें कोई भेदभाव या अलग व्यवस्था नहीं। उनका वही धर्म था—बल्कि सनातन धर्म था। धर्माधर्म में बुजुर्गों का सम्मान हमारे किसी भी आधुनिक धर्म को नहीं मिलेगा। सिर्फ जावरों का ही नहीं, अपनी मुनष्य जाति का भी 'तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।'

इस धर्म के अनुसार उनकी दिनचर्या भी लगभग सनातन ही थी। इस राजधानी की ओर ही देखिए। इतिहास और स्मृति के लिए भी यह कहना संभव नहीं कि वह कब बस गई थी। तथापि एक कालमापक यंत्र उससे जुड़ा हुआ था, जो उसकी आयु का मान बता सकता था। वह यंत्र था उस पहाड़ी के उस मैदान की ओर चट्टान टूटकर गहराई तक बना हुआ एक प्राकृतिक गड्ढा। इस बस्ती के जावरों की पीढ़ी-दर-पीढ़ी सागर से सीपियों में रहनेवाले प्राणी पकड़कर लाती आई है। हम जिस तरह मूँगफली छीलकर उसके अंदर का दाना मुँह में डालते हैं और छिलके नीचे फेंक देते हैं, उसी तरह जावरे सीपियों के प्राणी को खाकर उनके

कवचों को पीढ़ी-दर-पीढ़ी उस गड्ढे में फेंकते आए हैं। हजारों वर्षों से सतह-पर-सतह चढ़कर शिलास्थि बनी उन सीपियों की भीमकाय राशि से कालमापन करने पर यह अंदाज लगाया जा सकता है कि युगों-युगों से इस बस्ती का अस्तित्व है। वे जावरे कुलोत्पन्न लोग प्रतिदिन दोपहर में सागर-सीपियों को मूँगफली की तरह छीलकर खाते, सीपयुक्त छिलकों को उसी गड्ढे में डालते वैसे ही चटकारे लेते आ रहे होंगे।

उस राजधानी के सारे-के-सारे नागरिक आज पुनः अपने हमेशा के सागर नृत्य को जानेवाले थे। 'पुनः' शब्द का प्रयोग करने का कारण यह है कि बीच में ही अंग्रेजों से मुठभेड़ होने से दस-पंद्रह दिन उसी धाँधली में गुजरे और उनका नृत्य स्थगित हो गया था। उसपर आज का नृत्य उनकी राष्ट्रीय विजय के उपलक्ष्य में जो होनेवाला था। उनके अनुसार उस युद्ध में जावरों की जीत हुई थी। उस दिन के हमले में उनके मुट्ठी भर लोगों के सामने अंग्रेजों की छह-सात सौ लोगों की वह सेना सूखी पत्तियों जैसी तितर-बितर होकर दुम दबाकर भाग गई थी। इतना ही नहीं, अंग्रेज सेना का एक बड़ा अफसर (वही सशस्त्र पुलिसवाला) जावरों के एक वीर के तीर से मारा गया था। जंगल का वह इलाका अंग्रेजों ने ले लिया तो क्या? जब तक जंगली सूअर विपुल संख्या में मिल रहे हैं, इतना विशाल घना जंगल है, जिसमें इन दो टाँगों से चला भी नहीं जाता, ऐसे एकांत सिंधु तट और सिंधु पुलिन अपने लिए खुले पड़े हैं, जिनके उस पार नजर भी नहीं पहुँच पाती, तब तक जंगल का वह नया टुकड़ा अंग्रेजों का निजी अपमान है। उन्होंने अपना प्रतिशोध ले लिया था।

और यह प्रतिशोध ही जावरों की जीत होती है। उनका क्रोध जितनी शीघ्रता के साथ दहड़-दहड़ धधक उठता है, उतनी ही शीघ्रता के साथ शांत भी होता है। अपने व्यक्तिगत दुश्मन से भी प्रतिशोध लेने में वे नहीं चूकते, जब तक वह वहीं है। लेकिन कुछ सालों तक यदि वह लापता हो जाए तो उसका उन्हें इतना विस्मरण हो जाता है कि अगर वह पुनः उनके पास लौटकर वापस आ जाए तो वह क्रोध, उसके प्रति प्रतिशोध की वह आग उन्हें बिलकुल याद नहीं रहती। वह फिर उनमें घुल-मिल सकता है। उस हमले में अंग्रेजों के अपराध का उन्होंने बदला ले लिया—वही उनकी तुष्टि के लिए पर्याप्त था। अपनी जीत की उमंग में उनके लिए एक ही चुभन थी, जैसे खीर में नोब—वह यह कि राजा नानकोबी का जीजा टाँग में गोली धँसने से घायल होकर वहीं कहीं छिपा था। लेकिन इसमें रत्ती भर भी संदेह नहीं कि वह सही-सलामत वापस लौटेगा, क्योंकि वह अंग्रेजों के हाथ नहीं लगा था। वह यदि किसीके चंगुल में फँस गया था तो उस दुष्ट अरण्य-भूत-पिशाच के उस 'एरम चौग' के।

जी हाँ। उन जावरों में जो एक ओझा महिला थी, उसे परसों रात ही राजा नानकोबी ने मंत्र-तंत्र के बल से अपने गुमशुदा जीजा का पता लगाने का आदेश दिया था। तब वह ओझा स्त्री अग्नि के सामने बैठ गई। धधकते अंगारों की ओर उसने टकटकी बाँधी। फिर उठती लपटों में किसी अनजान आकृति को देखती हुई वह काफी देर तक बैठी रही, जैसे उसे कोई नशा चढ़ गया हो। फिर अचानक आवेग के साथ उठकर उसने अपने गले में पड़ी हड्डियों की माला ले ली और उस आग के इर्दगिर्द चीखती-चिल्लाती नाचने लगी, "हाँ! हाँ! समझ गई—यह देखो वह 'एरम चौग'। बोल! क्या बदमाशी की तूने! बोल!" इस तरह उसने उसका आह्वान किया। वह इस तरह कान देकर सुनने लगी जैसे कोई हवा में बात कर रहा है। फिर उसने कहा, "अच्छा! अच्छा! सुना तुमने राजा नानकोबी? उस एरम चौग ने ही तेरे जीजा को दगा दे दिया। यह एरम चौग हमारे जावरों का जानी दुश्मन और इस जंगल का बदमाश भूत-पिशाच है। वह वीर घनी झाड़ियों की ओट में से अंग्रेजों पर तीर चलाता है, लेकिन उन्हें वह दिखाई नहीं देता। इतने में ही इस दुष्ट ने सारी शाखाएँ झुका दीं, जिससे वह वीर बेपरदा हो गया। अंग्रेजों ने उसे देखा, निशाना लगाया। जावरा वीर टाँग में गोली लगने से घायल हो गया। वरना अंग्रेजों की क्या मजाल थी जो उसे देख सकते। अरे दुष्ट एरम चौग, अब जो हुआ सो हुआ। अब हमारे उस वीर को, जिसे तुमने अपने ही जंगल में अटकाया है, दो-तीन दिनों के अंदर-अंदर हमारे पास सही-सलामत पहुँचा दे वरना इस जंगल में हर तरफ आग-ही-आग लगा दूँगी और तुम्हें कागज के टुकड़े की तरह उस आग में जलाकर राख कर दूँगी।"

बात करते-करते वह अपनी कटि में बँधी हुई लाल कपड़े की महीन सी धज्जी छोड़ने लगी। अन्य जावरा स्त्रियों की तरह ही सिर से पाँव तक वह विवस्त्र ही थी। वह धज्जी भी, जो उसने अपनी कटि में बाँधी थी, मंत्र-तंत्र के लिए करधनी के रूप में थी। करधनी जैसी ही वह धज्जी पतली थी। उसके द्वारा एक भी अवयव ढकने का दुष्कृत्य होना कतई असंभव नहीं था। अरण्यवासी वह पिशाच एरम चौग आग से बहुत डरता है। इस डर के मारे कि वह धज्जी जिस तरह फुर्र से जल गई, उसी तरह उसकी भी यही गत बनेगी, उस जंगली पिशाच ने उसे वचन दिया कि दो-तीन दिनों में ही उस जावरे को राजा नानकोबी के यहाँ सही-सलामत भेज देगा।

इस आश्वासन के साथ-साथ लोग खुशी से झूम उठे कि उस युद्ध में जावरों की रही-सही हानि की कसर भी निकल गई। इसीलिए आज के सिंधु-तट पर होनेवाले विजयनृत्य को शानदार रूप में संपन्न करने को प्रत्येक जावरा उत्सुक था।

भोर होते ही वह पूरा राष्ट्र नित्यक्रमानुसार मृगयार्थ निकल पड़ा। स्त्री-पुरुष, बच्चे—सारे-के-सारे। छोटे-बड़े सभी का अपना-अपना तीर-कमान हाथ में। राजधानी में 'घर' जैसी कोई बात थी ही नहीं, अतः पिछला दरवाजा बंद करने की भी जरूरत नहीं थी। हर एक की गृहस्थी वह स्वयं—उसके हाथ का धनुष-बाण, गले में पड़ी कौड़ियों तथा मणियों की माला। कुछ हथियारों के अलावा अंगड़-खंगड़, बेकार की चीजें घर में नहीं थीं। कपड़ों का नामोनिशान तक नहीं। खाद्य पदार्थ के संबंध में कहा जाए तो अनाज का संचय, खत्ता, गोदाम, बोरे, डिब्बे सभी मिलकर धान्यागार के रूप में था वह विस्तीर्ण घना जंगल और अथाह सागर। कल की शाम का भोजन कल ही सफाचट। जो भी मृगया में मिलेगा वह आज का भोजन। Enough unto the day the evils there of. Let tomorrow take care of its own. हजारों सालों से ये जावरे ईसा मसीह के उक्त धर्मसूत्र का पालन प्रतिदिन करते आए हैं। राह की धर्मशाला की तरह राजधानी को उजाड़कर जावरों का वह पूरा राष्ट्र अपनी दिनचर्या के अनुसार बहुत सवेरे ही जंगल में मृगयार्थ चला गया। थोड़ी देर के पश्चात् उनमें से कुछ लोग अपनी-अपनी मरजी तथा सुविधा के अनुसार भिन्न-भिन्न शिकार के पीछे लगते हुए जंगल में बिखर गए। कुछ स्त्रियाँ और बच्चे धनुष-बाण और पत्थर लेकर पंछियों को मारते रहे। कुछ स्त्री-पुरुष विशालकाय जंगली सूअरों के पीछे लग गए। कुछ लोग सागर की ओर मुड़कर इस घात में कि चट्टानों पर बड़ी-बड़ी मछलियाँ कब उछलकर आती हैं और वे उन्हें कब अपने तीरों का निशाना बनाते हैं—इसके लिए उतावले होकर बगुलाभगत बन गए। यद्यपि नानकोबी और उसकी पत्नी 'फुली' राजा-रानी थे, तथापि अन्य किसी भी प्रजाजन की तरह अपना शिकार उन्हें स्वयं ही करना पड़ता था, अन्यथा भूखा रहना पड़ता। जावरे लोगों में राजा को कोई भी लगान आदि नहीं देता। राजा के पास राजा होने के नाते एक भी पुलिसवाला अथवा सेवक नहीं होता। संधि-विग्रह विपत्काल में वह उनका नेता होता है। उसके विचारों को अहमियत दी जाती है। बस इतने ही उसके अधिकार होते हैं। उसके पास जातीय झगड़ों के संबंध में न्यायान्याय का काम भी निर्बंध दृष्टि से नहीं होता, क्योंकि इन लोगों में कानून होता है कि जिसका जिससे झगड़ा होगा, वह यथासंभव उसका प्रतिकार करे अथवा न करे। वहाँ जातीय न्यायालय का प्रश्न ही नहीं होता। किसी व्यक्ति के शत्रु को व्यक्ति ही जान से मारे अथवा न भी मारे। वह व्यक्ति का सवाल है, न कि जाति का। न मुकदमा, न नालिश, न दंड, न कारागार, न पुलिस, न पटेल-तहसीलदार। इस प्रकार की उनकी राज्य संरचना है। किसी प्रकार के मुकुट की बात ही छोड़िए उनका राजा लँगोट भी धारण नहीं करता। इसी तरह उनकी रानी होती है, जिसे

कमर के नीचे इंच भर लटाकए गए पेड़ के पत्ते के सिवा अन्य किसी दामी वस्त्र की जानकारी नहीं होती।

उस दिन सबके साथ ही मृगयार्थ निकलते समय रानी फुली अपने एक-वर्षीय शिशु को भी पीठ पर खड़ा करके ले गई थी। हमारे यहाँ की 'कातकारी' प्रभृति आदिवासी औरतें बच्चे को पीठ पर एक झोली में डालकर ले जाती हैं अथवा बच्चा पीछे से माँ के गले में हाथों से तथा पेट को पैरों से कसकर पकड़कर लटका रहता है। हमेशा उस पट्टी का भार उठाने के कारण उन औरतों के सिर की जो हड्डी होती है, वह इतनी दब जाती है कि उसमें एक स्थायी गड्ढा बन जाता है। उसमें वह पट्टी मजबूती के साथ बैठ जाती है। वहाँ की प्रौढ़ स्त्रियों की कमर की हड्डी और कूल्हे मूलतः इतने प्रशस्त, खुले रूप में ऊपर उठे हुए और चौड़े होते हैं कि बच्चा उन कूल्हों पर आराम से पाँव रखकर खड़ा रह सकता है। अतः जिस तरह यह कहा जाता है कि हमारे यहाँ की औरतों की पीठ पर बच्चा बैठता है, उसी तरह वहाँ की औरतों की पीठ पर बच्चा खड़ा रहता है, ऐसा ही कहना होगा।

रानी फुली के पाँव जब भारी हो गए थे तब राजा नानकोबी ने उस बेटी का नाम 'कोरी' रख दिया गया था, क्योंकि जावरे के स्मृतिशास्त्र के अनुसार नारी के पेट से रहते ही तुरंत उस बच्चे का नामकरण संस्कार करना पड़ता है। अर्थात् लड़का-लड़की के पहले नाम में कोई भिन्नता नहीं होती। अतः उस बच्चे के 'कोरी' नाम से पाठक को यह जानना मुश्किल था कि वह जावरों का राजकुमार था या राजकुमारी। यह स्वतंत्र रूप से कहना आवश्यक है कि वह युवराज था। कन्या होती तो सयानी होते ही गर्भावस्था में रखे गए उसके सामान्य लिंगी नाम में परिवर्तन किया जाता है। उसे अपने जीवन के पहले मौसम में जो-जो फूल खिलते हैं, उनमें से एक नाम दिया जाता है। नामकरण का यह रिवाज उनके सनातन धर्म का ही एक जातीय संस्कार है। हर कन्या का नाम बदला जाता है, उसी तरह नारी का भी। सभी ओर फूलों के खिलने से रानी का दूसरा नमा 'फुली' रखा गया था।

जो जावरे सागर पर मछलियाँ पकड़ने गए थे, उधर ही राजा नानकोबी और बच्चे को अपनी पीठ पर खड़ा करके रानी फुली भी गई थी। ऊँची-ऊँची चट्टानों पर अपने धनुष के तीर जोड़कर जावरे खड़े थे। नीचे सागर की लहरों के झुंड-के-झुंड उन चट्टानों से टकराते हुए धड़ाधड बिखर रहे थे। बीच में ही एकाध मछली या मछलियों का झुंड उन लहरों पर उछलकर ऊपर आ रहा था। गिद्ध जैसे पक्षी आसमान से सागर पर ऊपर-नीचे निरंतर मँडरा रहे थे। उनकी परछाइयाँ जब लहरों पर उभरतीं तब ऐसा प्रतीत होता कि ये पक्षी ही लहरों पर आरूढ़ होकर तैर रहे हैं। परंतु कभी-कभी जब जलचरों के झुंड समुद्र पर उछलते, तब वे कई भारी-भरकम

हिमधवल पक्षी सचमुच ही लपककर उन लहरों पर तैरने लगते, उनकी पूरी पंक्ति उन लहरों पर और परछाइयाँ लहरों-सी डोलने लगतीं। तब वह नीले सागर की संपूर्ण लहर हिमधवल दिखाई देती, जैसेकि क्षीरसागर की दुग्धधवल लहरों में से गलती से एक लहर इधर आ गई है।

जो मछलियाँ पानी के पृष्ठ भाग पर आतीं, वे जावरों के अचूक तीर छूटते ही झट से समुद्र में गायब हो जातीं। इस तरह घंटा भर शरसंधान करने के पश्चात् राजा नानकोबी और उसके पीछे-पीछे अन्य जावरों ने उन ऊँची चोटियों से उस गहरे सागर में धड़ाधड़ छलाँगें लगाईं। तीन-तीन पुरुष गहरे पानी में डुबकियाँ लगाकर समुद्र की तलहटी पर गए। जावरे लोग गोताखोरी में निपुण होते हैं। वह तो उनकी रोज की क्रीड़ा होती है और आजीविका तो होती ही है। जिन मछलियों में उनके तीक्ष्ण शर धँस जाते हैं, वे सागरतले विश्राम करती हुई मिलती हैं। उनमें से जितनी हो सके उतनी मछलियाँ पीठ पर लादकर अथवा बाँधकर वे उन्हें ऊपर ले आते हैं। रेत पर आते ही उन्होंने कारूँ का वह खजाना नीचे पटक दिया, सभी उसके इर्दगिर्द जमकर हँसते-खिलखिलाते कौन से तीर से कौन सी मछली मर गई आदि चर्चा और शेखी बघारने में मगन हो गए।

फिर उन्होंने आग जलाई। उसपर उन्होंने कुछ मछलियाँ, अपने बीवी-बच्चों द्वारा शिकार किए गए पक्षी और अन्य लोगों द्वारा लाए गए एक-दो जंगली सूअर—टोली द्वारा उपार्जित खाद्य पदार्थ जितने आवश्यक थे, उतने आग में भूने और कुछ शाम के लिए रखे। तब सवेरे तक इधर-उधर बिखरे उनके सभी साथी वापस आ गए। फिर शुभ्र और प्रशस्त रेगिस्तान पर धूप की तपिश में उनका वन-भोजन आरंभ हुआ। उन घनी झाड़ियों में वर्षा और सागर के पानी में सवेरे से भीग-भीगकर वे तर-बतर हो गए थे और काँप रहे थे। अत: उस धूप में उनके बदन सूख रहे थे। धूप में भोजन करते हुए उन्हें उसी तरह मजा आ रहा था, जिस तरह शीतल चाँदनी में भोजन करते हुए आता है। कुछ भुना हुआ, कुछ आधा-कच्चा, कुछ कच्चा गोश्त, जिसे जैसा पसंद था वैसा उसने सफाचट किया। कठोर हड्डियों को भी दोनों हाथों से तोड़कर उनके जोड़ों में जो रस होता है उसे भी कोई सुपसुप चूस रहा था तो किसीने नरम-नरम कोमल हड्डियाँ ज्यों-की-त्यों दाँतों से कचकच चबाकर खाईं। जावरे सभी पदार्थ कच्चे खाते हैं। जब पकवानों की योजना बनाई जाती है, तभी भुना हुआ मांस होता है। परंतु भुनने के बाद गलाना, पकाना, मसाला भरना, इतना ही नहीं, रसोई शब्द भी उनकी भाषा में नहीं है।

इतने में राजा नानकोबी ने इशारों से पूछा, ''मस्तूल? विलायती जल?''

जावरों की भाषा में शब्द बिलकुल ही इने-गिने हैं। उसपर उन्हें आँखों तथा

हाथों के इशारों से ही बोलने में शब्दों के प्रति अलकस। अत: पूरा वाक्य बोलना हो तो मात्र एक शब्द से। बस! शेष अर्थ इशारों द्वारा पूरा करेंगे। राजा नानकोबी ने जब सिर्फ 'मस्तूल' शब्द का उच्चारण किया, तब उसने भी उस वाक्य का शेष अंश हाथ और आँखों के इशारों से पूरा किया था। उन भाव-भंगिमाओं का कुल वाक्य यदि हिंदी में लिखा गया तो उसका पूरा अर्थ इस प्रकार होगा—'अरे, वह अपना मस्तूल किधर गया? आज बहुत दिनों से आया नहीं इस तरफ? क्यों? वह होता तो वह 'विलायती जल' (शराब) जी भरकर पिलाता बच्चू। बस उसीकी कमी है अब।'

इसपर एक जावरे ने दो शब्द कहकर हाथों के इशारों और दृष्टि संकेत द्वारा जो उत्तर दिया उसका भावार्थ इस प्रकार है—'जावरों की एक अन्य 'टटोबी' नामक टोली इस जंगल के दूसरे इलाके में रहती है। उन लोगों से परिचय होने से मस्तूल उधर गया है और चंद दिनों में वापस लौटनेवाला है।'

परंतु उसके लिए आज का विजयनृत्य थोड़े ही रोकना है? मृगया और नृत्य तो जावरों की साँसों में, प्राणों में बसा हुआ है, रग-रग में समाया हुआ है। उसपर अंग्रेजों से जो टक्कर हुई थी, उस धाँधली में नृत्य तो हुआ ही नहीं था। उस प्रिय शौक की फाकाकशी की आज सिर्फ पारणा थी। आज वे जमकर फाग खेलेंगे। इस तरह नृत्य के लिए उत्सुक जावरे पुरुष, स्त्रियाँ, बाल-बच्चे सभी उस विशाल रेगिस्तान के नृत्यांगन में प्रचंड संख्या में जमा हो गए। कुछ जोर-जोर से खम ठोंकने लगे, कुछ यूँ ही अकेले उछलने, कूदने, फुदकने और कलाबाजी करने लगे, कुछ लरजने-गरजने लगे तो कुछ तीन-चार शब्दों का ही गीत किसी एकस्वरी सुर पर निरंतर गति के साथ घुघुआने लगे। प्राय: सभी स्त्री-पुरुष इक्का-दुक्का सुंदर पत्ता कटि के सामने लेकिन नाभि और पेड़ू के नीचे इस तरह लटकाते कि वह अधिक झूलता नहीं—वह भी मात्र श्रृंगार के रूप में, न कि आवरण के रूप में। दोनों-तीनों-चारों जनों के हाथ में हाथ डाले नाचने लगते ही चालीस-पचास स्त्री-पुरुषों के हाथों की श्रृंखला में गुँथा एक पूरा वृत्ताकार शास्त्रोक्त पद्धति से एक घेरे के इर्दगिर्द नाचने लगा। उस एकसुरी, ठूँठे और टूटे ताल के गीत को निरंतर गाते और चक्कर खाते हुए उस नृत्य का हंगामा खड़ा हो गया। एक के थक जाने पर दूसरा तुरंत उस श्रृंखला में जड़ जाता। थकना व्यक्तिगत कमी समझी जाती थी, परंतु श्रृंखला की कड़ियाँ तोड़ना अथवा घुघुआना और उस धमाचौकड़ी में ढील देना जातीय न्यूनता सिद्ध होनेवाली थी। उनका राष्ट्रीय देवता—भगवान् पुलगा—उसके उपरोध तथा धिक्कार का पात्र होना था। वह पापाचरण जावरों के सनातन धर्म के विरुद्ध होता। आखिर नृत्य के समापन का समय आ गया और उस मंडल का नृत्योन्माद सीमातीत हो गया। इतनी द्रुत गति के साथ गोलाई में घूमते, थिरकते हुए उस मंडल पर नजर

ठहर नहीं पाती थी।

वर्तमान यूरोप की किसी भी नग्न संस्था के कोई सदस्य उस समय उधर होते तो उन जावरों को, उन नर-नारियों को उस संयुक्त नग्न नृत्य में इस तरह सुध-बुध बिसराकर तल्लीन होते देखकर दाँतों तले अँगुली दबाते हुए कहते, 'आहा! नग्न नृत्य हो तो ऐसा।' मार्क्स के सैकड़ों वर्ष पूर्व से जिस प्रकार जावरे समाजसत्ताक थे, उसी प्रकार आधुनिक पश्चिमी नग्नसंघ की अत्युच्च महत्त्वाकांक्षा को वे सैकड़ों वर्ष पहले ही व्यवहार में ला चुके हैं।

नृत्य समाप्त हो ही रहा था कि एक जावरा जोर-जोर से ताली बजाकर चिल्लाया, "मस्तूल! मस्तूल!" देखा तो सचमुच ही मस्तूल आ रहा है और उसकी बगल में और हाथों में 'विलायती जल' की बोतलें हैं।

जावरों को पहले से ही तंबाकू बहुत पसंद है और पिछले चालीस-पचास सालों से उनमें विलायती शराब का भी थोड़ा-बहुत प्रवेश हुआ है। यद्यपि अभी वे शराब की लत के पूरी तरह अधीन नहीं हुए थे, तथापि ऐसा नहीं कि उन्हें वह अप्रिय हो, हालाँकि उनके लिए वह आसानी से उपलब्ध नहीं है। यह 'मस्तूल' आजकल उनकी आँखों में बस गया है; अपने मिलनसार स्वभाव के कारण अथवा उससे भी अधिक इसलिए कि वह उन्हें तंबाकू और शराब देता रहता है।

जिस आदमी का नाम जावरों ने 'मस्तूल' रखा था, वह मूलत: एक भगोड़ा ही था। अंग्रेजों के काले पानी के आजन्म कारावास के बंदियों में से ही वह एक है और बहुत साल पहले कारागृह से भाग गया था। लेकिन हिंदुस्थान वापस लौटने की उसकी योजना असफल रही थी। उस साहस में कुछ जावरों से विलायती पानी के लालच के कारण उसकी घनी मित्रता हो गई थी। इसलिए जावरों की टोली में उसे पिछले तीन-चार सालों से आसरा मिला था। वह चोरी-छिपे अंग्रेजों की बस्ती में जाता, जावरों के दिए हुए अनेक सुंदर और बड़े-बड़े शंख, दो-दो सौ फुट तश्तरी या थाली जैसी चौड़ी और गुलाबी सीपियाँ उस बंदी बस्ती के व्यापारियों को चोरी-छिपे बेचता। प्राय: सभी पैसे अपने पास रखता लेकिन कुछ पैसों से विलायती शराब और बहुत-सारी तंबाकू जावरों को गुपचुप ला देता। वह उनसे इतना घुल-मिल गया था, जैसे उन्हींकी जाति का उनका कोई आप्त हो। वह उनकी भाषा में बोलता, खान-पान उन्हीं की तरह करता, नंगा रहता, रंगीन मिट्टी बदन पर पोतता। उनके दु:ख-सुख में समवेदक बनता। उनके स्त्री-पुरुषों में जिस तरह वे साथ-साथ नाचते, एक साथ सोते, उसी तरह वह भी उनमें घुल-मिलकर नाचता, उनके साथ सोता।

ये जावरे उसे प्यार से 'मस्तूल' के अर्थवाचक नाम से पुकारते—वह उसपर

फबता भी था, क्योंकि मुश्किल से उसकी कमर तक पहुँचनेवाले ठिगने और उलटे तवे जैसे काले-कलूटे जावरों में वह साँवला और छह-एक फुट लंबा हिंदू भगोड़ा तारकोल पुती किश्तियों के बीचोबीच मस्तूल (नाव के बीच का लट्ठा जिसपर पाल बाँधते हैं) की तरह खड़ा रहता। इस समानता के कारण जावरे मजाक में उसे इसी नाम से पुकारने लगे।

जिन्होंने उसे इस बार शंख और सीपियाँ दी थीं, उन सबको उसने चार-चार घूँट शराब पिलाई। अन्य लोगों के मुँह में जी भरकर तंबाकू के तोबड़े भरे। राजा-रानी को तो पूरे दो प्याले लबालब भरकर समर्पित किए। उसी जोश में राजा नानकोबी और रानी फुली ने 'मस्तूल' का एक-एक हाथ पकड़कर उसे बीच में ले लिया और उसके सम्मानार्थ उन तीनों में एक अलग ही नग्न नृत्य शुरू हुआ।

जावरों के विजयनृत्य के ताजिए जब सिंधु तट पर 'विलायती पानी' में इस प्रकार ठंडे हो रहे थे तब उधर, जैसाकि पिछले प्रकरण में बताया है, उस घायल जावरे वीर के साथ कंटक और रफीउद्दीन उस राजधानी से दो-तीन मील दूरी पर आकर रुक गए थे। उस घायल जावरे ने उन्हें बताया था कि जावरों ने 'मस्तूल' नामक एक भागोड़े को पिछले दो-तीन सालों से आसरा दिया है और यदि कंटक और रफीउद्दीन उनके उसी तरह काम आएँगे, उन्हें शराब और तंबाकू देंगे तो उन्हें भी जावरों का समर्थन, सहारा और स्नेह मिलेगा। परंतु पहली अड़चन या बाधा यही थी कि वे भारतीय बंदी अंग्रेजों के आदमी थे और उस समय जावरे अंग्रेजों से नाराज थे, अत: यदि उन्होंने उस घायल जावरे के साथ उन्हें आते देखा तो शायद उस जावरे पर भी संदेह करेंगे और क्रोध में अंधे होकर विषाक्त तीरों की झड़ी लगा देंगे। उस विपत्ति को टालने के लिए आखिर यह तय हुआ कि कंटक और रफीउद्दीन दोनों उस रात उस जंगल में ही छिपकर रहें। वह घायल जावरा अकेला ही आगे बढ़कर अपनी टोली से मिल ले। इससे उसका स्वागत निन्यानबे प्रतिशत सुरक्षित रूप में किया जाएगा। फिर वह जावरा युक्ति-प्रयुक्ति से उनसे कहे कि कंटक-रफीउद्दीन की जोड़ी ने उसे कैसे बचाया, वह जोड़ी अंग्रेजों की पिट्ठू नहीं है। फिलहाल किस तरह वे उनके जानी दुश्मन हैं, भगोड़े हैं और जावरों को नानाविध मदिरा, तंबाकू, कांचमणि, रंगीन रेशमी वस्त्रों की पट्टियाँ आदि वस्तुएँ हमेशा देनेवाले हैं। यह सब बताकर उस घायल जावरे की जान बचाने के उपकारार्थ इन नए भगोड़ों को आश्रय देने के लिए टोली और राजा-रानी को राजी किया जाए। इतनी बाजी मारने के बाद वह जावरा फिर जंगल में वापस आकर उन्हें ले जाएगा। अत: कंटक-रफीउद्दीन उस जंगल में ही रुक गए। अब इस विचार से उनके दिल में धुक-धुक हो रही थी कि अब जावरों का क्या इरादा होगा। उसपर रफीउद्दीन की आततायी प्रवृत्ति के

संदर्भ में कंटक के नित्य ही सशंक और सावधान होने के कारण मालती की मुक्ति का वह जो प्रयास कर रहा है, उसके बाद इस राक्षस का पुराना वैर जब उजागर होगा तो एकांत में उसपर बूमरैंग की तरह उलट तो नहीं जाएगा—यह भय उसके मन में लगातार रहने के कारण, बिना भूले-बिसरे, पर ऊपरी तौर पर सहजता के साथ कंटक ने वह बंदूक बारूद सहित अपने पास रखी थी। इसके साथ ही दोनों के आगे अब नया प्रश्न खड़ा था—भई, यह मस्तूल कौन है? यह भारतीय भगोड़ा वाकई कोई कर्ता पुरुष होगा जिसने जावरों को इतने सालों से प्रभावित किया है। वह उधर ही इन जावरों में क्यों रहता है? कहीं वह भी समुद्र पार करके भागने का मौका तो नहीं ढूँढ़ रहा? साधन तो नहीं जुटा रहा होगा? अवश्य कोई कर्ता पुरुष है, अत: मित्र होगा या फसादी दुश्मन। क्या सिद्ध होगा वह? परंतु सबसे बड़ी और अत्यावश्यक चिंता यह थी कि इस घायल जावरे से मिलते ही राजा नानकोबी क्या कहता है, और क्या करता है?

□

प्रकरण–१९

रफीउद्दीन से प्रतिशोध

जावरों का विजयनृत्य समाप्त होने के बाद सूर्यास्त के समय वे लोग अपनी राजधानी की ओर वापस आ गए। लौटने के बाद राजा नानकोबी उस गुफा में—अपने राजमहल में—न जाकर मैदान स्थित अपने उस विलास-मंदिर में चला गया। विलास-मंदिर की राजशय्या एक शिला, आकाश ही छत और तीनों ओर की दीवारें—दिशाएँ। चौथी ओर दीवार बस सहारे के लिए पेड़ों की बँधी हुई बाँस की ठठरी—वही उस राजशय्या पर रखा गल-तकिया भी था। उससे पीठ टेककर, शिलासेज पर नानकोबी विराजमान हुआ।

''फुलीऽऽऽ!'' उसने प्यार भरी आवाज दी। उसके स्वर से शहद टपकता था। उसकी आवाज सुनते ही रानी फुली भी मुसकराती, बल खाती आ गई। उसकी आँखों में कामुक लंपटता और हृदय में 'विलायती पानी' छलक रहा था।

उस समय बरखा थम गई थी। संझा फूलते ही नरम-नरम रेशमी धूप की रंग-बिरंगी रश्मियाँ हिलती-डुलती झाड़ियों में यहाँ-वहाँ फुदक रही थीं। प्रणय भरी, लाड़ भरी भाव-भंगिमाओं के साथ रानी फुली ने, एक हाथ से शीशे का एक धारदार टुकड़ा आगे बढ़ाते हुए और दूसरे हाथ से किसी ब्रश जैसे बढ़े हुए बालों से भरा अपना मस्तक दिखाकर, उससे बड़े अनुनय भरे स्वर में कहा, ''स्वामी! मेरी चँदिया मूँड़ दो न!''

उसके उस अभिनय का और शब्दों का कुल मिलाकर अर्थ यह था कि मेरे बाल बढ़ने से विरूप बने मेरे इस मस्तक की इस शीशे के टुकड़े के उस्तरे जैसी चिकनी-चुपड़ी हजामत बनाओ न! मेरा सर मूँड़ो न प्रीतम, अपने इन प्यारे-प्यारे हाथों से!

हमारे यहाँ अपनी प्रिय पत्नी की किसी विलासी पति द्वारा अपने हाथों

वेणी गूँथना जिस तरह का प्रणय भरा लाड़-दुलार है, और जिस तरह बैल अपने सींगों से गाय को खुजलाकर अथवा चाटकर प्रेम-प्रदर्शन करता है, उसी तरह की प्रेमभावना के उमड़ते ही अपनी सजनी के मस्तक के बढ़े हुए बाल बिलकुल हलके हाथ से मूँड़ना जावरों के लाड़ भरे प्रेमी की एक उमंग होती है, एक ललक होती है। उनके रतिविलास का वह एक शृंगार है। विधवा का केशवपन अपने धर्मशास्त्र के अनुसार जितना अनिंद्य नहीं—जिस तरह वह अनुलंघ्य धर्मसंस्कार है, उसी तरह सुहागन का केशवपन जावरों के धर्मशास्त्र के अनुसार एक धर्म संस्कार तथा सौभाग्य का लक्षण है।

अपनी प्रिय पत्नी की यह ललक पूरी करने के लिए नानकोबी ने उसे अपने पास बैठाया। उसे उस शिलासेज पर लिटाकर उसका मस्तक अपनी गोद में ले लिया। फिर बड़े दुलार-प्यार के साथ शीशे के उस धारदार टुकड़े से हलके-हलके वह उसकी हजामत बनाने लगा। मुंडन होने के बाद जब वह उठकर बैठ गई तब वह विकेशा रानी फुली, जो अपने चिकने-चुपड़े मस्तक के कारण अधिक ही सुभग लग रही थी, उसे इतनी आकर्षक प्रतिभासित होने लगी कि उसने उसी स्थान पर बड़े चाव से उसका एक चुंबन ले लिया। उसने जिस प्रकार उसकी शृंगार की ललक पूरी की, उसी तरह वह भी उसकी उमंग पूरी करे, इस प्रकार की प्रार्थना जावरों की रीति के अनुसार अभिनय की भाषा में उसने की। शीशे का वह टुकड़ा आगे बढ़ाते हुए और दूसरे हाथ से अपना सिर दिखाकर नानकोबी ने अपनी प्रियतमा से कहा, ''चलो, अब मेरी चँदिया मूँड़ दो।''

तब महारानी फुली ने उसे उसी पाषाण-शय्या पर सुलाया, उसका सिर अपनी विवस्त्र जाँघ पर रखा और शीशे के दूसरे एक कोरे, धारदार उस्तरे से वह जावरा सुंदरी अपने पति की हजामत बनाने लगी। इतने में नानकोबी की बहन और एक-दो बच्चे भी वहाँ आ गए। दो टोकरियाँ भर-भरकर ताजा-ताजा जीवित सीपियाँ वह जलपानार्थ लाई थी। उनका कवच छुड़ाकर भीतर के नानाविध जीवों को फली के दाने की तरह मुँह में डालते और सीपियाँ पहाड़ी के उस पुरातन गड्ढे में डालते हुए वे गप्पें लड़ाते रहे।

इतने में⋯

''आ गया! आ गया! ऊँ⋯ऊँ⋯ऊँ⋯'' अचानक इस तरह चिल्लाती हुई नानकोबी की बहन लगभग नाचने लगी। दूरस्थ झाड़ियों की ओर निर्देश करके उसने सभी का ध्यान आकर्षित किया। नानकोबी ने उधर देखा तो उसे अपना खोया हुआ घायल जावरा, अपनी बहन का पति, तनिक लँगड़ाते हुए पर साधारणतः बिलकुल निर्भय, निश्चिंतता के साथ अपनी राजधानी की ओर बढ़ता हुआ नजर

आ गया। उसके साथ ही खुशी के मारे उन सभी की बाँछें खिल गईं। वे सब खड़े होकर तालियाँ बजाकर, नानाविध भाव-भंगिमाओं के साथ, विचित्र रूप में चिल्लाते हुए यह भाव व्यक्त करने लगे कि 'चलो, चलो, जल्दी आ जाओ। तुम्हारा स्वागत है।'

यह देखकर कि उसके बारे में अपने जात-भाइयों के मन में कोई गाँठ या मैल नहीं है, वह जावरा भी हर्ष और उत्सुकता के साथ भागा-भागा आगे बढ़ने लगा। लेकिन अपने भाई-बंदों के सम्मुख आते ही वह ठिठक गया। नानकोबी, फुली, उस जावरे की पत्नी सभी बिना हँसे, बिना बोले अकड़कर उसकी ओर देखने लगे। धीरे-धीरे उन्होंने अपनी आँखें तरेरीं। वह भी सीना तानकर खड़ा रहा और घूरते हुए उनकी ओर देखने लगा, जैसे क्रोध से आँखें चढ़ाते हैं।

फिर दोनों पक्ष एक के पीछे एक खाँसने-खँखारने लगे। पाँच-छह बार इस प्रकार खँखारने के पश्चात् वे पुनः निश्चल होकर एक-दूसरे को घूरने लगे।

जावरों में इसी तरह नमस्कार-चमत्कार के रिवाजों का शिष्टाचार के रूप में पालन् किया जाता है। किसी भी व्यक्ति के, फिर अपना कोखजाया बच्चा ही क्यों न हो, चार दिन दूर रहकर वापस आने पर उससे मिलने से पहले इसी तरह 'दुआ-सलाम' किया जाता है। हो सकता है, इस रूढ़ि की जड़ जावरों की स्मृतिक्षीणता में हो। उनकी स्मरणशक्ति बहुत ही कमजोर होती है। इसीलिए कोई व्यक्ति चंद दिनों के लिए गायब होकर जब वापस लौटता है तो उसे तब तक जाँचा-परखा जाता है, जब तक उसे ठीक-ठीक पहचाना नहीं जाता। खाँस-खँखारकर इस बात का विचारपूर्वक निर्णय लेना कि वह शत्रु है या मित्र और फिर उसे पुनः टोली में घुसने की अनुमति देना, सावधानी का एक कर्तव्य होता है। इस तरह मूलतः यह जो आवश्यकता थी, आगे चलकर पहचान होने पर भी अतिथियों से इस प्रकार जब तक नमस्कार-चमत्कार नहीं किए जाते—न बोलने का रिवाज ही बन गया।

यह शिष्टाचार संपन्न होते ही उन्हीं तरेरती आँखों से खुशी के आँसुओं की झड़ी लग गई। सभी का जी भरभरा उठा और अपने इस गुमशुदा वीर बंधु के गले में उसके बाँधवों के और पति के गले में पत्नी की स्नेहिल बाँहों के हार पड़े।

अपनी मुक्ति का सुरस तथा अद्‌भुत रम्य वृत्तांत-कथन करते हुए उस पुनरागत जावरे ने कंटक और रफीउद्दीन द्वारा अपने ऊपर किए हुए उपकारों का बार-बार जिक्र किया तथा अंत में वहाँ उपस्थित सभी लोगों से उसने प्रार्थना की कि उन दोनों भगोड़ों को जावरे आश्रय दें और इस तरह उनके द्वारा उसे दिए हुए जीवनदान के उपकार का ऋण चुकाया जाए। उसने उन्हें यह भी लालच दिखाया कि इन भगोड़ों से जी भर शराब और तंबाकू मिलेगा। तब वहाँ ऐसा एक भी जावरा

नहीं था जिसने इस प्रार्थना को ठुकराया हो, तथापि नानकोबी अपनी नेतागिरी के अनुकूल किंचित् विचारपूर्ण मुद्रा बनाकर तनिक मौन रहा और फिर उसने इशारों से वाक्य का प्राय: सभी अंश व्यक्त करते हुए एक ही शब्द का उच्चारण किया—'मस्तूल।'

इसका अर्थ यह था कि इस प्रकार के भगोड़ों की असली परख मस्तूल को ही है। उसे ही हमारी ओर से उधर भेजा जाए। यदि मस्तूल ने कंटक और रफीउद्दीन को आश्रय योग्य घोषित किया, तभी आश्रय देंगे।

उस शाम जब वहाँ उनकी भेंट हो रही थी तब इधर कंटक और रफीउद्दीन सूर्यास्त होने से पहले कुछ शिकार करके और उस मांस को आग में भूनकर खा-पीकर उस भयानक जंगल में अपना-अपना बिस्तर बिछाने के लिए दलदली और कीचड़-धरती पर अपना-अपना पलंग तलाशने लगे। वहाँ का पलंग था वही—पलंग की मूलभूत प्रकृति—वृक्ष। वृक्षों का निरीक्षण करते-करते उन्होंने देखा, दो चौड़ी और बड़ी-बड़ी शिखाएँ ऊँचाई पर एक-दूसरी से चिपकी हुई हैं। इस प्रकार के दो अलग-अलग वृक्षों की शिखाओं से बने हुए मचानों पर वे चढ़ गए। अपने आपको उन्होंने जंगली लताओं के मोटे और मजबूत रस्से जैसे चीमड़ रस्सों से उन पलंगों को कस दिया, ताकि वे नीचे गिर न जाएँ। वर्षा काफी देर से थमी हुई थी। फिर भी झाड़ियों से पानी टपकता ही था। बीच-बीच में एकाध झड़ी लग ही रही थी। लेकिन फिर भी वे गहरी नींद सो गए। इस बात पर उन्होंने कभी गौर नहीं किया कि वह नींद गाढ़ी नींद थी या ग्लानि भरी बेहोशी।

भोर होते ही रफीउद्दीन उठ गया। गहरी नींद के कारण उसे इतना अच्छा लग रहा था कि थोड़ी देर के लिए वह यह भी भूल गया कि अपने सिर पर जान के खतरे की तलवार लटक रही है। निकट ही दूसरे वृक्ष पर कंटक सो रहा था। उसने उधर देखा तो कंटक अँगड़ाइयाँ लेते हुए जग ही रहा था। तनिक ठिठोली करने की सनक सवार हुई और रफीउद्दीन ने कंटक को पूरा जगाने के लिए ऊँची तथा सुरीली आवाज में यह भूपाली[१] छेड़ी—

"घनश्याम सुंदर श्रीधर, अरुणोदय हो गया।
उठो कंटक बाबू, उदयाचल सूरज आ गया॥"

कंटक की हँसी छूट गई। वह भी उठकर उस शाखा पर तनिक सुस्ताया। कंटक बिलकुल उसी तरह दिखाई दे रहा था, जिस तरह शिकारी शेर की घात में

---

१. एक मराठी गीत विधा जो भोर के समय गाई जाती है।

मचान बाँधकर बैठते हैं।

''क्यों बाबूजी, कितने शेर मारे?''

कंटक ने उत्तर दिया, ''भाईजान, असली शेर तो अभी आनेवाला है। वे जावरे, जैसाकि कल तय हुआ है, अभी वापस लौटेंगे, तब वे या तो पालतू या हिले हुए होंगे या शेर बने होंगे। तीर के नाखून से चीरकर खा लेंगे—तुम्हें और मुझे। समझे?''

कंटक यह बोल ही रहा था कि सामनेवाली झाड़ी में सरसराहट हुई। बिलकुल सौ कदम पर आते ही वह जावरा अपनी जंगली भाषा में 'ऊँऽऽऽ ऊँऽऽऽ ऊँ' इस प्रकार ऊँचे स्वर में पुकारने लगा। उस जावरे को पहचानते ही कंटक झट से पेड़ के नीचे उतर गया। रफीउद्दीन अपने पेड़ पर ही समय निकालता रहा। कुछ अंश में वह अपने आपको उन लताओं के मोटे-मोटे रस्सों से जल्दी-जल्दी नहीं खोल सका, लेकिन कुछ हद तक वह अपने भीतर पगी हुई धूर्तता के कारण इस प्रकार पीछे समय निकालता रहा। उस जावरे के साथ वह अपरिचित 'मस्तूल' भी आया हुआ था। अब तक इस बात का निश्चित पता नहीं था कि उन दोनों की क्या योजना है—कंटक और रफीउद्दीन को आश्रय देना या जावरों की टोली से उन्हें पकड़वाना। अत: इस तरह की संदिग्ध अवस्था में स्वयं पहल न करते हुए, कंटक को अगुआ किया जाए और पासा अनुकूल पड़ते ही स्वयं भी उधर चला जाए और प्रतिकूल आसार नजर आते ही पीछे से रफूचक्कर हो जाए—कुछ अंश में इस तरह का कपट भाव उसके पीछे रहने में जरूर था।

कंटक को आगे बढ़ते हुए देखकर वह जावरा हर्षावेग में चीखें मार-मारकर उससे लिपट गया। ''यही हैं कंटक बाबू।'' इस तरह उसने मस्तूल को उसका परिचय दिया। मस्तूल ने भी आगे बढ़कर कंटक बाबू से कहा, ''कंटक बाबू, मेरा खयाल था कि आप ही कंटक बाबू होंगे। यद्यपि पिछले दो-तीन सालों से इन जावरों में 'जैसा देश, वैसा भेस' के अनुसार नग्नावस्था में रहकर मैं भी एक जावरा बन गया हूँ, तथापि छद्म वेश में काले पानी की बस्ती में मैं हरदम चक्कर लगाता हूँ। मैंने आपको वहाँ कई बार देखा है। अफसरों में आपकी साख, अधिकार और आपकी भागने की योजना—सारी बातें मैं जानता हूँ। सन् १८५७ के स्वतंत्रता सेनानी अप्पाजी का मैं भी एक अंतरंग, विश्वसनीय सुहृद् था। उन्होंने आपको मेरी जानकारी नहीं दी थी, क्योंकि आप दोनों का नया-नया परिचय था—मेरी उनकी पुरानी जान-पहचान थी। आप ही ऐसे साथी हैं जो मेरे साथ काले पानी से भाग सकते हैं। कंटक बाबू, आपकी बहन को मुक्ति दिलाने में मैं चुटकी बजाते ही सफल हो जाऊँगा। हाँ, हाँ, इस तरह चौंकिए मत। मैं सबकुछ जानता हूँ। प्रसंगवश सबकुछ उगलूँगा कि मुझे

यह सब जानकारी कैसे है। आपको मैंने जावरों से कहकर आसरा दिलाया है। हाँ, लेकिन आपके साथ जो अन्य भगोड़ा है, उसे जब तक मैं अपनी आँखों से नहीं देखता, तब तक उसके लिए कोई भी वचन देना नहीं चाहता। क्योंकि··· क्योंकि··· उसका नाम इस जावरे के टूटे-फूटे उच्चारण में मैंने जो जोड़ा है, वह रफीउद्दीन या ऐसा ही कुछ बनता है। और कंटक बाबू, मुझे इस नाम से सख्त नफरत है। लेकिन उस आदमी को देखने के बाद वह उतना अधम, पुराना चांडाल नहीं होगा जितना उसका नाम है, तो मैं उसे भी आसरा दिलवाऊँगा। बताइए, ठीक-ठीक नाम क्या है उसका?'

चौंकते हुए कंटक बाबू ने कहा, ''यही है, रफीउद्दीन। लेकिन यहाँ तक भागने में उसीने मेरी सहायता की। कम-से-कम मेरी खातिर तो उसे आसरा···'' कंटक को बीच में ही रोकते हुए मस्तूल ने कहा, ''उसे देखने के बाद यह प्रश्न उठेगा। कहाँ है वह?''

उनकी बातचीत के दौरान ही रफीउद्दीन अपने बदन के इर्दगिर्द लिपटे हुए बंधन छुड़ाकर दूर-दराज के उस वृक्ष से नीचे उतरकर आगे बढ़ रहा था, क्योंकि उस जावरे का कंटक से हर्षोल्लास के आवेग में लिपटना, वह हर्षभरित चीत्कार, 'मस्तूल' का कंटक से खुशी-खुशी हाथ मिलाना—इन सभी लक्षणों से उसके मन में इस संदर्भ में संदेह की कोई गुंजाइश नहीं रही कि जावरों ने उनके साथ स्नेह-संबंध जोड़ा है। उसे पक्का विश्वास हो गया कि आगे बढ़ने में कोई धोखा नहीं है। इतने में कंटक ने ही उसे जोर से आवाज दी, ''रफीउद्दीन, आ जाओ। जावरे अब हमारे मित्र बन गए हैं।''

रफीउद्दीन निश्छलतापूर्वक निश्चित मन से हँसते-हँसते आगे बढ़ गया। मस्तूल बारीकी से उसे निहार रहा था। लेकिन रफीउद्दीन के निकट आते ही मस्तूल की—जो रफीउद्दीन से ऊँचे, मजबूत, भारी-भरकम डील-डौल का था—त्योरियाँ चढ़ गईं, बार-बार मिटाने पर भी उसके माथे पर पुनः-पुनः क्रोधावेश के बल पड़ने लगे, उसके नथुने फूल गए, उसकी आँखों तले लहू उतर गया। वह आग का पुतला बन गया। उसे ऐसा लगा, जैसे मदिरा की बोतल की डाट तड़ाक् से उड़ने लगे, उसी आवेश से उसका पूरा बदन उछल तो नहीं रहा! बोतल की उछलती डाट को हम जिस तरह ऊपर से कसकर दबाकर पकड़ते हैं, उसी तरह वह अपने पैर दृढ़तापूर्वक धरती पर दबाने लगा। इतने में उसने एक किल्ली ऐंठी। वह युक्ति उसके मन में, जिस आशंका का आरंभ हुआ था, विशेष रूप से उसकी पूर्ति करती थी। उसने बलात् अपने चेहरे पर मुसकराहट पोती और रफीउद्दीन के साथ प्यार से हाथ मिलाने के लिए अपना हाथ आगे बढ़ाया।

''आइए, आइए मियाँजी!'' इस तरह मस्तूल के स्वागत करते ही रफीउद्दीन का दिल बल्लियों उछलने लगा। उसने अपने दोनों हाथ आगे बढ़ाकर मस्तूल का हाथ पकड़ा और शीश नवाकर उसका अभिवादन किया।

रफीउद्दीन के पंजे की ओर देखते ही मस्तूल को वह निर्णायक निशान मिल गया जो वह देखना चाहता था। रफीउद्दीन की दाहिनी छिगुनी का एक पोर टूटा हुआ था। यही है वह रफीउद्दीन! और उसके साथ ही मस्तूल दाँत पीसकर उसपर झपटा।

''तुम, तुम ही हो वह दुष्ट रफीउद्दीन! अरे नीच, मैं तेरा खून पी जाऊँगा कमीने!''

उस भयानक आवेश और आरोप का अर्थ कंटक ही नहीं, स्वयं रफीउद्दीन के भी जानने से पहले मस्तूल ने रफीउद्दीन के पकड़े हुए हाथ को पूरी ताकत के साथ झटका दिया, दाँव-पेंच मारकर उसने उसे पीठ की ओर से पेट पर ले लिया, उसके शरीर को बाएँ हाथ से मजबूत घपची मारकर दाहिना हाथ दोनों टाँगों में से घुसेड़कर उसे ऊपर उठाया और पछाड़ते हुए धड़ाम से जमीन पर पटक दिया। साथ ही उसकी छाती पर आरूढ़ अपने दोनों बलवान हाथों से मस्तूल ने रफीउद्दीन का कंठ कसकर दबाया।

अब रफीउद्दीन को अहसास हो गया कि उसका एक पुराना शत्रु उसकी छाती पर सवार हो गया है। रफीउद्दीन ने उसे तब पहचाना, जब वह उसके शिकंजे में आकंठ फँस चुका था।

''अरे, अरे। छोड़ो, छोड़ दो इसे।'' इस तरह घबराकर कहते हुए कंटक बीच में आ ही रहा था कि अत्यंत दृढ़, निर्णायक, सधे हुए, ठोस और कठोर स्वर में मस्तूल दहाड़ा, ''बाबूजी, आप चुप रहिएगा। यह इनसान नहीं हैवान है, जो जहर का बुझाया हुआ है। आपके हित की खातिर भी यह जहरीला काँटा उखाड़ना ही होगा। मेरा तो यह जानी दुश्मन है। वह सारी रामकहानी बाद में बताऊँगा। बोल रफीउद्दीन, मक्कार भेड़िए, तूने ही उस समय मेरी जान ले ली थी न? अपने हिसाब से तू मेरी जान ले चुका है न? अब यह मेरा पुनर्जन्म है। अब मैं तुझे जान से मारे डालता हूँ।''

दाँत किटकिटाते हुए विकराल आग का पुतला बनकर मस्तूल रफीउद्दीन की आँखों पर, नाक पर और छाती पर अपनी वज्रमुष्टि के लगातार प्रहार करता रहा। रफीउद्दीन की आँखों, नाक और मुँह से लहू की धाराएँ उमड़-उमड़कर बहने लगीं। मांस का लोथड़ा बनकर वह बेहोश हो गया।

जिस तरह पालतू कुत्तों के लिए इतना जानना ही पर्याप्त होता है कि मालिक

का शत्रु हमारा शत्रु, उसी तरह जावरों का वैर जाग्रत होने के लिए भी यही पर्याप्त था। उस जावरे ने अपना धनुष रफीउद्दीन पर ताना। उसका तीर सनसनाता हुआ उसी तरह रफीउद्दीन की छाती में ठुँक गया, जैसे कोई कील ठोंकी जाती है। रफीउद्दीन वहीं ढेर हो गया।

मस्तूल ने किसी अघोरी संतुष्टि के आवेश में कंटक की ओर मुड़कर कहा, "कंटक बाबू, सुनिए। मैंने इस रफीउद्दीन की किसी भेड़-बकरी जैसी हालत क्यों की? आप सोचते होंगे मैं ही जल्लाद हूँ। लेकिन इस रफीउद्दीन को जब से आप जानते हैं, उससे पहले से मैं जानता हूँ। इसीने इसी तरह गला घोंटकर सैकड़ों जानें ली हैं। यह पहले काले पानी पर आजन्म कारावास का दंड प्राप्त बंदी था, तब मैं भी आजन्म कारावास प्राप्त कैदी था। लकड़ियाँ भरकर ढोनेवाली किश्ती पर काम मिलने के कारण मैं नौकायन विद्या में भलीभाँति निपुण बन गया। यह कलमुँहा मेरे अधिकार में लकड़ी का जमादार था। आगे चलकर हमने यहाँ से भागने का षड्यंत्र रचा। इस साहस में इसने मेरी काफी सहायता की। लेकिन इसके पास दमड़ी भी नहीं थी और मेरे पास हजार-दो हजार नगद थे। मैं जिस किश्ती पर काम करता था, अवसर देखकर वही किश्ती हमने हथिया ली और उसी रात समुद्र में छोड़ दी।

हवा अनुकूल बहने लगी, इसीलिए हम भगोड़ों को सागर में अच्छी तरह राह मिली। इस प्रसंग में इसने मेरे पास जो नगद माल था, उसे हड़पने के दुष्टतापूर्ण उद्देश्य से इसने मुझसे छल करने की योजना बनाई, जबकि मैंने इसका कुछ भी अहित नहीं किया था। मैं एक पट्टी पर किश्ती के किनारे खड़ा था और इसकी ओर मेरी पीठ थी। तब इसने वह पट्टी अचानक उलट दी और मेरे साथ सागर में लुढ़का दी। मैंने आनन-फानन में पुनः किश्ती पकड़ने की कोशिश की तो इसने चप्पू का डाँड मेरे सिर पर दे मारा। मेरा सिर चकरा गया और मैं गोते खाने लगा। फिर मैं डूब गया। किश्ती तेजी के साथ आगे बढ़ी। लेकिन अद्भुत संयोगवश समुद्र में उछलकर मैं जो सागर के पृष्ठ भाग पर आया तो वही पट्टी लहरों की फटकार के साथ मेरे हाथ लग गई। उसे पकड़कर मैं अपनी जान बचाने के लिए एड़ी-चोटी एक कर रहा था कि जावरों की बड़ी सी डोंगी मेरे समीप आ गई और उन जावरों ने अपनी नौका में चढ़ाकर मुझे बचाया। लेकिन इसके अनुसार मैं मर-खप गया था। इस क्षण तक मैं नहीं जानता था कि इसका क्या हुआ। अब भी इसका नाम सुनकर और इसे साक्षात् देखकर ही मैंने पहचाना कि यही है वह दुष्ट। अब मैंने अपने ऊपर और अन्य बहुतों पर किए हुए अत्याचारों, जुल्मों का प्रतिशोध ले लिया है। अब चाहे आप कुछ भी कहिए, मैंने यह उचित किया है या नहीं।"

"मैं तो यही कहूँगा कि आपने ठीक ही किया। आपने इस नीच को एक बार

ही मारा है, अगर तीन बार भी मारते तो मैं यही कहता कि आपने ठीक ही किया। इसके घोर अपराधों से मैं भी परिचित हूँ। आपने वही किया जो मुझे करना चाहिए था। पर मैं हालात की पेचीदगी के कारण विवश था। आपने मेरे पाँव में धँसा ऐसा काँटा निकाला है, जो मैं नहीं निकाल सकता था। इस वजह से मेरी आगामी योजना में रुकावटें भी आ जाएँ जो अन्यथा नहीं आतीं, तो भी मुझे चिंता नहीं।''

''नहीं, नहीं। इसके जीवित रहने पर भी आपकी भविष्यकालीन योजना में वही रुकावटें निश्चित थीं। प्राय: मेरे समान ही यह आपसे भी विश्वासघात करने में नहीं चूकता। वह संकट इस अधम साँप को कुचल डालने से दूर हुआ है। आप की आगामी योजना निष्कंटक हो गई है, कंटक बाबू। जल्दी ही मैं आपको इसका यकीन दिलाऊँगा कि मैं कौन...''

''जी हाँ, यही समझने की उत्कंठा और आवश्यकता मुझे है।''

''मेरी राय से आप यह न पूछें और मैं न बताऊँ तो अच्छा है। पर ऐसा नहीं कि मुझे आपपर भरोसा नहीं है। स्व. अप्पाजी ने आपके चरित्र, शील के संबंध में मुझे जो प्रमाणपत्र दिया है, वही उस आशंका का निर्विवाद निराकरण है। लेकिन अंदमान के अघोरी अपराधी जगत् में जो उन्हीं अपराधियों के सहयोग से काले पानी से भागने के जानलेवा षड्यंत्र में सम्मिलित होना चाहता है, उसे दो बातों का त्याग करना ही चाहिए। पहली बात यह कि अपने कार्य के लिए अपरिहार्य से अधिक पूर्वपीठिका दूसरे से न कहना और दूसरी बात यह कि जीने की आशा। मैंने अपने अनुभवों से यह पत्थर की लकीर की तरह निश्चित किया है कि इन दोनों बातों का त्याग करना अत्यावश्यक है। आपका पूर्वेतिहास मैं उतना ही जानता हूँ जितना आवश्यक है। फिलहाल इस काम में मेरा इतना ही पूर्वेतिहास आपके लिए पर्याप्त है कि मैं मस्तूल हूँ। आगे चलकर जब आवश्यक हो तब, किस्त-दर-किस्त, यथाक्रम मैं स्वयं ही आपको बताऊँगा। अब पहले जावरों के पास चलिए। मेरे अनुकूल अभिप्रायवश राजा नानकोबी स्वयं ही आपसे मिलने के लिए उत्सुक हैं। अरे हाँ, लेकिन आपके पास एक बंदूक, कुछ बारूद और पुलिसिया कपड़े भी थे न? यह जावरा ही बता रहा था...''

''जी हाँ। कुछ कारणवश हम उन्हें छिपाते आए हैं। कहीं ये हथियार देखकर जावरे हमसे डर न जाएँ। और इस अधम रफीउद्दीन पर मेरा अंतस्थ अविश्वास था। इसी कारण इन चीजों को मैंने हमेशा अपने पास ही रखा।''

''लेकिन दरअसल भागने के साहस के लिए अत्यावश्यक चीजें आपके पास हैं, जिनकी मेरे पास कमी है। यह सुनकर ही मुझे आपके सहयोग का जबरदस्त आकर्षण है। चलिए, पहले उन वस्तुओं को इधर ले आइए।''

सूखी पत्तियों में छिपाई हुई उन सारी वस्तुओं को कंटक के उधर लाते ही मस्तूल ने सबसे पहले बंदूक पर ऐसा झपट्टा मारा, जैसे कोई भूखा कंगाल पकवानों पर मारता है और बड़े ठसके के साथ उस नंगे वीर ने बंदूक कंधे पर रखकर कंटक को फौजी शान में आदेश दिया, ''चलो, मेरे पीछे-पीछे चले आओ।''

''वाह जी वाह!'' कंटक मुसकराया, ''बंदूक के पारस स्पर्श से आपके कदम भी फौजी शान से पड़ने लगे, जैसे आपमें किसी फौजी आत्मा का ही संचार हो गया हो।''

''किसी फौजी का क्यों भला? मैं स्वयं पहले कभी एक सैनिक था। मैंने युद्ध देखा है, बाबूजी! साक्षात् रणभूमि में लोहा बरसाया है, जनाब!''

लेकिन यह सोचकर कि मुँह से आनन-फानन निकल चुकी अपने पूर्व चरित्र की इतनी जानकारी कहीं जरूरत से ज्यादा तो नहीं हो गई, मस्तूल ने एकदम चुप्पी साध ली; और कंटक और जावरा दोनों की फौज का नेतृत्व करते हुए उस जंगल में किसी सेनानी के समान, जैसे नानकोबी की जंगली राजधानी पर चढ़ाई करने चल पड़ा।

□

प्रकरण–२०

बंदिनीगृह से मालती उड़न-छू

बंदिनीगृह की पाकशाला की छपरी में साग-भाजी की एक बड़ी सी लोहे की देगची के नीचे आग तेज करती कंटकी खड़ी थी। बंदिनियों की वेशभूषा के अनुसार उसने एक मोटी खुरदुरी धोती पहन रखी थी जो मुश्किल से घुटनों तक पहुँचती थी। हफ्ता-हफ्ता भर बिना तेल के रहने और गंदी तथा नीच बंदिनियों के बीच दिन-रात एक साथ रहने के कारण उसके बाल बिखरे, उलझे हुए थे जिनमें जुओं की भरमार हो गई थी। बड़े-बड़े प्रचंड धधकते चूल्हों की तपिश में लगातार खटने के कारण उसका बदन धुएँ से मटमैला हो गया था तथा पसीने से तर-बतर रहता था तथापि ऐसी स्थिति में भी वह युवती—वह कंटकी ऊर्फ मालती जो मूलतः सुंदर सुभगा थी—आग से धधकते उन प्रचंड चूल्हों के बीच ऐसी शोभित हो रही थी, जैसी पंचाग्नि साधना में तपस्या।

कम-से-कम अनुसूया को, जो उस समय उसके सामने खड़ी थी और उसके अनजाने में उसकी ओर सहृदयतापूर्वक और कौतुक भरी नजरों से निहार रही थी, कंटकी उसे उसी तरह मोहक प्रतीत हुई।

दूसरी एक बंदिनी के, जो वहाँ काम कर रही थी, आटे के बोरे उठाने के लिए एक तरफ मुड़ते ही कंटकी को अकेली पाकर उसे सचेत करने के उद्देश्य से अनुसूया ने चुटकी बजाई। कंटकी ने ऊपर देखा, तनिक आगे बढ़ी, सावधानी के साथ चारों ओर देखा और अनुसूया के हाथ से झट से कागज लेकर एक तरफ दरवाजे के पास खड़ी हो गई। एक-दो मिनट में ही कंटकी ने उस चिट्ठी को पढ़कर आग में फेंका ही था कि अनुसूया ने इशारे से पूछा 'काम हो गया न'? कंटकी के हामी भरते ही अनुसूया वहाँ से चलती बनी। इस उद्देश्य से कि कंटकी से अपना कुछ विशेष स्नेह-संबंध है, इसका किसीको संदेह न हो, अनुसूया कंटकी

से कभी बात भी नहीं करती थी, कंटकी के साथ कामकाज में भी उतना संबंध नहीं रखती थी, जितना अन्य स्त्रियों के साथ।

वह चिट्ठी पढ़ते ही कंटकी का हृदय किसी उत्कट आशा की उछाल और साहस की उत्तेजना से धकधक करने लगा। उसकी देह बंदीगृह में थी, लेकिन उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि उसका मन ही हलके से किसीने उठाकर किसी अन्य दुनिया में लाकर छोड़ दिया है। उसका पूरा ध्यान इस बात पर केंद्रित हो गया था कि उस चिट्ठी में जो भयंकर परंतु शुभकर योजना उसे सूचित की गई थी उसमें से उसके हिस्से में जो भूमिका आएगी उसे किस तरह संपन्न किया जाए। वह अपने मन के रंगमंच पर अपनी साहसी भूमिका पुनः-पुनः साकार करके देख रही थी, योजना बना रही थी। सारी आवश्यक कृतियाँ, गतिविधियाँ और घटना-प्रसंगों का संकलन किस तरह संपन्न करना है यह अक्षर-अक्षर निश्चित कर रही थी, ताकि उससे रत्ती भर भी भूल-चूक न हो। तथापि इतनी सी भी कहीं गलती हो गई, उसकी और अन्य लोगों की गतिविधियों में इतना सा भी अंतर आ गया तो वह अब जिस स्थिति में थी उससे भी कई गुना अधिक बदतर, किसी अन्य भयंकर संकट में फँस जाएगी—इस विचार से उसकी धकपक हो रही थी। उसका कलेजा थरथर काँप रहा था। यदि सारी योजना अक्षर-अक्षर संपन्न हो जाए तो···तो चौबीस घंटों के अंदर-अंदर वह सुख के स्वर्ग में कदम रखेगी और फिर···फिर अपने किशन की बाँहों में।

उसके मन में यह तूफान उठ रहा था, पर उसका सारा व्यवहार बंदीगृह की घड़ी जैसा काँटे का नपा-तुला—बंदीगृह से परिनियोजित अनुशासन के अनुसार साक्षात् चल रहा था। सभी बंदियों के भोजन से निपटकर दोपहर के समय पाकशाला विभाग की महिलाओं को जो थोड़ा-बहुत अवकाश मिलता था, उसमें कंटकी नित्य नियमानुसार ऊपरी तौर पर तनिक सुस्ताई। परंतु उसका मन असहनीय बेचैनी के कारण और सशंक अपेक्षा से इस चिंता में धौंकनी सदृश धकधक कर रहा था कि क्या होगा, कैसे होगा। वह बार-बार अनुसूया जमादारनी की उत्कंठापूर्वक प्रतीक्षा कर रही थी। घड़ी के तीन टोल देते ही उसे लगता था कि वे चार के ही टोल हो गए। चलो, आखिर बाहरी काम के लिए जाने का अपना समय तो हो गया। लेकिन यह जानकर कि अरे, अभी तो तीन ही बजे हैं—वह झेंपती हुई इतना सा मुँह करके फिर नीचे बैठ गई। इतने में वाकई चार बज ही गए। अनुसूया जमादारनी ने हमेशा की तरह बंदीपाल के कहने के अनुसार आवाज दी, "कंटकी!" सभी के सामने उस सायंकालीन काम के लिए बाहर जाने का आदेश मिल गया।

यह बाहर का काम बंदियों के लिए बंदीगृह के बाहर बनाए गए प्रेमोद्यान में जाकर झाड़ू-बुहारना आदि व्यवस्था रखना था। कंटकी का चोखा चाल-चलन

देखते हुए बंदीपाल ने यह काम उसको ही सौंपा था। नित्य ही इसी तरह उस प्रेमोद्यान में जाने के लिए बंदीगृह के बाहर कदम रखती और शाम के समय झाड़ू-बुहार की व्यवस्था से निपटकर प्रेमोद्यान बंद होते ही पुनः उस द्वार के भीतर आकर बंदीगृह में स्वयं बंद हो जाती। पर आज—आज तो उसने ठान ली थी कि उस बंदीगृह के द्वार से बाहर निकलना ही है, और वह भी पुनः अंदर कदम न रखने के लिए। वह इस निश्चय के साथ बाहर निकली कि कंटक की गुपचुप अनुसूया के हाथ भेजी हुई चिट्ठी के साहसी षड्यंत्र के अनुसार भागने में सफलता मिली तो ठीक है अन्यथा असफलता मिलने पर पेट में छुरा घोंपकर आत्महत्या द्वारा—लेकिन आज बंधनमुक्त होकर ही रहना है; फिर इस द्वार से बंदीगृह के भीतर कभी नहीं आना है। वह मालती—कंटकी अपने ही मन में ठोंक-बजाकर कहने लगी, 'आज आजन्म कारावास की सजा यहीं पर समाप्त हो गई।' प्रेमोद्यान की झाड़ू-बुहार करने की, झाड़ू के साथ-साथ उसने पाकशाला की एक तेज धारवाली छुरी भी छिपाकर साथ ली हुई थी। उसने उसे टटोलकर देखा और चेहरे पर शिष्टता मिश्रित बुद्धू जैसा भाव और मुसकराहट भरी ढीलाई पोतकर वह बंदीगृह से बाहर निकली। उसका चेहरा देखकर दरवाजे पर खड़े उन परिचित पहरेदारों को उसकी तलाशी लेने की भी आवश्यकता महसूस नहीं हुई। अनुसूया उस समय उसे एक नजर देखने के लिए भी नहीं आई। इस उद्देश्य से कि आगे चलकर वह कान पर हाथ रख सकती है कि वह इस मामले में बिलकुल ही बेखबर थी, वह बंदीगृह में किसी दूसरे ही काम से उलझने का बहाना बनाने की चालाकी करके बंदीगृह के बिलकुल ही बीच के चौक में कब की खिसक गई थी। बंदीगृह के अच्छे चाल-चलन के स्त्री-पुरुषों को विवाह की अनुज्ञा मिलते ही वहाँ के बंदी मनचाहा साथी चुनने के लिए उस उद्यान में आते। हमेशा की तरह वे उस दिन भी इकट्ठा होने लगे और आपसी बातचीत में लीन हो गए। झाड़ू-बुहार के काम से निपटकर कंटकी भी उनके बीच में चक्कर काटने लगी, लेकिन उसका सारा ध्यान उस बगीचे के सामनेवाली सड़क की ओर था। पाँच के टोल हो गए लेकिन ऐसा कोई व्यक्ति सड़क पर नजर नहीं आ रहा था, जिसकी उसे अपेक्षा थी। वह बेचैन होने लगी और आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगी। पाँच बजने के बाद हर मिनट उसे घंटा जैसा प्रतीत होने लगा। सवा पाँच हो गए। वह कौन है भई? पुलिस··· ? हाँ जी, हाँ। उस पुलिस के आदमी ने पूर्वनियोजित संकेत किया। कंटकी झट से प्रेमोद्यान से बाहर निकलकर सड़क पर आ गई। वह पुलिसवाला ढीठ बनकर आगे बढ़ा, उसने कंटकी का हाथ पकड़ा। उस स्पर्श से या निकट आने के कारण गौर से देखने पर कंटकी ने पहचाना कि पुलिस के वेश में कंटक ही है। उसके पीछे-पीछे एक लंबा सा, साँवला सा दूसरा सिपाही था जो

अपरिचित था।

पहला सिपाही कंटक और दूसरा था मस्तूल। दोनों ने पुलिस के वेश में कंधे पर बंदूक, कमर में सरकारी पुलिसिया पेटियाँ, पुलिसिया शान के साथ आगे बढ़कर कंटकी का हाथ पकड़ा। उसे ऊँची आवाज में आज्ञा दी, ''आपको चीफ कमिश्नर साहब ने कोठी पर बुलाया है। हम आपको लेने आए हैं।''

कंटकी के पीछे-पीछे उस बंदीगृह का पहरेदार भी आ रहा था। उसे उन दोनों सिपाहियों ने बताया, ''इस महिला को हम चीफ कमिश्नर साहब के पास ले जा रहे हैं। सुना तुमने? क्या कहा? बंदीपाल को सूचित कर देना? हमने पहले ही सूचित कर दिया है। भई, चीफ कमिश्नर से बंदीपाल बड़ा अफसर थोड़े होता है? आप हमारे नंबर नोट कीजिए। चलो कंटकी—आगे बढ़ो।''

उन सिपाहियों की वह कठोर, सधी हुई भाषा और बेबाक, निडर ठसका देखकर वह पहरेदार झेंप गया। न कहे तो वह कमिश्नर ही सर्वेसर्वा, अंदमान की सरकार और उनके यह पुलिसवाले। इस संदेह से कि इनके साथ तू तू-मैं मैं करने से स्वयं ही मुसीबत में न फँस जाए—पहरेदार इस दुविधा में पड़ा रहा। इतने में ही उन सिपाहियों ने कंटकी को आगे करके आदेश दिया, 'चलो'। उस आदेश की प्रतीक्षा भी न करते हुए कंटकी ने पहले ही रास्ता नाप लिया। पाँच मिनट के अंदर वे तीनों एक मोड़ से दूसरी राह पर निकल गए।

वह पहरेदार तब तक उस सड़क की ओर ही देखता रहा, जब तक वे तीनों आँखों से ओझल नहीं हुए। फिर आधे-पौने घंटे के बाद यथासमय उद्यान बंद करके वह बंदीगृह में चला गया। शाम के समय गिनती करते समय एक बंदिनी कम पड़ गई। यह समझ में आते ही कि वह कंटकी ही है, बंदीपाल ने उस प्रहरी के कान खींचे। उसने अकड़ते हुए उत्तर दिया, ''हुजूर, चीफ कमिश्नर साहब से पूछिए, मेरा क्या कसूर? पुलिस अफसर कंटकी को पकड़कर ले गए थे।''

चीफ कमिश्नर की कोठी से कई बार बंदियों को अचानक बुलावा आता था। हिंदुस्थान का नया वॉरंट अथवा अन्य कुछ मुक्ति, कैद में बंदी की छूट आदि कामकाजों में इस तरह हमेशा होता है। लेकिन बंदीपाल की अनुमति के बिना हथियारबंद पुलिस भेजकर—एक बंदिनी को पकड़कर ले जाना लीक से हटकर ही था। इसलिए बंदीपाल ने तुरंत कमिश्नर की कोठी पर अपने दूत रवाना किए। नाव पर सवार होकर उस कोठी पर जाना पड़ता था। इतनी दूर जाकर दूत के रात में वापस लौटते ही उन्होंने कमिश्नर का संदेश बताया कि 'वहाँ से कंटकी नामक किसी भी बंदिनी को नहीं बुलाया गया।'

अर्थात् किन्हीं दो पुलिसवालों ने उस युवा बंदिनी का अपहरण किया होगा!

यह बात स्पष्ट होते ही बंदीपाल सिटपिटाया। स्थिति का जायजा लेते हुए बंदीगृह की 'संकट घंटी' अचानक ठन-ठन करती जोर से बजने लगी। जहाँ देखो, वहाँ सिपाहियों की भागदौड़, खोजबीन, नाकेबंदी होने लगी। खासकर यही प्रमाण सभी स्थानों से मिलता रहा कि वे दोनों सिपाही पुलिस की इमारत से आए हुए थे। उस राह से आते-जाते कई राहगीरों ने बताया कि दो हथियारबंद सिपाहियों को एक लड़की को ले जाते हुए उन्होंने देखा, लेकिन उनके पुलिस होने के कारण उन्होंने उधर ध्यान नहीं दिया। रात भर खोज जारी रही। लेकिन यह एक अनबूझ पहेली ही रही कि वे सिपाही कौन थे और उस लड़की को लेकर कहाँ गए?

इस तरह बंदीगृह में कमिश्नर साहब का स्पष्टीकरण ले गए दूत जब तक नहीं आते तब तक यह तय कर पाना मुश्किल था कि कंटकी का अपहरण हुआ है। इसीलिए कंटक और मस्तूल को चार-पाँच घंटे अबाध रूप से मिल गए। तब तक पीछा शुरू नहीं हुआ था। पुलिस का छद्मवेश बनाने में उन्होंने जो चतुराई दिखाई, उसका उन्हें अच्छा-खासा लाभ मिला, क्योंकि सरकार को भ्रामक संदेह हुआ था। खोजबीन गलत दिशा में हो रही थी। उसका कंटक ने पूरा-पूरा लाभ उठाया। पीछे जावरों ने अंग्रेजी बंदियों पर हमला किया था। तब जो अंग्रेजी जमादार मारा गया था और जिसकी बंदूक तथा कपड़े, पट्टे कंटक ने निकाल लिये थे और मस्तूल के पास भी इसी तरह उड़ाया हुआ माल—अपनी बंदूक—पेटी और पुलिसिया कपड़ों का एक जोड़ा—इस तरह उन पुलिसवालों की दो बंदूकों और कपड़ों के उपयोग से उनके षड्यंत्र का वह साहसी श्रीगणेश तो निर्विघ्न संपन्न हुआ।

पुलिस वेश में ही पिछले कई सालों से 'भगोड़े' के रूप में वांछित घोषित किए जाने के बावजूद मस्तूल काले पानी पर सरकारी बस्तियों में छद्मवेश में घूमने और तुरंत जंगल में जावरों की राजधानी में जाकर छिपने में काफी सधा हुआ था। सन् १८५७ के स्वतंत्रता वीर अप्पाजी के घर भी वह इसी छद्मवेश में आता-जाता रहता था। कंटक को जावरों द्वारा आश्रय देने के पश्चात् उसे भी मस्तूल ने इस विद्या में निपुण बनाया था। कंटक की बहन कंटकी को बंदीगृह से मुक्त करने का यह साहसी षड्यंत्र मस्तूल ने ही रचा था। उसीने छद्मवेश में अनुसूया से उसके घर पर भेंट की। कंटक की अमानत के रूप में उसके पास रखी हुई हजार-डेढ़ हजार की रकम कंटक के कहने के अनुसार ही उससे वापस ले ली और कंटकी को देने के लिए इस षड्यंत्र की गुप्त चिट्ठी—अनुसूया के हाथ बंदीगृह में भेजी थी। इस चिट्ठी के अनुसार कंटकी ने निश्चित समय पर उस बगीचे से खिसककर पुलिस वेश में आए हुए अपने मित्र के साथ बंदीवास की बेड़ियाँ पल भर में तोड़ने का जानलेवा साहस किया था।

कंटक और मस्तूल के साथ कंटकी वह सड़क छोड़कर तुरंत एक ओर के रास्ते से सागर तट पर आ गई। वहाँ एक 'डोंगी' तैयार ही थी। वृक्ष की जड़ को काटकर और उसे बीच में तराशकर जो किश्ती अंदमान निवासी बनाते हैं और समुद्र-तट से सटकर जिसके द्वारा द्रुत जलयात्रा करने में वे निपुण होते हैं, उस अतिपूर्वकालीन नौका को वहाँ 'डोंगी' कहा जाता है। यही है नौका विद्या में की हुई मानव की पहली खोज। जावरे इस प्रकार की डोंगी से समुद्र यात्रा करने में निपुण होते हैं। उसी तरह की एक डोंगी समुद्र के एक उपेक्षित और एकतरफा तटप्रदेश के पास कंटक ने तैयार रखवाई थी। कंटकी के साथ वे दोनों हथियारबंद पुलिसवेशी उस डोंगी में सवार हो गए और वह तेजी से समुद्र में घुसने लगी। तटप्रदेश पर जिन चंद लोगों ने उस युवती को लेकर वह डोंगी दूर-दूर जाती हुई देखी थी, उन्हें वह तनिक अटपटा सा महसूस हो रहा था। परंतु यह देखकर कि दो हथियारबंद सिपाही उसके साथ हैं, इस बात की चर्चा करके बात फैलाने की हिम्मत किसीकी नहीं हुई।

थोड़ी ही देर में वह डोंगी काले पानी के समुद्र के उस इलाके में घुस गई, जिसके किनारे पर उजाड़-से-उजाड़ घना और निर्जन जंगल था। कंटकी कंटक से सटकर बैठी थी। मस्तूल जो उसे उसकी सगी बहन ही मानता था, उसे यह बात जरा भी अटपटी नहीं लगी। लेकिन उसकी वह मनोहारी तनुलतिका, उसकी मिलनसार मुसकराहट, बोलचाल का आकर्षक ढंग देखकर मस्तूल का मन भी उसपर फिसलने लगा और उसके मन में यह उत्कट अभिलाषा मचलने लगी कि काश, यह रमणी इसी तरह उसके अंग से अंग लगाकर बैठे तो कितना अच्छा हो।

निर्जन और संकटमुक्त समुद्र प्रदेश में उस डोंगी के प्रवेश करते ही वह जलौघ पर सलीलया डोलने लगी, उसी तरह कंटकी का हृदय भी आनंदौघ पर डोलने लगा। पिंजड़े से उड़े हुए परिंदे को अपनी मुक्ति का असीम हर्ष होता ही है, उसका दिल बाग-बाग हो ही जाता है, पर उस बंदीगृह से मुक्त हुई मालती का हर्षोल्लास उससे भी कई गुना असीम था, क्योंकि पिंजरे से मुक्त पखेरू उस पेड़ पर जाकर बैठ जाता है पर उसके स्वकीय—अन्य पंछी—उसे वहाँ से भगाने का प्रयास करने लगते हैं। उसे एक निर्भय नीड़ लगे हाथ नहीं मिल सकता। लेकिन आजन्म कारावास से फुर्र हुआ यह जो पाँखी इस डोंगी में चुहचुहा रहा है, खिलखिला रहा है, उसे उसके इकलौते सखा ने, आप्त ने लगे हाथ अपनाया है। किशन के प्रणयासक्त स्नेह में इस पखेरू को एक मधुर नीड़ मिल गया है, जो उसे स्नेहमय संगत की प्रिय तपिश देता है। यह पखेरू—मालती मुक्ति के उल्लास में और किशन की संगत में इतनी तल्लीन हो गई कि उसे घड़ी भर के लिए इस यथार्थ का विस्मरण हो गया कि उसे कभी आजन्म कारावास का दंड भी हुआ था और अभी—इस क्षण भी उस सजा

की कृत्या उसके इर्दगिर्द मँडरा रही है। वह यह भी भूल गई कि फिलहाल वह कंटकी है या मालती। उसमें वह 'मालती' अदृश्य हो गई थी, जैसे खग्रास ग्रहण में चंद्रकला अदृश्य होती है। वही 'मालती' 'कंटकी' के अहसास के ग्रहण से मुक्त होते ही पुनः पूर्ववत् सुंदरा, सुभगा और सुखदा बनकर प्रकट हो गई। किशन उसे पूर्ववत् किशन ही प्रतिभासित होने लगा। वह 'डोंगी' सागर की सलिल लहरों पर ऊँच-नीच होते समय तनिक भी टेढ़ी हो जाती तो उस बहाने अपना पूरा संतुलन ही ढल जाने का प्यार भरा नाटक करके मालती अपने आपको किशन पर लुढ़का देती। किशन उसे अपनी बाँहों में सँवारते हुए आलिंगनबद्ध करता। इस प्रकार स्वच्छंद सुख का आस्वाद लेते-लेते उसमें मदहोश होकर उस नशे में डूबी मालती ने झट से छद्मता का वह आवरण हटाया जिसकी लपेट में वह अभी तक रह रही थी। असावधानी के साथ उसके मुँह से निकल गया—

"किशन, देखो, देखो, उस नन्ही सी लहर में सूरज की संझा किरणों का प्रवेश होते ही रंग-बिरंगे गुलाब पुष्पों के हार जैसी वह लहर सोहने लगी है। मेरा मन कर रहा है, अम्मा को यह अपूर्व शोभा दिखाने के लिए—कि समुद्र का विविध रंगी गुलाब पुष्पों का हार कैसा होता है—यह नन्ही सी खिली-खिली सी उत्फुल्ल ऊर्मि ज्यों-की-त्यों उठाकर ले जाएँ। अंदमान का एक अनूठा विहंगम दृश्य। ऐ किशन…"

वह आगे कुछ बोलने ही वाली थी कि सावधानी बरतने की खातिर कंटक ने उसकी छिगुनी दबाई। वह चौंक पड़ी, क्योंकि दो बार किशन को 'किशन' संबोधन करने से स्वाभाविक जिज्ञासा से मस्तूल ने पूछा, "क्या कहा? किशन? अर्थात् कंटक बाबू का असली नाम किशन है? और अभी तक आपकी अम्मा हैं? कहाँ हैं वह? कंटक बाबू का असली नाम जिस तरह किशन उसी तरह तुम्हारा असली नाम भी कोई दूसरा तो नहीं? कंटकी नहीं? सच है, तुम जैसी तितली का किसी फूल या किसी सुदंर-सलोने पखेरू का नाम होना चाहिए।"

मस्तूल अपने उजड्ड मुस्टंडे स्वभावानुसार जो-जो जी में आया, उद्दंडतापूर्वक बक गया। किशन मन-ही-मन चौंका। उसे इस बात का पूरा अहसास था कि अभी तक वे खतरे के चंगुल से बिलकुल मुक्त नहीं हुए हैं कि अज्ञातवास का अपना छद्म स्वरूप उतारकर फेंक दें। हास्य-व्यंग्य का धँसा हुआ काँटा हास्य-व्यंग्य के काँटे से ही निकालने के उद्देश्य से किशन मुसकराया, "भई, सिर्फ नाम के संबंध में ही चर्चा करनी है तो आपका यह 'मस्तूल' नाम भी कोई पालने में रखा हुआ तो नहीं लगता। आपसे मैंने आपका असली नाम अथवा वृत्त पूछा तब आप ही ने मुझे कौन सा सूत्र पढ़ाया था? 'काले पानी से जिन्हें सफलतापूर्वक

भागना है वे अपना पूर्व चरित्र यूँ ही दूसरों को बताना और जान की परवाह करना इन दो बातों का त्याग करें।' ठीक है। उसी उपदेश के अनुसार हम भाई-बहन तब तक अपने असली नाम आपको नहीं बताएँगे जब तक आप अपने झूठे नाम 'मस्तूल' का त्याग नहीं करते।''

''अर्थात् तुम लोगों के कंटक-कंटकी छोड़कर अन्य कोई असली नाम हैं न? यह तो तुम स्वयं ही उगल चुके। और तुम्हारा असली नाम 'किशन' ही…''

इस सारे झमेलों पर झट से पटाक्षेप करने के उद्‌देश्य से बीच में ही मालती ने कहा, ''नहीं जी। मैं मुक्ति के हर्षोल्लास से अभिभूत होने के कारण बावली हो गई थी। मेरे बचपन के एक रिश्तेदार का नाम मेरे मुँह में बैठ गया है। कंटक भैया को पुकारते समय वही नाम झट से होंठों से फिसल गया…''

परंतु इस गलती के अहसास के साथ-साथ एक और कटु सत्य का भी उसे अहसास हुआ कि उसे जो मुक्ति का आनंद हुआ है वह भी गलत है, एक भारी भूल है; यह मुक्ति, मुक्ति के प्रयासों का आरंभ है, न कि अंतिम सफलता। वह तनिक उखड़ी-उखड़ी सी बैठ गई। उसके बाद सागर की गहराई में उड़ते पंछी जैसी कभी उड़ती कभी बैठती वह डोंगी, जल की लहरें, रंग-बिरंगी किरणें और बंदीगृह से मुक्ति पाने के उन्मादपूर्ण अनुभव में वह मगन रही। लेकिन अब उसने इस बात पर गौर किया कि वह आनंदोल्लास नैया जिसपर तैर रही थी, वह सागर कितना गहरा है, कितना अथाह।

''बाप रे! कितना गहरा है यह सागर और कितनी सी है हमारी यह डोंगी।'' सागर की भीषण गहराई में झाँकती अन्यमनस्क भाव से मालती ने किशन से कहा…

''हाँ! लेकिन ऐसी पिद्दी सी नौकाएँ इस गहरे सागर को पार करके उस पार भी ले जा सकती हैं।'' किशन ने वही उत्तेजनापूर्ण उत्तर दिया जो उसका मन चाहता था।

''कितनी मधुर बातें, प्यारी-प्यारी बातें करते हो तुम।'' लाड़ भरे स्वर में किशन की पीठ पर हौले से एक धौल जमाती हुई मालती ने मराठी में कहा। उसका अनुमान था, मस्तूल मराठी क्या जाने? क्योंकि इतनी देर तक हिंदी में ही वार्त्तालाप जारी था, जैसे अंदमान में सभी करते हैं।

''भई, मेरी पीठ पर भी उसी तरह प्यार से थपथपाते हुए पूछा न तो मैं भी इसी तरह मीठी-मीठी मिश्री घुली बातें करूँगा।'' मस्तूल ने अपने फौजी तरीके से धृष्ट मजाक के साथ शुद्ध मराठी में कहा। इतना ही नहीं, निश्छल अपनत्व के साथ उसने मालती की पीठ पर भी एक हलका सा धौल जमाया।

मालती ने चौंकते हुए पूछा, ''जी? आप मराठी जानते हैं? आपका घरबार

महाराष्ट्र में ही है?''

''हाँ-हाँ! इस तरह एक-दूसरे से पूर्व वृत्तांत की पूछताछ नहीं करनी है जी! बस उतना ही सुनना है जो एक दूसरे से अपने आप कहे। कंटक बाबू का और मेरा इस तरह पहले से आपस में निर्णय जो हुआ है।''

इतने में निकट के सिंधुतट के पहाड़ से 'ऊँऽऽऽ ऊँ…' के ऊँचे स्वर में चीखों तथा तालियों की आवाज सुनाई दी। तुरंत ही कंटक और मस्तूल ने अपनी डोंगी का रुख उस तट की ओर किया। उनके रचे हुए षड्यंत्र के अनुसार ज्वार-भाटा के पीछे जो भी सुरक्षित स्थान होगा, वहाँ उतारने के लिए जावरे उस तरफ आनेवाले थे और इस प्रकार इशारे भी करनेवाले थे। उसीके अनुसार तीर-कमान से सुसज्जित पंद्रह-बीस जावरे किसी ढलान की ओट में ढलान के निकट आए थे। उस डोंगी के उधर पहुँचते ही उन्होंने कंटकी के साथ सभी को उतारा। घने जंगल में से घुमावदार चक्कर लेते-लेते अँधेरा छा जाते ही वे सब राजा नानकोबी की उस जंगली राजधानी में आ पहुँचे।

जावरे लोग एक बड़ा सा अलाव जलाकर उसके चारों ओर आग तापने बैठे थे। उस अलाव पर एक भारी-भरकम वराह उलटा टँगा हुआ था। सामयिक शिकार होने से उस प्राणी को इस तरह अलाव पर उलटा टाँगा जाता है। वह उसी तरह धुँधुआ और भूना जाने पर उसे निकालकर उसके आधे कच्चे मांस की बोटियाँ सब में बाँटी जाती हैं। यह भोजन समारोह समाप्त होने पर उस अलाव के चारों ओर सारे स्त्री-पुरुष एक साथ नग्नावस्था में नृत्य आरंभ करते हैं। आवश्यकता के अनुसार कभी तीन-चार अलाव भी जलाए जाते हैं और उसके इर्दगिर्द भोजन और नृत्य की भी अलग-अलग तीन-चार पंक्तियाँ होती हैं। इस निश्चित कार्यक्रम में ये तीन अतिथि उस साहसिक अभियान में सफल होकर जो लौटे थे, उससे एक और ही रंग जम गया था। वे सब उन तीनों को घेरकर शोर मचाने लगे।

उसमें भी जिस-तिसका ध्यान कंटकी की ओर लगा हुआ था। राजा नानकोबी को उस साहसी षड्यंत्र की जानकारी थी ही। कंटकी को अंग्रेजों के आजन्म कारागृह से सीधे छीनकर इधर लाने में अंग्रेजों के पक्के बंदोबस्त की शेखी की ही हेठी की और वह भी जावरों के आश्रितों ने जावरों की सहायता से। राजा नानकोबी इसे अपना ही गौरव समझकर इतराने लगा। उस विजय की ध्वजा कंटकी थी, उसे देखते-देखते तो उसका जी ही नहीं भरता था। लेकिन इन सबमें जावरों की स्त्रियाँ—बहू-बेटियों का तो जवाब ही नहीं। अलाव की गहरी, चटकीली, रोशनी में वे उसे अपनत्व भरी नजरों से देखतीं, मुसकरातीं, इशारे करती रहीं। उनका जमघट शोरगुल करता रहा। लेकिन उससे भी अधिक उन्हें जिसने आकर्षित किया था, वह थी

कंटकी की धोती। मालती को जावरों की विवस्त्र स्त्रियाँ बार-बार इशारे करने लगीं, 'यह क्या? उस स्त्री ने अपने बदन को यह क्या अशुभ लपेट लिया है? वैसे देखने में कितनी सुंदर है यह। लेकिन इस तरह शरमाकर कपड़ों में अपने आपको भला ऐसी ढक क्यों रही है? क्या पहना है इसने?' इस प्रकार नाना प्रश्न वे आपस में पूछने लगीं।

मस्तूल ने उनमें से एक स्त्री को उत्तर दिया, ''वह साड़ी है—इसे धोती भी कहा जाता है।'' उसके साथ वे सभी महिलाएँ मुँह पर हाथ रखकर बरबस हँस पड़ीं और नाक सिकोड़ती हुई भुनभुनाने लगीं, ''धत्! कभी कहीं स्त्रियाँ धोती पहनती हैं अलाह! लाज-शरम घोल के पी है, कोई मर्यादा है या नहीं।''

जावरों की उन विवस्त्र स्त्रियों को स्त्री का वस्त्र-परिधान करना जिस तरह अमर्यादा का प्रतीक लगा जो नारी को शोभा नहीं देता, उससे भी सैकड़ों गुना उन जावरा नारियों को बिलकुल नख-शिख नग्नावस्था में बिलकुल ही सहजता के साथ पुरुषों में घूमती हुई देखकर मालती को भी असीम लज्जा प्रतीत हो रही थी। उसने दो-एक बार तो आँखें ही बंद कर लीं। फिर नजरें झुकाकर खड़ी रही।

राजा नानकोबी तनिक असमंजस में पड़ गया। उसकी रानी फुली ने भी जिद पकड़ी, 'जब तक कंटकी इधर रहेगी, कम-से-कम तब तक तो वह धोती न पहने। उसका जीता-जागता आदर्श देखकर हमारी बहू-बेटियों को भी इसी तरह अनुचित शिक्षा मिलेगी।'

उन्हें कंटकी पर दया आ रही थी। उसकी यातनाएँ सुनकर, उसकी ओर देखकर सभी स्त्रियों के हृदय में आत्मीयता उपज रही थी। लेकिन उसके वस्त्र पहनने की अश्लीलता की उन्हें घिन लगती। राम-राम! कितनी निर्लज्जता! आखिर रानी फुली ने उसकी धोती का आँचल तनिक झटक दिया और ममत्व से संकेत किया, 'उतार दो यह वस्त्र और विवस्त्रता के आचरण की सभ्यता का पालन करो, जो नारी की शोभा है।' उस झटके से बचा हुआ आँचल सँवारकर मालती ने उसे अधिक ही कसकर पकड़ लिया।

अब सारा मामला हद से बढ़ने की आशंका से मस्तूल ने बीच में पड़कर सबकुछ मजाक में टाल दिया और सब स्त्रियों को आश्वासन दिया, ''कंटकी जन्म से ही वस्त्र पहनने की अभ्यस्त है। भला एकदम वह कैसे सुधरेगी? दो-चार दिनों में सभ्य-शिष्ट महिलाओं की तरह विवस्त्र रहने की उसे भी आदत पड़ जाएगी। तब तक शिष्टाचारों के लिए उसपर सख्ती न बरती जाए। सिर्फ पहनने के संबंध में ही नहीं, खान-पान, नाच-गाने के मामले में भी।''

□

प्रकरण–२१

किशन और मालती

"छोड़ो, छोड़ो न, छोड़ो न तीर। देखो खिसक गया न वराह उन झाड़ियों के झुरमुट से?"

किशन के इन शब्दों के साथ एक पेड़ पर छिपी हुई मालती के छोटे से धनुष से एक के पीछे एक तीर सनसनाते हुए निकलने लगे। वह वराह जिन झाड़ियों की झुरमुट में छिपकर बैठा था, उसके पीछे से एक लंबे भाले से किशन बड़ी देर तक उसे ढूँढ़कर बाहर निकालने का प्रयास कर रहा था। उस कष्ट से झल्लाते हुए आखिर वह वराह उन झाड़ियों से किशन की विपरीत दिशा से बाहर निकला और एक झपट्टा मारकर तीर जैसा आगे घुस गया। उसकी प्रतीक्षा में मालती उधर ही एक वृक्ष पर धनुष-बाण से सुसज्जित बैठी थी।

जब से वे लोग जावरों के जंगल में रहने लगे, तब से उनकी स्त्रियाँ जिस तरह स्वयं अपने पुरुषों के साथ मृगया के लिए जाती हैं, उसी तरह मालती भी प्रतिदिन किशन के साथ जाने लगी। जंगल निवास के पिछले तीन-चार महीनों में वह धनुष-बाण के उपयोग तथा मृगया में जावरा स्त्रियों जैसी ही निपुण बन गई थी। आज वराह की मृगया स्वयं करने का हठ पकड़ने के कारण किशन उसे पहला पाठ पढ़ा रहा था। वराह को ढूँढ़ते, टरकाते निशाने की सीमा में लाना, उसे उस तरफ ले जाना जहाँ वृक्ष पर मालती उसकी चौकसी कर रही थी, यह काम किशन के जिम्मे था। वह उसने चोखा किया था और झाड़ियों से वराह के तीर समान निकलते ही मालती ने उसपर तीरों की झड़ी लगा दी।

पहले दो बाण, जो उस भीमकाय बलवान जंगली सूअर में धँस गए, उन्हें मामूली, साधारण किरिच-काँटे समझकर उनकी संपूर्ण उपेक्षा करते हुए वह वैसे ही भागता रहा। इतने में कंटकी द्वारा अपनी पूरी शक्ति समेटकर चलाया हुआ अंतिम

तीर सीधे उसकी कोख में घुस गया। लड़खड़ाते हुए वह आगे बढ़ ही रहा था कि धड़ाम् से धरती पर ढह गया।

यह देखते ही मालती पेड़ से नीचे उतरी। दूर से भागे आते किशन को उसने बीच में ही टोका। जिस तरह पूरे अधिकार के साथ प्रजाजन से लगान ऐंठा जाता है—उसी अधिकार के साथ किशन से अपनी वीरता की प्रशंसा ऐंठने के उद्देश्य से उसने कहा, "क्यों जी, आज की न मैंने प्राणघातक मृगया?"

"भई, पेड़ पर की कहो, प्राणघाती नहीं," किशन मुसकराया, "जिसने पैदल फौजी बनकर उस हिंस्र जानवर को तुम्हारे सामने अनायास ही लाकर खड़ा किया, उसने जान का जोखिम उठाया। तुमने तो आराम से, मजे में पेड़ पर बैठने का काम किया; बस, बाकी कुछ नहीं।"

"अजी, बड़े तीसमार खाँ बने फिरते हो। रानी जब मृगया करती है तो उसके पास हँकवैए नियुक्त किए जाते हैं। बस, यही कहा जा सकता है कि तुम एक अच्छे हँकवैए हो। लेकिन भई शिकार तो उसीका होता है जिसका तीर होता है। उस वराह की कोख में गड़ा हुआ तीर मेरा है, अतः मृगया भी मेरी।"

"अच्छा बाबा, यह पूरा-का-पूरा अगड़धत्त वराह तुम अकेली साफ करो। अब तो खुश? वैसे तो अब मैं निरामिषभोजी बननेवाला हूँ। जिसे सूअर के गुण चाहिए वही सूअर गटके, मैं तो केला, आलू…"

"बिलकुल ठीक कहा जनाब आपने! जो अपने सिर में ढेर सारा गोबर भरना चाहता है, वही वह खाए।" मालती ने उसे बीच में ही टोका।

इतने में 'ऊँऽऽ ऊँ··ऊँ' जावरों की पुकारसूचक चीख सुनाई दी। पीछे मुड़कर देखा तो एक जावरा, जो किशन के अधिकार में काम करता था, भागा-भागा उनकी ओर आ रहा था। आते ही उसने रोने का स्वर लंबा खींचकर विचित्र स्वर में आँखें मल-मलकर और एक-दो शब्दों को मिलाकर जो संदेश दिया उसका पूरा वाक्य इस प्रकार होता— "बाबूजी, चलो, चलो आपको राजा नानकोबी ने रोने के लिए बुलाया है।"

"छीः! इसका मतलब? तुम्हे रोने के लिए बुलाया है—माने? वह रोना चाहता है तो जी भरकर रोए। हमें क्यों घसीट रहा है बीच में?"

"पगली, उसके अकेले रोने से काम नहीं चलेगा। उसका एक आप्त जावरा, जिसे कल मिरगी का दौरा पड़ा था, मर गया है। उसके पीछे शेष रहे लोग जितनी अधिक संख्या में एकत्रित होकर जितने ही अधिक ऊँचे स्वर में, दहाड़ें मार-मारकर रोएँगे, उतनी ही वह मृतात्मा तुष्ट होगी, उसका भूत शांत होगा, अन्यथा वह जीवित सगे-संबंधियों को कष्ट देता रहेगा। यही उनकी धारणा है। अतः किसीकी भी मृत्यु

होने पर वे सभी को रोने के लिए निमंत्रित करते हैं। अरे, दाँत क्यों निकाल रही है? हम लोगों की भी प्राचीन काल में यही धारणा थी। आज भी हमारी कई जातियों में किराए पर लोगों को—खासकर स्त्रियों को—बुलाकर रोने के लिए बैठाया जाता है जिन्हें 'रुदाली' कहा जाता है। 'मोले घातले रडाया। नाही आँसू, नाही माया।' अर्थात् मोल देकर रोने के लिए बुलाया है, उसमें न आँसू हैं, न ममता, न प्रेम। ईसाई, मुसलिमों में भी जो धर्मधारणा है कि लाशों को दफनाकर उनका जतन किया जाए, क्योंकि वे आगे चलकर उठनेवाली हैं, वह क्या जावरों की इस परलोक विद्या का ही पाठ दोहराती नहीं आई है? जावरे तो बस इतना ही मानते हैं कि मृतों के लिए जीवित लोग छाती पीटकर रो लें। लेकिन प्राचीन काल में मिस्र से जापान तक कई राष्ट्रों की यह धारणा थी कि मृत व्यक्ति का साथ देने के लिए जीवित सगे-संबंधियों को भी अपने आपको दफनाकर परलोक सिधारना चाहिए। मृत व्यक्तियों की जीवित पत्नियों, नौकर-चाकरों, दास-दासियों को भी कब्र में दफनाया जाता था। अच्छा…'' उस जावरे की ओर मुड़कर किशन ने उससे कहा, ''जाओ, नानकोबी से कहना, हम रोने के लिए आ रहे हैं। लेकिन ठहरो, देखो, यह वराह भी पीठ पर लादकर ले जाओ और नानकोबी से कहना कि हमारी ओर से तुम्हें यह उपहार दिया गया है।''

उस जावरे ने उस वराह को अपने खास तरीके से बाँधकर वह भारी-भरकम बोझ अपनी पीठ पर लादा और चला गया।

''कितनी थक गई हो रानी!'' किशन ने मालती को प्रेमपूर्ण दृष्टि से निहारा और उसका एक हाथ अपने हाथों में लेते हुए कहा, ''मालती, सुबह से मृगया की धुन में शिकार के पीछे-पीछे भाग-दौड़ करते-करते तुम पसीने से तर-बतर हो गई हो! लगता है, तुम्हारे कन्ने भी ढीले पड़ गए हैं—लेकिन इसी कारण तुम बहुत सुंदर लग रही हो। देखो, पसीने की ये निर्मल और धवल बूँदें मोतियों की बिंदी बनकर तुम्हारे माथे पर और यह गुलाबी मोहक ललाई तुम्हारे गालों पर कितनी सोहती है। आओ, तनिक मेरे पास बैठकर थोड़ी देर के लिए सुस्ताओ। फिर हम जावरों के पास जाएँगे।''

इस तरह उसे प्रेम से सहलाते हुए किशन एक कुरसीनुमा शिलातल पर टाँगें लटकाकर बैठ गया और अपने हाथ में लिये हुए उसके बाएँ हाथ को झटका देकर उसे अपने पास खींच लिया।

मनचाहा बहाना मिलने से मालती के दिल का कँवल खिल गया और खुशी से झूमती हुई वह हलके से किशन की गोद में जा बैठी। अपना दाहिना हाथ उसकी गरदन में लपेटकर, टाँगों से टाँगें जोड़कर उसने अपना मुखमंडल

उसकी विशाल-चौड़ी छाती पर टिकाया और आँखें मूँदकर धीमी-धीमी साँसें लेती हुई विश्राम करने लगी।

उसके माथे पर हलकी-हलकी लटों को कभी सँवारता, कभी उसके कपोलों को हलके से थपथपाता उसकी ओर प्रेमपूर्ण दृष्टि गड़ाकर और फिर उसके सिर पर अपना सिर टेककर आँखें मूँदता हुआ किशन भी अपनी प्रियतमा के प्रगाढ़ आलिंगन का सुखस्वाद लेने में लीन हो गया।

इस तरह मूर्च्छितावस्था में कुछ पल बिताने के बाद मालती ने अपने नेत्र खोले और उसकी छाती पर ही लेटे-लेटे अपना सुंदर-सलोना चाँद-सा मुखड़ा उसने किशन के चेहरे की ओर उठाया।

उसकी मौन प्रार्थना ही उसकी अभ्यर्थना थी। उसने मालती के ऊर्ध्व मुख का कोमलता से चुंबन ले लिया और उसने फिर से अपना सिर उसकी छाती पर टिकाकर नेत्र मूँद लिये।

मालती की मधुर मूर्च्छा टूटते ही वह उसकी गोद में ही, लेकिन उठकर सीधी बैठ गई। अपनी मूर्च्छा में ही उसके मन में जिस विषय की हलचल हो रही थी, उसीको उसने निरंतर जारी रखा। उसे प्रतीत हुआ कि उसके मन की चर्चा जैसे किशन को भी सुनाई दे रही है। उसने लाड़ भरे स्वर में पूछा, ''क्या यह सच है? लेकिन तुम्हें ऐसा नहीं लगता?''

''कैसा? मधुर? हाँ, महसूस तो होता है। मालती, तुम्हारे इस तरह के प्रेममय आलिंगन में मौत भी यदि जाने-अनजाने आ जाए तो वह भी मधुर ही प्रतीत होगी। फिर जीवन की बात ही क्या?''

''लेकिन सच बताऊँ, मैं क्या पूछने जा रही थी? आजीवन मैंने अपनी स्मृति में कोई भी अपराध नहीं किया, फिर भी मुझे सतत यातना, संत्रास, पीड़ा सहनी पड़ी। भाग्य के चक्कर से प्राप्त तुम्हारी प्रेमरम्य संगति का अनमोल सुख अधिक-से-अधिक सुख के लालच के कारण फिर से धोखे में ढकेलने का दुस्साहस मुझसे नहीं होगा। सचमुच किशन, मेरे विचार से अब अपनी जान खतरे में क्यों डाली जाए? यह अथाह सागर रद्दी किश्तियों की सहायता से पार करना—बलवान शत्रु के पहरे—सागर और धरती पर निरंतर हुए, उनसे कतराकर स्वदेश लौटने की आस लिये बैठना सोलह आने पागलपन तो नहीं? मानवता से परिपूर्ण जीवन जीने का अन्य कोई भी चारा नहीं था। तब चाहे जो साहस करना अनिवार्य था। परंतु अब यहीं पर तुम्हारे साथ स्वच्छंदतापूर्ण जीवनयापन किया जा सकता है, फिर इधर ही इन जावरों के आश्रय में इस जंगल में इसी तरह आजीवन मजे में क्यों न रहा जाए?

जिस गुफा में आजकल हम रहते हैं न, वह गुफा मुझे सुख-सृष्टि का

साक्षात् गोकुल प्रतीत हो रहा है। विश्व की कोई भी रानी अपने हीरे-जवाहरात तथा मखमली गद्दे-तकियों से सुसज्जित रतिमंदिर में मुझसे अधिक तुष्ट नहीं होगी। किशन, राजमहलों में भी राजे-रानियाँ आत्महत्या करती ही हैं न? मेरी अम्मा हमेशा कहा करतीं—आवश्यकता से अधिक आडंबर या प्रपंच हो तो उसका होना न होना बराबर है। सुख मात्र आडंबर या दिखावे में नहीं होता। सुख मन की तुष्टि में होता है। वह कहा करतीं—चाहे पचासों हवेलियाँ हों, तथापि आखिर उतने ही आकारमान के स्थान पर चिरनिद्रा लेनी होगी जितनी इस देह की लंबाई और चौड़ाई है। अस्थियाँ विपुल होने भर से देहवृद्धि नहीं की जा सकती। उसी तरह चाहे रसभीनी जलेबियों के ढेर-के-ढेर क्यों न लगे हों, भई उतना ही खाया जा सकता है जितना इस बलिश्त भर पेट के गड्ढे में समा सकता है। इसीलिए तो कहती हूँ, अब स्वदेश जाकर कौन सा अनूठा सुख मिलनेवाला है भला, जिसकी खातिर हम फिर से संकटों के सागर में कूद पड़ें? मुझे तो यहाँ किसी बात की कमी महसूस नहीं होती। किशन, मैं इधर तुम्हारी बाँहों में हूँ, जहाँ कहीं भी जाएँ, इस तरह आलिंगन सुख, बस इतना ही होगा। स्वच्छ, निर्मल जल इधर इस जंगल में भरपेट पीने के बाद पानी की धौंकनी बुझते ही जब कलेजा ठंडा होता है, सिंधु नदी पर जाने पर भी प्यास बुझने का सुख बस उतना ही होगा।

प्रात:काल में ही मृगया खेलते सागर तट पर अथवा जंगल में स्वच्छंदतापूर्वक संचार करें, थककर चूर हो जाएँ तो छाती पर सिर रखकर इस तरह विश्राम करें, परस्पर सहलाने का आनंद उठाएँ, फिर भूख लगने पर गुफा की ओर जाएँ और स्वादिष्ट मांस, मछली, फल, कंदों का यथारुचि आस्वाद लें; दोपहर में सिंधु-पुलिन पर जावरों की नारियों के खेल खेलते-खेलते, गाते-नाचते नानाविध रंग-रूप के शंख-सीपियाँ, पत्थर चुनते वनश्री एवं जलश्री का चमत्कार देखें और दिन भर इतस्तत: स्वच्छंद उड़ान भरते-भरते थके-माँदे पंछियों के जोड़े जब अपने-अपने नीड़ की ओर जाने लगें तो उन्हींकी तरह तुम्हारे हाथों में हाथ डालकर अपनी गुफा के गोकुल में वापस लौटें और तुम्हारी इन मजबूत बाँहों में सो जाएँ। प्रिय साथी का सुख तो मन द्वारा ही नापा जाता है। इस गुफा में अपनी रतिसेज पर वह जो तुष्टि देता है, वह गोकुल में भी उतना ही रहेगा। फिर अब यहाँ से आगे भागने के प्रयास में जान का खतरा अपने आपपर जबरदस्ती क्यों मोल लेते हो? हम जीवन भर यहीं पर रहेंगे, मेरे सुख-संतोष की शय्या के लिए वह गुफा पर्याप्त है।''

''हाँ, वह गुफा पलंग के लिए तो पर्याप्त है पर क्या पालने के लिए भी पर्याप्त है, महारानीजी! कल इधर पालना झुलाने की नौबत आ जाए तो?'' किशन ने उसे इस चुहल के साथ गुदगुदाया।

"धत् बेशरम कहीं का।" मालती ने बनावटी क्रोध में किशन के गाल पर एक हलकी सी चपत जमाई। पर वह स्वयं मुग्ध होकर बरबस मुसकराई।

"जो मैं कहती हूँ, उसे मजाक में टाल मत देना, हाँ।"

"नहीं सखी, मैं मजाक नहीं समझता। यह पूछते समय कि पुनः समुद्र में भागने का खतरा क्यों मोल लिया जाए, तुम यह भूल गईं कि अब भी हमारे इर्दगिर्द पुराने जानलेवा संकटों के बादल मँडरा रहे हैं। काले पानी के सरकारी अधिकारियों को अब तक इस बात का विश्वास नहीं हो रहा कि मैं भाग गया हूँ। उनकी अभी तक यही धारणा है कि शायद जावरों से मुठभेड़ में मारा गया हूँ। तथापि इसमें कोई संदेह नहीं कि दिन-दहाड़े बंदीगृह से तुम्हारा अपहरण किया गया। सरकारी विज्ञापन सब जगह लहरा रहे हैं कि उसे हजार-हजार रुपयों के इनाम दिए जाएँगे जो तुम्हें और तुम्हारे अपहरणकर्ताओं को पकड़ने में सहायता करेगा। चप्पा-चप्पा छाना जा रहा है। उनके गुप्तचरों और नौकाओं को अपना यहाँ का कुछ सुराग मिल गया तो? अथवा इन सैकड़ों जावरों में से भी एकाध को अंग्रेज फोड़कर घर का भेदी बना दे तो? इस तरह के उदाहरण कभी-कभी घटते हैं। इस तरह का बाँका प्रसंग आ जाए तो क्या अपने हाथों से अपनी जान लेना ही बंदीवास की भयंकर यातनाओं में फिर से सड़ने से लाख गुना अच्छा नहीं होगा?

इस संकट से समुद्र पार करने का साहस कम खतरे का है। उसपर यहाँ के ही बाशिंदे बने तो, हम पशु-पक्षियों के जोड़े समान ही जी सकेंगे, न कि मनुष्य प्राणी सदृश। स्वदेश की, मानवता की कुछ सेवा, कुछ ईशकार्य यदि हमसे नहीं होगा तो मानव जीवन की सार्थकता ही कहाँ रही? वह सार्थक कैसे होगा? और सुन सखी, उस नन्हे से ईशप्रेषित देवदूत को, जो तेरी कोख को यथाकाल कृतार्थ करेगा, उसे इन जावरों की तथा जंगली वराहों की संस्कृति, सभ्यता की दीक्षा देना चाहती है तू? अतः हमें स्वदेश जाना ही होगा, समुद्र पार करना ही होगा। उसपर जबसे हम काले पानी के बंदीगृह से भागे हैं, कम-से-कम पिछले तीन-चार महीनों में भाग्य भी हमारे अनुकूल होता जा रहा है। मस्तूल की वीरता ने उस नीच अधम रफीउद्दीन से अनायास ही प्रतिशोध लिया और तुम्हारे रास्ते का रोड़ा हट गया।

उस प्रच्छन्न शत्रु रफीउद्दीन को जिस कार्य के लिए हमें अपने साथ रखना पड़ा, उस समुद्र-तारण के कार्य में सहायता करने के लिए हमें मस्तूल मिला जो हमारा गहरा मित्र बन गया है। हमारे लिए वह अपनी जान पर भी खेल सकता है। नौ-विद्या में वह निपुण और बड़ा साहसी है। पिछले तीन-चार महीनों में वह अपने स्नेह, मित्रता की कसौटी पर कुंदन हो गया है। उसने काफी परिश्रम के साथ एक बढ़िया सी किश्ती बनाकर उसे सारी आवश्यक सामग्री से सुसज्जित रखा है। अब

हवा के अनुकूल रुख की प्रतीक्षा में वह रुका हुआ है। हवा के हमारे अनुकूल चलते ही हम तीनों सागर में किश्ती छोड़कर स्वदेश का रुख अवश्य अपनाएँगे।''

''परंतु उस मस्तूल के मन में मुझे लेकर जो दुराशा उत्पन्न हुई है, उसके मन में इस अभिलाषा का संचार हुआ है कि मैं उसकी पत्नी बनूँ। आज या कल उसका दुष्परिणाम आपसी मनमुटाव, वैर में तो नहीं होगा?''

''सहसा ऐसा नहीं होगा। क्योंकि यद्यपि उसके मन में तुम्हारे प्रति अभिलाषा भले ही हो, वह उस नीच रफीउद्दीन जैसी राक्षसी अभिलाषा नहीं है। हम जो भाई-बहन का स्वाँग प्रदर्शित कर रहे हैं, उसे ही वह सच मान रहा है और इसलिए तुम्हारी जैसी कुँवारी कन्या का हाथ माँगने की उसके मन में स्वाभाविक ललक उत्पन्न हो गई है। उसकी दृष्टि में तो तुम कुमारी कन्या हो। उसे जब हमारे असली संबंध का पता चलेगा...''

''तो फिर हंडा फोड़ क्यों नहीं देते? ऐ किशन, सच कहूँ? दिखावे के लिए भी तुम्हें भाई कहते मैं लाज के मारे पानी-पानी हो जाती हूँ।''

''भला वह क्यों?'' उसे छेड़ते हुए किशन मुसकराया।

''हिस्स! शर्म नहीं आती पूछते हुए? अजी, भला कोई अपने साजन को भाई कहता है कभी? जावरे लोगों में भी भाई-बहन का विवाह मानवता की रीति नहीं मानी जाती।''

''हो सकता है, जावरों में नहीं हुआ हो, लेकिन इसे ही सच मत समझ बैठना। मानवता के दायरे में भाई-बहनों में न केवल विवाह बल्कि अपरिहार्य परिस्थितियों में स्वच्छंद संभोग को भी धर्म्य माना गया है। साक्षात् गौतम बुद्ध का जन्म भी जिस कुल में हुआ था, उसकी कथा का कुछ ग्रंथों में इस तरह का वर्णन किया गया है—सूर्य कुलोत्पन्न एक राजकुमार और उसकी बहन को संकटवशात् एक निर्जन जंगल में जीवनयापन करना पड़ा। अत: भाई-बहनों ने आपस में विवाह किया और उन्हींकी संतानों की कोख से भविष्य में, कुछ पीढ़ियों के पश्चात् बुद्ध समान महात्मा का जन्म हुआ। राजकुल का रक्तबीज दैवी, ईश्वरीय माना जाता है। उसका साधारण मानवों से संबंध न हो, वह अपवित्र न हो इस तरह अतिरेकी आनुवंशकि पवित्रता को अक्षुण्ण रखने के लिए ब्रह्मदेश, मैक्सिको और कुछ अन्य देशों के भी विख्यात 'दैवी' राजवंशों के राजकुमारों का ब्याह उनकी सगी कोखजाया बहन के साथ ही होना अनिवार्य माना जाता है।

यही उनके लिए धर्माज्ञा थी, शिष्ट-सम्मत रूढ़ि थी। जिन समाजों ने देखा, इस धर्मपालन के दुष्परिणाम हो रहे हैं, उन्होंने इसे ही अधर्म घोषित किया। आज वर्तमान युग में भी हिंदू, मुसलिम, ईसाई आदि धर्मों में कहीं ममेरी बहन, कहीं

मौसेरी बहन; इतना ही नहीं, प्रत्यक्ष सगी चचेरी बहन से ब्याह रचाना अधर्म नहीं माना जाता, फिर हम लोग तो बस जान का खतरा टालने के लिए ही भाई-बहन के रिश्ते का बहाना बना रहे हैं।''

''सच, कल वह मेरी ओर निर्देश करते मुसकराते हुए क्या कह रहा था तुमसे?''

''अरी, वह मस्तूल वाकई एक फौजी आनबान का, खुले दिल का मनुष्य है। उसके मन में रंचमात्र भी छल-कपट नहीं है। कल वह किश्ती बढ़िया तथा मनचाही हो गई न, उसने बड़ी उमंग के साथ मुझे दिखाकर पूछा, 'इस किश्ती में बैठाकर तुम्हें और तुम्हारी उस सुंदर-सलोनी बहन को सही-सलामत अपने देश में पहुँचा दिया तो इस नाविक को किराए के तौर पर क्या दोगे?'

मैंने पूछा, 'बोलो, क्या चाहिए तुम्हें?' तब तुम्हारी ओर अँगुली से निर्देश करके उसने कहा, 'मुझे बस वह गोरी, वह मोम की पुतली चाहिए।'

मैं मुसकराया, 'मुझे कोई आपत्ति नहीं है। यदि तुम उसका मन जीत लेने में सफल हो गए तो उस पार पहुँचते ही तुम दोनों के हाथ पीले कर दूँगा।'

तब एकदम छाती ठोंककर मस्तूल ने जोर से ठहाका लगाया, 'वह काम मेरा। मेरे सीटी बजाने भर की देरी है, वह चिड़िया मेरे हाथ पर आकर नहीं बैठी तो मैंने अपनी माँ का दूध नहीं पिया समझो।' लगे हाथ उसने मुझसे वचन ले लिया कि यदि कंटकी राजी हो गई तो मैं उसे खुशी-खुशी मस्तूल के हाथ सौंप दूँगा।''

''वाह जी वाह! वाह रे तुम्हारा वचन!'' रूठी-रूठी सी उसपर आँखें तरेरती मालती फट पड़ी, ''सारी बुराई और दायित्व मुझे सौंपकर स्वयं घर फूँक तमाशा देख रहे हो? पर क्यों रे, अगर वह मेरी पाँवचप्पी करने लगे और मैं सचमुच उसके वश हो जाऊँ तो…''

''तो क्या? तुम्हारी मनोकामना पूरी करने के लिए, तुम्हें खुश रखने के लिए मैं अपने आपको सत्य ही तुम्हारा सगा भाई समझने लगूँगा और अपने हाथों से उसके साथ तुम्हारा ब्याह रचाऊँगा।''

फनफनाती हुई मालती झमाके के साथ उसकी गोद से उठने लगी तो उसका हाथ पकड़ते हुए उसे फिर अपनी गोद में बैठाकर किशन उसे सहलाने लगा, ''भई, अब इस तरह फौं-फौं क्यों कर रही हो? प्रश्न करते समय तुम्हारा कलेजा ठंडा हो रहा था? फिर जैसी करनी वैसी भरनी। मालती, सच कहता हूँ सजनी, तुम्हारी जैसी चाँद-सी सुंदर, गोरी-चिट्टी युवती को मेरे जैसा काला-कलूटा लंगूर तथा ऐसा साजन जिसमें एक भी विशेष गुण नहीं है, अनुरूप नहीं है, हमारी जोड़ी का मुझे पहले से ही अहसास है। मैं पहले से ही मन में यही सोचता आया हूँ कि मुझे बस

तुम्हारे स्नेह का लाभ मिल गया, तुम्हारी संगत में सेवक के रूप में भी मुझे रहने का सौभाग्य मिला तो मेरी योग्यतानुसार मुझे जो मिलना उचित है, वह सबकुछ मिल जाएगा। मुझसे अधिक अनुरूप वर चुनने के लिए तुम सर्वथा स्वतंत्र हो।''

''हाँ, यह हुई न बात। यदि मैं अपनी मरजी की स्वयं मालिक हूँ तो किशन, मेरे सजना, मैंने अपने मानदंड के अनुसार इसी प्रीतम को चुना है, न कि तुम्हारी दृष्टि अथवा मानदंड के द्वारा।''

गद्‌गद होकर मालती किशन से लिपट गई और उसकी छाती पर मस्तक रखे वह पल भर नि:स्तब्ध रूप से प्रेम के आँसू बहाती रही। फिर पुन: सिर ऊपर उठाकर व्यंग्यपूर्ण दृष्टि से किशन को निहारकर मुसकराई।

''किशन, तुम मर्दों को रूप-रंग का अहसास अधिक होता है, क्योंकि तुम्हारा प्रेम तुम्हारे नेत्रों में बसता है। लेकिन हम ललनाओं की प्रीत हमारे हृदय के नेत्रों से देखती है, इसलिए रूप-रंग पर वह नहीं जाती। पराक्रम और पौरुष की सुंदरता रंग-रूप से कितनी अधिक निखरी-निखरी, लुभावनी एवं आकर्षक होती है। यदि विश्वास नहीं होता हो तो स्वर्णगौरी सीता से पूछो जिसने मेघ के समान श्यामवर्णवाले प्रभु रामचंद्र का वरण किया, स्वरूपशालिनी रुक्मिणी से पूछो जिसने घननील साँवले-सलोने का वरण करते हुए शिशुपाल आदि गोरे-गोरे अभागे लंपटों को दुत्कारा। इसलिए तो ललनाओं का प्रेम रूप-रंग की चार दिन की चाँदनी पर लुब्ध नहीं होता। वह तो रूप-रंग के दो दिनों में ही सूखती घास की बजाय शील के आम्रतरु सदृश सरस, सुस्थिर एवं सफल होता है। रूप-रंग तो बस ओस के मोती हैं।''

''भई, कम-से-कम तो ऐसा ही होना चाहिए।'' किशन ने छेड़खानी करते हुए कहा, ''ललनाओं के आधे हृदय में उनकी प्रीत का निवास होता है, यह तुम्हारा विधान रुक्मिणी के उदाहरण से सच माना जाए तो इसी उदाहरण के अनुसार तुम्हें मेरे विधान को भी स्वीकार करना होगा कि ललनाओं के शेष हृदय में कपट का बसेरा होता है, क्योंकि रुक्मिणी का चोरी-छिपे किया हुआ पत्र-व्यवहार भी सर्वश्रुत ही है। अत: मेरी खातिर तुम मस्तूल को साफ ठेंगा मत दिखाना। उसके सामने निरंतर यही आशा बनाए रखो कि स्वदेश जाने के बाद तुम्हारी प्रेम-याचना को स्वीकार करूँगी। वह निश्चित रूप से शरीफ है, नेक है लेकिन एक निश्छल और तनिक बर्बर मुस्टंडा भी। अत: उसकी अनुनय भरी प्रेम-याचना को एकदम धिक्कार मत देना, क्योंकि स्वदेश जाने के बाद तुम्हारी प्राप्ति की उसकी आशा एकदम छूट गई तो न जाने हमारे समुद्रोल्लंघन के कार्य में दी जानेवाली उसकी साहसिक तथा तत्पर सहायता में कहीं ढिलाई न आ जाए। अच्छा, मेरा-तुम्हारा संबंध और पूर्ववृत्त

उसके सामने उजागर करें तो हमारे प्रेम के प्रति उसके मन में शक की आशंका भी हो सकती है।

और हम जिस हत्या के अपराध का दंड भुगत रहे थे, उस समय जिस संकट के लिए हमारे कंटक-कंटकी जैसे बनावटी नाम और बहन-भाई का बनावटी रिश्ता घोषित किया गया, ये बनावटी नाम एवं रिश्ता उजागर होते ही हमारे उन संकटों से पुनः घिर जाने की आशंका अब भी है। अत:. जब तक हम स्वदेश नहीं पहुँचते तब तक वर्तमान नाटकीय भूमिका वैसी ही बनाए रखना उचित है। स्वदेश पहुँचने के बाद मस्तूल के प्रेम का खुशी से इनकार करो। वह सज्जन है। दुर्जन बिलकुल नहीं जो जबरदस्ती अपना प्रेम तुमपर थोपे। लेकिन यदि वह बिगड़ गया और उसने हमसे वैर मोल लिया तो उधर उसका मुकाबला करना अथवा उसे झाँसा देना हमें सौ गुना अधिक सुलभ होगा। आज हमारा हाथ पत्थर तले दबा हुआ है। उसकी सहायता के बिना समुद्र पार करना हमारे लिए दुर्घट ही है। उद्‌दंड की संगत में जिसे जीना है, उसे आपद्धर्म को ही सद्धर्म मानना चाहिए।''

इतने में फिर से 'ऊऽऽ! कंटक बाबूऽऽ!' इस तरह की चीखें सुनाई दीं।

''उठो, उठो, देखो, जावरे पुनः बुलाने आ गए। अब उनके पास जाना ही होगा, समारोहपूर्वक गला फाड़-फाड़कर रोने के लिए।''

कंटक और कंटकी जावरों की पहाड़ पर स्थित उस गुफा में जब आए तब उस मृत जावरे का अंतिम संस्कार ऐन यौवन पर था। वह मृत जावरा राजा नानकोबी का एक विशेष स्नेही और जावरों का एक 'दादा' था, अत: उसके अंतिम संस्कारार्थ वे सारे जावरे वहाँ आए थे। उस अर्थी को बीच में रखकर महिलाएँ, बच्चे, पुरुष बिलकुल नंग-धड़ंग सब एक साथ उसके चारों ओर गोलाकार बैठ गए थे। उस मृतक की पत्नी और बच्चों का दुःख से विह्वल होना स्वाभाविक था, लेकिन प्रेत-संस्कारार्थ जब सभी लोग इस प्रकार उस लाश के ईदगिर्द सार्वजनिक शोक करने जमा हो गए तब उस दृश्य को देखकर और उस प्रेत संस्कार विषयक कर्तव्य का अहसास होने के कारण सिसकते-सिसकते वह अचानक दहाड़ें मार-मारकर रोने लगी—उसके साथ-साथ एक विशिष्ट स्वर तथा लय में सारे जावरों ने भी रोने का तार बाँध दिया। यद्यपि पहले-पहले मृतक-संस्कारांतर्गत एक कर्तव्य के रूप में वे रोने लगे तथापि सामाजिक भावनाएँ भी किसी संक्रामक रोग की तरह ही एक सामाजिक छुतहा रोग हैं। इसी कारण कर्तव्य के तौर पर वह सचमुच ही बिलख-बिलखकर रोने लगे। सभी के नेत्रों में आँसू छलक रहे थे।

उस सार्वजनिक आक्रोश पर नियंत्रण पाना कठिन हो गया था। इस दौरान उनमें जो बुजुर्ग थे, उन्होंने उस लाश की एक गठरी बाँध दी और उसे उठाकर सभी

लोग छाती ठोंक-ठोंककर पीटते हुए तथा एक ही सुर में विलाप करते, बिलखते हुए एक विशाल वृक्ष के पास गए। उस वृक्ष के ऊँचे हिस्से पर एक विशाल कोटर था। उसमें उस लाश की गठरी ऐसी स्थिति में बैठाई गई कि मानो वह व्यक्ति आलथी-पालथी लगाकर ऊर्ध्वमुखी होते हुए सजीव मनुष्य की तरह टुकुर-टुकुर ताक रहा है। बेचारे बौने, ठिगने जावरों के लिए वह वृक्ष इतना ऊँचा था कि उनमें से हर एक को वह लाश उस कोटर तक ऊपर उठाना दुर्घट प्रतीत हो रहा था। अत: मस्तूल ने स्वयं वह गठरी उस कोटर में बैठाई। जावरों के शव-संस्कार की इस विधि के चलते सभी लयबद्ध आक्रोश की चरम सीमा तक पहुँच गए थे।

इसके बाद उन जावरों ने अपने बदन पर खींची हुई माटी की रंग-बिरंगी शृंगारपूर्ण पट्टियाँ पोंछ डालीं। सभी ने सफाचट हजामत बनवाई थी और पुरुष सूतक के प्रतीक के तौर पर सिर्फ भूरे रंग की माटी ले आए और केश-रहित मस्तकों पर पोती। इसके बाद मृतक के अंतिम दर्शनार्थ सारे जावरे खड़े रहे। उनमें धार्मिक पुरोहित जैसा कोई नहीं होता। ऐसे समय पर जिस बुजुर्ग को नेता के रूप में चुना जाता है, वही रूढ़ि अनुसार सब संस्कार, क्रिया-कर्म करवाता है।

उस रिवाज के अनुसार उस दिन का बुजुर्ग नेता आगे बढ़ गया। अलग-अलग नियमानुसार चार-पाँच निश्चित शब्दों में भाव-भंगिमाओं को भरपूर जोड़ देकर उसने अपना जो भाव व्यक्त किया उसका शब्दांतर इस प्रकार होगा—

'अब अपने उस मृत आप्त के शव की ओर तीन मास तक कोई आँख उठाकर भी न देखे। उसके विजनवास को भंग किया तो उसका भूत क्रुद्ध होगा। उसका वह भूत उस ऊँचे कोटर में बैठकर हमेशा इस बात का निरीक्षण करता रहेगा कि कहीं हमें उसका विस्मरण तो नहीं हुआ, हम उसके प्रेम की वंचना तो नहीं कर रहे। इसलिए ये तीन महीने कोई भी साज-शृंगार अथवा आमोद-प्रमोद, विलास न करे। तीन महीनों तक नाच-रंग, गाना-बजाना बंद। रंगीन विलासी मिट्‌टी का नखरा बंद। केवल भूरी मिट्‌टी का लेप बदन पर किया जाए।' (क्योंकि जो जहरीले मच्छर जंगल में नंगे जावरों को डसते हैं, उनसे देह के रक्षार्थ किसी भी मिट्‌टी का लेप आवश्यक होता है।)

एक विशेष स्वर में सभी जावरों ने इस आदेश को स्वीकृति दी और वे सभी अपनी गुफा में वापस लौटे।

किशन और मालती भी अपनी स्वतंत्र गुफा की ओर चल पड़े। उन्होंने अनुरोधपूर्वक मस्तूल से अपने साथ चलने की प्रार्थना की।

इस समय मस्तूल को इस दर्शन का नशा सा चढ़ गया था। मालती पर अपनी विद्वत्ता का तुनतुना बाँधने के उद्‌देश्य से वह जावरों के प्रेत-संस्कारों के बारे में रास्ते

भर चर्चा करता रहा—

"देखो, मृत व्यक्ति के संबंध में प्रीति और भय इन दो भावनाओं पर ही इनके सारे प्रेत-संस्कार उभारे गए हैं। हमारे वैदिक प्रेत-संस्कार, और्ध्व दैहिक और सूतक श्राद्ध इन धर्मशून्य और बर्बर जावरों के जंगली प्रेत-संस्कारों के ही धार्मिक संस्करण हैं। हिंदू, ईसाई, मुसलिम सभी धर्मावलंबियों के सारे प्रेत-संस्कार आमतौर पर मृतविषयक प्रीति और भय पर ही उभारे गए हैं। देखो कंटकी, किस तरह तुम बीच-बीच में इन प्रेत-संस्कारों पर ही हँस रही थीं? लेकिन मैंने यदि यह सिद्ध किया कि उनके जंगली और मूर्खतापूर्ण प्रेतविषयक रीति-रिवाजों की प्रतिध्वनि उन प्रेत-संस्कारों में उभरती है जिनका हमारे प्रगत वैदिक-ईसाई-मुसलिम प्रभृति ईश्वरोक्त धर्म के रूप में आडंबर रचाया गया है—तो तुम मुझे क्या दोगी, बोलो? आदिम मानव, शव भूत-पिशाच बनकर न उठे इसलिए उसपर पत्थरों का ढेर लगाता है। उसी कल्पना से ईसाई-मुसलिमों के कब्रिस्तान, भव्य कब्रें और पिरामिडों का जन्म हुआ। मृतकों की नौका वैतरणी तरण में समर्थ हो इसलिए…"

"बस, भई, बस भी करो अपनी यह दार्शनिक चर्चा।" यह देखकर कि दर्शन की मझधार में अब यह धो-धो बहता ही जाएगा, किशन ने मस्तूल को बीच में ही टोका, "मृतकों को वैतरणी पार ले जानेवाली नौकाओं की जानकारी दोगे तो अधिक उपकार होंगे। वैतरणी का मृतसागर लाँघने के लिए मरणोपरांत हमारे शवों को कोई-न-कोई नौका कहीं भी मिलेगी। न भी मिले तो उस समय देखा जाएगा। लेकिन उस सिलसिले में बताओ, जो आज जीवित रूप में काले पानी का समुद्र पार करने के लिए उपयुक्त नौका तुम बना रहे थे। जो किश्ती तुमने मुझे परसों दिखाई थी, उसे समुद्र में कब उतारना है? परसों तुमने कहा, अब सारी पूर्व तैयारी पूरी हो गई, अँ? लेकिन फिर भी आगे ही ढकेल रहे हो। अब बोलो, जान की नौका संकट सागर में कब ढकेल रहे हो? बिलकुल निश्चित दिन बता दो, भाई! फिर चाहे भगवान् रखे या डुबो दे। लेकिन अब एक दिन भी केवल भयवश पीछे नहीं रहना। बोलो, दिन बोलो।"

"बिलकुल निश्चित दिन बताता हूँ। तीन महीने और तीन दिन समाप्त होते ही जो दिन निकलेगा, उसी दिन सागर में किश्ती छोड़ूँगा।"

"बाप रे बाप! भला वह क्यों? अब इतना विलंब क्यों? परसों तो कह रहे थे कि पूरी तैयारी हो चुकी है। अब ऐसे ज्योतिषी ठाठ से क्यों कह रहे हो कि तीन महीने तीन दिन! कहीं मुहूर्त आदि देखने की सनक तो सवार नहीं हुई तुम्हारे सिर पर?"

"न, न। इस मस्तूल का मुहूर्त वही होता है जिस दिन तैयारी पूरी होती है।

लेकिन मुहूर्त की सनक भले ही छोड़ दें, हमें दो लहरों का तो अवश्य खयाल रखना होगा। एक इस सागर की सनक और दूसरी राजा नानकोबी की सनक। राजा नानकोबी ने आज ही मुझे आगाह किया कि तब तक नैया नहीं खेना, जब तक इस मृत जावरे का अशुभ काल समाप्त नहीं होगा। इस जावरे का अशुभ तीन महीनों में समाप्त होगा। उसके पश्चात् वे हमारे लिए दो-तीन दिनों बाद अपनी डोंगी सहायतार्थ देकर उस सागर तट के निकट एक ओर से राह निकालने के लिए अपने पहरे में हमारी किश्ती भरे समुद्र में छोड़ने में सहायता करेंगे। अनुकूल हवा और सागर भी उसी अवसर पर सहयोगी हो सकेंगे। भई, इसके लिए रुकना अनिवार्य है। अरे पगले, तुमने इस तरह सोचा ही कैसे कि स्वदेश लौटने की जितनी उतावली तुम्हें है, उससे कम मुझे होगी? तुम्हें तो यूँ ही उतावली हो रही है, पर मुझे तो भाँवरें पड़ने की भी उतावली है। क्यों कंटकी, सच है न? कंटक ने नैया उस पार पहुँचाने के उपलक्ष्य में जो दाम निश्चित किया है, उस हुंडी का भुगतान होगा तुम्हारे प्रेम के सर्राफे पर। हाँ!'' धृष्ट उजड्डता के साथ मस्तूल ने कंटकी के गाल पर हलका सा आघात किया।

''परंतु काम होने पर दाम का प्रश्न ही नहीं उठेगा। माँझी यह न भूले कि कंटक की दी हुई हुंडी का भुगतान तो सर्राफे पर बाद में ही होगा।'' मालती ने इस चालाकी के साथ जाल फेंका कि मछली को सिर्फ मांस का प्रबोधन ही दिखाई दे।

□

प्रकरण–२२

भाई-बहन का मिलन

'किशन, ओ किशन!' अपनी गुफा के द्वार के पास मुँह लटकाकर मालती ने मन ही मन तीन-तीन बार आवाज दी। फिर अपने आपसे दबी आवाज में फुसफुसाकर कहने लगी, 'न जाने कहाँ चला गया बातें करते-करते। तड़के ही चला गया और अब घड़ी भर दिन रहने पर भी उधर ही उलझा हुआ है जावरों के पीछे। अँ? लेकिन यह कौन आ रहा है उस बाँस के झुरमुट से? बाँस की ही तरह लंबा-तगड़ा। मस्तूल। और कौन होगा भाई? मेरी मनुहार करने में कितनी एड़ी-चोटी एक कर रहा है बेचारा! इतना स्नेहशील तथा ईमानदार आदमी है कि वाकई मुझे उसपर तरस आता है। पर क्या किया जाए? उसके प्रेम को मैं न तो स्वीकार कर सकती हूँ, न ही अस्वीकार। आज कितने महीने हुए, सुबह होते ही इस जंगल के ताजा-ताजा फूल और ताजा शहद का उपहार मुझे देना एक बार भी उसे विस्मरण नहीं हुआ। उसे जो यह मोह हुआ है कि मैं उसे पति मानूँ, उसे छोड़कर यदि वह मुझसे यह अनुरोध करे कि 'तुम मुझे अपना भाई समझो' तो मैं अभी इसी क्षण उसे राखी बाँधूँगी, क्योंकि कुल मिलाकर वह सचमुच ही मुझे प्रिय लगने लगा है।'

मालती स्वगत इतनी बात कर ही रही थी कि मस्तूल गुफा के पास पहुँच गया। उसके हाथ में वहाँ के सिंधु-पुलिन जिसके लिए विख्यात हैं, उस जाति का एक सुंदर शंख था जिसमें गुलाबी छटाएँ थीं और जिसे तराश-तराशकर ऊपर बेल-बूटियों से सुशोभित किया गया था। उसके दूसरे हाथ में हरे-भरे पत्ते के दोने में ताजा फूल थे। उधर जंगल में विपुल मात्रा में शहद के बड़े-बड़े छत्ते थे। उन छत्तों को गिराकर देखते-देखते जी भरकर ताजा मधु मुहैया करना जावरों का बाएँ हाथ खेल था। उसी तरह भरपूर ताजा मधु मस्तूल उस शंख के कुप्पे में भरकर जो लाया था, वह उसने कंटकी को दे दिया। कंटकी ने उसे गुफा में रख दिया। फिर उसने उसे

ताजा-ताजा फूल दिए। कुछ फूल अपने हाथों से उसकी बाँहों में लगाने के उद्देश्य से उसने अपना हाथ आगे बढ़ाया। हाँ-ना करते उसने उन्हें टाँकने दिया। शेष फूलों का दोना दोनों हाथों से पकड़कर उन्हें सूँघते हुए, उनके रंगों में रँगकर मालती ने कहा, ''आहा! कितने सुंदर फूल हैं। बहुत-बहुत धन्यवाद।''

''पर कंटकी, एक और फूल इस जंगल में खिला है जो इन सभी फूलों से सुंदर है पर अभी तक वह मेरे लिए गूलर का ही फूल है।''

''क्या नाम है उसका जो इतना सुंदर है?''

''तुम्हारी सुंदरता का फूल। कंटकी⋯'' मस्तूल ने उजड्डता से अपना मजबूत हाथ उसकी कोमल ठोड़ी को स्पर्श करने के लिए आगे बढ़ाया।

''धत्!'' अपनी ठोड़ी हटाकर, स्वयं भी तनिक पीछे हटकर लेकिन नाराज न होते हुए कंटकी ने उत्तर दिया ''आहा! यद्यपि वह फूल सागर के इस अंदमानी किनारे के जंगल का है, तथापि हाथ में आ सकता है, सागर के उस पार भारतीय तटस्थित जंगल में।''

''इसी आस में तो साँस ले रहा हूँ, और मेरी बनाई किश्ती भी यदि तैरेगी तो इसी आस पर ही तैरेगी। चलो अब सिर्फ तीन दिन शेष रहे। आज जावरों का तीन महीनों का वह सूतक समाप्त होनेवाला है। अभी हमें उधर ही चलना है। उसके समाप्त होते ही नरसों हमने अपनी साहस की नैया समुद्र में ढकेल ही दी समझो। हवा जो हमें स्वदेश की ओर ले जाएगी, बड़ी अनुकूल बह रही है। इतने पर भी भगवान् मालिक है।''

''भगवान् भला ही करेंगे। आज मुझे ऐसा ही एक शगुन हुआ है कि अब मुझे इसमें संदेह की कोई गुंजाइश नहीं लग रही। कंटक भैया को मैंने सवेरे ही बता दिया था।''

''भला क्या है वह शगुन? मुझे नहीं बता सकोगी? शगुन सत्य होते हैं जी!''

''बताती हूँ। देखिए, कल रात अपनी प्रिय अम्मा को मैंने सपने में देखा। अंदमान के इस सागर के, इस काले पानी के उस पार के तट पर हमारे देश के किनारे जैसे वह खड़ी है। अपने दोनों हाथ फैलाती हुई कह रही है, 'आ बेटी आ। मेरी बाँहों में समाकर मुझे प्रगाढ़ आलिंगन दे। कूद पड़ो। हाँ, हाँ, डरो नहीं, मैं हलके से तुम्हें सँभाल लूँगी।' अम्मा की बात सुनते ही मैंने इस तरह छलाँग लगाई कि सागर यों पार किया जैसे एक साधारण जलधारा को पार किया जाता है, और फिर झट से अम्मा की बाँहों में समा गई। इतने में पता है क्या हुआ? एकदम पटाक्षेप, दृश्यांतर होकर अपने घर के झूले पर मैं अम्मा के संग झूलने लगी और अम्मा मेरी प्रिय

ओवियाँ गाने लगी। सच कहती हूँ मस्तूल, जबसे मैंने यह सपना देखा है मेरे सब्र का बाँध टूट रहा है। अम्मा को देखने के लिए मेरी आँखें तरस रही हैं। उनकी ओवियाँ मेरे कानों में गूँज रही हैं। उनसे मिलने के लिए मेरा मन बहुत अधीर हो गया है।'' कंटकी सिसकने लगी।

''चुप रहो, चुप रहो। देखो, ऐसे दिल छोटा नहीं करते। तुम अपनी अम्मा की स्मृति से विह्वल हो जाती हो न, उसी तरह अपनी अम्मा की स्मृति होने से मेरा जी बिखर जाता है। हाय! मेरी अम्मा और मेरी एक नन्ही सी, प्यारी-प्यारी सी गुड़िया—दस-बारह साल की मेरी बहन। मैं ही उनकी एकमात्र अंधे की लाठी था। वे भी इसी तरह मेरी प्रतीक्षा में आँखें बिछाए बैठी होंगी। मैं भी इसी तरह उनसे बिछुड़ गया हूँ। उनसे मिलने के लिए मेरा जी मचल रहा है।'' कहते-कहते मस्तूल का गला भर आया और नेत्रों से आँसुओं की झड़ी लग गई।

लंब-तड़ंग, रूखा, अड़बंग मस्तूल इस तरह गद्‌गद हो गया जैसे कोई ऊँची खुरदरी, अभेद्य, चट्टान झरझर झरने लगे! यह देखकर कंटकी के हृदय में उसके प्रति कौतूहल उमड़ आया। पल भर उसकी ओर उसी तरह टकटकी बाँधते हुए उसने जिज्ञासावश पूछा, ''आपकी छोटी बहन तो अब सयानी हो गई होगी।''

''इतनी बड़ी तो नहीं हुई होगी। होगी करीब बीस के आसपास। उससे छेड़खानी करनी हो तो मैं उसे इस तरह दोनों हाथों पर पलने की तरह उठाकर तब तक गिरगिरी की तरह घुमाता जब तक वह चीखना शुरू न कर दे। अब भी जब मैं उसे मिलूँगा न, तब पहले सपाटे में उसी तरह हाथों पर लेकर तब तक लट्टू की तरह चक्कर लगवाऊँगा जब तक उसका सिर न चकरा जाए और अम्मा का पारा न चढ़ जाए। भले ही वह बीस वर्ष की क्यों न हो पर मेरी इस अंजुली में ही समा जाएगी। तुम्हारे भाई ने पूरे जन्म में तुम्हें इतना लाड़-प्यार किया है कभी।''

''सच कहूँ?'' उमड़ते भावनावेग में मालती के मुँह से निकल गया, ''मेरा इकलौता स्नेहमय भाई था…''

''अर्थात्?'' मस्तूल ने तपाक् से पूछा, '' 'था' का अर्थ क्या है? फिर यह कंटक कौन है तुम्हारा?''

इस प्रश्न के साथ ही मालती इतनी बौखला गई कि उसका रंग फक पड़ गया। इतने में ही कंटक भी वहाँ आता हुआ नजर आ गया। अत: उस विषय पर उसने बड़ी सहजतापूर्वक परदा गिराया, ''अरे वह देखो। नाम लेते ही महाशय उपस्थित। सौ-सौ साल जियो मेरे भैया।'' हँसते हुए दौड़कर वह कंटक से लिपट गई।

''वाह मस्तूल! भले मानस, कंटकी को लेते हुए तुरंत उधर आने के लिए

मैंने तुम्हें इधर भेजा तो तुम यहाँ गप्पें हाँकने बैठ गए। सूतक उतारने के संस्कारार्थ सारे जावरे उधर निकल चुके हैं। राजा नानकोबी कब से हमारी प्रतीक्षा कर रहा है। चलो, जल्दी करो।''

''बिलकुल नहीं, कंटक बाबू! यह ताजा शहद जो मैं लाया हूँ, जब तक इसका प्राशन नहीं करेंगे तब तक एक कदम भी आगे नहीं बढ़ाएँगे, कहे देता हूँ। कंटकी, तनिक वह शहद ला तो सही।''

मस्तूल के अनुरोध को स्वीकार कर मालती शहद लेकर आ गई। उसने ताजा हरे-भरे पतों पर उस सुडौल शंख की झारी से शहद परोसा और इस तरह उस मधुर कलेवे से निपटकर वे तीनों जल्दी-जल्दी जावरों की गुफा की ओर चल पड़े।

जावरों के हिसाब से तीन महीने का सूतक आज समाप्त हो रहा था। उनके उस मृत स्वजन के अंतिम और्ध्व दैहिक संस्कार करने के लिए तमाम स्त्री-पुरुष के झुंड-के-झुंड उस वृक्ष की ओर चल पड़े थे, जिसके कोटर में तीन महीने पूर्व शव की गठरी बाँधकर बैठाई गई थी। उन्होंने अपने बदन भूरी मिट्टी से पोते हुए थे। वे दहाड़ें मार-मारकर एक ताल पर रोते-बिलखते जा रहे थे। भीमकाय विशाल वृक्ष के आते ही वे रुक गए। फिर मस्तूल उस ऊँचे कोटर से वह गठरी नीचे ले आया। वर्षा, हवा, धूप, धूल, गिद्ध इन सभी के सम्मिलित करतब से उस गठरी में बँधे शव का मांसल हिस्सा पिछले तीन महीनों में नष्ट हो गया था। मात्र अस्थिपंजर ही शेष था। उसे बीचोबीच रखते हुए जावरों के नेता ने उसकी गरदन मरोड़कर तोड़ दी। फिर उसने खोपड़ी का पंजर हाथ में लेकर ऊपर उठाया। उस मृत व्यक्ति की विधवा आगे बढ़ आई। उसके फैले हुए हाथों में उस नेता ने उसके पति की खोपड़ी डालते हुए कहा, ''यह ले तेरा हिस्सा।''

उस विधवा ने खोपड़ी को धो-पोंछकर साफ-सूफ किया, उसमें छेद किए। उन छेदों में एक रस्सी पिरोई और सबके समक्ष उस खोपड़ी के अस्थिपंजर को गले में बाँधकर अपनी पीठ पर डाल लिया। हमारे यहाँ कुछ जातियों में जिस तरह विधवा का निशान केश-वपन और काषाय वस्त्र होता है और अंग्रेजों में वैधव्य की निशानी एक काला प्रावरण आँचल की तरह सिर से लपेटकर पीठ पर छोड़ा जाता है, उसी तरह जावरों में विधवा, जब तक वह वैधव्य दशा में रहती है, तब तक, अपने मृत पति की खोपड़ी गले में बाँधकर पीठ पर रखती है। यदि वह पुनर्विवाह करती है तो केवल दूसरे पति को ही उसके गले से वह खोपड़ी निकालने का अधिकार होता है।

उस विधवा को मस्तिष्क पंजर सौंपने के बाद मृतक का कबंध अर्थात् बिना सिर के धड़ पोर-पोर कुचलकर तड़ाक् से तोड़ दिया जाता है—एक-एक हड्डी

को अलग किया जाता है। उनमें से कुछ अस्थियाँ मृत व्यक्ति के बच्चों को उनके हिस्से के रूप में सौंपी गईं। कुछ खास आप्त संबंधियों, सगे-संबंधियों को हिस्से के रूप में दी गईं। शेष सारी अस्थियाँ जावरों में जो टोटकेवाली महिला थी, उसने; अपने सामने ढेर रचाकर चुन-चुनकर आखिरकार उनका तीन हिस्सों में बँटवारा किया। एक जंगल के भूत-प्रेत का उतारा, एक अग्नि का, और तीसरा सागर का। जिन्हें जिस भूत-प्रेत के टोटके की आवश्यकता थी, उन्होंने क्रमश: उस अस्थि का टुकड़ा हाथ में थाम लिया। मृत व्यक्ति की अस्थियों के विभिन्न अलंकार, माला, ताबीज बनवाकर जावरे स्त्री-पुरुष गले में अथवा बदन पर पहनते हैं। उनका विश्वास है कि उसके द्वारा भूत-प्रेत से उनकी रक्षा होती है। उसपर वह मृतक यदि कोई प्रतिष्ठित तथा महान् व्यक्ति हो तो उसकी एकाध अस्थि का प्रयोग करने का अधिकार प्राप्त होना गौरवमय माना जाता है एवं गुण विशेष मृत व्यक्तियों की अस्थियाँ मित्रों तथा अतिथियों को सम्मानपूर्ण उपहारस्वरूप दी जाती हैं।

मस्तूल राजा नानकोबी का अत्यंत प्रिय मित्र और सहयोगी था। उसे सम्मानित करने के लिए उन अस्थियों में से एक अच्छी छोटी सी अस्थि उठाकर राजा नानकोबी ने सम्माननीय उपहारस्वरूप मस्तूल को दी और हाव-भाव, संकेत, शब्द मिला-जुलाकर उसे आश्वासन दिया कि अब तुम्हें सागर से कोई भय नहीं है। यह सही-सलामत आप लोगों को स्वदेश पहुँचाएगी।

मस्तूल के मन पर उस भयानक शव का मस्तक, कबंध, अस्थियाँ, जोड़ों के तड़ाक्-तड़ाक् तोड़-फोड़ करने के आम संस्कारों का कुछ तो गंभीर प्रभाव पड़ा ही था। उसपर उस टोटकेहाई ने जावरी भाषा में उसे टूटे-फूटे शब्दों में संकेत किया—

"इधर। जुरुबिन। अस्थि, मंत्र।" अर्थात् इधर आ जाओ, सागर के भूत-पिशाच 'जुरुबिन' पर तुम्हें एक मंत्र बताती हूँ। उसका उच्चारण करने के बाद उस अस्थि को गले में बाँधना चाहिए।

अपने ठिगनेपन के कारण प्राय: सभी जावरा ललनाएँ ज्यों-त्यों करके मस्तूल की कमर तक ही पहुँचतीं। अर्थात् उस डायन के मुँह के पास कान सटाकर सुनने के लिए मस्तूल को नीचे ही बैठना पड़ा। फिर उसने एक विचित्र मुद्रा में और भयातुर की तरह हाव-भाव किया जैसे उसके शरीर में किसी देवता या प्रेत का आवेश आया है और उसने मस्तूल के कान में फूँक मारी। हमारे यहाँ ओझा जिस तरह होम-हुम-होम जैसे अर्थशून्य एकाक्षरों का उच्चारण करते हैं, बिलकुल वैसे ही उसने कई बार एक निरर्थक एकाक्षरी मंत्र का उच्चारण उसके कानों में फूँका। जावरों के व्यवहार करते-करते मस्तूल स्वयं भी एक जावरा ही बन गया था। उसके भोले-भाले धर्मभीरु मन का उन मंत्र-तंत्रों और अस्थियों के टोने-टोटकों पर अटल

विश्वास था।

सूतक पूरा होते ही जावरों ने बड़े चाव से शुभ शृंगार करना आरंभ किया। उन्होंने बदन पर पोती हुई भूरी मिट्टी धो डाली। पुरुषों ने लाल, पीले, गेरुए, धवल मिट्टी की सुंदर, सुहावनी पट्टियाँ अपने बदन पर खींचीं। सुहागन ललनाओं ने अपने-अपने साजन अथवा सखी से शीशे के नुकीले टुकड़ों से अपने बढ़े हुए बालों को मुँड़वाया, ताकि उनके सिर अच्छे और चिकने दिखाई दें। हमारे यहाँ तीज-त्योहार के दिनों एक-दूसरी की कंघी-चोटी करने में सुहागन नारियाँ जिस तरह निमग्न होती हैं, उसी तरह बिलकुल नख-शिख विवस्त्र सुहागन जावरा स्त्रियों तथा कुमारियों के झुंड एक-दूसरी की चिकनी-चुपड़ी चंदिया मुँड़वाकर अपना सोलह-सिंगार संपन्न करके हँसने-खिलखिलाने बैठ गईं। फिर उन्होंने मूँगे अथवा रंगीन सीपियों की अथवा मृत व्यक्ति की अस्थियों की मालाएँ पहनीं। विधवा स्त्रियों ने अपने-अपने मृत पति के कपाल और अस्थियों की मालाएँ धारण कीं। इस प्रकार सभी का सोलह-सिंगार पूरा होने के बाद सूतक के कारण पिछले तीन महीनों से उनकी नृत्य की ललक जो बरबस दबाई गई थी और उसकी पूर्ति के लिए सूतक पूर्ति का जो विशाल संघ-नृत्य आज सिंधु तट पर संपन्न होना था, उधर वे तमाम विवस्त्र बाल-वृद्ध-स्त्री-पुरुष एक साथ जाने लगे और इधर राजा नानकोबी से यह कहते हुए कि 'हम नृत्य करने थोड़ी देर में आ ही रहे हैं' कंटक-कंटकी मस्तूल के साथ अपनी गुफा की ओर जाने लगे।

गुफा के निकट आकर वे उधर ही एक शिलाखंड पर बैठ गए। फिर कंटकी नानाविध फल, कच्चे नारियल, शहद और भुना हुआ गोश्त ले आई। भूख के मारे वह वन्य भोजन उन्होंने चटकारे ले-लेकर साफ किया।

''चलो, जंगल की मिठाई और दो दिन के लिए ही रह गई है। परसों वनभोजन का समापन हो जाएगा और सागर भोजन शुरू होगा।'' मस्तूल ने कंटक की पीठ पर एक धौल जमाते हुए उसे आश्वासन दिया।

''और यदि ईश्वर की कृपा रही तो अगले महीने इस समय हम अपने देश में अपने ही घर अपने प्रियजनों के साथ हँसते-खेलते स्नेह भोजन का आनंद उठा रहें होंगे।'' कंटक ने कंटकी की पीठ को प्यार भरे आश्वासन के साथ थपथपाया।

''ऐसा क्यों कह रहे हो भाई, भगवान् की कृपा हो तो?'' मस्तूल ने उमंग भरे स्वर में कंटक को टोका, ''भगवान् की कृपा तो आज हो ही चुकी। कंटक बाबू, मैंने किश्ती अच्छी बनाई है, पुलिसिया वस्त्र, बंदूकें, बारूद, सारी तैयारी की है। जावरों के कुशल नाविकों की डोंगियाँ दूर-दूर तक साथ आएँगी। किश्ती में मांस, शहद, फल, मदिरा, भरपूर अन्न-जल का संचय किया है। मछली पकड़ने के जाल

लिये हैं। स्वदेश उतरते ही रोकड़ा हुई रकम जुटाई है। कंटकी, प्रिये, सभी तरह का मानव प्रयास जुटाया है। इस अहसास से मेरा मन हमेशा धुकपुक करता है कि इस तरह के इस नटखट, शरारती, चंचल सागर में, जिसे काला पानी यूँ ही नहीं कहा जाता, उस कराल काल के मुँह में यह छोटी सी मामूली हवा में चलनेवाली किश्ती ढकेलना और इसमें सफलता पाना आखिर भाग्य के अधीन होगा। ईश्वर की कृपा होनी चाहिए इसके लिए—चंद्रमा बलवान होना चाहिए। लेकिन आज सागर के उस 'जुरुबिन' भूत प्रतिबंधक मंत्र और यह टोना उस जावरा टोटकेहाई ने जब मुझे दे दिया तब वाकई मेरी जान में जान आ गई। भाग्य की कृपा, देखो यह लिखित वचन-चिट्ठी।'' कहते हुए मस्तूल ने उस डायन द्वारा दी गई उस मृत जावरा की पोरनुमा मंत्रित अस्थि गंभीरतापूर्वक कंटक के आगे बढ़ाई।

''छी:! मस्तूल, तुम्हारा मन भी कितना जंगली हुआ है रे! कितने भोले-भाले हो तुम! निरे अलल बछेड़ा!'' कंटक ने उपरोध किया।

''अलल बछेड़ा! भोला-भाला जंगली! इन जंगली जावरों में ही नहीं, अपितु प्राचीन आर्यों में भी मृत व्यक्तियों की अस्थियों में दैवी गुणों की चेतना नहीं है? कुछ ब्राह्मण आदि जातियों में क्या इस तरह शास्त्राचार नहीं था कि मृत व्यक्ति की खोपड़ी का थोड़ा सा चूर्ण खीर में डालकर श्राद्ध के दिन स्थानीय पितर पुरुष तथा जजमान खाए? बौद्ध आदि के दंत, अस्थि आदि अवशेषों का क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि पंथियों में कितना आडंबर था। ईसाई, मुसलिमों के सिलसिले में तो पूछो ही मत। मृतकों की अस्थियों पर ही उनकी कब्रें उभारी हुई हैं। कब्रों में मृतकों की अस्थियाँ बचाने के लिए वे तब तक दंगा-फसाद करने में नहीं हिचकिचाते जब तक जीवितों की भी अस्थियाँ कब्रों में दफनाने की नौबत न आ जाए। मृतकों की अस्थियों का आडंबर और उसमें यह भावना कि धार्मिक अथवा मांत्रिक अथवा दैवी गुण होते हैं—केवल जावरों में ही नहीं, पूरे विश्व में है। तो फिर जावरों को ही जंगली, बर्बर क्यों कहते हैं? कहना चाहिए कि इन मंत्रित अस्थियों पर सभी का पूरा विश्वास है। जिसके गले में यह ताबीज उस टोटकेहाई के लिये हुए मंत्रों के साथ बाँधा जाएगा, उसे 'जुरुबिन'—उस समुद्र पिशाच से जरा भी भय नहीं है—वह समुद्र में कभी नहीं डूब सकता। समुद्र-यात्री सही-सलामत उस पार अवश्य जाएँगे—उस जादूगरनी के आश्वासन को उसका प्रयोग करने से पहले ही मिथ्या कहना भी तुम्हारे मन का भोलापन नहीं है? उसे सच समझनेवालों की सादगी सदृश ही त्याज्य।''

''अच्छा बाबा, यही सही। अपने गले में अस्थियों का वह अभिमंत्रित ताबीज बाँध लो। किश्ती से नहीं, उस ताबीज से ही समुद्र पार करके सही-सलामत

स्वदेश पहुँचा दिया तो जीत गए।''

''न, न। मेरे जीवन के लिए मेरे ही गले में नहीं। मेरा जीवन है यह मेरी लाड़ली कंटकी। तुम्हारी यह बहन और मेरी प्रिया। यह सुखी, सुरक्षित तो हम भी सुखी, सही-सलामत। इसलिए मैं यह ताबीज कंटकी के गले में बाँधूँगा और मुझे दीक्षा देते समय उस जादूगरनी ने मुझे जो गुप्त मंत्र दिया, उसी मंत्र का उसके कानों में यथाविधि उपदेश दूँगा। आ, मेरी लाड़ो, जब तक यह ताबीज तुम्हारे गले में रहेगा, तब तक भरे सागर में तुम्हारा बाल भी बाँका नहीं होगा। हमारी किश्ती फूटने-टूटने पर भी सिर्फ अपनी लहरों पर बैठाकर सागर देवता ही तुम्हें उस पार सही-सलामत पहुँचाएगा। चलो आ जाओ, अपना आँचल तनिक ढुलकने दो।''

मस्तूल बिलकुल निस्संकोच, निश्छल स्नेह से कंटकी के कंधे पर हाथ रखकर उसके अपर्याप्त वस्त्रों, लेकिन बड़े सलीके के साथ कसे हुए आँचल को ढीला करके कंधे से हटाने लगा।

उसके इस तरह के काम में कोई उत्पाती लंपटता नहीं थी। हाँ, एक निश्छल, भोली-भाली और तनिक अड़बंगी ज्यादती अवश्य थी। उसकी प्रेमपूर्ण बातों से, जिनमें कपट-छलावा नहीं था, कंटकी नाराज तो नहीं थी लेकिन उसे उसपर दया आने लगी। परंतु उसके आतुर प्रणय को पूरा खुला प्रोत्साहन दिया गया तो स्वदेश पहुँचते पर फिर उसके विवाह-प्रस्ताव को ठुकराने का उसे बिलकुल ही अधिकार नहीं रहेगा; और अगर अपनी बात अथवा व्यवहार से उसे यह भरोसा दिला दिया कि वह उसका ही वरण करेगी तो फिर आगे चलकर उसे नकारने पर तो विश्वासघात के अहसास का भयंकर वैर भी उसके मन में जागना संभव है।

यह जानते हुए भी कि उसने उसकी पीठ थपथपाकर कंधे पर जो हाथ रखा है, उसमें कामुक प्रणय से अधिक वत्सल लाड़ की भावना ही थी और उसके इस तरह स्पर्श करने में उसे बड़े भाई के ममतामय स्पर्श की ही अनुभूति हो रही थी, झटक दिया तथापि उक्त दहशत के कारण ही उसने मस्तूल का हाथ झटककर दूर हटाया और अपना आँचल पुनः कमर में खोंसती हुई झल्लाई, ''ताबीज ही बाँधना है न, तो कंटक भैया बाँधेगा। आपको इस तरह मुझसे चिपकने की कोई जरूरत नहीं है।''

कंटकी के इस प्रकार दुत्कारने से मस्तूल का स्नेहासिक्त मन एकदम टूट गया और उसकी आँखों से झरझर आँसू बहने लगे तथा शब्दों से क्रोध भी। वह कंटकी से अलग हटकर दूर जाकर खड़ा हो गया। यह अपमान हँसी-हँसी में रफा-दफा करना छोड़कर उसने कंटकी से तड़पकर कहा, ''कंटकी, अब भी तुम मुझसे इतनी कटकर क्यों रहती हो? मुझे इतना पराया क्यों समझती हो? तुम्हारे स्वयंवर के

संकल्प के तौर पर ही मैंने भरे समुद्र में यह अपर्याप्त किश्ती और तुम लोगों को काले पानी के उस पार भगाकर देश ले चलने की ठानी, यद्यपि इतना परायापन होगा तो याद रखो, हठात् तुम्हारे सामने नाचते, तुम्हें तंग करते अपने आत्मसम्मान पर ठेस सहन करनेवाला व्यक्ति यह मस्तूल नहीं है। आज तक तुम मेरे साथ चलकर मुझसे विवाह करने का सब्जबाग दिखाकर टालमटोल करती आई हो। यह तुम्हें शोभा नहीं देता। इसका परिणाम…''

कंटक को, जिसने इतनी गंभीरता से और इतने विषादपूर्ण स्वर में मस्तूल को बात करते हुए इससे पहले कभी नहीं देखा था, अहसास हो गया कि पानी अब सिर से ऊपर जा चुका है। मस्तूल का मामला बिगड़ रहा है। कंटक सहम गया। कंटकी के न मिलने की निराशा से इसका वैर जो स्वेदश जाने पर ही अपना फन उभारनेवाला था, कहीं उसका सूत्रपात इधर ही तो नहीं हो रहा। जिन बंदूकों और बारूद को हमने एक-दूसरे के रक्षार्थ संचय किया था, वही अब कहीं एक-दूसरे पर दागने का प्रसंग तो नहीं आ रहा। आज या कल यह मस्तूल इसी मालती को लेकर एक दूसरा रफीउद्दीन बन जाएगा और वह मालती और मेरे खून का प्यासा तो नहीं हो जाएगा आदि भयप्रद शंकाओं से कंटक का जी दहल गया। परंतु वह अनिष्ट प्रसंग जैसा और जितना भी हो सके आज का कल पर ठेलना, जितना निभ सके उतना निभाना ही कंटक के बस में था। यद्यपि कंटक इस बात के प्रति निश्‍चिंत था कि चाहे कुछ भी हो मस्तूल को शराफत, भलंमनसाहत से रंचमात्र भी वंचित नहीं होने देना है, अतः वह मिलनसार स्वर में उसे समझाने लगा, ''कैसा परिणाम मित्र! अरे पगले, इस नारी सुलभ संकोच पर कौतुक होना चाहिए या क्रोध? न-न, अपनी सजनी का मन रिझाने की कला उन अनाड़ी जावरों को जितनी आती है, उतनी भी तुम्हें नहीं आती। भई, तुम ही कंटकी के गले में ताबीज बाँधो। मैं ठहरा उसका बड़ा भाई। मेरा कुछ अधिकार उसे मानना चाहिए या नहीं? इसलिए यह चतुर लड़की तब तक ना-नु करेगी ही, जब तक अपने बड़े भैया से अनुमति नहीं लेगी। हाँ, चलो दीदी, मस्तूल को वह ताबीज अपने गले में बाँधने दो।''

''अरे बाप रे! सातवें आसमान को छूने लगा जनाब का गुस्सा। हत् पागल! अब गुस्सा थूक भी दो न।'' कंटकी ने भी वक्त की नजाकत पहचानकर बात आई-गई की और उस समय के लिए एक मनमोहक मुसकराहट के साथ मस्तूल की छिगुनी हौले से खींच ली। उस हलके से खिंचाव से विवश होकर बेचारा मस्तूल जैसे हाथी ने खींचा हो, लप् से पुनः उसके पास आ गया और प्रार्थना करने लगा, ''तुम ही सरका दो न अपना आँचल अपने हाथ से। हाँ, हाँ, बस उतना ही। भई, गले में बाँध तो सकूँ। पर पहले तुम्हारे कानों में मुझे वह मंत्र फूँकना है। कह डालूँ? क्या

मैं अपना मुँह तुम्हारे कान के समीप ला सकता हूँ? हाँ, अन्यथा फिर तुम्हारी मर्यादा का भंग होगा और तुम नाराज हो जाओगी।'' मस्तूल पर प्रेम का नशा छाने लगा। दाएँ कान के पास मुँह करके एक हाथ गले के पास बाएँ कंधे पर डालकर उसने उसे पास खींच लिया और उस डायन के निरर्थक मंत्राक्षरों का उसके कान में तीन बार उच्चारण किया।

मस्तूल को इस तरह कंटकी से सटकर खड़ा रहना इतना भला लग रहा था कि सौ बार उस मंत्र का उच्चारण करते हुए भी वह यों ही खड़ा रहता। परंतु इस बात की आशंका उसके मन में थी कि कहीं कंटकी पुनः बिगड़ न जाए। अतः इस विचार से कि जो सुख मिल गया वही ले ले और अपनी चापलूसी भी उजागर न हो, उसने मंत्र-दीक्षा आवश्यक तीन बार उच्चारण के साथ ही समाप्त की और वह हाथ में थामा ताबीज ठीक करते हुए हट गया। ''क्यों? जल्दी ही समाप्त कर दिया?'' कंटकी व्यंग्य से मुसकराई। परंतु हर्षोल्लास से सराबोर मस्तूल के प्रांजल मन को इस मर्म के गुलाबी काँटे चुभने का होश ही कहाँ था भला? उसने सीधा उत्तर दिया, ''वाह! समाप्त कैसे? अब यह ताबीज तुम्हारे गले में जो बाँधना है, सरकार! हाँ, ऐसे। हाँ, अब मेरे सामने आ जाओ। अपनी गरदन जरा ठीक तरह से ऊपर उठाने दो मुझे और अपना आँचल नीचे सरकाने दो। ओफ्फो! बार-बार हाथ क्यों लगा रही हो उसे सँवारने के लिए? हाँ, अब सीधी खड़ी हो जाओ, तनकर।''

उसके इर्दगिर्द, लेकिन बिलकुल निकट खड़े रहते हुए वह ताबीज इस तरह बाँधने लगा कि वह उसकी छाती पर झूलता रहे।

इतने में उसने इस बात पर गौर किया कि उसके वक्षस्थल और गले के बीच कुछ रक्तरंजित चिह्न हैं।

''यह क्या है? ये रक्तरंजित खरोंचें किसकी हैं तुम्हारे गले के नीचे? कहीं मृगया करते समय काँटों में तो नहीं उलझ गई थीं तुम?'' वह पूछ ही रहा था कि उसने देखा, वे खरोंचें नहीं हैं, कुछ अक्षर हैं जो लाल रंग में बेल-बूटियों में गुदे हुए हैं। पलक झपकने से पहले ही उसने पढ़ा, 'मालती'।

''क्या? मालती? मालती?'' जोर से पढ़ते ही और वह शब्द जोड़ते ही मस्तूल की पूरी-की-पूरी मुद्रा ही पलट गई। उसका अंग-अंग पुलकित हो उठा, जी भरभरा उठा, पोर-पोर फड़कने लगा।

उस व्यक्ति की तरह, जो प्रगाढ़ मूर्च्छा से धीरे-धीरे जाग्रत हो रहा हो, वह कंटकी की ओर अपलक दृष्टि से निहारने लगा। पल भर में ही उसने अत्यंत स्निग्ध लेकिन विस्मयपूर्ण स्वर में कंटकी से पूछा, ''सच-सच बता दो, तुम्हें अपनी प्रिय अम्मा की कसम, तुम्हारा असली नाम यही है न? किसने गोदा है यह तुम्हारे

वक्षस्थल पर?''

यह देखकर कि उसके असली नाम पर मस्तूल ने अचानक गौर किया है, कंटकी तनिक चौंकी। लेकिन उसने देखा, इसमें कुछ खास हानि नहीं होगी। मस्तूल ने उसे अपनी प्रिय अम्मा की शपथ इतनी आस्थापूर्वक दिलाई कि वह अपनी अम्मा की स्मृति से गद्गद हो उठी। अपने आपको सँभालकर बोलने का प्रयास किया, फिर भी उसके मुँह से सत्य निकल ही गया, ''अरे, वह तो मेरा वह उपनाम था, बस प्यार का एक नाम। मेरे बड़े भैया ने एक बार प्रेमपूर्वक मेरे बदन पर लाल रंग से गोदा था। लेकिन मेरा असली नाम तो कंटकी ही है।''

''नहीं मालती, तुम मालती ही हो। देखो, इस नाम के चारों ओर की बेल-बूटियाँ। वह देखो, अतिरिक्त रूप से गिरा हुआ वह कोना जो नाम गोदते-गोदते मेरे हाथ से गलती के कारण पड़ा था। और वह गलत रूप ही मालती है। नहीं, नहीं, यह सब असंभव है। लेकिन हाथ कंगन को आरसी क्या? यह देखो तुम्हारी साक्षात् मूर्ति—यह बाल रूप-रंग, यह नख-शिख गठन। मेरी अचेतनावस्था की धुंध में धुँधलाई हुई तुम्हारी आकृति। उस अवस्था से मेरे सजग होते ही, धुंध हटते ही नख-शिख से कैसे मेरी मालती के ही रूप में प्रकट हो गई है। कंटक बाबू, भले ही आप कोई भी हों, लेकिन आपकी यह मुँहबोली बहन कंटकी मेरी सगी, सहोदरा मालती है। अब सारा सच उगल ही दो । मैं आपका हितैषी हूँ—मुझसे भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है।''

यह सब अप्रत्याशित सुनते हुए कंटक हक्का-बक्का सा फटी-फटी नजरों से मस्तूल को देखता रहा। उसे तपाक से इस बात का स्मरण हुआ कि कई साल पहले मालती का बड़ा भाई दंडित होकर काले पानी चला गया था। उसने प्रत्युत्पन्नता के साथ इस बात पर भी गौर किया कि यदि मस्तूल मालती का सहोदर सिद्ध हो गया तो कंटक के रास्ते में मस्तूल की मालती विषयक अभिलाषावश जो वैर-भाव का पच्चर अड़ाने की संभावना थी, वह अचानक हट गई और अब संपूर्ण अनुकूल बाजी हाथ में आने की संभावना है।

''मित्र, मैं तुम्हें वही बताऊँगा, जो सत्य है। परंतु···परंतु तनिक रुक जाओ। मेरी मालती का बड़ा भाई, जिसने यह नाम गोदा था, वह आगे चलकर किसी युद्ध पर चला गया था। उधर उसके सिर पर एक गहरा घाव हो गया था। हमें निश्चित रूप में यह जानकारी मिली थी कि उस घाव के व्रण का अमिट निशान उसके सिर पर अंकित हो चुका है। यदि तुम्हारे सिर पर ऐसा निशान···''

कंटक की बात पूरी होते ही मस्तूल ने अपने माथे पर झंखाड़ जैसे फैले हुए झोंटों का जंजाल झट से पीछे हटाते और उन्हें बिखेरते हुए अपना मस्तक कंटक के

आगे बढ़ाया। वहाँ दो अँगुल के जख्म का, जो युद्ध में उसे हुआ था, बड़ा सा व्रण स्पष्ट रूप में दिखाई दे रहा था। कंटक ने उस निशान को पहचाना।

कंटक ने यथाक्रम पूरी आपबीती सुनाई। उन्हें अपने नाम किशन और मालती होते हुए किस प्रकार बदलने पड़े और कंटक-कंटकी जैसे उपनाम लेने पड़े, इस प्रधान कथा से लेकर अन्य समग्र वृत्तांत उसने बताया।

कंटक ने कहा, ''उस नराधम लफंगे ने साधुवेश में कहा था कि मैं अंतर्ज्ञान से देख रहा हूँ कि आपके बेटे को युद्ध में सिर पर एक घाव हुआ होगा—उसी क्षण मालती की माँ की उसपर श्रद्धा हो गई। उस विपदा में फँसने का एक तरह से जो कारण बना, तुम्हारा यह वही व्रण आज तुम बहन-भाई के बिछोह का अंत करने का—तुम्हारी पहचान का साक्षी सिद्ध हो गया। मालती के संकटमोचन का भी साधन हो गया। उसी तरह उस नीच लफंगे को—उस रफीउद्दीन को—तुम्हारे ही हाथों प्राणदंड भुगतना पड़ा, इस तरह यह संयोग भी जितना आनंददायी है, उतना ही विस्मयजनक भी कि बहन का प्रतिशोध अनजाने में उसीका भाई पूरा करे।''

''नहीं रे!'' वह बिगड़ैल, तुनकमिजाज मस्तूल तनकर खड़ा हो गया। अपनी मजबूत भुजाओं को हवा में फैलाते हुए दाँत-होंठ किटकिटाकर वह बिफरा, ''उस नीच-मक्कार उद्दीन को मैंने निजी प्रतिशोध के लिए जान से मारा। बहन के प्रतिशोध के रूप में तो उसका गला फिर एक बार इसी तरह कसते हुए लोहे के घाट उतारना चाहिए।'' क्रोधावेश में मस्तूल ने वातावरण का ही गला कसकर पकड़ा।

''छोड़ो भी, दादा! गुस्सा थूक दो। जैसी करनी वैसी भरनी।'' बचपन से लेकर आज तक तमाम सुख-दुःख भरी स्मृतियों में मालती की आँखें भर आईं। अपने भाई का हाथ धीरे से खींचकर उसे अपने हाथों में दबाती हुई मालती प्यार भरी सांत्वना देती रही।

''मालती, मेरी मुन्नी, मेरे हाथों तुम्हारा कुछ भी कल्याण नहीं हुआ। मैं तुम्हारा भाई न होने के बराबर ही हो गया। तुम्हारा मनचाहा…''

''दादा, तुम मुझे मिले इसीमें मेरा मनचाहा सबकुछ आ गया। यदि मेरी मनचाही अब कोई चीज बाकी रही है तो माँ से भेंट। दादा, एक बार मुझे अपनी बाँहों में ले लो।''

''माला, मेरी मुन्नी, लाड़ो!'' अपने गले से लिपटी अपनी छोटी बहन की पीठ को उसने माँ की ममता के साथ सहलाया। उसी मिलन की मधुर तंद्रिल अवस्था में वह कभी-कभी यूँ ही आवाज दे रहा था, ''माला! मेरी नन्ही सी गुड़िया!'' और

वह भी बड़े लाड़ भरे स्वर में हौले से हामी भर रही थी, "ऊँ! हाँ, दादा!"

पल भर के बाद मालती की बहियाँ हटाते हुए उसका भाई किशन की ओर मुड़ा, "किशन, मेरी बहन को संकटों के अंबार से तुमने उबारा। मुझपर तुम्हारे अनंत उपकार हैं। पर देखो, मैंने तुमपर कुछ अहसान नहीं किया। तुमने मेरी बहन लौटाई, मैं भी तुम्हारी प्रियतमा लौटाता हूँ। यह लो। अपने आशीर्वाद-दहेज के साथ अपनी इस भगिनी का मैं यथाशास्त्र कन्यादान कर रहा हूँ।"

"विवाह के बाद न?" किशन मुसकराया। फिर उस निश्चित दिन पर बेचारे आतिथ्यशील जावरों ने बड़े ठाट-बाट के साथ उन तीनों को विदा किया। जिस समय किशन, मालती और उसके दादा (मस्तूल को अब सभी लोग दादा ही संबोधित करने लगे)—तीनों ने किश्ती में बैठकर चाँदनी रात में गुपचुप उस काले पानी का किनारा छोड़ा, उस समय समुद्र के भूत-पिशाच को, उस 'जुरुबिन' को प्रसन्न करने के लिए जावरों ने वे सारे टोने-टोटके आजमाए जो उन्हें ज्ञात थे। दो-तीन डोंगियों के साथ उन जावरों में जो निपुण नाविक थे, उन्होंने किशन की किश्ती को तटवर्ती खाड़ी की ओट से अंग्रेजों के विवक्षित स्थानों को टालकर काले पानी के सागर तक पहुँचाया।

काले पानी के अथाह सागर में—मात्र हवा के भरोसे छोड़ी हुई पिद्दी सी वह किश्ती। रात के घुप अँधेरे में तो चारों दिशाओं को साक्षात्—कराल काल की तरह मुँह फाड़े खड़ा रहता—इतना घातक, इतना वीरान तथा इतना असहाय साहस था वह। मध्यरात्रि के समय घनघोर अँधेरे में उस अथाह विशाल सागर का गर्जन-तर्जन ऐसा लगता जैसे साक्षात् काल ही निश्चिंत होकर सो रहा है और आराम से खर्राटे भर रहा है। परंतु आजन्म कारावास की कैद में बुरी दशा में सड़ने-गलने से उन्हें यह साहस भी अधिक सुखद प्रतीत हो रहा था।

काले पानी के उस भीषण सागर में मात्र हवा के भरोसे छोड़ी हुई वह नन्ही सी किश्ती भी निरंकुश—स्वैर गति के साथ आगे बढ़ रही थी। हवा अनुकूल थी, पाल में भरपूर हवा भरने से वह अच्छा-खासा गुब्बारे जैसा फूला हुआ था। बारी-बारी से वे तीनों चप्पू चला रहे थे। मालती भी नाव खेने की अपनी बारी यथाशक्ति पूरी करती।

आकाश में कभी तूफान जमकर घुप अँधेरा छा जाता, कभी घूप खिलती और दिशाएँ खिलखिलातीं, कभी सागर प्रक्षुब्ध होकर फूँ-फूँ फुफकारता, तो कभी मंद गति के साथ झिरझिराती लहरियाँ उठते सरोवर सदृश वह प्रसन्न दिखाई देता। तनिक कहीं 'खुट्' की आवाज आते ही उन तीनों के चेहरों पर मन में दबी हुई भीरुता की कृष्णछाया अचानक उमड़कर फैल जाती। पुनः उसे दबा-दबोचकर वे

एक-दूजे को ढाढस बँधाते, हिम्मत देते, हँसते-गाते चप्पू चलाते।

अनुकूल हवा उनकी किश्ती के पाल में ठूँस-ठूँसकर भरी हुई थी। लेकिन बस उसीके बलबूते वह किश्ती इतनी धड़ल्ले से नहीं चल रही थी। इसके पीछे उनके हृदय के पाल में कूट-कूटकर भरी हुई यह हवा थी कि आजन्म कारावास की बेड़ियाँ तोड़कर वे काले पानी से भाग रहे हैं। प्रधानत: इसीके बलबूते पर उनकी किश्ती निरंकुश, सनसनाती हुई आगे जा रही थी।

मनुष्य की आशा-निराशा, पाप-पुण्य, न्याय-अन्याय, साध्य-असाध्य, इन सभी के निकष पर इस विश्व की उथल-पुथल, विश्व का सारा प्रपंच परखा नहीं जा सकता। उसके लिए इस विचार का कुछ मूल्य नहीं होता। हमें जो संभाव्य प्रतीत होता है, वह अचानक असंभाव्य हो जाता है। और जो असंभवनीय प्रतीत होता है वही अचानक सृष्टि में उतरता है। यही है संयोग। अर्थात् हम इस यथार्थ को स्वीकार करते हैं कि इस उथल-पुथल का हमारी इच्छा तथा तर्क शक्ति से रत्ती भर भी स्पष्टीकरण नहीं मिलता।

राजमहलों में सैकड़ों दास-दासियों के लालन-पालन में अथवा स्वयं राजा-रानी जिसे अपनी गोद में खिलाते हैं, पलकों पर बैठाते हैं वह बड़ी मनौती मनावनों से प्राप्त सुंदर-सलोना राजदुलारा शिशु उत्तुंग प्रासाद से राजरानी अथवा राजा की गोद से फिसलकर नीचे धरती पर गिरकर चकनाचूर हो जाता है। सुना है, 'श्रीमंत' रघुनाथ राव पेशवा की एकमात्र संतान, जिसे 'श्रीमंत' स्वयं बड़े लाड़-प्यार से उठाकर खिला रहे थे, अचानक नीचे गिरकर चकनाचूर हो गई थी। इसके विपरीत क्वेटा अथवा बिहार में भीषण भूचाल आ गए—उनके धमाकों के साथ धरती के गर्भ में समा गए। तब चार-चार मंजिलों की पक्की मजबूत हवेलियाँ ऊपर से धड़ाधड़ ढहकर फटी-दरकी भूमि में ढेर हो गईं। लाखों लोग, माँ-बाप, बाल-बच्चे कुचले-रौंदे जाकर मात्र मांस के लोथड़े बने और पत्थरों की राशियों में मिट्टी-चूना-कीचड़ के लसदार गारे जैसे गाड़े गए। उसीमें कुचली हुई किसी माँ के निकट निश्चिंत भाव से पड़ा एक सुप्त शिशु दो पत्थरों के तंबू में भी सुरक्षित, सही-सलामत पाया गया। यही है संयोग। हम उसे ही दैव, भाग्य या नियति कहते हैं, जिसके कार्य-कारण की जटिल गुत्थियाँ सुलझाना हमारे बस की बात नहीं होती अथवा वे हमारी इच्छानुसार नहीं सुलझतीं। भाग्य, नियति, संयोग ही हमारा अज्ञान है, हमारी निराशा।

काले पानी के अथाह विशाल सागर में हवा के अनुसार चल पड़ी उस किश्ती के तीन जीवों के, जो प्रतिपल मौत की चट्टान से टकराने का संकट मोल ले रहे हैं—भाग्य में उस उलटे-सीधे संयोग में से कौन सा संयोग लिखा हुआ है?

इनका क्या होगा ? कैसे होगा ? आज 'राम-राम' करके आठवाँ दिन निकला। निरंतर संकटों से जूझते-टकराते भय भी जरा कम हो गया। बुरी बात यही थी कि अन्न-जल का संचय समाप्त हो रहा था। लेकिन यात्रा भी आधे से अधिक समाप्त हो रही थी। कभी-कभी वे मछलियाँ पकड़कर खाते और उन्हींपर गुजारा करते। हाँ, क्षीणता बढ़ गई थी—उसमें भी मालती बहुत ही थककर चूर-चूर हो गई थी। लेकिन उसके दादा उसे आधी यात्रा पार कर चुकने की तसल्ली देते हुए कहते, 'आततायी, पापी, कमीने रफीउद्दीन जैसे लुटेरे को यदि काले पानी से सही-सलामत स्वदेश पहुँचते हुए हम देखते हैं तो तुम जैसी निरालस, निरपराध तथा सुशील अबला की सहायता दयानिधान ईश्वर अवश्य करेंगे। तुम्हारे ही पुण्य से हमारा भी तारण होगा, हम भी स्वदेश पहुँचेंगे। उसपर वह ताबीज के टोने-टोटके, शुभ-शुगन मिथ्या थोड़े ही हैं जो अकारथ जाएँगे?'

इस तरह धीरज बँधाने से, जी बढ़ाने से उसके शरीर की न सही, मन की थकावट एकदम हवा हो जाती। रात होते ही किशन की गोद पर जब वह सिर टिकाकर सो जाती और वह उसे थपकियाँ देता, तब उसे चिंता का स्पर्श तक नहीं होता। वह इतनी गाढ़ी नींद में सो जाती कि एकदम सुबह होने पर ही जाग जाती और तरोताजा होती।

आठवाँ दिन भी निर्विघ्न बीत गया। संध्याकालीन सूर्यास्त की शोभा और उस प्रशांत सागर के आश्वासन्न व्यवहार से उन तीनों का हर्षोल्लास ठाठें मारने लगा। हवा का आवेग किंचित् मंद पड़ा था। अत: उन्होंने अपने चप्पू अधिक जोर लगाकर चलाना आरंभ किया। इस अहसास के साथ कि चप्पू की हर फटकार से स्वदेश का किनारा तेजी से निकट आ रहा है, उन्हें उस परिश्रम का कष्ट तुच्छ, नगण्य सा प्रतीत होने लगा। बल्कि उमंग के जोश में किशन माँझी का एक गीत किसी तरह गलतियाँ करके, बीच में अटकते हुए क्यों न हो, पर गाने लगा। कभी वह मालती की ओर देखकर मुसकराता। उसके दादा भी उस गीत का साथ देते हुए उसी लय में नैया चलाने लगे—वे भी स्वयं बुलंद स्वर में गाने लगे—

बायवारू। नैया चलाओ···
रे मेरे माँझी ! मेरे सखा ! चलाओ नैया।
चलो, चलो झपाटे के साथ।
साँवली-सलोनी नार—चली है पीहर।
साँवली-सलोनी नार—चली है पीहर।
साँवली-सलोनी नार—चली है पीहर।

गीत का एक चरण एक ने, तो दूसरा चरण दूसरे ने गाया और घुमा-फिराकर उसी गीत को दोहराते हुए वे छप-छप चप्पू चलाते आगे बढ़ रहे थे—किश्ती छप-छप करती धड़ल्ले से आगे दौड़ी जा रही थी। स्वदेश तेजी से समीप आने लगा था। अँधेरा छाने लगा, हर तरफ स्वच्छ चाँदनी जगरमगर करने लगी। हमारे नाविक तब तक गाते जा रहे थे और छप-छप चप्पू चला रहे थे।

उस गीत को सुनती किश्ती की झूलती सेज पर किशन की बाँहों का सिरहाना बनाकर मालती कब गहरी नींद में सो गई, उसे पता भी नहीं चला।

हवा अनुकूल दिशा से ही बहने लगी—पाल हवा से फूलकर गुब्बारा हो गया। चप्पू चलाने की गति मंद पड़ गई। मध्यरात्रि का समय हो गया। चंद्रमा का आकाश में उदय हो गया। इतने में थोड़ी दूरी पर 'सक, सक, सक' जैसी ऊँची आवाज में सरसराहट हुई और पानी का एक गगनचुंबी स्तंभ ऊपर उठ गया।

दादा बारीकी से देखने लगे—उधर एक प्रचंड दैत्य जैसा मत्स्य जगमगाने लगा। वह आधे से अधिक खड़ा था। मस्तूल ने, जिसे सागरीय जीवन का गहरा अनुभव था, तत्काल पहचान लिया कि यह मत्स्य जाति का एक महाभयंकर प्राणी है। लगे हाथ उसने बंदूक उठाई, इतने में पुनः पानी के एक प्रचंड रेले की हरर-हररर-हरररर खलखलाहट हुई और वह जलचर पानी में डुबकी लगाकर अदृश्य हो गया। मस्तूल और किशन की जान में जान आ गई कि चलो बला टली।

उस प्रचंड भयंकर मत्स्य के कारण फिर मछलियों से संबंधित बातों का सिलसिला जारी रहा। मस्तूल ने कहा, ''समुद्र-यात्रियों के अनुसार महासागरों में कभी-कभी ऐसे दुष्ट दैत्य मत्स्यों का सामना करना पड़ता है। वे अपनी प्रचंड पूँछ की, जिसमें मानो बिजली का करंट है, फटकार से उन धुआँकशों को उलटा-पुलटा कर उनकी दुर्गति बना देता है। हवा से चलनेवाली छोटी-छोटी किश्तियों के तो कई मछलियाँ किसी मोड़ की ओट में हाथ धोकर ही पीछे पड़ती हैं। उसपर इनमें से कई नरभक्षक भी हैं।''

किशन का रोआँ-रोआँ थर्रा उठा। नरभक्षक! सच? लेकिन किशन के इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए मस्तूल को आवश्यकता ही नहीं पड़ी—उतना समय ही नहीं मिला। किशन पूछ ही रहा था कि इतने में उस छोटी सी किश्ती को जो उस तरफ लहरों पर सवार हो गई थी—एक करारा थपेड़ा रसीद किया गया, जैसे कोई राक्षस किसी दुर्बल के मुँह पर कसकर थप्पड़ जमाता है। एक पल में वह किश्ती सागर पर इस तरह उलट-पुलट गई जैसे एक कटोरी औंधे मुँह हो जाए।

एक प्रचंड लहर उछली। एक भयंकर भीमकाय मत्स्य उस किश्ती के इर्दगिर्द गिरगिराकर मँडराया। उसी मत्स्य ने गुप्त रूप से किश्ती पर आक्रमण किया

था जो इससे थोड़ी देर पहले गोता खाकर उलट गई थी। उसने एक फटकार के साथ उस नैया को औंधा दिया। यह देखने के लिए कि उसमें से कोई मनुष्य प्राणी बाहर तो नहीं उछाला, उसे निगलने के लिए वह दानवी मत्स्य और उसका साथी इस तरह मँडराते हुए ऊपर उछल रहे थे।

वह किशन ही था जो किश्ती पलटते ही उस थपेड़े के साथ गेंद की तरह दूर उछाला गया था। उस दानव ने उसपर झपट्टा मारा और वह उसे सागर तले खींचकर ले गया!

इधर मस्तूल ने पलटी खाई हुई किश्ती से बाहर निकलने के लिए जी-जान से हाथ-पाँव मारे। परंतु वह उसकी प्राणांत की ही चेष्टा होते-न-होते समाप्त हुई। मुँह-नाक पर लहरों के तीव्र थपेड़ों से उसका दम घुटने लगा और देखते-देखते मस्तूल ने जल-समाधि ले ली।

और मालती··· ? उस बेचारी को पता भी नहीं चला कि वह कब डूब गई। वह तो गहरी नींद में थी। उस झूलती-डाँवाँडोल होती नैया के कारण वह एक सुंदर सुख-सपना देख रही थी—वह अपने बचपन के हिंडोले पर बैठी हुई है—उसकी अम्मा स्नेहभीनी ओवियाँ गा रही है। हिंडोला खूब ऊँचाई पर चढ़कर नीचे उतरते हुए कितना भला लग रहा है।

उस मधुर सपने में ही वह वैसी-की-वैसी किश्ती के औंधी होते ही ज्यों-की-त्यों सागर लहरों पर लिटा दी गई जैसे वह किश्ती में मीठी नींद का आनंद उठा रही हो। वह पुनः जागी ही नहीं।

उसका यह सपना ही उसकी अंतिम जागृति थी, उसकी अंतिम चेतना थी—अंतिम अहसास—अर्थात् उसके अुनसार वह सही-सलामत ठीक-ठाक अपने घर जाकर अपनी प्रिय अम्मा से मिल चुकी थी।

उसके लिए, हाँ, मात्र उसीके लिए उसकी चेतना की अंतिम पंक्ति थी—सुखांत।

□□□

मुझे उससे क्या

अर्थात्

मोपला कांड

प्रकरण–१

कुट्टम गाँव के लोग

भारतवर्ष के सुरम्य तथा पवित्र प्रदेशों में मालाबार की गिनती की जाती है। हरे-भरे घने जंगल, विविध फूलों से लदे छोटे-छोटे पर्वत, पानी के सुरीले झरने, मीठी, शांत स्वभाव की नदियाँ, विपुल फसलों से डोलते खेत, ऊँची तथा छत्रों जैसी नारियल, सुपारी तथा ताड़ वृक्षों की पंक्तियाँ आदि यात्रियों के मन को नित्य लुभाते हैं।

ऐसे रम्य प्रदेश में, विविध फूलों तथा फलों से लदे इन छोटे-छोटे पर्वतों में से किसी एक पर्वत के माथे पर कुट्टम नाम की एक बाड़ी बस्ती थी। उसके नारियल, सुपारी के घने वन में नंबूदरी ब्राह्मणों के पाँच-छह घर थे। वहाँ से काफी दूरी पर नायरों के बीस-पच्चीस घर तथा उन्हींसे सटकर दूसरी 'स्पृश्य' जाति की छोटी सी बस्ती थी। इस बस्ती से आधा मील दूर दस-बारह थिय्या जाति की झोंपड़ियाँ थीं जो प्रमुख बाड़ी से आधा मील दूर होने पर भी उसकी सीमा में ही मानी जाती थीं। बाड़ी का हिस्सा होते हुए भी उनके इतनी दूर बसने का कारण यह था कि थिय्या जाति के ये लोग वहाँ के अस्पृश्यों में गिने जाते हैं।

नंबूदरी ब्राह्मणों के घरों में उनके बच्चे प्रतिदिन सुबह उठकर जब वेद-पाठ करते तब उस सुरीले घोष को सुनकर पशु-पक्षी भी आनंद से डोलते थे। वहाँ का ब्रह्मवृंद इतनी उत्कृष्टता से वेदों की रक्षा कर रहा है कि स्नान-संध्यायुक्त, शुद्ध तथा सफेद यज्ञोपवीत धारण किए हुए ब्राह्मण एक बार आसन जमाकर बैठ गए तो अस्खलित, स्वरशुद्ध तथा वर्णस्थानयुक्त वाणी से चारों वेदों का भ्रमरहित पाठ करते हुए दिखाई देते हैं।

लेकिन वेद-पठन करने का अधिकार शूद्रों को नहीं है, इस धारणा के कारण ब्राह्मणों की बस्ती, गाँव की सीमा के अंतर्गत होने पर भी इतनी दूर होती है कि वहाँ

से जोर से वेद-पठन करने पर भी वह दूसरी जाति के लोगों को स्पष्टता से सुनाई न दे। उनसे थोड़ी दूरी पर नायर लोगों की बस्ती होती है। वे अपने को क्षत्रिय समझते हैं और उनकी कन्याओं से ब्राह्मणों के कनिष्ठ पुत्र संबद्ध हो सकते हैं। ब्राह्मण का ज्येष्ठ पुत्र ब्राह्मण कन्या से ही विवाह करता है, ताकि नायरों के साथ अनुलोम पद्धति से संबंध रखकर उस जाति से खून तथा बीज की एकता स्थापित करने के साथ-साथ, उच्च माना गया बीज, खून और जाति भी निर्मल शुद्धता से अपना अस्तित्व बनाए रखे। नायर लोग भी थिय्या, नवाड़ी, यलाबन, कलियन और मसकून जातियों को अस्पृश्य मानकर उनके दर्शन में भी छुआछूत मानते हैं। इसलिए इन जातियों के घर हर गाँव की मुख्य बस्ती से कम-से-कम मील-आधा मील की दूरी पर होते हैं।

इन सामाजिक रूढ़ियों से तितर-बितर आम हिंदू समाज ही की तरह कुट्टम गाँव की यह बस्ती भी पूरी तरह तितर-बितर हो गई थी।

वह प्रात:काल की वेला थी। सुदूर नारियल-सुपारी के सुंदर वन में वेदशास्त्र निरत ब्राह्मण वेद-पाठन कर रहे थे। बीच-बीच में होम-हवनों का सुगंधित धुआँ नारियल के पेड़ों पर अटककर ऐसा लटका रहता था, जैसे कालिदास के यक्ष का संदेश सुनने के लिए ठहरा हुआ दयालु तथा स्निग्ध मेघ ही हो। मध्य बस्ती में नायर तथा दूसरी जातियों के परिवार अभी-अभी अपने कामों में लगे थे, नायरों की स्त्रियाँ भी स्वच्छंद रीति से उस तालाब के मार्ग पर आया-जाया करती थीं अथवा बीच ही में थोड़ी देर रुककर बातें करतीं अथवा मीठी हँसी हँसती खड़ी हो जातीं।

उसी समय उस बाड़ी से दूर उन थिय्यों की बस्ती में किसी पेड़ के तले चबूतरे पर एक मौलवी दो मियाँओं से बातें कर रहा था।

यह मौलवी अपनी लंबी दाढ़ी पर तीन-तीन बार हाथ फिराकर सभी लोगों से कहता था कि साक्षात् मोहम्मद पैगंबर के चाचा की मौसी के दामाद की जो बहन थी, उसकी पड़ोसन की भतीजी का बेटा उसका पूर्वज था और इस तरह से उसे एक असली अरब घराने ने अलंकृत किया था। उन थिय्याओं में से जो करीब्र तीस साल का आदमी था उसे उस मौलवी ने कहा, ''कंबू! सुनो, दिव्य पुस्तक आगे क्या कहती है! सुरतुल फुर्कान अध्याय में ईश्वर ने साफ कहा है कि यह कुरान आकाश तथा धरती पर की सभी बातों को जानता है, इसे उसने प्रकट किया है! लेकिन जो इसे तथा कयामत की घड़ी को झूठ समझते हैं, उनके लिए हमने भयानक नरकाग्नि तैयार कर रखी है!'' यह सुनकर शांत रीति से कंबू ने कहा, ''मौलवी, यह वचन आपने मुझे अनेक बार सुनया है। परंतु मैं जो कहता हूँ उस शंका का निवारण आप क्यों नहीं करते? सभी लोग एक बार मर गए कि वे कब्र में जहाँ-के-तहाँ पड़े रहेंगे

और जब कभी युग के अंत में दुनिया समाप्त होगी तब ईश्वर उन सबको तूतियाँ फूँककर जगाएगा और उनका न्याय करेगा। इसे ही आप कयामत के दिन का पुनरुत्थान कहते हैं न?''

''हाँ।''

''अच्छा तो फिर यह बताओ कि किसी मनुष्य को किसी काम से जाँच-पड़ताल करने के लिए पुलिसवालों ने किसी कमरे में बंदी बनाकर रखा और यदि उसकी जाँच दस साल तक भी न करते हुए उसे वैसे ही वहाँ सड़ते रहने दिया तो हम उस पुलिसवाले को इस तरह की कैद के लिए दोष ही देंगे न?''

''हाँ।''

''तो फिर ऐसी कच्ची कैद देनेवाला पुलिसवाला तथा उसके अधिकारी अमानुष हैं, ऐसा ही कहेंगे न?''

''हाँ।''

''न्याय न करते हुए केवल पूछताछ के लिए किसी मनुष्य को दस साल तक कैद में सड़ाए रखना यदि हम अमानुषिक क्रूरता समझते हैं तो फिर अन्यायी अथवा न्यायी किसी भी मनुष्य को अंतिम जाँच के लिए दुनिया के अंत तक कब्र जैसे भयानक कमरे में सड़ाए रखना ईश्वर की अमानुषिकता यदि न भी हो, तो भी दयालुता के विरोध में तो है ही न? और ऐसी बातों पर यदि किसीका विश्वास न हो तो क्या उसे नरकाग्नि में फेंक दिया जाए? न! न! ईश्वर महान् दयालु, कृपालु है। वह न्यायी भी है। आप जो सिखाते हैं, उस ईश्वर की कल्पना में न्याय भी नहीं तथा दया-ममता का तो नाम भी नहीं!

''और...'' कंबू ने आगे कहा, ''फिर भी हमें ही भयानक नरकाग्नि की सजा मिलेगी। यह क्या ईश्वर की महानता को शोभा देता है? पहले तो वह सर्वशक्तिमान होने के कारण हमारे कान और हृदय बंद कर उसपर अज्ञान की मोहर लगा देगा। फिर हमारे पास (आपके कहने के अनुसार) सत्य वचन सुनाने आप जैसे मौलवी भेजेगा और उन्हींकी आज्ञा से हम समझ नहीं पाएँ तो उलटा हमें ही सजा देगा। यदि पहले किसीने हमारा हाथ पकड़कर जबरदस्ती दूसरों की चीज उठवाई और फिर चोरी कहकर हमें सजा दी तो उसका वह कृत्य जितना अन्यायपूर्ण होगा, उतनी ही आपकी बताई ईश्वरीय न्याय की कल्पना भी अन्याय तथा अधर्मकारी होगी।''

''तौबा! तौबा!'' मौलवी ने कहा, ''लेकिन यह ईश्वर द्वारा प्रकट की हुई पुस्तक में लिखा है!''

कंबू ने कहा, ''यदि आपको ऐसा लगता है तो आप खुशी से उसपर

विश्वास रखिए। मुझे अपने हिंदू संतों के उपदेश में ही अधिक आनंद मिलता है। मुझे लगता है कि केवल पुनरुत्थान पर विश्वास था या नहीं, इसी बात पर मनुष्य की भक्ति तथा साधुत्व की परीक्षा ईश्वर नहीं करेगा बल्कि 'तूने सत्कृत्य किए या दुष्कृत्य किए' इस प्रश्न से ही वह उसकी परीक्षा करेगा। पुनरुत्थान की कल्पना का नाम भी जिन्हें मालूम नहीं था लेकिन जिन्होंने दुनिया में प्राणियों पर दया की, जिन्होंने सत्य, समत्व, परहित-तत्परता में ही जीवन बिताया, उनसे ईश्वर हमेशा संतुष्ट ही रहेगा। हम हिंदुओं में अनेक ऐसे साधु हुए जिन्होंने मुसलमानी कुरान का पन्ना भी न पलटा और केवल अपने पवित्र आचरण से और भक्ति से मुक्त हुए!''

''मुक्त हुए!'' मौलवी हँस पड़ा, ''मूर्ख, वे सभी नरकाग्नि में जा पड़े। ईश्वर और पैगंबर पर जो विश्वास करता है, केवल वही मुक्त होता है।''

''क्या कहा? यदि हम हिंदुओं ने परमेश्वर पर विश्वास रखा और उसकी भक्ति हमने मनोभाव से की, परंतु आपके कहने के अनुसार मोहम्मद पैगंबर पर विश्वास नहीं रख पाए अथवा पुनरुत्थान की बात नहीं मान सके, तो क्या हमें मुक्ति ही नहीं?''

''अलबत्ता—अर्थात् नहीं।''

''तो फिर ईश्वर की भक्ति जितनी ही पैगंबर की भक्ति महत्त्वपूर्ण कहलानी चाहिए! और पैगंबर के पूर्व मनुष्य जाति की लाखों पीढ़ियाँ, कम-से-कम उसके बाद की आधी दुनिया की सभी पीढ़ियाँ नरक में ही गईं? हमारी हिंदू जाति के साधु-संत भी नरक में ही पड़े?'

''हाँ, हाँ, ईश्वर की पुस्तक में यह स्पष्ट ही है।''

''तो फिर!'' कंबू ने उठते हुए कहा, ''मौलवीजी, जिस नरक में ऐसे साधु-संत रहते हैं, जिसमें मेरे पुरखों की पीढ़ियाँ निवास करती हैं, वही मेरा स्वर्ग है! मैं हिंदू ही रहूँगा। उन्हें छोड़कर मैं स्वर्ग में नहीं जाना चाहता। धर्मराज की यह कथा मेरी दादी मुझे अब भी सिखाती है कि स्वर्ग के दरवाजे खुले होते हुए भी वह अपने पाँचों भाइयों को छोड़कर स्वर्ग में जाने के बदले अपने जाति-बंधुओं के साथ नरक ही में रहकर अपने धर्मबल से उनको छुटकारा देने के लिए प्रयत्नशील रहा। मैं उसी धर्मराज के भक्तों में से एक अत्यंत कनिष्ठ भक्त हूँ। मैं उस धर्मराज के तथा श्रीकृष्ण के हिंदू धर्म में ही रहूँगा।'' इतने में 'कंबू कंबू! अरे जल्दी करो! बच्चा मर गया, खत्म हो गया।' ऐसी जोर की आवाज महारबाड़े में गूँजी। (थिय्यों की बस्ती में अछूतों की बस्ती के लिए मराठी प्रतिशब्द के रूप में हमने महारबाड़ा कहा है।)

वह आवाज सुनकर कंबू और उसके चारों ओर इकट्ठे हुए सभी थिय्ये लोगों ने भागते हुए अपने महारबाड़े के पास जाकर देखा तो कंबू का एक बेटा बरगद

के पेड़ पर चढ़ते समय नीचे गिरा था और उसके सिर में गहरी चोट लगी थी। खून से उसका बदन और कपड़े भीग गए थे और वह बेहोश हो गया था। थिय्या लोगों को कुछ इलाज मालूम थे जो उन्होंने किए परंतु लड़का होश में नहीं आया, न ही उसका खून बहना बंद हुआ। तब एक थिय्या ने कहा, ''अब कोई कृष्णा नायर के पास जल्दी से जाए और उसे साथ ले आए वरना लड़का नहीं बचेगा।'' यह सुनते ही कंबू और उसके साथ का अठारह वर्षीय लड़का दामू तीर की तरह भागे। मौलवी उस चबूतरे से ही उन्हें देखता हुआ उनके आगे आकर तालाब के पास खड़ा था। वे दोनों, कंबू और दामू विकल हृदय से हाँफते हुए दौड़े। उस तालाब से कोई सौ-डेढ़ सौ फीट की दूरी पर उनके आते ही 'थिय्या! थिय्या! इर! इर!' कहते हुए कई लोगों ने शोर मचाया।

मालाबार की स्पृश्य जातियाँ अछूतों को तालाब के सौ-डेढ़ सौ फीट के अंदर आने नहीं देतीं। तालाब से सौ फीट की दूरी पर से गुजरनेवाले मार्ग पर यदि किसी अस्पृश्य ने पैर रखा तो वह पूरा तालाब भ्रष्ट हो गया, ऐसा स्पृश्य लोग मानते हैं। उन दो थिय्यों को इतनी तेजी से भागते आ रहे देखकर तालाब पर जो खलबली मची, उसे देखकर मौलवी मन-ही-मन खुश हुआ और वैसे ही खड़ा रहकर वह सबकुछ देखने लगा।

''महाराज!'' दूर से ही उन थिय्यों ने जोर से कहा, ''हमारा एक लड़का गहरी चोट से मर रहा है। कृष्णा नायर वैद्य के घर से दवाई लाने हम जा रहे हैं। दूसरा रास्ता दो-तीन मील फासले का है, इसलिए हम यहाँ से गुजर रहे हैं। दया कीजिए और हमें जाने दीजिए।''

''चांडाल! मरने दे उसे!'' एक नायर हाथ उठाकर भागता हुआ आया, ''देखता नहीं यह तेरा रास्ता सौ फीट से दूर नहीं! चाहे तो नापकर देख ले।''

''महाराज! तालाब से यह मार्ग जितना पास है, मेरा बेटा मृत्यु के उससे भी अधिक पास है। इसलिए कृपा कीजिए और मुझे दवाई लाने जाने दीजिए।''

''क्या तेरे लड़के के लिए हम अपना तालाब भ्रष्ट होने दें?'' चोरी के अपराध के लिए जिसे दो बार जेल जाना पड़ा था उस राम नायर ने कहा, ''नहीं! पापयोनि में तेरा जन्म हुआ इसलिए तेरा तो दर्शन भी नहीं करना चाहिए। कलियुग है, इसलिए हम यह सह लेते हैं।''

''महाराज, जो मरजी कहिए लेकिन मेरे इकलौते बेटे पर दया करके मुझे जाने दीजिए। चाहें तो मैं चेहरे को कपड़े से ढककर निकल जाऊँगा।''

''चुप!'' कालिकट में पाँच वर्षों तक शराब की दुकान चलानेवाला मुकंद चिल्लाकर दौड़ा, ''मैं नहा रहा हूँ, देखता नहीं? तू हमारा कहना न मानते हुए

ढिठाई से आगे बढ़ रहा है, और कितने जोर से चिल्ला रहा है। तेरे शब्द कानों पर पड़ने के कारण मुझे अब फिर से स्नान करना पड़ेगा। पशु कहीं का।''

अब तक वे दो थिय्या जो पहले सौ-सवा सौ फीट की दूरी पर रुके थे, धीरे-धीरे उस तालाब के कोने से जानेवाले मार्ग तक आ पहुँचे थे। अपने बेटे के सिर से बहनेवाला खून बाप की आँखों के सामने बार-बार दिखाई दे रहा था और एक-एक क्षण मृत्यु के पास जानेवाला एक-एक पग लग रहा था। तालाब के बिलकुल पास तीस फीट की दूरी पर रास्ते का जो मोड़ था, वहाँ जब वे अछूत पहुँचे तब उस तालाब पर उपस्थित स्पृश्यों को गुस्सा चढ़ गया और दो नायर, एक-दो ब्राह्मण और कुछ सुतार उनपर पत्थर फेंकते हुए दौड़े। इतने में एक ब्राह्मण, जो शांत रीति से पुरुष सूक्त बोल रहा था, आगे बढ़ा और उसने उन्हें पुकारकर कहा, ''हाँ! हाँ! यह निरर्थक झगड़ा आपको शोभा नहीं देता। यह देखो कंबू, मैं तुम्हारे उस वैद्य के पास जाकर तुम्हें वह दवाई ला देता हूँ—यद्यपि मैं तुम्हारे बच्चे का संबंधी नहीं, तो भी मैं तुमसे अधिक जल्दी और चिंता करते हुए तुम्हारी दवा लाऊँगा। तुम यहीं खड़े रहना जिससे किसीकी भी भावना को हानि न पहुँचते हुए तुम्हारा भी कार्य हो जाए।'' वह ब्राह्मण इतना कह ही रहा था कि वह मौलवी आगे बढ़ा और उसने कहा, ''माफ करना! मैं बड़ी खुशी से कंबू की दवाई ले आता हूँ। आप अपनी संध्या पूरी कीजिए। मेरे इस मार्ग से तालाब के पास से गुजरने में आपको कोई एतराज तो नहीं?'' तब शराब के ठेके की दुकान चलानेवाले मुकुंद ने कहा, ''लेकिन आपकी जाति कौन सी है? थिय्या लोग अछूत होते हैं और वे बिलकुल गंदे धंधे करते हैं।'' मौलवी ने कहा, ''मैं थिय्या हिंदू नहीं बल्कि मुसलमान हूँ!'' ''तो फिर खान साहब! आपको कौन रोकेगा! आप इस मार्ग से जब मरजी आइए-जाइए। ये थिय्या लोग पापयोनि होते हैं, इसलिए इन्हें तालाब से सौ फीट की दूरी के अंदर आने देने से तालाब भ्रष्ट होगा।'' चोरी करके दो बार जेल हो आए क्षत्रिय कुलभूषण राम नायर ने कहा।

मौलवी इधर ये बातें कर रहा था कि इतने में वह पुरुष सूक्त बोलनेवाला ब्राह्मण वैसे ही गीले कपड़ों को पहने भागता चला गया था। तब कंबू के बेटे की दवाई लाने राह देखते खड़े उन दोनों थिय्याओं के पास, जो कुछ दूरी पर खड़े थे, जाकर मौलवी ने कहा, ''हाय! हाय! कैसी तो इन काफिरों की निर्दयता! कंबू, मुझे माफ करना, लेकिन मैं तुम्हारे हित के लिए कह रहा हूँ कि इसलाम के विरुद्ध तूने तब जो अपशब्द कहे, उन्हींका तुझे यह परिणाम मिला। इसलाम से तेरे पीठ फेरते ही तेरे बच्चे को अल्लाह ने क्रोध से पेड़ से ढकेल दिया। और जिन्हें तू अपने धर्म के समझता है उन काफिरों के, ब्राह्मणों के, क्षत्रियों के, वैश्यों के और शूद्रों के हृदयों

पर अल्लाह ने मोहर लगा दी। मैं मुसलमान हूँ, मैं उस तालाब पर जा सकता हूँ। तू हिंदू है लेकिन है अछूत! तू नहीं जा सकता! तू मुसलमान बन जा, फिर देखना कि परसों मैं तुझे इसी तालाब के पास से ले जाता हूँ या नहीं! अरे, तालाब का पानी ग्रहण करना तो क्या, तू मुसलमान बन जा—जल्द ही मुसलमान लोग इन काफिरों की स्त्रियों का पाणिग्रहण करनेवाले हैं, समझा! चल अब तू मुसलमान होने का संकल्प कर ले। 'किया' कह दे। कह दे कि 'मैं कुरान का मंत्र बोलूँगा' जिससे तेरा वो बच्चा तत्काल ठीक हो जाएगा और इन निर्दयी ब्राह्मणों का और स्पृश्यों का बदला भी लिया जाएगा।'' उसका भाषण सुनना, अपनी ही चिंता में मग्न उस थिय्या को बिलकुल असह्य हो गया। उसने क्रोध से कहा, ''बच्चा ठीक नहीं हुआ—वह मर भी गया तो भी मैं मुसलमान नहीं बनूँगा। ब्राह्मण आदि हिंदुओं की इस निर्दयता का बदला कैसे लेना है यह मेरा प्रश्न है, आपका नहीं। और जो सदय मनुष्य प्रार्थना करते-करते गीले कपड़ों से ही मेरे लिए वैद्य के पास भागते हुए गया, वह भी ब्राह्मण ही है!'' अब निराशा और क्रोध से लाल होकर मौलवी ने कहा, ''चांडाल! काफिर! 'सुरतुल बय्यन' अध्याय में अल्लाह द्वारा मूर्तिपूजकों को फरमाई भयानक नरकाग्नि की सजा तुझपर गिरे। जैसे तू कहता है उसी तरह तेरा बच्चा मर जाए। नहीं, नहीं, तुम काफ़िरों को यह खुदा का कहना, यह कुरान तब तक सच्चा नहीं लगेगा जब तक तुम्हारी गरदन पर तलवार नहीं गिरती। ठहरो, वह दिन भी दूर नहीं है।'' मुट्ठियाँ कसकर उन्हें तानते हुए वह मौलवी शाप देकर चला गया।

इतने में दवाई लाने गया वह ब्राह्मण भी दवाई लेकर वापस आया। उसके साथ वह नायर वैद्य भी आया था। कंबू थिय्या अछूत जाति में जन्मा था, फिर भी वह अच्छा पढ़ा-लिखा था और कालिकट में एक मलयालम भाषा की साप्ताहिक पत्रिका चलाता था। उसने मलयालम भाषा तथा अंग्रेजी ग्रंथों से हिंदू धर्म का काफी अध्ययन किया था। इतना ही नहीं, वह संस्कृत भी अस्खलित रीति से पढ़ सकता था और बहुत-कुछ समझ भी सकता था। भगवद्गीता उसे मुखोद्गत थी। मालाबार में आज संस्कृत भाषा मातृभाषा की तरह बोलनेवाले ब्राह्मण परिवार तो हैं ही, लेकिन चुनिंदे सौ-सवा सौ संस्कृत श्लोक मुखोद्गत करनेवाले थिय्या आदि अछूत लोग भी पाए जाते हैं। इतना ही नहीं, बल्कि संस्कृत श्लोक वहाँ जन-साधारण को इतने परिचित हैं कि भर्तृहरि के नीतिशतक के चुनिंदा श्लोक अनपढ़ मुसलमानों के मुँह से भी लेखक ने सुने हैं। कंबू थिय्या की अस्पृश्यता को छोड़कर बाकी विषयों में स्पृश्य लोग भी उसकी विद्वत्ता के कारण उसे मानते थे। कृष्णा नायर वैद्य तो उसे बहुत मानता था। तब उसके साथ—अर्थात् लगभग पचास फीट की दूरी रखकर वह महारबाड़े (अछूत बस्ती) में गया और उस बच्चे का यथोचित इलाज कर वापस

लौटा। बच्चे के कुछ ठीक हो जाने पर कंबू के साथ जो थिय्या युवक उस मौलवी का भाषण सुन रहा था, उसने कंबू से कहा, ''बड़े भैया! मुझे माफ करना। वह मौलवी जिस प्रकार कहता है उस प्रकार, कुरान ईश्वर की ही प्रकट की हुई पुस्तक होगी, ऐसा मुझे लगता है।'' कंबू ने हँसकर कहा, ''वह कैसे?'' युवक ने कहा, ''क्योंकि, वह मौलवी वही बात जोर-जोर से बार-बार कह रहा था।''

''तो फिर कोई भी बात केवल किसीने बार-बार जोर से कही तो क्या सच हो सकती है? दो और तीन मिलकर सात हो जाते हैं और यह ज्ञान मुझपर ईश्वर ने प्रकट किया है, यदि मैं ऐसा सौ बार जोर से कहूँ तो क्या तू मानेगा?''

''नहीं, नहीं। यह मेरे साक्षात् ज्ञान और अनुभव के विरुद्ध होगा। यह बुद्धि को जँचता ही नहीं।''

''तो फिर दामू, कुरान ईश्वर-प्रणीत है, बल्कि वही एक ईश्वर-प्रणीत पुस्तक है, यह बात बुद्धि को जँचेगी, ऐसा कुछ सबूत तू बता दे और सुन, जिन्हें कुरान ईश्वर-प्रणीत लगता है वे खुशी से वैसा मान सकते हैं। लेकिन हमें अगर उसके सिद्धांत समाज-नाशक, निष्ठुर अथवा अविश्वसनीय लगें तो उन्हें तलवार की नोंक से नरकाग्नि की ज्वला में तपाकर हमारे ह्रदय पर दाग देते हुए जबरन कुरेदने का यत्न क्यों किया जाए?''

''बड़े भैया, आप जैसे अस्पृश्यों पर हिंदू धर्म जो इतना अन्याय करता है कि उसे उनके धर्म का उपमर्दन करनेवाला और काफिर (धर्मभ्रष्ट) समझनेवाला मुसलमान भी हमसे अधिक पवित्र लगता है, गाय की हत्या करनेवाला और भगवान् की मूर्ति को पत्थर माननेवाला मुसलमान उनके तालाब पर जा सकता है, लेकिन राम-कृष्ण की पूजा करनेवाले हम, उन्हींके बांधव, पापयोनि ठहराए गए जो उन्हें स्पर्श नहीं कर सकते—जिस हिंदू धर्म में यह भयानक अन्याय पुण्य माना जाता है, उस हिंदू धर्म की अपेक्षा क्या मुसलमान धर्म श्रेष्ठ नहीं, जो अस्पृश्य जाति बिलकुल नहीं मानता और सभी मनुष्यों को समान समझता है?''

''अरे पगले,'' स्नेह भरी क्षमाशीलता से उस युवक की पीठ पर हाथ रखते हुए कंबू ने कहा, ''देखो, शब्दों में अंतर से विचारों में कितनी गड़बड़ी हो जाती है। तूने कहा कि हिंदू धर्म अन्याय करता है—लेकिन यह तू कैसे कह सकता है कि हम अस्पृश्यों पर कुछ देर पहले जो निर्दय अत्याचार किया गया, वह हिंदू धर्म ने किया? वह अत्याचार हिंदू समाज कर रहा है, ऐसा कहना और फिर वह भी सोच-विचार के उपरांत कुछ गलत लगता है, क्योंकि हम अस्पृश्य भी हिंदू समाज ही के अंतर्गत हैं। इसलिए यह कहना उचित होगा कि हिंदू समाज के कुछ लोग—जो स्पृश्य समझे जाते हैं—अस्पृश्य समझे जानेवाले हम लोगों पर कुछ अत्याचार करते हैं। एक बात

ध्यान में रखना कि हिंदू समाज में अस्पृश्यता का पातक केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ही नहीं करते बल्कि उस पातक के भागधारक हम थिय्या भी हैं। कुछ देर पहले जब नायर ने हमें 'हमें मत छूना' कहा तब हम अस्पृश्यों को जितना गुस्सा आया, जो सही भी था—उतना ही गुस्सा माँगा के उस लड़के को भी आता होगा जब अस्पृश्य थिय्ये अपनी पाँति को या समाज को छुआछूत होगी, ऐसा सोचकर उसे भगा देते होंगे। इसलिए इस पाप का प्रक्षालन हम सब हिंदुओं को मिलकर करना चाहिए। पर उस पाप-प्रक्षालन का मार्ग मुसलमान होने में है, यह बात तुझे जँची कैसे? एक बार नहीं, हजार बार केवल छुआछूत के प्रश्न तक हिंदुओं की अस्पृश्यता हम मान सकते हैं। परंतु वह भयानक अस्पृश्यता नहीं मान सकते, जिसे मुसलमान परमेश्वर की आज्ञा मानते हैं; क्योंकि बीस करोड़ मुसलमानों को छोड़कर बाकी जो सैकड़ों करोड़ लोग पृथ्वी पर हैं वे मुसलमानों की दृष्टि से अस्पृश्य ही हैं न? उनका कोई तारण नहीं, उन्हें मुक्ति नहीं, उनके हजारों पूर्वज, साधु, संत सभी नरक में गए, और जाएँगे! कुरान के वाक्य कहते हैं कि पैगंबर की पुस्तक पर विश्वास न रखनेवाले नास्तिक को ईश्वर भी स्पर्श नहीं करेगा। इसका अर्थ है कि उनकी दृष्टि से कुरान भी स्पृश्यास्पृश्य विचार मानता है। हम जैसे हिंदू अस्पृश्यों को कम-से-कम पुण्याचरण से पुनर्जन्म में स्पृश्य होने की आशा है, परंतु मुसलमानों की दृष्टि से जो अस्पृश्य हैं और जिनकी संख्या सैकड़ों करोड़ है, उनके लिए पुनर्जन्म ही नहीं। वे नरक में ही सड़ेंगे, उनकी ओर ईश्वर भी नहीं देखेगा, केवल मुसलमान स्वर्ग में जाएँगे, बाकी सारी दुनिया तेरे रामचंद्र, श्रीकृष्ण, पांडुरंग, भक्त पुंडरीक आदि के साथ नरक में रहेगी! अस्पृश्यता बुरी होती है। परंतु इस भयानक मुसलमानी अस्पृश्यता के सामने हिंदू अस्पृश्यता क्या एक वरदान नहीं? और ऐसे देख कि अस्पृश्यता बुरी होती है, इसलिए हम सब हिंदू मिलकर उस रूढ़ि को काट देंगे। उसके लिए हिंदू धर्म ही का त्याग करने की कल्पना हम क्यों करें? अस्पृश्यता ही समूचा हिंदू धर्म नहीं। घर में किसी चूहे का या साँप का बिल हो, तो हम उसे बंद कर सकते हैं। परंतु उस एक बिल के लिए हमारे थिय्या जाति के अनेक पूर्वजों के पूर्वजों को पवित्र और प्रिय रहनेवाले इस हिंदू धर्म के मंदिर को ही छोड़कर दर-दर भटकते फिरने का कोई कारण नहीं।''

थिय्या लोग औरों की दृष्टि में यदि अंत्यज हैं तो भी उन्हें अपनी जाति का, रीति-रिवाजों का तथा धर्म का बड़ा अभिमान होता है। पूर्वजों को कोई निंद्य कहे, यह बात उनसे सही नहीं जाती। उनके इस प्रकार पूर्वजाभिमान तथा जाति प्रेम से ही वे अभी तक ईसाइयों या मुसलमानों के जाल में पूरी तरह अटक नहीं गए। उनमें अनेक साधु-संत पहले हो चुके हैं। आज भी कई बैरिस्टर, वकील, डॉक्टर तथा

पत्रकार उनमें बन रहे हैं। लेकिन उनमें से अनेक उतावले युवकों को हमारे हिंदू-समाज की अस्पृश्यता जैसी अन्यायी, घातक रूढ़ियाँ ही हमारे धर्म से जबरन पर-धर्म में ढकेल रही हैं। थिय्या जाति से पर-धर्म में जानेवाले युवकों को कुमार्ग से वापस लाने के लिए उनके जिन नेताओं के प्रयत्न चल रहे थे उनमें कंबू अग्रगण्य था। ऐसे हिंदू धर्माभिमानी अस्पृश्य बंधु की स्पृश्य लोगों द्वारा तालाब पर इतना अपमान होने के बावजूद, हिंदू जाति पर निष्ठा देखकर उस युवक का हृदय भर आया तथा उसने कंबू के पैरों पर सिर रखकर कहा, ''मैं अब हिंदू जाति की अस्पृश्यता जैसी नीच रूढ़ि को सुधारने के लिए अपना जीवन लगा दूँगा। आप जो भी मार्ग बताएँगे उस मार्ग से मैं हिंदू धर्म की सेवा करने के लिए सिद्ध हूँ।'' कंबू ने कहा, ''तो फिर आ जा, हिंदू धर्म की सेवा तथा रक्षा के लिए आज जितने स्वयंसेवकों तथा स्वयंसैनिकों की आवश्यकता है, उतनी कभी नहीं थी! मेरी यह आकांक्षा तथा महत्त्वाकांक्षा है कि जिस प्रकार आज तक ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों ने प्रमुख रूप से हिंदू धर्म की रक्षा की उसी तरह अब हम थिय्यों को करनी चाहिए। हिंदू धर्म के लिए धर्मवीरता जताकर उसकी त्रिभुवन में जय-जयकार कराने में स्पृश्यों-ब्राह्मणों की अपेक्षा हम अस्पृश्यों को अधिक शौर्य दिखाना चाहिए, अधिक सेवा कर दिखानी चाहिए, यह मेरी महत्त्वाकांक्षा है। चल, मालाबार के हम हिंदू लोगों पर जो भयानक आपत्ति आनेवाली है और वेद घोषों में मग्न हुए इन ब्राह्मणों को जिसकी बिलकुल कल्पना तक नहीं है, उसका सामना करने के लिए मेरे साथ चल।''

□

प्रकरण–२

संकट की सूचना

उस युवक को लेकर कंबू अपनी अस्पृश्य बस्ती को छोड़कर जो चला, तो एक लंबे रास्ते से गुजरते हुए गाँव की पहाड़ी चढ़ते-चढ़ते नारियल-सुपारी के वन के पास जा खड़ा हुआ। वहाँ उसे वन में रहनेवाले ब्राह्मण की नजर पड़ने तक चुपचाप खड़े रहना था, क्योंकि किसी ब्राह्मण के स्नान-संध्या के समय अगर उसका स्वर सुनाई दिया तो उसे छूत हो जाता! इसलिए दामू के साथ बीच-बीच में हाथ के इशारे से बोलता हुआ वह एक पेड़ के नीचे बैठ गया।

अब तक ब्राह्मणों के घरों में प्रात:काल के वेदघोष समाप्त हो चुके थे। हरिहर शास्त्री के दरवाजे के बाहर उनकी पंद्रह साल की बेटी और लगभग अठारह साल का बेटा नारियल के एक आगार स्थित बगीचे में फूल तोड़ रहे थे। बीच-बीच में वे दोनों संस्कृत श्लोकों की अंत्याक्षरी खेल रहे थे तथा दाँव चढ़ने पर हँसने तथा चिढ़ाने में मगन थे। यद्यपि हरिहर शास्त्री नंबूदरी ब्राह्मण थे फिर भी वे एक बार मद्रास तक हो आए थे। इसलिए इस दुनिया में रेलगाड़ी तथा तारायंत्र जैसी कई चीजें हैं, इसमें उन्हें संदेह नहीं रहा था। इतना ही नहीं, कई जन्म नारियल-सुपारी के वनों ही में गुजारने के कारण यज्ञशाला के बाहर अग्नि कौन से अन्य रूप धारण करती है, इसका ज्ञान जिनको बिलकुल नहीं था, ऐसे ब्राह्मणों को हरिहर शास्त्री द्वारा बताई गई रेलगाड़ी तथा तारायंत्र की कथाएँ जँचती नहीं थीं और उन्हें जताने के लिए हरिहर शास्त्री ने उनका पुराना संदर्भ सर्वज्ञ वेदों में पा लिया। हरिहर शास्त्री का पांडित्य महान् था और उसे मद्रास तक की यात्रा की धार लग जाने के कारण सद्यस्थिति की सामाजिक तथा राष्ट्रीय कल्पनाओं की कुछ पहेलियों को सुलझाने में न सही परंतु उन्हें काटने में वह समर्थ हो गए थे। उनके घर में नौकरों तक को संस्कृत भाषा थोड़ी-बहुत समझ में आती थी। वे अपने घर के बरामदे में खड़े अपने

दो बच्चों की लीला देख रहे थे, जो बगीचे में फूल तोड़ रहे थे। इतने में वहाँ कुमारिका पर दाँव लगने के कारण उसने अपने भाई से बनावटी गुस्से में कहा, ''भैया! अगर ऐसा है तो मैं खेलूँगी नहीं! यह श्लोक तुमने हमारे नियम के बाहर का कहा। यह श्लोक पंच महाकाव्यों में से नहीं है और हमारी प्रतिज्ञा है कि हम पंच महाकाव्यों से ही श्लोक कहें।''

''परंतु सुमति! यह श्लोक रघुवंश का ही है।''

''कदापि नहीं।''

''सचमुच है! चलो, लगी शर्त तुम्हारी और मेरी!''

''हाँ-हाँ, लगी शर्त, चलो पिताजी से पूछते हैं!'' ''पिताजी सुनिए,'' उसके भाई ने कहा, ''पिताजी! 'सीते दुस्सहनं वन!' यह श्लोक कालिदास का है न?'' ''नहीं बेटे'', शास्त्रीजी ने कहा, ''परंतु यदि सुमति ने स्वयं बताया कि वह श्लोक किसमें है, तो ही मैं समझूँगा कि उसने जीत लिया!'' ''यह रामायण से है।'' झट से सुमति ने कहा। शास्त्रीजी ने हँसकर कहा, ''यह सच है, परंतु रामायण के कुछ अनुष्टुप कालिदास के अनुष्टुपों से इतने सही-सही मिलते हैं जितने गीता के उपनिषदों से; इसलिए भैया की गलती हुई तो भी वह उतना बड़ा दोष नहीं है सुमति, जितना आप समझती हैं।'' ''न समझने लायक क्यों न हो!'' सुमति ने व्यंग्य से कहा। उसी समय उसके पैरों के पास लेकिन थोड़ी दूरी पर लहराता हुआ एक तेजस्वी साँप दिखाई देने लगा। शास्त्रीजी ने किंचित् भी न चौंकते हुए कहा, ''सुमति! देखो, वह मेरा फणींद्र तुम्हारे पैरों के पास कुछ विनति कर रहा है। तुमने आज सुबह फूल तोड़नेवाला वह गाना नहीं गाया, इसलिए वह आया होगा। सुनाओ उसे वह गाना!''

उस साँप को देखते ही वे दोनों 'फणींद्र, फणींद्र ' कहते हुए उसके साथ खेलने लगे। कभी चुटकियाँ बजाकर तो कभी सीटियाँ बजाकर वे उसे आगे-पीछे बुला रहे थे। इस खेल के साथ दो-तीन और नाग बिल से बाहर आए और उस खेल में हिस्सा लेने लगे। अपने यहाँ जिस प्रकार हम बिल्लियों तथा कुत्तों को पालते हैं, उसी प्रकार मालाबार में साँपों की सभी जातियों को लोग घर में, आँगन में बैठने देते हैं। जिस तरह हम आमतौर पर यह नहीं सोचते कि कुत्ता पागल हो जाएगा और फिर वह प्राणघातक होगा, उसी तरह वे लोग यह कल्पना नहीं करते कि साँप कदाचित् काटेगा। परंतु कभी जाने-अनजाने में भी झल्लाकर साँप काटता नहीं ऐसी बात नहीं। साँप को मारना प्रायः क्रूरता समझी जाती है और इसी कारण कई जगह पालतू पशु की भाँति साँप भी आँगन से बरामदे में और बरामदे से आँगन में घूमते-फिरते दिखाई देते हैं।

हरिहर शास्त्री के बगीचे के साँपों का अधिकार केवल प्रेम पर था, धार्मिक दया अथवा सामाजिक रूढ़ियों के रूप में नहीं था, बल्कि उन सर्पों के बारे में उन्हें लगभग वत्सलता प्रतीत होती थी। क्योंकि जो नाग उस लड़की के पैरों के आसपास प्यार से चक्कर काट रहा था, हरिहर शास्त्रीजी के वृद्ध पिताजी ने मरते समय अपने पोते की तरह उसे 'इसे भी सँभालो' कहकर उनके पल्ले में डाला था। वह वृद्ध एक दिन धुआँधार वर्षा के समय किसी वन से आ रहा था। सिर पर पुराने जमाने के चिकने टाट का छाता था। उस वन में लगातार पानी बरसने के कारण सारे जीव-जंतु ठंड से पथरीले-से हो गए थे। ऐसे समय किसी नागचंपक पेड़ के तले से गुजरते समय उस वृद्ध ब्राह्मण के छाते पर नाग का एक बच्चा गिरा। गिरते ही वह छाते के ऊपरी डंडे को लपेटकर वहीं चिपका रहा। घर आते ही उस वृद्ध के मन में दया आई और उसने उस बच्चे को गरम कपड़ों में लपेटकर रखा। धीरे-धीरे फूलों के बगीचे में उसके लिए एक छोटी सुंदर बाँबी भी बनाई। वहाँ वह बच्चा बढ़ते-बढ़ते दूसरों को भयानक लगनेवाला लेकिन उस वृद्ध के कंधों पर, हाथों पर किसी बच्चे की तरह खेलनेवाला नाग बन गया। उस बगीचे की अन्य नाग-स्त्रियों के साथ उसका नाता जुड़ गया और यथाकाल उसकी संतति भी बढ़ने लगी। ये सभी साँप उस बगीचे के आसपास हमेशा घूमते-फिरते थे और पासवाले अनाज के कोठार पर ही रात को पहरा देते थे। एक दिन कुछ चोर रात को शास्त्रीजी के घर में घुसकर अनाज और धन लेकर जा रहे थे। दरवाजे के पास आते ही उस प्रचंड नाग ने रास्ता रोक-सा लिया। फुफकार करते तथा भयानक फन उठाते हुए वह सामने खड़ा रहा। उसे देखते ही दबे-सहमे हुए वे चोर शस्त्र उठाकर दौड़ पड़े लेकिन तभी उस नाग ने पीछे तथा एक ओर से आगे बढ़कर उन चोरों को घातक तरीके से डँस लिया और अँधेरे में खिसक गया। वे चोर तीस-चालीस फीट तक भी जा नहीं पाए कि बेहोश होकर गिर पड़े। सुबह वृद्ध शास्त्रीजी उठे तो उन चोरों में से कुछ चोर चुराए हुए द्रव्य की गठरियों पर ही सर टेककर मर चुके थे, कुछ विष के भयानक प्रभाव से मृत्यु के पास पहुँच गए थे और उन सबके आसपास किसी कर्तव्य-कठोर पुलिस अधिकारी की तरह चक्कर काटता हुआ वह नाग पहरा देता हुआ शास्त्रीजी को नजर आया। चोरी के लिए प्राणदंड की सजा बहुत ज्यादा है। यह सोचकर उस दयालु ब्राह्मण ने तुरंत साँप के विष पर प्रयोग किया जानेवाला उपाय, जो मालाबार में कइयों को पता होता है, करते हुए चोरों को होश में लाकर छोड़ दिया। तब से इस गाँव में इस नाग की ख्याति हो गई कि वह शास्त्रीजी के घर पर पहरा देने के लिए जन्म लेकर आया हुआ उनका कोई पूर्वज है। इस बात से भी विशेष एक दूसरी बात यह थी कि उस नाग का बचपन ही से उस सुंदर कुमारिका पर प्रेम प्रकट था। साँप

के प्रेम के कारण कुछ कुमारिकाओं का जीवन धोखे में आने की अद्‌भुत घटनाएँ कभी-कभी घटती हैं। लेकिन इस नाग का उस कुमारिका से जो प्रेम था वह उतना अशिष्ट नहीं था जो उसकी जान को खतरे में डाले। वह ठीक किसी चतुर प्रेमी की तरह उसकी आज्ञा में रहता था। उसके आसपास घूमने, उसके हाथों में दूध क्यों न हो, उनका स्पर्श पाने आदि में वह नाग अपना पूरा दिन खूब आनंद में बिता लेता था। कभी-कभी तो उसे ऐसी उच्छृंखल इच्छा होती थी कि उसके बदन को लपेटकर उसके मुख की ओर टकटकी लगाए बैठा रहे और अगर वह पूरी न हुई तो वह दूध ही नहीं पीता था। जब सुमति कम-से-कम अपने हाथ को, कोमल तथा नाग के बदन से भी कांतिमान और मृदुमांसल नागिन की तरह शोभनेवाले अपने हाथ को आगे बढ़ाकर, उसपर उसे कुंडली मारने देती तथा उसकी आँखों को अपने मुख की चाँदनी पीने देती, तब कहीं वह नाग दूध पीता था। हरिहर शास्त्रीजी उसका यह सारा लाड़ पूरा करते थे। सुमति और उसके सारे परिवार को वह और उसकी संतति अपने ही घर के सदस्य लगते थे।

साँप के साथ खेलते-खेलते सुमति की दृष्टि ऊपर पड़ी तो उसने देखा कि कुछ दूर खड़े होकर कोई उसे हाथ से संकेत करते हुए कुछ कह रहा था।

"पिताजी! देखिए, वे कोई हैं! लगता है वे हमारे पास आ रहे हैं।"

"लेकिन वे उधर ही क्यों खड़े हैं?" हरिहर शास्त्रीजी ने ऊपर देखते ही कहा, "वह थिय्या लोगों का नेता कंबू होगा।"

कंबू के बारे में हरिहर शास्त्रीजी द्वारा प्रशंसा को सुमति ने सुना हुआ था। इसलिए उसने कहा, "पिताजी, ऐसे विद्वान् मनुष्य को यहीं क्यों नहीं बुलाते?" शास्त्री ने कहा, "वाह! थिय्या लोगों को अगर यहाँ बुलाया तो कल यहाँ के सभी ब्राह्मण मुझे यहाँ से भगा देंगे। मैं ही वहाँ चला जाता हूँ।" सुमति ने झट से हँसकर पूछा, "पिताजी क्या यह सच है कि ये थिय्या लोग, ब्राह्मणों की बस्ती में घूमने-फिरनेवाले इन कुत्तों से भी गंदे और इन साँपों से भी भयानक होते हैं?" ऐसा व्यंग्यात्मक प्रश्न सहजता से तथा खिलाड़ी भाव से करती हुई वह कुमारिका घर के भीतर चली गई और शास्त्रीजी अपने युवा बेटे के साथ उस थिय्या की ओर चल पड़े। सुमति अपने उस पीछेवाले घर के पास जाकर खड़ी हो गई, जहाँ से उस थिय्या का अपने पिताजी के साथ हो रहा वार्त्तालाप वह यदि सुन नहीं सकती तो कम-से-कम देख सकती थी।

हरिहर शास्त्रीजी उस ब्राह्मणागार में से चल रहे थे जो किसी तपोवन की भाँति शांत तथा निर्भय लग रहा था। बीच-बीच में कोयल ऊँचे स्वर में गाती थी तो कहीं गाएँ रंभाती थीं। कहीं-कहीं वेदों का पठन सुनाई देता। किसी जगह दो-तीन

शास्त्री मिलकर अत्यंत गंभीरता से इस अत्यंत महत्त्वपूर्ण विषय पर बहस करते हुए दिखाई दे रहे थे कि फेरा डालने के समय हर दो कदमों में कितना फासला होना चाहिए, इस बारे में स्मृति में कोई स्पष्ट व्यवस्था बताई गई है या नहीं, और यदि नहीं बताई गई है तो वह व्यवस्था कैसी बनाई जाए। शीघ्र ही शास्त्रीजी उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ कंबू खड़ा था और यथोचित दूरी से कहीं अधिक आगे बढ़कर एकांत में उससे बातें करने लगे। कुछ बिलकुल धीरे से तो कुछ थोड़ी ऊँची आवाज में। इस तरह से उनका वार्त्तालाप चल ही रहा था कि कंबू ने कहा, ''इसमें कतई संदेह नहीं, महाराज! जिस घर के नीचे सुरंग बनाई जाती है वह घर उस सुरंग के बनते ही हिलने नहीं लगता, लेकिन यदि उस समय की, उस घर की स्थिरता तथा घर के लोगों की शांत निर्भयता के कारण किसीने यह कहा कि उस घर के नीचे सुरंग बनाने की वार्त्ता ही झूठ है तो उनको कौन समझा सकता है? सुरंग में चिनगारी पड़ते ही जो भयानक धक्का पहुँचेगा, वही एक बात उनकी इस धारणा को गलत ठहराएगी! आज आपकी इस ब्राह्मण बस्ती की स्थिति ठीक वैसी ही है। उस मौलवी ने दो बार मुझसे कहा कि अगर तू मुसलमान बनेगा तो एक महीने के अंदर तुझे— महाराज, इस वाक्य का उच्चारण भी नहीं करना चाहिए परंतु उसे माँ की न खुलनेवाली आँखों को खोलने में समर्थ बनानेवाला अनन्य अंजन समझकर उच्चारण कर रहा हूँ—और तेरे थिय्या लोगों को जो आज कुत्तों के रास्तों पर से भी छुआछूत के डर से जाने नहीं देते, उन्हीं ब्राह्मण मराठों की लड़कियों के मंचकों पर तुम्हें ले जाकर न बैठाऊँ तो मैं मौलवी नहीं! जो भी थिय्या आज मुसलमान बनकर जल्द ही होनेवाले इस कांड में भाग लेगा उस हर एक को अपनी मनपसंद ब्राह्मण की लड़की एक महीने के अंदर अर्पित की जाएगी! महाराज, आप क्रोधित न होइए! मालाबार में आज कुछ भी गड़बड़ी दिखाई नहीं देती; आपके इस तपोवन में केवल कोयलों का स्वर ही शांति को भंग करता होगा, ऐसी यद्यपि आज की स्थिति है, फिर भी अभी इस घड़ी में—इस तपोवन के नीचे मोपला मुसलमानों की क्रूर धर्मांधता की भयानक सुरंग बनाई जा रही है।''

''उस मौलवी जैसे दस-पाँच धर्मोन्मत्तों की मारधाड़ से डगमगा जाए, ब्रिटिश राज इतना दुर्बल तो नहीं है।'' उस थिय्या की बातों से किंचित् प्रभावित होकर चिंतायुक्त आवाज में शास्त्रीजी ने कहा।

''दस-पाँच धर्मांध मौलवी ही नहीं, बल्कि हर एक मोपला इस विद्रोह में शस्त्र लिये खिलाफत के लिए उठनेवाला है। इसके अलावा उस मौलवी ने मुझे यह भी बताया है कि 'अरबस्तान से समुद्र मार्ग से उन्हें बारूद पहुँचाया जानेवाला है तथा अफगानिस्तान का अमीर उसी समय पचास-साठ हजार की फौज लेकर

हिंदुस्थान पर हमला करनेवाला है। हमारे विद्रोह की ही देर है। हमारे विद्रोह कर देने के पश्चात् तीन महीनों के अंदर तुर्कस्तान का झंडा फहराता अनवर बेन हमें आकर मिलनेवाला है।' ऐसा वह मौलवी बार-बार कह रहा था।''

''यह अनवर बेन कौन है?''

''वह तुर्क है और हिंदुस्थान के सभी मुसलमान उसे सारी दुनिया के मुसलमानों को स्वंतत्र करने के लिए भेजा गया ईश्वरीय योद्धा समझते हैं।''

''अरे, परंतु वह अनवर अगर तुर्क है तो मोपलों का कौन लगता है? ये मोपला लोग तो हमारे हिंदुओं के वंशज हैं।''

''यह कैसे हो सकता है, महाराज! वे स्वयं अपने को अरबस्तान के मोहम्मद के कुरेशी वंश का समझते हैं। एक बार ये अरबी लोग या कुरेशी भी हिंदुओं के बारे में ममत्व की भावना रख सकते हैं लेकिन ये मोपला, हमारे हिंदुओं के ये वंशज हम हिंदुओं के बारे में उतनी भी ममत्व की भावना नहीं रखेंगे। दस साल पहले एक बार जब मोपला लोगों ने दंगा-फसाद किया था, तब उन्होंने पूरे अरनाड़ तालुके में हिंदुओं को जबरदस्ती मुसलमान बनाते हुए या जान से मारते हुए आक्रांत नहीं किया था? वह समय आपके ध्यान में होगा ही!''

''क्या कह रहा है तू, दंगा करनेवाले क्या यही मोपला थे?'' किसी मर्मांतक स्मृति से चौंककर शास्त्रीजी ने पूछा। उसकी अथवा उसके कारणों की स्मृति कुट्टम के ब्राह्मण आदि हिंदुओं को लगभग नहीं थी—क्योंकि वह उनके गाँव में नहीं हुआ था तथा अन्य गाँवों में क्या हो रहा है, इसकी माथापच्ची करने की चिंता इस अस्त-व्यस्त हिंदू समाज को होती तो ये दिन आते ही नहीं—परंतु हरिहर शास्त्री को उस दंगे की स्मृति जो इतनी तीव्रता से थी, उसका कारण भी उतना ही तीव्र था। उस दंगे में उनकी नानी को मोपलों ने पकड़ा था; उसे मुसलमानों के घर में एक वर्ष जबरदस्ती बंद रखा था और अंत में खाना-पीना छोड़कर उस साध्वी ने वहीं अपने प्राण त्याग दिए थे। उस स्मृति से तथा 'यही मोपला हैं' यह समझते ही शास्त्रीजी के हृदय में घबराहट सी हुई। कंबू थिय्या जो बात बता रहा था उसका भयानक मर्म उनकी समझ में अभी आ रहा था, अतः फिर से उन्होंने पूछा, ''क्या कहा? ये वही मोपला फिर से विद्रोह कर उठनेवाले हैं? लेकिन क्या रे, हमारे कुट्टम गाँव में तो उस समय ऐसा कुछ नहीं हुआ। उसका कारण यह है कि यहाँ पाँच-छह मोपलों के घर धर्मांध नहीं हैं, बल्कि ये बिलकुल गरीब और अपने इस गाँव के हिंदू अस्पृश्यों के ही वंश के हैं। यह सबकुछ वहाँ उस अरनाड़ गाँव में होता होगा, लेकिन यहाँ हमारे गाँव में कुछ डर नहीं होना चाहिए।''

''महाराज! क्या इस गाँव में संकट नहीं? आपके इस हिंदू अस्पृश्यों के वंश

के ही ये जो चार-पाँच गरीब लगनेवाले मोपला परिवार हैं, उन्हींमें से वह मौलवी भी है—जिसने मुझे तथा मुसलमान होने को इच्छुक हर एक थिय्या को मनचाही ब्राह्मण अथवा नायर कन्या देने की बात कही है। इस बार मोपला लोग पूरे मालाबार में एक साथ विद्रोह करनेवाले हैं। और हाँ, यदि यह समझ लिया कि अरनाड़ तालुका में ही हिंदुओं पर भयानक संकट आनेवाला है और हमारे कुट्टम में शांति रहनेवाली है तो मैं पूछता हूँ कि उस तालुका के हिंदुओं के संकट में क्या हमें भाग नहीं लेना चाहिए? उनकी स्त्रियों तथा बच्चों पर जो संकट आनेवाला है वह अपने ही परिवार पर आया है, ऐसा सोचकर उसके प्रतिकार के लिए क्या हमें दौड़कर नहीं जाना चाहिए? क्या उनकी बहनें हमारी बहनें नहीं? उनके मंदिर हमारे ही देवों के मंदिर नहीं? अगर ऐसा है तो उनका विनाश हमारा विनाश है। जहाँ समस्त हिंदू जाति के सुख-दु:ख का प्रश्न है वहाँ पेशावर की अस्पृश्य बस्ती की हिंदू झोंपड़ी रामेश्वर की नगर सीमा के अंदर ही समझी जानी चाहिए। आज अरनाड़ पर गुजरी है तो क्या कुट्टम को शर्म नहीं आनी चाहिए? इन मुसलमानों ने अरनाड़ में 'हिंदुओं की बेटियों को भगा ले जाकर उन्हें अपनी बीवियाँ बनाया और तुम्हारी मूर्तियाँ भ्रष्ट कीं' ये बातें यहाँ के मुसलमान जब कहते हैं तो क्या हमारे मुँह शर्म से काले-कलूटे नहीं हो जाते? कम-से-कम होने तो चाहिए, पर यह सब छोड़िए। मुझे क्षमा कीजिए। लेकिन मैं आपसे स्पष्ट कहता हूँ कि—अभी जो कांचनलता के समान मोहक तथा प्राण जैसी प्रिय आपकी कन्या फूलों की क्यारियों से होकर आपके घर में गई, महाराज! उसके पवित्र सम्मान तथा जीवन की होली न होने पाए—ऐसी अगर आपकी इच्छा हो तो समय रहते सावधान हो जाइए।''

हरिहर शास्त्री के पेट में घबराहट सी हुई। लेकिन मनुष्य स्वभाव विचित्र होता है। वह प्रत्यक्ष अपमान का घाव सह लेता है, लेकिन उसका नाम लेकर उसे सहने की बात कही जाए तो नहीं सह सकता। अपनी प्रिय, सुंदर तथा सुशिक्षित कन्या का नाम इस थिय्या द्वारा और ऐसी भयानक भविष्यवाणी के संदर्भ में लेना उनके लिए अधिक विषाद की बात थी, अत: उस भविष्यकालीन भय से घबराते हुए भी उनके चेहरे पर असंतोष की छाया फैल गई। लेकिन शीघ्र ही अपने आपको सँभालते हुए उन्होंने कहा, ''कंबू! तो फिर इस अनर्थ के प्रतिकार का उपाय क्या है? और तू मुझे यह बता, आजकल तो हिंदू-मुसलमानों की एकता स्थापित हुई है न? हिंदुओं ने खिलाफत को स्वधर्म की तरह अपनाया और इसलिए मुसलमान उनके शब्दों के बाहर नहीं जा रहे न? फिर तू जिस विद्रोह की बात कर रहा है, वह हिंदुओं के विरुद्ध कैसे हो सकता है?''

''महाराज! इस भविष्यकालीन अनर्थ का प्रतिकार कैसे करना चाहिए यह

जो प्रश्न आपने पूछा, इसका पहला उपाय यही है—सबसे पहले हमें हिंदू-मुसलमानों की जो एकता हुई है, वह हिंदुओं की सुरक्षा की पोषक है, यह धारणा नष्ट करनी चाहिए। आप जो कहते हैं उस वाक्य का पूर्वार्ध सच यह है कि हिंदुओं ने खिलाफत के प्रश्न को स्वधर्म के प्रश्न के समान समझकर अपनाया। लेकिन उसका उत्तरार्ध झूठ है। क्योंकि हिंदुओं ने खिलाफत को अपनाया, इसलिए उन्हें हिंदुओं के शब्दों के बाहर कदम नहीं रखना चाहिए ऐसा मुसलमान नहीं मानते, बल्कि हिंदुओं को उनके शब्दों के बाहर कदम नहीं रखना चाहिए ऐसा वे कहते हैं। यह सत्यस्थिति हिंदुओं के सामने लाकर असावधानी में किसी भी प्रकार इस विद्रोह की सहायता न करते हुए अभी से उसका खुला प्रतिरोध करके उनकी कमर तोड़ देनी चाहिए, यह बात हिंदुओं को समझा देना ही अनर्थ के प्रतिकार का पहला उपाय है। पहला है लेकिन इतना ही पर्याप्त नहीं, क्योंकि यह विद्रोह मुसलमान हिंदुओं के आधार पर नहीं कर रहे। हिंदू उनसे मिलें या न मिलें, उनको धर्मांतरित कर भ्रष्ट कर देना ही तो इस विद्रोह का एक महत्त्वपूर्ण आदर्श है, तथा क्योंकि युद्ध गर्जना होनेवाली है, इसलिए दूसरा उपाय यह होगा कि हम हिंदुओं को मिलकर अपनी सुरक्षा के लिए दल बनाना होगा। यह काम अभी ही शुरू करना चाहिए। वह मौलवी यहाँ से जो गया है, अरनाड़ जाकर प्राय: दो-तीन दिन में उनकी प्रमुख सभा में निवेदन करेगा कि कुट्टम के थिय्या लोग स्वेच्छा से मुसलमान नहीं होते; बाकी जातियों के बारे में तो पूछो ही नहीं! प्राय: कुट्टम देश का नाम उस टिप्पणी में दाखिल किया जाएगा जिसमें हिंदुओं के उन गाँवों में जबरदस्ती मुसलमान धर्म स्वीकारने को विवश करते हुए हिंदुओं की सारी संपत्ति काफिरों की बताकर जब्त की जाएगी और उस संपत्ति का, हिंदू स्त्रियों का, धर्मवीरों की न्यायसिद्ध लूट समझकर अपहरण किया जाएगा। यह भी निश्चित ही है कि इस लूट में यह पवित्र, निरपराध तथा लावण्यवती कन्या उस नीच मौलवी का हिस्सा होगी। महाराज, क्रोधित न हों, मुझपर क्रोधित न हों। जो क्रोध करना है वह पापाचरण करने के लिए प्रवृत्त इन नीचों पर करें। मैं तो केवल एक क्षण का समाचार समय पर पहुँचाकर उसके परिणाम से आपकी रक्षा के लिए आया हुआ पत्र हूँ। मुझे फाड़ने की बजाय उस समाचार पर ठीक से सोच-विचार कर उस संकट तथा दुष्टों से प्रतिशोध लीजिए!''

''जैसे तू कह रहा है वैसा ही सही! कंबू! चलो! कैसे शुरुआत की जाए, बताओ!''

''ठीक है, महाराज! पहले तो मैं अरनाड़ जाकर वहाँ मुसलमानों के प्रमुख केंद्र के लोगों को, जिन्हें नेताओं ने झूठी गप्पें लगाकर 'स्वराज्य' तथा 'एकता' की चीनी में घोली बेहोशी की गोलियाँ खिलाई हैं, उन हिंदुओं को होश में लाने का

प्रयत्न करूँगा। वे समय पर होश में आए तो ठीक ही है; नहीं तो कम-से-कम हम कुट्टम के हिंदू युवकों को तो धर्मरक्षण के लिए तैयार कर रखेंगे। थिय्याओं के युवक इस कार्य के लिए तत्पर हैं।''

कंबू के साथ आए हुए उस थिय्या युवक ने सहसा कहा, ''हाँ! बिलकुल ठीक! हिंदू धर्म की रक्षा के लिए हम मरने के लिए भी तत्पर हैं।''

''आप बस इस ब्राह्मणागार में बड़े आराम से खर्राटे भरनेवाले अपने उन बंधुओं को सावधान कर रखिए जो पांडवों के शिविर में द्रौपद्री आदि की भाँति हैं। मैं अरनाड़ से लौटते ही आपसे मिलूँगा।''

जब यह वार्त्तालाप इधर चल रहा था तब सुमति पहले कुछ देर अपने घर के पीछे खड़ी रही, फिर धीरे-धीरे आगे बढ़ती हुई नारियल के एक पेड़ के पीछे इतने फासले पर चुपचाप खड़ी हो गई जहाँ शास्त्रीजी तो उसे देख नहीं पाते, परंतु उस थिय्या को ठीक तरह से न सही, अस्पष्टता से तो वह सुन ही सकती थी। उस थिय्या युवक ने आगे बढ़ते हुए उसे देखा था तथा उसने भी उस युवक को अपनी ओर देखते हुए देखा था। थिय्या के शब्द उसने स्पष्टता से सुने थे। उस थिय्या युवक के ऐंठदार बदन को भी उसने गौर से देखना चाहा। उसके सुशिक्षित मन में दो बार यह विचार आया कि शरीर रचना के नाते देखा जाए तो इस थिय्या युवक को ब्राह्मण युवकों में छोड़ने पर उसे अलग से पहचाना भी नहीं जाएगा। फिर इसे अस्पृश्य क्यों माना गया? लहू, जाति, रूप इतना अभिन्न! फिर जो ब्राह्मण या क्षत्रिय साँपों को भी पालते हैं वे इन्हें इतनी निष्ठुरता से क्यों दुत्कारते हैं? यह सहानुभूतिपूर्ण विचार उसके मन में उमड़ ही रहा था कि अचानक उस थिय्या युवक की बार-बार उसकी ओर देखनेवाली नजरों से उसकी नजरें मिल गईं। उसे लगा कि उसके साथ बातें करे। उसकी दृष्टि में वह सहानुभूति का भाव देखने के लिए किसी भी महत्कार्य में अपने प्राण भी अर्पित कर सकता था।

इतने में कंबू तथा शास्त्रीजी का वार्त्तालाप समाप्त हुआ और विदा लेते समय कंबू ने साष्टांग प्रणिपात किया। कंबू लौट गया। लौटते-लौटते उस थिय्या युवक ने पीछे मुड़कर देखा तो ब्राह्मण कन्या की सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि फिर से उसपर पड़ी। वह वहीं छिपकर खड़ी थी। उसकी इच्छा के इतनी निकट! उसकी आशा जितनी सुंदर!

हरिहर शास्त्रीजी भारी कदमों से अपने घर की ओर निकले। अपनी नानी की वह भयानक अवस्था उन्हें याद आई, और उन्हीं राक्षसों की वैसी ही क्रूरता का शिकार अब उनकी अल्हड़ प्रियतम कन्या हो जाएगी! नहीं, यह भयानक विचार अपने मन में जुटा लेने का साहस भी उन्हें नहीं हो रहा था। उस वन से वापस लौटते

समय वे फिर से उसी घर के सामने से गुजरे, जहाँ शास्त्री लोग परिक्रमा के दो कदमों में कितना फासला होना चाहिए इस विषय पर स्मृतिशास्त्र के आधार पर बहस कर रहे थे। वह बहस अब पूरे जोश से हो रही थी! लेकिन शास्त्रीजी को अब वह बहस कर्णकटु लग रही थी और पता नहीं क्यों, उस बहस को सुनकर उनका भय मानो दुगुना हो गया। कंबू की बात उन्हें सच लगने लगी।

□

प्रकरण–३

अहिंसा के नशे में

कालीकट के एक विस्तीर्ण बँगले में खिलाफत मंडल की हिंदू शाखा की सभा लगी हुई थी। पंजाब से एक प्रख्यात तथा खिलाफत आंदोलन के प्रमुख नेता अल्लाबख्श मालाबार को आंदोलित करने आए थे। गाँव के हिंदू-मुसलमानों की ओर से उनका विराट् स्वागत किया गया। उस सभा में हिंदू-मुसलमानों की एकता के लिए हिंदुओं को क्या करना चाहिए इस विषय पर अल्लाबख्शजी का प्रभावकारी भाषण हुआ। इतना प्रभावकारी कि उनकी वापसी की शोभायात्रा के समय खान साहब की गाड़ी को हिंदू लोग स्वयं खींचते हुए ले गए। शोभायात्रा में एक बार किसीने 'वंदे मातरम्' का नारा लगाया, परंतु उसका साथ देनेवाला मूर्ख तथा अनुदार हिंदू कोई नहीं मिला! मुसलमानों ने उस शब्द के उच्चारे जाने पर शांत वृत्ति रखकर कोई दंगा-फसाद नहीं किया। हिंदू नेताओं ने तुरंत आज्ञा दी कि सभी को 'अल्लाह हो अकबर' का एक ही जयघोष करते हुए दुनिया को दिखाना है कि हिंदू-मुसलमानों की एकता दृढ़ हो रही है!

शोभायात्रा समाप्त होते ही रामनारायण नंबूदरी, माधव नायर, सीताराम चेट्टी आदि हिंदू नेता अल्लाबख्श के साथ उस बँगले में इकट्ठे हुए। कालीकट के खिलाफत आंदोलन के प्रमुख प्रवक्ता महानंदी अय्यर भी वहाँ उपस्थित थे, अतः सभा के अध्यक्ष स्थान पर उन्हीं को बैठाया गया। उन्होंने कहा, "आज के भाषण से कालीकट नगर के लोगों पर जो प्रभाव हुआ है उसका तुरंत लाभ उठाते हुए, खिलाफत आंदोलन के लिए हिंदुओं को जो करना है, उसकी शुरुआत अभी से करने के लिए यह सभा आयोजित की गई है।"

माधव नायर ने कहा, " 'खिलाफत आंदोलन के लिए स्वराज्य' ऐसा कोई विधान प्रस्ताव में किया जाए।"

इस पर क्रोधित होकर मौलाना ऐतखान ने कहा, ''स्वराज्य खिलाफत के सिर पर! हिंदू मुसलमानों के सिर पर! अगर ऐसा है तो मैं चला इस सभा से।''

लज्जित होकर माधव नायर ने कहा, ''क्षमा कीजिए, मौलवी! मेरे कहने का यह अर्थ कदापि नहीं था। यदि आपकी धार्मिक भावना को ठेस पहुँचती है तो प्रस्ताव में 'खिलाफत—स्वराज्य का आंदोलन' हम ऐसा विधान करेंगे।'' मौलवी ऐतखान ने कहा, ''बिलकुल नहीं! स्वराज्य की यह सनक आप बीच में इसलिए लाते हैं कि आपका हमारी खिलाफत पर विश्वास नहीं। यह हमारे धर्म का अपमान है।''

इतने में एक कोने से उठकर एक तेजस्वी पुरुष ने ढीठ भाव से कहा, ''लेकिन, मौलाना साहब! खिलाफत संस्था तथा आंदोलन मुसलमानों का होते हुए भी यदि हिंदू लोग उसका समर्थन करते हैं तो हिंदुओं के स्वराज्य-आंदोलन को मुसलमान इतना अपमानजनक क्यों समझते हैं?

''तुम मूर्ख हो!'' ऐतखान ने उछलकर कहा, ''खिलाफत हमारा धर्म है। उमर के पहले, अब्बास के पहले साक्षात् पैगंबर के साथ ही खिलाफत का जन्म हुआ है। लेकिन तुम्हारा स्वराज्य का यह आंदोलन आज का है, नया है, इसलिए वह अपमानकारक है।''

''स्वराज्य का आंदोलन नया नहीं,'' उस व्यक्ति ने कहा, ''मोहम्मद पैगंबर के पहले वह विक्रम ने किया था, कृष्ण ने किया था, रामचंद्र ने···''

''बस! बस! उस काफिर का नाम मत लेना। पैगंबर तथा कृष्ण! एक ही साँस में दोनों नाम! पैगंबर का यह अपमान है! चुप! नहीं तो जबान उखाड़ लूँगा।'' ऐसा कहते हुए मौलाना ऐतखान ने उस हिंदू पर हमला किया।

'हाँ-हाँ' कहते हुए लोग बीच में पड़े। अध्यक्ष महानंदी ने उठकर कहा, ''शांत हो जाइए, मौलानाजी! हम सब हिंदुओं की ओर से इस व्यक्ति की उद्दंडता के लिए आपसे क्षमा चाहते हैं। ऐ महाशय! यह सभा अनत्याचारी, असहकारवादी लोगों की है, तू यह कैसे भूलता है? यहाँ तूने अपने मुसलमान बंधुओं के साथ ऐसा अत्याचार का बरताव किया, यह हिंदू धर्म के लिए लज्जास्पद है। प्रस्ताव में 'खिलाफत का आंदोलन' इतने ही शब्द होने चाहिए ऐसा मैं प्रस्ताव रखता हूँ।''

''ठीक है!'' हाथ में माला लिये शांत भाव से बैठा हुआ एक मुसलमान मौलवी बोला, ''यही ठीक है। अपने प्रिय हिंदू बंधुओं के लिए हम प्राण भी देंगे। दोनों का लक्ष्य एक ही शब्द में व्यक्त होने से हमारी एकता की शोभा बढ़ती है, और फिर खिलाफत में स्वराज्य है; लेकिन स्वराज्य में खिलाफत होगी ही, ऐसा

नहीं है। इसलिए महानंदीजी ने जो निर्णय दिया वह ठीक ही है। महानंदी सचमुच महापुरुष हैं।''

''वे असली हिंदू हैं।'' सभा ने एक स्वर से कहा।

''केवल आशीर्वाद नहीं चाहिए। खिलाफत के लिए हिंदू लोग प्रत्यक्षत: किस-किस प्रकार की सहायता देते हैं, उसपर उनकी एकता की यह भाषा कहाँ तक सच्ची है, यह मुसलमान परखेंगे।'' मौलाना ऐतखान ने अपनी दाढ़ी को हाथ से चुपड़ते हुए कहा, ''खिलाफत के लिए हम मोपला लोगों के स्वयंसैनिकों के दल खड़े करनेवाले हैं। लेकिन मोपला लोग निर्धन हैं तथा उनका धन हिंदू भँवरों (जमींदारों) ने हरण कर लिया है, इसलिए मेरा ऐसा सोचना है कि स्वयंसैनिकों के खर्च का बोझ हिंदुओं को उठाना चाहिए।''

''उचित ही है।'' महानंदी ने कहा।

''मेरी ऐसी सोच है कि उन स्वयंसैनिकों के अधिकारियों में कुछ हिंदू गृहस्थ होने चाहिए।'' माधव नायर ने कहा।

''क्या! मुसलमानों पर अविश्वास! मुसलमानों पर हिंदू अधिकारी? यह मुसलमान धर्म का अपमान है। मुसलमान गुलाम होने के लिए नहीं जन्मे। वे राज्य करने के लिए जन्मे हैं।''

''क्षमा कीजिए! मौलाना साहब! मेरा यह उद्‌देश्य नहीं था।'' लज्जित होते हुए माधव नायर ने कहा, ''आपकी धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचती है तो मैं यह सुझाव देता हूँ कि उन स्वयंसैनिकों में मुसलमान अधिकारियों के नीचे हिंदू स्वयंसैनिक होने चाहिए।''

ऐतखान ने कहा, ''बिलकुल नहीं; खिलाफत की रक्षा के लिए मुसलमान स्वयंसैनिक रखना ही हमारा धर्म है। उमर के पहले, अब्बास के पहले पैगंबर के काल से मुसलमान खिलाफत की रक्षा का काम मुसलमानों ही को करना चाहिए, ऐसा हुक्म है। काफिरों को केवल जजिया देना चाहिए। लेकिन वे कभी भी प्रत्यक्ष स्वयंसैनिक नहीं बन सकते।''

''परंतु...'' माधव नायर जरा आग्रह से बीच में ही कह रहे थे कि ''चुप, तुम मूर्ख हो,'' ऐतखान ने फिर से उछलकर कहा, ''खिलाफत की रक्षा के लिए स्वयंसैनिक मुसलमान चाहिए, यही हमारा धर्म है, बताया न! तुम्हारी सूचना नई है, इसलिए वह हमारा अपमान है। हमारे धर्म के विरुद्ध कोई बोलेगा तो मैं खींच लूँगा।'' ऐसा कहते हुए मौलाना हमला करने लगे। 'हाँ-हाँ' कहते हुए लोग बीच में पड़े। अध्यक्ष महानंदी ने उठकर कहा, ''शांत हो जाइए, मौलवीजी! माधव नायर की इच्छा निश्चित ही यह दर्शानेवाली थी कि हमारे मुसलमान बंधुओं पर हिंदुओं

का विश्वास नहीं। मुसलमान गुलाम होने के लिए नहीं जन्मे। मुसलमानों का यह प्रण निश्चय ही अभिनंदनीय है। माधव नायर! हम यहाँ सभी अनत्याचारी, असहकारितावादी एकत्रित हैं। फिर भी आपने अपने शब्दों से मौलवी को दुःखी किया, यह आपको कैसे शोभा देगा? मैं निर्णय देता हूँ कि हमारे मुसलमान बंधुओं को खिलाफत की रक्षा के लिए स्वयंसैनिकों के दल खड़े करने का पूरा अधिकार है तथा उसके खर्च के लिए हिंदुओं को पूरा धन—जिसे ये मौलवी 'जजिया' कहते हैं, देना चाहिए।''

''ठीक है, ठीक है!'' हाथ में माला लिये हुए बैठे उस शांत मुसलमान मौलवी ने कहा, ''यही ठीक है। लेकिन हमारे परमप्रिय हिंदू बंधुओं के इस प्रेम पर मोहित होकर मैं ऐसे सुझाव रखता हूँ कि हिंदू जो धन देंगे उसे 'जजिया' न कहते हुए केवल 'चंदा' कहने की उदारता मुसलमानों को दिखानी चाहिए।''

''मौलवी महान् पुरुष हैं। मौलवी हमारे हिंदुओं का हित करनेवाले हैं।'' सभा में हिंदुओं की एकता गरज उठी।

''मौलवी मेरे छोटे भाई हैं,'' महानंदी ने कहा, ''और उनकी अत्यंत उदार सहूलियत का ऋण चुकाने के लिए मैं यह निर्णय देता हूँ कि यदि हिंदुओं की ओर से मोपला स्वयंसैनिकों का खर्च चलाने जितना धन स्वेच्छा से नहीं मिला तो उसे हर तरह के उपायों से वसूल कर लेने का अधिकार हमारे मुसलमान बंधुओं को है।''

''मंजूर! मंजूर!'' हिंदू लोगों ने कहा।

''महानंदी निस्संदेह महापुरुष हैं।'' मुसलमानों ने कहा।

''महानंदी मेरे बड़े भाई हैं।'' उस शांत मौलवी ने कहा।

''परंतु मेरी यह प्रार्थना है कि इस निर्णय के बारे में हिंदुओं को ठीक से सोचना चाहिए। मुसलमानों को हर उपाय से हिंदुओं से धन वसूल कर लेना चाहिए, इसका अर्थ क्या है? उनके घरों को लूटकर? या उनके जानवरों को बेचकर? या देवमूर्ति को...''

''ऐ काफिर! पकड़ो साले को, गिरा दो,'' कहते हुए मौलवी ऐतखान अपने साथियों के साथ उस पुरुष पर पागल शेर की तरह टूट-पड़ा। महानंदी भी क्रोधित से दिखाई दिए और जोर-जोर से बोलनेवाले उस तेजस्वी पुरुष से कहने लगे, ''यह अनत्याचारी लोगों की सभा है। लूटमार का नाम भी यहाँ मत लेना! मुसलमान बंधुओं पर हमारा विश्वास है। वे जो करेंगे, अच्छा ही करेंगे।'' उस भीड़ में भी बिलकुल न डगमागते हुए उस पुरुष ने कहा, ''जो लूटमार का नाम लेता है वह अत्याचारी है या जो लूटमार करता है वह अत्याचारी है?'' इस वाक्य से वह शांत बैठा हुआ मौलवी भी क्षुब्ध हुआ। सीताराम चेट्टी ने तो उस

मौलवी के भी आगे जाकर उस पुरुष से कहा, ''नीच! हिंदू-मुसलमानों की एकता को बिगाड़ता है। लूटमार का नाम इस सभा में!'' फिर उस पुरुष को जोर से एक ठूँसा लगाकर उसने कहा, ''तुम्हें मालूम नहीं कि हम अनत्याचारी-असहकारितावादी हैं।''

नारायण नंबूदरी ने उस पुरुष को लात मारकर पूछा, ''क्या तुझे पता नहीं कि सीताराम चेट्टी अनत्याचारी हैं?''

तब मौलाना ऐतखान भी वहाँ पहुँचे और उस पुरुष की गरदन कसके पकड़कर जोर से बोले, ''काफिर! क्या तुझे पता नहीं कि नारायण नंबूदरी अनत्याचारी और असहकारितावादी हैं?''

अब तो उस पुरुष की सहनशीलता समाप्त हो गई। उसने अपनी गरदन को जो दब रही थी, मौलाना की पकड़ से किसी तरह छुड़ाया और गुस्से से फड़कती उसकी दाढ़ी को एक हाथ से लपेटकर दूसरे हाथ से उसके मुँह पर जोर से तमाचा मारा। यह देखते ही उसके पीछे खड़ा एक युवक आगे बढ़ा और उसने उस मौलाना को उठाकर धड़ाम से जमीन पर पटक दिया। उसपर उस सभा के अनेक हिंदू उन दोनों पर टूट पड़े और उनपर लाठियाँ बरसाने लगे। वे दोनों लहूलुहान हो गए; लेकिन उन्होंने उस मौलाना को नहीं छोड़ा। थोड़ी देर बाद उन दोनों तथा बाकी लोगों के बीच स्वयं महानंदी खड़े हो गए और सभागृह कुछ शांत हुआ। महानंदी ने आज्ञा दी कि उन दोनों को अत्याचारी बरताव के कारण बाहर कर देना चाहिए।

माधव नायर ने झिझकते हुए कहा, ''लेकिन वास्तव में मौलाना ने ही पहले उनपर हमला किया था।''

''चुप रहो!'' मौलाना खौलकर बोले, ''किसी भी नास्तिक तथा मूर्तिपूजक पर आघात करना हमारा धर्म है। उमर के पहले, अब्बास के पहले, साक्षात् पैगंबर ने कुरान में हुक्म दिया कि पैगंबर पर विश्वास न रखनेवाले मूर्तिपूजक से कभी प्रीति नहीं करनी चाहिए। आघात करना मुसलमानों का प्रण है। लेकिन प्रत्याघात करने की यह जो हिंदुओं ने नई रूढ़ि शुरू की है, वह मुसलमान धर्म का अपमान है। यह सभा काफिरों की है। मैं इसे छोड़कर जाता हूँ, क्योंकि आप सभी उसी व्यक्ति के धर्मवाले हैं। यदि नहीं तो उसे जान से क्यों नहीं मार डालते?''

''ठहरिए, मौलानाजी! हम उसे जान से मार देते हैं।'' रामचंद्र चेट्टी ने कहा, ''पाजी कहीं का! हिंदू-मुसलमानों की एकता बिगाड़ता है। हम अनत्याचारी-असहकारियों को कलंक लगाता है!''

परंतु मौलानाजी की इतनी पिटाई हुई थी कि अब उन दोनों की ओर फिर

से ढिठाई से देखने की उनकी हिम्मत नहीं थी। पैर पर पैर रखते और जोर से बड़बड़ाते हुए वे सभा से निकल गए। उनके पीछे-पीछे माला लिये हुए वह मौलवी भी चल पड़ा। परंतु उस व्यक्ति ने उस मौलवी को दरवाजे में ही रोककर पूछा, ''क्या? तू कंबू?'' कंबू ने कहा, ''हाँ! और तू वही मौलवी है जो मुसलमान बनने पर हम थिय्याओं को उन्हीं ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों की लड़कियाँ बाँटनेवाला था।''

□

प्रकरण–४

यह है वह खिलाफत

तिरुरंगाड़ी नामक गाँव की प्रमुख मसजिद में अली मुसेलियर बैठा था। उसके आसपास सैकड़ों मोपलों का समूह बैठा था जिनके हाथ में भाला, तलवार तथा कुछ बंदूकें थीं। कुछ दूरी पर मोपलों की औरतें, बच्चे तथा आदमियों की काफी भीड़ लगी थी और वे सभी 'अल्लाह हो अकबर!' का नारा लगा रहे थे। उनमें से कइयों के बदन पर घाव थे और उनमें से लगातार खून बह रहा था तथा कोई-कोई कराह रहा था। उतावलेपन से अली मुसेलियर ने पूछा, "कासम, काफिरों को लाए कि नहीं? अल्लाह! तुमने इन ईमानदारों को, हम मुसलमानों को पहली विजय दिलाई! तुम्हारे अनंत आभार हैं। इन अंग्रेजों के राज्य के टुकड़े-टुकड़े कर दिए! इस अरनाड़ तालुका में एक भी कचहरी नहीं जहाँ कि गोरा चेहरा दिखता हो! बस! यारो, अंग्रेजों का राज खत्म हो गया। अल्लाह हो अकबर!"

"अल्लाह हो अकबर! यारो, लेकिन असली काम तो आगे है।" वह मौलवी—जो हमसे पहले से परिचित है—बोला, "हम किसलिए इन अंग्रेज पुलिसवालों के लहू में नहाए हैं? खिलाफत के लिए! लेकिन यह अंग्रेजों की पुलिस होती कौन है? देखो इस काफिर का सिर।" कहते हुए उस मौलवी ने अली मुसेलियर के पैरों के पास पड़े हुए सिपाहियों के तीन मुर्दों में से एक का सिर काटकर उसकी चोटी पकड़कर लटकाते हुए कहा, "यह देखो कि अंग्रेजों के सिपाही कौन होते हैं! इस काफिर की औरतों की जैसी यह चोटी देखो। यह दूसरा सिपाही! यह देखो चोटी! यह तीसरा काफिर देखो, यह देखो चोटी!" वह उसका भी सिर काटकर उसे चोटी से पकड़ना चाहता था, किंतु उस सिर पर वह बिलकुल दिखाई नहीं दे रही थी, क्योंकि वह सिपाही मुसलमान था। मौलवी ने फिर भी डाँटकर कहा, "यह भी हिंदू ही है! ये हिंदू लोग भी अंग्रेजों की तरह हमारे शत्रु

ही हैं। ये अंग्रेजों के ही साथ लगे हैं। अंग्रेजों के कहने पर ये मोपलों को तुरंत गोलियाँ मार देते हैं। क्या कोई भी मुसलमान यदि अंग्रेजों के ईश्वर ने भी कहा तो मुसलमानों के खिलाफ लड़ेगा?'' सभा से एक ही आवाज उठी, ''कभी नहीं! मुसलमान सब एक हैं। मुसलमान मुसलमानों के खिलाफ कभी नहीं लड़ा, न लड़ता है।''

सभा के इस शोर को उत्तेजना देते हुए मौलवी ने कहा, ''कभी नहीं! खलीफा जर्मनी की तरफ से होने के कारण सभी मुसलमान अंग्रेजों पर टूट पड़े हैं। अंग्रेजों को तुर्कों के खिलाफ लड़ने के लिए एक भी मुसलमान सिपाही मिल नहीं रहा।''

''एक भी नहीं मिल रहा!'' सभा ने आवाज उठाई।

''अंग्रेजों ने जिन हजारों पठान हिंदुस्थानी मुसलमानों को लड़ाई पर भेजा, उन सभी ने लड़ने से इनकार कर दिया!''

''सभी ने!'' सभा ने गर्जना की।

''जो मुसलमान तुर्कों के खिलाफ लड़ते रहे, समय आने पर तुर्कों के पास भाग गए!''

''सभी भाग गए!'' सभा ने नारा लगाया।

''आखिर अंग्रेजों के शिविर में एक भी मुसलमान नहीं बचा! अंत में अंग्रेजों की पराजय हुई, खलीफा ने इंग्लैंड पर हमला कर दिया।''

''इंग्लैंड पर!'' सभा ने गर्जना की।

''राह में जर्मन तुर्क का दोस्त बन जाता; लेकिन वह ईसाई था।'' इसपर अनवर पाशा ने कहा, ''आज तक तेरी सहायता की; लेकिन अब अगर तू मुसलमान बनेगा तो दोस्ती, नहीं तो आधे मिनट में बर्लिन शहर मिट्टी में मिला दूँगा।'' इसपर कैसर ने कहा, ''तू कहता है वह सच है। ईश्वर ने ही आज्ञा दी है कि मुसलमान सभी गैर-मुसलमानों से बलवान होंगे! सुरतुल-मुजादिक अध्याय में कुरान ने यह बताया है। तू बर्लिन का नाश मत कर। 'मैं मुसलमान बनूँगा' कहते हुए कैसर मुसलमान बना।''

''कैसर मुसलमान बना!'' सभा ने गर्जना की।

''और कैसर का उदाहरण देखकर अमेरिका का जार भी मुसलमान हुआ!''

''अमरिका का जार भी मुसलमान हुआ!'' सभा ने गर्जना की।

''और फिर अमेरिका का जार तथा कैसर को दाहिने और बाएँ हाथ रखकर अनवर पाशा ने फ्रांस की मसजिद में नमाज पढ़ी।''

''अनवर पाशा ने नमाज पढ़ी! अनवर पाशा धार्मिक मुसलमान है। वह हर

रोज शराब पीता हो तो भी चिंता नहीं।'' सभा गरज उठी।

''तो अब टोपीवाला सब मुसलमान बना। अब इस दुनिया में केवल यह अंग्रेज तथा अंग्रेज का अन्न खाकर उसकी सेना में हमारे खिलाफ लड़नेवाला हिंदू, ये दो काफिरी नहीं छोड़ते।''

''उन्हें काफिरी छोड़नी चाहिए। अमरिका के जार से तो वे बड़े नहीं। दाँत तोड़ देंगे!'' सभा ने गर्जना की।

''इसलिए अब मालाबार से अंग्रजों का राज उलथनेवाले वीरो! यह कार्य हाथ में लो।''

इसपर 'अल्लाह हो अकबर! पकड़ो हिंदू को! मारो हिंदू को! मुसलमान बनाओ काफिर को!' ऐसे शब्द एक साथ ललकारे गए। उसी समय कासम ने अली मुसेलियर से कहा, ''हुजूर! वो देखो काफिर पकड़कर लाए जा रहे हैं!'' तब अली मुसेलियर ने उतावलेपन से कहा, ''इधर लाओ उन्हें!'' तुरंत छह शस्त्रधारी मोपलों के पहरे में चार हिंदू अली मुसेलियर के सामने लाकर खड़े कर दिए गए। वे कौन थे?'

पहला आदमी महानंदी था। दूसरा माधव नायर। तीसरा रामचेट्‌टी तथा चौथा नंदी दत्त। जैसाकि कालीकट की सभा में तय हुआ था, ये चारों हिंदू नेता खिलाफत आंदोलन के लिए हिंदुओं से चंदा जमा करने के लिए अरनाड़ तालुका में घूम रहे थे। इतने में तिरुरंगाड़ी में दंगा-फसाद शुरू हुआ और अली मुसेलियर को पकड़ने के लिए सिपाहियों का एक दल सरकार की ओर से भेजा गया। लेकिन मोपला लोग अचानक तलवार लेकर उन सिपाहियों पर टूट पड़े, इसलिए उनमें से कुछ सिपाही मारे गए तो कुछ वापस लौटे। यह समाचार बिजली की तरह फैल गया और जहाँ-तहाँ मोपला लोग विद्रोह कर उठे। एक हफ्ते के अंदर अरनाड़ तालुका सचमुच ही मोपलों के अधिकार में गया। उस तालुका में कोई अंग्रेज अधिकारी नहीं रहा। कोई भी तारघर अथवा सरकारी थाना नहीं रहा। अली मुसेलियर ने अपने आपको मोपलों का प्रमुख सरदार घोषित कर विद्रोह का स्वरूप आगे चलकर कैसा होना चाहिए और विद्रोह के लिए शस्त्र तथा पैसे कहाँ से लाए जाएँ, यह सोचने के लिए एक सभा बुलाई। हिंदू लोग जो पैसे देनेवाले थे, वे अभी तक क्यों नहीं आए इसका उत्तर पाने के लिए वह इस खिलाफत आंदोलन के लिए चंदा जमा करनेवाले चारों हिंदू नेताओं को बंदी कर सामने ले आया था। उनके वहाँ पहुँचते ही अली ने खौलकर महानंदी से कहा, ''क्यों बे! तुम्हारे हिंदू लोगों ने खिलाफत के लिए अब तक कितने पैसे दिए? देखो, मोपलों के इस धर्मयुद्ध में पूरा खर्चा तुम हिंदुओं को देना पड़ेगा, समझे।''

थरथरथराता हुआ महानंदी चुपचाप खड़ा रहा लेकिन माधव नायर बोला, "खान साहब!" तभी उसके सिर पर जोर का एक घूँसा मारकर पहरेदार बोला, "काफिर! सरकार कहो।" तब माधव नायर ने कहा, "सरकार! मैं प्रथमतः इस विजय के लिए आपका हार्दिक अभिनंदन करता हूँ। 'हिंदुस्थान में एक साल में स्वराज्य!' कहते हुए हजारों ताविकों ने प्रतिज्ञाएँ कीं, सभाएँ बुलाईं, कपड़ों को जलाया, लेकिन पूरे हिंदुस्थान में एक साल के अंदर यदि किसीने सचमुच स्वराज्य स्थापित किया है तो वह मोपलों ने! आज दो-तीन तालुकाओं में सचमुच ही अंग्रेजी सत्ता नष्ट हो गई है। अब हमने जो प्राप्त किया है वह हिंदू-मुसलमानों की एकता के विस्तृत तथा दृढ़ बलबूते पर सबलता से कैसे स्थापित होगा, इस प्रश्न को हमें पहले सुलझाना चाहिए।"

"वह प्रश्न सुलझाने की चिंता तुझे क्यों है?" मौलवी बीच में बोला।

"न, न! ऐसे कैसे कह सकते हैं? हमारे बंधुओं को अनुकूल किए बिना हमें यश नहीं प्राप्त होगा। स्वराज्य में हिंदुओं का हिस्सा है ही। खिलाफत आंदोलन के लिए हिंदुओं ने सहायता की, यह सचमुच उनकी उदारता है। वे यद्यपि काफिर हैं फिर भी हम मुसलमानों को उनके साथ न्यायपूर्ण व्यवहार करना चाहिए। स्वयं पैगंबर ने मूर्तिपूजकों के साथ किए स्नेह के करार का पालन किया नहीं था?" यों गंभीरता से पूछते हुए एक सुशिक्षित दिखनेवाले मुसलमान ने उस सभा से कहा, "और हे मुसलमान लोगो! हिंदुओं पर जुल्म करके उनकी दुश्मनी अगर तुमने मोल ली तो अंग्रेजों पर कभी भी विजय प्राप्त नहीं कर पाओगे, यह बात ध्यान में रखना। मोपला हैं कितने? मुट्ठी भर।"

इसपर उस सुशिक्षित मुसलमान पर खौलकर मौलवी ने कहा, "लेकिन ये देखो, मेरे पास जो पत्र हैं! अफगानिस्तान का अमीर साठ हजार की सैन्य शक्ति लेकर कल ही पेशावर पहुँचा है। आज या कल वह लाहौर पहुँचेगा।"

"अल्लाह हो अकबर! अमीर ने दिल्ली काबिज की!" सभा में यह समाचार फैल गया और जयघोष शुरू हुआ।

मौलवी ने आगे कहा, "पैगंबर के बारे में कहना हो तो मैं तुझसे पूछता हूँ कि सुरतुल तौबा अध्याय के तिहत्तरवें अयन में क्या कहा है? क्या उसमें ईश्वर का ऐसा वचन नहीं कि हे मुसलमानो, तुम नास्तिक लोगों से, मूर्तिपूजकों से और दंभियों से जिहाद करो और उनपर जुल्म करो, क्योंकि वे जुल्म के पात्र हैं। तू दंभियों में से है, इसलिए तू ऐसा कहता है। तू मुसलमान ही नहीं; देखो इसकी दाढ़ी भी नहीं है!"

"इसे दाढ़ी भी नहीं! यह मुसलमान ही नहीं! यह हिंदू है, पकड़ो इसे मारो!

और उन हिंदुओं को भी।'' अत्यंत द्वेषपूर्ण उद्‌गार निकालते हुए सभा के लोग आगे बढ़ने लगे।

माधव नायर ने फिर से एक बार साहस करते हुए कहा, ''स्वराज्य तथा हिंदू-मुसलमानों की एकता के बारे में हम सब कई बार वचनबद्ध हो चुके हैं। तो भी हिंदुओं के पूरी तरह मुसलमानों पर विश्वास रखकर चंदा जमा करना जारी रखने पर भी विद्रोह के अनेक नेता हिंदुओं पर ही अत्याचार करने की साजिश कर रहे हैं! इस सब के कारण हिंदू लोग विद्रोह की सहायता करने में झिझकते हैं, इसमें आश्चर्य नहीं। तथापि हमने दस हजार रुपए खिलाफत के लिए दिए हैं तथा और भी इकट्‌ठा करेंगे। लेकिन स्वराज्य तथा हिंदू-मुसलमानों की एकता···।''

''बस करो। काफिर!'' अली मुसेलियर ने उतावलेपन से कहा, ''इन हिंदुओं का यह 'लेकिन' और 'परंतु' मरने तक खत्म नहीं होगा। यह व्याख्यानों वाली सभा नहीं है। यहाँ मरने-मारने का बाजार है, एक शब्द में निर्णय। एक घाव में आज्ञा पालन!'' उसने एक बार पूरी सभा पर नजर डाली और जोर से बोला, ''सुनो, सारे मुसलमानो, एक शब्द में विद्रोह का स्वरूप कैसा हो, वह सुनो! ये हिंदू लोग स्वराज्य, एकता के लिए शोर मचा रहे हैं। मैं सारी दुनिया से कहूँगा कि स्वराज्य यानी खिलाफत राज और हिंदू-मुसलमानों की एकता यानी सभी हिंदुओं का मुसलमान हो जाना। बस्स, एक शब्द भी इसपर किसीने निकाला तो गरदन उड़ा दी जाएगी।''

''स्वराज्य यानी खिलाफत राज! एकता यानी सभी की एक मुसलमान जाति। अली मुसेलियर की जय! अली मुसेलियर गाजी हैं!'' सभा में हर और धूम मच गई।

''हाँ, चलो।'' अली मुसेलियर ने आगे कहा, ''ऐ महानंदी, बोल एकता के लिए तू मुसलमान बनेगा कि नहीं?''

थरथराते हुए महानंदी ने कहा, ''सभी धर्म एक जैसे हैं। प्रमुख धर्म है अहिंसा···''

तलवार—लहू से सनी तलवार बाहर निकालकर अली मुसेलियर ने कहा, ''ये देखो अहिंसा! भाषण नहीं चाहिए। बोल, मुसलमान बनेगा कि नहीं!''

महानंदी ने कहा, ''बनूँगा—मारो मत! मैं मुसलमान ही हूँ!'' 'मुसलमान नहीं बनूँगा' कहकर आपके मन को दुःख देना अहिंसा तत्त्व के बिलकुल विरुद्ध है। इसलिए मैं मुसलमान बनूँगा।''

''हाँ चल, तू माधव नायर! बनता है कि नहीं मुसलमान?''

पूरी शक्ति इकट्‌ठी करके माधव नायर बोला, ''नहीं बनता, जा!''

"मारो! मारो!" एकदम से शोर हुआ। हर मोपला काफिर को पहले मारने का गौरव और सम्मान प्राप्त कर लेने के लिए तलवार लेकर नायर पर टूट पड़ा। बीस-पच्चीस तलवारें एक साथ बदन पर पड़ने से माधव नायर के टुकड़े-टुकड़े होकर नीचे गिरे। हत्या करनेवालों के बदन खून से भीग गए।

अली मुसेलियर ने कहा, "या अल्लाह! तुम्हारी दिलाई विजय के लिए काफिर के खून का यह पहला बलिदान मंजूर करें।"

"पहला नहीं! पहला नहीं!" कहकर शोर मचाते हुए दस मोपलों की टोली वहाँ आ पहुँची और कहने लगी, "हम मलापुर के लोग हैं। हमने अपने गाँव के सभी हिंदुओं को भ्रष्ट किया और जो धर्मांतरित नहीं हुए उनको मार डाला। आपके विद्रोह के आह्वान से पहले ही हमने गुप्त साजिश कर रखी थी!"

"अल्लाह हो अकबर! मलापुर गाँव पूरा मुसलमान हो गया।" सभा ने गर्जना की, "और मलापुर में काफिरों का बीज तक न रहा!" और एक के पीछे एक टोलियाँ वहाँ आती रहीं, अपने-अपने पराक्रम की घोषणा करती रहीं तथा सभा में उनकी प्रतिध्वनि धूम मचाती रही।

"बस!" मौलवी ने कहा, "बस! अब राजसभा विसर्जित हो रही है। बाकी समाचार और काम पर कल सोच-विचार किया जाएगा। तब तक ऐ ईमानदारो! जाओ, दसों दिशाओ में जाओ! गाँव-गाँव गिनकर जितने हिंदू मिलें उतनों को मुसलमान बनाओ। जो नहीं बनेगा, उसे हमारे पास लेकर आओ। नहीं आएगा तो तुम उन्हें वहीं जान से मार दो! आज से हमारे इस मालाबार के खिलाफत राज्य में अन्याय का या अधर्म का कृत्य कोई भी न करे ऐसी सख्त आज्ञा मैं दे रहा हूँ। मूर्तिपूजा, कुरान को न मानना और मोपलों ने यह जो धर्मयुद्ध पुकारा है, उसे अपना सबकुछ न देना, ये तीन महापाप जो भी करेंगे, उनके लिए इस लोक में इसी क्षण वध तथा परलोक में नरकाग्नि रखी हुई है। मालाबार में मुसलमानों का राज स्थापित हुआ है। इस राज में केवल पापभीरु लोग ही रह सकते हैं। तो जाओ, काफिरों को पकड़-पकड़कर मुसलमान बनाओ। नहीं तो मार डालो। उनकी संपत्ति तुम्हारी है। उनकी स्त्रियाँ तुम्हारी हैं। स्वेच्छा से देंगे तो लेना, नहीं तो जबरन ले जाओ।"

"मारो! लूटो! बलात्कार! इस राज्य में केवल पुण्यशील तथा पापभीरु लोग ही रहते हैं।" सभा ने सहस्र कंठों से गर्जना की।

यह शाम की वेला थी। किसीने घास-पात, किसीने मशालें जलाई थीं। कोई पूरब में तो कोई पश्चिम में भाग रहा था। ये हजारों मोपला दसों दिशाओं में हिंदुओं का शिकार करते हुए ऐसे भाग रहे थे मानो उनमें शैतान घुस गया हो। "जाओ! दसों

दिशाओं में जाओ!'' मौलवी चिल्ला ही रहा था।

यही हैं वे शब्द! किसी एक काल में इस भारतभूमि में बोधिवृक्ष की शीतल छाया के तले बुद्धत्व प्राप्त करके गौतम ने पूरी दुनिया के भूतमात्र की दया से द्रवित होकर यही शब्द उच्चारे थे कि 'भिक्षुओ! जाओ, दसों दिशाओं में जाओ और अमृतत्व का यह शीतल संदेश देकर भयतप्त जीवों को शांति प्रदान करो!'

वही शब्द यह मौलवी मुसलमानों से कह रहा है लेकिन कहाँ उस 'भिक्षु' का वह जाना और कहाँ इस 'ईमानदार' का यह जाना!!

□

प्रकरण–५

हरिहर शास्त्री ने तलवार उठाई

अब रात के बारह बजे होंगे। कुट्टम गाँव के नारियल-सुपारी के सुंदर वन में सभी ओर शांति थी। उस शांति के पलने में सुमति ऐसी गहरी नींद ले रही थी, जैसे कोई अल्हड़ बच्चा सोता है। उसके बालों की कोई लट कभी-कभी हवा के झोंके से उसके माथे पर मँडराती थी, कभी-कभी रुककर साँस छोड़ते समय उसका पल्लू जावानी से मस्त गज के गंडस्थल की तरह शोभायमान उसके वक्षस्थल पर जरा सा हिल रहा था। अभी-अभी निकले हुए चंद्र की एक चाटु किरन बकुल वृक्ष की छाँव में छिपकर किसी मुँदे कमल की भाँति सुंदर दीखनेवाले उसके निद्रित मुख को देख रही थी।

श्रीरंग के मंदिर में भी सभी ओर शांति थी। केवल एक दीप जल रहा था। बारह बजे थे, इसलिए अर्धनिद्रा में ही झूमते हुए पहरेदार ने मंदिर की घड़ी की घंटी बजाई और वह फिर से सो गया।

फिर आधा घंटा बीता-न-बीता होगा, उस मंदिर की पौड़ियों से लगभग सौ फीट के फासले पर एक जवान आदमी आया और उसने वहाँ के विशाल बरगद के नीचे सोए हुए लोगों में से एक को हिलाकर जगाया और कहा, ''कंबू! वे आए, उठो!'' झट से उठकर सावधान होते हुए कंबू ने कहा, ''कहाँ तक आए? कितने हैं? हथियार कौन से हैं, दामू!''

''लगभग सौ लोग होंगे। हथियार नहीं दिखाई दिए। वे ठीक ब्राह्मणवन की ओर जा रहे हैं।''

''तो चलो, श्रीरंग! हम हिंदुओं की रक्षा करें।'' कहते हुए कंबू ने उसके जो लगभग बीस-एक साथी वहाँ सोए थे, उन्हें जगाया और वे अपनी लाठियाँ, भाले, तलवार आदि सँभालकर ब्राह्मणवन की आरे निकल पड़े। ब्राह्मणवन की ओर आने

पर उन्होंने देखा कि हरिहर शास्त्री तीन-चार ब्राह्मण युवकों के साथ संकल्पित वृक्ष के नीचे बैठे थे। उन्हें देखते ही खिन्न होकर कंबू ने कहा, ''ये क्या शास्त्रीजी! तीन-चार ही लोग कैसे?''

शास्त्रीजी ने कहा, ''कंबू, मैं और अधिक कहाँ से लाता? पहले तो मेरे कहने पर कोई विश्वास ही नहीं कर रहा था कि मोपलों का विद्रोह होनेवाला है। उसमें भी कई लोगों ने कहा कि 'हमारे घर कौन आएगा? मंदिर में आए तो श्रीरंग म्लेच्छों की खबर लेने में समर्थ हैं! भगवान् की रक्षा हम मानव भला क्या करेंगे?' ऐसे लोगों को समझाने में समय न बिताते हुए मैं जो भी चार-पाँच स्वयंसेवक मिले उन्हें लेकर आया हूँ।''

''ठीक है,'' निराशा दबाकर कंबू ने कहा, ''जो हैं सो हैं। शत्रु चढ़ाई करने आया है। उनका रुख आपकी कन्या की ओर है। मौलवी ने उसे अपने खुद के लिए निश्चित किया है। ऐसे अधीर मत होना। जब तक मेरी जान में जान है तब तक मैं उसकी रक्षा करूँगा।''

''और मैं—दामोदर।'' वह युवा थिय्या बोला। उतने में उस वन के उसी ओर मोपलों की वह टोली पास आई। उसे थोड़ी देर रोककर मौलवी ने कहा, ''मुसलमानो, आज तीन दिन तक करीब-करीब दस गाँव हमने निर्वीर किए होंगे; जहाँ-जहाँ गए वहाँ-वहाँ एक 'अल्लाह हो अकबर!' के नारे से काफिरों को भयभीत किया, क्योंकि वे सारे असंगठित थे। ईश्वर ने तुम्हें तुम्हारे सारे पापों के लिए क्षमा किया है, क्योंकि तुमने पिछले तीन दिनों में महान् पुण्यकर्म किए; कम-से-कम छह सौ घरों में आग लगा दी, सैकड़ों काफिरों को मुसलमान बनाया, मूर्तियों को उलटी करके उनपर पेशाब किया, उनपर थूका। ईश्वर ने तुम्हें इसके लिए पारितोषिक दिए, स्वर्ग में काले नेत्रोंवाली अप्सराएँ मिलेंगी—कुरान शरीफ ऐसा कहता है—लेकिन इस लोक में तीन दिन से इतनी सुंदर काले नेत्रोंवाली स्त्रियाँ जो भोगने को मिलीं उससे भोगने की हमारी शक्ति ही कम पड़ गई। धन तो हर धर्मयोद्धा को इतना हासिल हुआ कि पीठ पर ले नहीं जाया जाता। लेकिन अब उन सभी सुखों के लिए ईश्वर के हम सचमुच ही कृतज्ञ हैं या नहीं, यह देखने की, असली परीक्षा की घड़ी आई है। इस गाँव में तुम्हें पिछले सभी गाँवों से ज्यादा जूझना पड़ेगा, क्योंकि शैतान खुद यहाँ के कंबू थिय्या नामक व्यक्ति के अंदर घुसा है। मैंने स्वयं उसे उसके अंदर घुसते हुए देखा। या अल्लाह! तू तो जानता है मैं क्या कह रहा हूँ। अल्लाह समर्थ है। इसलिए इस गाँव में हमें चुपचाप छापा मारकर ही कार्य करना चाहिए। ध्यान रखना कि ब्राह्मणों के इस वन में हर एक घर में पूरे मालाबार में दुर्लभ दस-दस पाँच-पाँच सुंदर लड़कियाँ भरी हैं। मैंने तो वहाँ मोपलों के जो

चार घर हैं उन्हें भी अपनी तरफ कर लिया है। वे प्राय: वहीं कहीं आकर मिल जाएँगे। कंबू की टोली को धोखा देने की मैंने ऐसी तरकीब निकाली है कि ब्राह्मणवन में हमें कोई बाधा आई तो उन थिय्याओं की महारबस्ती में तुरंत आग लगाई जाए। इससे कंबू के साथी अपने घर की रक्षा करने के लिए वहाँ चले जाएँगे और ये ब्राह्मण और नायर अकेले रह जाएँगे।''

''लेकिन उस गाँव में अगर इतना विरोध होने की आशंका है तो हम अगले गाँव में क्यों न चले जाएँ। सहजता से धर्म का प्रसारण और धन तथा यश जहाँ होता हो वह छोड़कर कठिनाइयों में क्यों पड़ें?'' दो-चार धर्मवीरों ने सहमते हुए कहा।

''लेकिन इस गाँव के ब्राह्मण और नायरों की स्त्रियों जैसी सुंदर स्त्रियाँ अन्य गाँवों में कहाँ मिलेंगी? मुसलमानों को धर्म के लिए संकटों को सहना ही चाहिए।'' मौलवी ने गुस्से से कहा। वह यह कह ही रहा था कि उस मुसलमान टोली पर कंबू थिय्या की टोली का कड़ा हमला हुआ। अचानक बड़ा शोर मचा। कंबू को जो समाचार मिला था, मोपलों की संख्या उससे कहीं अधिक थी। वे कम-से-कम दो सौ तक होंगे। परंतु कंबू ने पहले हमले में ही उनपर ऐसी धाक जमाई कि मौलवी के लोगों में भगदड़ मच गई और वह पीछे हट गया। परंतु पूर्वसंकेत के अनुसार मौलवी के लोगों ने उसी समय महारबस्ती में आग लगा दी। तब उस भयानक आग की लपटें देखकर तथा बेचारे महारों के घर के निद्रित लोगों का हो-हल्ला सुनकर थिय्याओं के कुछ लोग कंबू की बात न मानते हुए अपने-अपने घरों की रक्षा करने दौड़ पड़े। मौलवी ने उसी समय अचानक ऐसा आभास किया जैसे उनका रुख ब्राह्मणों के घरों पर न होकर श्रीरंग के मंदिर पर है और मुसलमानों की बड़ी टोली उस मंदिर पर टूट पड़ी। यह देखते ही, अपने घर-बार की रक्षा करने की अपेक्षा अपने मंदिर की रक्षा करना ही श्रेयस्कर है, ऐसा बताने पर भी जो थिय्या लोग उसे छोड़कर गए उनकी परवाह न करते हुए कंबू अपने पास के दस-पंद्रह लोगों के साथ श्रीरंग के दरवाजे में जा खड़ा हुआ। किंतु उसके साथ उसका विश्वासपत्र दामोदर नहीं था, उसे उसने उस निष्पाप तथा निर्व्याज मनोहर कुमारिका की रक्षा के लिए भेज दिया था।

देखते-ही-देखते कुट्टम गाँव में अचानक प्रलय आ गई। उस गाँव में रहनेवाले चार-पाँच मोपलों के घरों में छिपाकर रखे हुए शस्त्रास्त्र वहाँ की मोपला औरतें मुसलमानों को बाँटती हुई दिखाई दे रही थीं। एक बूढ़ी मोपला औरत हाथ में जलती हुई घास तथा मिट्टी के तेल का डिब्बा लेकर हिंदुओं के घरों में आग लगाती भाग रही थी। हिंदुओं में कोई जल गया, कोई मारा गया। वहीं कंबू अपने थोड़े से

लोगों के साथ श्रीरंग के दरवाजे पर लड़ रहा था। जहाँ-तहाँ आग, चीखें तथा असावधान अवस्था में संकट आने पर जनता की जो भयानक अवस्था होती है, वह दिखाई दे रही थी। मुसलमानों ने अब मंदिर पर जोरदार हमला किया था, लेकिन उनमें मौलवी नहीं था।

वह चुनिंदा लोगों को लेकर श्रीरंग की उस मूर्ति से भी अधिक मोहक, आँखों को अत्यंत आकर्षित करनेवाली तथा हृदय को लुभानेवाली दूसरी मूर्तियों को भग्न करने के लिए वहाँ उस ब्राह्मणागार में उस कुमारिका के शय्यागृह की ओर जा रहा था।

उसके पहले ही दामोदर थिय्या ब्राह्मणवन में आया था। उस वन के पास हिंदू-मुसलमानों का जो पहला संघर्ष हुआ और जिसमें मुसलमानों को पीछे हटना पड़ा, उस शोरगुल से ब्राह्मणवन के कई लोग चौंककर उठ गए थे। उन सभी को एकत्रित करते हुए तथा मुसलमानों के पीछे हटने के कारण समय का लाभ उठाते हुए वे जो इधर-उधर चले गए थे, उस वन की सुरक्षा में कुछ संगठित प्रयत्न करने के लिए हरिहर शास्त्रीजी तथा दामू उन्हें उत्तेजित करने लगे। रामशास्त्री, चिंतामणि तथा बाकी ब्राह्मण अपने-अपने घरों में से जो हथियार मिले, उन्हें लेकर बाहर निकले। उन बहुतेरों को इस बात का बहुत दुःख था कि वे तभी सावधान नहीं हुए जब कंबू ने कहा था।

लेकिन स्थूलेश्वर शास्त्री अब भी आशंकित थे। उन्हें एक भयानक आशंका भी होने लगी थी। कंबू थिय्या कहीं मुसलमानों से ही मिला हुआ तो नहीं! उन्होंने जब यह कहा तब बहुतेरों ने गुस्से से कहा, ''समझिए मिला। ये मोपला लोग छापा डाल रहे हैं! तुम्हारे मंदिर, तुम्हारी स्त्रियाँ, तुम्हारा धर्म किसीके भी जरिए क्यों न हो—भ्रष्ट हो रहे हैं, उनकी रक्षा करो, बस!''

''रक्षा!'' गुस्से से स्थूलेश्वर शास्त्री ने कहा, ''हरिजनों को ब्राह्मणों की गली में ले आए, उनकी छाया तुमने ले ली, उनके कंधों से कंधा लगाया! अब तुम्हारा धर्म रहा कहाँ, जो मैं उसकी रक्षा करूँ? लेकिन ये कौन? अरे, यह उस हरिजन का लौंडा! दाम्या, तू यहाँ मेरे आँगन में! समाप्त हो गया धर्म! इससे तो मुसलमान ही यहाँ आ जाते तो कौन सा अधिक भ्रष्टाचार हो जाता?''

''शांत हो जाइए, स्थूलेश्वर!'' चिंतामणि ने कहा, ''स्मृति में लिखा है कि आपातकाल में छुआछूत नहीं माननी चाहिए। उसपर यह शूर थिय्या युवक केवल हिंदुत्व के अभिमान से यहाँ लड़ रहा है।''

''लेकिन वह आपातकाल पुराण रहने भी दो!'' हरिहर शास्त्री ने गुस्से से कहा, ''वह हिंदू है इसलिए उसे मेरे घर में आना चाहिए। वह अभी धर्मवीर की

तरह लड़ा, इसलिए मैं उसके चरणों में वंदन करता हूँ। उसका यहाँ आना तथा मुसलमानों का ब्राह्मणवन में आना क्या समान भ्रष्टाकारी है? हाय, हाय, थोड़ी ही देर में यह सिद्ध होगा! वह थिय्या हरिजन या माँग यहाँ हाथ में तलवार पकड़े हिंदू-धर्म की रक्षा के लिए आया है। वह तुम्हारे आँगन में खड़ा है, तब भी भगवान् की मूर्तियाँ घर के मंदिरों में हैं, अग्नि अग्निकुंड में हैं, यज्ञोपवीत गले में है, प्राण शरीर में है। जरा रुकिए। संगठन के बिना ऐसे ही रुकिए और वह देखिए कि मुसलमान आ ही गए। देखो-देखो, फिर भगवान् की मूर्ति, अग्नि, यज्ञोपवीत, तुम्हारी स्त्रियाँ और वेदों की तुम्हारी पोथियाँ इन सबकी क्या हालत होगी; और कर लो आशंका का निराकरण कि महार और माँग एक ही हैं या दो?''

गुस्से से हरिहर शास्त्री ऐसा कह ही रहे थे कि मौलवी की टोली वन के पास आ पहुँची। अब उन्हें मोपलों के घरों में पहले से ही छिपाकर रखी हुई कुछ बंदूकें तथा दो पिस्तौल मिले थे और कंबू की टोली से कुछ लोगों के मंदिर की रक्षा के लिए तथा कुछ के हरिजन बस्ती की ओर जाने के कारण उनमें फूट पड़ी थी। मौलवी ब्राह्मणवन के पास आते ही खुलेआम चिल्लाया, ''मारो काफिरों को!'' उसके पीछे-पीछे भागते चली आई बुढ़िया ने अपनी घास जलाई और ब्राह्मणवन के पास दो-तीन नायरों के घर तथा घास की टाल को आग लगा दी। एक ढोल भी जोर-जोर से बजने लगा 'मारो काफिरों को!' हरिहर शास्त्री ने सुमति को कंबू के समाचार के बारे में कुछ विशेष जानकारी नहीं दी थी। वह रोज की तरह जैसाकि हमने अभी देखा था, गहरी नींद में सोई थी। चंद्रमा का प्रकाश उसके मुख को निर्भयता से देख लेने के बाद ढिठाई से नीचे खिसककर अब उसके शंख जैसे सुंदर कंठ में हार की तरह शोभायमान था। उसका वह साहस चंद्रहार की भाँति मनोहर दिखने के लिए उसके वक्षस्थल पर भी उतरेगा, इस भय से शायद बीच-बीच में हवा की लहर के हवाई जहाज में बैठ उसका वह किंचित् हिलनेवाला पल्लू उस चंद्रप्रकाश पर हमला कर रहा था। सुमति गहरी नींद में उसी तरह सोई थी। तब तक तो उस ब्राह्मणवन के दूर के सिरे पर पहला संघर्ष नहीं हुआ था। उस संघर्ष के दूर के कोलाहल से उसकी नींद जरा सी ढल गई। सपने में उसे लगा कि संस्कृत श्लोकों की अंत्याक्षरी खेलते-खेलते कालिदास का एक श्लोक बोलकर उसके भैया ने फिर से उपनिषद् का एक श्लोक बोला और उलटा फिर लड़ने लगा। वह फिर जरा सी सोई। थोड़ी देर बाद फिर जोर से शोरगुल होने के कारण वह एकदम चौंककर उठी। आँखें खोलीं तो सामने वह थिय्या युवक खड़ा था। एक क्षण उसे लगा कि वह सपने में है तथा उस दिन जब बगीचे में फूल तोड़ ही रही थी, उस समय का सपना अभी तक देख रही है; लेकिन दूसरे ही क्षण उसने उस दृश्य की

भयानक वास्तविकता समझी। उसके पिता ने अत्यंत अस्वस्थ मुद्रा में कहा, ''बेटा सुमति, जाग जाओ, डरना नहीं। देखो, हमारे ब्राह्मणवन में क्रूर लुटेरों का भारी हमला हो रहा है···।'' यह वाक्य आधा सुनते ही उसका चेहरा एकदम तन गया। उसे शक हुआ कि यह लुटेरा उसी टोली का होगा। वह उस युवा थिय्या को ही दोषी समझकर देखने लगी। उसके पिता ने फिर कहा, ''ऐसी स्थिति में तेरी रक्षा का यही एक उपाय मुझे दिखता है कि तू अभी तुरंत यहाँ से निकलकर किसी मार्ग से अपने मामा के गाँव चली जा। तेरी रक्षा के लिए तेरा भाई और मेरा यह विश्वस्त युवक थिय्या दामोदर जा रहा है।'' यह सुनते ही उस संकटमय स्थिति में भी उसके चेहरे पर संतोष की एक रेखा दिखाई दी, क्योंकि ऐसी सुंदर आकृति के हाथ से दुष्ट कृत्य नहीं किया जाएगा। यह स्वभाव, सहज मूर्ख तर्क फिर से एक बार सच हुआ जब उसे पता चला कि युवा दामोदर चोर नहीं बल्कि उसका रक्षक बनने जितना विश्वासी है। अचानक सुना हुआ वह भयानक समाचार उसके ध्यान में पूरी तरह उतरने से पहले ही उसके बाप ने कहा, ''हाँ, उठो बेटी, उठो! पागल है बिटिया! इसे अभी कुछ समझ नहीं।''

वहाँ ढोल का, आग की चड़चड़ का शोर और भी पास सुनाई देने लगा। जल्दी से उसके बाप ने, भाई ने और उस थिय्या युवक ने उसे शत्रु की तरह खींचकर पुरुषों का लंबा कुरता तथा टोपी पहनाकर पिछले दरवाजे से वन में निकाल दिया। हरिहर शास्त्री सामनेवाले दरवाजे तक पहुँचे ही थे कि मौलवी के लोग दस फीट पर आ गए थे। शास्त्रीजी का घर देखते ही मौलवी ने कहा, ''यही है, यही वह काफिर है। पकड़ो, मारो मत, पकड़ो।'' मोपला बंदूक चलाते हुए शास्त्रीजी के घर पर चढ़ाई करने आए। बंदूकों की आवाजें सुनते ही आसपास के घरों में लोग छिपने लगे, जो निःशस्त्र होने के कारण घायल हो गए थे। हरिहर शास्त्री ने भी दरवाजे बंद कर अंदर से पूछा, ''मौलवी, आपको क्या चाहिए? हम निरपराध ब्राह्मणों के घरों पर आप हमला क्यों कर रहे हैं? मोपला लोग अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह कर उठे थे, वे नाहक हमपर क्यों शस्त्र उठा रहे हैं?'' मौलवी ने कहा, ''तुम अगर अपने पास का सारा धन हमें दे दो, और घर के सभी लोगों के साथ मुसलमान बनो तो हम तुम्हें अपना समझेंगे। इतना ही नहीं, अपितु तुम्हारी उस सुंदर बेटी से मैं शादी करके तुम्हें इस खिलाफत राज्य में सम्मानित अधिकारी बनाऊँगा।'' उसके ये शब्द हलाहल की तरह झेलते हुए शास्त्रीजी ने कहा, ''आज का दिन आप हमें इस बात पर विचार करने के लिए देंगे तो कल हम आपकी बात मानेंगे। मेरी बेटी बीमार है, वह यदि आपकी इस उद्दंडता से घबड़ा गई तो उसकी बीमारी असह्य होगी।'' मौलवी ने कहा, ''मैं अकेला अंदर आता हूँ; दरवाजा खोल

दो।" "लेकिन आप मुझे धोखा तो नहीं देंगे?" "हमारी शक्ति देखो! तुमने अगर दरवाजा नहीं खोला तो उसे तोड़कर हम अंदर आ सकते हैं। लेकिन एक बार जो मुसलमान बन जाएँगे उन्हें तकलीफ न देना हमारा धर्म होगा, और फिर अगर तुम हमें अपनी बेटी दोगे तो हम भला तुम्हें धोखा क्यों देंगे।" "परंतु आज अगर आप हमें छोड़कर जाएँगे तो कल मैं सभी ब्राह्मणों से मुसलमान बनने की आग्रहपूर्वक विनती करूँगा, और वे बनेंगे भी। इसलिए आज के दिन लौट जाओ।" "न! न! ऐसा नहीं हो सकता। सीधी तरह से दरवाजा खोलता है कि घर को आग लगा दूँ? यह पूछने की सहूलियत भी, बकरे, तेरे लिए नहीं है, बल्कि तेरी उस कोमल अप्सरा के लिए है।" "और अप्सरा जैसी बेटी की रक्षा के लिए जब तक मेरे प्राण हैं तब तक मैं लड़े बिना नहीं रहूँगा। सुमति, क्या दरवाजा खोल दूँ? क्या कहा, नहीं खोलूँ? बस तो फिर मैं नहीं खोलता, जाओ।"

हरिहर शास्त्री सुमति को जोर से आवाज देने का बहाना करते हुए ये वाक्य बोलते रहे। उनके इस बहाने का इष्ट परिणाम भी हुआ। मौलवी ने सोचा कि सुमति अंदर है तो आग न लगाते हुए काम करवा लेना चाहिए; इसलिए उसने दरवाजा तोड़ने की आज्ञा दी। अगले ही क्षण किसीने खिड़कियों पर, किसीने खपरैल पर चढ़कर तो किसीने दरवाजे पर कुल्हाड़ी के आघात करते हुए आक्रमण किया। सुमति को भाग जाने के लिए समय मिल जाए इसलिए जितना हो सके, कालहरण करके जब बिलकुल ही निरुपाय हुआ तब हरिहर शास्त्री अपने अग्निकुंड के सामनेवाले दरवाजे के पास तलवार लेकर दरवाजा बंद कर बैठे रहे। उस दरवाजे पर भी कुल्हाड़ियाँ पड़ीं। जो मुसलमान पहले अंदर घुसा उसे उस शूर ब्राह्मण ने तलवार से काट दिया। दूसरा मोपला भीड़ में ही अंदर घुसा तो उसे भी काट दिया। तब भारी शोर मचाकर मोपला पीछे हट गए। तब उस बुढ़िया ने आगे बढ़कर कहा, "मैं आग लगा देती हूँ इस घर को! अभी वह गद्दार तड़पकर बाहर आएगा।" लेकिन उसे समझाते हुए मौलवी ने कहा, "नहीं बुढ़िया, ऐसा नहीं। इन हिंदू लोगों में कभी-कभी वीरता शेर की तरह घुस जाती है। प्राय: यह ब्राह्मण अपनी बेटी को साथ लेकर इस घर में लड़ रहा होगा। आग लगा दी तो वे जिंदा जलेंगे, लेकिन अपने हाथ नहीं आएँगे। घर तोड़ना-फोड़ना ही चाहिए।"

अब तक उस ब्राह्मण के घर में मोपला फैले थे। मशालें लेकर लूटमार करते हुए वे सुमति को ढूँढ़ रहे थे। केवल वह अग्नि-आगार जो पूरी तरह गिरा नहीं था, अब वह भी गिर गया। खपरैल से मोपला अंदर उतर गए। अँधेरे में उनमें से दो लोगों को मारकर पिछले दरवाजे से हरिहर शास्त्री खिसकने ही वाले थे कि खुद मौलवी ही दुर्दैव से वहाँ खड़ा दिखाई दिया। उतावलेपन से मौलवी ने तलवार ऊपर उठाकर

गरजकर पूछा, ''लड़की कहाँ है?''

''यह देख मेरी लड़की!'' कहते हुए उस वीर ब्राह्मण ने अपनी तलवार ऐसी सफाई से चलाकर वार किया कि वह मौलवी के कंधे से नीचे उतरा और चीं-चीं करते हुए मौलवी पीछे हट गया। वह ब्राह्मण अपने घर की, अपनी मंत्राग्नि की तथा अपने मान की, जितनी संभव हो रक्षा करके दूसरे ब्राह्मण घरों की रक्षा के लिए दौड़ा। लेकिन मुँह से 'सुमति! घुस जाओ उस घर में, मैं आ ही रहा हूँ!' यह पुकार करते जा रहा था।

उस घर में जो भयानक दुर्घटना घट रही थी, उसके मुकाबले हरिहर शास्त्री के घर की घटना तो कुछ भी नहीं थी। तीन या चार मोपले उस घर में घुसे हुए थे और उनके साथ वह बूढ़ी भी मशालें जलाए खड़ी थी। पहले धड़ाके में ही उन मोपलों ने एक ही वार में उस घर के मालिक को घायल कर नीचे गिरा दिया। उसकी हालत को देखते ही रोते-पीटते और उन दुष्टों से दया की याचना करते हुए दो बुढ़ियाँ, उस मालिक की पत्नी तथा दो लड़कियाँ आगे बढ़कर घायल गृहपति को अपने बदन के नीचे ढकती हुई विलाप कर रही थीं। तब तक उस घर में जो कुछ सोना-चाँदी आदि था, उसे लूटते हुए वे मोपला विलाप करनेवाली निराश्रित विह्वल, भयभीत्र तथा निस्त्राण स्त्रियों से बोले, ''औरतो, वह काफिर अभी तक मरा नहीं। वह ठीक हो जाएगा। शोक मत करो। हम उसकी पूरी व्यवस्था करेंगे।'' फिर 'ऐ प्यारी! तू मुझे अपना कह', 'और तू मुझे' कहते हुए उनमें से दोनों ने उन युवा लड़कियों को और तीसरे ने उस प्रौढ़ा माँ को लिपटा लिया। उन शोकाकुल तथा भयभीत स्त्रियों में से दोनों तो चीख भी नहीं पा रही थीं। उनमें से छोटीवाली लड़की खींचातानी करने लगी। वह अपनी ससुराल से पहली प्रसूति के लिए अपनी माँ के घर आई थी। उसे खींचातानी करते देख मोपला गुस्से में आए। उन्होंने उन तीनों को पकड़कर उनके वस्त्र उतारकर फेंक दिए। तब उस छोटीवाली लड़की ने, 'इन दुष्ट पशुओं के हाथों से जान और मान की रक्षा करो' कहते हुए जोर-जोर से पुकारा। जोर-जोर से दीवार पर तथा भूमि पर सिर पटका; लेकिन उसकी वह पुकार मुनष्य या देवता किसीको भी सुनाई नहीं दी। वह सिर उस भूमि या दीवार से किसीने नहीं फोड़ा। अब वह कोमल सुंदरी उस कठोर बुढ़िया के पैरों पर जिस तरह देवी माँ के पैरों पर कमल चढ़ता है, उस तरह पड़ी और उसने कहा, ''तू मुसलमान है पर स्त्री है! स्त्रियों की भावनाएँ समझती होगी। यह मेरा बाप और ये उसके हत्यारे! उसकी आँखों के सामने यह कृत्य मैं कैसे सह पाऊँगी?'' वह निर्दयी बुढ़िया विकट हास्य करते हुए बोली, ''नादान बच्ची, एक दिन मैंने भी ऐसा ही कहा था, लेकिन वह किसीने नहीं सुना। तब अगर कोई सुनता तो शायद आज

मैं तेरी बात मानती। लेकिन अब जितनी मेरी जैसी बनेंगी, उतनी मुझे चाहिए। चल, गिर पड़…'' उसके इस दुर्वचन से जलती हुई उस युवती ने धड़ाम से अपना सिर जमीन पर पटका। सिर से तेजी से खून बहने लगा। अब वह बुढ़िया ज्यादा ही गुस्से में आई, ''निगोड़ो, क्या तुम नपुंसक हो?'' इसपर वे कामोन्मत्त पशु उन तीनों स्त्रियों से चिपक गए। दोनों चुप रह गईं। खून से सनी वह गर्भवती सुंदरी कोशिश कर ही रही थी। इतने में और एक-दो मोपले अंदर घुसे, ''अच्छा, वह क्यों छटपटा रही है, पता है?'' उनमें से हुसेन नामक व्यक्ति ने कहा, ''पता है, पता है'', हँसकर—ऐसी स्थिति में भी हँसकर हसन ने कहा, ''उसका काम अकेले से शांत नहीं हुआ!'' तब दूसरा उससे चिपक गया। लेकिन वह ऐसी, जैसे पैर बाँधी हुई शेरनी। हसन 'मारो साली को' कहते हुए छुरी खींचकर दौड़ा। बोला, ''अरे मूर्ख! फूल सूँघे बिना ही कोई उसे मसल डालता है? अरसिक हो!'' उसके मुँह में कपड़ा ठूँसा गया और पहले के दूर होते ही हुसेन ने और हुसेन के दूर होते ही हसन ने उस घायल गर्भवती सुंदर तरुणी के साथ राक्षस से भी क्रूर बलात्कार किए। ऐसे भयानक बलात्कार के प्रति प्राय: स्त्री पापकृत्य खत्म होते ही भयानक रूप धारण करती है। उसी तरह हसन के उठते ही जिसे उसने जोर से काटा था, उस हुसेन ने छुरी निकालकर उस सुंदर और अत्यंत निरपराध कन्या के पेट में घुसा दी। उसका पेट काटकर वह छुरी उसने उतने ही जोर से फिर निकाली, तब उसके साथ वह पेट का गर्भ भी मसला हुआ बाहर आया। यह कृत्य उस घायल पिता की उपस्थिति में उसकी आँखों के सामने हुआ। हुसेन ने कहा, ''ठीक तरह से देख! ऐ काफिर! ठीक तरह से देख कि हिंदू लोगों में जन्म लेने से क्या दुर्दशा होती है! अल्लाह ईमानदार को (कुरान माननेवाले को) इसी तरह काफिर पर विजयी बनाता है!'' कहते हुए वे सभी मोपला दूसरे घर में घुसने के लिए लूटी हुई चींजें सँभालने-निकालने लगे। इतने में पागल शेर की तरह हरिहर शास्त्री वहाँ तलवार चलाते हुए आ पहुँचे। मुँह से वे 'सुमति! सुमति!' चिल्ला रहे थे।

उनके इस चिल्लाने से सुमति उनके आगे उस घर में ही कहीं घुसी होगी, ऐसा सोचकर मौलवी के लोग भी उनके पीछे-पीछे भागते आ रहे थे। परंतु कुछ लोग उस अग्नि-आगार में उनका कुछ धन होगा यह सोचकर उस रोशनी में ढूँढ़ रहे थे। तब उन्हें एक गढ़ा दिखाई दिया। 'मिल गया रे मिल गया!' कहते हुए इब्राहिम ने जो उस गढ़े में हाथ घुसाया, तो जोर-जोर से चीखते हुए ही बाहर निकाला। हवन के लिए राख के नीचे ढके हुए ज्वलंत अंगारों ने उसे बैंगन की तरह भून दिया! उसकी आस्तीनों को भी आँच लग गई। उन्हें कम-से-कम आधी जलाने तक वह आग बुझी नहीं। ब्राह्मण की यज्ञ-अग्नि ने एक बार क्यों न हो, यज्ञ के विध्वंसक को

आँच दी। भक्तों के सभी देवता कम-से-कम इतने भी दाहक अगर होते! तो भी···

हरिहर शास्त्री भी अपनी उस हवनाग्नि की भाँति जलते हुए निकले और निरपराध ब्राह्मण कन्याओं पर बलात्कार कर बाहर आनेवाले मोपलों में से हसन और हुसेन को तलवार से काटकर राह निकालते हुए अंदर घुसे। देखा तो उस ब्राह्मण का परिवार अत्यंत विपन्न, करुणास्पद तथा भयानक बीभत्स व कारुणिक स्थिति में पड़ा हुआ था। ''हाय! हाय! स्थूलेश्वर शास्त्रीजी!'' हरिहर ने उस घायल गृहपति से कहा—क्योंकि वह गृहपति कोई दूसरा-तीसरा नहीं, बल्कि वही स्थूलेश्वर शास्त्री था जो आग्रह से प्रतिपादन करता था कि हरिजन की अपेक्षा मुसलमान को स्वीकारने में कम भ्रष्टाचार होता है। ''कैसी यह दशा! ईश्वर का यह कितना कोप!'' स्थूलेश्वर शास्त्री तिलमिलाकर बोला, ''और एक तरह से अपनी हिंदू जाति के दुष्टतापूर्ण घमंड के पाप का कितना भयानक फल! कम-से-कम अब तो कहिए। मेरी आज्ञा में जो दो थिय्या युवक रहे हैं, उनके हाथों मैं तुम्हारी उस लड़की और पत्नी को दूसरी ओर सुरक्षित भेजने की कोशिश करता हूँ।'' स्थूलेश्वर शास्त्री ने हाँ नहीं कहा। उन थिय्यों के हाथ अपनी बेटी को, जिसे मुसलमानों ने भ्रष्ट किया, उस बेटी की और आगे बेइज्जती टालने के लिए देना भी उन्हें अधिक पातक लग रहा था। ऐसी रूढ़ि यदि एक बार हृदय में घुस गई तो हृदय को तोड़े-फोड़े बिना उसे निकलना कठिन हो जाता है।

हरिहर शास्त्री ने एक क्षण के लिए उस दृश्य को देखा। पिछली शाम को शांत रीति से यह पूरा परिवार सोने गया था। इन मोपलों से उन्हें कुछ लेना-देना नहीं था। ये मोपला लोग जंगल की तरफ के थे। स्थूलेश्वर शास्त्री तथा उनके लोगों ने आज दो पीढ़ियों तक यह ब्राह्मणवन पार भी नहीं किया। शुचिर्भूत रीति से श्रुति-स्मृति का अध्ययन कर संतोष से दिन बितानेवाला यह परिवार—शाम को बड़े प्रेम से एक-दूसरे के साथ हँसते-खेलते सो गया—और अभी सुबह भी न हुई थी कि उनपर यह कैसी आपत्ति! घर-बार, बेटियाँ—पेट का गर्भ भी—मुसलमान की तलवार तथा आग की बलि चढ़ गया! क्यों? केवल यह परिवार हिंदू है इसलिए! समाज के शक्तिक्षय का, भली-बुरी स्थिति का परिणाम व्यक्ति को तथा परिवार को यूँ भी इतनी निर्घृण उत्कटता से भुगतना पड़ता है! व्यक्ति तथा समाज के जीवन के धागे इतनी जटितला से बुने हुए होते हैं, जैसे पेड़ की टहनियों में ऊपर कोई एकात्मता दिखाई नहीं देती तो भी भूति के अंदर जड़ों में व्यक्ति जीवन और समाज जीवन बहुत-कुछ जुड़ा हुआ होता है। तू कुछ अपराध कर या ना कर, तू हिंदू समाज में है इसलिए उस समाज पर शत्रु का आघात होगा, तब तू थिय्या हो या नंबूदरी हो अथवा हरिजन हो, वह तेरा सिर फोड़े बगैर रहेगा नहीं। तेरा सामाजिक

जीवन जब संकट में पड़ता है, तब तेरा जीवन मूलत: वैयक्तिक तथा सामाजिक दोनों का मिश्रण होता है।

ये विचार हरिहर शास्त्रीजी के मन में मन की गति से झट से आ गए। स्थूलेश्वर की हठवादिता से आए इतने संकट पर्याप्त हो गए और उनका अनुमोदन हो या न हो, उन स्त्रियों की रक्षा का निश्चय करते हुए हरिहर ने उन दोनों को पिछले दरवाजे से अंदर आए दोनों थिय्याओं को सौंप दिया और स्वयं मौलवी की ओर दौड़ पड़े।

हरिहर शास्त्री के पीछे-पीछे जब मौलवी स्थूलेश्वर शास्त्री के घर की ओर सुमति के लिए आ रहा था तो राह में किसी मोपला ने 'सुमति! सुमति! साली मिल गई!' ऐसा चिल्लाया। मौलवी तुरंत हरिहर को छोड़कर वहाँ भागा। किसी घर के पिछले दरवाजे की ओर घास की गंजी में घुसकर चिंतामणि शास्त्री की बेटी लक्ष्मी भागते-भागते आकर तब छिपी थी, जब उनके घर पर दीन-दीन का नारा लगाते हुए मोपला टूट पड़े थे। वह सुमति की हमउम्र थी और थोड़ी-बहुत उसीकी तरह दिखाई देती थी, यह बात तो सच थी। मौलवी ने पहले उसे देखते ही खुशी से पागल होकर उसे उस भीड़ में भी अपनी छाती से लिपटा लिया। मौलवी के कंधे से हरिहर शास्त्री के वार से खून बहना यद्यपि बंद हो गया था तो भी उसकी वेदना कम न हुई थी। लेकिन वह वेदना उसी समय मानो शांत हो गई, जब उसने सुमति सोचकर लक्ष्मी को छाती से लिपटा लिया। जिसके लिए उसने इतनी कोशिश की वह कार्य संपन्न हुआ ऐसा सोचकर उसे बहुत खुशी हुई। उसने अपने दो विश्वासी मोपलों को सुमति को—यानी लक्ष्मी को, सँभालकर हरिहर शास्त्री के घर ले जाने के लिए कहा। अब रात के तीन बजने को आए थे, इसलिए उन्होंने सोचा कि अपने ब्राह्मणवन में अपने विश्वस्त सैनिकों को थोड़ा विश्राम देना चाहिए। ब्राह्मणवन के पाँच-छह ब्राह्मण घरों में से अब एक भी घर ब्राह्मण का घर नहीं रहा था। सभी कन्याएँ भ्रष्ट हो गई थीं। सारे पुरुष—बहुतेरे तो लड़ते हुए ही घायल हुए थे! मौलवी की आज्ञा नहीं मिली, वरना सारे घर जलकर राख ही हो जाते। लेकिन उन छोटे सुंदर घरों को ही वे अपने राजमंदिर बनाना चाहते थे, इसलिए वे उस मोपला बुढ़िया की मशाल से बच गए। खिलाफत सरकार के आग लगानेवाले विभाग की अध्यक्ष रही वह।

अपने लोगों को बुलाता तथा उन्हें एकत्रित करता हुआ मौलवी एक पत्थर पर थोड़ी देर बैठ गया। उसके कंधे में दर्द हो ही रहा था। ''देखो, मैंने जो कहा था वैसा ही हुआ, देखा न? हम गाँव ध्वस्त करते आए लेकिन इस मामूली ब्राह्मणवन के चार घर लेने के लिए हमें काफी गाजियों का बलिदान देना पड़ा। उधर मंदिर के

पास मारपीट चल ही रही है। यह कुट्टम गाँव लेने में जितना कष्ट हुआ, उतना अरनाड़ तालुका लेने में भी नहीं हुआ होगा। यह सारा उस कंबू का और हरिहर का काम है। दो काफिर एकत्रित हुए तो ऐसी ही शैतानियत मचाते हैं। कुछ भी हो, हमें फल तो मिल गया, किया हुआ श्रम सार्थक हुआ।'' मौलवी ने कहा।

''वाह खान साहब! सुमति मिली इसलिए आपका श्रम सार्थक हुआ, यह बात तो स्पष्ट है। लेकिन हमारे श्रम का? हम एक-दो को अब तक कुछ नहीं मिला। यह देखो, हमें मिलना चाहिए, नहीं तो किसीको भी हजम नहीं होगा, हाँ।'' अब्दुला ने चिढ़-चिढ़ाकर कहा।

''अब्दुला! सब्र करना भाई। सुबह होने दो—अल्लाह ईमानदारों को बरकत देने में समर्थ है। दोनों को एक नहीं—एक-एक को कम-से-कम दो-दो बाँटकर दूँगा। लेकिन रुको, जिन काफिरों को पकड़कर बंदी बनाया है, उन्हें सामनेवाले घर में अच्छी तरह बंद कर दो। अरे, लेकिन क्या वह हरिहर किसीको मिला? नहीं तो सबकुछ व्यर्थ हो जाएगा।''

''यह देखो हरिहर!'' कहते हुए पागल मोहम्मद आगे बढ़ा। तीन मोपलों द्वारा पकड़ा हुआ, तलवार के वार से एक पैर पूरा ऐसे कटा हुआ था, जैसे वृक्ष से कोई शाखा आरी से काटी हो। लेकिन फिर भी बड़ी निर्दयता से घसीटते हुए, कुछ एक पैर पर लँगड़ाते चलाकर लाया, लहू से लाल-लाल हरिहर शास्त्री मशाल की रोशनी में स्पष्ट दीखने लगे।

''इस काफिर ने,'' पागल मोहम्मद ने कहा, ''इस काफिर ने बड़ा घात किया है। उसका इनाम उसे इस इसलाम वीर ने खुद दिया। मौलवीजी, आपने जिस कन्या को सुमति समझकर हमारे अधीन किया, उसे ले जाते समय इस काफिर ने हमपर हमला किया। अँधेरे में अचानक मेरे साथी कासम बौने को इसने काट दिया और मेरे हाथ से उस लौंडी को लेकर भागने लगा। अँधेरे में वार! अँधेरे में भागा! इस काफिर को धर्मयुद्ध कैसे किया जाता है, यह नहीं आता!''

''लेकिन वह लौंडी कहाँ है? वह सुमति नहीं, यह तू कैसे कह सकता है?' मौलवी ने गुस्से से उछलकर कहा, ''वह भाग गई इसलिए?''

''नहीं-नहीं, खान साहब ! सुनिए तो आगे— '' डरते हुए पागल मोहम्मद बोला, ''यह काफिर उस लौंडी को पीठ पर लेकर आगे और मैं पीछे, इस तरह हम भाग रहे थे। चाँद की रोशनी में इसके आते ही मैंने तलवार से तीन-चार घाव कुल्हाड़ी के घाव की तरह इसके एक पैर पर किए और इसे नीचे गिरा दिया। लेकिन लड़की नहीं दिखाई दी। तब इसकी पीठ की मैंने तलाशी ली, लेकिन लड़की पीठ पर कहीं नहीं थी।''

"अरे शैतान! आसपास कहीं छिपी होगी। वहाँ क्यों नहीं देखा"

"देखा महाराज! इसकी दाहिनी बगल में देखा, बाईं बगल में देखा। दूर तक जाकर भी देखा, लेकिन फिर इसे कौन देखता? यह दो पैरों से कैसा भाग रहा था, वह आपने देखा ही है। उसका आधा रास्ता यह एक पैर से आसानी से भागता और आपको मेरा पराक्रम—यह खुद या इसका यह पैर न मिलता तो सच भी नहीं लगता।" कहते हुए पागल मोहम्मद ने अपने कंधे पर रखा, उस ब्राह्मण वीर का कटा हुआ लहूलुहान पैर किसी हाथी की कटी सूँड़ की तरह धड़ाम् से जमीन पर पटका।

□

प्रकरण–६

मुझे एक छुरी दो

वहाँ सुमति को लेकर उसका भाई और वह युवा थिय्या दामोदर जहाँ रास्ता मिला, वहीं चल रहे थे। थोड़ी ही देर में उन्हींकी तरफ स्थूलेश्वर की एक बेटी और पत्नी को लेकर दो थिय्ये आ रहे थे, जिनके हाथ हरिहर ने उन्हें सौंपा था। फिर वे चार पुरुष और तीन स्त्रियाँ छिपते-छिपते, पीछे रहे प्रियजनों की क्या बुरी हालत रही होगी, इस आशंका से तथा अपनी दुर्दशा के अहसास से सिसकते-सिसकते, लगातार मार्ग निकालते हुए कुट्टम से जितना दूर हो सके, जा रहे थे। परंतु उस प्रलय में हरिहर की बहादुरी से बची चौथी युवती लक्ष्मी अकेली किसी एक कुंज के पीछे छिपकर बैठी थी। हरिहर का पैर कटते ही उस पागल मोहम्मद को उस ब्राह्मण वीर ने बहुत देर तक अपनी पकड़ में दबाए रखा, इसलिए उस युवती को आगे भाग जाने के लिए समय मिल गया। कुछ देर भागती हुई वह उस कुंज के पास आ बैठी थी। वह मूलतः धैर्यशील थी, फिर भी वह स्त्री थी, युवती थी। जंगल में दूर से और कभी-कभी पास से सियार, भेड़िया और शेर की क्रूर आवाजें जब उसके कानों में पड़ती थीं, तब आदत न होने के कारण यह युवती कभी इतनी घबरा जाती थी कि उस निर्जन जंगल की अपेक्षा संकटग्रस्त क्यों न हो, वह कुट्टम ही ठीक था ऐसा उसे लगता था। साँपों तथा अँधेरे का भय उसे लगातार सता रहा था। किसी तरह मनुष्यों के बीच जाए, ऐसा उसे लग रहा था। वैसे देखा जाए तो उस जंगल में उसके कुंज की तरफ कोई भी भयप्रद जीव-जंतु आया नहीं था। मोपलों की तरफ से भयप्रद जीव-जंतु आने की आशंका भी नहीं थी। लेकिन किसी भी जीव-जंतु का साथ न होना—वह एकांत ही उस लक्ष्मी को अत्यंत भयप्रद तथा दुर्धर लगा, जो आजन्म अपने प्रियजनों के कंधों पर बढ़ी-पली थी। तथापि वह धीरज रखती हुई पूरी रात वहीं रही। पौ फटने से पहले उसने भागकर आगे निकल जाने का निश्चय

भी किया। मील-दो मील जाते ही उसे उसीकी तरह दबकती और भी दो स्त्रियाँ कुछ दूरी पर दिखाई दीं। शायद वे मुसलमान पक्ष की हों, ऐसी आशंका आने पर भी निर्जनता से आंतकित वह युवती, हाँ-ना करते-करते उन स्त्रियों की ओर चल ही पड़ी। 'आप कौन' ऐसा पूछते ही उन स्त्रियों ने लक्ष्मी को पहचाना और रुँधे गले से उन्होंने कहा, ''बेटी, तू यहाँ कहाँ? आप ब्राह्मण हैं। आपका नाखून भी हमें नहीं दिखना चाहिए। भगवान् ने यह कैसा कोप किया! उन मुस्टंडों के कल के दंगे से ही आप भागी होंगी! हमने आपके दरवाजे पर कई बार जूठन खाया है। कुट्टम गाँव की ही दो मसकुनी हैं।''

''बायो!'' लक्ष्मी ने दुखी अंतःकरण से कहा, ''तुम यहाँ कहाँ जा रही हो?''

''हमपर भी इन बदतमीज मोपलों ने अत्याचार किए। बेटा, हमारे पास पैसा नहीं, कौड़ी नहीं। फिर भी उन्होंने हमारी झोंपड़ी को आग लगा दी। हमारे पुरुषों को कैद किया और हम सबसे कहा कि 'मुसलमान हो जाओ, नहीं तो मरो।' लेकिन बेटा, हम अपनी मसकुनी जाति कैसे छोड़ सकते हैं? बेटा, हमने उनसे कहा, 'हम ब्राह्मण नहीं हैं। क्यों हमारे पीछे पड़े हो?' तब उनमें से एक बादमाश बुढ़िया मशाल से हमारी साड़ियाँ जलाने दौड़ी और बोली, 'लेकिन तुम हिंदू हो न? हिंदू लोग तो तुम मसकुनियों को कुत्तों से भी नीच समझते हैं। लेकिन तुम मसकुनी लोग मुसलमान नहीं बनते। तुम ब्राह्मणों के, क्षत्रियों के तथा वैश्यों के पैर हो। वे तुमपर खड़े हैं। तुम्हें काट दिया तो वे नीचे गिर ही गए समझो।' उस आगजनी से बेटी, हम किसी तरह बचकर भाग रही हैं। लेकिन हमारा क्या! हम तो रहे मसकुनी। तुम्हारा इस जंगल में क्या होगा?'' उस मसकुनी की आँखें डबडबा गईं। मालाबार में मसकुनी जाति अस्पृश्य से भी अस्पृश्य मानी जाती है। थिय्या उनके साथ व्यवहार या लेन-देन नहीं करते। जैसे हरिजन चांडाल को नीच मानते हैं, उसी तरह मसकुनी जाति थिय्यों से भी कनिष्ठ मानी जाती है।

लक्ष्मी बेचैन होकर बोली, ''तुम अपना दुःख भूलकर मेरी चिंता करती हो न? भगवान् ने तुम्हें इतना उदार हृदय दिया है। तुम मसकुनी मेरे जैसी ब्राह्मणी से भी उच्च जाति की हिंदू हो। न, न, ऐसे पीछे मत हटो। यह देखो कितनी देर से मैं चाहती हूँ कि किसीके गले लिपटकर जी भरके रोऊँ। तुम संकोच मत करो। मुझे गले लगा लो। एक क्षण के लिए मेरी माँ बनो।'' कहती हुई लक्ष्मी उस मसकुनी स्त्री के गले लग गई। मसकुनी स्त्रियाँ उस स्थिति में भी 'ब्राह्मणी को हमने छूआ' ऐसा सोचकर अपने आपको मन-ही-मन दोष दे रही थीं। लेकिन वह मसकुनी स्त्री लक्ष्मी को गले लगाकर बिना झिझक उसको सांत्वना दे रही थी। थोड़ी ही देर

में उन तीनों के दुःख का आवेग कम हुआ और फिर से भय के कारण वे आगे जाने की सोचकर छिपते-छिपते जाती रहीं। थोड़ी ही देर में उन्हें उनके ही गाँव का आदमी—विष्णु नायर दूर से आता हुआ दिखाई दिया, तब भगवान् ही ने उसे भेजा है, इस आशा से वे उसकी ओर गईं। उनको देखते ही विष्णु नायर ने त्योरी चढ़ाई। 'मैं खुद अपनी जान बचाकर किसी तरह भाग रहा हूँ तब यह कौन सा झंझट गले में पड़ रहा है,' ऐसा सोचकर वह झल्लाकर उनसे बोला, "मेरे पास क्या है? यहाँ किसलिए आ रही हो?" "महाराज!" वह मसकुनी बूढ़ी औरत हाथ जोड़कर बोली, "महाराज, आप नायर लोग अपने को क्षत्रिय कहलाते हैं। हम तो अबला हैं, हमें दूसरा कुछ नहीं चाहिए। इस ब्राह्मण लड़की की मौसी का गाँव यहाँ से दो कोस पर है, इसलिए हमें डर लग रहा है।" "लेकिन तेरी जाति कौन सी है?" नायर ने पूछा। "चांडाल, बाबा।" मसकुनी ने उत्तर दिया। "और तू मेरे साथ दो सौ फीट के अंदर आकर बात कर रही है! राक्षसी, मेरा धर्म डुबोती है।" कहते हुए उस स्त्री की छाया पड़ने से सचमुच ही गुस्से में आकर उस क्षत्रिय ने उस अस्पृश्य बुढ़िया के मुँह पर जोर से तमाचा मारा ! उसकी बेटी एकदम से रोने लगी। तब लक्ष्मी क्रोध से कंपित होकर बोली, "अरे विष्णु, इन बेचारी अस्पृश्यों के सामने जो तू पराक्रम दिखा रहा है वह अपने उन बाप मुसलमान मोपलों को, जो तेरे घर की स्त्रियों पर और मंदिर के देवताओं पर अत्याचार कर रहे हैं, क्यों नहीं दिखाता? उनके भय से किसी नपुंसक की तरह जान बचा क्यों भाग रहा है? उस कृत्य से तेरा क्षत्रिय धर्म भ्रष्ट नहीं हुआ? मुसलमान उसे हिंदू होने के कारण जान से मार रहे हैं—हिंदू उसे मसकुनी अस्पृश्य कहकर मार रहे हैं; भगा रहे हैं। अब वे कहाँ जाएँगी!" "लक्ष्मी!" उस नायर ने लज्जित होकर कहा, "तू चाहती है तो चल मेरे साथ। यद्यपि इस स्थिति में तेरी जैसी सुंदर युवती साथ लेने का परिणाम मोपलों के संकट को आमंत्रित करना है, फिर भी तू मेरे गाँव के ब्राह्मण की बेटी है। चल तुझे पहुँचा देता हूँ। लेकिन अगर इन मसकुनी स्त्रियों को साथ में ले लूँ तो क्षत्रिय मुझे जाति के बाहर निकाल देंगे।"

"क्यों नहीं निकालेंगे!" लक्ष्मी ने घृणा से कहा, "परधर्मियों से अबलाओं की रक्षा की तो क्षत्रियता कहाँ रही? लेकिन तूने ऐसा कोई पाप नहीं किया। हिंदू धर्म तथा हिंदू जाति पर जब भयानक अत्याचार चल रहे हैं तब तू अत्याचार करनेवाले विधर्मियों के साथ आगे आकर लड़ नहीं रहा। तू जान बचाकर भाग रहा है। मुसलमानों द्वारा तुम्हारी स्त्रियों के कत्ल, भ्रष्ट करने पर तुझे ऐसा नहीं लगता कि तेरा धर्म डूब गया, लेकिन हिंदू अस्पृश्य की केवल छाया पड़ने से तेरा धर्म भ्रष्ट हो जाता है। इसलिए तू सच्चा धर्मप्राण क्षत्रिय है, इसमें कोई संदेह नहीं! मैं तेरे साथ

नहीं आऊँगी। मैं अपनी इस मसकुनी बहन के साथ ही रहूँगी। चांडाल स्त्रियों का जो सुख-दुःख, वही हमारा भी सुख-दुःख। हिंदुत्व पर संकट आने पर चांडाल, हरिजन, माँग, ब्राह्मण ये उन जातियों के न रहकर केवल हिंदू हैं, ऐसा माननेवाली तथा आचरण करनेवाली आत्माएँ ब्राह्मणों में भी होती हैं, यह सिद्ध करने के लिए मैं इस मसकुनी के साथ ही रहूँगी, तू चला जा!''

लक्ष्मी यह कह रही थी तब तक नायर क्षत्रिय चला भी गया था। थोड़ी देर तक वे स्त्रियाँ और आगे बढ़ीं। उन्हें दूर से शोर सा सुनाई दिया। वे तीनों डर गईं। आश्रय के लिए बरगद के एक पेड़ के नीचे करौंदे की झाड़ियाँ थीं, उनके पीछे छिपकर थोड़ा समय गुजार लेने के विचार से वे वहाँ पहुँचीं तो उन्हें सुमति और स्थूलेश्वर शास्त्री की दो स्त्रियाँ वहाँ छिपी हुई मिलीं! कैसा था दुःख का वह आवेग! कैसा था वह भय! थोड़ी देर पहले क्या हुआ, यह बताने की कितनी उत्सुकता! उन सारे मनोविकारों की गुत्थियों में से अंततः एक ही प्रश्न सुमति के मुख से निकल पाया, ''क्या तुम्हें मेरे पिताजी पीछे मिले?'' एक ही उत्तर पाया, ''उन्होंने ही मेरी जान तथा मेरा धर्म बचाया। लेकिन इस युद्ध में शत्रु ने उनका पैर ही कुल्हाड़ी से काट दिया और उन्हें बंदी बनाकर ले गए।''

''हाय राम!'' कहती हुई सुमति एकदम ऊँचे स्वर में चीख पड़ी। ''बेटी, चुप हो जा। अब कौन किसके लिए रोए,'' कहती हुई स्थूलेश्वर शास्त्री की पत्नी उसको शांत करने लगी। लेकिन डर के मारे पहले ही उसका रोना बंद हो गया था। क्योंकि वे तीन-चार थिय्ये और सुमति का भाई, वह किस बात का शोर है, यह सुनने के लिए जब दूर गए तब जाते समय उन स्त्रियों को वहाँ बिलकुल आवाज न करते हुए बैठने के लिए कह गए थे। अपनी चीख से वे संकट में पड़ जाएँगी, इस डर से सुमति चुप रही।

अब सुबह के दस बजे होंगे। रात भर रास्ता काटते हुए, डरते-भागते तथा दुःख की अग्नि में जलते हुए सारी स्त्रियों तथा पुरुषों के प्राण सूख गए थे। कहीं पानी दिखाई नहीं देता था। कल दस बजे शांत तथा रमणीय कुट्टम गाँव में हरिहर अग्नि को आहुति देकर उठ रहे थे। सुमति फूलों की माला बना रही थी। तब उसके भाई ने चुपचाप पीछे से आकर उसकी आँखें ढक दी थीं। लक्ष्मी तुलसी की परिक्रमा कर रही थी और बीच-बीच में हरसिंगार के पेड़ पर बैठे बुलबुल को हाथ की माला से उड़ा रही थी। वह फिर-फिर आ बैठता थी। 'कंघी लो कंघी लो, चोटी बनाओ, चोटी बनाओ। मालती का फूल डाले ससुराल चल पड़ा।' वहाँ वह स्थूलेश्वर शास्त्री की बेटी अपनी माँ के घर पहली प्रसूति के लिए आई अपनी प्रिय बहन को उसके प्रीतिभोज के लिए 'क्या बनाऊँ दीदी, क्या बनाऊँ?' कहती हुई उसे प्रेम से

चिढ़ा रही थी! वह मसकुनी वृद्धा अपने छोटे से आँगन में सब्जियों में से कुछ चुनती हुई मन में कह रही थी, 'यह सब्जी तो मेरी बिटिया को बहुत पसंद है न! वह कल नैहर आएगी, तभी मैं इसे क्यों न तोड़ूँ!'

चौबीस घंटे भी न हुए होंगे—तो आज दस बजे वे क्या कर रही थीं, यह अचानक—कल्पित नहीं, स्थिति में कितना अंतर था। यह जुल्म, अत्याचार और पीड़ा उन्हें सहनी पड़ी ऐसा, उन्होंने कौन सा पाप अथवा अपराध किया था?

इतना ही कि उन्होंने हिंदू समाज में जन्म लिया था, और वे हिंदू ही रहना चाहती थीं। व्यक्तिशः इतना ही, बस!

लेकिन सामाजिकता की दृष्टि से कितना! वह कितना अपराध था कि स्वयं उन्होंने अपना हिंदू समाज इतना असंगठित, असहनशील ही बना रखा था। रेत के कणों की तरह केवल एक ढेर, एक राशि; समाज नहीं! केवल पूर्वजों के पुण्य के अवशिष्ट अंशों पर टिका हुआ! लेकिन अवशिष्ट पाप से हर क्षण भागनेवाला—छिन्न-भिन्न होनेवाला!

किस बात का शोर है, यह देखने गए पुरुष वापस लौटे। शोर शत्रुओं का ही था, क्योंकि उसी मार्ग से मोपलों की एक दूसरी बड़ी टोली हिंदुओं का शिकार करती आ रही थी। उस संकट में वे पुरुष भी, अब क्या होगा, इस भय से काँप रहे थे। एक भयानक संकट का सामना करने में तथा उसे हराने में उनकी सारी शक्ति खर्च हो गई थी। उनके मुँह पानी के बिना सूखे हुए, स्नायु विश्राम के बिना शिथिल हुए, मन उत्साह के बिना म्लान तथा धैर्य-आशा के बिना मुरझाए हुए थे। फिर भी वह ब्राह्मण कुमार और वे थिय्या यदि अभी तक पैरों पर खड़े और हाथों में शस्त्र पकड़े थे, तो वे केवल दामू के अदम्य धैर्य तथा निश्चय से ही कि अंत तक लड़ेंगे, धर्म के लिए मरेंगे। मालाबार में हिंदू लड़ सकते हैं—कम-से-कम हमने तो अपना कर्तव्य निभाया, बस! ऐसा कुछ वह लोगों से, कुछ अपने आपसे बोला। सुमति आवेश में आगे बढ़ी। वह बोली, ''मुझे एक छुरी दे दो, मैं एक-न-एक हिंदू द्वेषी को मारकर मरूँगी।'' दामू ने एक छुरी उसे दे दी और कहा, ''हे देवी! मैं जब तब जीवित हूँ तब तक आपकी छुरी मैं हूँ। मेरे मरने के उपरांत यह आपकी होगी!'' उस युवा तथा युवती का अपूर्व साहस तथा उत्साह देखकर उस मसकुनी जाति की अस्पृश्य लड़की मालती ने आवेश में आकर कहा, ''मुझे भी एक छुरी देना। हिंदू धर्म के लिए मैं भी लड़कर मरूँगी।'' दामू ने दूसरी एक छुरी उसे दे दी—लेकिन उसने उसके हाथ से वह छुरी नहीं ली, ''नीचे रखिए, मैं उठा लूँगी। मैं मसकुनी जाति की हूँ, आप थिय्या। मैं आपको गाँव में हमेशा देखती हूँ। आपको अच्छा लगे, न लगे। आपको मुझसे छुआछूत हो जाएगी।'' दामू हँस पड़ा, ''ब्राह्मणों के साथ

यदि बराबरी करनी होगी तथा ब्राह्मणों को हमें छूना चाहिए ऐसा कहने का यदि अधिकार चाहिए तो हरिजनों को पहले वह अधिकार स्वयं को देना चाहिए। तू मसकुनी होगी लेकिन तू हिंदू है। मैं हिंदू हूँ। मेरे हाथ से यह छुरी ले ले। अगर मुसलमानों की छुआछूत चलती है तो तुझ जैसी हिंदू की क्यों नहीं चलेगी? हिंदू धर्म के लिए मरने का आवेश तुझमें उत्पन्न हुआ—अब तू ब्राह्मणों को भी पूजनीय है! ले छुरी, और जो पहला धर्मशत्रु दिखे, उसपर—अगर वह अत्याचारी होगा तो—कर देना इसका वार! मालती ने वह छुरी दामू के हाथ से ले ली। नियति की क्या इच्छा है, वह देखते हुए वे सभी पेड़-पौधों के पीछे छिप गए।

थोड़ी ही देर में जोर-जोर से 'दीन-दीन', 'अल्लाह हो अकबर' की क्रूर गर्जना करती हुई, डेढ़ सौ मुसलमानों की टोली बिलकुल पास आ गई। उस विद्रोह में आसपास के दस-बारह मोपला एकत्रित होकर तथा किसी हरे कपड़े का ध्वज तुर्कों का ध्वज मानकर उसे उठाकर हिंदुओं को लूटते, मारते आगे बढ़ रहे थे। जो मुसलमान जितना अधम और बदमाश होता, वह उतना ही प्रखर धर्मवीर बन जाता था, क्योंकि धर्मयुद्ध जैसा धंधा और कहीं भी मिलना उन्हें संभव नहीं था। वे राक्षस चिल्लाते घूमते, ढूँढ़ते आ रहे थे, क्योंकि हिंदुओं की भाग-दौड़ में लोग जान बचाने के लिए आसपास छिपे हुए ही अधिकतर मिल जाते थे। वे आ गए। दुर्दैव से उस झाड़ी की ओर उनमें से कुछ लोगों का रुख हो गया। 'काफिर', 'काफिर' की एक ही ध्वनि उठी। जो पहले दस-पाँच मोपला आए वे उस युवा थिय्या की तथा उसके सहायकों की तलवार से मारे गए। लेकिन फिर उस पूरी टोली का छापा उनपर आ पड़ा। तलवारें देखकर स्त्रियाँ तो चीख पड़ीं। खटखट तलवारें चलने लगीं। तीन-चार तलवारें हरिहर शास्त्रीजी के बेटे पर एकदम से पड़ीं और वह टुकड़े-टुकड़े होकर गिर पड़ा। किसी डंडे के आघात से उस बूढ़ी मसकुनी का सिर नारियल जैसा फट से फूट गया। अपने भाई का वध हुआ देख सुमति किसी शेरनी की तरह वध करनेवाले उन मुसलमानों पर टूट पड़ी। दोनों के पेट चीर डाले कि इतने में पीछे से मोपलों ने लिपटकर उसके हाथ की छुरी छीन ली। वे उसके साथ छेड़-छाड़ कर ही रहे थे कि इतने में 'हाँ! दूर हो जाइए!' ऐसी अधिकारपूर्ण आज्ञा हुई। तब वे मोपला निराश होकर पीछे हटे और उस टोली के प्रमुख नेता ने कहा, ''इस छोकरी को बिलकुल परेशान न करो पर इसके हाथ बाँधकर मेरे साथ ले चलो।'' आँखें मिचकाते हुए वे मोपला सुमति को बाँधकर आगे ले जा रहे थे। मार्ग पर चलने तक सुमति मानो बेहोश ही थी। वहाँ उसके आगे ही घावों से भरा तथा विकल वह थिय्या युवक बाँधकर पहरे में ले जाया जा रहा था। वह मसकुनी मालती, लक्ष्मी तथा स्थूलेश्वर शास्त्री की स्त्रियाँ मोपलों ने भगाईं या उस भीड़ में मारी गईं, उसे

कुछ पता न चला। थोड़ा आगे जाते ही एक गाड़ी दिखाई दी। तब वह टोली का नेता बोला, "इस छोकरी को इस गाड़ी में बैठाओ।" सुमति को उठाकर उस गाड़ी में रखा गया। वह नेता भी उस गाड़ी में बैठा और वह गाड़ी, दामू थिय्या को जिस दिशा में जे जाया जा रहा था, उसकी उलटी दिशा में निकली। अब तो कठिन-से-कठिन, भयानक-से-भयानक जो कुछ संकट उसपर आ सकता था, वह सुमति पर आ गया! अब तो दामू दूर गया! अब तो वह अकेली रह गई।

उसका धैर्य चुक गया, वह धाड़-धाड़ रोने लगी! 'दामू, दामू!' ऐसी पुकार उसने इतनी विह्वलता से तथा पागल की तरह की जितनी उसने पहले कभी न की होगी; लेकिन गाड़ी तेजी से जा रही थी। दामू दृष्टि से ओझल हो गया। उस निराधार स्थिति में उसके मन में वियोग से होनेवाले डंकों की वेदनाओं का वर्णन कैसे किया जाए! सचमुच वह पानी से निकाली मछली की तरह तड़प रही थी।

और दामू? पिछले दो दिन उसकी सारी भावनाएँ, उसके विचार, उसकी सोच, उसके खून की बूँद का प्रत्येक स्पंदन सुमति के बारे में था। इस बात से वह अपने आपको शर्मिंदा महसूस करने लगा कि अंत में वह उसकी रक्षा न कर पाया; और फिर भी जिंदा रहा! और अब बह दृष्टि से ओझल हो गई। दामू—वह अठारह वर्ष का कोमल युवक—वह छोकरा—वह भी उस लड़की के लिए जोर-जोर से रोने लगा।

सुमति को उस प्रमुख ने थोड़ा डाँटकर, थोड़ी दया दिखाकर पूछा, "छोकरी! रोएगी, चिल्लाएगी तो इससे भी अधिक कष्ट में पड़ेगी। मेरे किसी नौकर के पल्ले में डाली जाएगी। लेकिन मुझे पता है कि तू ऐसी पागल नहीं। सुन, मैं इस टोली का प्रमुख हूँ। इस जिले का कलेक्टर हूँ। मेरा नाम तूने सुना होगा। इस खिलाफत राज में अली मुसेलियर के साथ-साथ मेरा अधिकर चलता है। खलीफा ने मुझे कलेक्टर पद दिया है, इसलिए कुट्टम का मौलवी भी मेरा कनिष्ठ हो गया है। तुझसे मुझे प्रेम हो गया है, इसलिए कहता हूँ। क्या मेरा नाम तुझे सचमुच ही पता नहीं? मेरा नाम ऐतखान है।"

स्वयं ही प्रश्न पूछता और स्वयं ही उत्तर देता वह मोपला ऐतखान, जिसे हमने कालीकट की उस सभा में देखा था, सुमति का मनोरंजन कर रहा था! जैसेकि अच्छी मछली हाथ लगने के आनंद से मछुआरे द्वारा गाया जानेवाला गीत, पानी से निकाली हुई तथा तड़पती हुई मछली का जितना मनोरंजन करता है, उस मोपला की बातें भी सुमति का उतना ही मनोरंजन कर रही थीं।

जल्दी ही गोपुर गाँव आ गया। सुमति को वह ऐतखान एक कमरे में ले गया, जिसकी दीवारें मिट्टी से लिपी थीं और जिसमें एक दरी बिछाई हुई थी। उसके

सामने कुछ खाना रखकर लेकिन उसपर कड़ा पहरा बैठाकर कहा, ''सहेली! तू शांत हो जा और मेरे बँगले में रह। शांत हो जा, तुझे मेरे गले की कसम है। कल मैं यहाँ के ब्राह्मणों को मारकर उनके बँगले में ही ठिकाना बनानेवाला हूँ। आज का दिन यहाँ काट ले। मैं शाम को आऊँगा।'' ऐसा कहकर वह मोपला चला गया। सुमति तो तड़प रही थी। खाने की तो बात ही क्या—पानी की बूँद भी उसने नहीं ली। 'पिताजी! दामू! भैया!' कहती हुई, अब आगे क्या किया जाए इसकी योजनाएँ बनाती और वे असंभव हैं, यह समझ में आते ही उदास होती हुई शाम तक बेचैन सी बैठी रही।

परंतु मन के दुःख को नियति ने नैसर्गिक मर्यादा दे रखी है। दो दिनों की असह्य घटनाओं के बोझ से सुन्न उसका शरीर और मन इतना संवेदनाशून्य होता गया कि एक-एक मज्जापिंड तथा एक-एक रक्तपिंड निश्चेतन होता गया। अंत में उसे नींद कहो या मूर्च्छा आई और वह निश्चल और निर्जीव सी पड़ गई।

रात को वह ऐतखान फिर से ऊपर आया। सुमति को गहरी नींद में देखकर उसे एक तरह का आनंद हुआ, क्योंकि उसका रोना, चिल्लाना सुनकर उसका जो रसभंग होता था, वह अब नहीं होगा। उसने उसे जी भरके देख लिया। यह ब्राह्मण कुल की शुचिर्भूत, सुंदर—कितनी पीढ़ियों के पुण्य करने पर भी मुझ जैसे के पल्ले न पड़नेवाली—कनकलतिका आज बिलकुल मेरे हाथ में है! उसके होंठ कितने मीठे होंगे। ऐसी कल्पना करते हुए वह छिप गया। उसने उसके यथेच्छ चुंबन लिये। यह ऐसी गहरी नींद में है, यही अच्छा हुआ! नहीं तो बहुत शोर मचाती! ऐसा कहते हुए उसके पास अपना शरीर बिछाया और उसे छाती से कस लिया। 'या अल्लाह! तूने मेरी धर्म-वीरता का फल दिया! अल्लाह, यह परी मुझे दे दी, कुरान ईश्वर-प्रणीत है इसमें कुछ संदेह ही नहीं। उसके वचन सत्य हैं। ईमानदार को परी मिलेगी, यह वचन, अल्लाह तूने सच किया! कितनी कोमल देह!' ऐसा सोचते-सोचते वह ईमानदार मोपला कामोन्मत्त हुआ। उसने सुमति को फिर से इतना कसकर छाती से लगा लिया कि कीचड़ में धँसी कमलिनी की तरह वह दिखाई नहीं दे रही थी। 'रात भर ऐसी ही रहना प्यारी लड़की। जग न जाना!' ऐसा कहते हुए वह उसके पल्लू को हटाने लगा। सूरज की किरण ने भी जो नहीं देखे थे, ऐसे उसके प्रत्यंग उसे दिखाई देने लगे। उत्कट काम से अधीर होकर वह उसे स्पर्श करने लगा।

इतने में 'तौबा! तौबा!' कहकर वह जोर से चीख पड़ा। लेकिन एकांत में किसीने सुना नहीं। वह दिया उठाने लगा तो लड़खड़ाकर गिर पड़ा।

रात समाप्त हुई। सुबह हुई। गाँव में मोपलों की दूसरी टोली आकर हो-हल्ला मचाने लगी। ऐतखान के लोगों ने डरकर, यह चिंताजनक समाचार ऐतखान

को बताने के लिए दरवाजा खटखटाया। जब न खुला तो उसे तोड़ दिया—और देखा तो क्या?

ऐतखान मरा पड़ा है और एक भयानक नाग सुमति के सिर पर छत्र की तरह अपना फन फैलाकर डोल रहा है। ऐतखान के बदन पर सर्प के भयानक दंश इतने हुए हैं कि उसके रंध्रों में से विष से दूषित लहू झर रहा है।

'नाग! नाग!' कहते हुए जहाँ-तहाँ शोर मच गया। सुमति उस दरवाजे की खटखटाहट से ही अपनी कालनिद्रा से जो थोड़ी-थोड़ी चौंक रही थी, वह अब पूरी तरह से जग गई थी। देखा तो वह नाग उसके पैर को चुटचुट चाट रहा था। 'फणींद्र, मेरा फणींद्र!' कहते हुए सुमति ने उसके बदन पर हाथ फेरा और वह गाना गाने लगी, जो उस नाग को भाता था। गहरी नींद से उठने के कारण उसे लगा कि वह अपने बगीचे में ही हमेशा की तरह सुबह फणींद्र के साथ खेल रही है!

इतने में ऐतखान और उसके पास पड़ी उसकी छुरी को देखकर अब उसे उस स्थिति का पूरा ध्यान आ गया। उसे लगा कि उसकी रक्षा के लिए यह फणींद्र—यह साँप—पिए हुए दूध का उपकार याद कर मुझपर नजर रखकर मेरे पीछे आया और अंत में मैं जब बिलकुल निराधार स्थिति में थी, तब इस दुष्ट ऐतखान के स्पर्श से मेरा कौमार्य भंग होने के पहले ही बदला लेने के लिए उसने ऐतखान को डसकर मार डाला; सचमुच सर्प के रूप में ईश्वर मेरा त्राता बना। द्रौपदी की लाज जिसने रखी, उसने मेरी भी लाज रखी। वह हमेशा भक्त की लाज ऐसी ही रखता है; ऐसा विचार अचानक उसके मन में बिजली की तरह चमक गया।

परंतु पागल लड़की जरा रुक जा! अपने न्याय की कल्पना को मिलने-जुलनेवाली घटनाएँ स्मृति में रखकर तथा लाज की रक्षा वह करता ही है, इस मानवी सुविधाजनक लेकिन पगली धारणा में इतनी न फँसना। अंत में परमात्मा लाज की रक्षा करेगा, इस धारणा की अपेक्षा तू अपनी कमर में खोंसी हुई छुरी पर ज्यादा निर्भर रहना। इस धारणा की अपेक्षा समय पर वही काम आएगी। ऐतखान मर गया—लेकिन मोपला अभी जीवित हैं!

सुमति के मन में यह विचार बिजली की तरह चमक ही गया था कि मोपला कमरे में घुस आए। वह नाग किसी युद्धवीर की तरह उनपर टूट पड़ा। दो-तीन मिनट में दो-तीन मोपलों को जोर से काटकर दो-तीन तलवारों के आघात से वह टुकड़े-टुकड़े होकर गिरा। मोपला सुमति से चिपक गए। उसने छुरी बाहर निकाली और एक कोने का आश्रय लेकर उस शोरगुल में दो-तीन मोपलों के पेट काटे और उन्हें जान से मारकर जमीन पर गिरा दिया। फिर स्वयं अपने पेट में वह छुरी घुसाने के लिए उसने हाथ आगे बढ़ाया ही था कि उसका हाथ पकड़ लिया गया। उसने

अपने आपको मार लेने की व्यर्थ कोशिश की; लेकिन उसे मरने कौन देता है ? इतने में उसने उस चिपके हुए मोपला की तलवार पर सिर पटक लिया, तब माथे पर घाव लगा और वह थोड़ा फट गया था। उससे खून की धारा उसके चेहरे पर बह रही थी। मारे गए मोपलों के पेट के खून का कीचड़ उस कमरे में फैला हुआ था। उसीमें उस साँप के टुकड़े चमक रहे थे, जरा से कुलबुला रहे थे। जो पाँच-छह मोपले अंदर घुसकर सुमति को पकड़े खड़े थे, उन्होंने उसे फूल की भाँति हलके से उठाकर, उसकी छुरी हाथ से निकाल ली और उसे भी उस खून के कीचड़ में नीचे सुलाया!

''फजल! देखता क्या है...'' एक मोपला ने सुमति के हाथ तानकर पैरों के पास खड़े अपने साथी से कहा, ''अरे, कल उस झुरमुट ही में यह पंछी अपने हाथ लगना था; लेकिन ऐतखान ने बीच में ही छल किया। अब देखता क्या है ? नहीं तो उस मौलवी की टोली के लोग अगर एक बार यहाँ आ गए तो इस छबीली के ये पेड़ों से भी मीठे चुंबन मौलवी की थाली में जा पड़ेंगे, और हम फिर चटकारे भरते रहेंगे।'' कहते हुए वह सुमति के उन गालों को उन्मत्त हो चूमता रहा जिसपर से खून की धारा बह रही थी। 'अरे यार मेरे वास्ते तो रख!' 'मेरे लिए रख' ऐसा उच्छृंखल हँसी-मजाक करते हुए वे पाँच-छह पशु अत्यंत कामोद्दीप्त हो उस घायल कन्या से चिपक गए।

समाज की सुव्यवस्थित अवस्था में उनके मनोविकार मर्यादित दबाव में होते हैं, इसलिए शायद वे असंतुष्ट होते हैं। राक्षस प्रवृत्ति के जिन लोगों में ये मनोविकार अत्यधिक मात्रा में होते हैं, उनकी असंतुष्टि भी उत्कट ही होती है। ऐसे पाशविक मनुष्यों को अपने वे दुष्ट तामसी मनोविकार तृप्त करना तब सहज-सुलभ होता है, जब समाज पर कोई भयानक संकट आने से अव्यवस्था फैलती है। इसलिए भयानक बीभत्स तथा उच्छृंखल भीषणता इनके कामुक मनोविकारों की शामक नहीं होती, बल्कि उत्तेजक ही होती है। खून के उस कीचड़ में गिराई हुई, बलपूर्वक इंद्रियों को दबाए, घावों से बहनेवाले खून से सनी उस निरपराध कन्या से लिपटते समय उनकी उग्र कामवासनाएँ उत्कटता से प्रकट हो रही थीं, जबकि भयानक मारकाट और खून-खराबे से इंद्रियोन्माद को विरस होना चाहिए था। 'अरे यार! इस, इस साली ने दो मुसलमानों को यहाँ मार गिराया है। इसका अच्छा बदला लेना चाहिए! हाँ, ले लो बदला!' 'हाँ ले लो बदला!' कहते हुए जोर-जोर से हँसते हुए तथा बीभत्स हँसी-मजाक करते हुए उन नरपशुओं ने उस कन्या के साथ भयानक बलात्कार करना शुरू किया। एक-दो-तीन, एक के बाद एक वे नरराक्षस 'ले लो बदला!' कहते हुए और कहकहे लगाते हुए, ताल पकड़कर अघोर उपभोग करने लगे। उस अमानुषिक भीषणता के कारण उनके काम विकार अमानुषिक संतोष प्राप्त करने लगे।

मनुष्य जाति को कभी-कभी जो बीभत्स कृत्य करते समय शर्म नहीं आती, उसकी कहानी सुनते समय बड़ी शर्म आती है! इसलिए इतना ही कहना पर्याप्त है कि नौ-दस नरपशुओं ने, पशुओं को भी न सूझते होंगे ऐसे बीभत्स प्रकारों से अपने इंद्रिय उन्मादों से उस कन्या के शरीर तथा लज्जा की बलि लेते हुए बलात्कार-पर-बलात्कार किए।

लेकिन वह बलात्कार उस निष्पाप तथा निरपराध कन्या के साथ नहीं था बल्कि उसके शव के साथ था। वह बच्ची तो उन भयानक तथा क्रूर यातनाओं से कब की गतप्राण हो गई थी।

गतप्राण—लेकिन वह बच्ची किसी धर्मवीर की भाँति, 'मारते-मारते' गतप्राण हुई थी। परसों इसी समय फूलों की मालाएँ गूँथकर वह श्रीरंग की उस मूर्ति पर चढ़ाने के लिए, स्नान कर स्तोत्र बोलने जा रही थी। ईश्वर-पूजा के फूल की तरह पवित्र सुकोमल तथा सुगंधित वह कन्या जब उस मार्ग से जा रही थी, तब वायु उसके बदन को स्पर्श करने में संकोच कर रहा था और कह रहा था कि 'अपूर्व पुण्य का फल जिसकी गाँठ में होगा, ऐसे ही किसी भाग्यशाली युवक को यह कन्या अपने स्पर्श से धन्य करेगी।'

लेकिन उस एक दिन-रात के अंदर उसके भाग्य में यह कैसा अंतर आ पड़ा! और क्यों? उसका क्या अपराध? उसने किसीका क्या बुरा किया था? इन मोपलों की ही बात छोड़ो, उसने दुनिया में किसका क्या बुरा किया था? साँप से भी वह प्रेम करती थी। साँप को भी वह उसी हिंदू जाति की तरह पाल रही थी, जिस हिंदू जाति में उसने जन्म लिया था।

तो क्या उसका अपराध यही था कि वह हिंदू जाति की थी। केवल इतना ही! किसी हिंदू धर्मवीर की भाँति, हिदू धर्म तथा हिंदू राष्ट्र के शत्रुओं से लड़ते-लड़ते वह मरी। उसकी उस अनछुई पवित्रता से, उन मधुर स्तोत्रों से तथा फूलों की उन मालाओं से श्रीरंग जितना संतुष्ट हुआ होगा उसके शत सहस्र गुना वह आज की उस अशुद्धता से लिथड़ी, घावों से घायल, बलात्कार से भ्रष्ट, बीभत्स अपवित्रता से संतुष्ट होगा। मंदिर में शांत, निर्विघ्न गोमुखी में हाथ डालकर जो जप करते हैं, घंटी की मधुर ध्वनि के सिवा जिनकी शांति किसीसे भी भंग नहीं होती, मंदिर के ऐसे निस्तब्ध गर्भगृह में आँखें मूँदकर पंचपकवान का भोग—जो जल्द ही उनके अपने मुँह में जानेवाला है—लगाते हैं, ऐसे भक्त और पूजक बहुत हैं। उनकी पूजा भी ईश्वर को मान्य होगी; लेकिन ऐसा जप करनेवाले किसी भी साधु की अपेक्षा यह हिंदू कन्या कम पवित्र नहीं जो हिंदू धर्म तथा हिंदू राष्ट्र पर आई भयानक आपत्ति के समय हिंदू धर्म के प्रति एकनिष्ठ रहकर शत्रुओं से लड़ी तथा बलात्कार की

बीभत्स गंदगी से जूझते हुए बलिदान गई। नहीं! नहीं! उसकी इस अशुद्धता से उसका वह बलिदान अधिक शुद्ध है। निश्चय ही वह ईश्वर को अधिक मान्य है, होना ही चाहिए, क्योंकि ऐसे आपतकाल में, भयानक क्रूर अत्याचार में, देवगणों के पद्मासनों की अपेक्षा रणभूमि के पराक्रम ही वेदों की, देवों की, सती की तथा धर्म की रक्षा यशस्विता से करते आए हैं; करनेवाले हैं। हवनों के पिष्ट बलिदानों की अपेक्षा हुतात्माओं के प्राणों का बलिदान ही परमात्मा को कभी-कभी अधिक प्रिय होता है!

□

प्रकरण–७

अधमों के अत्याचार

जैसाकि पिछले प्रकरण में बताया है, गोपुर गाँव में सुमति के पालतू भयानक नाग द्वारा ऐतखान को डसकर मार दिया गया था। उसी समय मौलवी की टोली के लोग सुमति को खोजते हुए उस गाँव में आ पहुँचे। अधिकार जताने के लिए ऐतखान की और मौलवी में होड़ लगी थी। दोनों अपनी-अपनी कहते थे कि उन्हें खलीफा ने कलेक्टर बनाकर कुट्टम तथा गोपुर दोनों तालुकाओं पर मुकर्रर किया है। उसमें भी हिंदुओं को भ्रष्ट करते समय ऐतखान शिया पंथ की दीक्षा देता था, परंतु मौलवी सुन्नी पंथ का था और मुसलमान पंथ में दिखनेवाला परंपरागत भयानक द्वेष उसके रोम-रोम में भरा था। उसे काफिर हिंदू चाहे क्षम्य लगते थे; परंतु शिया फूटी आँखों भी नहीं देखे जाते थे। शिया लोग अली के बाद के खलीफा को बिलकुल नहीं मानते। इसलिए ऐतखान खिलाफत राज्य से कभी भी नेक राजनिष्ठा नहीं रख सकता, ऐसा मौलवी का कहना था।

स्वराज्य अर्थात् खिलाफत राज तथा एकता अर्थात् सभी हिंदुओं को भ्रष्ट कर सभी को मुसलमान बनाने की जो परिभाषा की गई, उसीकी अगली आवृत्ति करते हुए मौलवी ने खिलाफत राज अर्थात् सुन्नी मुसलमानों का राज और एकता अर्थात् न सिर्फ सभी हिंदुओं को, बल्कि सभी शिया मुसलमानों को काफिर तथा दंभीक समझकर नष्ट करते हुए सुन्नी मुसलमानों को अस्तित्व में रखना, ऐसी नई परिभाषा बनाई। उस रात उसे कुट्टम गाँव का अधिकार मिलते ही समाचार मिला कि सुमति गोपुर गाँव के रास्ते से भागी है। तब ऐतखान के बारे में उसके मन में धधकती द्वेषाग्नि में तीसरी तथा अत्यंत विस्फोटक, ईर्ष्या के मद्य की आहुति पड़ी और उसने ऐतखान का सत्यानाश करने की ठान ली। उसके अधिकार से स्पर्धा करनेवाला, शिया होते हुए खिलाफत राज्य में अधिकारी होने की इच्छा करनेवाला

तथा काफिरों को शिया पंथी मुसलमान बनाकर खिलाफत के शत्रु बढ़ानेवाला और सुमति जब उसके चंगुल से खिसक रही थी तब खुद ही उसे बीच में हड़प करने का साहस करनेवाला ऐतखान और उसके अनुयायी, सबका नाश करने के लिए मौलवी की टोली कुट्टम गाँव से निकलकर गोपुर गाँव में अचानक जा टकराई। ऐतखान को सुमति के उस नेक साँप ने जान से मार डाला था, इसलिए मौलवी विशेष बाधाओं के बिना मारते, काटते मार्ग निकालते प्रमुख स्थान पर अर्थात् ऐतखान ने सुमति को जहाँ रखा था, वहाँ आ पहुँचा। उसके आने का समाचार मिलते ही ऐतखान की टोली के फजल और अन्य नरराक्षस सुमति की लाश को उस अधम स्थिति में वैसे ही छोड़कर भाग गए। पूजा की फूलमाला की भाँति पवित्र तथा कोमल उस सुंदर कन्या की देह को उस बीभत्स तथा अत्याचार का शिकार बना देख मौलवी को भी उन पापी मोपलों से घृणा हुई। मानवी स्वभाव का निरीक्षण करनेवाले को इस बात का पता है कि मनुष्य कई बार जो पाप स्वयं सहजता से करता है, उसे दूसरे द्वारा किया हुआ देख या सुनकर उस कृत्य की कड़ी भर्त्सना करने के लिए आसानी से प्रवृत्त होता है। उसमें भी फजल आदि मोपलों द्वारा किया गया बलात्कार बाकी सभी बलात्कारों से भयानक था; और मौलवी द्वारा किया हुआ अथवा उससे भी अनुमोदित नहीं था। और उससे भी बुरी बात यह थी कि सुमति उसका शिकार हुई थी, जिसकी प्राप्ति की आशा से मौलवी उत्तेजित हुआ था। तब स्वाभाविक रूप से मौलवी का क्रोध बढ़ा और उसने अपनी टोली के प्रमुखों में से हसन से कहा, ''हसन! यह खिलाफत राज की निष्कंलक कीर्ति को, मुझे लगता है, जान-बूझकर कलंक लगाते घूम रहा था!''

''सरकार, इस पवित्र ब्राह्मण छोकरी पर हुआ अत्याचार इतना भयानक है कि मुझे लगता है, कोई भी सच्चा मुसलमान ऐसा भयानक कृत्य नहीं करेगा।''

कुट्टम में हुए दंगे में एक रात जिसने स्थूलेश्वर शास्त्री की बेटी तथा पत्नी के साथ उनके माता-पिता के सामने इतना ही घोर बलात्कार किया था, उस वजीर ने कहा, ''जो ऐसा पापकर्म करता है वह असली मुसलमान नहीं!''

''बिलकुल सही!'' उस भीड़ में घुसकर किसी फकीर जैसे मुसलमान ने कहा, ''वजीर, यह तत्त्व अगर तुमने कुट्टम के दंगे की रात में समझा होता तो मालाबार में आजकल बढ़े असली मुसलमानों की संख्या में एक की कमी होती।''

''लगता है यह ऐतखान की टोली का मुसलमान है! पाजी कहीं का!'' हसन गुस्से से फुत्कारा।

''होगा, शिया मुसलमान होगा।'' अब्दुल ने आक्षेप किया।

''यह मुसलमान ही नहीं होगा।'' पगले मोहम्मद ने कहा।

''मैं ऐतखान की टोली का नहीं हूँ और मौलवी की टोली का भी नहीं हूँ। मैं शिया मुसलमान भी नहीं हूँ और आप जिस अर्थ में समझते हैं उस अर्थ में सुन्नी भी नहीं हूँ; और आप इस विद्रोह के आरंभ से जो अमानुषिक कृत्य चला रहे हैं वही अगर मुसलमान धर्म की सीख है तो मैं मुसलमान भी नहीं हूँ। मैं उस टोली का हूँ जिसके प्रमुख पैगंबर मोहम्मद (ईश्वर उनकी आत्मा को शांति तथा धन्यता दे!) जो कुरान को पवित्र पुस्तक मानते हुए भी मानव जाति पर उसकी सीख को जबरदस्ती लादना पाप समझते हैं और जो किसी भी मनुष्य को, वह मुसलमान है या हिंदू, यह देखने से पहले वह मनुष्य है या नहीं, यही ईश्वर पहले देखेगा ऐसा मानते हैं! हिंदू लोग भी मनुष्य ही हैं, उनके साथ यह बलात्कार, ये अत्याचार!''

''यह काफिरों की ओर से बोलता है, ये काफिर हिंदू अंग्रेजों की नौकरी करते हैं!''

''अंग्रेजों की नौकरी मुसलमान भी करते हैं! तुर्कों के विरुद्ध हजारों मुसलमान लड़े। फिर अगर हिंदू अंग्रेजों की नौकरी करते हैं इसीलिए आप उन्हें मारते हैं और मंदिर गिराए जाते हैं तो मुसलमानों की मसजिदें भी क्यों नहीं गिराते? पहले यह बताओ कि क्या हिंदुओं को अंग्रेजों की नौकरी से परावृत्त करने का कार्य साधने के लिए तुम उनकी निरपराध और निष्पाप कन्याओं के पातिव्रत्य को अपनी कामाग्नि पर बलि चढ़ाते हो? तुम्हें अल्लाह की कसम है! बताओ, क्या इन अत्याचारों के लिए अल्लाह तुम्हें माफ करेगा? मैं मुसलमान हूँ इसलिए पूछता हूँ, क्या तुम्हारा कुरान यही सिखाता है?''

''बिलकुल, ऐ बेवकूफ! अल्लाह ईमानदार के हजार अपराध क्षमा कर देगा। अल्लाह बड़ा रहमदिल है! लेकिन तूने तो कुरान का मुँह तक नहीं देखा होगा। नहीं तो इस जिहाद में गैर-मुसलमानों की सभी संपत्ति, घर-बार, औरतें और बच्चे मुसलमानों की धर्म-संपत्ति बन जाते हैं—अध्याय चौथा, आयत पाँच यही बताती है। सुन, तूने कुरान तो पढ़ा नहीं, इसका मतलब है कि तू कोई सूफी अथवा बाबी ऐसे ही मुसलमान कहलवानेवाले किसी दंभीक पक्ष का होगा। नहीं तो शिया तो तू है ही।''

'तू शिया है! तू बाबी है! तू सूफी है।' कहते हुए मौलवी की टोली से एक साथ पत्थर मारना शुरू हुआ। ऐतखान की टोली के जो शिया थे, उनसे यह अपमान सहा नहीं गया और वे भी मौलवी की टोली पर टूट पड़े। कुछ देर तक मुसलमानों के उन दो पक्षों में जोरदार लड़ाई चली और कई मोपले मारे गए, कई घायल होकर तड़पने लगे। ऐतखान की मृत्यु से उसकी शिया टोली पहले ही अस्त-व्यस्त थी

इसलिए वह अपनी जान बचाने के लिए जल्द ही दसों दिशाओं में भागने लगी। पत्थरों की वर्षा से वह फकीर घायल होकर गिरा, लेकिन मारपीट के जोश में एक बार फिर से उठ खड़ा हुआ और अपनी ऊँची गंभीर आवाज में सभी का ध्यान आकर्षित करते हुए बोला, "भाइयो, तुम्हारे ये अत्याचारी कृत्य मुसलमान धर्म पर जो कलंक लगा रहे हैं, उसका जितना हो सके, मैं प्रतिकार कर रहा था, तब तुमने काफिरों का वकील कहकर मुझे ताने मारे! मेरे इनकार करने पर भी निरपराध हिंदुओं की गरदन पर चलाने हेतु अत्याचार की जो तलवार तुमने बाहर निकाली, उसीसे अब तुम एक दूसरे को मारने लगे! जो अत्याचार की तलवार दूसरों पर चलाता है, वह खुद ही उसके वार से मारा जाता है! अब भी ध्यान में रखें कि राम-रहीम एक हैं...अभी तो..."

ये शब्द वह मुसलमान साधु कह ही रहा था कि इतने में 'हरामी! ऐ हरामी! यह बदमाश शैतान और अल्लाह को एक समझता है।' की आवाज उठी।

'अल्लाह-रहीम को सरकतदार, जोड़ीदार बनाता है! मारो!' ऐसा शोरगुल हुआ और दो-तीन पत्थरों से उसका सिर नारियल की तरह फूट गया। उसका भेजा बाहर निकल आया और वह मुसलमान साधु गतप्राण हो नीचे गिरा।

मौलवी ने 'अल्लाह हो अकबर!' की गर्जना की।

'अल्लाह हो अकबर!' कहकर मोपलों ने भी साथ दिया।

ऐतखान की टोली की दुर्दशा हुई। गोपुर गाँव का ही नहीं, खिलाफत राज्य की परिभाषा में गोपुर तालुके का अधिकार भी अपने हाथ में लेकर मौलवी फिर से कुट्टम की ओर जाने के लिए निकला। लेकिन सुमति की मृत्यु के कारण उसके हृदय में उदासी छाई हुई थी। इतना ही नहीं, उसके लिए इस विद्रोह की सारी रम्यता चली गई, और वह एक रूखा कर्तव्य रह गया है, ऐसा सोचकर वह दुःखी हो गया। इतने में आधे रास्ते पर ही पगला मोहम्मद फिर से हाँफते-हाँफते आकर बोला, "सरकार, सुमति जिंदा है!"

"मूर्ख!" मौलवी ने झुँझलाकर कहा, "उसे मरे हुए मैंने प्रत्यक्ष देखा है।"

"सरकार, वह जीवित हो गई है! अल्लाह की कसम, वह मरकर जीवित हुई है। वह देखो उस खाई में।"

लेकिन यह कहता क्या है! उसके मन में भी उसकी पागल आशा फिर से उदित हुई। पर उसे प्रदर्शित करने और अगर वह झूठी साबित हुई तो उपहास के डर से मौलवी ने मन में भी उसका उच्चारण न करते हुए कहा, "अरे देखो तो, यह पागल किस लड़की को देखकर बड़बड़ा रहा है!"

खाई की ओर कुछ लोग गए। मौलवी देखता रहा। 'तो क्या वह सचमुच

सुमति है ?' उसके हृदय में धड़कन तेज हुई। वे लोग खाई में छिपकर बैठी उस बच्ची को ज्यों-ज्यों आगे ढकेलते पास आए, त्यों-त्यों मौलवी को लगने लगा कि वह सुमति नहीं होगी। लेकिन अब उसकी निराशा कुछ हद तक कम हो गई। इस लड़की के चेहरे और कद में ऐसा आकर्षण था कि उससे सुमति के अभाव की पूर्ति हो सके। पास आते ही पागल मोहम्मद जोर-जोर से हँसकर बोला, "सरकार! यह तो लक्ष्मी है! हरिहर का पैर तोड़ जिसे मैं पकड़नेवाला था, वही। आखिर पकड़ लिया कि नहीं!"

"चुप रह मूर्ख! इसे तूने सुमति समझा, इसका क्या कारण था?" मौलवी ने गुस्सा प्रकट करते हुए कहा।'

थरथराने का अभिनय करते हुए वह बोला, "जिस कारण कुट्टम गाँव में रात को आप इसे सुमति समझ बैठे, उसी कारण से मैं भी इसे गोपुर गाँव में दिन के उजाले में सुमति समझ बैठा।"

लक्ष्मी सचमुच ही सुमति की प्रतिमूर्ति जैसी लगती थी। जिसे चारों वेद कंठस्थ थे, चिंतामण शास्त्री के उसी पवित्र कुल में उसका जन्म हुआ था। और जिस प्रकार ऊँचाई पर लगे फल को उछलकर तोड़ने पर बौने मनुष्य को एक तरह का मत्सरयुक्त संतोष मिलता है, उसी प्रकार सुमति जैसी ब्राह्मण कन्या को भ्रष्ट कर अपने भोग के लिए रखने की मौलवी की इच्छा लक्ष्मी को पाकर पूरी हुई और उसकी उदासीनता कम हो गई। धर्मांधता का क्रूर उत्साह उसके मन में फिर से सरसराने लगा। उसने उस दीन तथा अनेक संकटों को सहती हुई, वनवास, अपमान और निराशा से परेशान कन्या की ठोड़ी को स्पर्श करके कहा, "तू निर्भय हो जा ! तेरे मन में जो कुछ होगा मैं वैसा ही प्रबंध कर दूँगा!" यह आश्वासन देते हुए उसने उसे अपनी गाड़ी में बैठा लिया। क्षीण-शक्ति, भग्न आशा से जिसके शरीर में प्रतिकार करने की सामर्थ्य थोड़ी भी नहीं बची थी, ऐसी वह म्लान कुसुम जैसी दिखनेवाली कन्या चुपचाप वहाँ बैठी रही। ऐसी स्थिति में यदि कोई दसों शस्त्रधारी धर्मवीर भी होता तो भी वह और क्या करता!

मौलवी अपनी टोली के साथ कुट्टम पहुँचा। केवल तीन-चार दिन में कुट्टम का यह कैसा दृश्यांतर! नारियल-सुपारी के उन वनों में जो घर थे, उनमें से अब वेदों के मधुर घोष सुनाई नहीं दे रहे थे। उस रात की मार-काट में गिरा खून तक घर के रास्तों से नहीं पोंछा गया था। हरिहर शास्त्री के घर में मौलवी द्वारा सरकार का प्रमुख अड्डा बनाने के बाद उसे कलेक्टर का बँगला कहा जाने लगा। जिस स्थूलेश्वर शास्त्री को अपने आँगन में अस्पृश्य हिंदू के आने पर मुसलमानों के आने से भी अधिक कष्टकर लगता था, उसी स्थूलेश्वर शास्त्री के घर की रसोई

को मौलवी और उसकी टोली के लिए मांस पकाने के लिए खोल दिया गया था। चिंतामण शास्त्री की वह पवित्र वेदशाला, जहाँ से चारों वेदों का अस्खलित पठन सुनाई देता था, वहाँ अब कसाई की तलवारें देखकर थरथर काँपनेवाली गाय की चीखें सुनाई देने लगीं। जिन प्यालों में जल लेकर ब्राह्मणों ने कल संध्या की थी, उन्हीं प्यालों में आज मोपला लोग शराब पी रहे थे। उधर श्रीरंग के मंदिर में जिस धर्मवीर ने पूरी रात लड़ते हुए उसकी रक्षा की थी, वह कंबू सुबह भयानक घाव लगने से शत्रु के हाथ पड़ गया, इसलिए वह मौलवी के हाथ आया। वहाँ से श्रीरंग की सुंदर मूर्ति हटा दी गई और मुसलमानों की मसजिद की तरह पौड़ियाँ बनाई गईं। उस मंदिर के ऊपर हिंदू ध्वज उखाड़कर हरा तुर्की ध्वज लगाया गया। भ्रष्ट काफिरों का वह मंदिर 'ईमानदार' सत्यधर्मियों की प्रार्थना-योग्य हो जाए इसलिए एक जवान लड़का एक गाय को मारकर उसके खून को उस मंदिर में जहाँ-तहाँ छिड़कते हुए उसे यों शुद्ध कर रहा था जिस तरह मूर्ख काफिर गंगाजल छिड़कते हुए करते हैं। इस आखिरी संस्कार के उपरांत, कहने की आवश्यकता नहीं कि मौलवी की स्वयं अपनी प्रार्थना के लिए वह मसजिद जितनी पवित्र होनी चाहिए, उतनी पवित्र हुई थी। सभी गाँवों में हिंदुओं के घरों में तीन दिन लूटमार कर वह सारा सामान धर्मयुद्ध की गनीमत यानी न्यायी लूट समझकर मोपला वीरों में बाँटा जा रहा था। ब्राह्मणों, नायरों तथा बनियों के घरों में से अच्छे घर मोपलों के सरदारों को इनाम के तौर पर देकर वहाँ पहले रहनेवाले उन सभी काफिरों, मालिकों को चोर की तरह किसी बंदीगृह में ले जाकर बंद कर दिया था। जिस तालाब के डेढ़ सौ फीट के अंदर कंबू हरिजन नहीं आ सकता था, उसी तालाब में वह कंबू हिंदू धर्म संरक्षण के लिए लड़ते हुए घायल हुआ पड़ा था। जिसके किनारे मुसलमानों के जाने से वह भ्रष्ट नहीं होता था उन मुसलमानों ने उसकी सिंचाई गाय के खून से की और उस जलाशय को खिलाफत राज्य के अधिकारियों के पानी पीने लायक बनाया। जो हिंदू लोग बंदीगृह में थे उन्हें यही पानी दिया जाता था और उसे बाँटने के काम पर किसे लगाया गया था? श्रीमान क्षत्रिय कुलावतंस सीताराम नायर को! उसी नायर को, जिसने उस तालाब के डेढ़ सौ फीट अंदर आ जाने के संशय से कंबू को पत्थर मारा था।

कुट्टम में ऐसा भयानक परिवर्तन हुआ था, परंतु वह परिवर्तन तो अभी भयावह शिखर पर चढ़नेवाला था, उसका मर्म तो अभी प्रकट होना था।

शिखर पर वह आज चढ़ेगा! वह मर्म आज प्रकट होगा! आज ही उन बंदियों का निर्णय होनेवाला है। वे हिंदू जीवित बच गए और मुसलमान मोपलों द्वारा खिलाफत राज्य की स्थापना करने के बाद उनकी माँगी हुई चीज उन्हें न देते हुए

अपने घर को, पत्नी को तथा संपत्ति को अपनी ही समझकर अब भी हिंदू ही कहलाकर जी रहे हैं, इस घोर अपराध का आरोप उनपर लगाया गया।

पूजा के लिए जहाँ बैठकर सुमति माला गूँथती थी, उस बगीचे के मैदान में एक ऊँचे आसन पर मौलवी बैठा। पैर रखने के लिए एक पाँवपीठ था जो श्रीरंग की मूर्ति को छिन्न-भिन्न कर, उलटा कर बनाया गया था। उसपर बिछाई गद्दी और उस पाँवपीठ पर पैर रखकर मौलवी ने कहा, ''फैसले की शुरुआत करो।''

निर्णय करने के लिए उस इलाके में महशूर मोपलों का जो धर्मगुरु वर्ग था, जिसे थंगल कहते हैं, उनमें से एक को लाया गया था। मौलवी की आज्ञा होते ही बंदीगृह के हिंदू बंदियों के झुंड वहाँ लाए गए। थंगल ने कहा, ''अल्लाह के भक्तों की जय-जयकार हो, मालाबार में खिलाफत राज्य की स्थापना हुई है; जल्द ही वह पूरी धरती पर स्थापित होनेवाला है। इस राज्य में सारे पाखंडियों, मूर्तिपूजकों तथा मोहम्मद पैगंबर के (अल्लाह उनकी आत्मा को शांति और धन्यता दे।) वचनों को न माननेवाले नास्तिकों, इन तीनों का बीज भी न बचने दो, कल ही मुझे अल्लाह का ऐसा आदेश हुआ है। ऐ, अविश्वासी लोगो, जरा ऊपर देखो! देखो, देखो, आकाश के बीच काली सी रेखा! वह फटा! या अल्लाह! क्या खूबसूरती!'' कहते हुए वह थंगल आकाश पर दृष्टि गड़ाए हँसते-हँसते निश्चल तथा तन्मय होकर बैठ गया। सारी सभा चकित रह गई। हर कोई आसमान की ओर देखने लगा। इतने में पागल मोहम्मद बोला, ''ओहो! आसमान के ठीक बीचोबीच यह कितनी बड़ी दरार!''

आश्चर्य से आँखें फाड़कर देखते हुए थंगल बोला, ''क्या, तुझे दिखाई दी वह दरार? मौलवी, यह पुण्यशील मनुष्य है। इसे एक तरफ कीजिए! अच्छा, उस दरार में तुझे ऐसी कौन सी सुंदर वस्तु झाँकती हुई दिख रही है?''

मोहम्मद ने झट से कहा, ''अँधेरा!'' इतने में झट से खुद को सँवारते हुए थंगल बोला, ''मौलवी, यह पापी मनुष्य है। इसे बाहर निकालिए। पहले पुण्य से थोड़ी सी दिव्य दृष्टि आते ही इसे अभिमान हुआ, इसलिए अल्लाह ने इसकी आँखों पर अँधेरा छा दिया। अल्लाह समर्थ है!''

''ओहो! ओहो! क्या खूबसूरती!'' थंगल गंभीर आनंद से तथा तन्मय मुद्रा से बार-बार आकाश की ओर देखते हुए बोला। किसीकी भी यह हिम्मत नहीं हो रही थी कि उसे पूछें, 'कहाँ, क्या, हमें तो दिखाई नहीं देता।' थोड़ी देर बाद बड़ी भक्ति से 'अल्लाह, तू धर्मवीरों पर कितना खुश है,' कहते हुए थंगल आगे बोला, ''अभी जो आदेश मुझे हुआ है वही, ऐ मुसलमान लोगो, तुम सबको हो सकता है। मुझे क्या दिखाई दिया, पता है?''

अत्यंत उत्सुकता से उन विश्वासनिष्ठ सैकड़ों मोपलों ने कहा, ''नहीं आचार्य!''

''बताऊँ तुम्हें?''

अत्यंत उत्सुकता से चमत्कारलोलुप वे मोपला बोले, ''बताइए न! हम आपके पाँव पड़ते हैं, बताइए न! आचार्य!''

''मुझे परियाँ दिखाई दीं! उनके हाथ में क्या था? स्वर्ग के फूलों की मालाएँ! उनकी आँखें कैसी थीं?''

''इस कुरान शरीफ के एक अध्याय में जैसी बताई गई हैं, वैसी—काली-कजरारी और लंबी भौंहें! वे मालाएँ वीरों के गले में डालने के लिए परियाँ आई हैं। धर्मयुद्ध में जो मरेंगे उनके गले में ये मालाएँ आज ही पड़ेंगी। धर्मयुद्ध में जो जीतेंगे उनके गले में भोग की मालाएँ इस दुनिया में और परियों के आलिंगन की मालाएँ उस दुनिया में! ये फल धर्मवीरों के लिए और काफिरों को? तोबा! तोबा!''

'तोबा! तोबा!' मोपलों के बदन पर रोंगटे खड़े हो गए। उन्होंने कहा, ''ईश्वर पर तथा पैगंबर पर जो विश्वास नहीं रखेंगे उन काफिरों के लिए क्या फल बताया है? जिन्हें भयानक नरकाग्नि तपा रही है, उन मकानों में निवास! पीब और दुर्गंध, सड़े पदार्थ जिसमें मिले हैं। वह पीब पीने के लिए काफिरों को बाल पकड़कर घसीटते ले जाया जाएगा। फिर वे पछतावा करेंगे। लेकिन ईश्वर उनका मुँह भी नहीं देखेगा, फिर पछतावा मान्य नहीं होगा। कुरान शरीफ में यह स्पष्ट बताया है! तौबा! तौबा! इसलिए ऐ काफिरो, ऐ बंदियो, मैं तुम्हें अल्लाह के हुक्म से कहता हूँ कि अगर इस नरकाग्नि से अपना बचाव करना चाहते हो तो अभी मुसलमान धर्म को स्वीकार करो, नहीं तो इस दुनिया में मौत और उस दुनिया में नरकाग्नि! यही तुम्हारा इनाम होगा। बोलो क्या कहना है? आज न्याय का आखिरी दिन है। आज शाम होने से पहले खिलाफत राज्य में एक भी काफिर जिंदा नहीं रहेगा। इस खिलाफत राज्य में शाम होने से पहले सब मुसलमान होना चाहिए! हँ! लाइए पहली टोली!''

नंगी तलवारें लिये पचास मोपलों का घेरा आ खड़ा हुआ। वह एक ओर थोड़ा सा खुला; पच्चीस हिंदुओं की टोली उसमें घुसी। घेरा फिर से बंद हुआ।

नीच, अधमों की डंडेली से जिनकी साड़ियाँ फट गई हैं, जिनकी लाज हरण की गई है ऐसी दीन, सिसककर रोनेवाली कुमारियाँ, अपने बाप के सामने उस निर्लज्ज अवस्था में अर्धनग्न, अर्धभ्रष्ट स्थिति में रहने के कारण शर्म से मरी लड़कियाँ; और अपनी लड़कियों तथा औरतों के मान तथा जीवन का अपनी

आँखों के सामने होनेवाला सत्यानाश देखने के कारण अपने पौरुष पर घृणा आने से ऊपर देखने को भी शरमा रहे बाप, बच्चों को स्तनों से लगाकर खड़ी औरतें और बूढ़े दादा-दादी के हाथ पकड़कर खड़े लड़के, सारे थरथर काँपते हुए तलवारों के उस घेरे में, कसाईखाने में जिस तरह गायें जाती हैं उस तरह रोते, चिल्लाते, सिसकते हुए ढकेले गए।

''बोलो, मुसलमान बनते हो या नहीं?'' चार दिनों तक जिन्हें बंदीखाने में खाने-पीने के बारे में हैरान कर दिया गया था उन शक्तिहीन, भक्तिहीन लोगों में से कोई उत्तर नहीं आया। ''बोलो मुसलमान बनोगे या मरोगे?'' एक ही, और सबसे पहले जवाब आया—''मरेंगे।''

वह कौन था? कंबू। श्रीरंग के मंदिर के लिए अंत तक लड़ते हुए घायल हुआ बंदी।

उस टोली में उस अकेले ने ही सबसे पहले कहा, ''मरेंगे!''

उस टोली में वह अकेला और सबसे पहले मार दिया गया। हिंदू धर्म नहीं छोड़ने पर कितनी भयानक आपत्ति आ सकती है, इसके प्रत्यक्ष उदाहरण के लिए थंगल उसका जवाब सुनते ही उसे एकदम बाहर ले आया। पास ही एक विस्तीर्ण कुआँ था। इसीके पानी से सुमति अपने फूलों के पौधों को सींचा करती थी। उस कुएँ के किनारे उसे लाया गया; 'मुसलमान नहीं बनूँगा' कहते हुए ही उसके सिर के बाल उखाड़े गए और उसे इधर-उधर घसीटते, खींचते हुए तलवार से काटा गया तथा उसके शव को—कबंध और कटे सिर को—कुएँ में ढकेलकर 'अल्लाह हो अकबर' कहते हुए धर्मवीरों ने एक साथ गर्जना की।

कंबू का वह भयानक अंत देखकर उस टोली के अन्य किसीने भी हाँ-ना कुछ नहीं कहा। तब मूक पशुओं की तरह उन्हें कुएँ के किनारे ले जाया गया, उनका मुंडन कर उन्हें शिखाभ्रष्ट किया गया और मुसलमान बनने की निशानी के तौर पर गोमांस दिया गया। कोई भी उसे हाथ नहीं लगा रहा था, अत: थंगल ने शांत तरीके से कहा, ''ठूँसो उनके मुँह में! अज्ञानियों, पापियों तथा बच्चों को ज्ञान, पवित्रता और दवाई जबरदस्ती पिलाई जानी चाहिए।'' फिर उनके कपड़े उतारकर उनमें जो पुरुष और लड़के थे, उन्हें सामने चुप बैठाकर अपने-अपने गुह्यांग खोलने को कहा गया। क्रूर मौलवी हाथ में तीक्ष्ण छुरी लेकर आगे बढ़ा। दूसरा कुरान लेकर आगे बढ़ा। कुरान के मंत्र पढ़े गए और सटासट उन दो दुर्बल हिंदुओं के गुह्यांगों की त्वचा—टेढ़ी-मेढ़ी जैसी भी मिली—वैसी उस छुरी से चर्र-चर्र काटी गई। 'हाय-हाय' करते उस जलन तथा घावों से तड़पती उस टोली को बताया गया, ''अल्लाह को प्रिय पैगंबर की आज्ञा के अनुरूप तुम्हारी अब सुन्नत हुई है! अब तुम मुसलमान

बने हो। अब धर्म से चलो। स्वर्ग तुम्हारा है। लेकिन अगर फिर से हिंदुओं में मिलना चाहोगे या उनसे संबंध रखना चाहोगे तो मुसलमान धर्म से तुम पथभ्रष्ट हुए ऐसा समझकर तुम्हें धर्माज्ञा के अनुरूप मार दिया जाएगा।'' बाद में उन सबको मोपला लोगों की निशानी के तौर पर स्त्री-पुरुषों के अनुरूप मोपला वस्त्र दिए गए और पुरुषों को अलग-अलग कर खड़ा कर दिया गया।

''दूसरी टोली!'' थंगल चिल्लाया।

तुरंत उस तलवार के घेरे में पच्चीस-तीस हिंदुओं की दूसरी टोली लाई गई और बंद कर दी गई। उसमें एक थिय्या गुस्से से पास की एक बूढ़ी को दूर धकेल कर बोला, ''ऐ बूढ़ी, तू मसकुनी डोम जाति की है न? और मुझ हरिजन को छूती है? दूर हो जा!'' यह देखकर मशाल लिये हिंदुओं के घर जलाती फिरनेवाली वह मोपली कृत्या ठहाका मारकर बोली, ''निगोड़े, अभी तक तुम्हारी आँखें नहीं खुलीं। अरे तुम हिंदुओं को दिखना चाहिए, इसलिए मैं यह मशाल दिन में भी जलाकर घूमती हूँ; लेकिन तुम्हें अभी तक दिखता नहीं! निगोड़े, मुसलमानों के बंदीगृह में, राज में, पैरों तले कुचले गए, गाय के खून से भरे अपने हाथ उस तालाब में धोकर वह पानी मैंने तुम्हें पिलाया। लेकिन तुम्हारी कलुषता और छुआछूत अभी तक गई नहीं! हरिजन को डोंम की छुआछूत हुई न? अरे जिंदा रहते समय तुम हिंदू कभी भी एक हिंदू जाति की सोचकर इकट्ठे हुए ही नहीं, लेकिन निगोड़े, अब हिंदू होने के कारण सभी एक साथ मृत्यु के मुँह में झोंके जा रहे हो, तब भी इतने समय के लिए भी इकट्ठे नहीं हो रहे न, मरो निगोड़ो!''

''मुसलमान बनते हो कि मरते हो?'' थंगल ने पूछा।

'मैं मरूँगा,' 'मैं मरूँगा,' 'मैं भी मरूँगा' दस-बारह आवाजें उठीं। थंगल चकित हुआ। ''निकालो उन्हें टोली के बाहर,'' उसने कहा। उनमें एक कराहता हुआ, एक ही पैर पर किसी तरह चलता हुआ, जिसका दूसरा पैर जंघा से कट गया है और दवाई के अभाव में उसका जख्म ऊपर पेट तक फैलता जा रहा है और पीब तथा लहू के बहाव में ही जिसे तीन-चार दिन से भयानक वेदनाएँ सहते रहना पड़ा है, जिससे उसके बदन से बदबू आ रही है, ऐसा पुरुष पहले आगे आया। वे हरिहर शास्त्री थे। वे मुँह से राम-राम कह रहे थे।

उन्हें देखते ही खिझाने और उनकी आँखों को आँच लगेगी, इसलिए मशाल को इतनी पास ले जाकर, मोपला बुढ़िया बोली, ''रे मूर्ख ब्राह्मण, तेरी और तेरी हिंदू जाति की यह कैसी दुर्दशा! देख, जीते-जी तू पीब में, लहू में, नरक में पड़ा है! क्यों? इसलिए कि तूने हमारी तरह कोई भी अत्याचार, बलात्कार, आगजनी आदि घोर कुकर्म नहीं किए; सिर्फ वेद पढ़े, सिर्फ पुण्य किए। पाप जरा भी नहीं

किए। इसलिए जीते जी इस दुनिया में नरक यातनाएँ भोगीं। बदन में कीड़े पड़ गए तेरे! और मुझे देख, इस मौलवी को देख, इस थंगल को देख, कैसे गद्दोगिदों पर सुख से पड़े हैं। इस दुनिया में 'अल्लाह और पैगंबर दोनों पर मेरा विश्वास है,' इतना कहने से ही तू अगली दुनिया में स्वर्ग सुख भोगेगा। केवल पुण्य से, केवल तितिक्षा से, पोथी के पन्नों से पेट भरेगा, पुण्य कमाएगा और न्याय की विजय अंत में स्वत:सिद्ध है—ऐसी बावली कल्पनाएँ अभी तक तेरे दिमाग से गईं या नहीं? निगोड़े, पाप किए बिना इस दुनिया में जिंदा नहीं रहा जा सकता। तुझे यह दिखाई दिया कि नहीं?'' कहते हुए उस बुढ़िया ने वह मशाल फिर से उसकी आँखों में घुसा दी। उसकी आँच से व्याकुल होकर हरिहर ने फिर से कहा, ''राम! राम! राम!''

''अब राम ही बोल निगोड़े किसी तरह!'' कहते हुए वह निष्ठुर बूढ़ी जोर-जोर से हँस पड़ी।

उस वीर ब्राह्मण को अपने शरीर की वेदनाओं से बढ़कर अपमान की ये मानसिक वेदनाएँ असह्य लगीं। उसके पीछे चिंतामणि शास्त्री था। उसके पीछे कंबू की टोली के दो-तीन थिय्ये युवक थे। कृष्ण नायर वैद्य—जो श्रीरंग की रक्षा के लिए लड़ते समय घायल हो गया था—उनके पीछे था। उस युवा थिय्या को थंगल ने रोककर पूछा, ''ऐ युवक, इस ब्राह्मण, इस क्षत्रिय के पीछे पागल होकर तुम बिना वजह क्यों मरते हो? तुम मुसलमान बनो। अभी भ्रष्ट की गई इन हिंदू औरतों में से जिसे चाहेगे, तुम्हें दूँगा। सुख से घर-गृहस्थी बसाओ। तुम्हें…'' लेकिन उसका वाक्य पूरा होने से पहले ही वह हरिजन युवक बोला, ''चुप, रे मूर्ख! हमारा एक ही बाप था और वह हिंदू था। इसलिए हम हिंदू भी एक ही बाप के बच्चे हैं—हमारे बाप का नाम था महादेव! हम सब एक ही माँ के बच्चे हैं। हमारी माँ का नाम है हिंदू जाति!''

और सब एक-दूसरे के गले में हाथ डालकर तथा उस घायल ब्राह्मण वीर को बीच में लेकर 'हर-हर महादेव' की गर्जना कर उठे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, हरिजन, डोम—सब जाति-पाँत भूलकर एक ही जय-जयकार करने लगे, ''हिंदू जाति की जय! हिंदू जाति की जय!''

अकस्मात् प्रदीप्त हुए शहादत के इस तेज ने मोपलों को भी एक क्षण के लिए ऐसे चकाचौंध कर दिया जैसे घने अंधकार में अचानक बिजली चमक जाए। वह मोपला कृत्या तनिक घृणा से हँसकर और न चाहते हुए भी अपने मन के संतोष को चिढ़ाते गुर्राई, ''आखिर सीख गए निगोड़े इकट्ठा मरना! लेकिन हिंदू जाति की विजय इकट्ठे मरने से ही नहीं होगी। जैसे अब इकट्ठे मरना सीख रहे हो, वैसे ही

जब इकट्ठे जीना सीख लोगे, तभी जय की गर्जना कर सकोगे। मरते समय जय की गर्जना, निगोड़ों, तुम्हारी विडंबना ही है।''

''नहीं।'' हरिहर शास्त्री ने गरजते हुए कहा, ''विडंबना नहीं। तू जो कह रही है वह क्रूर सत्य है; लेकिन हमारी इकट्ठी मृत्यु ही हिंदू जाति को एक साथ जीना सिखाएगी।''

'जानकी जीवन राम! पतित पावन राम-राम!' वे वीर ताल पकड़कर भजन करने लगे। उन्हें उस कुएँ पर ले जाया गया। तलवार ताने मोपला उन निःशस्त्र बंदियों पर टूट पड़े। खटाखट तलवार के वार हुए। जहाँ पड़ेगा, वहाँ पड़ेगा। हरिहर शास्त्री का आधा सिर कटकर नीचे गिरा।

'जानकी जीवन राम! राम! पतित पावन राम-राम!'

आधा सिर आधे कंठनाल पर वैसे ही लटकता रहा। भयानक खून की बाढ़ आई। 'जानकी जीवन राम! राम! पतित पावन राम! राम!'

उन थिय्या युवकों के हाथ तलवार के वार से उड़कर हरिहर के खून में तैरने लगे। बूढ़ी मसकुनी के दो टुकड़े हो गए--एक कृष्णा नायर वैद्य पर गिरा और दूसरे को पैरों से डंडे की तरह पकड़कर एक मोपला कृष्णा नायर पर पटकने लगा। लहू, मांस उस बदन से छिटककर कृष्णा नायर के मुँह में, नाक में, आँखों में जा रहे थे। इतने में खट से किसी तलवार की नोंक उसकी आँख में घुसी और बाहर निकल आई! कृष्णा नायर की आँख में जो छेद हुआ वह सिर के पीछे तक खुल गया। कर्कश चीख मारकर कृष्णा नायर नीचे गिरा। चीत्कार! कराह! मारो! मत मारो! एक ही बीभत्स हो-हल्ला! कई हिंदू वीर मरे; कई मर रहे थे।

'पतित पावन राम-राम! जानकी जीवन राम-राम!'

उन सब मरे हुए, मरनेवाले, टूटनेवाले और अखंड शरीरों को, प्राणों को, बालों को, लहू को, मांस को, अस्थि को, तड़पते तनुखंडों को उन मोपलों ने वैसे-के-वैसे हाथों से और पैरों से उठाकर, ढकेलकर फेंक दिया कुएँ के उस एक ही जबड़े में, जो मृत्यु का जबड़ा था। एक साथ!

वह भजन रुक गया। बाकी जो हिंदू बचे, पहले ही की तरह उनका मुंडन तथा सुन्नत कर मोपलों के कपड़े दिए गए।

''तीसरी टोली!'' थंगल चिल्लाया।

तीसरी टोली आई और उसी तरह उस सशस्त्र घेरे में बंद कर दी गई। फिर उसी तरह जो मुसलमान बनने के लिए तैयार थे वे जीवित रहे, जो मरने के लिए तैयार हुए उनकी उसी तरह हत्या या अर्धहत्या कर उस कुएँ में धकेल दिया गया। जो जवान लड़कियाँ थीं वे कत्ल नहीं की गईं बल्कि उन्हें कत्ल से भी कष्टतर

दासता के लिए रखा गया।

'चौथी टोली' कहते हुए थंगल गरजा। लेकिन इतने में एक मोपला तेज रफ्तार से घोड़ा दौड़ाते हुए वहाँ आकर बोला, ''वे आए, सरकार, वे आए!''

बड़ी खुशी से उछलकर थंगल बोला, ''अल्लाह की प्रशंसा! कौन? अनवर पाशा की सेना आई? वे मोपलों की सहायता के लिए दस हजार तुर्क, बीस हजार कुर्द और बावन हजार अरब लेकर आनेवाले थे।''

''अनवर पाशा गाजी हैं! बावन हजार अरब लोग आए।'' सभा में एक ही जयघोष हुआ।

''नहीं, नहीं, अनवर पाशा नहीं।'' झिझकते हुए वह घुड़सवार कह ही रहा था कि मौलवी बोला, ''तो फिर कौन आया? अफगानिस्तान के अमीर? मुसलमान वीरों ने दिल्ली कब की जीत ली थी। अमीर इसलाम का खड्ग है।''

''अमीर इसलाम का खड्ग है! लेकिन सरकार, अमीर नहीं आया।'' घुड़सवार इतना कह ही रहा था, इतने में वह कृत्या मशाल ऊँची कर समुद्र की ओर निरखकर बोली, ''फिर कौन आए? अरबस्तान से समुद्र मार्ग से खलीफा जो शस्त्रास्त्र भेजनेवाला था और जिसके लिए कुट्टम के खिलाफत मंडल ने तीन लाख रुपए भेजे थे, क्या वह शस्त्रास्त्र भरी नौसेना आई?''

''चुप बुढ़िया!'' निराशा और क्रोध से अपना गुस्सा उसपर व्यक्त करते हुए घुड़सवार बोला, ''सरकार! वे अनवर पाशा, वे अमीर, वे शस्त्रास्त्रों से भरे अरबी जहाज और वे बावन हजार तुर्क जब आएँगे, तब सही; लेकिन फिलहाल जो आए हैं वे उनमें से कोई नहीं बल्कि केवल गुरखा हैं। हिंदुओं पर अत्याचारों की कहानियाँ सुनकर क्रोधित होकर तथा मंदिरों के गिरे हुए शिखरों और टूटी हुई मूर्तियों का बदला लेने की कसमें खाकर भयानक 'खुकरी' धारण करनेवाले गुरखे, जो भी सशस्त्र मोपला दिखा, उसे गिरफ्तार करते हुए खिलाफत राज्य पर आक्रमण करने आ रहे हैं।''

''आने दो, क्या चिंता!'' थंगल उठते हुए खम ठोंककर किसी क्रूद्ध शेर की तरह बोला, ''वे काफिर मुसलमानों का बाल भी बाँका नहीं कर सकेंगे। ऐ विश्वासनिष्ठ इसलाम वीरो! इस आसमान की कमस! तौबा! ओहो! यह मैं क्या देख रहा हूँ। झुंड-ही-झुंड! किसके! मेरी आँखें मुँदी जा रही हैं! अपनी आँखें मैं खोल तो लूँ! ओफ, यह कैसा नूर! यह कैसी तलवार! हाँ, हाँ समझ गया, समझ गया, ऐ विश्वासनिष्ठ लोगो, जिब्रिल अपने फरिश्तों के साथ उतर रहा है। या अल्लाह!''

''या अल्लाह! जिब्रिल अपने फरिश्तों के साथ उतर रहा है!'' मोपला लोग

उत्तेजित होकर बोले।

''अब गुरखों की क्या बिसात? उसके मुकुट में तीन तारे लटक रहे हैं! यही विजय का चिह्न है!''

''यही विजय का चिह्न है!'' सभा ने प्रतिध्वनि की।

''किस तरह?'' थंगल ने कहा।

''किस तरह?'' सभा ने प्रतिध्वनि की।

''क्योंकि बीदर की लड़ाई में जब पैगंबर के साथ काफिर की सेना ने बड़ा अनर्थ किया तब इसी सेनापति—जिब्रिल—के साथ दो हजार की सेना अल्लाह ने भेजी थी। उस समय उसके मुकुट में तीन ही तारे थे। अब भी तीन ही हैं! ओह! क्या नूर है!''

''ओह, कैसा नूर है! हमसे तो देखा भी नहीं जाता!''

''लेकिन वह आपसे, आपसे भी देखा जाएगा!''

''कब? कब मौलाना, कब? इस पापी को जिब्रिल के मुकुट के तीन तारे कब दिखेंगे?''

''काफिरों से लड़ते-लड़ते तुम्हारे मरते ही! मरते ही दिखेंगे और परियाँ, काली-काली आँखोंवाली! और सुंदर फरिश्ते तुम्हारे पास हँसते खड़े होंगे, जैसे जतन किए हुए मोती! 'सुर तुतूर' अध्याय में बताए हुए सारे वचन सच हो जाएँगे। अब बोलो, गुरखों की कोई बिसात है?''

''ईश्वर के दूत के सामने गुरखे? शेर के सामने मशक!'' सभा ने प्रतिध्वनि की।

''तो फिर आज ही गुरखों पर छापा डालना है न? मोपलों के खाली हाथ काफिरों की बंदूकों के मुँह दबाए रखेंगे। काफिरों की बारूद उड़ नहीं सकेगी—मोपलों को गोली ही नहीं लगेगी।''

''तो आज ही लड़ेंगे! अल्लाह हो अकबर! दीन, दीन!''

''तय हो गया फिर!'' मौलवी ने बीच में ही उठकर कहा, ''गुरखों पर छापा डालना है लेकिन पहले अपने घर के साँप को, शत्रु को—बिलकुल मिट्टी में मिलाकर चलना है। थंगल, ये बाकी जो काफिर बंदी हैं, इनसे एक ही बार पूछ लो—या मत पूछो। सिर्फ औरतों में से जो पसंद आएँ उन्हें चुन लो और बाकियों को कत्ल कर डालो। ये शत्रु अगर जिंदा रहेंगे तो वे काफिर गुरखे आते ही इन्हींसे मिल जाएँगे तथा हमारे विनाश का कारण बनेंगे। मारो, मारो! सभी को कुएँ में फेंक दो।''

इन क्रूर शब्दों को सुनते ही बचे हुए सौ-दो सौ हिंदू बंदियों में दुःख की एक

तीव्र हिलोर उठी। बूढ़ी महिलाएँ, स्त्रियाँ, कच्ची उम्र के लड़के, युवक, बाल, वृद्ध, पुरुष, सभी के मानो प्राण निकल गए—'मारो मत, कम-से-कम मेरे बच्चे को, मेरी माँ को, मेरे पिताजी को, मेरे भाई को—मत मारो!' 'मारो; मैं मुसलमान नहीं बनूँगा,' 'मत मारो, मैं मुसलमान नहीं बनूँगा!' अनेक आवाजें, अनेक वेदनाएँ, भयानक कोलाहल।

उस क्रूर मौलवी के एक कठोर शब्द के साथ सभी मोपले सहसा उन नि:शस्त्र, भयभीत, दीन बंदियों पर टूट पड़े। जिस तरह हम भुट्टे काटते हैं उस तरह तलवारें जहाँ जैसी पड़ीं वैसी खचाखच काटने लगीं। सिर, हाथ, खोपड़ियाँ, मांस, खून, नसें, फाड़े हुए पेट, खींची हुई आँतें—मनुष्य जीवन का वह गारा उस कुएँ में फावड़े से ढकेल दिया गया।

मौलवी ने थंगल से पूछा, ''क्यों आचार्यजी, सारा न्यायकर्म समाप्त हुआ?''

थंगल ने कहा, ''हाँ, हो गया।''

मौलवी ने गंभीरतापूर्वक खड़े होकर और आसपास जहाँ तक दिख सकता था, उतनी दूरी तक देखकर कहा, ''ईमानदारो! अल्लाह की फतह हो! आज इस क्षण मैं अपने जीवन के अति उच्च शिखर पर खड़ा होकर ईश्वर को अनेक धन्यवाद देते हुए कहता हूँ कि मेरे अधीन इस कुट्टम तथा गोपुर तालुके में एक भी हिंदू जिंदा नहीं रहा। मेरे राज्य में इस क्षण एक भी मंदिर या मूर्ति का अस्तित्व नहीं है। लोगों को मुसलमान बनाया, सैकड़ों काफिर कत्ल किए, सैकड़ों काफिरों तथा नास्तिकता के बीज मैंने समूचे खोद निकाले हैं। सैकड़ों देवताओं को पलटा दिया है। बस, अब केवल विश्वसनीय सत्यधर्मी पैगंबर तथा अल्लाह का ही घोष मेरे राज्य में सुनाई देगा। इस खिलाफत के राज्य में अन्यायी, पापी, मूर्तिपूजक, अधर्मी और अत्याचारी कोई नहीं बचा!''

मौलवी जब 'हमारे राज्य में' कह रहा था तब वह जिस अहंकार से, थंगल को बिलकुल महत्त्व न देते हुए बोल रहा था, थंगल को वह बिलकुल नहीं जँचा। तथापि खुला विरोध न करते हुए, पर अपना भी कुछ महत्त्व जताने के लिए बीच में ही थंगल ने कहा—

''लेकिन अब गुरखों के आने का जो संदेश मिला है, उसका अगर पहले ही प्रतिकार नहीं किया गया तो शायद यह यश अल्लाह हमसे छीन लेगा। उसमें जिब्रिल के दूतों की सेना—अल्लाह उन्हें यश दे—पास आ रही है। इसलिए आज का अत्यंत आवश्यक शेष काम अगर कोई है तो वह यह कि जिन्होंने इस खिलाफत राज्य की स्थापना के लिए कष्ट झेले हैं, उनको यथोचित बख्शीश दी

जाए। यह जितना जल्दी हो सके, करके हम शत्रु सेना की धज्जियाँ उड़ाने जाएँगे। यह राज सभी ने कमाया है। यह खिलाफत राज्य है। यहाँ की संपत्ति सभी की है।''

''संपत्ति सभी की है! साझी है!'' सभा ने गर्जना की।

''और मृत्यु भी सभी की साझी है।'' वह बूढ़ी ठहाका मारकर हँस पड़ी।

मौलवी के सीने में घबराहट सी हुई, परंतु मोपलों को त्वरित रूप से उत्तेजित करने के लिए वह झट से बोला, ''हाँ चलिए, लाइए उन काफिरों की सभी कन्याएँ मेरे सामने!''

उन सभी जवान लड़कियों को, जिन्हें वैसे ही लूट के तौर पर रखा गया था, लाकर पंक्ति में खड़ा कर दिया गया। थंगल ने कहा, ''छोकरियो, तुममें से जो मुसलमान होंगी उनसे मोपले सरदार शादी करके तुम्हें विधिपूर्वक अर्धांगिनी के सारे अधिकार दे देंगे। लेकिन जो मुसलमान धर्म नहीं स्वीकारेंगी, वे जबरदस्ती मोपला सैनिकों को दासी के रूप में बाँट दी जाएँगी।''

''परंतु मैं मरने के लिए तत्पर हूँ, मैं, मैं और मैं!'' पाँच-छह वीर युवतियाँ उस पंक्ति में से निर्भयता से गरज उठीं। परंतु वह बूढ़ी उनमें से एक का मुँह सहलाकर और अपना घिनौना मुँह उसके गाल से जान-बूझकर लगाकर बोली, ''मेरी बिटिया, तू अभी बच्ची है। मरना सभी को है, लेकिन छोरी, थोड़ा जीकर भी देखेगी या नहीं? तू अपनी मरजी से कोई भी मोपला ले ले, फिर तो ठीक है! अरी, हिंदू से मोपला बहुत अच्छा। मैं अनुभव की बात बता रही हूँ, सुन।''

''जल जाए रंडी तेरा मुँह,'' कहते हुए उस तेजस्विनी लड़की ने उस बूढ़ी के मुँह पर एक तमाचा मारा परंतु उससे उस बूढ़ी को मानो संतोष ही हुआ और उसने कहा, ''ओह, अगर हिंदू पुरुष इस तरह से दूसरों के मुँह पर झट से मारना सीखते, तो मेरी छोरी, मैं भी तेरे साथ मरने के लिए तत्पर होती! लेकिन उन निगोड़ों को तमाचा खाने में ही साधुता लगती है। इसलिए तो मैं उनके मुँह पर लगातार मारती आई हूँ! जब उनका पेट भरेगा तमाचे खाकर, उसी दिन मैं मरूँगी!'' उसकी यह विक्षिप्त टकली चल रही थी, तब मौलवी ने जल्दी-जल्दी उन हिंदू लड़कियों में से जिसे जो भाए उसे चुन लेने के लिए मोपलों से कहा। पहले बड़े सरकार, फिर छोटे, फिर सैनिक, इन लोगों के चुनने का तय हो गया। सबसे पहले पागल मोहम्मद बोला, ''मुझे लक्ष्मी चाहिए।'' यह सुनते ही मौलवी के माथे पर अठियाँ दिखने लगीं। तब तुरंत सँभलकर मोहम्मद बोला, ''मुझे लक्ष्मी चाहिए! मैंने उसे पराजित किया है और हम सबके लिए जो सर्वश्रेष्ठ और प्रथम मान के अधिकारी हैं, उन मौलवीजी को मैं उसे अर्पित करूँगा। ठीक है?'' ''ठीक है,'' सबने कहा। परंतु

थंगल चुप रहा। उसे लगा, मौलवी ने जान-बूझकर उसका अपमान करवाया। फिर इब्राहिम ने कहा, ''मौलवी के बाद चुनाव करने का हक मेरा है।'' परंतु अब्दुल गुस्से से बोला, ''मेरा।'' तब इब्राहिम ने कहा, ''मैंने तीन मंदिर मिट्टी में मिला दिए, दस से बीस लड़कियाँ और औरतों को पकड़कर लाया हूँ। उनके बाप, भाई और घरवालों को जान से मार दिया अथवा घायल किया या मुसलमान बनाया। इसलिए मैं श्रेष्ठ हूँ। खिलाफत राज में धर्म का प्रचार और शत्रु का दमन मेरे जितना किसने किया?''

''अब्दुल ने,'' अब्दुल ने कहा, ''मैंने कुट्टम के ब्राह्मणवन के काफिरों की सभी पुस्तकों को आग लगा दी। सुमति का पीछा मैंने किया। 'हिंदुओं पर दया करो' कहनेवाले, हमारे धर्मवीरों के धैर्य को—कृत्यों को अत्याचार समझनेवाले खिलाफत राज में द्वेष्टा शिया मुसलमान फकीर को आखिरी पत्थर—जिससे उसका माथा नारियल की भाँति तड़ाक से फूटकर चकनाचूर हुआ—वह प्राणघातक पत्थर मैंने मारा। अफगान के अमीर साहब दिल्ली आए, यह खुशी की खबर मैं लाया। अली मुसेलियर के सामने माधव नायर के पेट में मैंने छुरी घोंप दी, क्योंकि उसने खिलाफत सचिव का काम करते हुए भी मोपला कांड के लिए हिंदुओं से केवल दस हजार रुपए ही जमा किए, दस लाख नहीं। मैंने सिपाहियों को लूटा। मैं काफिरों के देवताओं से लड़ा। मैं काफिरों के सैकड़ों पुरुषों से लड़ा। मैं काफिरों की सैकड़ों औरतों से लड़ा।''

वह बूढ़ी जोर से गरज उठी, ''तो फिर तू ही सबसे शूर तथा धर्मनिष्ठ है, यह निश्चित हुआ। लेकिन मैं? मैं लगातार तीन-चार दिन-रात काफिरों के घरों को आग लगती रही हूँ। आधा मालाबार मैंने जला दिया। लेकिन अभी जला नहीं। मेरा क्या किसीसे झगड़ा था? केवल मुसलमान धर्म का अभिमान था, इसलिए। उसका काफिरों पर दबदबा जमाकर हिंदू होने में कितनी हानि है, यह उनके ध्यान में लाने के लिए मैं यह कार्य करती आई। मेरा धर्म का अभिमान तथा मेरी देशसेवा क्या तुम्हारे से कम है? पीछे से आए निगोड़े और सिर पर बैठ गए। दो काफिरों की लड़कियों को तो मैंने जला ही दिया! अल्लाह की कसम! और कई बार जबरदस्ती मोपलों के…''

इस विवाद को रोककर मौलवी ने कहा, ''वीरो, इब्राहिम अब्दुल, बूढ़ी अम्मा! तुम्हारे और बाकी वीरों के कृत्य इतने उज्ज्वल हैं कि वे तुम्हें इस लोक में यश और सुख तथा परलोक में स्वर्ग की प्राप्ति कराने में सहायक होंगे। तुम्हारे पराक्रम के कारण ही हम आज इस राजपीठ पर गर्व कर सकते हैं, आज हमारे इस राज में एक भी काफिर जिंदा नहीं रहा। आज इस खिलाफत राज में केवल

ईश्वर और पैगंबर की आज्ञा को माननेवाले सद्धर्मनिष्ठ, ईमानदार मुसलमान ही रह रहे हैं। न्यायपरक इसलाम के कानून से ही यहाँ राज का कारोबार चलाने के कारण अन्याय का नाम भी सुनाई नहीं देता; और इसलिए मेरी आज्ञा है कि धर्मयुद्ध में मिली हुई लूट भी हमें पवित्र कुरान की आज्ञा के अनुसार बाँट लेनी चाहिए। आठवें अध्याय के पहले आयने में कुरान शरीफ कहता है कि 'ऐ वफादार मुसलमानो, तुम काफिरों से लड़कर प्राप्त की हुई लूट के बारे में लड़ना मत। इसमें बिलकुल संदेह नहीं कि सारी लूट ईश्वर और पैगंबर की ही है। वे देंगे, करेंगे—इस तरह सभी को मानना चाहिए। अब ईश्वर ने सप्तस्वर्ग से ऊँचे स्थान पर विराजमान होने के कारण उसने पृथ्वी पर लूट का हक पैगंबर को दिया है। पैगंबर ने खलीफा को दिया। अर्थात् खलीफा ने जिस समय इस तालुका के खिलाफत राज के प्रतिनिधित्व का हक मुझे दिया, उस समय उस देन से ही वह हक मेरे पास आया। इसलिए सारी लूट धर्म से पहले मेरी है। इस लूट में से मैं तुम धर्मवीरों में जो बाँटना चाहता हूँ वह केवल मेरी उदारता और धार्मिक प्रवृत्ति के कारण ही है। इसलिए इस लूट का जो बँटवारा करूँगा, वह बिना बहस करते हुए बाँट लेना।'' कहते हुए उसने उन लड़कियों में से जिसने जो चाही, उसे दे दी। फिर थोड़ी बड़ी उम्र की औरतों को बाँटा गया। उनमें से एक साध्वी रोते-रोते बार-बार कहती थी, ''दया करो। मैं विवाहिता हूँ। मुझे मेरे पति के पास भेज दो। अथवा जान से मार डालो!''

थंगल ने कहा, ''ऐ औरत, तू जब तक मुसलमान नहीं बनती, तब तक तेरा कोई पति होना संभव ही नहीं। क्योंकि कुरान शरीफ के चौथे अध्याय के पच्चीसवें आयने के अनुसार काफिरों की औरतें—यदि उनकी पहले शादी हुई हो या न हुई हो—मुसलमानों की संपत्ति होती है। और कुरान शरीफ के दूसरे अध्याय के दो सौ बीसवें आयने के अनुसार काफिर की स्त्री कितनी भी भली क्यों न हो, उससे मुसलमान दासी भी श्रेष्ठ है, ऐसा आज्ञापित किया है। इसलिए तुझे पति करने का अधिकार मुसलमान होने तक नहीं मिलेगा। काफिर पतिशास्त्र नहीं मानता। मुसलमान धर्म स्वीकारने तक तुझे पति नहीं मिल सकता। इसलिए केवल दासी होकर ही तुझे रहना पड़ेगा।''

''परंतु मुझे जान से मारने के विरुद्ध तो शास्त्र नहीं है न? जिस शास्त्र से कोमल बच्चों तथा वृद्ध पुरुषों को मार सकते हैं, अस्पृश्य कुमारियों को भ्रष्ट किया जाता है, देवमूर्ति फोड़ सकते हैं, उस शास्त्र में स्त्री को मार डालने के लिए कोई आधार न हो, यह संभव नहीं। मुझे मार डालो!''

थंगल ने कहा, ''ऐ औरत, लेकिन ऐसा है...'' इतने में गुस्से से वह मोपला

कृत्या गरजी, ''ऐ थंगल, तू उस लौंडी को क्या समझाने बैठा है! लगता है तू मुसलमान नहीं! अध्याय सात आयने एक सौ अट्ठावन में क्या बताया है? पूरे कुरान में से वही एक आयन मैंने याद किया है और उस एक आयन से मेरी आत्मा को मशाल जितना स्पष्ट दिखाई दे रहा है। मुसलमानो, उस आयन के कहे अनुसार विश्वास रखो! निरक्षर ईशप्रेषित मोहम्मद पर विश्वास रखो! विवाद क्या कर रहा है! जो विवाद करता है, वह कैसा मुसलमान?''

इतने में कोई मोपला एक और स्त्री को पकड़ लाया, ''एक काफिर औरत खिलाफत राज्य में अभी तक जिंदा है।''

''ले आओ उसे सामने!'' उस बूढ़ी ने कहा और उसके सामने आते ही ठहाका मारकर हँसती हुई बोली, ''हाय, यह तो मुझसे भी कुरूप है। इसकी कौन परवरिश करेगा? इसे क्या कोई पति मिलेगा?'' मोपलों में से अनेक लोग जोर-जोर से हँसते हुए बोले, ''हम सब मिलेंगे, एकाध क्यों! लेकिन इस भैंस को कौन लेगा?'' मोपला गरज उठे, ''मुफ्त में भी यह नहीं चाहिए!'' ''तो फिर मर जा रंडी!'' वह बूढ़ी बोली। तब घबराई हुई वह औरत विह्वलता से बोली, ''बेशक मार डालना, परंतु अभी मत मारो, मैं पाँव छूती हूँ, मैं गर्भवती हूँ। दो महीने के बाद यह बच्चा पैदा होगा। फिर मुझे सुख से मार डालना। अब मेरे लिए मेरे इस निर्दोष गर्भ की जान मत लो! मैं गर्भवती हूँ।''

''ओह! तू गर्भवती है, इतनी ही बात है न? तो फिर नर्क में सूतिकाओं के लिए स्वतंत्र कमरे होते हैं। तू मर जा, उन कमरों में से एक तुझे मिल जाएगा। इतना ही नहीं, अपितु मैं खुद तेरी प्रसूति कराने के लिए दो महीनों के अंदर-ही-अंदर तेरे पीछे-पीछे ही नर्क में आ रही हूँ। इसलिए डर मत!'' वह बूढ़ी इस तरह कह ही रही थी कि तभी उसके इस वीभत्स तथा भीषण व्यंग्य से सारे मोपले जोर-जोर से हँस पड़े। उसी हँसी से ज्यादा उत्तेजित और व्यंग्य के जोश में उस बूढ़ी ने अपनी छुरी उस स्त्री के पेट में हँसते-हँसते घुसा दी। वह औरत मर गई। वह गर्भ कट गया।

''घुड़शाला की गंजी के पास रहनेवाली यह बुढ़िया! अरे, यह कैसे इतनी देर बची! इसे मैं अपनी बीवी बनाऊँगा! नहीं, मैं बनाऊँगा!'' इस तरह से मोपला सैनिकों में फिर से हँसी-मजाक शुरू हुआ, क्योंकि एक जर्जर हिंदू स्त्री को उसके गाँव की गंजी के सामनेवाली झोंपड़ी में से ढूँढ़कर पकड़ लाया गया था। जो कोई मोपला, पुरुष या स्त्री, हिंदुओं में से किसी भी मनुष्य को पकड़कर लाएगा, उसे इनाम मिलेगा, ऐसा ऐलान खिलाफती राज के पहले ही दिन किए जाने के कारण हर कोई मोपला हिंदू का शिकार करने के लिए घूमता था। लेकिन इस जर्जर बूढ़ी

का भी कुछ मोल है, यह किसीके लिए भी सच नहीं था, इसलिए किसीने भी उसपर ध्यान नहीं दिया था। वह आज इतने दिनों से कुट्टम गाँव की उस घुड़शाला के पास इतनी चुपचाप पड़ी रहती थी कि उस झोंपड़ी के पास खड़े किसी बरगद के पुराने चबूतरे की तरह कहीं भी उसकी गिनती नहीं थी। वह इतनी बूढ़ी थी कि उस गाँव के बूढ़े-से-बूढ़े लोगों को भी उसकी युवावस्था कभी याद ही नहीं आती थी। वह किसीके साथ बातें करती हो, यह भी ज्यादातर किसीको ज्ञात नहीं। लेकिन जो चार शब्द वह बोलती थी, वे टेढ़े तथा तीखे होते थे। उसकी पूर्वपीठिका किसीको भी ज्ञात नहीं थी। उसके पास कभी कोई आता नहीं था। वह किसीके पास बैठती नहीं थी। उसका नाम भी किसीको ज्ञात नहीं था। उसे 'गंजी पास की बूढ़ी' इतना ही सब कहते थे। ऐसी जराजर्जर बुढ़िया को भी इनाम की आशा से जब कोई मोपला औरत पकड़कर लाई तब स्वाभाविक रूप से सभी ओर हँसी हुई। किसीने कहा, "इस जर्जर बुढ़िया को पकड़ लाने के बदले में उस बीबी अम्मा को पूरी दो कौड़ियाँ दे दो।" "क्या इस बुढ़िया का मोल इतना कम है?" "इसे पकड़ने के बदले में पूरी एक कौड़ी और आधी कौड़ी, इस तरह डेढ़ कौड़ी इनाम मिलना चाहिए।" "मैं तुझे डेढ़ क्या, डेढ़ सौ कौड़ियाँ दूँगा। इसे तू अपनी औरत बना ले तो?" "अरे वह औरत तो है ही! उसे पुरुष बनाना पड़ेगा।" "क्या सबूत है? क्या सबूत है कि यह औरत है? लगता है यह साला कभी-कभी इसकी पूरी जाँच कर लेता है!" इस तरह की सस्ती शब्दक्रीड़ा मोपलों के समुदाय में जोर-जोर की हँसी फैला रही थी। उस मजाक से उत्तेजित होकर वह कृत्या भी अपनी मशाल लेकर उस बुढ़िया की ओर दौड़ी और बोली, "ऐ अप्सरा, तुझसे अधिक बूढ़ा इस दुनिया में कौन है?"

"तेरा बाप!" बुढ़िया उपरोध से हँसी।

"क्या सचमुच तेरा मूल्य मेरी इस फूटी कौड़ी जितना है?"

"नहीं, तेरी फूटी कौड़ी जितना नहीं बल्कि तेरी फूटी खोपड़ी जितना है!"

"ठीक है फिर!" जरा चौंककर वह कृत्या पीछे हटी, उसका चेहरा फीका पड़ गया। फिर उसने एक-दो बार इस तरह गरदन मटकाई जैसे कुछ जान गई है।

"ठीक है! बता दे अब तू सबकुछ, जो देखना था वह देखा, अब ले, बुझा दी मैंने अपनी यह मशाल!"

इस तरह अजीब तरीके से बोलकर उस कृत्या ने वह मशाल मिट्टी में घुसेड़कर बुझा दी। उसका यह कृत्य उन लोगों को भी विचित्र लगा, जो उसकी हमेशा की उद्दंडता को जानते थे। वह कृत्या फिर से बोली, "बता, बता दे क्या है?"

परंतु मौलवी ने कहा, ''यह क्या गड़बड़ी मचा रखी है ! इस बूढ़ी की गपशप सुनने का यह समय थोड़े है, बुड्ढी अम्मा ?''

मौलवी की अहंमन्यता तथा उसके इस घमंड से कि 'जो आज्ञा देनी है वही उसे देगा' झल्लाया हुआ थंगल, मौलवी का अपमान करने का अवसर देख ही रहा था। अब बूढ़ी अम्मा—उस कृत्या के भी—उसके पक्ष में होने की संभावना से तथा लोगों की जिज्ञासा भी उसकी थोड़ी सहायता करेगी, यह बात स्पष्ट होने के कारण, मौलवी के विरुद्ध आज्ञा देने के निश्चय से थंगल ने कहा, ''बूढ़ी अम्मा ! तुम कहती हो, वही ठीक है; और आप लोगों को यदि यही ठीक लगता है कि वह जो कुछ भी है, बताना चाहिए तो वह महत्त्वपूर्ण, कम-से-कम जानकारीपरक तो होगा ही। बता दे, ऐ गंजी पास की बुढ़िया, बता दे जो कुछ भी है !''

मौलवी बोला, ''यह समय की बरबादी हो रही है, इतना भी नहीं समझते ?''

थंगल बोला, ''समय की बरबादी किसे कहते हैं यह तुम-हमसे अधिक धर्मशास्त्र जानता है, यह बात स्पष्ट है; यह बुड्ढी है, फिर भी उसकी आत्मा है। इसे मारने या दूसरी कोई भी सजा देने से पहले इसका क्या कहना है, वह सुन लेना चाहिए। इसलाम का कानून किसीको भी अन्याय से सजा नहीं देता। खिलाफत के राज में मुजरिम का कहना सुने बिना किसीको सजा या इनाम नहीं मिलता। खिलाफत का राज न्याय तथा धर्म का राज है।''

''खिलाफत का राज न्याय का राज है। अन्याय से हम किसीको भी सजा नहीं देते ! इसलाम का कानून कभी भी जुल्म नहीं करता।'' भीड़ से गर्व भरी प्रतिध्वनि उठी, ''बोल ! गंजी पास की बुढ़िया, बता जो बताना है !'' सैकड़ों आवाजें।

''बता !''

''नहीं—मैं जो कहनेवाली हूँ वह व्यंग्य है !'' वह बुढ़िया पोपले मुँह से शब्द चुभलाने लगी, ''मेरे अब थोड़े दिन बचे हैं। उन्हें मैं अपने हिंदू धर्म के अनुसार आचरण करते हुए बिताऊँ तथा हिंदू कहलाती हुई मर जाऊँ, ऐसी मेरी इच्छा थी। मैंने इस मोपला औरत के—जब यह मुझे पकड़ने आई तब—पैर भी पकड़े कि वह मुझे क्यों ले जा रही है ? देवताओं की मूर्तियाँ तोड़नी हैं तो मेरे मंदिर में एक भी मूर्ति बची नहीं। लज्जा छीननी है तो मेरे कौमार्य के गन्ने को चूसकर फेंकी गई चिप्पियों की आग में मेरी लज्जा कब की राख हो चुकी है। सुतवतियों के बच्चों को दूध पिलानेवाले स्तनों पर कुंद तलवार चलाकर उसे धार लगानी हो तो सूखे झरनेवाली चट्टान की तरह यह मेरी छाती रूखी तथा उग्र दिख रही है। सारांश, जिहाद—धर्मयुद्ध—करनेवाले मोपला धर्मवीरों के किसी भी धार्मिक कृत्य के काम में आने

जैसी चीज मेरे पास बची नहीं। इसलिए मैंने कहा था कि मुझे क्यों पकड़ती है? परंतु यह मोपला मुसलमान औरत आखिर मुझे पकड़ ही लाई। अब एक बात है कि मैं अपना हिंदू धर्म नहीं छोड़ रही और दूसरी बात यह है कि मुझे ठीक तरह से देख लो। जिसके स्तनों का दूध पीकर मनुष्य साँप बन गए हैं, ऐसी बुढ़िया इस मालाबार में मेरे मरने के उपरांत तुम्हें नहीं दिखेगी। मैंने अपने इन स्तनों से जिन बच्चों को दूध पिलाया, उनमें से जो साँप बने, उन्हें मैंने अपने घर में रखा। जो मनुष्य ही रह गए उन्हें मैं घर से डेढ़ सौ फीट तक भी आने नहीं देती।''

''ऐ बुड्ढी, क्या बक रही है?'' थंगल की पहली बातों का गुस्सा दिखाते हुए उसे किसी तरह बोलने से रोककर थंगल की आज्ञा को निष्फल करने के लिए मौलवी गरज उठा, ''कौन? कौन मनुष्य? क्या बकती है? साँप कौन? चल, जल्दी कर!''

''साँप तू! और मनुष्य जान से मारा गया वह कंबू! थिय्या! जल्दी कर रही हूँ। मैं मरूँगी। परंतु इतना ही कहकर मरूँगी कि मेरे स्तनों के दूध की धारा तेरी माँ के स्तन से तेरे मुँह में पड़ी है। मेरे गर्भ के जीवन की धारा तेरी माँ के गर्भ से बहती तेरे हृदय में उतरी है।''

''चुप कर! साली, क्या बकती है! इस मौलवी की नसों में मोहम्मद पैगंबर के खून का खून है, समझी! पैगंबर की मौसी के दामाद की बहन का जो सगा पड़ोसी, उसके भतीजे का लड़का मेरा पूर्वज है, समझी! रंडी कहीं की! मैं सैयद हूँ। मैं अरब हूँ! मैं कुरैश हूँ!''

मौलवी के इस गुस्से का कारण स्पष्ट था। परंपरा यह थी कि खिलाफत राज में प्रमुख अधिकार अरबों के और उसमें भी पैगंबरों की जाति में उत्पन्न असली मुसलमानों के हाथ में होना चाहिए। इसलिए उसके पूर्वज असली कुरैश हैं, यह दावा मौलवी हमेशा जोर-जोर से करता था। परंतु इस बुढ़िया के इन वाक्यों ने उसके मर्म पर ही आघात किया था। लेकिन मौलवी को उसके इस वाक्य से जितना क्रोध आया था, उतना ही संतोष उन्हीं वाक्यों से थंगल को हुआ और वह मन में अत्यंत उत्सुक हो गया कि उस बुढ़िया के मुख से कुछ अद्‌भुत समाचार बाहर निकलेगा और फिर इस मौलवी का घमंड एक क्षण में नष्ट कर दिया जाएगा। इस आशा के साथ थंगल ने उस बुढ़िया से कहा, ''बुढ़िया, डरो मत, जो कहना है वह कह दो; जो सत्य है, उसे निर्भीक होकर, निर्भयता से कहो।''

''तो सुनो! स्पष्ट रीति से सुनो! मैं मालापुत्तर गाँव के रतन कनीसन की बेटी हूँ। मेरे तीन बच्चे हुए। दो लड़के और एक सबसे छोटी लड़की। हमारी कनीसन की जाति थिय्या से भी नीच समझी जाने के कारण, हमारा घर हमारे

गाँव से बिलकुल दूर किसी गढ़े जैसी जगह पर था। हमारे पड़ोस में किसी खेत में काम करनेवाले मोपला परिवार की केवल एक झोंपड़ी थी। उस वर्ष बहुत भारी अकाल पड़ा। लेकिन मैंने उस मोपला परिवार के सभी लोगों को अपनी रोटी में से रोटी और सब्जी में से सब्जी देकर दया से पाला-पोसा। वे जब मुझसे आँखों में आँसू लाकर कहते थे कि 'अल्लाह तेरा भला करे! तू हमारी माँ है!' तब दया से मैं मन-ही-मन कहती थी, 'मैं इन्हें पुत्रों के समान मानूँगी। प्राण जाने पर भी ये मुझे दूर नहीं करेंगे।' अकाल समाप्त हुआ। वह मोपला परिवार खा-पीकर मोटा-ताजा हुआ। इतने में मोपलों का एक दंगा अरनाड़ तालुका की तरफ होने की खबर आई। खबर के पीछे-पीछे 'दीन-दीन' करते हुए हम उन दो बच्चों को लेकर, उस मोपला परिवार को घर का ध्यान रखने के लिए कहकर, वन में जाकर छिप गए। परंतु उन दंगाइयों को हमारा पता लगा और वे दूसरे दिन हमें पकड़ने आए। उन सबके आगे हमारा पता लगाते हुए और मार्ग दिखलाते हुए कौन आया था? हमारे द्वारा अकाल में पाले-पोसे उस मुसलमान परिवार की औरतों ने हमें पकड़ लिया और मेरे पति को मुसलमान बनाने के लिए पकड़कर ले गए और उन्हें जान से मार डाला। मुझे नग्न करके मेरी लज्जा हरण की—किसने? हमने अकाल में जिन्हें पाला-पोसा, उस मोपला परिवार के मुसलमानों ने! ऐसी गड़बड़ी के बावजूद मेरी छोटी लड़की को लेकर मेरा बड़ा लड़का भागकर छिपते-छिपते हमारे मालापुत्तर गाँव में आया और किसीसे आश्रय के लिए विनती करने लगा। दंगाई चारों ओर से आ ही रहे थे। लेकिन हम कनीसन जाति के! मेरी उस बच्ची को गाँव के आसपास कोई आने नहीं दे रहा था। मेरे बच्चे किसी ब्राह्मण के आगे पल्लू फैलाकर बोले, 'हमें जबरदस्ती मुसलमान बना रहे हैं। आप हैं हिंदुओं के गुरु! हमारी रक्षा करो!' तब वह ब्राह्मण बोला, 'क्यों न तू मुसलमान बन जाए! उसमें मेरा क्या जाता है?' तब मेरे बच्चे भयभीत होकर किसी मंदिर में रात को छिपकर बैठे। लेकिन इतने में किसी नायर क्षत्रिय ने यह देखकर शोर मचाया। उस मंदिर के परिक्रमा-मार्ग पर कुत्ते सुख से सो रहे थे, परंतु उस क्षत्रिय ने मेरे बच्चों को मारते-मारते मंदिर के बाहर भगा दिया। बच्चों ने उसकी कितनी मिन्नतें कीं, 'महाराज, आप क्षत्रिय—हिंदुओं के रक्षक। हमें मुसलमान जबरदस्ती पीड़ा दे रहे हैं, मुसलमान बना रहे हैं। मारिए, परंतु हमें धर्मभ्रष्ट न होने दीजिए।' उसने कहा, 'मुसलमान तुझे भ्रष्ट कर रहे हैं तो क्या तू मंदिर भ्रष्ट करेगा? भ्रष्ट हो जा या मर जा! तेरा धर्म तेरे पास। मेरा धर्म मेरे पास। मुझे उससे क्या!' तब मेरे बच्चे महारवाड़े में थिय्या लोगों की घास की जो गंजिया थी, उसमें जाकर छिप गए। इसपर वे थिय्या लोग शोर मचाते हुए चिल्लाए,

'कनीसन जाति के बच्चों ने गंजी को छूआ! हम महारों को छुआछूत हुई।'

मेरे बच्चों ने कहा, 'हाथ जोड़ते हैं महाराज! आप महार—हम कनीसन डोम आपसे नीचे हैं। परंतु ये मुसलमान हिंदू धर्म छोड़ो, नहीं तो मरो, कहते हुए हमारे पीछे पड़े हैं। इसलिए आश्रय दीजिए। आप महार थिय्ये! आप जब बनिया, सुतार, तेली लोगों के पास जाते हैं और वे आपको 'दूर हो जाओ' कहकर दुत्कारते हैं, तब आपको वह अन्याय लगता है। परंतु महार महाराज, वही अन्याय आज आप हमारे साथ कर रहे हैं! कम-से-कम आज तो हमें आश्रय दीजिए। हमें मुसलमानों ने जबरदस्ती मुसलमान बनाया तो आप ही के हिंदू धर्म की क्षति होगी न?' वे महार थिय्ये क्रोधित हो हँसे, 'गधो, हिंदू धर्म क्या कहीं तुमसे ही जिंदा रहा है? और तुम यदि मुसलमान हुए तो अच्छा होगा या बुरा? तुम कनीसन हिंदुओं को हम महार छूते नहीं। परंतु मुसलमान होता तो वह हमें छू सकता था! जाओ, मुसलमान बनो या न बनो; हमें उससे क्या!' महारों की ये बातें हो रही थीं, इतने में उस गाँव पर मोपलों का हमला हुआ, परंतु पुलिस के आने से पहले मोपले भाग गए। केवल मेरी बेटी फिर से उनके हाथ लगी। वह दीन गाय की तरह चिल्ला रही थी, परंतु कोई हिंदू उसकी रक्षा नहीं कर रहा था। हर कोई अपनी-अपनी ऐंठ में या चिंता में—'मुझे उससे क्या!' यही कहता रहा। मेरी बेटी के साथ मुसलमानों ने भयानक अत्याचार किए। अंत में कोई एक मोपला उसे अपना शतरंज का मोहरा समझकर ले गया। थोड़े ही दिनों में उसे दिमाग की कोई बीमारी हुई। आगे चलकर कभी-कभी वह मुझसे मिलती थी, लेकिन पागल की तरह कहती 'मुझे उससे क्या! इन निगोड़े हिंदुओं को अच्छा सबक सिखाना चाहिए कि उन्हें उनसे कुछ है।' बाद में वह कहीं गायब हो गई। परंतु मैं सुनती रही कि हर किसी हिंदू को देखकर वह पागल की तरह चिल्लाती थी, 'मुझे उससे क्या? सिखाऊँगी तुझे मैं, तुझे उससे क्या!' मेरे दोनों बेटे पकड़े गए और भ्रष्ट किए गए। उनमें से जो बड़ा था, वह मेरे पास ही रहा। लेकिन जो छोटा था, बचपन में ही उसपर किसी मोपला थंगल की पापदृष्टि पड़ी और वह मुझसे जबरदस्ती छीन लिया गया। उसे उसने मुसलमान पाठशालाओं में कुरान कंठस्थ करवाया। वह पक्का मुसलमान बना। इतना कि एक दिन वह मुझे और अपने बड़े भाई को जान से मारने को उद्यत हुआ था। हम दोनों को भ्रष्ट किया गया था; परंतु हम दोनों भ्रष्ट नहीं हुए। इसलिए हमने मालापुत्तर के सभी हिंदू बंधुओं से याचना की कि वे हमें फिर से हिंदू मान लें। परंतु वे सारे ठहाका मारकर हँसते थे और कहते थे, 'हिंदू तो मुसलमान बन सकता है, परंतु क्या मुसलमान कभी हिंदू बन सकता है?' 'तुझे हिंदू धर्म के हक नहीं मिलेंगे। तू एक तो कनीसन जाति की औरत है, और अब तुझे मुसलमानों ने भ्रष्ट कर दिया है। अब तुझे हम छुएँगे?

पानी के कुएँ के पास और मंदिर के बिलकुल पास से जाने देंगे? तूने गाय का मांस खाया तो तुझपर हँसेंगे नहीं? तूने राम या कृष्ण को गाली दी तो वह तेरा धर्म ही है, ऐसा मानकर हम क्रोध नहीं करेंगे? कनीसन जाति को हम हिंदू धर्म के जो हक देते हैं, वे तुझे फिर से कैसे दे सकते हैं? मंदिर के या हमारे घर के डेढ़ सौ फीट के अंदर न आने का अधिकार तुझे फिर से नहीं दे सकते।'

मेरा पति तो मारा ही गया था। मैं और मेरा बेटा दोनों ही घर पर थे। यद्यपि लोग हमें मुसलमान कहते थे, फिर भी कुछ दिन हमने अपने आपको हिंदू समझकर वैसे ही बिताए। एक दिन हम दोनों रामनवमी का उत्सव समाप्त कर भजन करते हुए भक्तिभाव से राम का नाम ले रहे थे। इतने में हाथ में छुरा लेकर एक भयानक हत्यारा मेरे घर में घुसा और कहने लगा, 'मुसलमान बनाने पर भी तू अभी तक काफिरों के ही धर्म का पालन करती है? जो मुसलमान काफिर बने उसे जान से मार डालो, ऐसी हमें धर्माज्ञा है।' इस तरह कहता हुआ वह चांडाल हमें जान से मारने दौड़ा। परंतु मेरे शूर पुत्र ने कुल्हाड़ा उठाकर उसकी पीठ में इतने जोर से और कुशलता से मारा कि वह, 'अल्लाह! या अल्लाह!' कहता हुआ एक-दो बार चिल्लाया और गतप्राण हुआ। हमने पास जाकर देखा तो हमारा हत्यारा कोई और नहीं, बल्कि अकाल में जिसे मैंने दया से पाला-पोसा था और जो मुझे 'माँ' कहता था, वही मेरा पड़ोसी मुसलमान था! सुमति ने जिसे दूध पिलाया था, उस साँप ने उस दूध का उस तरह मूल्य चुकाया लेकिन मैंने अपने मुँह की रोटी खिलाकर जिसे पाला-पोसा उस मोपला ने—मनुष्य ने—मुझे इस तरह से भुगतान किया! क्योंकि साँप कितना भी विषैला क्यों न हो उसका विष किसी एक धर्मग्रंथ के मंत्र से प्रभावित नहीं होता, इसीलिए वह विष धर्मांधता के मानवीय विष से कम उग्र होता है।

उस हत्यारे से हम बच गए। परंतु उस वध का मुकदमा हमपर चलेगा और मुसलमान आगे कभी हमें हिंदू धर्म न त्यागने के कारण फिर से मारने आएँगे, इस भय से हमने वह गाँव छोड़ने का निश्चय किया। मेरा बेटा 'थिय्या जाति का हूँ' ऐसा बहाना बनाकर निकला और वह इस कुट्टम गाँव में आकर रहा। मैं भी यहीं बिलकुल स्वतंत्रता से, जात-पाँत न पूछते, न बताते, किसीसे ज्यादा संबंध ही न रखते हुए आकर रही। कुछ दिनों बाद मेरे बेटे की किसी थिय्या लड़की से शादी हुई। उसके एक बच्चा हुआ; वह मेरा पोता मुझे बचपन से ही प्राणों से प्रिय हुआ करता था। लेकिन उससे मैं तभी मिलती थी जब कोई नहीं होता था। वही मेरा पोता अर्थात् श्रीरंग के मंदिर की रक्षा करते-करते घायल होनेवाला तथा हिंदू जाति को जाग्रत करनेवाला, कल जान से मारा गया हुतात्मा—हिंदू हुतात्मा—कंबू है।

यह हिंदू हुतात्मा कंबू मेरा पोता और दूसरा वह मेरा बेटा जो मुसलमानों में पलकर पक्का मुसलमान हुआ—इतना पक्का कि मुझे भी काफिर कहकर मारने लगता था। उस मेरे दूसरे बेटे ने ऐसे ही किसी हिंदू चमार द्वारा भ्रष्ट की गई लड़की के साथ शादी की और उसके जो लड़का हुआ—वह मेरा दूसरा पोता। उसे जन्म से मेरे दूध की पहचान नहीं हुई। परंतु इसका अर्थ यह नहीं कि उसके खून में मेरा दूध नहीं। वह बचपन से मुसलमान धर्मशास्त्र सीखता हुआ बड़ा मौलवी हुआ है। वह मेरा दूसरा पोता और कोई नहीं बल्कि छियासुद्दीन है—श्रीरंग की मूर्ति को उलटी रखकर उसके पादपीठ पर पैर रखकर खड़ा खिलाफत राज का तुम्हारा कलेक्टर 'मौलवी'!"

"चुप! रंडी कहीं की! इस पगली की क्या सुनते हो? हमारे नेता पर नर्क के छींटे फेंकने के लिए काफिरों ने इसे जान-बूझकर भेजा है! देखते क्या हो, मारो!" मौलवी गरज उठा।

"काफिरों ने नहीं!" वह बूढ़ी बोली।

"तो फिर शैतानों ने भेजा होगा!" मौलवी गरज उठा और झल्लाकर उसपर दौड़ा। थंगल बोला, "मैं बीच में हूँ। मैं काजी हूँ। मैं थंगल हूँ। अपना अपमान आपको उतने ही शांत तरीके से निगलना चाहिए—जितना मैंने निगल लिया था।" बुढ़िया बोलने लगी, "अब मुझे अधिक कुछ नहीं कहना है। केवल एक ही वाक्य कहूँगी वह यह कि कंबू और यह छियासुद्दीन; दोनों ही मेरे पोते हैं। मेरे एक स्तन का दूध कंबू के और मेरे दूसरे स्तन का दूध छियासुद्दीन के खून में रूपांतरित हुआ है। लेकिन कंबू और छियासुद्दीन—एक हिंदू हुतात्मा और दूसरा मोपला मौलवी कैसे बना? कहते हैं खून का रंग लाल होता है, खून को खून आकर्षित करता है। लेकिन मुझे लगता है, खून का रंग ही नहीं होता; खून का रंग लगभग पानी की तरह—जो आकर उसे मिल जाएगा, उस आकार का रंग वह लेता है। यह रहा मेरा वाक्य और अब सुनो बाकी बची कथा। वह मेरी लड़की, जो पागल होकर 'मुझे उससे क्या? सिखाऊँगी इन निगोड़ों को, उन्हें उससे क्या!' कहती हुई घूमती थी और जो इस बीच गुम हो गई थी और जो आज मुझे फिर से मिली—वह मेरी लड़की—यानी यह कृत्या! यही मशालवाली बुढ़िया!!"

"हाँ! हाँ! वह मैं ही हूँ!" भूत उतर जाने के बाद शांत रीति से बोलनेवाले किसी मनुष्य की तरह धीमे ढंग से वह बुढ़िया कहने लगी, "वह मैं ही हूँ। मेरी माँ ने जो कहानी बताई वह सारी सच्ची है और यह भी सच है कि मैं थोड़ी सी पागल हुई थी। लेकिन मेरे पागलपन में एक समझदारी का अर्थ भरा था। वह अर्थ लोगों को दिखाने के लिए मैं मशाल जलाकर घूमती थी। मैं अपने बदन की

धमनियों की सारी वायु खींच, आसमान फटनेवाली चीख मारकर पूछती हूँ कि ऐ हिंदू लोगो, आपमें से किसी भी उपजाति का एक लड़का या एक लड़की मुसलमान हुए, परधर्मियों के हाथ लगे, तो आप सबका उससे क्या बिगड़ता है, यह मेरे और मेरे भाई के लड़के के उदाहरण से क्या आपके ध्यान में आया है? यदि मेरे बचपन में मालापुत्तर में और मेरे भाई की रक्षा उन हिंदुओं ने की होती—जो वह कितनी आसानी से कर सकते थे—तो मैं आज उस कंबू की तरह श्रीरंग की रक्षा के लिए जूझती। यह मौलवी, कंबू की तरह हिंदू धर्म तथा हिंदू कुमारियों की पवित्रता के परित्राण के लिए हुतात्मा हो जाता। परंतु मुझ जैसी डोम की एक कुमारी को तुच्छ मानकर तुमने लज्जाभ्रष्ट होने दिया, मैं जब मुसलमानों के हाथ पड़ रही थी तब मुझे एक रात के लिए भी वहाँ सोने नहीं दिया जहाँ कुत्ते सोते थे और इस तरह मेरी रक्षा नहीं की; 'एक मामूली डोम की लौंडी भ्रष्ट हुई तो उससे हमें क्या?' कहकर मेरा अपमान किया, उसका यह फल भुगत लिया? मुझ अकेली की मशाल से सैकड़ों हिंदुओं के घर जल गए। मैं जिस तरह चीख रही थी—उसी तरह बलात्कार होते समय बुरी हालत में जब हिंदू कन्याएँ चीख रही थीं, तब मैंने प्रसन्न चित्त से वह दसों बार सुन लिया, मैं देवताओं की मूर्तियों पर गिन-गिनके सौ बार नाची; मैंने सैकड़ों हिंदुओं को मरने तक मार-मारकर पूछा कि 'समझ गए न, उससे तुम्हारा क्या है? नाचीज डोम की लड़की, यदि हिंदू धर्म से मुसलमान धर्मांधता के कारण भगा ली गई तो भी हर एक हिंदू का उसमें क्या बिगड़ता है, यह तुम अब तो समझ गए? तो धर्म तेरे पास और मेरे से गया तो तेरे प्राण भी निकले बिना नहीं रहेंगे, यह सत्य अभी तो तुझे स्पष्टता से दिखाई दिया? नहीं तो देख, इन तीन सौ हिंदू घरों की जलती आग की रोशनी में! एक तुच्छ डोम की लड़की और एक लड़का हिंदुत्व से वंचित हुए यदि इतना हाहाकार मचा सकते हैं, तो ऐ हिंदू जाति, मैं चीख-चीखकर, चिल्लाकर तुझसे पूछती हूँ कि तेरी ऐसी हजारों लड़कियों और लड़के तेरे घर से भगाकर या नोंचकर लिये जाते हैं तो क्या तू अब भी ऐसी ही कहती बैठेगी कि 'मुझे उससे क्या!' मेरी माँ ने जो कहानी बताई वह केवल उसीकी नहीं, अपितु ऐ हिंदू जाति, वह तेरी कहानी का ही एक प्रतिबिंब है।''

इस तरह कर्कशता से चीखती हुई वह बीबी अम्मा, वह कृत्या चिल्लाई। फिर एक क्षण के लिए रुकी। उस क्षण सबकुछ एकदम स्तब्ध था। फिर तुरंत वह बोली, ''बैठ जा या उठ जा! मैंने अपना बदला ले लिया, मेरा पागलपन गया। मेरी मशाल भी बुझी। केवल पीछे रहा मेरा अंधकार; वह भी अब मैं बुझाती हूँ!'' ऐसा कहते हुए वह सहसा उठी; 'जिसने मुझे पागल बनाया वह अंधकार तू है! तू बुझ

जा!' इस तरह अचानक चिल्लाते हुए किसी बाघिन की तरह झट से कूदकर उसने मौलवी का गला पकड़ लिया।

'हाँ! हाँ!' कहते हुए लोग होश में आकर उसे पकड़ ही रहे थे कि मौलवी की छाती में छुरी घोंपकर, फिर उसे बाहर निकालकर उस कृत्या ने उसे अपने सीने में घोंप लिया। मौलवी और वह कृत्या गतप्राण हो गए और एक ही खून के थक्के में गिर पड़े।

□

प्रकरण–८

संन्यासी से भेंट

इतने में आह्वान करते बिगुल और बैंड आदि रणवाद्य कर्णफोड़ू स्वर में बजने लगे। हजारों तुर्कों को लेकर अनवर पाशा, हजारों हथियार लेकर अरब नौकाएँ, हजारों पठान लेकर अमीर, हिंदुस्थान के मुसलमानों का साम्राज्य स्थापित करने के लिए या अली मुसेलियर के मोपला खिलाफत राज की सहायता के लिए दौड़कर आने से पहले ही गुरखों की सेना 'हर-हर महादेव' कहती हुई आ गई। थंगल ने जो देवताओं के समूह देखे थे, या मुकुट में तीन चाँद पहननेवाला देव सेनापति जिब्रिल या 'सुरतुल मुजादिल' अध्याय में मुगलों के मौलवी का दिया हुआ यह आश्वासन कि काफिरों पर मुसलमान ही विजय प्राप्त करेंगे—इनमें से कोई भी उन गुरखों की तलवार को रोक नहीं सका—फिर उन बेचारे मोपलों का क्या कहना! थंगल के स्वर्ग की शराब और स्त्रियाँ, जो मरने पर प्राप्त होनेवाली थीं—उनके लालच में, ईश्वर के अदृश्य दूत सहायता कर रहे हैं, इस पवित्र भ्रम में दस-बारह मोपला लड़ते-लड़ते मर गए। परंतु सैकड़ों मोपले मृत्यु से पहले ही जितनी मिल सके उतनी शराब तथा उतनी ही स्त्रियों का लोभ मन में रखते हुए, गुरखों के सामने से जान बचाकर भाग निकले। शाम होने से पहले कुट्टम में कोई मोपला दिखाई नहीं दे रहा था। कुछ मारे गए, कुछ छिप गए, कुछ भाग गए। 'हर-हर महादेव' की तलवार से खिलाफत की चटनी बन गई।

रात हुई। अँधेरा छा गया। थंगल और मौलवी ने जिस कुएँ में सैकड़ों हिंदुओं को घसीटकर फेंका था, वह कुआँ उस अँधेरे के खुले मुँह की तरह 'आ' करते हुए आसमान की तरफ देख रहा था। अँधेरा बढ़ता गया। मध्यरात्रि हो गई। कोई-कोई लोग मुँह खोलकर सो जाते हैं, उसी तरह वह कुआँ जबड़ा खोलकर मानो गहरी नींद में खर्राटे भरने लगा। उसके पेट में भयानक पाचनक्रिया चल रही थी। उस कुएँ

में अर्धजीवित या आसन्नमृत्यु हिंदुओं की कराहें और चीखें बीच-बीच में सुनाई देती थीं, जैसे अँधेरे के पेट की गुर्राहट।

वह कुआँ फेंके हुए शवों से, कबंधों से, कबंधरहित सिरों से, टूटे हुए हाथों के टुकड़ों से, मांस के गोलों से ऊपर तक भरा हुआ था। कुछ पेड़ उस पुराने कुएँ की दीवारों से ही फूटे हुए थे और उनमें से भी बहुत से ऊपर से फेंके जानेवाले हिंदुओं के खून, मांस, नसों, शरीरों के ढेरों के बोझ के नीचे दबकर टूट गए थे। जो दबे नहीं थे उनमें से किसीकी कोई टहनी तिरछी होकर हिल रही थी। कोई घायल हिंदू कुएँ में जब ढकेल दिया गया था, तब उसके आधार पर वह आधी ही गहराई में गया था। उसके नीचे ही कोई एक आसन्नमृत्यु हिंदू पागल सा बड़बड़ा रहा था। उसे लगा कि श्रीरंग के मंदिर का कोई पत्थर उसकी छाती पर गिरा है। वह कराह रहा था, 'अरे यह पत्थर उठाओ, मेरी छाती दब गई। यह पत्थर उठाओ!' थोड़ी ही देर में उस पत्थर के बोझ के नीचे उसकी कल्पना दम तोड़ गई। 'भैया! तुम कहाँ हो! हाथ दो! मुझे डर लग रहा है,' ऐसी कोमल आवाज आ रही थी। उस अटके हुए अर्धमूर्च्छित घायल को यह भी लगा कि वह किसी बहन का स्वर होगा। मरते समय अपने भाई की चिंता से वह कराहती होगी। अथवा वह हिंदू धर्म छोड़ नहीं रही थी, इसलिए मोपलों ने जब मार-काट शुरू की तब उसका भाई भी मारा गया होगा; और उस कुएँ में अंत में जब सभी को निर्दयता के साथ गिरा दिया गया होगा तब वह बहन सचमुच ही उस भाई का हाथ माँग रही होगी। अर्धमूर्च्छा में टँगे उस घायल युवक के ऊपर ही उस कुएँ की दीवार में और एक झुरमुट था। उसपर जाँघ से काटकर फेंका हुआ एक पैर लटक रहा था। उसमें से खून की बूँदें नीचे गिर रही थीं। इस बेहोश घायल में मुँह हिलाने की भी शक्ति नहीं थी, इसी कारण नीचे गिरते खून की बूँदें लगातार उसके मुँह पर टपक रही थीं। कभी-कभी तो साँस घुटते समय अपने आप उसका मुँह खुल जाता था और उस जम गए खून के घूँट उसके गले में उतर जाते थे। पहले तो अर्धमूर्च्छा में होने के कारण उसे इन वेदनाओं का कुछ खास अहसास नहीं था, परंतु उन आहतों तथा शवों के ढेरों से प्राण जाते समय किसीने अचानक इतने जोर से पैर झटक दिए कि उसके शरीर पर पड़े मांस, शव, नसें आदि को भेद कर उसकी लातें ताड़ताड़ उस घायल युवक की नाक पर लगीं और वह अचानक होश में आ गया। वह भयानक होश! मृत्यु की बेहोशी से अधिक भयानक! अँधेरे में, मध्यरात्रि के समय उस पुराने कुएँ के पेट में आधी गहराई पर शव, मांस, नसें, खून, कराहें, चीखें, भीषण स्मृति, भीषण विस्मृति—इनसे लिप्त वह युवक होश में आया और अपने शरीर पर लगे घावों से असह्य वेदनाएँ उठने के कारण जोर से

चिल्लाया। उसके चिल्लाने से और भी कोई अर्धमृत चीखने-छटपटाने लगा।

मालाबार में उस रात इस कुएँ जैसा एक ही कुआँ इस तरह मुँह फैलाकर नहीं कराह रहा था, मालाबार की मध्यरात्रि में यही एक कुँआ अपना भयानक मुँह खोलकर सोया हुआ नहीं था; अपितु ऐसे रौद्र कुओं के और दस बीभत्स और भयानक मुँह किसी कुंभकरण की तरह खर्राटे भर रहे थे।

उसी समय, उसी रात कानपुर के पास किसी आलीशान बँगले में 'प्रेमवर्धक महामंडल' की सभा हो रही थी। खुदाबख्श, कड़क खान आदि मशहूर मुसलमान नेता और भोलचंद, गयालसेठ, पीटगय्या आदि हिंदू नेता उस महासभा के महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए आयोजित विशिष्ट अधिवेशन के लिए आए थे। कड़क खान ने उठकर कहा, 'हमारे प्रेमवर्धक महामंडल के अन्यतम श्रम से हिंदू-मुसलमानों में उत्पन्न की गई एकता जिन शत्रुओं से देखी नहीं जाती, उन्होंने मालाबार के हिंदू-मुसलमानों में दंगे होने के झूठे समाचार छापने का जो सिलसिला चला रखा है, यह सभा उसका विरोध करती है। सभा ने स्वयं इस कांड की जाँच करने के लिए खुदाबख्श को मालाबार भेजा था। उन्होंने साक्षात् पूरी परिस्थिति देखकर जो प्रतिवेदन (रिपोर्ट) दिया था, उसके आधार पर यह सभा सारे हिंदुस्थान की ओर से ऐसा प्रस्ताव पारित करती है कि मालाबार में हिंदू-मुसलमानों की एकता को बिगाड़नेवाली कोई भी घटना नहीं हुई।'

गयालसेठ ने कहा, ''सभी हिंदुओं की ओर से मैं इस प्रस्ताव का अनुमोदन करता हूँ। मालाबार के हिंदू और मुसलमान सुख-शांति से रह रहे हैं। मालाबार में कुछ भी नहीं हुआ।''

''कुछ भी नहीं हुआ!'' सभी हिंदू गरज उठे।

''नहीं, नहीं! कुछ भी नहीं हुआ, यह कैसे कह सकते हैं?''

''या अल्लाह! अब भी हमारे हिंदू बंधुओं को मुसलमानों के बारे में जितनी सहानुभूति होनी चाहिए उतनी नहीं है। मालाबार में हमारे वीर मोपले जो वीरोचित युद्ध कर रहे हैं, क्या वह कुछ भी नहीं?'' कड़क खान ने कहा।

तब अध्यक्ष भोलचंद उठकर बोले, ''क्षमा कीजिए! कड़क खान, आपके उन वीर बंधुओं का—उन मोपला वीरों का—तथा उनके धैर्य का यह सभा अभिनंदन करती है। मोपला हम हिंदुओं के भाई हैं।''

''हिंदू-मुसलमान भाई हैं!'' सारी सभा गरज उठी।

''हिंदू मुसलमान ही हैं।'' मूढ़ाप्पा, बावले शास्त्री उल्लास के साथ गरजने लगे।

''और हिंदू यदि मुसलमान नहीं होंगे तो भी मोपले उन्हें मुसलमान बना ही

देंगे, जीते-जी बनाएँगे, जान से मारकर बनाएँगे, जान से मारने के बाद बनाएँगे।'' रूखी आवाज में एक मनुष्य बोला। तब बावले, गबाले, भोलचंद आदि हिंदू नेता चीखकर एक ही शोर मचाते हुए बोले, ''झूठ बोल रहा है! नीचे बैठ! तू कौन है? क्या सबूत है! क्या तू देशभक्त है?''

''यह देशशत्रु है। यह हिंदू-मुसलमानों की एकता को बिगाड़ता है।'' सारी सभा गरज उठी। परंतु उससे न डरते हुए वह व्यक्ति कहने लगा, ''शांत हो जाइए, मैं जो कह रहा हूँ वह बिलकुल सत्य है। मैं एक हिंदू था। मेरी गवाही प्रत्यक्ष! स्वयं मुझपर मोपलों ने भयानक जुल्म कर जबरदस्ती मेरी सुन्नत की। ऐसे ही जुल्म बाकियों पर किए हैं।''

''लेकिन अब तू मुसलमान है न? फिर कैसे मुसलमानों के खिलाफ बोलता है?'' मौलवी करीमुद्दीन ने पूछा।

''मैं हिंदू था! मोपलों ने जबरदस्ती मुझे मुसलमान बनाया। परंतु आर्य समाज ने मुझे मेरी इच्छा के अनुरूप संस्कारों से शुद्ध कर लिया। अब मैं हिंदू का हिंदू हूँ।''

''या अल्लाह! तो फिर यह काफिर मरने योग्य है।'' क्रोधित हो भयानक गर्जना करते हुए कड़क खान बोला, ''मुसलमानों की शरीयत के अनुसार जो मनुष्य मुसलमान कहलाने के बाद फिर हिंदू बन जाता है, वह मृत्युदंड का पात्र होता है। यह काफिर है। इसे जान से मार डालना चाहिए।'' कहते हुए कड़क खान उस आदमी पर टूट पड़ा।

तब अध्यक्ष भोलचंद ने बीच में कहा, ''खान साहब! खान साहब, क्षमा कीजिए। अपराध इस आदमी का है। यह उस झगड़ालू आर्य समाज का अनुयायी है। इसीसे सिद्ध है कि इसका कहना और समाचार विश्वास योग्य नहीं है।''

''आर्य समाज बड़ी झगड़ालू संस्था है। यह आर्यसमाजी है, इसलिए इसकी गवाही सोच-विचार में ली नहीं जा सकती।'' एक मुख से सभी गरज उठे।

''परंतु मालाबार में हिंदुओं पर भयानक अत्याचार चल रहे हैं और उनका कत्ल हो रहा है, यह मैं आर्यसमाजी नहीं कहता बल्कि श्रीमान देवधरजी भी यही कह रहे हैं। यह देखिए उनका पत्र!''

''श्रीमान देवधरजी संयत पक्ष के हैं।'' सभा गरज उठी।

''श्रीमान देवधरजी संयत पक्ष के हैं, इसलिए हम असहकारी देशभक्तों को उनका कहना अग्राह्य लगता है।'' भोलचंदजी ने निर्णय दिया।

''फिर भी मालाबार में मोपलों द्वारा हिंदुओं पर किए अत्याचारों की कहानी तुम्हें सत्य ही लगनी चाहिए! क्योंकि केवल देवधरजी ही नहीं, डॉ. मुंजे भी उसकी

सत्यता की गवाही देने के लिए तैयार हैं।''

''डॉ. मुंजे जहाल हैं। उनकी गवाही अग्राह्य है!'' सभा गरज उठी।

''डॉ. मुंजे जहाल हैं। इसलिए हम अनत्याचारी देशभक्तों के सामने उनकी गवाही नहीं हो सकती।'' अध्यक्ष भोलचंद ने निर्णय दिया।

''परंतु जिन हिंदुओं पर ये भयानक संकट टूट पड़े, उन्होंने अपने हस्ताक्षरों से सारी कहानी लिखकर मेरे मित्र को दी है, ऐसा तार अभी मुझे मिला है। कुट्टम में कल-परसों ही भयानक दंगा हुआ और मुसलमानों ने हिंदुओं का कत्ल जारी रखा है। इस बारे में अभी आया हुआ दूसरा तार तो थोड़ा पढ़कर देखिए।''

''अरे तार क्या? काल्पनिक दंगों के ऐसे तार मेरे पास रोज सैकड़ों आ रहे हैं, परंतु मालाबार के हिंदुओं के ये तार देखो, ये सब मैं अपनी कुरसी पर रचाकर उसकी एक मुलायम गद्दी बना उसपर बैठा हूँ। उसपर भी तार सच्चा कैसे हो सकता है।'' भोलचंद शांत रीति से परंतु निराधार बोले, ''तारों पर मैं विश्वास नहीं करता।''

''अभी-अभी मुझे कोचीन के खिलाफत मंडल के अध्यक्ष का तार आया है।'' खुदाबख्श समझौते के स्वर में बोले, ''इस तार से सभी प्रश्नों का फैसला हो जाता है। खिलाफत सेक्रेटरी, कोचीन से लिखते हैं कि 'मालाबार में मुसलमानों द्वारा हिंदुओं के साथ बलात्कार करने और हिंदुओं को जबरदस्ती मुसलमान धर्म की दीक्षा देने के जो समाचार प्रकाशित हो रहे हैं, वे निराधार हैं। प्रत्यक्ष पूछताछ करने पर पता चला कि एक या ज्यादा-से-ज्यादा डेढ़ हिंदुओं को कहीं जबरन मुसलमान बना दिए जाने की चर्चा हुई थी।''

''बस, बस! इस तार से सारे प्रश्न समाप्त हो गए। मालाबारी हिंदुओं को जबरदस्ती भ्रष्ट किया जाता है आदि सारे समाचार झूठे हैं। हो सकता है एकाध हिंदू इस तरीके से भ्रष्ट हुआ होगा। प्रत्यक्ष खुदाबख्श को जो तार आया है वही यह बताता है, अब आशंका ही नहीं।'' भोलचंद निर्णायक स्वर में बोले।

''अब आशंका ही नहीं। मालाबार में कुछ भी हुआ नहीं। मालाबार में हिंदू-मुसलमान प्रेम से रह रहे हैं।'' सभा गरज उठी।

तब खुदाबख्श मूल प्रस्ताव में मोपलों की वीरता का अभिनंदन करने की उपसूचना लाए। उपसूचना लाते समय मोपले कितने दयालु, सहनशील तथा दीन लोग हैं और हिंदू बंधुओं पर उनका अत्याचार करना स्वभावत: कैसे असंभव है, इसका रसपूर्ण वर्णन जिस समय वे कर रहे थे, उस समय वहाँ—

उस भयानक अँधेरे में अपना भीषण मुँह फैलाकर सोए कुएँ के पेट में हड्डियाँ, खून, मांस, शव, कटे हुए अवयव, कटे हुए सिर, तने हुए पैर आदि सारे

अन्न का पाचन किया जा रहा था और उस अन्न के कटे-पिसे हुए लुगदे में किसी रत्न की तरह वह घायल हिंदू युवक, लटका हुआ फँसा हुआ था। उसके नीचे पड़े मरनेवाले की लातों की चोट से अचानक जब उसकी अंतिम स्मृति पहली स्मृति की तरह उसके मस्तिष्क में उभरी तब उसे लगा कि मोपले उसे मारते-मारते पूछ रहे हैं, 'हिंदू-धर्म छोड़ेगा कि नहीं? मुसलमान बनेगा कि मरेगा?' उस आभास से वह सहसा चिल्लाया, 'नहीं बनूँगा, जाओ; नहीं छोड़ूँगा, जाओ! हिंदू, मैं हिंदू! मारो जितना मारना है।' परंतु थोड़ी ही देर में उसकी समझ में आने लगा कि वह कहाँ है; उसीके साथ उसका निश्चेतन धैर्य फिर से उदित होने लगा। उसके ऊपर धड़ से काटा हुआ जिस किसी हिंदू का पैर लटक रहा था और जिसके खून की धारा उसके मुँह पर बह रही थी, उसे खींचकर उसने नीचे फेंक दिया, परंतु उसे खींचते समय 'मैं किसी हिंदू हुतात्मा के शरीर को अपमानित तो नहीं कर रहा!' यह संकोच उसे चुभ रहा था। उस संकोच को वैसे ही दबाकर उसने ऊपर की टहनी को पकड़कर कुएँ के बाहर आने का यत्न किया। परंतु वह टहनी टूट गई। वह धड़ाम से नीचे गिरा। कुएँ की दूसरी ओर इकट्ठा शवों का ढेर उसे पूरा-का-पूरा दबा देता, परंतु वह थोड़ा अलग गिरा और उसकी कमर के ऊपर का हिस्सा साफ बच गया। वहाँ से निकलने के लिए वह पैर जमाकर उस ढेर पर ही खड़े रहने के लिए उठने का यत्न करने लगा। तब उसके पैरों के नीचे मोपलों के सोटे से कुचला हुआ एक पेट आया जो फट गया था और उसका मांस, नसें, आँतें, अन्न, मल, बाहर आने से उसके लुगदे में उसका पैर ऐसे फँस गया जैसे किसी आधे सूखे कीचड़ में फँस जाए। सहसा उसे भारी भय लगने लगा। किसी तरह उसने उस भय को टाला और अपना पैर खींच लिया। उस ढेर से कोई सिर कटा हुआ कबंध निकालकर दीवार से अच्छी तरह टेककर रखा, उसकी कमर पर एक पैर टिकाकर उछला और फिर से उस टहनी को पकड़ लिया। मन में कोई पुकार रहा था कि वह सिरकटा हिंदू हुतात्मा कौन होगा? उसकी योग्यता—हिंदू ही रहूँगा कहते हुए मरनेवाले प्रत्येक हिंदू की योग्यता तेरे जितनी महान् है? फिर उस सिरकटे हिंदू हुतात्मा की कमर पर तथा कंधे पर पैर रखकर तू सिरवाला मनुष्य बचने का जो प्रयास कर रहा है, उससे तुझे शर्म नहीं आती?

परंतु सिरकटे हुतात्माओं के कंधों पर चढ़कर ही सिरवाला राष्ट्र गहन गर्त से ऊपर आता है! सिरवालों को गहन गर्त से, मृत्यु के अंधकार से, पुनरुज्जीवन के उदयाचल पर चढ़ाने के लिए ही हौतात्म्य अपनी लाशों के ढेर लगाती हैं।

इसलिए लज्जित न होना, ऐ हुतात्मा हिंदू युवक! लज्जित न होना। उस ढेर से उस टहनी को अपने हाथ से पकड़ और उस कुएँ के किनारों को पकड़कर एक

उछाल के साथ बाहर आ जा। उस मृत्यु के पेट के समान भयानक कुएँ में भी तू विनष्ट नहीं हुआ। सौगंध देकर मृत्यु ने तुझे रोक दिया। केवल हिंदू होने के कारण पैरों तले गाड़े गए वीरों के मांस, खून, नसें, कराहें, केश, मज्जा तथा जीव—इन सबके लुगदे के ढेर पर चढ़कर वह हिंदू युवक पुन: मृत्यु के पेट से बाहर आने का प्रयास करने लगा।

उधर उस सभा में खुदाबख्श मोपलों के दीन तथा सुशील स्वभाव का वर्णन करते हुए कह रहा था, ''ऐसे लोग हिंदुओं पर घोर अत्याचार और बलात्कार करेंगे, यह बात हिंदू बंधुओं को संभव ही कैसे लगी? हिंदू बंधुओं को ध्यान रखना चाहिए कि मोपले मुसलमान हैं। बस, इस एक ही शब्द से इन सभी आक्षेपों का निराकरण हो जाता है। मुसलमान धर्मबल से दूसरों के धर्म को हानि पहुँचाने के बिलकुल विरुद्ध हैं।''

''बिलकुल विरुद्ध हैं।'' लबाड़ खान ने कहा, ''कुरान के पन्ने-पन्ने पर यह बात स्पष्ट कही गई हैं।''

''उदाहरण के तौर पर आप इस मत की पुष्टि में कम-से-कम दो पन्ने तो बता सकते हैं? और इन वचनों के विरुद्ध वचन कितने हैं और मुसलमानों का इतिहास इन दो वचनों में से कौन सा वचन मानता आया है, यह बता सकते हैं?'' बीच में ही आर्यसमाजी बोला। उसे सुनते ही कड़क खान एकदम खौलकर, मुट्ठी कसके दौड़ा और चिल्लाया, ''इस आर्यसमाजी को सभा से भगा दो, नहीं तो मैं इसे जान से मार दूँगा! जिस किसीको मुसलमान बना दिया गया—फिर वह जबरदस्ती क्यों न हो—वह अगर फिर से मुसलमान धर्म छोड़ दे—चाहे वह कर्म वह स्वेच्छा से क्यों न करे—तो उसे जान से मार डालना मुसलमान धर्म की आज्ञा है।''

''धर्म के बारे में किसीपर भी जबरदस्ती नहीं करनी चाहिए, यह आज्ञा कुरान के पन्ने-पन्ने पर यदि दी गई है, तो खुदाबख्शजी, धर्मांतरण स्वेच्छा से करनेवाले को जान से मारा जाए, ऐसी आज्ञा लिखने के लिए कौन सा पन्ना, कौन सा मुखपृष्ठ है?''

''ऐ हरामी! ऐ काफिर!'' कहते हुए मुसलमान सदस्यों ने उस हिंदू के सिर पर डंडे मारे। अध्यक्ष भोलचंद डर गए। सभा खंडित हो जाएगी, इस भय से उन्होंने उस आर्यसमाजी को धक्के मारकर सभा से बाहर निकाल देने के लिए कहा। तब बाहर निकाले जाते समय वह आर्यसमाजी पीछे मुड़कर बोला, ''ऐ हिंदुओ! कम-से-काम आप तो मुझे धक्के मत मारिए। आप अनत्याचारवादी हो न?''

''चुप बैठ! गधा कहीं का!'' श्रीयुत् झकमार घोष क्रोध से बोले, ''हमारा अनत्याचरित्व केवल परायों के लिए है। इस अनत्याचारवाद का अर्थ यह तो नहीं

था कि हम अपनों के विरुद्ध भी बल-प्रयोग नहीं करेंगे! गधा कहीं का!''

उस आर्यसमाजी को बाहर भगाते ही सभा में शांति स्थापित हो गई। स्वयं भोलचंदजी ने एकमत से प्रस्ताव पारित कर लिया कि मुसलमान धर्म का प्रसार कभी भी जबरदस्ती नहीं हुआ। उसमें भी मालाबार में तो बिलकुल ही नहीं। मोपले वीर हैं, और हम हिंदुओं के सगे भाई हैं। उन्होंने हिंदू लोगों पर किसी भी तरह से धार्मिक जुल्म नहीं किया। उलटे मोपलों ने अनेक हिंदुओं को आश्रय देकर सारी हिंदू जनता को उपकृत किया है। जिन लोगों ने हिंदुओं पर धार्मिक बलात्कार होने के समाचार फैलाए वे सारे देशशत्रु हैं। एक या ज्यादा-से-ज्यादा डेढ़ हिंदू कहीं जबरदस्ती मुसलमान बना दिया गया, ऐसी अफवाह है। बस इतना ही। इससे ज्यादा मालाबार में कुछ भी चिंताजनक नहीं हुआ है।''

''कुछ भी नहीं हुआ! मालाबार में हिंदू-मुसलमानों की एकता अभेद्य है। मालाबार में कुछ चिंताजनक नहीं हुआ है।'' बावले, झकमार घोष, मूढ़प्पा आदि सारे हिंदू एक साथ गरज पड़े। बिजली की बत्तियों से प्रकाशित, इत्रों से सुंगधित तथा आरामकुरसियों और कोचों से सुशोभित और सुखकारक उस विशाल बँगले में वे हिंदू लोग जब 'मालाबार में कुछ चिंताजनक नहीं हुआ' ऐसी गर्जना कर रहे थे तब उधर—

उस कुएँ के किनारे पर वह हिंदू युवक चढ़कर आया। उसका शरीर नख-शिखांत किसीके खून में तो किसी के मज्जा में सना हुआ था। मुसलमानों द्वारा आखिरी आघात से और उसके पहले किए वारों से उसके कंधे और जाँघों पर बड़े घाव हुए थे और उनमें से खून टपक रहा था। वेदना असह्य हो रही थी, परंतु कुएँ के किनारे आते ही खुली हवा में साँस लेने से उस युवक को थोड़ा जीवन का अनुभव हुआ। परंतु जो घोर अँधेरा था, वह घोर अँधेरा ही था! वह घोर कुआँ! वह घोर स्मृति! वह घोर विस्मृति! वह चौंक गया। उसे लगा, पास ही पेड़ के पास कोई खड़ा है। चूड़ियों की खनक स्पष्ट सुनाई दी। वह डर गया। कोई मोपला स्त्री कहीं पहरा देने के लिए तो नहीं रखी गई? वह छिपकर देखने लगा।

इतने में श्रीरंग मंदिर के पास 'हर-हर महादेव' का भारी उद्घोष हो रहा था शायद! हर-हर महादेव का ऐसा उद्घोष करने का साहस करनेवाले हिंदू क्या अभी जीवित हैं? उस युवक के बदन पर प्रेम तथा आनंद के रोएँ उठ खड़े हुए। वह सहसा विभोर होकर उस प्रिय और पूज्य ध्वनि के श्रवण में तन्मय हो गया और अनजाने में ही चिल्ला उठा, ''हर-हर महादेव।''

गुरखा लोगों की सेना एक ही रात में कुट्टम से निकल भागे हुए मोपलों का पीछा करते हुए उनकी हिम्मत हराते-हराते आगे बढ़ने के लिए निकली थी; उन्हींकी

वह ध्वनि थी।

उस युवक के मुख से अनजाने में वह ध्वनि निकलते ही पेड़ के पास खड़ी वह आकृति विचलित हुई। उसने अपने पल्लू से ढकी हुई लालटेन बाहर निकाली, उसकी रोशनी में जयध्वनि करनेवाले उस मनुष्य को देखा और अचानक, 'दामू! हे वीरवर!' पुकारती हुई वह उसके पास दौड़ी। आश्चर्य, आनंद, आभार तथा अभिमान की भावना से भरकर उसका शरीर तथा स्वर थरथर काँप रहा था। उसकी कंदील उसके हाथ से गिर पड़ी। उस कंदील के साथ ही इतनी देर किसी तरह रोका हुआ धैर्य भी उसके हाथों से फिसल गया और 'दामू! मुझे पहचाना? वीरवर, तूने जिसे मुक्त किया था वही मैं लक्ष्मी हूँ!' इस तरह एक ही स्वर में कहती हुई वह युवती उसके गले लग गई। दामू के शरीर को रोमांच हो आया। वह युवक एक क्षण उस लड़की से भी अधिक घबरा उठा। परंतु लड़की ने युवक की छाती से चिपककर कहा, "मुझे अपने पास ले ले, दामू, मुझे छाती से लगा ले। इतनी देर मैं इस श्मशान में अँधेरे में खड़ी थी, परंतु मुझे डर नहीं लगा। अब मुझसे एक क्षण भी खड़ा नहीं रहा जाता। तुझे देखते ही धैर्य आना चाहिए, परंतु उलटा ही हो गया। दामू, मुझे पास ले ले, पास ले ले मुझे।" कहती हुई वह युवती उसकी बाँहों में समा गई। कुट्टम की उस भयानक रात को चिंतामणि शास्त्री की शांति कुटीर में वह जब शांत सोई थी तब मोपलों ने उसे सुमति समझकर पकड़ लिया और उस समय से कितना भयानक कष्ट—अपमान, भय, बलात्कार, जुल्म, पिटाई, भूख, आशा और निराशा उस अल्हड़ निरपराध हिंदू बच्ची को सहने पड़े। उन आघातों के नीचे जीवन की टहनी बिलकुल टूट गई थी। गुरखों की विजय होते ही उन्होंने मोपलों द्वारा बंदीगृह में डाली हुई सभी हिंदू कुमारियों और स्त्रियों को मुक्त किया। उनमें यह भी मुक्त हुई। इतने दुःखों के आघातों से उसके जीवन की टहनी टूटने को आई, फिर भी नहीं टूटी। जीवन की टहनी से लटकती हुई वह वहाँ खड़ी थी, तभी उसे दामू मिला।

इतने दिनों के बाद ममत्व का मनुष्य मिला। वह पागल स्त्री जाति! संकट में किसी तरह बँधा हुआ धीरज सुख में अचानक नष्ट हो गया। संकट के आघात से जो टूटी नहीं, जीवन की उस कोमल टहनी से सुख का वह आघात सहा नहीं गया। उस युवा थिय्या वीर के शरीर से चिपककर, 'दामू, मुझे पास ले ले!' कहकर वह जो गिरी तो फिर हिली नहीं। दामू ने उस कन्या को बाँहों में कस लिया। केवल गुरखे के आने की खबर उसके मुँह से टूटी-फूटी सुनी, "डरो मत! लक्ष्मी बाई! अब हिंदुओं का दिन निकल रहा है। डरो मत!" उसे सहलाते हुए वह बोला। सहलाना! संकटों के आघातों से दबे हुए उसके हृदय को इतने भयानक संकटों के बाद

सहलानेवाला ममत्व का वह स्पर्श—वह प्रेममय सहलाना सहन नहीं हुआ। पगली है यह स्त्रियों की जाति! उसने अपना मुँह ऊपर किया, ''दामू! मेरे दामू, मेरा...'' वह लज्जित हुई। परंतु छूटे हुए शब्दों के वाक्य पढ़ने का प्रेम का पुरातन रिवाज है। दामू ने उसकी ठोड़ी ऊपर की, ''लक्ष्मी बाई, डरो मत, मैं तुम्हारा ही हूँ।'' कहते हुए उस वीर हिंदू युवक ने उस हिंदू कन्या को चूम लिया।

और उस चुंबन के साथ ही जैसे उसका जीवन भी चला गया! दुःख के भयानक आघातों से टूटनेवाली परंतु अभी तक न टूटी जीवन की टहनी सुख के उस आघात को नहीं सह सकी और लक्ष्मी उस टहनी से गिर गई। उस वीर युवक के प्रेममय तथा परम विश्वस्त हृदय पर लक्ष्मी निर्भयता से जो सोई—तो फिर कभी नहीं जागी।

बड़े प्रेम से दिया गया प्रेम का वह पहला चुंबन—हाय-हाय! उस सुंदर कन्या का अंतिम चुंबन सिद्ध हुआ! उस चुंबन के सुख की बिजली थरथराती हुई उसके हृदय में घुस गई और उसके खून में बुझ गई।

फिर वह उसी तरह लेटी हुई थी। उस बहुत थके हुए, घायल थिय्या को जब पता चला कि गुरखों की सेना ने कुट्टम में ऐसी व्यवस्था की है कि वहाँ हिंदू निर्भयता से जी सकते हैं, तब उस सोई हुई लड़की को सोई ही समझकर उसकी नींद न टूटे, इसलिए वैसे ही पेड़ को टेककर वह बैठे-बैठे ही गहरी नींद में ऐसा डूब गया जैसे किसी अंधे कुएँ में पैर फिसलकर गुड़प हो गया हो।

सुबह हुई। शीतल हवा चलने लगी। पंछी चहचहाट करने लगे। कोई एक मैना किलकिल करती हुई इधर-उधर थोड़ी देर घूमी और फिर ढीठता से सोए हुए उस युगल से सटकर उड़ती हुई लक्ष्मी के बिखरे बालों से एक बाल खींचकर उड़ गई। परंतु वह नहीं जागी। उस वीर युवक के गले में बाँहें डालकर वह वैसे ही पड़ी थी। उस युवक के घावों का खून उसके भी शरीर पर बह रहा था। थोड़ी देर में एक छोटा हिंदू लड़का किसी भव्य संन्यासी को लेकर उस ओर से आया। ''यही है वह कुआँ! महाराज, यही है वह कुआँ!'' उस लड़के ने कहा। संन्यासी स्तंभित भाव खड़ा रहा।

दामू तथा उस लड़की को वहाँ इस तरह सोए और खून से नहाए हुए देखकर वह लड़का बोला, ''ओह, यही है वह दामू! थिय्या कंबू का सहायक तथा वीर शिष्य। और हाँ!—यह वही चिंतामणि शास्त्री की कन्या लक्ष्मी है! यह वही है।'' और वह हिंदू लड़का गदगदाया, ''अजी, इस पवित्र ब्राह्मण कन्या का नख भी हमें नहीं दीख पड़ता था! और उसकी यह दशा!'' कहता हुआ वह फूट-फूटकर रोने लगा।

संन्यासी अत्यंत करुण दृष्टि से उस दृश्य को देखने लगा। इतने में उसे उस लड़की के जीवित होने की आशंका हुई और उसने उसे धीरे से हिलाया। लेकिन वह निश्चेष्ट पड़ी थी। वह युवक अचानक चौंक गया। उसे लगा, लक्ष्मी को किसी शत्रु ने हाथ लगाया। वह तमककर उठने लगा। परंतु उसने देखा कि सामने दयार्द्र तथा परम स्निग्ध मुद्रा से आशीर्वाद और निर्भयता देनेवाले हाथ उसके सिर पर रखकर कोई भव्य संन्यासी किसी वरदान देने के लिए तत्पर ईश्वर की तरह खड़े हैं!

दामू झकझोरकर खड़ा हुआ और भक्तिभाव से उस संन्यासी से दूर हटकर उसने साष्टांग प्रणिपात किया। संन्यासी ने उसके मस्तक पर फिर एक बार प्रेम से हाथ रखने का प्रयत्न किया तो वह बोला, ''भगवान्, मैं थिय्या हूँ। आपको छुआछूत होगी!''

''पगले! अधोगति का अशौच जाएगा!'' संन्यासी ने कहा, ''तेरी वीरता का वृत्तांत मैंने लोगों से सुना है। सुना था तू कत्ल में मारा गया। इसलिए तेरे और तेरे गुरु कंबू के साथ हिंदू धर्म के सम्मान की वेदी पर जिन्होंने अपने शरीरों को आनंद से बलि चढ़ाया, उन सभी हुतात्माओं के वधक्षेत्र का दर्शन करने मैं यहाँ आया हूँ। उन हुतात्माओं से तेरे जैसे एक का प्रत्यक्ष दर्शन हुआ। जो थिय्या हिंदू धर्म के लिए अपनी आत्मा का हवन करता है, वह ब्राह्मण से भी बड़ा ब्राह्मण है। जो महार हिंदू धर्म के लिए अपना सिर कटा देता है, वह महार क्षत्रिय है। उसके स्पर्श से हिंदुत्व की छुआछूत का कलंक जाता है, छुआछूत नहीं होती! चल! पहले उस सुंदर ब्राह्मण कन्या के शव को कुएँ में रख दे। रोना नहीं। जब हजारों बूढ़े और युवक, बाल और बालिकाएँ, स्त्रियाँ और पुरुष हिंदू धर्म के कारण जुल्म के शिकार हो रहे थे, तब यदि हम एक ही व्यक्ति के लिए रो पड़ते तब वहाँ अपना अहंकार उस जातिप्रेम के पीछे छिपा होता। हमारा प्रत्येक अश्रु अब हिंदू जाति पर हुए जुल्म के लिए, उसके हित के लिए टपकना चाहिए। हमारी आँखों में अब व्यक्ति के लिए टपकाने को अश्रु बचे नहीं हैं!''

उन दोनों ने मिलकर उस निरपराध परंतु इसीलिए अत्यंत पीड़ित युवती का शव उठाकर उस कुएँ में डाल दिया। वह संन्यासी और दामू उस कुएँ के किनारे बहुत देर तक खड़े रहे। बीच-बीच में संन्यासी कुछ पूछता रहा और दामू उसे बताता रहा। हरिहर शास्त्री का, कंबू का, स्वयं दामू का वृत्तांत संन्यासी ने सुना। उस कुएँ के किनारे पर, दूर तक सैकड़ों धर्मभ्रष्ट और बलात्कारित हिंदुओं और सिखों की जटाओं के निकालकर फेंके हुए गुच्छे, काटी हुई चमड़ी, छीली हुई चमड़ी, गिरे हुए खून के धब्बे तथा रक्त धाराएँ बिखरी पड़ी थीं। कुएँ में शवों के परत-पर-परत टूटे हुए हाथ, पैर, नाक, सिर, अँगुलियाँ, हड्डियाँ, सिरकटे शरीर और शव भरे हुए थे।

संन्यासी उस दृश्य को बार-बार निरखकर बोला, ''आगरा में मुसलमानों ने प्रेम का ताजमहल बनाया। वह एक ही है। परंतु मुसलमान कारीगरों ने इस कुएँ जैसे द्वेषों के ताजमहल हिंदुस्थान में जगह-जगह बनाए हैं! हे ईश्वर! उन्हें क्षमा कर! और आगे चलकर उन्हें सुबुद्धि दे!''

''सुबुद्धि दे!'' की और एक ध्वनि उठी। संन्यासी ने मुड़कर देखा तो एक मोपला मुसलमान बूढ़ा लकड़ी टेकता हुआ उस संन्यासी के पीछे ही खड़ा था। वह मुसलमान बोला, ''महाराज, चौंक मत जाना। मैं मोपला मुसलमान हूँ।''

''होगा!'' संन्यासी ने कहा, ''यदि तू बाकी मुसलमानों की ही तरह हिंदुओं की हत्या करने आया होगा तब भी मैं नहीं चौंकूँगा। इस कुएँ में देख! चौदह-चौदह वर्ष की अल्हड़ लड़कियों ने भी हिंदू धर्म रक्षा के लिए प्राण देने में आगे-पीछे नहीं देखा। फिर मैं तो संन्यासी हूँ। संन्यासी के प्राण पहले ही निकल गए होते हैं। अच्छा, यदि तू मोपला होते हुए भी हिंदुओं से द्वेष नहीं करता और उनपर हो रहे इन भयानक अत्याचारों के बारे में तुझे सचमुच ही पश्चात्ताप हो रहा है—तब भी मैं चौंकूँगा नहीं। क्योंकि, क्या मोपला, क्या मुसलमान या क्या ईसाई—किसीकी भी पूरी जाति दुष्ट होती है, ऐसा हम नहीं मानते। वे भी मनुष्य ही हैं। उनमें भी साधु, सत्वशील और दयामय पुरुष तथा स्त्रियाँ होते ही हैं। किसी भी जाति के लोगों के किए हुए कृत्यों का हम जो विरोध करते हैं, वह उन कृत्यों को करनेवाले का करते हैं, उनकी जाति या धर्म का नहीं।''

उसकी आँखों में आँसू आए और वह बोला, ''महाराज, हिंदू लोगों के साधु-संतों में मैं बहुत घूमा हूँ—इसलिए मुझे पता है कि जो न्याय और सत्य के दैवी विचार आपने प्रदर्शित किए, वे जितने हिंदू लोगों में जड़ पकड़े हैं, दुर्दैव से उतने हम मुसलमानों में अभी पहुँचे नहीं। कुरान जैसे ग्रंथ का उसके लाखों शिष्य भयानक अर्थ करते हैं, यह मुझे तथा मेरे पंथ के अनुयायियों को पसंद नहीं। हम मुसलमान हैं, फिर भी मुसलमान हमसे बहुत द्वेष करते हैं, क्योंकि हम कुरान के वचनों का अर्थ तत्कालीन परिस्थिति की सीमा में ही लगाते हैं। जो वचन त्रिकाल में सत्य होते हैं तथा मानव जाति के हित में होते हैं, उन्हें हम त्रिकालाबाधित मानते हैं। और इसलिए हमारा पंथ मेरे हिंदू बंधुओं पर किए गए मुसलमानी अत्याचारों का तीव्र विरोध करता है। हम प्रार्थना करते हैं कि 'हे रहीम! हे राम! मुसलमानों को सुबुद्धि दे। हिंदुओं को सुबुद्धि दे। मनुष्य जाति को सुबुद्धि दे कि ईश्वर के नाम पर मनुष्य की बलि नहीं चढ़ाएँगे! जिस कुरान ने अरब जाति को अपनी बेटियों को न मारने की बात सिखाई, वही कुरान अल्लाह के नाम पर हमारी बेटियों को मारना कैसे सिखा सकता है? यदि सिखाता होगा तो वह किताब ईश्वर की हो ही नहीं सकती।' ''

"ईश्वर की पुस्तकें?" संन्यासी बोला, "जातियों पर आए भयानक संकटों में से आधे से अधिक संकट इन ईश्वरीय पुस्तकों पर मनुष्यों द्वारा की गई शैतानी टीकाओं के कारण आए हैं। यदि मनुष्य, मनुष्य जाति के लिए जो-जो उपकार हैं वही आचरण में लाएगा और जो-जो राक्षसी तथा अहितकारक दिखाई देता है, वह केवल किसी पुस्तक में बताया है इसलिए करते रहना चाहिए, इस बात को छोड़ देगा, तो मनुष्य का मनुष्य पर भारी उपकार होगा! ईश्वरीय पुस्तक के नाम पर इतने अनर्थ हुए हैं कि उसकी अपेक्षा मनुष्यकृत पुस्तकें ही अधिक आदरणीय और नैतिक हैं, ऐसा स्पष्ट कहना पड़ रहा है! परंतु यह स्थिति जब आएगी तब आएगी! तब तक अत्याचार तथा बलात्कार के डंक को जो दबा देती है, वह धर्मवीरता मनुष्य मात्र के पास सदैव होगी ही! यह कुआँ देखो। छोटी-छोटी लड़कियाँ, कोमल युवक एक के बाद एक हत्यारों के सामने लाए गए। उनसे पूछा गया, 'मुसलमान बनेगा या मरेगा?' लड़कियों ने इसकी चिंता नहीं की कि उनकी माँ राह देखेगी। माताओं ने इसका दुःख नहीं किया कि उनके दुधमुँहे बच्चे को कौन दूध पिलाएगा। कोमल युवकों ने, कल ही जिसने हँसते-हँसते मिलने के लिए बुलाया था, उस प्रिय सखी को एक भी आलिंगन नहीं दे सकेंगे, इसकी चिंता नहीं की। हजारों आशाओं से बुना हुआ जीवन दिया और मरनेवालों की पंक्ति में पैर रखा, खड़े रहे और खचाखच तलवारें पड़ने से उनके टुकड़े उड़े! यह बलिदान, यह धर्मवीरता धन्य है! अत्याचार की धार भी जिस ढाल पर भोथरी होती है, ऐसी ढाल—हुतात्मता की ऐसी ढाल, ऐ हिंदू जाति, तेरे हाथ में अभी तक है। तू डरना नहीं।

एक बाबा बंदा बहादुर मारा गया, एक संभाजी मारा गया। वे महान् थे, इसलिए उनके बलिदान को हम उनके नाम लेकर वंदन करते हैं। परंतु हुतात्मता की पवित्रता में उनसे लेशमात्र भी जो कम नहीं परंतु जिनके नाम ज्ञात होना असंभव है, ऐसे सैकड़ों आबालवृद्ध, आबालबालिका, अब्राह्मण, चांडाल, हिंदू धर्मवीरों के अप्रतिम बलिदान को हम केवल 'यह कुआँ' कहकर ही संबोधित करते हैं। हिंदू जाति की अवनत अवस्था में भी प्रकाशमान होनेवाली उसकी दिव्य बलिदानी शक्ति का प्रतीक है यह कुआँ! इसी दिव्य बलिदान-शक्ति के बल पर यह हिंदू जाति पुनरपि समर्थ, सुंदर तथा ईश्वरप्रिय बनेगी, ऐसी जो आशा इस हृदय में स्पंदित हो रही है, उस आशा का नाम है यह कुआँ।"

संन्यासी ने भक्तिभाव से तीन बार उस कुएँ की परिक्रमा की। उसके पीछे-पीछे दामू तथा वह मुसलमान वृद्ध भी उतनी ही भक्ति से चल रहे थे। उसके उपरांत उन तीनों ने उस कुएँ को साष्टांग नमस्कार किया। बाँहें उठाकर वह संन्यासी बोला, "दामू, मैं मर जाऊँगा तो भी तू वह सौभाग्य का दिन देखने के लिए जीवित रहेगा।

तो तू उस दिन मेरा यह संदेश देना कि जब कभी हिंदू जाति फिर से पहले जैसी अपनी स्वतंत्रता, अपनी सामर्थ्य तथा अपने सौंदर्य से देवताओं को प्रिय होगी, तब इस कुएँ को वह भूले नहीं। एक बार चंद्रगुप्त ने या शिवाजी ने या गोविंदा ने अथवा भाऊ ने जिसपर विजय प्राप्त कर ली, ऐसी रणभूमि पर विजयस्तंभ खड़ा करने की विस्मृति हुई तो भी क्षण भर के लिए चल जाएगा, परंतु इस कुएँ के रक्तरंजित आँगन पर जयस्तंभ नहीं होगा तो भी कम-से-कम यशस्तंभ खड़ा करने को भूलना नहीं चाहिए। जयस्तंभ की अपेक्षा उसके यशस्तंभ की दृढ़ता पर ही जाति के जीवन का आधार निर्भर होता है।''

''परंतु महाराज, वह दिन देखने का सौभाग्य जिनके भाग्य में होगा वे वह दिन देखें; मैं तो इस कुएँ में फिर से उतरूँगा। मेरे साथ जो धर्मयुद्ध में लड़े-जूझे और मारे गए उन्हें छोड़कर अपनी जान बचाने के लिए उन्हीं के शवों पर पैर रखकर मैं ऊपर आया। मुझपर बिजली गिर पड़ती जो मेरे कृतघ्न स्वार्थ के साथ मुझे भस्म कर देती! जिस मार्ग ने मुझे उस भयानक पाप के शिखर पर चढ़ा दिया, उसी मार्ग से उतरकर इस कुएँ में जहाँ मैं था, वहीं जाकर गिरूँगा; और मृत्यु ने मुझपर जो विजय प्राप्त की उसे उसके हाथ से खींच लूँगा।''

''न! न! पागल कहीं का! अरे मृत्यु भी तभी पवित्र होती है, जब ध्येय की विजय जीवन से भी अधिक उपकारक होती है। मृत्यु कहीं साध्य नहीं है। तेरे जैसे वीर युवक यदि अपना जीवन जाति की उन्नति के लिए देंगे तो धर्म के लिए मरने की बारी किसीपर नहीं आएगी। धर्म के लिए धर्म का आचरण करते हुए जीना प्रमुख कर्तव्य है, इसलिए तू जीवित रहना और इस तरह से जीना कि तेरी जाति भी जिए। चल, उसे पूरा करने पर इन हुतात्माओं की आत्मा को तेरे इस मृत्यु के लिए अनशन व्रत से अधिक आनंद होनेवाला है।''

''महाराज, वह महत्कार्य कौन सा है?''

''शुद्धि!'' संन्यासी बोला, ''चलो, हम इन हुतात्माओं के खून, मांस से गाढ़े हुए इस कुएँ को ही साक्षी रखकर प्रतिज्ञा करेंगे कि मुसलमानों के अत्याचारों से जिन्हें बलपूर्वक मुसलमान बनाया गया उन सभी हिंदुओं को शुद्ध कर हम फिर से हिंदू-धर्म में ले आएँगे! आत्माहुति से, प्राण बलिदान से जो मर गए उन्होंने हिंदुत्व की रक्षा की। हम जो जीवित हैं, वे शुद्धि की रक्षा करेंगे। इतना ही नहीं, अपितु प्रसार भी करेंगे और शत्रुओं के दुष्ट हेतु विफल करेंगे। चलो!''

□

प्रकरण–९

सबको फिर से हिंदू बनाया

वे चले गए। संन्यासी और दामोदर ने गाँव-गाँव तथा झोंपड़ी-झोंपड़ी में घूमकर मोपलों के अत्याचारों से भ्रष्ट हुए हिंदुओं को शुद्ध करने का काम शुरू किया। मोपलों का उठाव यद्यपि अब पूरा ही दबा दिया गया था, उनके नेता मारे गए थे और उनके लोगों ने दीनता से हार मान ली थी, फिर भी उनके द्वारा भ्रष्ट किए हुए हिंदुओं को शुद्ध करने के लिए संन्यासी और दामोदर प्रयत्न कर रहे हैं, यह देखकर कुछ मोपलों ने उनकी हत्या का यत्न करने में भी आगे-पीछे नहीं देखा।

एक दिन तीसरे प्रहर के आसपास किसी झोंपड़ी के दरवाजे के सामने झाड़ू लगाते समय एक युवती कोई गाना गुनगुना रही थी। उस स्वर को सुनते ही उस मार्ग से गुजरनेवाला एक संन्यासी रुक गया। उस गाने के पालुपद में उसे गोविंदा का नाम अस्पष्ट सुनाई दिया तो वह उस मार्ग को छोड़ उस झोंपड़ी की ओर धीरे-धीरे जाकर एक पेड़ के पास खड़ा हो गया। वह युवती अपनी ही धुन में बार-बार घुमाकर एक पंक्ति गा रही थी और झाड़ू लगा रही थी—'गोविंदा। सुखकंद। मन मोरा लै तोरा छंद।'

संन्यासी आगे बढ़ा। उसे देखते ही वह बच्ची चौंक गई। संन्यासी ने पूछा, ''बेटी! यह झोंपड़ी किसकी है?''

''किसी मोपले की है।''

''और तू यहाँ कैसे आई?'' इस प्रश्न के साथ ही उस लड़की का चेहरा फीका पड़ गया, आशा की उत्कंठा भी उसके चेहरे पर चमकने लगी।

उस प्रांत के मोपला लोगों के मुँह से उसने सुना था कि कोई हिंदू संन्यासी धर्मांतरित हिंदुओं को शुद्ध करके फिर से हिंदू धर्म में लेने का कार्य कर रहा है। मोपला लोग क्रोध से उसे शैतान संन्यासी कहा करते हैं!

उस लड़की के हृदय में सहसा थरथराहट हुई। यही तो नहीं वह संन्यासी? वह रोने लगी।

''रोना मत!'' संन्यासी बोला, ''बेटी, तूने मोपला स्त्रियों का जाकिट पहना है। परंतु तू यह गोविंदा का गाना गा रही है, इसलिए पूछ रहा हूँ कि क्या तू पहले हिंदू थी?''

जरा ढिठाई से वह लड़की बोली, ''भगवान् भक्तों की परीक्षा गोविंद जाकिट से नहीं, हृदय से करता है, ऐसा मेरे माता-पिता मुझे सिखाते थे। मैं हिंदू थी, आपका यह तर्क ठीक है। परंतु मैं हिंदू हूँ भी। यह जाकिट तो मेरे शरीर पर चढ़ा है; मन पर तो नहीं। क्षमा कीजिए। मैंने सुना है कि धर्मभ्रष्ट हुए हिंदू फिर से शुद्ध होकर हिंदू धर्म में तथा समाज में आ सकते हैं। क्या यह सच है?''

संन्यासी ने कहा, ''बिलकुल सच! बलात्कार से अथवा मूर्खता से ही क्यों न हो, जो हिंदू धर्मभ्रष्ट हो जाता है वह सब प्रायश्चित्त कर फिर से हिंदू हो सकता है।''

''महाराज, परंतु मैं तो मसकुनी जाति की, नीच योनि की कन्या हूँ। उसपर भी बलात्कार से किसी मुसलमान ने मुझे यहाँ अपनी बीवी बनाकर रखा है। मैं अभी तक जिंदा हूँ। क्या मेरे लिए भी प्रायश्चित्त है?''

''हाँ है! तेरा चित्त जिस क्षण शुद्ध हुआ उसी क्षण वह प्रायश्चित हो गया। तू जीवित है, यह मैं भाग्य की बात समझता हूँ। जो उठेगा वह यदि जान देगा तो हमारी हिंदू जाति अपनी ही ओर से नामशेष हो जाएगी। मोपलों को तो धर्मभ्रष्ट कराने का भी कष्ट नहीं करना पड़ेगा। धर्म के बारे में आंतरिक भक्ति यदि विचलित नहीं हुई तो सबकुछ क्षम्य है—नहीं, उसकी गिनती अपराध में होती ही नहीं। ध्येय के बंदरगाह पर जाने के लिए हवा की ओर मुँह करने की अपेक्षा पीठ करना ही उचित है। तू हाँ कह दे कि तू फिर से हिंदू हो सकती है।''

आशा के उस पार कुछ अच्छा हो जाय तो मनुष्य जैसे एक क्षण के लिए अपने आप पर भी विश्वास नहीं कर सकता, उसी तरह एक क्षण चकराकर वह लड़की फिर से बोली, ''तो महाराज, क्या मैं सचमुच हिंदू जमात में आ सकती हूँ? महाराज, मैं मसकुनी भी शुद्ध हो सकती हूँ?''

''बिलकुल हो सकती हो!''

''तो फिर महाराज, जल्दी कीजिए। पास के गाँव से वह मुसलमान राक्षस जल्दी ही वापस लौटेगा। इस खेत के पास ही बाकी मोपला रहते हैं। आप यहाँ अधिक समय रहेंगे, तो वे भी आपको देख लेंगे। इसलिए मुझे जल्दी ही यहाँ से ले चलें। जो धर्मभ्रष्ट हिंदू अपने हिंदू धर्म में वापस जाते हैं उन्हें मोपले जान से मार देते

हैं, इसलिए शीघ्र चलिए। क्या मैं चलूँ?''

''अवश्य। परंतु तू मुसलिम वेश में नहीं आना। यह जाकिट उतार दे। तू उस राक्षस से डर मत। मेरे साथी यहाँ पास ही हैं। खोल दे बटन और फेंक दे वह जाकिट।''

यह अकल्पित रिहाई—एक क्षण पहले जिसकी तनिक भी उम्मीद नहीं थी, एक क्षण में होनेवाली यह अकल्पित रिहाई! फिर से हिंदू होना है, इस प्रिय कल्पना से उसके स्त्रीजातीय मृदुल ज्ञानतंतु थरथर कापँने लगे। जाकिट के बटन खुल नहीं रहे थे।

हिंदू जाति में—उसके पीहर में—जाने के मार्ग में मोपला जाकिट का यह द्वार ही बीच में था। उसने उन बटनों को तड़ातड़ तोड़ दिया जो खुल नहीं रहे थे—और उसने वह जाकिट फेंक दिया; और पिंजड़े से छूट फुर्र से उड़कर वृक्ष का आश्रय करनेवाले पंछी की तरह वह कन्या झट से उस संन्यासी की दीर्घ तथा दृढ़ बाँहों के आश्रय में आ गई।

संन्यासी मार्गस्थ हुआ। उस कन्या के साथ थोड़ी दूर चलने पर उसके साथी उसे आकर मिले।

''यह क्या? मालती!'' दामोदर आश्चर्य से बोला, ''फिर तो हे भगवान्, दुष्टों द्वारा धर्मभ्रष्ट किए गए जितने हिंदू मुझे ज्ञात हैं, वे सब आज फिर से हिंदू जाति को प्राप्त हुए, यह कितने संतोष की बात है!''

संन्यासी बोला, ''और मुझे ज्ञात होनेवाले भी। छह महीने भी नहीं हुए होंगे, इस मौलवी ने गर्वगर्जना करते हुए मुझसे कहा था कि 'आज हिंदू धर्म मर गया। इस खिलाफत राज्य में जितने हिंदू थे, सबको भ्रष्ट कर मुसलमान बनाया गया है।' आज हम भी यह कह सकते हैं कि मालाबार में तेरा वह खिलाफत राज्य खत्म हो गया। वह राज्य अब तनिक भी नहीं है। तेरे प्रयत्न विफल हुए।''

''स्वामी! शक और हूणों की तलवारों से होनेवाले घाव आज इस तरह भर चुके हैं, जैसे कभी हुए ही नहीं थे। उसी तरह यह घाव भी आपकी कृपा से भर आया है!''

''यह ठीक हुआ!'' संन्यासी गंभीरतापूर्वक बोला, ''घावों का भर आना हिंदू जाति की जीवनीशक्ति की श्लाघनीय विजय है, इसमें कोई संदेह नहीं। परंतु आघात ही नहीं हो पाएँ ऐसी क्रियाशक्ति अब उस जीवनीशक्ति से निर्मित करनी चाहिए। घाव भरने की अपेक्षा हमारे हिंदू राष्ट्र तथा जाति पर घाव करने का साहस ही अब किसीको नहीं होना चाहिए, किसीको संधि ही नहीं मिलनी चाहिए—ऐसा सामर्थ्य, ऐसा चैतन्य निर्मित करना चाहिए। वह विजय इस विजय से अधिक

प्रशंसनीय होगी। औरंगजेब को पराभूत करके मुगल पादशाही मिट्टी में मिला दी गई, यह तो विजय है ही, परंतु बाबर को, मोहम्मद गजनी को अथवा कासिम को सिंधु नदी पार करने का प्रयत्न करते ही यदि हम उसमें डुबा सकते, कुचल सकते तो वह विजय इससे भी श्रेष्ठ और परिपूर्ण होती। तेरी पीढ़ी को अब ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि यह हिंदू जाति अपने संगठित बल से, इस हिमालय को टेककर निर्भयता से ऐसी यथार्थ गर्जना कर सके कि अन्याय से आघात करने का साहस कोई भी न कर सके?

ऐसी विजय प्राप्त करने का दायित्व, दामोदर और मालती—तुम्हारी पीढ़ी का है।'' कहते हुए उस संन्यासी ने दामोदर तथा मालती के हाथों को एक-दूसरे के हाथों में गूँथ दिया और गंभीर स्वर में कहा, ''हे युवक, हे युवती! आपका यह पाणिग्रहण आपको तथा आपकी हिंदू जाति को सुखद हो!''

□□□

अंधश्रद्धा-निर्मूलक कहानियाँ

कुसुम

बड़गाँव स्थित एक प्राथमिक पाठशाला में आज पुरस्कार-वितरण समारोह है। ऐसा पुरस्कार-वितरण समारोहवाला दिन बच्चों के अथक परिश्रम को सम्मानित करने का दिन होता है। हमारे आधुनिक भूखे-कंगाल अध्यापकों के लिए, जो ग्रामीण पाठशालाओं में सड़-गल रहे हैं, यह दिन विशेष महत्त्व रखता है क्योंकि उनकी अपनी दाल-रोटी की समस्या से भी इस वार्षिक पुरस्कार-वितरण समारोह के थोड़े-बहुत संबंध की संभावना होती है।

इस तरह के समारोहों में उन बेचारे अध्यापकों को ग्रामपंचों, ग्राम-पालकों एवं यथावश्यक डिप्टी महोदय को संतुष्ट करने का सुनहरा अवसर प्राप्त होता है। समारोह के दिन उस गाँव के ग्रामपंच, दो टके की पूँजी में इतरानेवाले गाँव के सेठिए, उलटी खोपड़ी और अक्ल के दुश्मन ग्रामीण लोग, जिन्हें जीवन में कभी कुरसी नहीं मिलती, उन्हें आज पालक जैसी महान् उपाधि के साथ सम्मानपूर्वक कुरसी पर बैठाया जाता है। आते-जाते स्त्री-पुरुष, छात्र-छात्राएँ। इन सभी लोगों के मन में ऐसे समारोह के झिलमिल-झिलमिल लहराते वे फीते, ताशा-ढोल, गाना-बजाना, संवाद, हारमोनियम-तबला, 'आइए, पधारिए' जैसे सुमधुर स्वागत-गीत। इसी कारण उस स्कूल के प्रति उनमें बड़ी आत्मीयता पनपने लगती है। छात्रों के गुण विशेष पुरस्कार समारोह के कारण गाँव में उन अध्यापकों का भी बोलबाला होता है। इससे अध्यापक डिप्टी अफसर के सामने बड़ी आसानी से यह सिद्ध कर सकते हैं कि स्वयं वे तथा उनकी पाठशाला ग्रामवासियों में कितने लोकप्रिय हैं।

ग्रामीण स्कूलों के उन बेचारे सरकारी अध्यापकों के लिए ऐसे समारोह का एक महत्त्वपूर्ण लाभ यह है कि इस निमित्त अपने स्कूल के विकासपरक भाषण में येनकेन प्रकारेण अपने कष्ट और दुःख सबके सामने प्रकट करने, अपने दिल के फफोले फोड़ने का सुनहरा अवसर भी उन्हें मिलता है। किसी प्रकार खींचातानी

करके स्कूल के विकास से संबंधित भाषण में अपनी दाल-रोटी की अपूर्णता का उल्लेख भी वे बड़ी आसानी से समाविष्ट कर सकते हैं।

बड़गाँव के अध्यापक भी ऐसे ही कुछ उपेक्षित, उसपर तनिक भोले-भाले भी हैं। आज के इस पुरस्कार-वितरण समारोह में ग्रामपंचों के साथ तमाम सज्जन ही नहीं, अपितु पड़ोसी तहसील के 'जगत् समाचार' शीर्षक साप्ताहिक के संपादक श्री बंडो पंत अध्यक्ष पद विभूषित करने आ रहे हैं। वे महीने-दो महीने में एक अंक प्रकाशित करते हैं। किसी अखबार के संपादक सदृश ऊँचा और सम्मानित नागरिक अध्यापकों को भला कहाँ मिलेगा, जिसपर वे अपने सारे दुःख-दर्द टाँग सकें, ताकि सारी दुनिया उनपर गौर करे। इसी विश्वास के साथ बड़गाँव स्थित एक अध्यापक—दिगोजी बाबू—अपने भाषण में अपने दुःख-दर्दों की संपूर्ण कहानी गूँथकर अपने मासिक वेतन और आटा, दाल, सब्जी, चावल, किराया जैसे गृहस्थी पर आनेवाले व्यय का प्रमाणपुष्ट तूमार बाँधनेवाले थे। यह भाषण उन्होंने कंठस्थ किया हुआ था। साथ ही उसी अर्थ का एक गीत भी रचकर अन्य गीतों की तरह उसे छात्र-छात्राओं को कंठस्थ करवाया था।

कुसुम उन्हीं छात्राओं में से एक थी, जो यह गीत गाने जा रही थीं। वह देखने में सुंदर, बोलचाल में चुस्त दस वर्षीया बालिका थी। उसकी आवाज मधुर और सुरीली थी। अर्थात् गीत का अभ्यास करते समय दिगोजी बाबू ने उसे ही प्रधान गायिका का भार सौंपा। उसे वह गीत सिखाते समय वे उसके साथ आते-जाते इतनी बातें करते रहते कि अन्य छात्र-छात्राओं की छाती पर साँप लोटता। न केवल उन लोगों में ही आपस में बल्कि कुछ निठल्ले ग्रामीण गुंडों में भी—'लगता है दाल में कुछ काला है। शायद जन्मपत्री मेल खा रही है,' इस तरह इशारे कर फब्तियाँ कसी जातीं।

वास्तव में देखा जाए तो दिगोजी बाबू कुसुम से अधिक अन्य छात्र-छात्राओं से ही बातचीत करते रहते थे। परंतु स्कूल-कॉलेज के अध्यापक-प्राध्यापकों के छात्रों से, छात्राओं से बातचीत करने की कतरब्योंत या नापतौल जिस सारणी द्वारा की जाती है, उस सारणी के अनुसार ही यह सिद्ध होता कि दिगोजी बाबू कुसुम के साथ ही अधिक बातचीत करते हैं।

वह सारणी इस प्रकार की थी कि स्कूल-कॉलेज स्थित किसी लड़के से अध्यापक चाहे सैकड़ों बार क्यों न बातचीत करें, वह इतना आपत्तिजनक नहीं होता जितना कि कक्षा की किसी फटीचर, सुस्त लड़की से दस बार बात करना आपत्तिजनक है। उससे भी अधिक आपत्तिजनक किसी चुस्त, तेज-तर्रार लड़की के साथ एक बार बात करना समझा जाता है। इस सिलसिले में यह एक अलिखित नियम ही बन

गया था। अतः चुस्त, चुलबुली कुसुम से दिगोजी बाबू की एक ही बार की बातचीत का धमाका पूरे स्कूल में जितना स्पष्ट सुनाई देता और उसका रंग इतना गहरा, भड़कीला होता कि यदि वे सौ बार भी अन्य छात्र-छात्राओं से बात करते तो वह न किसीको सुनाई देता, और न ही दिखाई देता।

□

पुरस्कार-वितरण समारोह प्रारंभ हुआ; गीत, संवाद संपन्न हो गए। कुसुम द्वारा अपनी भूमिका को सबसे अधिक सुंदर, सुचारु ढंग से अभिनीत करने के कारण 'जगत् समाचार' के संपादक ने—जो अध्यक्ष पद को विभूषित कर रहे थे—उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। कोने में बैठी चांडाल चौकड़ी यह कहते हुए कि 'चलो अब अतिथि महोदय की भी लार टपकने लगी,' एक दूजे के हाथ पर हाथ मारकर 'हीं-ही' करने लगी। दिगोजी बाबू मन-ही-मन चिंतित हो गए। मेरा भाषण भी कुसुम के संवादों जैसा सरस होगा न? संपादक महोदय इसी तरह मेरी प्रशंसा करेंगे न? इतने में उनके भाषण का समय हो गया—उसीके साथ बच्चों के शोर मचाने का भी समय हो गया। दिगोजी बाबू को अब दोहरी भूमिका निभानी थी। एक उस अध्यापक की जो इस शोरगुल, इस हंगामे को नियंत्रित करता है और दूसरी उस व्याख्याता की जो स्कूल के विकास का लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हुए भाषण देता है। दाहिने हाथ में प्रतिवृत्त (रिपोर्ट) का बंडल और बाएँ हाथ में टेबुल पर रखी छड़ी उठाकर वे भाषण देने खड़े हो गए—'बच्चो तथा बालिकाओ!' इस प्रकार विद्यालयी भाषण में प्रचलित प्रथम संबोधनी हुंकार देते ही उन आज्ञाकारी बालक-बालिकाओं ने—'हाँ जी-हाँ जी—मास्टरजी' जैसे शब्दों से एक हंगामा खड़ा कर दिया। दिगोजी बाबू के 'अरे चुप रहो। चुप रहो। सिर्फ सुनो। रामू, तुम, तुम, अरे गधो, यहाँ चुप रहो बिलकुल,' इस तरह घुड़कते ही और बाएँ हाथ से मेज पर पाँच-दस बार छड़ी छमछमाते ही बच्चों ने तय किया कि इस समय मास्टरजी लाख पुकारें अथवा कुछ भी पूछें, हमें उनके प्रश्नों का सही-सही उत्तर न देते हुए मुँह में ठेपी रखनी है।

अब तक दिगोजी बाबू ने भी गौर किया कि विद्यालयी भाषण के अनुसार उन्होंने इस सभा में भी 'बच्चो और बालिकाओ' जैसे संबोधनों के साथ भाषण प्रारंभ किया, यह उनकी भूल थी। अतः अब उन्होंने पूरी सावधानी के साथ फिर से अपना भाषण शुरू किया।

''अध्यक्ष महोदय तथा भाई-बहनो! (हाँ—सोम्या हुश्श!) आज हमारी पाठशाला का अहोभाग्य है कि 'जगत् समाचार' जैसी महान् पत्रिका के जाने-माने संपादक श्रीमान बंडो पंत आज के समारोह के अध्यक्ष के रूप में उपस्थित हैं। (गुरुजनों की तालियाँ—इसके साथ ही चतुर बालकों ने गौर किया कि वाक्य के

अंत में तालियाँ बजानी पड़ती हैं। उसके अनुसार अपने हाथ ताली बजाने के लिए तैयार रखकर वे अगले वाक्य की समाप्ति की प्रतीक्षा करने लगे।) इस पाठशाला के संस्थापक श्री दगडूजी पाटील इसी वर्ष हैजे की बीमारी से दिवंगत हो गए। (बच्चों की तालियों की गड़गड़ाहट। दिगोजी बाबू की गुस्से से मेज पर पटकी छड़ी की छमछमाहट और आज्ञाओं की गड़गड़ाहट। हुश्श। सुनो तो सही, चंपा चुप!) इसके लिए मैं पहले हार्दिक खेद व्यक्त करता हूँ। अब स्कूल के विकास का प्रतिवृत्त पहले पढ़ना है। लेकिन ('मास्टरजी, मास्टरजी, यह भिक्या मुझे बार-बार कुहनी से टहोक रहा है। धक्का मार रहा है। नहीं मास्टरजी, यह सख्या ही पहले मेरी चुटकी काट रहा है।' इस तरह का हंगामा। 'हाँ-हाँ उधर से दोनों उठो और चलो तुम उधर बैठो, तुम पीछे जाओ।' इस तरह अध्यापक दिगोजी बाबू का कठोर आदेश।) परंतु—आप इन आवारा, शरारती, निठल्ले बच्चों का हंगामा देख ही रहे हैं। अत: मैं बस इतना ही कहता हूँ—कि मैं एक गरीब, बेचारा, निर्धन, अकिंचन अध्यापक हूँ। परिवार में दिनोदिन बच्चों की संख्या बढ़ रही है। परंतु पिछले बारह वर्षों से मेरी मासिक आय में बारह रुपयों से एक धेला भी नहीं बढ़ा है। बारह एके बारह, बस। आगे क्या है?'' (चतुर गोंधा सोचता है कि मास्टरजी को यह अड़चन आ गई कि बारह के पहाड़े में आगे क्या है! 'मास्टरजी, बारह दुनी चौबीस।' फिर रामू ताव खाते हुए चिल्लाता है, 'बारह तिक छत्तीस मास्टरजी।') इसके साथ ही अध्यक्ष महोदय आदि सभी लोग हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते हैं। दिगोजी बाबू की शोक-रस भरी इस करुण कहानी पर हास्य-रस द्वारा पानी फेर देने से सारा मामला चौपट हो गया। तब उनका आपे से बाहर हो जाना स्वाभाविक ही था। बाएँ हाथ की छड़ी कब दाएँ हाथ में आ गई और उनके पाँव तले बैठे गोंधा-रामू के बदन पर वह कब सटासट पड़ने लगी, इस बात पर उन्होंने तब तक साफ-साफ गौर नहीं किया जब तक उन बच्चों ने जोर-जोर से 'आयायाया! हाय-हाय' कर चीखना प्रारंभ नहीं किया। इस धमाचौकड़ी के साथ ही उस गोष्ठी के अध्यक्ष महोदय ने आखिर बीच में ही उठते हुए कहा—

''दिगोजी बाबू, अब आप ऐसा कीजिए कि आप अपना यह प्रतिवृत्त तथा अपना यह मूल भाषण दोनों मेरे पास भेज दीजिए। मैं उसे 'जगत् समाचार' में समग्र प्रकाशित करता हूँ। फिर यहाँ सिर्फ भाषण देने का झंझट किसलिए मोल लिया जाए? वैसे ऐसा प्रतीत होता है कि आपने यह लिखित भाषण कंठस्थ किया है।''

''नहीं जी, राय साहब, बिलकुल सौ फीसदी तो यह सही नहीं है। परंतु आप इसे पूरा-का-पूरा प्रकाशित करेंगे तो इस गरीब पर बड़ा उपकार होगा। भाई, अंधा क्या चाहे दो आँखें।'' लगे हाथ अध्यक्ष महोदय ने सभी भाषणों को रद्द

करके पाँच-दस पुरस्कार अपने हाथों से वितरित करने का निर्णय प्रकट किया।

''कुसुम!'' अध्यक्ष महोदय ने पहला नाम लिया—''प्रथम श्रेणी के पुरस्कार योग्य होने के तौर पर।''

कुसुम को जरी का खण (एक चोली के लिए पर्याप्त कपड़ा) मिलते ही पहली ताली बजाई दिगोजी बाबू ने। उसके साथ-साथ बच्चों ने कठपुतली की तरह तालियों की गड़गड़ाहट की। बीच में ही कुछ लोग खाँसी की छुतही बीमारी से ग्रस्त हो गए। जोर से, शोखी भरी खँखार किए बिना उनसे रहा नहीं गया। शेष पुरस्कार-वितरण के पश्चात् समारोह समाप्त हो गया। बच्चों को राहत मिली और वे हर्षोल्लास भरा शोरगुल करते हुए गाँव की राह पकड़कर अपने-अपने घर चलते बने।

खेत-स्थित किसी मवेशीखाने का दरवाजा पौ फटते ही खुलता है और कोई मेमना जिस तरह हरी-भरी मखमली दूब पर स्वच्छंदतापूर्वक उछल-कूद करने लगता है, चौकड़ियाँ भरते हुए उल्लास जताने लगता है, उसी तरह अपने घर के आँगन में कदम रखते ही कुसुम उछलने लगी। पुरस्कारस्वरूप पाया हुआ जरी का वह 'खण' घर जाते ही अपनी माँ को दिखाने के लिए उसका जी मचल रहा था। माँ को दूर से देखते ही वह भागने लगी। माँ से मिलते ही वह उससे लिपट गई। उसे खण दिखाया। सभा का सारा मजेदार-चटपटा वृत्तांत बताया, गीत सुनाए। माँ जैसे-जैसे उसकी प्रशंसा के पुल बाँध रही थी, वैसे-वैसे ही उसका दिल बाग-बाग हो रहा था।

वह दस वर्षीया अबोध बालिका क्या जाने कि इस प्रकार के खुले, स्वच्छंद, हर्षोल्लास का उसके जीवन में यह अंतिम पल है।

क्योंकि उसी क्षण उसके पिता—पंडित गोपाल बाबू—आ गए। उनका कद लंबा, रंग गोरा-चिट्टा था। वे रूढ़ि-रीति-रिवाज को ही शासन मानते थे। पुरोहित कर्म तथा दूध-दही बेचना—इस प्रकार दो परस्पर विरोधी व्यवसाय करते थे। उस थोड़ी सी पूँजी पर वे जैसे-तैसे अपना गुजारा करते। बहुत ही कर्मकांडी, रूढ़ि-प्रिय, शीघ्रकोपी तथा जिद्दी पुरुष थे। आँगन में कदम रखते ही उन्होंने गंगा, कुसुम की अम्मा, को आड़े हाथों लिया—

''क्यों जी, बेटी को कोठे पर बैठाने का तो इरादा नहीं तुम्हारा? यह नासपीटी गला फाड़-फाड़कर कैसे छिछले गीत गा रही है। कुसुम, याद रख, कल से तू स्कूल में कदम भी नहीं रखेगी।''

''भला वह क्यों?'' गंगा ने त्योरियाँ चढ़ाकर पति को टोका।

''क्यों? अरी भागवान, कुसुम सात-आठ साल की अबोध बच्ची थोड़े ही रही है? पूरे दस साल की विवाह योग्य कन्या हो गई है। आज स्कूल में सारे शरारती

गुंडे-शोहदे इसे कैसे घूर रहे थे, पता है? मैं उन उल्लू के पट्ठों में से नहीं हूँ जो अपनी बारह-बारह वर्ष की बेटियों को स्कूल में नचाते हैं—समझी? हमारे शास्त्रों ने 'अष्टवर्षा भवेत् कन्या' जैसी मर्यादा यों ही नहीं डाली है।''

गंगा इस कर्मकांड-प्रिय पंडित गोपाल बाबू—जो बारह-बारह वर्षीय किशोरियों को बड़ी उम्र की दुलहनें कह रहे थे—की तीसरी पत्नी थी। पचास वर्ष की आयु में उनकी दूसरी पत्नी चल बसी। उनके दो बड़े बेटे भी थे। इसके बावजूद उन्होंने तीसरी बार ब्याह करने की ठान ली और तेरह वर्षीय एक कुँवारी कन्या का हाथ थामा—वही है यह गंगा। उस घटना को अब सोलह साल बीत चुके। गंगा की बड़ी बेटी अब चौदह वर्ष की हो चुकी थी। वह रानपाट के चौधरी के घर ब्याही गई थी। दूसरी कुसुम है।

हमारी इस कहानी के समाजचित्रों में से यही है पहला समाजचित्र। पंडित गोपाल बाबू पैंसठ वर्ष पार कर चुके थे। उनकी तृतीय पत्नी तीस की थी और छोटी बेटी दस वर्ष की। वह अपने पिता की शास्त्र मर्यादा के अनुसार बड़ी आयु की दुलहन हो चुकी थी।

□

पंडित गोपाल बाबू अपनी पत्नी को फटकार ही रहे थे कि आँगन में एक सिपाही ने आवाज दी, ''तार।''

'तार' शब्द सुनते ही उनका मन भी डाँवाडोल हुए बिना नहीं रहता, जिनके घर तार आना आम बात होती है। बहुत ही आवश्यक—विशेष आनंद, सुख या भीषण विपदा का सूचक है तार। उसपर गाँव में पंडित गोपाल बाबू जैसे निर्धन परिवार के घर तार आने का प्रसंग जीवन में दो-तीन बार ही आएगा। स्वयं गोपाल बाबू को अब तक एक ही तार का स्मरण था। वह पचास वर्ष पार करने के उपरांत बड़ी कठिनाई के साथ गंगा से रिश्ता पक्का होने का तार था। उसके पश्चात् दूसरी बार यही तार उनके नाम आया था। अबकी बार शादी-ब्याह की कोई गुंजाइश नहीं थी—अर्थात् कुछ अनिष्ट की सूचना ही होगी। इस संदेह के साथ काँपते हाथों पंडित गोपाल बाबू ने तार लिया और वे जल्दी-जल्दी पड़ोस में उसे पढ़वाने के लिए चल पड़े। उसी आशंका से गंगा का मुख पीला पड़ गया था। उसने हाथ जोड़ते हुए भगवान् से प्रार्थना की—

''हे प्रभु, दुःख, संकट का निवारण करो। सारा अमंगल, अनिष्ट दूर हो।''

गंगा की बड़ी बेटी रानपाट के चौधरी के घर ब्याही गई थी। वह सख्त बीमार थी। यह बात पहले ही ज्ञात हो चुकी थी। गंगा का हृदय धौंकनी समान धकधक करने लगा। कहीं उसीके घर से तो तार नहीं आया? कहीं उसका कुछ

अनिष्ट तो नहीं हुआ? उस अशुभ विचार का भी उसने मन में पूरा उच्चारण नहीं होने दिया। वह स्नेहमयी जननी थी, इसलिए अपने आपसे नाराज हो गई कि उस अनिष्ट के बारे में उसने सोचा। यह निगोड़ा मन उसीका चिंतन करता है, जो वैरी भी नहीं सोचता। हाँ, अतिस्नेह पापशंकी। अपने विषय में मन में जितनी अशुभ कल्पनाएँ उठती हैं, उतनी शत्रु के मन में भी नहीं उठतीं। पंडित गोपाल बाबू आँसू बहाते ही तुरंत घर वापस लौटे। उनकी बड़ी बेटी के घर से ही तार आया था। रानपाट के चौधरी ने—उनके जमाई बाबू ने सूचित किया था, 'आपकी बड़ी बेटी सख्त बीमार है। सासजी तथा कुसुम को, यदि वहाँ वे भोजन कर रही हों तो हाथ धुलाकर तुरंत इधर भेज दीजिए ताकि वे उसकी सेवा-टहल कर सकें।'

भोजन ही किसलिए? मुँह में एक निवाला भी न डालते हुए या पानी का एक भी घूँट न लेते हुए गंगा कुसुम के साथ तुरंत गाड़ी में बैठकर रानपाट के लिए रवाना हो गई।

परंतु उनके वहाँ पहुँचने से पहले ही उनकी बड़ी बेटी मृत्यु के उस फंदे में फँस गई जिससे छुटकारा असंभव था। अपनी माँ तथा कुसुम को उसने जी भरकर देख लिया। वाणी बंद हो जाने के कारण सिर्फ कुसुम का मुख सहलाया। इस दुःखावेग के साथ माँ दहाड़ें मारकर रोने लगी। उसीकी गोद में अपना डगमगाता सिर रखकर वह राम-राम हो गई।

चौधरी बाबू बड़े सुशील तथा समझदार आदमी थे। युवा पत्नी की मृत्यु का तीव्र दुःख होने के बावजूद खून का घूँट पीकर वे अपनी सास तथा नन्ही कुसुम को हर तरह से ढाढस बँधा रहे थे। वे अच्छे-खासे खाते-पीते घर के थे। उनके ससुरालवाले निर्धन थे, अतः ससुर का हाथ बहुत तंग होने पर वे उनकी सहायता किया करते। उन्हींके अनुरोध ने गोपाल बाबू को कुसुम को स्कूल भेजने पर विवश किया था। वह भी अपनी दीदी के साथ चौधरी महाशय के घर कई बार रह चुकी थी। अपनी युवा पत्नी की जिस कड़ी के कारण उन दो परिवार का स्नेह तथा प्यार भरा रिश्ता जुड़ा था, दुर्भागयवश वही कड़ी आज अचानक टूट गई तो कहीं यह रिश्ता भी तो नहीं टूट जाएगा? इस तरह की आशंका उस युवती की मृत्यु के समान ही कुसुम के माता-पिता तथा चौधरी महाशय को व्याकुल कर रही थी।

अपनी ससुराल के लोग चौधरी बाबू को अपने घर के सदस्यों की तरह प्रतीत हो रहे थे। वे नहीं चाहते थे कि वे उनकी ममता से वंचित हों। इस सदिच्छा से ही पत्नी के सूतक के दस दिन होते ही उनका मन करने लगा कि कुसुम की पढ़ाई का पूरा बोझ वे स्वयं उठाएँ—अपनी सास को इसका आश्वासन देते हुए उन्होंने कहा कि कुसुम को यहीं पर रखें। उनकी सास ने जब घर वापस लौटने की बात

छेड़ी तब चौधरी महाशय ने कहा—

"माँजी, आप ही अब मेरी माँ हैं। जो हमसे बिछुड़ चुकी, उसका तो बिछोह ही हो गया। होनी को भला कौन टाल सकता है? यह तो हमारी विवशता थी। परंतु अब जो निकटवर्ती सगे-संबंधी रह गए हैं—कम-से-कम वे तो एक-दूसरे के प्रेम से वंचित न हों। आगे भविष्य में भी आप मेरी माँ का स्थान ही ग्रहण करें। यह उचित ही है कि आप घर वापस लौटने की बात कर रही हैं। कुछ भी हो, पंडित गोपाल बाबू तो यहाँ पर आकर नहीं रह सकते। उनके लिए आपको उधर जाना ही पड़ेगा। लेकिन इस बच्ची को कम-से-कम एक निकटवर्ती संबंधी के रूप में, अपने परिवार की ममता की शृंखला के रूप में, आप इधर ही छोड़ दें। घर में रसोइए, नौकर-चाकरों की कोई कमी नहीं—वे इसकी सेवा करेंगे। इसकी पढ़ाई-लिखाई, लालन-पालन मैं पिता समान ही बड़े प्रेम से करूँगा।"

"क्यों नहीं? शायद पिता से भी बढ़कर करेंगे आप। यदि ऐसा हो गया तो इसकी पढ़ाई आदि यहीं पर होगी। परंतु अभी मैं इसे अपने साथ ले जाती हूँ। इसके पिता की अनुमति लेकर फिर इसे इधर भेज दूँगी।" सास की बात उचित समझकर चौधरी महाशय ने भी अनुमति दे दी।

गंगा ने घर लौटते ही उचित समय प्रसंग का मान रखते हुए पंडित गोपाल बाबू के सामने यह बात छेड़ी। गोपाल बाबू तो चाहते ही थे कि चौधरी बाबू से जुड़ा हुआ संबंध तथा उनकी सहायता खंडित न हो। कुसुम की पढ़ाई की न सही, पर उसके हाथ पीले करने की चिंता उन्हें पहले से ही खाए जा रही थी। उन्होंने तो प्रण ही किया था कि वे उसे बारह साल की, बढ़ी उमर की दुलहन बनाकर अपने कुल के मुँह पर कालिख नहीं पोतेंगे। मन की ऐसी अवस्था में चौधरी महाशय की यह योजना सुनते ही गोपाल बाबू के मन में अचानक एक योजना पनपने लगी।

उसकी बहन के स्थान पर चौधरी महाशय के हाथ में यदि कुसुम का ही हाथ दे दिया जाए तो? सभी मनचाहा हो जाएगा। शास्त्र मर्यादा का तो सवाल ही नहीं उठता। यह संबंध तो रूढ़ शिष्टाचारसम्मत ही था। 'इस तरह प्यार-ममता भरा, बिना दहेज का, खाता-पीता घर भला हम कुसुम के लिए कहाँ से ढूँढ़ेंगे? यदि यह रिश्ता हो गया तो कहना होगा कि बेटी का भाग ही खुल गया। सोने पे सुहागा।'

यह योजना गंगा को भी पसंद आ गई। कुसुम की पसंद-नापसंद का तो सवाल ही नहीं था। वह दस वर्षीया अबोध बालिका स्वयं ही नहीं जान सकती थी कि विवाह का नाम लेते ही उसे किस बात से भय लग रहा है। न ही किसीने उससे पूछा।

पंडित गोपाल बाबू ने बिलकुल ही स्पष्ट तथा साफ शब्दों में यह योजना

चौधरी महाशय को सूचित की। किसी भी विधुर को कुसुम जैसी सुंदर, सुशील, स्नेहमयी वधू ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलेगी। चौधरी महाशय ने तनिक भी हिचकिचाहट न करते हुए कुसुम का हाथ थामने का वचन दे दिया। उन्होंने बस इतना ही सूचित किया कि और डेढ़-एक साल बीत जाने दें। तब तक कुसुम चौधरी बाबू के पास ही रहे।

''विवाह योग्य बिना ब्याही कन्या पराए घर रखना भई हमें तो अच्छा नहीं लगेगा। दस जनें दस बातें बनाएँगे। मुँह पर थूकेंगे, हमारी जगहँसाई होगी। अतः कुसुम से ब्याह रचाना हो तो अभी तुरंत रचाया जाए—यही उचित है। इतना ही नहीं, आगे चातुर्मास है—कोई मुहूर्त नहीं है। अतः इसी मास इस मंगल कार्य को संपन्न करना उचित है—जन्मपत्री-जन्मकुंडली में मेल है।'' इस तरह का निर्णायक उत्तर गोपाल बाबू ने भेज दिया। उन्हें इस बात का भय था कि विलंब करने से, इस बीच चौधरी महाशय के लिए कोई अन्य रिश्ता आ जाए जो काफी दान-दहेज देने के लिए तैयार हो तो फिर महाशय का मन भी तो पलटी खा सकता है। बढ़ी हुई उमर की ऐसी कई दुलहनें घर-घर में पड़ी होंगी, जो कुसुम के मुँह का कौर छीनने की घात में बैठी हों। इस आशंकावश बेटी के हित की सदिच्छा हेतु गोपाल बाबू विवाह के लिए उतावली दिखा रहे थे। उनकी यह योजना अपने क्षेत्र के पंडित-पुरोहित जनों ने शास्त्रोक्त तथा शिष्टाचारसम्मत निश्चित की थी। कुछ महिलाएँ 'छीः-छीः' के साथ नाक-भौं सिकोड़ रही थीं तो कुछ निंदक बदमाश सीटियाँ बजा रहे थे। परंतु जन्मकुंडली की कोई बाधा नहीं थी।

चौधरी महाशय के क्षेत्र स्थित पंडित-पुरोहितों तथा सगे-संबंधियों ने भी इस योजना के विषय में यही अभिप्राय दिया कि यह योजना शास्त्रोक्त तथा शिष्टाचारसम्मत है। इस प्रकार आ पड़े कार्य को इसी तरह कई बार निबाहना अनिवार्य होता है। बहन के स्थान पर कई बार जीजा के हाथ में साली का हाथ दिया जाता है। चौधरी महाशय को भी यह योजना पसंद आ गई। रिश्ता पक्का हो गया, मुहूर्त निश्चित किया गया। पंडित-पुरोहित, सगे-संबंधी बिना किसी संकोच से मिल गए। सभी रस्में यथाशास्त्र संपन्न हुईं और कुसुम का—जिसकी आयु ग्यारह वर्ष की भी नहीं थी—विवाह अपनी बड़ी बहन के विधुर एवं अधेड़ उम्र के पति के साथ यथाशास्त्र संपन्न हो गया। चौधरी बाबू ने नई गृहस्थी बसाई।

हर एक का मन से यही कहना था—लड़की का भला हो गया। हाँ, यह सत्य है कि उसमें किसीको उसका अहित करने की इच्छा नहीं थी। भला इसपर किसका वश हो सकता है कि एक पत्नी को सारे मानवी उपायों को पराजित करके मृत्यु असमय ही घसीटकर ले गई? परंतु उस मृत पत्नी के कारण चौधरी बाबू जैसे

स्वस्थ, युवा पुरुष की सारी गृहस्थी भला कैसे मिटने दी जाए? भला यह कैसे कहा जा सकता है कि दुनिया का रिवाज देखकर एक दाँव तितर-बितर हो जाए तो दूसरा सुघड़ दाँव लगाना ही नहीं चाहिए—इस तरह यदि वे विचार करें तो यह युक्तिसंगत नहीं था? यह सभी का विचार हो गया। और कुसुम? उसकी अपनी कोई राय नहीं थी। सच पूछिए तो उसे यह सबकुछ अच्छा नहीं लगा। जो महिलाएँ ऊपरी तौर पर 'इसका भला हुआ' कहती नहीं थक रही थीं, वही पीठ पीछे उसकी हँसी उड़ा रही थीं। तब कभी वह खिसिया सी जाती। परंतु निश्चित रूप में वह समझ नहीं पा रही थी कि यह भला हुआ या बुरा। जो कुछ वह समझ चुकी थी, उसे व्यक्त करने के लिए कोई उससे न तो कहता, न ही कुछ पूछता।

इस कहानी का यह दूसरा समाजचित्र देखिए। ये तीस-पैंतीस वर्षीय विधुर चौधरी बाबू अपनी प्रथम पत्नी का देहांत होते ही एक साल के अंदर-अंदर उसीकी दस वर्षीया छोटी बहन के साथ फेरे रचाते हैं। ये शास्त्र-मर्यादाभिमानी पंडित गोपाल बाबू पचास वर्ष पार कर चुकने पर रचाई तीसरी शादी से दस वर्षीया कन्या का उसकी ही बड़ी बहन के पति को कन्यादान कर रहे हैं। और वह पंडित-पुरोहित से लगाव रखनेवाले स्वजनों, शिष्टादिकों का समाज उस ससुर-जमात के तीसरे विवाह की तरह ही उस दस वर्षीया अल्हड़ बालिका के विवाह को भी शास्त्रोक्त एवं शिष्टाचारसम्मत मानकर स्वयं यथायोग्य संपन्न करता है।

इसपर भी यह समाजचित्र बिलकुल ताजा—बस नौ-दस वर्ष पूर्व का है…।

□

विवाह के तुरंत पश्चात् कुसुम को चौधरी बाबू के पास पहुँचाया गया। उन्होंने यथासंभव नानाविध उपायों से जितना भी बन सके, उसे सुख देने की चेष्टा की। विवाह होने पर स्कूल जाने का तो प्रश्न ही नहीं था। लेकिन चौधरी महाशय ने कुसुम के मन में घर में ही विविध पत्रिकाएँ, उपन्यास, नाटक पढ़ने तथा सुनने की रुचि उत्पन्न की। कुसुम की बुद्धि तेज तथा कुशाग्र थी। धीरे-धीरे अपने ससुराल में उसका मन लगने लगा। उसके अपने ही स्वतंत्र बौद्धिक विचार पनपने लगे। उसमें यह विवेक आ गया कि वह क्या चाहती है, और क्या नहीं। उसके मन में यौवन सुलभ काम-भावनाएँ जगने लगीं, पनपने लगीं। घर-गृहस्थी की ही नहीं, सार्वजनिक बातों में भी उसकी रुचि बढ़ने लगी। सारांश, चौधरी बाबू के साथ विवाह होने पर उसका जीवन सुखी होने के आसार नजर आने लगे। गोपाल बाबू तथा गंगा अपनी बेटी का सुख देखकर जो कृतार्थता अनुभव करते, उसका तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता।

कुसुम का विवाह हुए साल-डेढ़ साल बीत चुके। गंगा ने देखा—आज

पंडित गोपाल बाबू बड़े उमगे-उमगे से नजर आ रहे हैं। भोर होते ही स्नान-ध्यान से निवृत्त होकर गाय-भैंसों को दूहकर दूध की हँडियाँ नौकरों को सौंपते हुए वे बता रहे थे—फलाने व्यक्ति को वंधान का दूध (रातिब का दूध जो नियमित रूप से दिया जाता है।) दे आओ, फलाने व्यक्ति से पैसे ले आओ जो उसपर बाकी हैं। नौकर के दूध बेचने जाते ही भिक्षुकी (पौरोहित्य कर्म) के लिए बाहर जाने से पहले वे एक श्लोक का पठन करने लगे। श्लोक पठन करते-करते ही गंगा के पास आते हुए वे पूछने लगे, ''क्यों जी, तुम्हारी लाड़ली की कोई गुप्त चिट्ठी-विट्ठी तो नहीं आई? उसमें जरूर कुछ खुशखबरी होगी, जो तुम मुझसे नहीं कहना चाहतीं? है न? तुम अपने आपसे ही इस तरह मुसकरा जो रही हो?''

''ये लो, अब इस तरह की खुशखबरी की कोई चिट्ठी आनेवाली हो तो उसमें अपनी कुसुम बिटिया की गोद भरने की खबर ही होगी। आजकल आने ही वाली है वह चिट्ठी। गाँठ में दो-चार पैसे रखिए हाँ, कह देती हूँ। अबकी बार बेटी का यह मंगल कार्य तो रईसी तामझाम के साथ होना चाहिए।'' गंगा का उमंग भरा उल्लास ठाठें मार रहा था।

इतने में आँगन से आवाज आई, ''तार! गोपाल उपाध्यायजी, आपका तार।''

वह भयंकर शब्द उन बेचारे पति-पत्नी के कानों से ऐसा टकराया, जैसे किसीने उनके पैरों पर जलता अंगारा गिरा दिया हो।

'तार!' गोपाल उपाध्यायजी के जीवन में यह तीसरा तार था। पिछला तार उनकी बड़ी बेटी की गंभीर बीमारी का था। यह तार उनके जमाई बाबू की—कुसुम के पति की—हालत गंभीर होने की खबर लेकर आया था।

गंगा को जैसे काठ मार गया। वह धम से नीचे बैठ गई। गोपाल उपाध्यायजी ने बड़ी कठिनाई से उसे उठाकर किराए की गाड़ी पर चढ़ाया और तुरंत कुसुम की ससुराल की राह ली। उधर पहुँचते ही घर से आ रहे रोने-धोने का शोर उन्होंने सुन लिया। कुसुम का पति हैजे से तुरत-फुरत मर गया था।

बारह वर्षीया कुसुम बाल-विधवा हो गई। यह तीसरा समाजचित्र देखिए। पाठकगण, ये समाज के चित्र नहीं—छाया चित्र हैं—यथावत्।

□

कुसुम बिलकुल ही मानवी शास्त्राधार के अनुसार बालविधवा हो गई। परंतु प्रकृति का शास्त्र मानवी शास्त्राधार की थोड़े ही सुनता है? प्रतिदिन उसके यौवन की बहार खिलने लगी—सनसनाती भोगेच्छा उसे परेशान करने लगी। परंतु पंडित गोपालजी ने ससुराल से पीहर तक की चारदीवारियों में उसे इस तरह ठूँस दिया कि वह अपने आँगन में भी कदम नहीं रख सकी। उसके सगे-संबंधियों के घर शादी-

ब्याह, गौरी-गणेश की पूजा होती, उसकी अम्मा जो यौवन की दहलीज पार कर चुकी है—इस प्रकार के समारोह, जुलूस, तीज-त्योहार, हलदी समारोह में भाग लेती, पर षोडशी कुसुम जो भरी उमंगों की आयु में थी, जिसका मूल स्वभाव बड़ा हँसमुख था—किसी घातक अपराधी की तरह घर की चारदीवारियों में कैद रखी जाती। स्वयं गौरवर्णा होते हुए भी, बिना किसी अपराध के उसके मुखड़े पर कालिख पोती गई थी। समाज में उसे मनहूस की तरह, चोरों की तरह मुँह छिपाना पड़ रहा था। एक दिन तो एक औरत, जिसकी माँग सिर के मँझले हिस्से तक फट गई थी, उसके मुँह पर उसके घने लंबे बालों की ओर अँगुली उठाकर नाक-भौं सिकोड़ती हुई भारी ठसकेदार स्वर में भुनभुनाई थी—''कुसुम—अपने बालों के नाज-नखरे उठाते हुए तुझे शरम नहीं आती—निगोड़ी। लगता है गोपाल पंडित सठिया गया है—सारी शरम, लिहाज घोलकर पी गया है। अन्यथा एक विधवा के हाथ में भला उससे कहीं कंघी देखी जाती ?'' पर गोपाल पंडित ने आखिर तक बस इतनी ही दया दिखाई थी।

'घर-घर यही हाल है। शास्त्रात् रूढ़िर्बलीयसी। भई, यह कलजुग है, कलजुग।' कहते हुए उन्होंने बस कुसुम के बालों को ही नजरअंदाज किया था। किस शास्त्र के आधार पर ?—इसके आधार पर कि आजकल समाज में बहुत सारे लोग ऐसा ही आचरण करते हैं। बस इतनी सी बात के लिए भला ब्राह्मण को जाति-बहिष्कृत थोड़े ही किया जाता ?

परंतु उस युवती की, जिसके अंग-अंग पर यौवन की बहार खिल रही है—सारी भावनाएँ मात्र कंघी-चोटी की पेटी में ही तो नहीं समा सकती थीं ? कंघी-चोटी का उसका बक्सा—उसका सिंगारदान, यद्यपि किसीने छीनने का प्रयास नहीं किया था, तथापि उस बालविधवा के हृदय की पेटी अवश्य जब्त की गई थी, उसे मुहरबंद किया गया था। मन में ही गाड़ दिया गया था। उसकी संगी-साथी थीं—केवल पुस्तकें। वह भी अपनी माँ की दी हुई सहूलियत के कारण। चौधरी महाशय के घर—ससुराल में पत्रिकाएँ, कविताएँ, कहानियाँ पढ़ने की उसे रुचि हो गई थी—वह चाव बढ़ता गया था और अब वह बस पढ़ने में ही लगी रहती थी। संस्कृत श्लोक भी अनुवाद की सहायता से वह पढ़ने लगी। मराठी अनुवाद के आधार पर अर्थ समझते हुए पढ़ते-पढ़ते उसे 'मेघदूत' काव्य इतना भा गया कि उसपरस संस्कृत काव्य को उसने कंठस्थ कर लिया। उसे गाते-गाते आकाश-स्थित उस मेघ सदृश उसके नयनों में भी अँसुवन का एक मेघ प्रकट हो गया और किसी अनाम प्रीतम के वही संदेश उसे देने लगा।

एक दिन उसकी कोई दूर के रिश्ते की लड़की—जो उसीकी तरह बालविधवा

थी और पुणे में रहती थी—के पढ़-लिखकर बड़े होते ही पुनर्विवाह का वृत्तांत उसने किसी पत्रिका के ताजा अंक में पढ़ा। वह भागी-भागी अपनी माँ के पास गई और यह खबर दी। गोपाल पंडित ने उस लड़की को, जिसने पुनर्विवाह किया था, गिन-गिनकर इतनी गालियाँ दीं कि पूछिए मत।

'यदि मेरी बेटी इस तरह कुलच्छनी, कुलटा निकलेगी तो या तो मैं उसका गला घोट दूँगा या फिर अपनी जान दे दूँगा।' उनका यह संतप्त समारोप इतना लरज-गरजकर किया गया था कि कुसुम एक कोने में जाकर बाँस की तरह थरथराती हुई रोने लगी। पंडित गोपालजी ने उसके कमरे में पड़ी सारी पत्रिकाएँ उठाईं और उसे सख्त आदेश दिया कि आजकल का यह छिछोरापन फिर इस घर में कभी न दिखाई दे। बेचारी कुसुम की वे ही तो एकमात्र साथिन थीं जो अब नष्ट हो गईं। सुबह-शाम गाय-भैंसों को नहलाना, दोपहर के समय उनका चारा-पानी देखना—बस यही दिनचर्या अब बरसों से उसने अपनाई थी।

वह चिढ़कर अपने आपसे कहती—'इन गाय-भैंसों की तरह मैं भी तो गो-शाला की एक गाय ही हूँ।' आधुनिक पुस्तकों पर उसके लिए पाबंदी लगाई गई थी, परंतु उसकी माँ उसे पांडव प्रताप, रामविजय, हरिविजय पढ़ने के लिए दे देती। लेकिन उसमें भी क्या रुक्मिणी हरण, सुभद्रा हरण, रामलीला, कुंती और कर्ण, शांतनु और गंगा की कथा नहीं थी? उसकी अम्मा नित्य नियम के साथ ग्वालिनों के रसीले प्रेमगीत, ऊषा हरण का 'पुण्यपावन' गीत गाया करती थी। पत्रिका-पुस्तकों की कहानियों से भी इन पूजनीय देवी-देवताओं तथा राजर्षियों-ब्रह्मर्षियों के सेवन से पवित्रतर ही बनी काम-वासनाओं का उफान सा उसके अंत:करण में अधिक आवेग से उमड़ने लगा। अपनी समवयस्का एक-दो सखियों को जब अपनी पहली संतान का नन्हा-सा हाथ हाथों में झुलाती, उसे स्तनपान करवाती हुई वह देखती तब उसका मन करता, वह भी झट से उठकर उस सुंदर-सलोने बच्चे को अपने सीने से लगाकर स्तनपान कराए। लेकिन उसमें रत्ती भर भी साहस नहीं था कि इनमें से किसी भी भावना का उच्चारण करे, उन्हें प्रकट करे, बल्कि इन भावनाओं को छिपाने के लिए वह ऊपरी तौर पर उनसे तीव्र घृणा का प्रदर्शन करती।

रमणी का जीवन ही रति और वत्सलता का संगम है। ये दोनों जीवन प्रवृत्तियाँ ही उसके लिए वर्जित थीं, उसके जीवन से निकल गई थीं। अपना जीवन उसे बड़ा बोझ लगता और माता-पिता की धाक के कारण, वे यह न समझें कि उनकी बेटी बहक गई है—इसलिए ऊपरी तौर पर अपने जीवन को सुसह्य दिखाने पर वह विवश थी। इसी वजह से उसका स्वभाव लुका-छिपी के खेल में कुशल

होने लगा। दस महिलाएँ जमा होते ही—गाँव की अथवा दुनिया भर की स्त्री-पुरुष संबंधित भली-बुरी बातों का व्यर्थ पचड़ा लेकर बैठ जातीं। इस तरह की बातें शुरू होते ही 'छी: भई, मुझे नहीं अच्छी लगतीं इस तरह की छिछली, ओछी बातें।' इस तरह भुनभुनाती हुई वह वहाँ से उठकर चली जाती, लेकिन किसी ओट में छिपकर चुपके से उनकी सारी बातों में रस लेते हुए बड़े चाव से सुनती। ऐसी अवस्था में स्थित कई युवा कुँआरी लड़कियों तथा बालविधवाओं का स्वभाव इतना मिथ्याचारी बन जाता है कि यद्यपि वे इस प्रकार के विषयों के प्रति तीव्र घृणा व्यक्त करती हैं, तथापि यह बात निश्चित रूप में गाँठ में बाँध लेनी चाहिए कि उन्हें ऐसी बातों में काफी रुचि है। उनका ठसके के साथ किया हुआ यह विधान कि 'भई, हमें नहीं अच्छी लगतीं ऐसी वाहियात, छिछली बातें,' इसी अर्थ में आयोजित किया जाता है कि 'यह सब मुझे बड़ा अच्छा लगता है।'

वह बेचारी बालविधवा, मन-ही-मन कुढ़ते-कुढ़ते अपना अठारहवाँ साल पार कर रही थी। जिस कारण पंडित गोपालजी ने तीसरा ब्याह रचाया, जिस कारण अपने विधुर दामाद की गृहस्थी फिर से बसाना उचित समझकर बड़ी बेटी की मृत्यु के एक ही वर्ष के अंदर-बाहर अपनी दूसरी दस वर्षीया कन्या का हाथ चौधरी महाशय के हाथ में देना उन्हें मानवतापूर्ण, शिष्टाचार तथा शास्त्रसम्मत प्रतीत हुआ, उनमें से किसी भी कारण से इस लड़की का, जिसका बदन यौवन से गदराया हुआ था और अब असंतुष्टिवश जो घुल-घुलकर काँटा बन गया था, जो सिर्फ बारहवें वर्ष में बालविधवा बन गई थी—पुनर्विवाह करना अथवा उसका ड्योढ़ी के बाहर कदम रखना भी मानवतापूर्ण प्रतीत नहीं हुआ।

हाँ, आखिर कुसुम को खंगर लग गया था। वह सूखकर काँटा हो गई थी। अतृप्त वासनाओं की मानसिक वेदनाएँ सहना उसके लिए कठिन हो गया था। उसकी वजह से उसकी दुर्बलता बढ़ते-बढ़ते उसे हलका-हलका ज्वर रहने लगा। उसने खटिया पकड़ ली। माँ छटपटा रही थी। पर वह भला दवा-दारू कहाँ से करती? धन का सहारा नहीं, और उतनी चिंता भी नहीं। अत: डॉक्टर को बुलाने का प्रयास गोपाल पंडित क्यों करें? गंगा को इस बात का अंदेशा था। लेकिन फिर भी उस देवी ने चतुराई से काम लिया और कुसुम को उसके एक मौसेरे भाई, जो अच्छा डॉक्टर था, कुछ दिन के लिए अपने घर बुलाकर कुसुम की नि:शुल्क जाँच कराने की योजना बनाई और बड़ी मुश्किल से इसके लिए अपने पति की अनुज्ञा प्राप्त की।

चिट्ठी मिलते ही कुसुम के मौसेरे भाई डॉक्टर गोविंद आ गए। कुसुम के स्वास्थ्य की जाँच करते ही वे जान गए कि यह मानसिक बीमारी है। गोपाल

पंडित के पीछे गंगा गोविंद के साथ कुसुम को खुली बातचीत करने की, उसके साथ उठने-बैठने की छूट देती रहती थी। दो-चार दिनों में ही गोविंद ने उसके मन की गाँठ युक्ति-प्रयुक्ति के साथ हँसाते-खिलाते खुलवाई। इस तरह हँसने-खेलने का उसके स्वास्थ्य पर तुरंत इतना असर दिखाई देने लगा कि वह कोई अलग ही कुसुम प्रतीत होने लगी। डॉ. गोविंद भी उसका पढ़ना-लिखना, उसकी बहुश्रुतता तथा बुद्धि की सराहना करते। उन्होंने उसे उसकी मानसिक व्यथा की जड़ साफ-साफ समझाई। उसके सामने उन बालविधवाओं के कई उदाहरण रखे, जिन्होंने निर्भयतापूर्वक स्वतंत्र होकर अपनी शिक्षा अथवा पुनर्विवाह रचाकर सुखमय गृहस्थी बसाई थी। अंत में उन्होंने उसे आश्वासन दिया—"चाहो तो मैं तुम्हारी पढ़ाई का भार उठाऊँगा। तुम्हारी इच्छा हो तो कहीं भी अच्छा घर-वर देखकर तुम्हारा पुनर्विवाह किया जाएगा। तुम्हारी जैसी सुबुद्ध, सुशील, सुमेधा, सुंदर तथा स्वस्थ युवती की कोख देवदूत जैसे दो-तीन बालकों को जन्म देकर राष्ट्र को भी कृतार्थ करेगी। व्यर्थ घुल-घुलकर क्यों मरी जा रही हो? क्या तुम्हारे पिताजी से इस विषय पर साफ-साफ बात करूँ?"

"ना बाबा ना!" हाथ जोड़ती हुई कुसुम गिड़गिड़ाई, "वे या तो मेरा गला घोट देंगे या अपनी जान दे देंगे।"

"बिलकुल नहीं। वे ऐसा कुछ भी नहीं करेंगे। मैं उन्हें समझाऊँगा। यदि वे सीधी तरह अनुज्ञा न भी दें तो स्वतंत्र रूप से शिक्षा प्राप्त करने में कोई फच्चर नहीं अड़ाएँगे। हाँ, तुम इसे पाप या कुछ और तो नहीं समझ रही हो?"

"बिलकुल नहीं। पर उन्हें कुछ भी नहीं बताना। चाहो तो मैं तुम्हारे साथ चुपचाप भाग चलूँगी। ले चलोगे मुझे? एक बार मुझे इस नरक से छुटकारा दिला दो। मेरा जीवन बिलकुल नीरस हो गया है। उन मुई गाय-भैंसों में और मुझमें रत्ती भर भी अंतर नहीं है। पिछले छह वर्षों से मैंने इस आँगन से बाहर कदम नहीं रखा। और एक बात कहूँ? किसीसे प्रगाढ़ आलिंगन के लिए मेरा जी मचल रहा है। कोई मुझे अपनी बाँहों में भर ले…और…! गोविंद, क्या तुम वाकई कल यहाँ से चले जाओगे? मुझे छोड़कर मत जाना।" दिल दहलानेवाले आर्त करुण शब्दों में बात करते-करते उसने गोविंद को कसकर अपनी बाँहों में भर लिया। सब्र का सारा बाँध टूट गया और मदहोश होकर उसे चूम लिया तथा उसके साथ अपनी खाट पर इस तरह गिर गई जैसे किसी सैलाब में लतामंडप ढह जाए, भहरा जाए।

इतने में पीछे से दरवाजा चरमराया। उसने सोचा, माँ पीछे खड़ी है—और उसके दिल ने उछलते गेंद की तरह भयंकर पलटी खाई। गोविंद को परे ढकेला और इस विचार से कि यदि माँ ने यह दृश्य देखा हो तो अपने आप पर रत्ती भर भी दोष,

कलंक न लगे, वह तपाक से माँ के पास चली गई और तमतमाकर रोते, सिसकते हुए शिकायत करने लगी—''अम्मा, यह गोविंद बड़ा कमीना है। मेरे पीठ फेरते ही इसने पीछे से अचानक मुझे अपनी बाँहों में जकड़ लिया—हाय, ये पुरुष भी कितने दुष्ट होते हैं!''

मुँह छिपाती हुई वह बिलख-बिलखकर रोने लगी। उसकी माँ को यह बात बिलकुल असंभव लगी कि बेटी सफेद झूठ का सहारा ले रही है।

''गोविंद से कह दो अम्मा—यह घर से निकल जाए। मैं इसका थोबड़ा तक नहीं देखूँगी। कहना, इस कलमुँहे से कि बाबूजी के आने से पहले यहाँ से हवा हो जाए।''

कुसुम कुटिल कपट की चरम सीमा तक पहुँच गई और कितनी सहजतापूर्वक उसे उसमें सफलता मिली।

अपने ऊपर जो संपूर्ण असत्य तथा कलंकित लांछन लगाया जा रहा था, गोविंद ने उसे साफ-साफ सुन लिया। उसने मन-ही-मन कहा—'हाय! इसी कायर मिथ्याचारवश अबलाओं को दुनिया में पाँव तले कुचला जाता है। उस साहसी पुरुष को, जो अबलाओं के पाँवों की बेड़ियाँ तोड़ने के लिए आगे बढ़ता है—अगर पहली गाली कोई देता है तो शायद वही अबलाएँ। नारी की स्वतंत्रता का असली शत्रु कम-से-कम आज तो स्वयं नारी ही है। हाँ, यह भी सत्य है कि स्त्रियों का यह भीरु मिथ्याचार भी पुरुष-प्रधान समाज के दहशतवाद की ही परछाईं है। भला कुसुम का क्या दोष? अब यदि मैं अभी इसी समय जाकर सत्य उगलकर भंडा फोड़ दूँ तो बेचारी कुसुम का सर्वनाश अटल है। मुझपर उसने जान-बूझकर तोहमत लगाई है, क्योंकि मैं यह बोझ उठा सकता हूँ। ठीक है, उसकी माँ की दृष्टि में मैं ही दुष्ट-दुराचारी सिद्ध होकर उसकी नजरों से भले गिर जाऊँ, पर इस अनाथ किशोरी के दुःख-भोग में और वृद्धि नहीं करनी चाहिए—यही मेरा कर्तव्य है।'

वह विशालहृदयी डॉक्टर इस प्रकार निस्स्वार्थ विचार कर ही रहा था कि इतने में गंगा—उसकी मौसी—उसके पास आ गई।

''गोविंद, चलो जो हुआ सो हुआ। अपनी बेटी की खातिर मैं तेरे दुराचारी व्यवहार का भी ढिंढोरा नहीं पीटूँगी। लेकिन यही उचित है कि तुम अब यहाँ एक पल के लिए भी मत रुको।''

कुसुम ने देखा, गोविंद पानी की बूँद भी न लेते हुए, सचमुच ही इस घर के अगले दरवाजे से बाहर जा रहा है। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि उसकी देह से जान निकल रही है। तभी वेदना की एक तीव्र हूक—कसक उसके हृदय से उठी—

''गोविंद! सुनो तो, मुझे छोड़कर मत जाओ। अरे निर्मोही, मुझे भी साथ ले चलो न! गोविंद—अरे ओ गोविंद!'' इस तरह चीखती-चिल्लाती वह भागने लगी और उन्माद भरे आवेश के झटके से अगले दरवाजे की दहलीज के पास ठोकर खाकर वह उन्मादिनी धड़ाम से गिर पड़ी।

इस कहानी का यह अंतिम समाजचित्र बिलकुल तरोताजा—पिछले ही वर्ष का है।

—१९३६

□

गोविंदा ग्वाला

गोविंदा ग्वाला पहले बंबई में किसी मिल में काम करता था। आगे चलकर ढलती उमर में उसके लिए काम करना असंभव हो गया, शक्ति घटने लगी और ऋण बढ़ने लगा। तब महाशय एक दिन सपरिवार चुपके से गायब हो गए और कोंकण में सागर तट—अपनी जन्मभूमि पर झुग्गीनुमा अपने टूटे-फूटे घर में रहने लगे।

बंबई से अपने उस झुग्गीनुमा घर में आते समय बंबई से वह जो एकमात्र पूँजी अपने साथ ले आया था—वह थी लॉटरी की लत।

उसने कई बार लॉटरी के टिकट खरीदे थे। लेकिन सफलता आज तक कभी उसके आसपास भी नहीं फटकी थी। तथापि लॉटरी का जो परिणाम घोषित किया जाता, उसमें यह बात ही छप जाती कि फलाने को पाँच हजार रुपए मिल गए। उस अलाने-फलाने का गोविंदा को कुछ अता-पता तो नहीं होता; फिर भी कभी सपने में भी उसके मन में यह संदेह नहीं उभरा कि जो छपता है, वह असत्य भी हो सकता है। पुराने, रूढ़िवादी शास्त्र-पुरोहितों की अमुक बात सोलह आने सत्य सिद्ध करने का अमोघ प्रमाण यही होता है कि 'यह बात पोथियों में लिखी गई है।' उसी तरह देहाती लोगों के लिए किसी भी बात की सत्यता का प्रमाण निस्संदेह यह होता है कि 'यह बात छपाई में प्रकाशित हो चुकी है।' अत: 'फलाने को पाँच हजार रुपए मिल गए' जैसी खबर 'छपाई' में पढ़ी हुई सुनकर गोविंदा अपनी कोठरी में पड़े-पड़े उस 'फलाने' के चेहरे की कल्पना करता। पाँच हजार रुपयों की इतनी बड़ी रकम अचानक उस अलाने-फलाने के हाथ लगते ही उसका थोबड़ा किस तरह शराब के नशे जैसा तर्रर हुआ होगा। मिल के सेठ की तरह गाड़ी-घोड़ा दौड़ाते हुए पूरी बंबई में घूमता होगा, किस तरह नाटक-सिनेमा-तमाशा देखने में मगन होगा। तुरंत वह निश्चित करता—'विद्वानों ने सच कहा है—चल गोंदू बेटा, फिर एक बार कोशिश करके देख।' तुरंत वह फिर एक बार किसी लॉटरी का रुपया-अठन्नी का टिकट

खरीदता। अचानक अपने हाथ पाँच हजार की रकम पड़ने की तथा छपाई के अक्षरों में 'गोविंदा ग्वाला' जैसा अपना नाम जगमगाता हुआ देखने की प्रतीक्षा में आशा के नशे का आनंद उठाने लगता।

बंबई से लौटकर कोंकण-स्थित अपने गाँव में भी उसने भूखे-प्यासे रहकर बचाए हुए रुपए-अठन्नी में दो-तीन बार लॉटरी के टिकट खरीदे थे। यदि उसे किसीने टोका कि 'भई, तुम्हें खुद तो रोटी के लाले पड़ रहे हैं। तब कुछ-न-कुछ काम-धंधा करना चाहिए या पेट पतला होने पर भी पेट पर पट्टी बाँधकर लॉटरी में रुपया उड़ाना चाहिए?' तो मन-ही-मन कहता—'भई, कुछ व्यवसाय करूँ तो उसके लिए आवश्यक पूँजी कहाँ से लाऊँ? यह एक भैंस खरीदी तो ससुरी पचीस-पचास रुपए डकार चुकी है। इसका दूध बेचकर जैसे-तैसे पाँच-दस रुपए गाँठ में बाँध सकता हूँ—यह तो संभव है, पर भैया, उसके बल-बूते जिंदगी भर में भी पाँच हजार की रकम अंटी में लगा सकूँगा क्या? जिनके पास लाखों रुपए हैं उन धन्नासेठों को तो लॉटरी में पाँच-दस रुपए फेंकने ही चाहिए, क्योंकि उनके लिए तो वे रुपए डूब भी गए तो उनकी अधिक हानि नहीं होगी। परंतु उन दरिद्रनारायणों को भी—जिनके पास व्यवसाय के लिए नकदनारायण का अभाव है—लॉटरी के व्यवसाय में एकाध रुपए की पूँजी अवश्य लगानी चाहिए—इसीमें बुद्धिमानी है; क्योंकि इस दुनिया में ऐसा कोई व्यवसाय नहीं जिसमें टका भर पूँजी लगाने पर आज नहीं तो कल एक साथ पाँच-दस हजार रुपए अचानक प्राप्त होते हैं—और अगर है तो लॉटरी का ही व्यवसाय है। आज के बनिये को रातोरात यही लॉटरी कल का धन्नासेठ बना देती है। क्या अमुक व्यक्ति को इस तरह की रकम नहीं मिली थी? फलाने को तो मिली ही थी। क्या कभी झूठी खबरें थोड़े छापी जाती हैं? उसके लिए, जिसके पास ज्यादा-से-ज्यादा टके भर की ही पूँजी हो सकती है, बस एक ही व्यवसाय लाभकारी है—और वह है लॉटरी।'

इस तरह के विवेचन के साथ वह पुन: लॉटरी का टिकट खरीदता। ऐसा कई बार हुआ। परंतु किसी भी प्रकार मनुष्य द्वारा खरीदे हुए लॉटरी टिकट पर पुरस्कार नहीं मिला। अत: जो व्यक्ति लॉटरी का टिकट खरीदता है, उसे निश्‍चित रूप में सफलता मिलने की इच्छा से अबकी बार उसने प्राचीन काल से प्रचलित दैवी लॉटरी अर्थात् भगवान् के नाम से दूसरा टिकट भी खरीदा। उसने मन्नत माँगी—यदि अबकी बार इस मानवी लॉटरी के टिकट में उसके नाम का क्रमांक आया और उसे कुछ पुरस्कार मिला तो हे बाप्पा मोरया (गणेशजी), तुम्हारे नाम से इक्कीस ब्राह्मणों को भोजन करवाऊँगा, 'मोदक' (एक मराठी पकवान) खिलाऊँगा, 'संकट चौथ' का व्रत भी करूँगा। क्या मन्नत भी एक तरह से दैवी लॉटरी नहीं जो एक देवता के

नाम पर चढ़ाई जाती है? मानवी लॉटरी में मनुष्य सैकड़ों बार धोखा खाता है। पर कभी-न-कभी भाग्यचक्र से दस हजारों में किसी एक को एकाध पुरस्कार मिल भी तो सकता है। मन्नत का भी यही हाल है। सैकड़ों बार मन्नत झुठलाई जाती है। जो मनुष्य बीमार होता है, उसके स्वस्थ होने के लिए शायद पाँच-दस मन्नतें मानी जाती हैं। परंतु लाखों की संख्या में लोग-बाग दम तोड़ते ही रहते हैं। उतनी ही संख्या में मन्नतें भी असत्य सिद्ध होती हैं न? आम जनता के मुरगे, भेड़, बकरी की बलि चढ़ाने की मन्नत ही नहीं अपितु बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं के प्राणांत रोग महादान की मन्नतें भी असत्य सिद्ध होती हैं। पहले माधवराव पेशवा राजयक्ष्मा जैसे असाध्य रोग से मरणासन्न थे। तब गोपिका देवी (उनकी माताश्री) ने अखिल महाराष्ट्र राज्य में स्थान-स्थान पर सहस्रों ब्राह्मणों को बैठाकर प्रत्येक मंदिर में अधिकारियों की कड़ी निगरानी में मृत्युंजय मंत्र का कोटि जाप करवाया। परंतु कोटि की संख्या पूरी होने की खबर पहुँची ही थी कि माधवराव पेशवा गुजर गए—होनी होकर ही रही—सारी मन्नतें व्यर्थ हो गईं। पानीपत के युद्ध में यदि विजय मिल गई तो पेशवा ने बड़े-बड़े देवी-देवताओं के पास लाखों रुपयों के धर्म-दान की मन्नत माँगी थी। परंतु वह सब किया-कराया मटियामेट हो गया और पानीपत में महाराष्ट्र की दो लाख चूड़ियाँ टूट गईं। परंतु उन मन्नतों को हम भूल जाते हैं और पुत्र प्राप्त्यर्थ जीजाबाई की माँगी हुई भवानी माता की मन्नत संयोगवश सफल हुई और दिग्विजयी शिवाजी महाराज का जन्म हुआ तो उस इक्की-दुक्की मन्नत पर कहानी रची जाती है। पोवाड़े गाए जाते हैं। जिस ज्योतिषी की लाखों भविष्यवाणियाँ असत्य सिद्ध हो गईं, उसीकी एकाध भविष्यवाणी यदि काकतालीय न्याय से सत्य सिद्ध हो गई तो विज्ञापन में वह बस उसी सफलता को प्रकाशित करके अपने आपको जाना-माना ज्योतिषी कहलाता है। उसी तरह मन्नत-मुरादों का महत्त्व भोले-भाले लोगों की विस्मृति पर ही उभारा जाता है। ऐसी लाखों मन्नतों को, जो असत्य सिद्ध हो गई हैं, विस्मृति के परदे के पीछे खदेड़कर सहज रूप में किसी एक के सत्य सिद्ध होते ही—जैसेकि अंधे के हाथ बटेर लगे—भोले-भाले लोगों का यही विश्वास होता है कि मन्नत माँगने के कारण ही इष्टसिद्धि हो गई। उसी सफल मन्नत का चारों ओर बोलबाला होता है और जिस-तिसकी जबान पर यही होता है—देखो, ईश्वर ने मन्नत पूरी की। हर कोई मन्नतों की दैवी लॉटरी का टिकट दर्शनी हुंडी की साख की तरह अमोघ मानकर बार-बार खरीदता है।

मानवी लॉटरी का थोड़ा-बहुत पेंदा होता है, परंतु मन्नत-मुरादों की यह दैवी लॉटरी तो चमचमाता हुआ बेपेंदे का लोटा ही होता है। मानवी लॉटरी के पूर्णतया धोखाधड़ी सिद्ध होने पर सरकार कभी-कभी जालसाजी के उन चालकों

को दंड देती हैं, परंतु देवताओं को भला कौन दंड देगा? उनके नाम पर चली हुई उन मन्नतों की दैवी लॉटरी के सारे-के-सारे टिकट यदि झूठ सिद्ध हो गए तो भी कोई नहीं पूछता। किसीकी सारी मन्नतें भी यदि असत्य सिद्ध हो जाएँ तो यदि कोई किसीको दोषी ठहराए तो उसे ही दोषी ठहराया जाता है, जिसने धोखा खाया है। हर कोई उससे यही कहेगा, 'तेरी भावना में ही खोट है, इसलिए ईश्वर प्रसन्न नहीं हुआ।' जिस प्रकार लाखों टिकट बेकार जाते हैं, फिर भी लॉटरी का व्यवसाय तेजी से बढ़ता रहता है, उसी प्रकार लाखों मन्नतों के झूठ सिद्ध होने के बावजूद लोग-बाग मन्नत-मनौतियाँ माँग ही रहे हैं।

गोविंद अहीर ने भी इन दोनों लॉटरियों के टिकट खरीदे। पहले लॉटरी का टिकट खरीदा और फिर अपने कुल देवता मोरया की मन्नत माँगी, ताकि लॉटरी के टिकट में सफलता मिले। न केवल लॉटरी के टिकट में सफलता प्राप्ति के लिए, बल्कि अपने परिवार के सारे संकट दूर करने के लिए भी उसने संकट-चौथ का व्रत रखा।

□

उसी गाँव में कासिम नामक एक मुसलमान था, जिससे गोविंदा ग्वाला की जान-पहचान थी। उसने भी लॉटरी की इस लत में कई रुपए पानी की तरह बहाए थे, पर एक धेला भी नहीं कमाया था। उसने भी गोविंदा के साथ उसी लॉटरी का एक टिकट खरीदा था। मोरया की मन्नत गोविंदा ने माँगी थी, उसी तरह कासिम ने यह सोचकर कि वह भी खुदा की सिफारिश लॉटरी के लिए प्राप्त कर सके, अपने गाँव के एक फकीर के पास जाकर पीर की मन्नत माँगी। ऐसी बात नहीं कि मन्नतों की लॉटरियाँ मात्र हिंदुओं की ही बपौती हैं। हिंदू एक गुना धर्म के नाम पागल तो मुसलमान सात गुना धर्म के नाम पागल। इतना ही नहीं, इसके अलावा वे आमतौर पर धर्मांध, कट्टर तथा धर्मोन्मत्त भी होते हैं। यदि भगवान् प्रसन्न नहीं हुए तो झल्लाते हुए हिंदू ज्यादा-से-ज्यादा भगवान् के सामने अपना ही सिर फोड़ लेंगे, पर मुसलमानों में खुदा को प्रसन्न करने के लिए दूसरे का सिर फोड़ने की मन्नत करनेवाले अलाउद्दीन खिलजी अथवा 'माइ ब्रेव मोपला ब्रदर्स' जैसे लोगों की कोई कमी नहीं है।

यही क्यों? राहजन, लुटेरे, ठग लोगों के भी देवी-देवता होते हैं। और 'शादी-ब्याह की लूटपाट करने में यदि हम सफल हो गए तो किसी दूल्हा-दुलहन का खून तुम्हें अर्पित करेंगे अथवा कम-से-कम एक नरबलि तुम्हें चढ़ाएँगे,' इस तरह की मन्नत माँगते हैं और इन मन्नतों से कभी-कभी भगवान् अथवा खुदा प्रसन्न भी होता है।

वास्तव में जिस मात्रा में उनकी फुरती, क्रूरता, अस्त्र-शस्त्र कारगर होते हैं, उसी मात्रा में डकैती में सफलता मिलती है। ईश्वर अथवा अल्लाह स्वयं कभी किसी डाके में, लूटपाट में भाग नहीं लेते अथवा जो डाकू मन्नत माँगकर सोता है उस भक्त के सामने भगवान् या खुदा स्वयं डाका डालकर राहजनी, लूटपाट की धनराशि कभी नहीं डालते। परंतु डाकु, लुटेरे जो सफल होते हैं वह अपने ही प्रत्यक्ष प्रयासों के कारण, जबकि वे सोचते हैं कि मन्नतों के कारण सफलता उनके कदम चूमती है।

लॉटरी के परिणाम की तारीख निकल चुकी थी। गोविंदा ग्वाला और कासिम दोनों सवेरे से बेसब्री से डाकिए की राह पर आँखें बिछाने लगे। उसे देखते ही वे धड़कते दिल से पूछते, 'भई, हमारी कोई चिट्ठी है?' डाकिए के तटस्थ उपेक्षा से सिर हिलाकर आगे कदम बढ़ाते ही वे उसकी ओर आँखें तरेरते। गोविंदा तुरंत मन-ही-मन बड़बड़ाने लगता, 'किस्मत ही अपराधी है। भई वह डाकिया स्वयं थोड़े ही मुझे चिट्ठी लिखकर भेजनेवाला है?' और फिर चुप रहता। परंतु कासिम तीसरे दिन से अपनी घोर निराशा का गुस्सा उस बेचारे डाकिए पर उतारने पर तुल गया—'साला, कितना मगरूर है यह डाकिया! ठीक तरह से कभी देखता भी नहीं, हाथ में चिट्ठी है या नहीं। इस काफिर को ही लाठी से नरम करना होगा, तब कहीं यह डाकू डाकिया सभी के खत समय पर पहुँचाएगा।'

तीन-चार दिन और बीत गए, गणेश-चौथ आ गई। उस दिन गोविंदा अपनी भैंस छोड़-छाड़कर बाहर निकल ही रहा था कि डाकिया सीधे उसके द्वार पर आता हुआ दिखाई दिया।

"गोविंदा, तेरा मनीऑर्डर आया है।" डाकिया ने कहा।

"क्या आया है? मनीऑर्डर, और मेरा?"

"जी हाँ, सौ रुपयों का।"

पूरे जीवन में पहली बार गोविंदा के नाम पर मनीऑर्डर आया था—और वह भी पूरे सौ रुपयों का! इतनी अच्छी खबर कि विश्वास ही न हो। गोविंदा का दिल धक-धक करने लगा। जैसे-जैसे डाकिया बताता जा रहा था कि हस्ताक्षर आदि कहाँ पर करना है, वैसे-वैसे कठपुतली की तरह वह करता गया। सौ रुपए हाथ में आने पर भी उसे इस बात का आकलन नहीं हो रहा था कि निश्चित रूप में क्या हुआ है। उसने साथ जोड़ा हुआ पत्र भी पढ़ लिया। यह बात सोलह आने सच थी कि लॉटरी में उसका कहीं नंबर लग जाने से उसे सौ रुपए मिले थे।

सौ रुपए! यह राशि! बिलकुल नकद—उसके हाथ में! बाप रे बाप! जी तोड़कर कोल्हू के बैल की तरह खटकर भी जिसके घर में पूरे जीवन में कमाई की

इतनी मोटी रकम कभी दिखाई नहीं दी, उसे आज अचानक बिना किसी परिश्रम के सौ रुपए नकद मिल गए। वाकई लॉटरी जैसा व्यवसाय नहीं, मोरया जैसा कोई देवता नहीं, मन्नतों जैसी लॉटरी नहीं।

उसी दिन गणेश-चौथ थी। अत: उसे पक्का विश्वास हो गया कि मोरया से जो मन्नत माँगी थी, उसीका यह फल है। उसकी पत्नी तो फूली नहीं समाती थी। उसने खुशी से झूमकर कहा, ''जिस तरह तुम्हारी मन्नत लॉटरी के रूप में सत्य सिद्ध हो गई, उसी प्रकार संकट चौथ की प्रतीति से तुम्हारी बीमारी, बेरोजगारी, पीड़ा, सारे संकट निश्चित रूप में टल जाएँगे—यह पत्थर की लकीर समझो जी! बाप्पा मोरया ने हमें खुशहाली के दिन दिखाए।''

इस वर्ष गोविंदा अहीर ने गणेशोत्सव भी बड़ी धूमधाम के साथ मनाया। पूरे गाँव में उसे लॉटरी की रकम मिलने और यह सफलता गणेश से माँगी हुई मन्नत का ही परिणाम होने की सरस अद्‌भुत कथा जिस-तिसकी जबान पर नाचने लगी।

कासिम को लॉटरी में फूटी कौड़ी भी नहीं मिली। हर कोई यह आलोचना करने लगा कि पीर से माँगी हुई उसकी मन्नत बेकार गई। इससे कासिम और वह फकीर जिसने पीर के नाम लॉटरी निकाली थी—दोनों आग-भभूका हो गए। यह सत्य सीखने की बजाय कि इस प्रकार की मन्नतें-मुरादें इस दुनिया की सफलता-असफलता के संदर्भ में व्यर्थ होती हैं, कासिम और वह फकीर गोविंदा तथा उसके मोरया को जी भरकर कोसने लगे।

''देख लेंगे तेरे को भी!'' कहते हुए मुट्‌ठी कसते हुए उसने गोविंदा को धमकाया। गोविंदा ने भी कच्ची गोलियाँ थोड़े ही खेली थीं! ''अबे जा-जा! कूकर भौंके लाख-हजार, हाथी घूमै हाट-बाजार। जा, जा!'' कहते हुए उसने कासिम को ठेंगा दिखाया।

आज पूरे गाँव में गणेश-विसर्जन की धूमधाम चल रही है। गाँव के सारे रास्ते 'मोरया ! मोरया!' की जय-जयकार से गूँज रहे हैं। उन सभी जय-निनादों में सबसे ऊँचा जयघोष था गोविंदा का। गणेश की अपनी छोटी सी मूर्ति अपने ही हाथों से ऊँची उठाकर 'मोरया! मोरया!' लरजता-गरजता वह स्वयं सबसे आगे, उसके पीछे-पीछे तालियाँ बजाते हुए उसके बच्चे। इस तरह अपनी ओर से बाजे-गाजे के साथ जुलूस निकालकर गणेशजी को वे सागर तट पर ले आए। मन-ही-मन श्रद्धापूर्वक गणेशजी के प्रति आभार प्रदर्शन किया—'हे प्रभु मोरया, गणेशजी, लॉटरी में मुझे यश दिया, मेरी माँगी हुई मन्नत पूरी की। संकट चौथ का व्रत भी सफल करके तुमने मेरे सारे संकट का अवश्य निवारण किया। गणपति बाप्पा मोरया, अगले वर्ष जल्दी वापस आना।' इस प्रकार बड़े गर्जन-तर्जन के साथ उस

छोटी सी मूर्ति को हाथ में लेकर वह सागर में कूद पड़ा। और भी पाँच-दस मँजे हुए तैराक अपनी-अपनी मूर्तियाँ उठाकर सबसे आगे तैरते हुए विसर्जनार्थ निकल पड़े। गोविंदा मँजा हुआ तैराक था, वह तो सबसे ही आगे निकल गया। साँझ ढलने लगी थी।

इतने में सागर की दो-तीन लहरें अचानक ऊँची-ऊँची, पर्वतप्राय उछलीं, और इतनी फुफकारती हुई टकराने लगीं कि तैरनेवाले लोग झट से उन लहरों पर मूर्तियाँ छोड़कर जैसे-तैसे किनारे पर लौट गए।

पर गोविंदा? वह क्यों पीछे रह गया? उसके बच्चे सिंधु-पुलिन पर प्रसाद बाँटते हुए फुदक रहे थे, उछल-कूद कर रहे थे। वापस लौटै हुए लोगों से वे पूछ रहे थे, ''चाचाजी, हमारे बापू किधर हैं?'' बातों-ही-बातों में हर कोई पूछने लगा, ''भई, गोविंदा कहाँ है?'' इतने में वह आदमी जो तैरनेवालों में सबसे आखिर में किनारे लगा था—जोर-जोर से चिल्लाने लगा, ''अरे डूब गया! गोविंदा डूब गया! लहरों के शिकंजे में आकर, लहरों की कैंची में दबकर वह डूब गया—आगे वह मुझे बिलकुल दिखाई नहीं दिया।'' पुलिस ने किश्तियाँ छोड़ीं। यहाँ-वहाँ हर तरफ एक ही शेरगुल, लेकिन कुछ पता नहीं चला। गोविंदा गणेश की मूर्ति को सबसे आगे विसर्जित करने की होड़ में सागर की तूफानी लहरियों में गुम हो गया। गणेशजी सीधे गोविंदा को निजधाम में, जो कैलाश में था, ले गए। गणेशजी के साथ यथासंभव आगे बढ़ते-बढ़ते गोविंदा सीधा कैलाश की ओर चला गया। हाँ, गोविंदा कैलाशवासी हो गया।

□

गोविंदा के जिस आँगन में तीसरे पहर उमगा-उमगा सा आनंदोल्लास का लरजता-गरजता, बाजे-गाजे के साथ जुलूस निकला, उसी आँगन में साँझ ढलते ही एक कोहराम मच गया। उसकी पत्नी दहाड़ें मार-मारकर रो रही थी। पास-पड़ोस की महिलाएँ उसे और उसके बच्चों को समझा-बुझाकर ढाढस बँधा रही थीं। सभी का स्वर मिलकर एक शोर हो गया। जो मन्नत माँगी थी उसे पूरी करके विघ्नहर्ता के रूप में जिस मोरया को बाजे-गाजे के साथ घर लाया गया, उसे ही तड़क-भड़क से वापस ले जाते समय इस तरह महाविपदा का सामना करना पड़ा। हाय! हाय! हे प्रभु, तुमने मुझसे इस तरह क्यों घात किया? इस तरह प्रश्न पूछती हुई बेचारी गोविंदा की पत्नी बिलख-बिलखकर रो रही थी। उसका पुरोहित पंडित पांडुरंग उधर आकर उसे यथासंभव ढाढस बँधाने लगा तो वह और भी अधिक छटपटाती हुई गला फाड़-फाड़कर रोने लगी, ''पंडितजी, पंडितजी, मेरे गोविंदा ने कैसे कातर भाव से अभी-अभी भगवान् से प्रार्थना की थी, गणपति बाप्पा मोरया! गणपति

बाप्पा प्रणाम! अगले वर्ष जल्दी आना। पंडितजी, अब अगले वर्ष गणेशजी तो अवश्य पधारेंगे, पर मेरा गोविंदा अब पुनः! हाय रे भगवान्! हाय हाय!''

पंडित पांडुरंग की आँखे छलछला उठीं। उन्होंने अपने उत्तरीय से आँखें पोंछ डालीं। इतने में—''क्यों पंडित पांडुरंगजी, अब आँसू क्यों बहा रहे हो, भाई? अब अपने मोरया के नाम से रो पड़ो। भाग्य के नाम से क्यों आँसू टपकाते हो?'' उस कुटिया के आँगन की हरी-हरी दूब पर मगरूरी के साथ अपनी गरदन का फन उभारकर कासिम खड़ा था। जैसे अभी-अभी डसने को तैयार फन फैलाए नाग।

''तुम्हारा मोरया मनमाँगी मुराद पूरी करता है न? इस गोंधा के तमाम विघ्नों का वह हरण करनेवाला था न? लॉटरी का टिकट तो दे दिया, पर प्राण हरण करके चलता बना। ये तुम्हारे मिट्टी के देवता देखो तो सही। अब फेंक दो उस मिट्टी को और भजो हमारे पीर को। हमारे खुदा से जो मन्नत माँगते हैं, उसके कम-से-कम प्राण तो हरण नहीं किए जाते। गोंधा तो चल बसा जो मोरया को भजता था, पर मैं—यह कासिम तो अब ज़िंदा है जो मोरया को पत्थर कहा करता है। सच्चा है मेरा पीर और···अब्ब··· ! काटा! या अल्लाह! तौबा! तौबा!''

वाक्य अधूरा छोड़कर कासिम ने इस तरह जोर-जारे से चीखते हुए अपने पैर को फट-फट झटका दिया। एक भयंकर नाग सट से नीचे गिर पड़ा, जिसने उसकी टाँगों से लिपटकर जोर से डंक मारा था। उस हरी-भरी दूब में से फुसफुसाते हुए वह सपासप खिसक गया और मंद-मंद चाँदनी की एक किरण से निकटवर्ती खेत के बिल में जाते हुए साफ-साफ दिखाई दिया। कासिम ने तड़प-तड़पकर वहीं दम तोड़ दिया।

□

ईमानदारी के साथ चली लॉटरी में कुछ टिकटों का सफल होना अटल ही है। गोंधा को इसलिए पुरस्कार मिला कि उसका टिकट उठाया गया। कासिम को इसलिए नहीं मिला कि उसका टिकट नहीं उठाया गया। इन दो घटनाओं को सुलझाने के लिए यह साफ कार्य-कारण भाव पर्याप्त है। इसके अलावा भला मन्नतों ने कौन सा तीर मारा? कौन सा कार्य-कारण संबंध उसके द्वारा खुल गया जो अधिक बुद्धिग्राह्य हो? एक की मन्नत-मनौती सफल हो गई तो दूसरे की विफल! और मन्नत-मनौतियों का ढकोसला जिस यूरोप में आज नष्टप्राय हो चुका है, उसमें सैकड़ों लॉटरियों में हजारों लोगों को बिना मन्नत माँगे पुरस्कार मिलते हैं।

गोविंदा को इसलिए जलसमाधि मिली कि भरे सागर में उसकी तैरने की शक्ति समाप्त हो चुकी थी। गुरुत्वाकर्षण का नियम मोरया पलट नहीं सका। कासिम ने इसलिए दम तोड़ दिया कि साँप की पूँछ पर उसका पाँव पड़ गया, साँप

ने काटा और उस जहर को उतारने की दवा उसे यथासमय नहीं मिली। शारीरिक नियमों को अल्लाह पलट नहीं सका। इन दो स्पष्ट प्राकृतिक नियमों से इन दोनों घटनाओं पर जो रोशनी डाली जाती है, उससे भला कौन सा अधिक सामंजस्यपूर्ण तथा अव्यभिचारी कार्य-कारण संबंध मन्नत-मनौतियों के पाखंडी ऊलजलूल कृत्यों द्वारा स्थापित किया जा सकता है?

'मोरया! मोरया!' के जाप के साथ गोविंदा ने मौत को गले लगाया। 'या अल्लाह! या खुदा!' की रट के साथ कासिम ने दम तोड़ दिया। चाहे भगवान् के कहिए या दानव के कहिए, किसीके भी पाखंडी नाम पर जो मनौतियों का व्यवसाय चलाया जाता है, वह भी सौ फीसदी अनवलंबनीय, खोखली बिन पेंदे की लॉटरी है। मात्र मन्नतों द्वारा न तो कार्य संपन्न होता है, न ही बिगड़ता है। 'पुत्र जो मिलता मन्नतों द्वारा तो फिर पति क्या करता बेचारा।' मन्नत माँगने से संतान प्राप्ति होती तो भला पति की क्या आवश्यकता?

उन कई मुसलमानों के जहाज पश्चिम सागर (अरब महासागर) में डूब जाते हैं, जो मन्नत माँगने के लिए मक्का जाते हैं। सैकड़ों वारकरी[१] हैजे का शिकार होकर चंद्रभागा नदी के पुलिन पर फटाफट मरते हैं, जो मन्नत माँगने के लिए पंढरपुर की तीर्थयात्रा करते हैं।

प्राकृतिक नियम जो घटना के कार्य-कारण भाव प्रस्थापित करते हैं—आज हमें ज्ञात नहीं—उसे कोई 'चमत्कार' कहते हैं तो कोई उसे ही कहते हैं 'मन्नतों से प्रभु प्रसन्न हो गए'—ये दोनों शब्द अज्ञान के प्रतिशब्द हैं, न कि ज्ञान के।

□

१. वारकरी—नियमित रूप से पंढरपुर यात्रा के लिए जानेवाले विट्ठल-भक्त।

पित्रेजी का दूसरा विवाह कैसे टूटा ?

'सत्य' घटना अर्थात् बिलकुल वैसी ही जैसी उन्होंने हमसे कही थी; पर फिर भी 'कहानी' इसलिए कहा कि इसमें अनिवार्यतावश नाम-गाँव में परिवर्तन किया गया है और घटना से घटना का मेल बैठाया गया है।

जिन्हें प्राचीन समाज-स्थिति की कुछ बातें त्याज्य प्रतीत होती हैं, वे लोग प्राचीन चरित्रों को लेकर एक मनगढ़ंत कल्पित कहानी रचते हैं, और उसमें इस बात को बखानने का प्रयास करते हैं कि उस कहानी का परिणाम कितना हानिकारक अथवा भोंडा हो गया। इसके विपरीत जिन्हें नूतन समाज-स्थिति में होनेवाला परिवर्तन भयावह प्रतीत होता है, वे भी सहजतापूर्वक ऐसे चरित्रों तथा परिणामों का कल्पित संयोजन करते हैं, जिनसे इन परिवर्तनों का बीभत्स अथवा अनिष्ट पहलू प्रभावशाली एवं आकर्षक ढंग से उकेरा जा सके। इस प्रकार कल्पना-रम्य उपन्यास-कथाओं का भी हर पहलू समाज-मन पर ठोस रूप में अंकित होने में पर्याप्त लाभ अवश्य होता है। परंतु इस कल्पित कहानी को उकेरकर, जो आधुनिक अथवा प्राचीन दुर्विपाक का प्रदर्शन करती है, आधुनिक अथवा प्राचीन के अभिमानी उस कल्पना-रम्य कहानी के फूले-फूले से पाल को जिस एक ही फटकार के साथ पकड़कर उसमें भरी सारी हवा निकालकर अचानक शिथिल कर देते हैं, वह फटकार इसी आक्षेप की होती है, 'अबे जा बे! आखिर कल्पना ही करनी है तो कुछ भी कर सकते हैं।' 'एक ही प्याला' नाटक में शराब पीकर पत्नी की पिटाई करनेवाला पति जिस तरह दिखाया गया, उसी तरह शराब पीकर बीवी को कंधे पर बैठाकर नाचता हुआ पति भी दिखाया जा सकता है। सिंधु समान शराबी पति की पतिव्रता पत्नी को जिस तरह आज स्त्रियों के समर्थकों ने उकेरा, ठीक इसके विपरीत उसी तरह सिंधु का चित्रण करना भी कठिन नहीं कि 'नारी स्वभावत: ही कुलटा होती है।' जो 'पुमां नित्येव भुंजते' जैसे पुरातन सूत्र के समर्थक हैं, वे ऐसी कुलटा नारी का चित्रण कर सकते हैं जो अपने यार के कहने पर शराब पीकर पति

का गला घोंटती है।

कल्पित से अधिक घटित का परिणाम हमेशा ही सौ गुना अधिक मजबूत, टिकाऊ; प्रभावी और अधिक विश्वसनीय होगा अर्थात् समाज-स्थित किसी भी रूढ़ि का सुपरिणाम अथवा दुष्परिणाम अखंडनीय परिणामों के सहारे समाज के मन पर अंकित करने के लिए सत्यकथाओं का उपयोग भी उतनी ही मात्रा में अधिक होगा। विपक्षी दल उनके तात्पर्यों की यूँ ही आसानी से हेठी नहीं कर सकता। उदाहरण के तौर पर विवाह का विषय लेते हैं। लेखक की सनक के अनुसार विवाह के जरठ अथवा बाल, सवर्ण अथवा अवर्ण, स्वाधीन अथवा पराधीन—इस प्रकार के किसी भी तरह के विवाह के सुखद परिणाम का उपन्यासकार सहजतापूर्वक चित्रण कर सकता है। उस विवाह को संपन्न करने के लिए कल्पना के बाजार में उसकी इच्छित घटनाओं की सामग्री मनचाही माँग के अनुसार मिल सकती है। इसी वजह से कल्पित प्रबंध अन्य दृष्टि से कितने ही उपयुक्त अथवा आकर्षक भले हों, यह बात निर्विवाद रूप में निश्चित करने के लिए कि विवाह की प्राचीन तथा आधुनिक प्रथा में समाज कितना सुखी अथवा दु:खी हो सकता है, उस प्रकार के विवाह तथा विवाह से संबंधित घटनाओं की व्यक्तिगत सत्यकथाएँ ही परिष्कृत, निर्मल वृत्तांत के बाद उपयुक्त सिद्ध होती हैं। कभी-कभी तो वे कल्पित भी अधिक आकर्षक तथा रोमहर्षक हो सकती हैं।

ऐसी ही एक सत्यकथा, जो समाज की यथार्थ स्थिति पर रोशनी डालती है, उसी विवाह विषयक संदर्भ में हमें श्री पित्रेजी के मुख से सुनने को मिली। यह कहानी स्वयं उनके ही होनेवाले द्वितीय विवाह में उनके ठगे जाने का किस्सा होते हुए भी उन्होंने स्वयं कुछ भी न छिपाते हुए सुनाई। इससे तथा उनके समान सरलमनस्क सज्जन ने जिस निश्छलता से सहजतापूर्वक यह कथा कही, उससे हमारे मन को पूर्ण विश्वास हो गया कि वह कहानी लगभग सत्य है। परंतु फिर भी हमने उसी कहानी में वर्णित दो-तीन महत्त्वपूर्ण शिष्ट चरित्रों से जाँच-पड़ताल करवाई, अत: अब उसकी यथार्थता के संबंध में रत्ती भर भी संदेह नहीं रहा।

आज का जमाना है हर हालत में शारदा निर्बंध के कलयुग का। परंतु जब 'अष्टवर्षा भवेत् कन्या' का बिलकुल सत्युगींन जमाना था, तब यह यथातथ्य दर्शाने के लिए भी कि सनातन धर्म के अनुसार आचरण करनेवाले लोगों में भी विवाह-नीति प्रसंगवशात् कैसे-कैसे रूप धारण करती है, सत्यकथा किसी दर्पण सदृश काम आती है। उस संवाद का महत्त्वपूर्ण अंश—''अर्थात्, आप पेशावर की तरफ थे, तभी आपकी पहली पत्नी का स्वर्गवास हुआ; वे कहाँ रहती थीं?''

''मेरी पत्नी श्रीमती इंदिरा देवी पित्रे आपके डॉ. शितूत की रिश्तेदार थीं।

आई बात समझ में? उनकी मृत्यु का समाचार सुनते ही मैं पेशावर से डेढ़ सौ रुपल्ली महीना की नौकरी छोड़कर सीधे महाराष्ट्र लौटा। वहाँ के लोगों ने बहुत समझाया, 'पित्रेजी, इस तरह पूरे जोगी क्यों बन रहे हैं आप? नौकरी मत छोड़िए।' पर मैंने एक न सुनी। सीधे पंढरपुर वापस लौटा। मेरी पहली पत्नी का देहांत हुआ—मैंने दो छोटे-छोटे बच्चों को उनके ननिहाल में छोड़ दिया और राम भैया के बुलावे के अनुसार उनसे मिलने चला गया। उधर जाते ही राम भैया ने साफ-साफ बताया, 'आप चाहो तो अभी इसी वक्त कोंकण में एक अच्छी कन्या उपलब्ध है। अत: पित्रे बाबू, आप यह शादी का मौसम यूँ ही मत गँवाना। आपको अन्य किसी भी पचड़े में नहीं पड़ना है। पंडित धोंडोजी, जिन्होंने पिछले वर्ष इसी तरह आसानी से मेरा दूसरा रिश्ता पक्का किया, उसी तरह आपका भी करेंगे। फिर किस बात की चिंता? उन्होंने इस प्रकार कोंकण-स्थित कई कन्याओं के रिश्ते पक्के करके अपने ही घर उनके हाथ पीले किए हैं। आप सिर्फ उधर अकेले ही चले जाएँ तो भी जोशीजी अन्य सभी उपचार, रस्में पूरी करेंगे और वापसी में आप बगल में नई-नवेली दुलहन लिये आएँगे। मेरी प्रथम पत्नी के स्वर्गवास होने का समाचार सुनते ही इसी तरह धोंडो पंडित ने मुझे अकेले कोंकण में बुला लिया था और आठ-दस दिन के अंदर सारी रस्में पूरी करके कन्या का हाथ मेरे हाथों में देते हुए सपत्नीक मुझे विदा किया था। आइए, भीतर पधारिए। यह देखिए, वह कन्या—हमारी द्वितीय पत्नी है। पिछले वर्ष ही हमारा विवाह संपन्न हुआ।' राम भैया के इस तरह प्रोत्साहित करने पर मैंने भी देर न करते हुए विवाह करने का निश्चय किया। राम भैया मेरे बचपन के साथी थे। मुझे इस बात का अहसास था कि स्वानुभव के कारण जो व्यक्ति इतना विश्वस्त प्रतीत हुआ, वही पंडित धोंडोजी जैसा सहायक बार-बार नहीं मिल सकता। इसपर राम भैया की कोंकणवाली द्वितीय पत्नी बड़ी चुस्त, ग्यारह-बारह वर्षीया तथा तत्कालीन विचारानुसार विवाह योग्य प्रतीत हुई। उस समय यह कल्पना प्रचलित थी कि 'श्रीमान, विधुरों के लिए इस तरह उचित कन्याएँ उपलब्ध हो सकती हैं।' ''

''भई, यह कहानी कितने वर्ष पहले घटी थी? उस समय आपकी आयु क्या होगी?''

''लगभग बीस वर्ष पहले। हो सकता है, मैं चालीस के अंदर रहा होऊँ।''

''अच्छा, फिर आगे क्या हुआ? फिर आप कोंकण अकेले ही गए या धोंडो पंडित से कन्या के संबंध में पहले पत्र-व्यवहार किया?''

□

''जी नहीं। मैं व्यर्थ चर्चा, बात फैलाना नहीं चाहता था। उसपर शादी का मौसम निकट था तथा राम भैया का सफल उदाहरण आँखों के सामने था। अत:

उनकी सूचनानुसार पंद्रह सौ रुपयों के नोटों का पुलिंदा एक थैली में भरकर और उस थैली को कमर में कसकर मैंने कोंकण की राह ली और सीधे धोंडो पंडित के गाँव जाकर उनके घर ठहरा। राम भैया ने उन्हें सभी बातें सूचित कर दी थीं। सोचा, मेरे आने का उद्‌देश्य वे जान गए होंगे। मेरे तनिक इधर-उधर हटने पर वे लोग आपस में खुसुर-फुसुर कर रहे थे—'भई, मुले की बेटी का इस ब्राह्मण से रिश्ता पक्का हो जाए तो सोने पे सुहागा। धोंडो पंडित जो करें। उस बेचारे मुले के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही हैं। लड़की तो जैसे छाती पर मूँग दल रही है, अब ग्यारहवाँ साल लग जाएगा। सभी महिलाएँ पूछ रही हैं, कब पीले करेंगे इसके हाथ। पर गाँठ में कुछ भी नहीं। मुले भी क्या खाक सिर फोड़ेगा? अब यह परोपकारी पंडित ही इस कलमुँही का बेड़ा पार लगाएगा। मेहमान भी भलेमानुस लग रहे हैं।' अपनी पीठ पीछे चल रहे उनके संभाषण से मुझे तरावट मिल गई। धोंडो पंडित के प्रति आदर, उस मुले की बेटी के प्रति प्रेम, आतुरता तथा इन भंडारी[१] आदि लोगों के प्रति अपनापन प्रतीत होने लगा।

नहाने का समय होते ही मुझे एक खुले खेतनुमा बागान में ले जाया गया, जहाँ बड़े-बड़े चार पत्थर रखकर बनाए गए चूल्हे पर नहाने का पानी गरम करने के लिए रखा हुआ था। सूखे पत्तों में ही एक पत्थर गड़ा हुआ था। वहीं पर बिलकुल खुले में धोंडो पंडित को स्नान करते हुए मैंने देखा था, मैं भी वैसे ही नहाने लगा। कोंकणी गाँव था वह। सभी कुछ नया-नया सा, अजनबी। यह देखो, वह देखो करते-करते मन बौरा सा गया था। अत: खड़े-खड़े बदन पर तीन-चार लोटे पानी डालकर मैं हाथ से ही शरीर मलने लगा। मुझे याद ही नहीं रहा कि नोटों से भरा बटुआ कमर में कसा हुआ है। उसपर हाथ पड़ते ही मैं चौंका। जल्दी-जल्दी बटुआ खोला तो नोट लगभग गीले होने लगे थे। उसी अवस्था में आगे बढ़कर मैंने सारे नोटों को धूप में फैलाया। उनपर पत्थर रखकर मैं स्नानादि से निपटकर धोती पहनने लगा। धोंडो पंडित ने ऊँचे स्वर में, जो कोंकण में सहज स्वर समझा जाता है पर अपने यहाँ जिसे चीखना ही कहा जाता, कहा—'बिटिया को पानी भरना है, आप तनिक इधर आइएगा।' मैं झट से उधर चला गया तो वहाँ संध्या के लिए पीढ़ा रखा हुआ दिखाई दिया। इस विचार से कि उनकी कोंकणी भावना को कहीं ठेस न पहुँचे, मैं पीढ़े पर बैठकर भस्म लगा ही रहा था कि एक लड़की भागी-भागी आई और कहने लगी, 'वे कागज के टुकड़े किसके पड़े हैं? उनमें से एक को कौआ उड़ा ले गया जी!' दरअसल मैंने उधर नजर रखी थी और नोट उठाने तुरंत जा ही रहा था कि

---

१. भंडारी—ताड़ के पेड़ से ताड़ी, ठर्रा बनानेवाली एक जाति और उस जाति के लोग।

वह लड़की चिल्लाई। लपककर देखा तो सौ का एक नोट गायब। अर्थात् उसे कौआ ले उड़ा। कौए का क्या लेना? धोंडो पंडित, उसकी पत्नी तथा उन भंडारियों में से एक ने उस उत्पाती कौए को खूब कोरी सुनाई। कौओं के उत्पातों के रोचक किस्से सुनाए जाने लगे। बातों-बातों में कोंकणी कौए और देशी कौओं की जात-पाँत तक बात बढ़ गई, पर वह नोट वापस नहीं आया।

फिर भी बेचारे देहाती लोग काफी छटपटाए। एक भंडारी की आँखों में तो आँसू भी छलके। हमारे कवि जो प्रशंसा के पुल बाँधते हैं कि बड़े शहरों के लोगों से गाँव के लोगों का दिल सीधा-सादा तथा दया-ममता से लबालब भरा हुआ होता है, यह बिलकुल झूठ नहीं है। मैंने मन-ही-मन कहा, 'मेरे जैसा अधेड़ उम्र का दुहाजू जो भी लड़की मिले उसे स्वीकारने के लिए तैयार है, जैसे घुटनों पर सेहरा बाँधकर आया है। फिर भी अभी तक किसीने मुझे लज्जित नहीं किया और उधर हमारी ओछी, नीच नागरी सभ्यता! हमेशा दूसरों की दुखती रग छेड़ती है। अब तक सौ बार ये शहरी लोग मेरी तरफ अँगुली उठाकर मेरी हँसी उड़ाते, छींटाकशी करते, फिकरे कसते।' इसी विचार से नोट खोने का दुःख तो मैं लगभग भूल ही गया। बार-बार मुझे इसी बात का स्मरण हो रहा था कि यहाँ आए हुए मुझे दो-तीन दिन हुए, पर धोंडो पंडित अभी तक मुझे उस मुले की बेटी के पास क्यों नहीं ले गए।

इतने में शिदू भंडारी मेरे पास आ गया। शुरू से यह आदमी मेरे प्रति आस्थावान रहा था, अतः इसके लिए मेरे मन में भी ममत्व भाव था। शिदू ने कहा, 'महाराज! आखिर मुले वापस आ ही गए, वे कहीं बाहर गए थे। आज धोंडो पंडित आपको निश्चित रूप से ले जाएँगे लड़की दिखाने।' मैंने कहा, 'अरे, धोंडो पंडित को जो पसंद वह मुझे भी पसंद है। अब यह देखने-सँवरने का झमेला भला किसलिए? सीधे सबकुछ तय कर ही डालो।' इसपर शिदू ने कहा, 'चावल की बोरी बहुत सस्ती हो गई है। हमारा वही व्यवसाय है। आज खरीदने जा रहा हूँ। आपके विवाह का सामान भी बिलकुल सस्ते में लाता हूँ।' मैंने कहा, 'तुम अवश्य जाओ।' इतने में धोंडो पंडित आकर लड़की के घर चलने के लिए कहने लगे। मेरी तो बाँछें खिल गईं। चलने की हड़बड़ाहट में ही धोंडो पंडित बीच में मुझे रोकते हुए कहने लगे, 'शिदू गाढ़े का साथी है। वह ऐसा मित्र है जो मित्र के लिए जान भी देने के लिए तैयार होगा। चावल खरीदने में रुकावट आ गई है। आज यदि नहीं जा पाया तो शादी तक वह वापस नहीं आ सकता। यदि वह नहीं आया तो उसकी अनुपस्थिति में समय आने पर सारे गाँव को धौंस देने कोई दूसरा मजबूत, हट्टा-कट्टा आदमी कहाँ से मिलेगा जो यह विवाह संपन्न करा सके?

अत: उसे दो सौ रुपए दे दीजिए। वापस आते ही वह आपका धन वापस लौटाएगा। अपने विवाह में भी वह चावल सस्ते में, बिलकुल कौड़ी के तीन-तीन दे देगा। हाँ चलिए, कन्या के घर जल्दी जाना है।'

कन्या के घर जाने की उतावली में इनकी निराशा की रुकावट बिलकुल न हो, इस विचार के अतिरिक्त अन्य विचार दिमाग में नहीं था। अत: मैंने शिदू को दो सौ रुपए दे दिए। फिर हम लोग मुले के घर के लिए रवाना हो गए।

लड़की ठीक-ठाक थी। उस समय गाँव में 'अष्टवर्षा भवेत् कन्या' का युग था। अत: मुझे इस बात का पूरा अहसास था कि मुले को भी अपनी बेटी की शादी की जल्दी इसलिए है कि वे नहीं चाहते, लोग-बाग उसकी ग्यारह वर्षीया बेटी को बढ़ती उमर की दुल्हनिया कहकर उसकी हेठी करें। फिर भी मेरे जैसे दुहाजू से लड़की के नाम पर उलटा दहेज हड़पनेवाले कई माँ-बाप मैंने शहर में देखे थे। अत: मैं डर रहा था, इधर भी ऐसे ही कुछ चंट मुस्टंडों से पाला तो नहीं पड़ेगा। परंतु लेन-देन का जरा सा भी झमेला मुले बाबू ने उपस्थित नहीं किया। जैसा मैं कहूँ उसीमें उन्हें संतोष था। मुझे पुन: ध्यान आया कि ये गाँव के लोग कितने पापभीरु होते हैं। कितना सरल, भोला-भाला व्यवहार है इन लोगों का। बाबू रामकृष्ण मुकदम नामक कोई सज्जन पड़ोस के गाँव से यूँ ही आ गए थे। उन्हें बुलाकर उनके सामने रिश्ता पक्का किया गया। उसी दिन मेरे सम्मानार्थ 'बडहार' (प्रीतिभोज—जो विवाह से पहले रिश्तेदार-मित्रों द्वारा दिया जाता है। मराठी में इसे 'केलवण' या 'गडगनेर' कहा जाता है।) का आयोजन किया गया।

रात में पंडित धोंडोजी ने मुहूर्त पक्का किया जो पंद्रह दिन के बाद का था। मेरे साथ एक भंडारी देते हुए उन्होंने कहा, 'आप बंबई जाकर जेवरात ले आइए, जो लेन-देन में तय किए गए हैं। परंतु उससे भी पहले विवाह के लिए आवश्यक घी-शक्कर आदि राशन-पानी इस आदमी के साथ जहाज से भेज दीजिए। जेवर तैयार होने के बाद आप आइए। तब तक शिदू भंडारी भी चावल खरीदकर वापस लौटेगा।'

हम दोनों बंबई आ गए। सौ-सवा सौ का राशन-पानी तथा कपड़ा मैंने इस भंडारी के साथ जहाज द्वारा रवाना किया। पाँच-छह दिनों में मनपसंद गहने-जेवरात तैयार करवाके मैं भी वापस धोंडो पंडित के यहाँ आ गया।

वहाँ देखा तो मेरे पीछे धोंडो पंडित के बेटे का उपनयन विधिपूर्वक संपन्न हो चुका है और घी-शक्कर, कपड़ा आदि जो मैंने शादी के लिए भेजा था उसीके लिए खर्च हो चुका है। यह बात स्वयं धोंडो पंडित मासूमियत का पुतला बनकर मुझे बता रहे थे, 'आपके चले जाने पर भंडारी के हाथों आपने जो सामान भेजा था, वह यहाँ पहुँचते ही मैं मुले बाबू के घर मंडप आदि का प्रबंध करने की प्रार्थना करने

गया था, तो उन्होंने सूचित किया कि मैंने अपनी बेटी देने का विचार रद्द कर दिया है। फिर मैंने सोचा, बेकार यह सब सड़ने-गलने के लिए क्यों छोड़ा जाए? चलो, अपने बेटे का ही उपनयन संपन्न कर लिया जाए।' धोंडो पंडित की बातों से मेरा पित्त खौलने लगा। मैंने उन्हें दो-टूक जवाब दिया—'भई, या तो मुझे लड़की दो या मेरे पैसे वापस लौटाओ। और वह शिदू भंडारी वापस लौटा कि नहीं? उसके उधार लिये दो सौ रुपए भी आपको लौटाने होंगे, कहे देता हूँ।'

मेरी तमतमाई हुई बात पर उन्होंने तनिक भी नाराजगी प्रकट न करते हुए और बर्फीले स्वर में कहा, 'आपकी पाई-पाई हम चुका देंगे। इतना ही नहीं, किसी अन्य क़न्या की तलाश भी मैं कर रहा हूँ। आप कुछ दिन सब्र करके यहीं पर अपना डेरा डालिए।'

मैं फिर बौखला गया। फिर पल भर के लिए सोचा, यदि यह आदमी लुच्चा-लफंगा होता तो इतनी कायदे की बात थोड़े ही करता? हाँ, अब तनिक सतर्क रहना चाहिए और फिर उसे फूटी कौड़ी भी नहीं देनी चाहिए। फिर सब ठीक होगा। इस तरह सोचते हुए भोजनादि से निवृत्त होकर मैं बरामदे में आ गया तो मेरा जेवरों का छोटा बक्सा वहाँ कहीं नजर नहीं आया। अब तो मेरे हाथों के तोते ही उड़ गए। लगभग दहाड़ते हुए मैंने पूछा, 'भई, मेरा संदूक? कहाँ है मेरा बक्सा?'

इतने में भीतर से धोंडो पंडित ने आते हुए पहले से भी अधिक इतमीनान के साथ कहा, 'भई, बरामदे में खुली जगह में बक्सा कैसे रखता? जोखिम की चीज जो है। भीतर ठीक परछत्ती पर रखना ही सुरक्षित था। यदि आप चाहें तो अवश्य इधर रखिए।' मैंने टका सा जवाब दे दिया, 'ले आइए।' वे ले आए।

मेरे होश उड़ने के साथ-साथ अबकी बार मुझमें एक अनूठी हिम्मत आ गई। वैसे पंजाब तक घाट-घाट का पानी पी चुका हूँ मैं—ये धोंडो पंडित सच्चा हो या झूठा, मैं इसके चंगुल में फँसूँ ही क्यों, इस आशंका से मेरे मन में धुकधुकी होती रही कि कहीं वह मुझे धोखा तो नहीं दे रहा। गतं न शोच्यम्—भई, बीती ताहि बिसार दे, आगे की सुधि लेय। जो बीत गई सो बीत गई। अब यह सोचकर कि यह बक्सा इधर रखना सुरक्षित नहीं, मैंने इधर-उधर देखा। धोंडो पंडित दूर बागान में गए हुए थे—आसपास कोई नहीं था। मैं तपाक से उठ गया—बक्सा सिर पर रखा और सपासप जो सामनेवाली घाटी का रास्ता नापा सो पीछे मुड़कर भी नहीं देखा।

थोड़ी दूर घाटी चढ़ने के बाद घने पेड़ों के एक झुरमुट में राह निकलती हुई देखकर मैंने उधर का रुख किया। दो-चार राहगीरों से रामकृष्ण मुकंदम के गाँव का पता पूछा। वे मुले बाबू के प्रीतिभोज के अवसर पर आए हुए थे। यह पता लगते ही कि वह गाँव उसी राह में चलते-चलते शाम तक आ जाएगा, मैंने

सोचा, चलो, उधर से ही चलते हैं। वैसे उस दिन बातों-ही-बातों में हमारा एक रिश्ता निकल आया था।

साँझ होते-होते मुकदम के घर पहुँच गया। उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने कहा, 'भई, आखिर उस चालाक, मक्कार धोंडो पंडित के शिकंजे से छुटकारा हो ही गया आपका? जाने दीजिए, जो हुआ सो हुआ—जो गया सो गया—यह विशेष बात समझिए कि इसे बचा लिया आपने। अजी कैसे मुले बाबू, कैसी लड़की? शिदू भंडारी का चावल लेके बैठे हैं आप? वह एक बड़ी छँटी हुई बावन गजी चांडाल चौकड़ी है। इस धोंडो पंडित ने आज तक आप जैसे पाँच-दस उतावले दूल्हों को झाँसा दिया है। आप नहा रहे थे तब आपका जो नोट कौआ ले उड़ा था न, वही कौआ आपका यह बक्सा भी उड़ाने की तैयारी कर रहा था। पर उसकी चोंच इसे झट से उठा नहीं पाई। हम उस बडहार—प्रीतिभोज—के समय ही आपको चेतावनी देना चाहते थे। पर कैसे मुँह खोलते? आप ही विश्वास न करते तो हमारे ही दाँत खट्टे नहीं होते? क्योंकि वह धोंडो पंडित, वे मुले बाबू और वे दो-चार टकसाल के खोटे भंडारी गुंडे, शोरगुल न हो और शिकार भी जाल में फँसे, इस तरह निर्बंध की कैंची में स्वयं को न फँसाते हुए दूसरों के गले पर आरी चलाते हैं। कुछ इस तरह कि साँप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे। यह सारा षड्यंत्र इतनी सावधानी के साथ रचाया जाता है कि यदि कोई दावे के साथ उन्हें दगाबाज, कपटी कहे तो उसके विरुद्ध मानहानि का दावा दायर करते हुए उसे अदालत में खींच सकें।'

मुले बाबू की लड़की, जो मेरे विनाश की जड़ थी, के कारण भयंकर गड्ढे में गिरते-गिरते मैं सही-सलामत बच गया। भई, सिर सलामत तो पगड़ी पचास। इस बात का फाग मैं खेल ही रहा था कि क्या बताऊँ? पुनः एक नई शादी का नया संकट वहीं पर मेरे सामने आ गया। उनकी अपनी बात अभी समाप्त हुई नहीं थी कि रामकृष्ण बाबू ने नया प्रस्ताव सामने रखा, 'अब देखिए जनाब, यह मेरी कन्या है—मैं इसे आपकी झोली में डालता हूँ ताकि कोंकण-यात्रा का आपका परिश्रम सार्थक हो जाए।' बातें करते-करते ही उन्होंने कन्या को मेरे सामने खड़ा कर दिया। वह बेचारी मेरे घुटनों से कुछ अधिक लंबी नहीं थी। साफ नजर आ रहा था कि उस जमाने का शिष्टाचारसम्मत 'अष्टवर्षा भवेत् कन्या' का घाघरा भी उसके लिए बड़ा था। मैंने भी झेंपते हुए पूछा, 'लड़की की उम्र क्या होगी? भई, यह तो पिद्दी सी है।'

रामकृष्ण बाबू ने ठोस निश्चय के साथ कहा, 'उम्र ही पूछ रहे हैं तो बताए देता हूँ कि अभी सातवाँ लग रहा है इसे। पर हम एक-दो साल इसे अपने घर में ही रख लेंगे। फिर तो ठीक है न? आपकी प्रथम पत्नी के दो छोटे-छोटे बच्चे हैं, उनमें

ही यह भी पल-पुस जाएगी, बड़ी होगी। भई, लड़की की जात—दो-तीन वर्षों में ही कली चटकेगी और ऐसी गदराएगी कि बस देखते ही रह जाओगे।'

भई, हँस क्यों रहे हैं आप? आज मुझे भी आपके जैसी ही उनकी बातों पर हँसी आ रही है, पर कोंकण के गाँवों में सिर्फ बीस साल पहले यह भाषा चिरपरिचित शिष्टाचारसम्मत थी। अजी गुजरात, राजपूताने में मैं तीन-तीन, चार-चार वर्ष की बालिकाओं के हाथ पीले होते देखा करता था तो उस जमाने में भला मुझे विशेष आश्चर्य की बात कैसे प्रतीत होती? जिसपर मुझे एक तरह का नशा ही चढ़ा हुआ था कि कोंकण में आते ही लड़की मिलनी ही चाहिए। अब हँसो या मत हँसो। उस समय भई, मैंने तो शादी के लिए खुशी-खुशी हामी भरी। सोचा, गंगा नहा गए। पास में गहनों से लदा-फदा बक्सा तो था ही। उसे दिखाकर उसी बैठक में मुहूर्त निश्चित किया। उस साले मुले की बेटी से जिस दिन वह धोंडो पंडित मेरा ब्याह रचाने जा रहा था, उसी दिन उससे सवासेर रिश्ता मैं पक्का करूँगा ही। तू डाल-डाल, मैं पात-पात। प्रतिशोध-जैसे एक आवेश का संचार मुझमें हो गया था। बिलकुल पड़ोस में भी अधिक चर्चा न करते हुए निश्चित दिन विवाह संस्कार का आरंभ हो गया। मुझे तथा उस कन्या को हलदी भी चढ़ाई गई। इतने में दूर से पाँच-दस बजरबट्टू मुस्टंडे जोर-जोर से बातें करते आ रहे थे। बातें करते-करते शिदू भंडारी धोंडो पंडित की बैठक में सम्मिलित अन्य भंडारी लोगों के साथ दरवाजे के निकट खड़ा दिखाई दिया। उसने मुझसे बात करने की जबरदस्त जिद पकड़ी। मेरी तो सिट्टी-पिट्टी गुम। पर रामकृष्ण बाबू के अनुरोध पर वैसे ही हलदी से सना मैं आगे बढ़ गया। शिदू भंडारी की सुर्ख लाल आँखें, ताड़ी के नशे में धुत्। उसके साथियों के मुँह से भी ताड़ी की तेज गंध के भपारे आ रहे थे। मुझे देखते ही वे धमकी भरे स्वर में चिल्लाए, 'सुनो ब्राह्मण, मुले की बेटी से तय किया रिश्ता तोड़कर, हमारे मुँह पर कालिख पोतकर इधर भाग आए हो।' मैंने यथासंभव उन्हें पुचकारते हुए कहा, 'अजी, धोंडो पंडित ने ही तो कहा था कि मुले बाबू ने अपनी बेटी का हाथ देना स्वीकार नहीं किया।'

वे मल्लाही गालियाँ देते हुए कहने लगे, 'भाड़ में जाए वह पाजी धोंडो पंडित। अब हम तुम्हें कोंकण की किसी भी लड़की से ब्याह रचाने नहीं देंगे। चल बे साले, ये पोती हुई हलदी चुपचाप धो डाल। चल, बड़ा 'खंडोबा' (एक देवता का नाम) दिखाई दे रहा है।'

इतने में रामकृष्ण बाबू को बीच में पड़कर शिदू को एक तरफ ले जाकर गिड़गिड़ाते, कुछ कहते हुए मैंने दूर से देखा। वे शिदू की नस-नस पहचानते थे। वह तनिक शांत होता हुआ दिखाई दिया। पर उसके रोग पर भला कौन सी रामबाण दवा

तत्काल उपयुक्त सिद्ध हो गई ? यही कि उसे समझाने के लिए हम उसे पचास रुपए दंड दे दें। तनिक भी चीं-चपड़ न करते हुए मैंने उतने रुपए रामकृष्ण बाबू के सामने उस गुंडे को दे दिए। वे चलते बने और मैं सीधा उधर चला गया, जहाँ नहाने का पानी गरम हो रहा था। जल्दी-जल्दी चार लोटे पानी बदन पर डालते हुए मैंने हलदी धो डाली।

बेचारी वह नन्ही सी बालिका—भीतर वैसी ही हलदी से सनी बैठी हुई थी। 'अजी पित्रे बाबू, उन गुंडों को समझा दिया गया है, अब कोई दिक्कत नहीं है जी! हलदी क्यों उतार रहे हो?' बेचारे रामकृष्ण बाबू गिड़गिड़ाकर पूछने लगे।

मैंने कहा, 'अजी, अब उन्हें नहीं, मुझे ही दिक्कत है। वे जिस तरह एक तरफ से समझ गए, उसी तरह मैं भी दूसरी तरफ से समझ गया। अब इस जन्म में पुन: विवाह कर्तव्य नहीं है। हरगिज नहीं। चाहे तो आपको भी शादी टूटने का जुरमाना देता हूँ लेकिन इस तरह अशुभकारी ब्याह अब नहीं हो सकता।'

रामकृष्ण बाबू ने मुझसे जुरमाना न लेते हुए मेरे जेवर वापस लौटाए और मैंने अपनी वही राह ली, जिससे मैं आया था। तब से मुझपर एक ही सनक सवार है। 'गाँव के लोग गऊ होते हैं।' 'गाँव मासूमियत का बागीचा है।' 'शहरी बाबू काइयाँ, मक्कार, लुच्चे होते हैं।' इनको लेकर एक कविता लिखूँ, या एक चित्र बनाऊँ, जिसमें स्वयं मैं, धोंडो बाबू, शिदू भंडारी, बरामदे की बैठक में बैठे अन्य सीधे-सादे देहाती, मुले बाबू और हम सभी के पैरों के नीचे वे दो अष्टवर्षीया, मासूम बालिकाएँ हाथ में जयमालाएँ लिये बीचोबीच स्थित विवाह के हवन कुंड में कूद रही हैं—और फिर उसकी एक-एक प्रति पुरातन नीति के असीम अभिमानियों को भेंट करूँ।"

—१९३५

□

समय और दीमक

इतिहास के सभी प्रमुख अनुसंधानकर्ताओं की भीड़ मंडप-द्वार के पास जम गई थी। दूर-दूर के सैकड़ों इतिहास अनुसंधानकर्ताओं की, जो बरसों से सिर्फ पत्रिका द्वारा एक-दूसरे की तीखी एवं कटु आलोचना करने से ही एक-दूसरे से परिचित थे—यहाँ भीड़ हो गई थी। आज उनका संक्षिप्त परिचय होनेवाला था। यह भी शोध का एक विषय होने के कारण एक अनुसंधानकर्ता की इसी कार्य पर नियुक्ति की गई थी। हर उपस्थित अनुसंधानकर्ता की वंशावली एवं यशोगान का ऊँची आवाज में वंदन करके मंडप में उसे यथायोग्य स्थान पर विराजित किया गया।

ऐतिहासिक अनुसंधान महामंडल का यह सम्मेलन बिलकुल ही अनूठा था। इस कारण अनेक विख्यात इतिहासज्ञ अपने चुनिंदा निबंधों के साथ गोष्ठी में उपस्थित हो गए थे। अध्यापक चिंतेजी ने पिछले चालीस वर्ष जिस शोध विषय में लगाए थे, उसकी गंभीर चर्चा उन्होंने अपने निबंध में की थी। उनका अनुसंधान का विषय था—'यूनान पर आक्रमण करते समय सम्राट् चंद्रगुप्त जिस घोड़े पर आरूढ़ थे, उस घोड़े की पूँछ के बाल कितने लंबे थे?' चंद्रगुप्त के घोड़े की पूँछ के बालों की लंबाई निश्चित करनेवाले अनेक प्रमाण उन्होंने अपने निबंध में गणनाओं की सारणी के साथ देते हुए उन प्रमाणों के प्रमाणस्वरूप सिक्के, जिनपर मौर्यकालीन घोड़ों के चित्र खुदे हुए थे, छायाचित्र, कागज, प्रशस्ति प्रभृति प्राचीन वस्तुएँ साथवाली प्रदर्शनी में रखी हुई थीं। विख्यात पुरातत्त्वज्ञ श्री रावणेजी ने भी उस प्रदर्शनी में एक अत्यंतभुत प्राचीन वस्तु भेजी हुई थी। वह थी ताड़का ऊर्फ त्राटिका राक्षसी की चोली की दाईं बाँह।

हजारों की संख्या में दर्शक उस बाँह के दर्शनार्थ धक्कम-धक्का करते हैं। यदि यह शोध सत्य सिद्ध हो गया तो पुराण काल पर, रामायण तथा कुल मनुष्य जाति के ज्ञान पर विस्तृत रोशनी डाली जाएगी। यह शोध उसका असीम हितसाध्य करनेवाला होने के कारण पिछले चार वर्ष तक तमाम विद्वज्जनों ने सभी वृत्तपत्रों

और पत्रिकाओं में उलटे-सीधे चर्चात्मक लेखों को लिखकर बड़ी हलचल मचाई थी। इसपर भी वे अनुसंधानकर्ता रावणेजी नासिक, पंचवटी के निवासी होने के कारण इस मतप्रणाली के अनुसंधानकर्ता कि 'असली पंचवटी राजमहेंद्री की ओर है'—इस अन्वेषण का विरोध करने में नहीं हिचकिचाए। रावणेजी के पक्ष का यही आक्षेप था। अत: इस विवाद का नासिकवाला बनाम महेंद्रीवाला जैसा स्वरूप हो गया। हर नासिकवाला इस अनुसंधान के प्रति अनुकूल होता गया और हर महेंद्रीवाला महेंद्रीवासी होने के नाते इस बदगोई को ही सत्यसंधान मानकर उसे सिर-आँखों पर बैठाने लगा। पुरातत्त्वज्ञ रावणेजी के अनुसार लक्ष्मण द्वारा काटी गई राक्षसी की नाक और उसके कान चट्टानों पर चट्टान के रूप में आज भी दिखाए जाते हैं। उससे कुछ ही दूरी पर एक गुफानुमा बड़ा सा विवर है। जिस तरह सीता गुफा है, उसी तरह यह त्राटिका गुफा हो सकती है। अपनी राक्षसी सखियों के साथ कभी-कभी त्राटिका यहाँ रमती होगी और रामचंद्र को सीता गुफा में आते-जाते चोरी-चोरी देखती होगी। तभी तो वह उनपर लट्टू हो गई थी। इस तरह के निश्चय के साथ रावणेजी जब त्राटिका गुफा का सूक्ष्म निरीक्षण करने गए तब उन्हें एक दरार में खोंसा हुआ वस्त्र मिला। खींचकर देखा तो वह एक मजबूत और मटमैले रंग के कपड़े की बाँह थी। अर्थात् वह त्राटिका की ही चोली की होगी। हो सकता है, चोली के लिए एक बाँह रखकर बाकी सिलाई पूरी करना चाहती होगी कि इतने में उसी दिन प्रभु रामचंद्रजी से अंतिम झगड़ा हो जाने से वह मारी गई। इस तर्क के लिए उस बाँह की लंबाई, रामायणांतर्गत राक्षसी के बल, मजबूत गठन आदि का प्रमाण भी श्री रावणे ने अपने निबंध में विस्तृत रूप में दिया था।

परंतु महेंद्रीवाले अन्वेषकों ने उसे तुच्छ समझकर उस वस्त्र की उत्पत्ति इस प्रकार लगाई थी कि खानाबदोश पठानों की उस तरफ हमेशा आवाजाही रहती है। वहीं पर वे खा-पीकर अपनी जूठन, फटे-पुराने कपड़े आदि सामान फेंककर चले जाते हैं। उनमें से किसी एक पठान की ढीली-ढाली, फटी-पुरानी शलवार का दाहिना पैर उधर पड़ा होगा। इतना ही नहीं, उन्होंने एक पठान का उसी आशय का वक्तव्य हस्ताक्षर सहित प्रकाशित भी किया था। उसमें उस पठान ने कहा था, 'मैं स्वयं अमुक वर्ष में उस स्थान पर बैठकर गुड़ तथा मूँगफली के दाने चबा रहा था, तब मैंने अपनी एक फटी-पुरानी शलवार का एक पाँव उस दरार में ठूँस दिया था, ताकि उसमें से कोई कीड़ा-मकोड़ा, चींटी ऊपर न आए।' अर्थात् वह एक पठान की शलवार का पैर था, न कि त्राटिका की चोली की बाँह। महेंद्रीवाले के इस विधान से आग-भभूका होकर श्री रावणे ने इस सम्मेलनार्थ लिखित अपने विशेष निबंध के अंत में प्रश्न किया था कि 'एक लफंगे पठान को रिश्वत देकर एक अत्यंत

महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक सिद्धांत को झुठलाने का प्रयास करते हुए महेंद्रीवालों को लज्जा भी नहीं आती?'

जापान ने चीन पर जो आक्रमण किया है, उसका हिंदुस्थान पर क्या परिणाम होनेवाला है? ऐसे तथा इसी तरह के तुच्छ विषयों के संबंध में एक अक्षर भी न लिखते हुए ऊपर निर्दिष्ट जिस अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रश्न की चर्चा में तमाम वृत्तपत्र, पत्रिकाएँ तथा विद्वान् पिछले चार सालों से व्यस्त थे, वह 'त्राटिका की चोली की बाँह या एक पठान की शलवार' समस्या आज के सम्मेलन के प्रमुख चर्चा विषयों में से एक थी। उसी तरह एक अन्य उतना ही महत्त्वपूर्ण विषय श्री नार्वेकर जैसे एक जाने-माने इतिहास अनुसंधानकर्ता ने निबंध द्वारा सम्मेलन में प्रस्तुत किया था। नार्वेकर देशप्रेमी तथा स्वाभिमानी इतिहासकार के रूप में विख्यात थे। वे स्वयं बनिया थे। गोमांतक स्थित नार्वे नामक एक कस्बे से उनके अपने लोग देश भर में फैले हुए थे। वे इस मत के कड़े विरोधी थे कि आर्य लोग उत्तरी ध्रुव से भारत में आ गए, जो स्वाभिमानपूर्ण देशभक्ति के लिए लांछनास्पद था। आर्यों की जन्मभूमि भारत ही थी, बाद में वे उत्तरी ध्रुव पर उपनिवेश स्थापित करते गए—इस स्वदेशाभिमानी मत का वे समर्थन करते थे। इतना ही नहीं, उनका मूलभूत ठोस सिद्धांत था कि पूरे विश्व का हर राष्ट्र किसी विजेता भारतीय जाति ने बसाया होगा। आजकल में ही उन्हें एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रमाण मिला था जो उनके इस विधान का समर्थन करता था। इस सम्मेलनार्थ उसीकी सर्वांगीण पुष्टि करनेवाला निबंध उन्होंने भेजा था। उनकी नूतन तथा अत्यंत साधार खोज यह थी कि नार्वे जैसा देश नार्वेकर बनिया लोगों का ही उपनिवेश है। प्रमाण? बहुत ही ठोस प्रमाण था। गोमांतक स्थित नार्वे कस्बे के बनिया लोग उधर जाते हुए अगर उस देश को न बसाते तो दूसरे लोगों को क्या पड़ी थी नार्वे नामाभिधान करने की? उसपर भारतीय वैश्य सूर्योपासक, तो नार्वे राष्ट्र भी मूलतः सूर्योपासक। परंतु नार्वेकर की यह अनूठी, अनमोल खोज प्रसिद्ध होते ही एक देशाभिमानशून्य दुष्ट ने उसी नामाभिधान के प्रमाण को आगे बढ़ाते हुए एक बिलकुल विपरीत सिद्धांत प्रस्तुत किया। वह इस प्रकार है—नार्वे देशवासी लोगों ने गोमांतक में घुसकर नार्वे कस्बा प्रस्थापित किया, अर्थात् नार्वेकर विदेशी जाति है। यह बिलकुल भारतीय नहीं है—जैसे चितपावन। 'आर्य लोग उत्तर ध्रुव से भारत में आ गए' यह प्रतिपादित करनेवाली स्वाभिमानशून्य दुष्टता की यह प्रवृत्ति ही, मेरी इस स्थापना को कि 'नार्वे देश हम भारतीय नार्वेकर वैश्यों का उपनिवेश है' काटने की निर्दयता दिखा रही है। नार्वे के विदेशी लोगों से भारतीय नार्वेकर वैश्यों की उत्पत्ति हुई है, यह विधान निरा देशद्रोह है। इस प्रकार कठोर शब्दों में श्री नार्वेकर ने अपने निबंध में इन आक्षेपकों को आड़े हाथ लिया था। उसी विवाद की

आज सम्मेलन में चर्चा होनेवाली थी। अतः घमासान महाभारत का छिड़ना स्वाभाविक तथा अटल ही था।

इस प्रकार अनेक अभूतपूर्व ऐतिहासिक खोजों का निर्णय इस सम्मेलन में होनेवाला था। इसी बात के अहसास से कि उस सम्मेलन का महत्त्व भी अभूतपूर्व है, हर इतिहास-अन्वेषक उस मंडप में समय से पूर्व उपस्थित होकर बड़ी आतुरता के साथ सम्मेलन के प्रारंभ की प्रतिक्षा कर रहा था।

आखिर ललकारों तथा जयघोषों के धूमधड़ाके के साथ नियोजित अध्यक्ष महोदय राय साहब, धुरंधर ज्ञानवृद्ध होने के कारण मुसकान की एक रेखा भी प्रदर्शित न करते हुए, वयोवृद्ध होने के कारण लचकते, लँगड़ाते हुए जब सभा-स्थल में आ गए, तब सम्मेलन का आरंभ हुआ।

अध्यक्षीय भाषण

अध्यक्ष महोदय राय साहब धुरंधर ने गंभीरतापूर्वक, जो ज्ञानियों तथा वयोवृद्धों को ही शोभा देती है, हर शब्द ठिठकते-ठुमकते थमकर, जैसे गुड़ की भेली काँटे पर चढ़ाकर और नाप-तौलकर उठाकर फेंक दी जाए—मुँह से निकालते हुए कहा—

''जंटलमन एंड लेडीज! मुझे टाइम न होने के बावजूद केवल आप लोगों के फ्रेंडली प्रेशर की खातिर ही मैं यह प्रेसिडेंट की चेअर अॅक्सेप्टता हूँ। इस कांफरंस का इंपोर्टेन्स बिलकुल यूनिक है। मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ कि यह आप सभी के मन पर इंप्रेसना चाहिए। मेरा स्पीच आप अटेंटिवली लीसनें (लिसन करें।) (लोग हँसते हैं।) वॉट सायलेंस। क्या वाहियात जैसे बिहेवते हैं। (लोग हँसते-हँसते लोटपोट हो जाते हैं।) मैं अंग्रेजी वर्ब्ज यूजता हूँ, इसलिए न? अजी, मराठी में मुसलमानी तथा अंग्रेजी नाउंस एंड अॅडजेक्टिव्स् को जोड़कर, वृद्धि करके अपनी मराठी लंग्वेज रिच करने का महत्कार्य आज तक कई लोग करते आए हैं। बट, आप बिलकुल फॉरगेटते हैं कि मराठी भाषा यदि किसीमें पूअर है तो वह वर्ब्ज में। अपनी मदर लंग्वेज पर यदि आप गर्व करते हैं, वही यूजफुल प्रोसेस जो आप प्रयोग करते हैं, आगे खदेड़कर यदि मैं अंग्रेजी वर्ब्ज भी मराठी में बोलने लगूँ तो इसमें मराठी का हित नहीं है? जिस तरह आप अपनी मदरलैंड में मुसलमान, ज्यू, अंग्रेज, पोर्तुगीज प्रभृति जो भी फिरंगी आता है, उस विदेशी को बंधु-प्रेम से रिसीवते हैं और उसके योग से हमारा नेशन विश्व के सरायखाने की तरह शोभायमान हो रहा है।—आय नो, वीकेड पीपल उसे विश्व का कूड़ाखाना संबोधित कर उसकी हेठी करते हैं। पर दॅट्स ऑल नॉनसेन्स। इसी प्रकार अंग्रेजी, जर्मन, फारसी, अरबी, अंदमानी, नेग्रिटो प्रभृति तमाम लंग्वेजांतर्गत लाखों वर्डों को

हमारी मराठी भाषा को जोड़ देते हुए हमें चाहिए कि हम अपनी मदरटंग को वर्ल्डटंग बना डालें। (तालियाँ)। चिपलूणकर शास्त्री इसलिए मराठी भाषा के शिवाजी सिद्ध होते हैं कि उन्होंने केवल मराठी भाषा की रक्षा की। तो फिर हम मराठी में इन वेरियस फॉरेन नाउंस, अॅडजेक्टिव्ज, अॅडवर्ब्ज, वर्ब्ज को शामिल करके बाजीराव क्यों न बनें? (तालियाँ) अंग्रेजी वर्ब्ज की जोड़ मराठी को देकर, उन्हें पाटकर अपनी इस मदरटंग की क्रियाओं की गरीबी हटाने का मैंने बिलकुल रिजॉल्वाया है। (आवेश के जोश में वे हाँफने लगते हैं और श्री तत्त्वेजी को हाथ से ही संकेत करते हैं कि 'अब आप अपना प्रमुख प्रस्ताव प्रस्तुत करें।') इसके साथ ही श्री तत्त्वे उठते-उठते उठकर बोलने लगते हैं—

श्री तत्त्वे : मैं व्यर्थ बातें करनेवाला व्यक्ति नहीं हूँ। किसी भी मामले में बस ठीक सारतत्त्व ही बताता हूँ। आज का यह सम्मेलन अनूठा क्यों है? अध्यक्ष महोदय ने मराठी के क्रियापदों के अभाव का निवारण करने के लिए अंग्रेजी क्रियापदों को लेने का जो उपक्रम किया, उससे यह सम्मेलन अनूठा सिद्ध नहीं होता। यह सत्य है कि मराठी भाषा क्रियापदों के मामले में गरीब है—वैसे सभी प्राकृत भाषाएँ वैसी ही हैं। हमारी संस्कृत भाषा अन्य किसी भी संपदा की तरह क्रियापद-संपदा में भी अंग्रेजी से हार माननेवाली नहीं है। अत: मराठी में क्रियापद जो लेने हैं, वे अपनी ही संस्कृत भाषा की अगाध निधि से लिये जाएँ। यह कुबेर का धन, घर में होते हुए भला दूसरे के दर पर भीख माँगने की क्या आवश्यकता? उनके बचकाने उच्चारण के साथ मुँह बिचकाते हुए घूमने पर हमें शरम आनी चाहिए। *(अध्यक्ष—बस! स्टुपिड)*। तत्त्व यह है कि अपनी संस्कृत, प्राकृत भाषाओं में जो शब्द हैं या जो निर्मित किए जा सकते हैं उन्हें दुत्कारकर मारते, नामशेष करते फादर, मदर, कायदा, तह, हयात, कबूल आदि अनावश्यक विदेशी शब्दों का प्रयोग नहीं किया जाए। पर जो शब्द हमारी भाषा में बिलकुल नहीं हैं, उन्हें सुखपूर्वक अपनाया जाए—जैसेकि—बूट, कोट, जाकिट, पुडिंग, गुलाब आदि। परंतु *(अध्यक्ष—वह विषय ड्रापो, स्टॉपिट।)* खैर, मैं सिर्फ मार्के की बात बताता हूँ। हमारे ऐतिहासिक अनुसंधानकर्ता महामंडल की विशेष कारीगरी, जो आज तक पूरे भूतल पर किसी भी ऐतिहासिक मंडल ने नहीं की—आज तक सभी इतिहास अनुसंधानकर्ता मंडल तथा सरकार ऐतिहासिक कागजात, प्रशस्ति

प्रभृति साधनों की सुरक्षा का एकांगी कार्य ही करते आए हैं। परंतु एक तरफ हमारे ऐतिहासिक अनुसंधानकर्ता मंडल को वह साधारण कार्य करने के साथ-साथ, दूसरी तरफ ऐतिहासिक साधनों का निर्दलन करने का सत्कार्य भी संपन्न करते रहना चाहिए।

विश्व के आरंभ काल से यह युक्ति किसीको भी नहीं सूझी। इस कार्य में मुसलिम विजेताओं ने, और कुछ लोगों के अनुसार ग्रंड डफ साहब ने भी थोड़ा-बहुत कार्य किया है, परंतु वे उसका तत्त्व जान नहीं पाए। अपना कार्य साध्य करने के लिए उन्होंने स्वार्थवश प्राचीन ग्रंथ, कागजात आदि का सर्वनाश कर दिया, और अन्वेषण को कर्तव्य समझकर निरपेक्ष, निष्काम बुद्धि से कार्य नहीं किया। उस तत्त्व का बोध सिर्फ मुझे हो पाया। यह तो इतिहास अनुसंधानशास्त्र तथा कला पर मैंने एक उपकार ही किया है। अत: संक्षेप में मेरा प्रस्ताव इस प्रकार है—हम लोग 'ऐतिहासिक साधन निर्दलक समिति' नामक अपना एक स्वतंत्र विभाग स्थापित करके सिर्फ वे पुराने कागजात ही नहीं जो आज प्राचीन सिद्ध होते हैं, अपितु वर्तमान महत्त्वपूर्ण ग्रंथों, उन कागजात को—जो कल प्राचीन सिद्ध होंगे—फाड़कर-तोड़कर, जलाकर उनका सर्वनाश करने का अभियान शुरू करें। *(शेम! ब्रेवो! स्वीकार! धिक्कार! बोलिए! बैठ जाइए! आदि गर्जनाओं की उलटी-सीधी बौछारों से सभा गूँज उठती है। अध्यक्ष महोदय घंटी बजाकर हिदायत देते हैं—'हाँ, हाँ, स्पीकर को बीच में इंटरप्टना नहीं चाहिए।')* मुझे व्यर्थ बातें करने की आदत नहीं है। बस मैंने पते की बात ही कही। शेष स्पष्टीकरण अनुमोदकजी करेंगे। मेरा भाषण समाप्त हुआ।

अनुमोदक श्री उलगडे ने कहा :

सज्जनो! यह स्वाभाविक ही है कि आपमें से कुछ लोगों को श्री तत्त्वे का 'ऐतिहासिक साधन निर्दलक मंडल' प्रस्थापित करने का प्रस्ताव सुनकर अच्छा नहीं लगा। परंतु इस बात का स्मरण रखें कि यह प्रस्ताव यह नहीं कहता कि 'इतिहास साधन संरक्षण कार्य' छोड़ दिया जाए। तनिक याद कीजिए कि हमारे महामंडल ने प्राचीन वस्तु सुरक्षार्थ कितनी एड़ी-चोटी एक की है। प्राचीन कागजात, प्रशस्ति-साधन—अग्नि-जल-वायु प्रभृति के उत्पातों में भी सही-सलामत रहें, इसलिए विश्व के ऐतिहासिक संशोधकों ने

आज तक अधिक-से-अधिक पक्की जुड़ाई से बने पत्थरों के मजबूत संग्रहालय बनाए, फौलादी अलमारियाँ रखीं—वह भी ढह जाती हैं, इसलिए कई लोगों ने किसी प्रचंड पर्वत के पेट में सुरंग बनाकर उसमें विश्व की सभी महत्त्वपूर्ण प्राचीन वस्तुएँ जतन करने की किल्ली ऐंठी। परंतु प्रचंड भूचाल, जलजलों के उत्पात में उस पर्वत की गर्भस्थ सुरंग भी डाँवाँडोल होकर ढह जाती हैं। इस आपत्ति को भी टालने के लिए हमने आजकल हवाई जहाजनुमा विशाल आकाश दुर्ग, जो हमेशा आकाश में तैरता रहे, अंतरिक्ष में बनाकर उसमें वेदकालीन वस्तुओं से लेकर ठेठ आधुनिक बनिये की चौपड़ियों तक तमाम ऐतिहासिक कागजात पटादि साधनों का संग्रह किया जाए—इस प्रकार की योजना विश्व के सामने प्रस्तुत नहीं की। अत: जाहिर है कि ऐतिहासिक साधन-सुरक्षा का कार्य एक तरफ रखने में हमने कोई कसर नहीं छोड़ी, परंतु वह कार्य एक तरफ करते रहने के साथ-साथ ही कुछ ही मात्रा में क्यों न हो अब हमें ऐतिहासिक साधनों का विनाश करने का भी कार्य करना होगा, वरना भविष्यकालीन पीढ़ियों में ऐतिहासिक अनुसंधान का विकास बिलकुल बंद होने का संकट आए बिना नहीं रहेगा—यह बात आप कैसे भूल रहे हैं? मान लीजिए कालिदास ने एक ऐसा श्लोक लिखा होता जिसमें उसके जन्म-मृत्यु का स्थान निश्चित रूप में बताया गया हो—आज वह श्लोक उपलब्ध होता तो महाराज, हमारे इस ऐतिहासिक अनुसंधानशास्त्र का कितना नुकसान होता? फिर कालिदास की जन्मभूमि को पहला कश्मीर, दूसरा बंगाल, तीसरा उज्जयिनी, तो चौथा रामटेक होने का जो दावा करता है और कहता है कि यह पहेली बुझाने में हमें कितना आनंद आता है—इस आनंद से उन्हें हम वंचित नहीं करते? इस प्रकार हम एक श्लोक से कितनी सारी बुद्धि-स्वतंत्रता से वंचित होते हैं। परंतु उस कवि कुलगुरु ने दूरदृष्टि-वृत्ति द्वारा इस तरह का कोई श्लोक लिखा नहीं अथवा उस तरह का श्लोक अन्य लोगों ने सुरक्षित नहीं रखा। इसी कारण हमारी बुद्धि इस मामले में इतनी स्वतंत्र है कि इस तरह का प्रतिपादन करने के लिए हमारे अनुसंधानकर्ताओं की प्रतिभा को रोकने का साहस किसी माई के लाल में नहीं कि कालिदास की जन्मभू श्रीलंका थी।

पेशवा का दफ्तर आज जितना अधिक अक्षुण्ण है, उतना यदि राजगृह के बिंदुसार प्रभृति राजा का अथवा मौर्य का कार्यालय अबाधित रहता तो तमाम बुद्धकालीन अनुसंधान मंडल दिवालिया हो जाते, दिवालिया! एक प्रतिभाशाली पश्चिमी इतिहास अनुसंधानकर्ता ने जिस प्रकार यह प्रश्न उपस्थित किया है कि बुद्ध जैसा कोई मनुष्य नहीं था—उसकी संपूर्ण कथा सूरज पर विरचित एक रूपक है, उसी प्रकार एक प्रश्न पूछकर उसका हल ढूँढ़ने में अनुसंधानकर्ता को रम्याद्‌भुत आनंद मिलता है, उससे हम पूर्णतया वंचित नहीं होते? चंद्रगुप्त था और उसका घोड़ा भी अस्तित्व में था। बस इतनी ही जानकारी प्रचलित रखते हुए शेष सारी जानकारी गुम करा दी गई। इसीलिए तो आज के समारोह में इस रम्याद्‌भुत विवाद का आनंद हम उठा रहे हैं न कि चंद्रगुप्त के घोड़े की पूँछ कितनी लंबी थी? अजी, इतिहास अनुसंधानशास्त्र का इसीलिए विनाश नहीं हुआ कि इतिहास के साधनों का निरंतर विनाश होता गया। इतिहास के साधनों का विनाश नहीं किया गया तो यह पत्थर की लकीर समझें कि इतिहास अनुसंधानशास्त्र के बारह बज ही गए। ज्ञानेश्वर एक थे या दस? शिवाजी महाराज की जन्मतिथि क्या है? शिवाजी महाराज लिखना-पढ़ना जानते थे या उनके लिए काला अक्षर भैंस बराबर था? आदि पहेलियाँ बुझाते समय मनुष्य जाति को अप्रतिम आनंद का लाभ होता है। यदि नाना फड़नवीस की तरह शिवाजी महाराज की निश्चित लिखावट कौड़ी की तीन और आसानी से उपलब्ध होती तो उस काव्यमय आनंद से हमें वंचित होना नहीं पड़ता? रामदास नामक किसी और साधु-संत के संदेहास्पद चरित्र उस पीढ़ी ने लिखने की बुद्धिमानी नहीं दिखाई, इसलिए आज हमें रामदास एक ही या इक्कीस जैसे विवाद के हृदयंगम किए जानेवाले गोरखधंधे से वंचित होना पड़ रहा है। इतिहास अनुसंधान सर्वस्व जतन करने का अर्थ है—जिस डाली पर इतिहास अनुसंधानकर्ताओं का अस्तित्व डटा रहा है, स्थिर रहा है, उस डाली को ही तोड़ डालने की आत्मघाती मूर्खता करना, स्वयं ही अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारना। इसलिए मेरी ठोस राय यह है कि 'हर शताब्दी के अंत में इस सदी के ऐतिहासिक कागजात का आंशिक विनाश किया जाए।

उदाहरण के तौर पर तिलकजी को लीजिए। इतनी महान् हस्ती यदि इस शताब्दी में पैदा हुई और उनसे संबंधित इतिहास अनुसंधान के लिए अगली पीढ़ी के लिए यदि हमने कोई अवसर नहीं रखा तो जिस तरह हमें ज्ञानेश्वर एक या दो—जैसी पहेलियाँ बुझाते समय जो आनंद मिलता है, उस रम्याद्‌भुत आनंद से नई पीढ़ी को वंचित रखने का पाप क्या हमसे नहीं होगा ? परंतु तिलकजी का केलकरकृत विस्तृत चरित्र वैसे ही स्थिर रखने से भावी इतिहास अनुसंधानकर्ताओं को अपनी प्रतिभा का प्रयोग करने के लिए कुछ खास गुंजाइश रहेगी ही नहीं। इसलिए केलकर चरित्र का इस शताब्दी के अंत में विनाश किया जाए। तिलकजी की कम-से-कम अलग-अलग चार-पाँच जन्म-पत्रिकाएँ बनाकर रखी जाएँ। ई. सन् ठीक लिखा तो शक गलत लिखा हुआ, शक सही हो तो महीना गलत, शक-महीने का तालमेल सही हो तो किसी भी तिथि का कोई भी दिन लिखा हुआ, उसी तरह कहीं केसरीकार तिलक कवि थे, इस तरह का उल्लेख, तो कहीं तिलक बंदीशाला में कैद किए गए इस प्रकार के उल्लेखों की बखरों[१] के दस-बीस पन्ने लिखकर उनका ठीक-ठाक जतन करें। तिलकजी के पुतले पर अंकित कुछ अक्षरों को रगड़-रगड़कर मिटाया जाए। ई. सन् अठारह सौ रखते हुए छप्पन की संख्या रगड़कर नष्ट की जाए, ताकि, रेवरड तिलक तथा लोकमान्य तिलक एक या दो, जन्मतिथि यह सही है या वह, तिलकजी का 'केसरी' वृत्तपत्र था कि उन्होंने सत्य ही एक पालतू सिंह गायकवाड़ हवेली में *(तिलकजी का घर)* बाँधकर रखा हुआ था, इस तरह के विविध मनोरंजक प्रश्न भावी पीढ़ियों का[२] व्यापार बनेंगे और इतिहास अनुसंधानकर्ता तथा अनुसंधित्सु बेरोजगारीवश भूखा नहीं मरेंगे। भई और क्या कहूँ? यदि हम कुशलतापूर्वक चालाकी से इतिहासांतर्गत कुछ नाम-गाँव-आख्यायिकाएँ तथा आख्यानों को ताश के पत्तों की तरह फेंटकर शेष साधन गुम करने में सफल हो गए तो, जिस तरह आज यह एक मनोरंजक पहेली है

---

१. बखर—ऐतिहासिक अभिलेख या तवारीख।

२. भावी पीढ़ियों के इतिहास अनुसंधानकर्ताओं की प्रतिभा का खाद्य बनेगा जैसे आज शिवजन्म तिथि की पहेली का आनंद हमारी पीढ़ी के अन्वेषक उठा रहे हैं।

कि कालिदास कौन से विक्रम के दरबार में था, उसी तरह पच्चीस पीढ़ियों के बाद—यही एक जटिल समस्या होगी कि तिलक किस शिवाजी महाराज के पक्ष में लड़े? वह शिवाजी महाराज कौन थे? रायगढ़वासी सतरहवीं सदी के प्रथम शिवाजी अथवा करवीरवासी उन्नीसवीं सदी के शिवाजी महाराज? उस भावी पीढ़ी के कोई जदुनाथ सरकार[१] जैसेकि तिलकजी को यह भी ज्ञात नहीं था कि राजनीति किस चिड़िया का नाम है, वे बेचारे ज्ञानेश्वर महाराज सदृश ही गीताभ्यास के रचनाकार वेदाभ्यास जड़ पुराणिक थे, वे शिवाजी महाराज के दरबार में थे। इस विधान का निर्विवाद प्रमाण गीता-रहस्यांतगर्त स्वयं तिलक कथित अपना उल्लेख *(उसकी प्रस्तावना नष्ट करके तिलक कृत ऊपर के श्लोक ही रखे जाएँगे।)* वाली गंगाधरिश्चाहं तिलकानवयजो द्विज:। महाराष्ट्रे पुण्यपुरे वसन् शांडिल्यगोत्रभृत् श्रुतिरत। इस प्रकार इस श्लोक में भाष्यकार तिलकजी अपनी जानकारी स्वयं देते हैं। परंतु इसमें क्या वह पुराणिक कहता है कि राजनीति का क ख ग भी कभी उसने दखा है? अर्थात् इस गीता-भाष्यकार पंडित तिलक से राजनीतिज्ञ तिलक अवश्य ही कोई अलग व्यक्ति होगा।

अत: यदि आपकी मन से यही इच्छा हो कि इस प्रकार अत्यंत रम्याद्भुत क्रीड़ा से भावी पीढ़ियाँ वंचित न हों तथा यदि आपकी इसी तरह कोई दुष्टतापूर्ण इच्छा न हो कि हम इतिहास अनुसंधानकर्ता आगे चलकर निर्वंश हो जाएँ तो आप इस प्रस्ताव का समर्थन करें और हर इतिहास अनुसंधानकर्ता मंडल अपने एक उपमंडल को इतिहास साधन निर्दलक विभाग का कार्यभार ही सौंपे।

(तालियों की गड़गड़ाहट में इस प्रस्ताव को बिना किसी विरोध के सभा ने स्वीकार किया। लगे हाथ श्री तत्त्वे ने दूसरा प्रस्ताव प्रस्तुत किया।)

श्री तत्त्वे : मैं हर मामले का सार देखता हूँ। इतिहास अनुसंधानशास्त्र की संभवनीयता ही विश्व में किस प्रकार उत्पन्न हो सकी? इसलिए कि इतिहास के साधन बार-बार नष्ट हुआ करते हैं। मनु को आदि

१. जैसेकि आज रामदास संबंधित कुछ अन्वेषकों का प्रतिपादन है, हठपूर्वक यही प्रतिपादन करेंगे।

राजा माना जाता है। उससे लाखों राजा-महाराजाओं की निर्मिति हो गई, जैसेकि सभी सूर्यवंशी, चंद्रवंशी, यदुवंशी, पांडुवंशी, मौर्यवंशी, पांड्य, चेर, चोलकदेव, राठौर, गहलौत—हरे राम! सिर्फ वंशों के नाम लेते-लेते मेरी साँस उखड़ गई।

हर वंश की सौ-सौ पीढ़ियाँ! उन लाखों राजाओं के चरित्र—हर एक का नेपोलियन के चरित्र समान विस्तृत रूप में उपलब्ध होना और जिस प्रकार मॉर्ले ने ग्लेडस्टन का अति विशाल पोथा लिखा, उसी प्रकार इतनी विशाल अवधि के सभी प्रधानों के विस्तृत चरित्र आज उपलब्ध होते तो उन पुस्तकों के बोझ तले साक्षात् शेष महाराज भी धम से टूटकर रह जाते। उनकी वंशतालिका अंत तक बोलते-बोलते जीवन की इतिश्री हो जाती। एक संस्करणार्थ भी जीवन पूरा नहीं पड़ता। फिर काहे का अध्ययन? उसपर हर पीढ़ी के प्रमुख कवि, ज्योतिषी, शिल्पी, वैद्य, ऋषि, पुरोहित, कीर्तनकार आदि लोगों के आत्मकथ्य जीवंत रहते तो हर एक के लक्ष-लक्ष ग्रंथ लिखनेवाले ग्रंथकारों के मोटे-मोटे पोथे, साम्राज्य के दफ्तर, शतकोटि रामायण, कोटि-कोटि अभंग, हरेरामा में शैतान की आँत जैसी लंबी सूची! मृत व्यक्तियों के इतिहास की यह तमाम सामग्री रखने के लिए भूमि कम पड़ जाती और जीवित रहने के लिए अँगुली भर स्थान भी नहीं बचता। अत: इस विषय में ही सब ऐतिहासिक अनुसंधानकर्ताओं को महोत्सव मनाना चाहिए। जुलूस निकालना चाहिए कि प्राचीन ग्रंथ, चरित्र, प्रशस्ति, कागजात, वस्तु-वास्तु का निरंतर विनाश हो रहा था। परंतु तत्त्व कौन देखता है? इन जीर्ण-शीर्ण ताड़पत्रों को चूर-चूर करके इतिहास का विनाश करते हुए इतिहास अनुसंधानशास्त्र का अस्तित्व किसने संभवनीय बनाया, काल या समय ने—वक्त ने, इस विश्वशक्ति ने? अत: इस प्रस्ताव में जब आपने इस तत्त्व को भी स्वीकार किया है कि इतिहास निर्दलन भी इतिहास अनुसंधान का प्रमुख कर्तव्य है, तब हम इतिहास अन्वेषकों को सर्वप्रथम उस विनाश देवता—काल या समय को ही मनोयोग से धन्यवाद देना चाहिए? इतिहास अनुसंधानकर्ताओं का काल ही कुलदेवता है। आज तक इस तत्त्व का बोध न किए जाने के कारण किसी भी इतिहास अनुसंधानकर्ता मंडल ने काल का उपहार

नहीं माना है। वास्तव में यह अनूठा कार्य आज हमें करना होगा और इस प्रस्ताव द्वारा काल या समय को—जो ऐतिहासिक साधनों का भरपूर विनाश करता है—मन:पूर्वक धन्यवाद देते हुए हमें उऋण होना चाहिए। *(तालियाँ)*

श्री चित्ते : और दीमक ने भी। समय की तरह दीमक ने भी हमपर अनंत उपकार किए है। अत: उसे भी धन्यवाद देते हुए हमें उऋण होना चाहिए। समय राजा है, समय बड़ा बलवान है। पर इस कार्य में दीमक ही उसका अतिकुशल कर्मचारी है। इतिहास के प्रमुख साधन होते हैं राज्य के सुविशाल दफ्तर—जैसेकि पेशवा के हैं। उन्हें वज्रप्राय दुर्ग में फौलादी अलमारियों में सौ-सौ तालों में पूरा-पूरा सुरक्षित रखा जाता है कि समय भी उसे नष्ट करने में असमर्थ रहता है। पर समय का यह पिद्दा सा कर्मचारी पहरेदारों को भी बेखबर रखते हुए इस बात की कानोकान खबर भी नहीं लगने देता कि वह उन दफ्तरों में कब घुसा और कपड़े बँधे कागजात के पोथे सदृश दर्शनी ज्यों-की-त्यों रखकर भीतर से उसे किस तरह चाट-चाटकर चूर-चूर कर देता है। लाख प्रयासों के बावजूद सम्राटों के लिए भी यह एक अटल, अपरिहार्य संकट बना रहा। वाकई यह दीमक ऐतिहासिक कागजात की जिस तरह धज्जियाँ उड़ाती है, वह ऐतिहासक अन्वेषकों की मनचाही ही होती है। वह संपूर्ण कागज नष्ट नहीं करेगी, बीच-बीच के अक्षर चबा जाएगी। वह भी इस कुशलता से कि जिज्ञासावश तड़ाक से आँखें खुल जाएँ, मुँह से ऐसी चीख निकले कि बिच्छू ने डंक मारा हो। बाजीराव प्रभृति वाक्यों में से शेष तमाम शब्द चाटेगी, पर 'बाजी' को ज्यों-की-त्यों रखेगी, ताकि हम यह पहेली बूझते रहें—इन कागजात में जो बाजी है वह बाजी घोरपड़े है या बाजी प्रभु देशपांडे? पहला बाजीराव कि दूसरा। दीमक ठीक वही खेल करती है जैसे किसी पहेली पर थोड़ी सी रोशनी डाली जाती है, लेकिन पूरी बताई नहीं जाती। यूँ लगता है कि दीमक जैसा यह तुच्छ कीड़ा पूर्व जन्म का कोई मर्मज्ञ इतिहासान्वेषक ही होगा।

इसलिए मेरा कहना है, ऐतिहासिक साधन निर्दलक काल की प्रत्यक्ष मूर्ति दीमक है; जैसे पराक्रम और वीरता की मूर्ति सिंह है। अत: दीमक के रूप का एक पुतला उभारकर उसीकी हमारे इस

आज स्थापित किए गए नूतन तथा ऐतिहासिक साधन निर्दलक उपमंडल में देवता स्वरूप नित्य पूजा-अर्चना की जाए। *(तालियाँ।)*

ये दोनों प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित होते ही अध्यक्ष महोदय ने अँगड़ाई लेते हुए उठकर कहा, ''अब बहुत लेट हो चुका है। बाकी कामकाज हम टुमारो की मीटिंग में रिज्यूमेंगे। मैं आज की यह मीटिंग अब क्लोजता हूँ *(बरखास्त करता हूँ)*।''

□

नारद पुनः पृथ्वी पर

सुरलोक में ई.स. के अनुसार ता. १९ जुलाई, सन् १९३५ को शुक्रवार के दिन सुरसम्राट् इंद्र ने कुल देवी-देवताओं को राजसभा में बुलवाया। सारे देवगणों के अपने-अपने स्थानों पर अधिष्ठित होने के उपरांत देवाधीश इंद्र ने कहा, "महर्षि नारद कहाँ हैं?"

इतने में सुरीले संगीत से वातावरण गूँज उठा और महर्षि नारद देवसभा के बीचोबीच प्रकट हो गए—

जिनकी वीणा की वाहवाही डोले दिशा-दिशा में।
तारका जटित बाजे खड़ाऊँ जिनके चरणों में॥

सुरपति इंद्र : महर्षि नारद, त्रिभुवन में निरंतर संचार करते हुए प्रतिदिन का वृत्त सुरसभा में निवेदन करना आपका पूर्वापर कर्तव्य है। फिर भला यह कैसे हुआ कि आपने गत सहस्र-डेढ़-सहस्र मानव वर्षों से अपना पृथ्वी संबंधित एक भी प्रतिवृत्त *(रिपोर्ट)* नहीं भेजा? पृथ्वी का स्वर्ग से संपर्क लगभग टूट सा गया है। न हमारा समाचार उन्हें मिलता है, न उनका समाचार हमें। सुर तथा मानव में पहले कितना गहरा संबंध था। पृथ्वी पर बड़े-बड़े संग्राम ही नहीं, अपितु साधारण गृहकार्य भी हम देवतागणों को जब तक सुपारी नहीं दी जाती, तब तक नहीं हुआ करते। हमारे स्वर्ग में हुई उथल-पुथल की भी उन्हें निरंतर जानकारी होती रहती थी। मानव के—और उसमें भी उस यज्ञीय भारत के प्रति—किसी भी मामले में आपको कितनी आत्मीयता, कितना ममत्व हुआ करता था। विशेषतः बड़े-बड़े संग्रामों से लेकर नन्हे-मुन्नों के नोंचने-खसोटने तक आप स्वयं उपस्थित रहकर इस बात का पर्यवेक्षण करते रहते थे कि सभी कलह-टंटे-बखेड़े यथाशास्त्र निपटाए जा रहे हैं या नहीं। फिर

सारी कहानियाँ आप हमें सुंदर सुचारु संस्कृत अनुष्टुप *(एक छंद)* में बताते। हम देवतागणों का भरपूर मनोरंजन होता। सुर-मानव का वह स्नेह-ममत्व संबंध आप पुन: जोड़ दीजिए न! हमारी यही इच्छा है कि आप पूर्ववत् मृत्युलोक जाते रहें तथा मनुष्यों के प्रत्येक वृत्त हमें बताते रहें। इस बात के तो अवश्य समाचार देते रहें कि पृथ्वी पर देवतागण संबंधित कैसी-कैसी बातें की जाती हैं।

सुरेंद्र का भाषण सुनकर दो-चार रुद्र नाराज होकर कहने लगे, ''यह अच्छा ही है कि देवलोक और मृत्युलोक का परस्पर संबंध टूट रहा है। भला वे हमारी किस काम में सहायता करते हैं? मानव बड़े उद्दंड हो गए हैं। उन्होंने देवताओं को पूरी तरह भुला दिया है। पहले यज्ञ के हमारे हिस्से हमें ठीक-ठाक पहुँचा दिए जाते थे, हम भी उनका कुशलक्षेम पूछा करते थे, उनका कल्याण करते थे। परंतु आजकल उन्होंने कर भार देना बिलकुल ही बंद कर दिया है। न चौथाई, न सरदेशमुखी।[१] ग्रीकों के स्थंडिल कब के बुझ चुके हैं, पारसीकों की अग्नि बुझ चुकी, आर्य भी अनार्य हो गए। अजी, जिस भारतवर्ष से हमेशा देवताओं के मुख-अग्नि को सुगंधि तथा ताजा घी के हौज और स्वादिष्ट मांस के ढेर-के-ढेर अर्पित किए जाते थे, उसी भारत से पिछले पूरे वर्ष में कुरुंदवाड़ की डाक से सिर्फ एक बकरा ही भेजा गया। चार-पाँच मनुष्यों के लिए भी जो मांस पूरा नहीं पड़ सकता, उसमें भला तैंतीस कोटि देवताओं की पेट की आग कैसे बुझ सकती है? क्या वे हमारा मजाक नहीं उड़ा रहे हैं? और नहीं तो क्या? ऐसे मानव प्राणी के साथ ममत्व का संबंध भला क्यों रखा जाए? इंद्रराज, भारतवर्ष से तो अभी तक प्रतिवर्ष थोड़ी-बहुत अजाहुति तथा अजमांस की रसद मिलती है पर उन उद्दंड, घमंडी तथा नास्तिक यूरोप, अमेरिका और खासकर रूस को तो देखिए, देखिए तो इनका साहस! देव मुखास्पद अग्नि में प्रत्येक जन्म-मृत्यु प्रवासयुद्ध प्रभृति प्रसंगवश सुरुचिर आज्य तथा अजमांस अर्पण करने की बजाय ये उसमें कोयलों तथा पेट्रोल का ईंधन डालते रहे। इंद्रराज, ममत्व संबंध का तो नाम ही छोड़ दें।

---

१. मराठों द्वारा मुगलों पर लगाया गया एक कर, जो राजस्व का दस या साढ़े बारह प्रतिशत होता था।

सुरलोक की किश्त पिछले सहस्र वर्षों से जमा हो गई है, उसे वसूल करने के लिए यदि मनुष्य से संबंध रखना है तो वह मात्र युद्ध, जलजला तथा आगजनी से ही।''

रुद्रवंशीय देवता का यह आवेशपूर्ण भाषण सुनकर इंद्र ने शांत, ठंडे स्वर में कहा, ''कुछ भी हो, मनुष्य हमारी ही संतान हैं। भई, उनसे नाराज होने से कैसे चलेगा? आप इस तरह आपे से बाहर क्यों हो रहे हैं, जैसेकि सोमरस का प्याला चढ़ाकर आए हों।''

नारद : देवेंद्र, आपसे सत्य कहा जाए तो कड़ुवा सत्य यह है कि अब हमें वसूल करने का समय आ गया है। पुन: रूसी आदि लोगों में अब विज्ञान नामक एक नया भगवान् अवतीर्ण हो गया है। वह हमारे विद्युत्, मरुत्, वरुण, भैरव, मरीमाता, म्हसोबा आदि देवताओं के सारे पराक्रमों, करामातों को बिना रिश्वत लिये नियमित रूप से तथा निरपेक्ष भाव से घड़ी के अनुसार कर सकता है—वह भी घड़ी के अनुसार अचूक। भले ही हम देवता हैं, तथापि प्रकृति के जिन नियमों से हम बद्ध हैं, उन नियमों को ही इस विज्ञान ने मानव को धीरे-धीरे सिखाना शुरू किया है। हमारे कितने सारे पोल उसने खोले हैं। शायद श्रीविष्णु का उद्देश्य यह है कि उस विज्ञान के ही प्रभाव को धीरे-धीरे समस्त मानव जाति को सौंप दिया जाए और जैसे पुराने देवताओं ने पृथ्वी लोक से विदा ली, उसी तरह आप भी ले लें। बस, पुराने परिचय का स्नेह-संबंध आप मुनष्य से रखें।

इंद्र : बस, अब यही उचित है। अच्छा, नारदजी, आपने पिछले सहस्र वर्षों से पृथ्वी पर कदम नहीं रखा, भला वह क्यों?

नारद : उसका यूँ ही एक कारण था। मेरे बारे में भी उनकी कुछ मिथ्या धारणा हो गई थी। क्या करूँ?

'यही है सारे कलह की जड़' कहते कलह प्रियजन।
इसी किंवदंती को सत्य माने बहुजन॥

प्राचीन काल में जब उनकी हाथापाई हुआ करती, मैं बस वहाँ खड़े-खड़े तमाशा देखा करता। परंतु—

मैं ही क्यों? कलह का मजा किसे न भाए?
पर आजकल उसका भी नाम न लें।
लोकार्थ यत्नरत नारद अल्प प्रशंसनीय होता।
पर प्रमाद से यदि कलह हो, बनती प्रदीर्घ गाथा॥

अत: मैंने वहाँ जाना ही छोड़ दिया। तथापि जब उनमें 'तू-तू मैं-मैं' तथा गुत्थमगुत्थी जारी ही रही, तब भला वे किस मुँह से कहते कि महर्षि नारद ही हमारे कलह की जड़ हैं—बड़े कलियारी हैं वे। इसीलिए तो जर्मन महायुद्ध में मैंने बिलकुल चीं-चपड़ नहीं की, न कैसर से मिला न ही जार से, न ही लेनिन से। अंतर्ज्ञान से मैं सारी लतही देख रहा था और हँसते-हँसते लोटपोट हो रहा था।

इंद्र : अब आपके बिना भी वे तब तक अच्छी तरह से लड़ सकते हैं, जब तक एक-दूसरे का भुरकुस नहीं निकालते, अत: वे तब तक रुकेंगे भी नहीं जब तक आप कुछ खुराफात की जड़ नहीं बनते। खैर! अब आप नित्य नियमित रूप से मृत्युलोक पर पुन: जाया करें। देवताओं से संबंधित मानव की गलत धारणाएँ यथासंभव दूर करें। सारा वृत्तांत हमें देते रहें कि पृथ्वी पर लोग देवताओं के विषय में क्या धारणा रखते हैं। आपकी जानकारी के अनुसार हम एक परिपत्र *(सर्क्युलर)* सभी देवताओं में बाँटने की व्यवस्था करेंगे। नवयुगप्रवर्तक नवावतार विज्ञान जो भगवान् विष्णु ने धारण किया है, उसका प्रभुत्व मनुष्य-लोक पर स्थापित करने के पुण्यकार्यार्थ आप परिश्रम करेंगे ही।

□

अहिंसानंद और शब्दशास्त्री विवाद की चरम सीमा तक पहुँच चुके थे। उनकी बहस रंगत लाते-लाते अब तू-तड़ाक पर उतर आई थी। दोनों को यह स्वीकार था कि भूचाल देवताओं के प्रकोप का परिपाक है। परंतु उनके मतभेद का प्रमुख प्रश्न यह था कि इस वर्ष एकदम दो भयंकर भूचाल एक के पीछे एक, बेचारे भारतवर्ष पर भेजे गए! देवता का इतना प्रकोप क्योंकर हो गया?

शब्दशास्त्री : अजी अहिंसानंद, अस्पृश्यता शास्त्रशुद्ध तथा सनातन है। नित्य ही करोड़ों लोग उसका पालन करते हैं। संपूर्ण भारतवर्ष में उसका पालन किया जाता है। परंतु बिहार में इसी साल भूचाल आ गया अर्थात् ईश्वर के मनुष्य से इतना कुपित होने लायक कुछ विशेष पापमय घटना इसी वर्ष घटित हुई होगी। शास्त्राज्ञा सनातन होने के बावजूद अस्पृश्यता, इस हीन जाति की संपूर्ण कलुषता या भ्रष्टाचार समाज में अशुचिता फैलाए, ऐसी स्वतंत्रता दी गई। इतना ही नहीं अपितु भगवान् के मंदिर में भी अछूतों को प्रवेश प्राप्त कराने का

आपका पाखंडी आंदोलन जब इसी वर्ष शुरू हुआ, तब वही विशेष पाखंडी, पापी घटना होगी, जिससे भगवान् ने मानव जाति को भयंकर दंड दिया है, ताकि हमारी आँखें खुलें। अजी, भगवान् के घर का दंड कितना सत्वर एवं अचूक होता है, देखिए, गुरुवायुपुर के मंदिर में—कुत्तों से भी अधिक अशुद्ध तथा अमंगल अछूतों को ले जाने के लिए, उन्हें प्रवेश दिलवाने के लिए आप जैसे पापी लोग उस मंदिर के द्वार तक पहुँचे ही थे कि ईश्वर ने भयंकर भूचाल के जबड़े में पूरा-का-पूरा बिहार राज्य ढकेल दिया। गंगा मैया क्रोध से फुफकारती इस पापी भूलोक को त्यागकर स्वर्ग में वापस लौटने के लिए अंतरिक्ष में आधे से अधिक ऊँची उड़ गई। अतः यह स्पष्ट है कि महार, धेड़ *(कुछ अछूत जातियाँ)* को मंदिर में प्रवेश कराने का जो पापी उपक्रम आप लोगों ने किया, उससे अत्यंत प्रक्षुब्ध होकर ईश्वर ने मनुष्य को यह दंड दिया है। यदि भूकंपों को टालना है तो एक ही उपाय है—धर्मशास्त्रानुसार और सनातन रूढ़ि के अनुसार अस्पृश्यता का पालन करें। मंदिर प्रवेश के भ्रष्टाचार पर तुरंत पाबंदी लगाई जाए।

अहिंसानंद : अजी शब्दशास्त्री, उस सुधार आंदोलन को यदि हम तुरंत बंद कर दें तो आज जो भूचाल केवल बिहार में आया है, वह पूरे भारतखंड में फैल जाएगा। मात्र गंगा ही नहीं अपितु गोदावरी, कृष्णा, कावेरी, प्रत्येक स्रोत, झरना—इतना ही नहीं, नगर संस्था का हर गंदा नाला भी क्रोध से फूलकर कुप्पा हो जाएगा और ऊपर उछलेगा, आधुनिक नगर संस्थाओं की गंदगी, जिसकी तेज बदबू से साँस लेना दुश्वार हो गया है, सौ गुना और बढ़ेगी। सुधार जैसी घटना इस वर्ष की विशेष घटना नहीं है, जो भूचालकारक हो। आज तक आप जैसे अज्ञानियों को किसीने भी यह नहीं सिखाया कि अस्पृश्यता महापाप है—अतः अब तक आपका यह पाप निरुद्देश्य तथा अज्ञानजन्य होने के कारण तनिक क्षम्य था।

अब हमारे कहने के बावजूद कि वह पाप है, आपके कानों पर जूँ तक नहीं रेंगती, अतः वह पाप अक्षम्य सिद्ध हो गया। यही है वह भूकंपकारक विशेष घटना। आप लोगों ने यही जिद रखी कि अस्पृश्यता निवारण नहीं होने देंगे। मद्रास में गुरुवायुपुर का मंदिर अछूतों के लिए नहीं खोलेंगे। आपकी इसी हठ के परिणामस्वरूप

बिहार को भूकंप का भयंकर दंड भगवान् ने दिया।

शब्दशास्त्री : परंतु यदि इसलिए भूचाल का दंड हुआ कि हम अस्पृश्यता-निवारण नहीं करते तो वह दंड हम जैसे वर्णाश्रम-धर्माभिमानी नेताओं को होता, जो इस शास्त्र का धड़ल्ले से बाजे-गाजे के साथ उपदेश करते हैं। परंतु हमारे चारों शंकराचार्यों में से एक भी इस भूचाल के चंगुल में भला क्यों नहीं फँसा? उनके मठों का एक भी पत्थर नहीं ढहा। आपके अनुसार भूचाल इसलिए हुआ कि हमने मद्रास में गुरुवायुपुर अस्पृश्य के लिए खुला नहीं रखा। पर वह मंदिर इतना भी नहीं लुढ़का जितना वह मनुष्य लुढ़कता है, जिसे झपकियाँ आती हैं। साक्षात् जामोरिन—मंदिर प्रवेश विरोधी कट्टर महाराज—के मुँह पर बैठी मक्खी भी हड़बड़ाकर उड़न-छू हो जाए—इतना सा भी भूचाल उन तक नहीं पहुँचा।

अहिंसानंद : अजी शब्दशास्त्रीजी, आपके अनुसार यदि भूचाल इसलिए हुआ कि गुरुवायुपुर के तथा अन्य मंदिरों को अपवित्र करने के लिए हम सुधारवादी लोग प्रयास करते हैं, तो वे सुधारवादी जब उस समय उसी गुरुवायुपुर के मंदिर में बलात् नहीं, सत्याग्रह द्वारा घुस रहे थे, तब वह भूचाल उनकी छावनी में होना चाहिए था। परंतु अस्पृश्यता-निवारण तथा मंदिर प्रवेश की घोर प्रतिज्ञा के साथ गांधीजी प्रभृति जो सुधारवादी उस मंदिर के पास कुंडली मारकर बैठे हुए थे, उनके सामने रखा हुआ उस साधु दरिद्रनारायण को शोभादायी अंगूर, मक्खन, संतरे आदि गरीबों के जलपान का ढेर तनिक भी नहीं डगमगाए और डगमगाए भी तो वह ठीक-ठीक इनके मुख में यथाप्रमाण गिर जाए—इस प्रकार भगवान् ने उनका आतिथ्य भला कैसे किया? अस्पृश्यता निवारक नेता मद्रास में पाप करते हैं, बेचारे बिहारवासियों—उनके बाल-बच्चों, स्त्रियों को गंगा मैया के भूकंपीय सैलाब में डुबोनेवाला आपका यह भगवान् कहीं ठगों का सरदार तो नहीं था?

इतने में उन दोनों के बीच में महर्षि नारद अवतीर्ण हुए जो अब तक अदृश्यरूपेण यह संवाद सुन रहे थे। कुछ देर तक वे दोनों विस्मय से उन्हें देखते रहे, विस्मय का ज्वर कम होते ही दोनों ने उनका सादर अभिनंदन किया।

महर्षि नारद ने उन्हें आशीर्वाद देते हुए कहा, ''भई, आपके इस विवाद से आखिर कौन सा निष्कर्ष निकला?''

शब्दशास्त्री : मेरा कहना यही है और यही मेरा सिद्धांत है कि 'सनातन वर्णाश्रम की सीमा का उल्लंघन करके अछूतों को छूने में कोई आपत्ति नहीं, उन्हें भगवान् के मंदिर में प्रवेश दिया जाए', आदि पाखंडी मत का प्रचार करने से ही ईश्वर का प्रकोप हुआ है। और उसने भूचाल जैसी भीषण आपदा बिहार पर ढहाई।

अहिंसानंद : और मेरा यह सिद्धांत है कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी से अछूतों को जो अमानुषिक संत्रास, पीड़ा, यातनाएँ सहनी पड़ीं उससे क्रुद्ध होते हुए भगवान् ने बिहार को भूचाल जैसा भयंकर दंड दे दिया, स्पृश्यों की आँखें खोलीं ताकि भविष्य में इस तरह यातनाएँ देना बंद करके अस्पृश्यता-निवारण के साथ-साथ वे उनके लिए मंदिर के द्वार खोल दें।

नारद : परंतु अहिंसानंद, आपका यह भगवान् कोई सवासेर नादिरशाह ही होगा न, क्योंकि करोड़ों स्पृश्यों के पापों के कारण जो संपूर्ण भारत खंड में अस्पृश्यता का पालन करते हैं, बेचारे बिहारी अस्पृश्यों को बिना किसी पूर्व सूचना के रातोरात कत्ल कर दिया। फिर भी शब्दशास्त्री जैसे पंडित, जो काशी से रामेश्वर तक रहते हैं, राजे, महाराजे, अहिताग्नि, धर्मवीर, शंकराचार्य, वैष्णवाचार्य प्रभृति जो अस्पृश्यता के पाप के सबसे महान् अपराधी हैं, उनका बाल भी बाँका नहीं किया। उन अछूतों को तो बिहार में उस जलजले में प्राणहरण के साथ इतनी यातनाएँ दे दीं जितनी कि उन धर्माभिमानी स्पृश्यों ने भी नहीं दी थीं, जैसे एक चोर के अपराधार्थ, सज्जन संन्यासियों के साथ-ही-साथ समूचे नगर का विनाश किया जाए, है न? बड़ा सवाई नादिरशाह है यह आपका ईश्वर!

शब्दशास्त्री : वाह, नारदजी वाह! अच्छा सबक सिखाया इन सुधारवादियों को। मैंने भी यही प्रश्न किया था। क्यों अहिंसानंद, अब क्यों बोलती बंद हो गई?

नारद : और शब्दशास्त्रीजी, क्या आपको भी ईश्वर ने अपने हाथों से कोई छोटी सी चिट्ठी लिखी थी कि 'अस्पृश्यता-निवारक सुधारकों के पाखंड से प्रक्षुब्ध होकर ही मैं ईश्वर भूचाल द्वारा बिहार का सफाया करता हूँ।' यदि कोई ऐसी चिट्ठी आई हो अथवा शास्त्रार्थ द्वारा ही आप ईश्वर के तद्विषयक निश्चय का अटकलपच्चू लगा रहे हैं तो ईश्वर ने बिहार के भूचाल में चंद सुधारकों के साथ हजारों

वर्णधर्माभिमानी स्पृश्यों के भी प्राणहरण किए। इतना ही नहीं, स्पृश्यों के जो सैकड़ों मंदिर अपने भीतर अछूतों की छाया मात्र से अस्पृश्य रहते हुए सैकड़ों वर्ष पवित्र रहे, भगवान् की वही मूर्ति भी भूचाल की एक ठोकर मात्र से मटियामेट हो गई और रत्नागिरि का वह जाति-पाँति भंजक पतित पावन मंदिर ईश्वर ने सही-सलामत रखा, जिसमें अछूत सीधे गर्भगृह तक जाकर ब्राह्मणों के साथ रुद्र पठन करते हुए अपने हाथों से भगवान् का अभिषेक करते हैं; सैकड़ों, चमार-महार, ब्राह्मण-मराठा—जहाँ खुलेआम सहभोजन करते हैं। भला बताइए तो आपके इस भगवान् से—जो शास्त्रार्थ की मात्र खिल्ली उड़ाता है—कौन सा अस्पृश्यता-निवारक सुधारक अधिक पाखंडी है? सुधारवादियों जैसा ही पाखंडी? परंतु इसलिए कि आप अस्पृश्यता का पालन करते हैं, कोई भी सुधारक आप जैसे सनातनधर्मियों पर इतना कहर नहीं ढा सकता। इस तरह की जितनी आगजनी, हत्याएँ इसने की हैं, आपके बिहारी सनातनियों को भी चकनाचूर किया है। इसीलिए आपका यह भगवान् जो सुधारवादियों से भी सहस्र गुना अधिक क्रूर, नृशंस है—बताइए तो दानव है या देवता?

अहिंसानंद : वाह, नारद वाह! अच्छा सिर कुचल दिया आपने इस बक्की, शब्द-निष्ठ अस्पृश्य छलिए का। बड़े ही नक्कू बने फिरते हैं। मैं यही समझा रहा था, भई, भगवान् को अस्पृश्यता प्रिय नहीं—वह तो पतित पावन है, परंतु ये लोग अस्पृश्यों को कड़ी यातनाएँ देते हैं, उन्हें भगवान् के मंदिर में आने नहीं देते। इसलिए भगवान् ने क्रुद्ध होकर भूचाल का भयंकर दंड बिहार के लोगों को दे दिया। आबालवृद्धों, अबलाओं को भूमि में जिंदा गाड़ दिया। भहराते, गिरते पत्थरों के बोझ तले सैकड़ों सनातनधर्मियों को कुचल डाला, सैकड़ों लोगों को धधकती आग में भूनकर कोयला बना दिया। भई, ईश्वर का ही प्रकोप था वह।

नारद : अरेरे! अहिंसानंदजी! शराब के नशे में धुत् तथा फौं-फौं करते किसी शराबी की बात भी इतनी उखड़ी-पुखड़ी, रक्तरंजित तथा क्रूर नहीं होती। अजी, आप अहिंसानंद हैं न? और आपका वह ईश्वर इतना हिंसक, नृशंस? माँ की कोख में सोए हुए शिशुओं ने—जिनके मुँह से अभी दूध की गंध आ रही है—तो अस्पृश्यों

को यातनाएँ नहीं दी थीं न? फिर इस तरह सैकड़ों आसन्नप्रसवा माताओं, उनके सैकड़ों शिशुओं को, जो इस जगत् में पहला कदम रखकर दूध की पहली धार का प्राशन कर रहे थे, उस भूचाल ने बकासुर की तरह खून से सना अपना जबड़ा खोलकर खट से चबा लिया? जो भगवान् उस भूचाल के भयंकर संकट को दंडस्वरूप दे सकता है, हिंस्र, नृशंस, असुर भी उसके भक्त कहलाते हुए थरथराने लगते हैं, एवं गुणविशेष हिंसक भगवान् के भक्त कहलानेवाले आप जैसे अहिंसा के पुजारी या तो मिथ्याचारी हैं, ढपोरशंखी हैं, या महामूर्ख! उन बेचारे सनातनवादियों का बुद्धि परिवर्तन कर उन्हें अस्पृश्यता-निवारण की सद्बुद्धि प्रदान करने की शक्ति उस भगवान् में—यदि वह भगवान् ही हो तो—सोलह आने थी ही। क्षमाशील भगवान् ने ऐसा कुछ न करते हुए प्रथमतः उन्हें स्मृतियों की शिक्षा दी जो अस्पृश्यों को संत्रस्त करती हैं—इससे वे दुर्बुद्धि हो गए। इसके उपरांत इस दुर्बुद्धिवश, उनके हजारों जीवों के सिर उड़ा दिए, गला घोटकर प्राण हर लिये—बोलिए, यह देवता है या दानव? अच्छा, बताइए, क्वेटा के मुसलिमों में, जापान में, दक्षिण अमेरिका में तो हिंदुस्थान जैसी अस्पृश्यता नहीं है न?

दोनों : जी नहीं।

नारद : फिर भला वहाँ भूचाल क्यों आए?

अहिंसानंद : उनकी स्थिति का मैंने अभी तक अधिक अध्ययन नहीं किया। हो सकता है, उनके कुछ अन्य पाप हों।

शब्दशास्त्री : हो सकता है, सर्वरोग प्रतिबंधक पंचगव्य वे नियमित रूप से नहीं पीते हों। और 'सर्वारिष्ट शांति प्रीत्यर्थ', 'श्रीराम जय राम जय-जय राम' मंत्र कोटि बार वे नहीं जपते होंगे। राम नाम का प्रताप अरिष्ट शामक है।

नारद : आप हर अर्थी उठाते समय 'राम बोलो भाई राम' कहते—निरंतर राममंत्र का उच्चारण करते हुए श्मशान तक जाते हैं। पर श्मशान में अर्थी रखते ही वे तमाम मुर्दे क्या जीवित हो जाते हैं? हिंदुस्थान में आप युगों से इस मंत्र का जाप करते हैं, पर हिंदुस्थान पर ही आज विपत्तियों का जितना पहाड़ टूटा है, उतना विश्व में और कहीं भी नहीं।

अहिंसानंद : परंतु फिर भी भूचाल विद्या का मैंने आज तक गहराई में पैठकर जो अध्ययन किया उससे मैं दावे के साथ बस इतना कह सकता हूँ कि क्वेटा, जापान, दक्षिण अमेरिका प्रभृति देशों में प्रभु की प्रार्थना ठीक समय पर नहीं होती होगी। परिणामतः उधर भूचाल आते रहते हैं। हमारे अस्पृश्यता-निवारक केंद्र में जहाँ-जहाँ प्रभु की प्रार्थना समय पर होती है, वहाँ-वहाँ भूचाल नहीं हुआ। साबरमती, वर्धा अहिंसामय हो गए हैं, राष्ट्रीय सभा के अधिवेशन जहाँ-जहाँ हो गए उन स्थलों को छेड़ने का साहस भूचाल का नहीं हुआ। प्रार्थनावश प्रसन्न होकर ईश्वर भूचाल नहीं भेजता। यदि भूचाल की आपत्ति नहीं चाहते तो प्रार्थना करो। फिर भगवान् नाराज होकर भूचाल क्यों देंगे?

नारद : अहिंसानंदजी, किसी राज्यपाल को यदि आपने मानपत्र नहीं दिया इसीलिए वह राजधानी स्थित अबलाओं, बच्चों की हत्या करे तो उस राज्यपाल को क्या आप न्यायी, सत्वशील दयावान कहेंगे?

अहिंसानंद : कदापि नहीं। हम उसके क्रूर कर्मों के विरुद्ध प्रथमतः उसके द्वार पर लेटकर सत्याग्रह का आह्वान करेंगे, अन्न सत्याग्रह की घोषणा करेंगे, स्वयं भूख हड़ताल करके मर जाएँगे।

नारद : तो फिर जो भगवान्, जिन लोगों को उसकी प्रार्थना करने का विस्मरण होता है उनके साथ उन्हें भी मार डालता है जो प्रार्थना करते हैं, उसी तरह उन तमाम बालकों के साथ जो अभी दो शब्द भी स्पष्ट रूप से बोल नहीं सकते, नहीं जो अभी माँ की कोख में ही हैं—हजारों मासूम जनों की जानें भूचाल आदि भीषण संकटों की गदा के नीचे कुचलता है—वह ईश्वर है या दानव? अजी आप इस दयामय, सत्वशील, परम करुणामय, पतितपावन भगवान् के प्रति इस तरह कल्पनाओं का आरोपण करके अनजाने में क्यों न हो, देखिए तो कैसी विडंबना कर रहे हैं।

शब्दशास्त्री : फिर महर्षि नारद! वेद, अवेस्ता, पुराण, कुरान, बाइबिल, तालमद प्रभृति सभी ईश्वरीय धर्मग्रंथों में लिखा है कि भगवान् की प्रार्थना न करने पर वह स्वयं लोगों को सूखा, भूचाल, जल-प्रलय, अग्नि-प्रलय प्रभृति संकटों से घेरता है—वह क्या सारा मिथ्या है? बताइए न, इसमें कोई संदेह नहीं कि आपको हमसे अधिक धर्म-रहस्यों का अचूक ज्ञान है।

नारद : तो फिर ध्यान से सुनो, बताता हूँ। ये सारे ग्रंथ ईश्वर कथित अथवा ईश्वर ग्रथित नहीं हैं, मनुष्यकृत हैं। इसी सच्ची भावना से कि मनुष्य के 'अंतर्मन की आवाज', 'अंतःस्फूर्ति' ही भगवान् की साक्षात् वाणी, स्फूर्ति तथा आज्ञा है। कुछ महान् पुरुषों की आत्मवंचना हो गई, कुछ लोगों ने हठात् लोगों की आँखों में धूल झोंकी, ताकि उनका दबदबा कायम हो। इस विशाल विश्व के प्रकृति नियम निश्चित हैं। उनका आप लोग अपनी अति तुच्छ रुचि तथा अरुचि के अनुसार उन धर्मग्रंथों में आरोपण करते हैं, जिनमें पाप अथवा पुण्य कुछ भी नहीं। एक समय था कि नियोग ब्राह्मणों के लिए भी पाप नहीं था, पर आज महापाप है। इस प्रकार पाप-पुण्य का निर्णय आप ही गाय का बछिया तले, बछिया का गाय तले करते हैं। इस बात पर विश्वास करना कि उनकी अर्थात् ईश्वर की मरजी के अनुसार इस विराट् विश्व के अबाधित प्राकृतिक नियम बदल सकते हैं—ईश्वर मनुष्य का गुलाम है जैसे विधान पर विश्वास करना है। आपके घर की कोई ढालू दीवार धड़ाम से गिर गई, अथवा किसी पुराने किले का भारी-भरकम मीनार धड़धड़ाया अथवा नया बना कोई विशाल पुल भहरा गया, तो वह नींव कच्ची होने के कारण अथवा जीर्ण-शीर्ण इमारत डाँवाँडोल होने के कारण। परंतु उस दीवार, मीनार तथा पुल पर सुस्ताए हुए झींगुर यदि यह विश्वास करें कि उनके हाथों से कुछ पाप कर्म हो गया है, इसीलिए यह घर, मीनार अथवा पुल गिर गया, भूचाल से बड़े-बड़े पहाड़ ढह गए, सागरों में उफान सा आ गया, नदियों के विशाल दह भूगर्भीय उछलती अग्नि पी गए—जैसे तीर्थ प्राशन किया जाता है, तब प्रकृति का यह रौद्र रूप आप जैसे चार सुधारवादी झींगुरों के भगवान् का मंदिर अछूतों के लिए खोलने का अनुरोध करने पर आप समझते हैं, अन्य सनातनी झींगुर टस से मस नहीं हुए, इसलिए भूचाल आ गया, तब मुझे हँसी आती है। मैंने आपको बता ही दिया—यह कहने से कि प्रार्थना न करने पर भगवान् नाराज होते हैं, भगवान् दानव सिद्ध होंगे। अब और एक बात बताता हूँ कि भगवान् को वे लोग प्रिय होते हैं जो प्रकृति व्यवहार तक ही भगवान् की प्रार्थना न करके प्रकृति-नियम के अबाधित क्रम का सामना करते हैं और उनमें से अनुकूल नियमों का पालन करके

प्रतिकूल नियमों का सामना करते हैं, भले ही वे प्रार्थना न भी करें। तनिक रूस को देखिए। आप ऐसी भोली-भाली कल्पनाओं द्वारा, जो भगवान् को दानव बनाती हैं, असली भगवान् की विडंबना करते हैं, जिन्हें रूस ने साफ नकार दिया, उसने ईश्वर अस्तित्व को ही नकार दिया। मानवता के लिए कुल स्थिति में जो उपयुक्त है, वही अच्छा और वही पुण्य है। जो अनुपयुक्त है वह उस स्थिति में बुरा है अर्थात् वही पाप है। यही है मानव का मानव धर्म और बाकी सब मिथ्या है। जैसे झींगुरों के पाप-पुण्य का मानव की गतिविधियों से कोई संबंध नहीं होता, उसी तरह प्रकृति के प्रचंड भूचाल से लेकर छोटे से धनिया के पर्ण कंपन तक की गतिविधियों से उस मानवी पाप-पुण्य का तनिक भी संबंध नहीं होता। अत: प्रार्थना, अनुष्ठान आदि भोले-भाले उपाय अज्ञान अथवा पाखंड हैं। इस तरह का प्रतिपादन जो रूस करता है, उसपर आजकल भगवान् प्रसन्न हुए हैं। रूस में प्रजा बढ़ रही है, उनके लिए पर्याप्त से अधिक धन-धान्य, संपन्नता है, रोग-बीमारी घट रही है। उस ईश्वर ने, जिसकी आज आप प्रार्थना करते हैं, जिसने एक वर्ष में दो-दो भूचालों में आपके घर-बार, शिवालय भी हजम किए— उस भगवान् ने उधर इस वर्ष एक भी भूचाल नहीं भेजा। इतना ही नहीं, जब आप लोग भूचाल निवारणार्थ अस्पृश्यता-निवारण करें या रखें, प्रार्थना कुरानानुसार मसजिद में करें या वेदमंत्रों द्वारा मंदिर में, इस प्रकार की मासूम चर्चा में रत थे, तब उधर रूसी लोग भूचाल विद्या का सम्यक् अध्ययन करके उसके प्रकृति-नियमों को जानते हुए इसके कतिपय अबाधित नियमों का आविष्कार कर बैठे हैं कि भूचाल कहाँ, कैसे और कब होते हैं—निश्चित किए गए टापू टालकर वे अब घर बसा सकते हैं।

शब्दशास्त्री : परंतु वे रूसी तथा यूरोपियन भी ईसाई हैं, और हमने तो सुना है ईसाई गिरिजाघर जाकर प्रार्थना करते हैं।

नारद : हिंदू-मुसलमानों की तरह रूसी आदि यूरोपियन भी प्राचीन काल में बाइबिल को ईश्वरकृत मानकर आपकी तरह पागलपन किया करते थे, तब उनकी भूचाल संबंधी नादान धारणाएँ थीं। उनकी एक ऐतिहासिक मूर्खता (प्राचीन काल सदृश पौराणिक भाषा में नहीं) ऐतिहासिक भाषा में सुनाता हूँ—

लिस्बन का भूचाल और पश्चिमी लोगों की अंधविश्वासयुक्त मूर्खता

सन् १७५५ में लिस्बन में भीषण भूचाल आया, संपूर्ण लिस्बन नगरी अदृश्य हो गई। पंद्रह हजार लोग चुटकी बजाते ही काल के गाल में समा गए। संपूर्ण यूरोप थर्रा उठा। तब इस भीषण संकट को टालने के लिए उन भोले-भाले ईसाइयों में जो प्रोटेस्टेंट सुधारक थे, उन्होंने कहा, 'ईश्वर ने यह दंड इसलिए दिया कि इन रोमन कैथॉलिक सनातनियों की धार्मिक रूढ़ियाँ भगवान् को अच्छी नहीं लगतीं। इसलिए अब सभी प्रोटेस्टेंट सुधारकों के ही धर्म का आचरण करें, ताकि भूचाल न आएँ।' यह सुनते ही रोमन कैथॉलिक सनातनी आग-बबूला होकर फौं-फौं करने लगे, 'सनातन ईसाई धर्मरूढ़ियों का भंग करने का पाप जो ये प्रोटेस्टेंट सुधारक कर रहे हैं, उसीसे नाराज होकर ईश्वर ने लिस्बन में त्राहि-त्राहि मचाई। इन प्रोटेस्टेंटों को नामशेष करना ही एक उपाय है, जिससे विश्व को भूचाल से बचाया जा सकता है।' कैथॉलिक सनातनी बहुसंख्यक होने के कारण वे मात्र कहकर ही नहीं रुके, लिस्बन नगरी को पुनः उभारने से पहले भूचाल से बचे-खुचे शेष प्रोटेस्टेंटों का उन्होंने कत्ल किया और यह समझकर कि उन्हें बलि चढ़ाने से ईश्वर प्रसन्न होगा, उनके संहार के पापों पर नगर-ग्रामों का पुनर्स्थापन किया। इस पुण्यकृत्य का भगवान् से निवेदन करने के लिए इन कैथॉलिक सनातनियों ने एक बड़ी सामुदायिक प्रार्थना की। परंतु उसके पश्चात् जो अनेक भूचाल आए उनके शिकंजे में हजारों कैथोलिक लोग भी फँस गए, वहीं जिंदा गाड़े गए और गाड़े जा रहे हैं।

शब्दशास्त्री : बिलकुल अलल बछड़े थे ये यूरोपीय ईसाई लोग।

नारद : हाँ, अंतर बस इतना ही है कि वे यूरोपीय ईसाई लोग प्राचीन काल में मूर्ख थे और आप हिंदू-मुसलमान लोग आज भी इस मामले में पूरे बछिया के ताऊ हैं। 'अस्पृश्यता के पापवश भूचाल आ गया' जैसे प्रश्न आप हिंदू अपनी आधी-अधूरी अंधी 'अंदरूनी आवाज' से पूछते रहते हैं। और मुसलमान इसलिए अल्लाह की प्रार्थना कर रहे हैं कि उनके विचार से सामूहिक नमाज पढ़ने से भूचाल टलेगा। हिंदू-मुसलमान दोनों ने गौर किया ही होगा कि उस भूचाल में बिहार के सैकड़ों मंदिर जिस तरह चकनाचूर हो गए, उसी तरह क्वेटा में सैकड़ों मसजिदें भी मटियामेट हो गईं, जो प्रतिदिन नमाज से गूँज उठा करती थीं।

अहिंसानंद : फिर इस मूर्खता का त्याग यूरोपीय लोगों ने कब किया? किसने

उनकी आँखें खोलीं ?

नारद : जब उन्होंने बाइबिल की स्मृति खोली तब ! उन्हें विज्ञान ने सिखाया।

शब्दशास्त्री : यह विज्ञान क्या बला है जी ?

नारद : यह विष्णु का नूतन अवतार है। प्रकृति-व्यवहार के लिए आप लोग अब इस विज्ञान की ही स्मृति का अनुसरण करें। उसीके बल-बूते पर यूरोप दूरदर्शन, दूरध्वनि, पृथ्वी का साम्राज्य, सागर के गहरे तल से आकाश के विरले स्तर तक अबाध गति प्रभृति अत्यद्‌भुत आश्चर्य कर सकता है। यह विज्ञान-देवता रिश्वत, घूस, पूजा-अर्चना, भोग-बलि-बकरा, नमाज, कुरबानी, मंत्र-तंत्र, स्तुति-निंदा किसीकी भी अपेक्षा नहीं करता, इनमें से किसीसे भी प्रसन्न नहीं होता, नाराज नहीं होता; न किसीके गले का ताबीज बनता है, न ही किसीसे छक्का-पंजा करता है। अबाधित प्रकृति नियमों के अनुसार उसका सारा कारोबार, सारा व्यवहार चलता है। आप मानव लोग बस उससे यही सीखो कि भूचाल क्यों होता है तथा उसके उत्पात से मनुष्य की रक्षा किस तरह और कहाँ तक— कितनी मात्रा में करना संभव है। यह विज्ञानकृत स्मृति आपके बाइबिल-कुरान-पुराणों की तरह मानव के संकुचित ज्ञान अथवा अज्ञान की 'अंदरूनी आवाज' की प्रतिध्वनि नहीं, वह सत्य ही ईश्वरकृत-ईश्वर-प्रणीत है, सनातन है, क्योंकि वह केवल त्रिकालबाधित प्रकृति नियमों का ही कथन करती है। आपकी मानवी धारणाओं से कल्पित देवता भी उस स्मृति के नियमों का उल्लंघन नहीं कर सके क्योंकि वह मनुष्य के देवताओं द्वारा सड़े-गले तमालपत्र पर अथवा खजूरपत्र पर लिखे हुए नहीं, अपितु विश्वदेव ने गगन के नीलपत्र पर तारिकाओं के उज्ज्वल अक्षरों से मुद्रित किए हुए हैं। उसे ही सनातन धर्म कहा जाता है।

शब्दशास्त्री : उस स्मृति से केवल हमारे लिए भूचाल टालने का कोई उपाय आप बता सकते हैं ?

नारद : (मुसकराकर) भूचाल विद्या के जो नियम हैं उन सृष्टि-नियमों की खोज करें, जो ज्ञात है, उसके सहारे यह निश्चित करके कि— भूचाल टापू भू-गर्भ में कहाँ है—उस कक्षा में बस्ती न बनाएँ, नगर मत बसाएँ और यदि इस भूचाल में अपने प्राण खो जाएँ तो अपने परिवार के बच्चे, सगे-संबंधियों की आजीविका का सहारा मिलने

से पहले ही यथासंभव मोटी रकम का बीमा कराएँ। महाराष्ट्र में बंबई की नवभारत तथा पुणे की कॉमनवेल्थ में बीमा करने के लिए मेरे साथ चलना चाहते हों तो चलें, मैं उधर ही जा रहा हूँ।

नारद का भाषण सुनते ही शब्दशास्त्री ने अचंभे से ऊपर देखते हुए कहा, ''महर्षि नारद, आजकल क्या आपने बीमा मंडल की आढ़ती *(एजेंसी)* तो नहीं ली?'' धत् तेरे की! इतने गंभीर सनातन विषय का इस तरह दो कौड़ी का ऐसा उपसंहार! अरेरे, ये परम भगवद्भक्त भगवान् नारद अंत में एक साधारण बीमा एजेंट में रूपांतरित हो गए! छी:—कितना अध:पतन! परंतु ये वाक्य समाप्त होने से पहले ही महर्षि नारद अंतर्धान हो गए।

—१९३५

□

एक सत्यघटित रोचक संवाद

जिस तरह एक धार्मिक भोलापन होता है, उसी तरह एक बौद्धिक सादगी भी होती है। धर्मश्रद्ध वर्ग यदि कोई बात धर्म के नाम पर करने लगे और उससे पूछा जाए कि 'अजी, क्या लाभ है इसका? किसलिए करते हो यह?' तो वह बेचारा मोम की नाक बनकर सीधा सा उत्तर देता है, 'भई, पोथी में जो कहा है, ईश्वर को यह अच्छा लगता है, यही हमारा धर्म है।' बस, इतना ही। उसके अनुसार बस इतना ही कारण है—इसीलिए करता हूँ कि मेरी श्रद्धा है। उसके विधान से भले ही हम सहमत न हों, फिर भी उसे हम समझ सकते हैं।

परंतु कुछ लोगों को यह बात स्वीकार कर कि हम यह इसलिए करते हैं कि पोथी में लिखा है, हमने यह नहीं देखा कि वह तर्कसंगत है या नहीं, उपयुक्त है या नहीं—अपने आपको धर्मश्रद्ध कहलाने में लज्जा आती है। परंतु उस धर्म विश्वास को, आधार अथवा धारणा को आदतन छोड़ा नहीं जा सकता। यह प्रतिपादित करते हुए कि पोथी में कहा है, इसलिए वह सच है, यह सिद्ध करने का उनका प्रयास चलता रहता है कि वह धारणा अथवा वह आचार आधुनिक बुद्धिवाद की कसौटी पर कुंदन की तरह निखरता है, विज्ञान के प्रत्यक्ष सिद्ध निकर्ष पर वह पूर्णतया खरा उतरता है। इसीलिए हम उस धारणा को स्वीकारते हुए उसके अनुसार आचरण करते हैं, अतः हम बुद्धिनिष्ठ हैं। किंतु वे अंधश्रद्धा से धर्मश्रद्धा छोड़ नहीं सकते तथा उन्हें अपने आपको बुद्धिजीवी कहलाने की भी इच्छा होती है। अतः निर्मल धर्मश्रद्धा से भी उनकी बौद्धिक सादगी अधिक दयनीय प्रतीत होती है। जिस आचार का वे समर्थन करने लगते हैं वह अधिक ही ओछा, हीन सिद्ध होने लगता है। आधुनिक सुधारवादियों में भी इस तरह के कितने सारे आधे-अधूरे लोग पाए जाते हैं। पुनः, यह नहीं कि उनमें से भी कुछ लोग मात्र कपटवश अथवा मिथ्याचारवश इस तरह वितंडा करते हैं। उनमें से कुछ लोगों की एक निरपेक्ष तथा निःस्वार्थ पूर्वजाभिमान की सद्भावना भी उन्हें अपने धर्मश्रद्ध तथा वर्तमान युग में त्याज्य

सिद्ध होनेवाले आचार को येनकेन प्रकारेण समर्थन करने के लिए प्रवृत्त करती है। उन्हें इस बात का भय लगता है कि यदि यह सिद्ध होने दिया गया कि उनके पोथीगत आचार आधुनिक विज्ञान अथवा तर्क के निकष पर खरे नहीं उतरते तो यह मानना होगा कि हमारे ऋषि त्रिकालदर्शी, हमारे शास्त्र त्रिकालाबाधित तथा हमारा धर्म सनातन नहीं है। यह सिद्ध होगा कि हमारे पूर्वज निरे मूर्ख थे। इस गलत धारणावश, वे जैसे-जैसे उस धर्मश्रद्धा का बुद्धिवाद तथा विज्ञान से समर्थन करने लगते हैं वैसे-वैसे वह आचार अथवा रूढ़ि अधिकाधिक धर्मश्रद्ध सिद्ध होती है, तथा पूर्वज अनावश्यक मूर्ख, बुद्धिहीन सिद्ध होने लगते हैं।

कभी ऐसा हो सकता है कि पुराने हालात में एक रूढ़ि वर्तमान समाज के लिए हानिकारक हो अथवा वह सिद्धांत बढ़ते हुए भौतिक अथवा प्रयोगसिद्ध ज्ञान द्वारा मिथ्या सिद्ध होता हो तो उस रूढ़ि में परिवर्तन करने में अथवा उस सिद्धांत को असिद्ध मानने में हमारे पूर्वज़ों की कुछ हेठी तो नहीं होती, न ही अपमान होता है। इसके विपरीत उसमें हमारा तथा उनका गौरव ही है, क्योंकि उन्होंने उस समय मानवी ज्ञान की सीमा परिवर्धित की। उससे यही सिद्ध होता है कि उस निधि का उचित उपयोग करते हुए उसी निधि के बल पर—हम अपनी मानवी ज्ञान की संपदा अधिकाधिक परिवर्धित कर रहे हैं। पुरखों का राजपाट उनके वंशज विस्तृत करें, 'बाप से बेटा सवाई निकले' इसीमें पुरखों तथा उनके उत्तराधिकारियों का गौरव है, यही उनके लिए भूषणास्पद है। कुछ लोग यह सिद्ध करने में कि वे अपने पिता से अधिक मूर्ख हैं, पिता की कमाई मिट्टी में मिला रहे हैं—अपने आपको धन्य समझते हैं, इसीमें अपने पिता का गौरव तथा उनकी कोख से जन्म लेने की सार्थकता मानते हैं।

जो लोग अपने आपको धर्मश्रद्ध समझने में अपना अपमान मानते हैं तथा उसीको स्वीकारने का निश्चय करते हैं, जो बुद्धिवाद के निकष पर खरा उतरे, ऐसे सत्यवान सुधारवादियों में भी इस प्रकार का भोलापन उनके जाने-अनजाने किस तरह दबा रहता है, यह स्पष्ट करने के लिए तथा अपनी प्रत्येक रूढ़ि और आचार सद्यःस्थिति में अपने हिंदू राष्ट्र के उद्धारार्थ उपयुक्त है या नहीं, यह किस निकष पर किस तरह परखा जाए—इन तमाम पद्धतियों को देखने के लिए भी हम 'पंचगव्य' विषय पर एक संवाद प्रस्तुत कर रहे हैं जो एक सुधारवादी मित्र के साथ हमने किया था। यह संवाद यथासंभव स्मरणपूर्वक तथा ठीक वैसे ही दिया है, जैसे वह घटा था।

हमारे ये मित्रवर हिंदूसंगठन के पूर्णाभिमानी, अस्पृश्यता के ही नहीं अपितु जातिभेद के भी विरोधक तथा प्रकट सहभोजक भी हैं। हमारे इन वैद्यशास्त्रीय मित्र

ने, जो सच्चे चिकित्सा-प्रवण, बहुश्रुत तथा आयुर्वेद के प्रचारक हैं, पिछले गणेशोत्सव में हमसे भेंट करके हमारे इस अभिप्राय का कि 'पंचगव्य का आचार त्याज्य तथा अंधश्रद्ध है' विरोध करने और बौद्धिक तर्क द्वारा ही हमें यह समझाने के लिए कि वह आचार आधुनिक विज्ञान के निकष पर भी किस तरह खरा उतरता है—हमसे जान-बूझकर चर्चा की। उसका चुनिंदा अंश इस प्रकार है—

वैद्य महाशय : हमारे त्रिकालदर्शी पूर्वजों ने अपने जिन विविध आचारों का धर्मस्वरूप पालन करने की आज्ञा दी है, वह इस हेतु से कि उन आचारों द्वारा लोगों का भौतिक कल्याण भी हो जाए। पंचगव्य प्राशन करना जैसा आचार भी इसी ऐहिक दृष्टि से हितकर है। इस प्रकार की आचार संबंधी धर्मभावना नष्ट करना उपयुक्ततावाद की दृष्टि से घातक सिद्ध होता है।

इसपर हमने वैद्य महाशय से पूछा, "प्रथमतः यह बताइए कि आप हमारे साथ पोथी विवाद करेंगे या बुद्धि विवाद? अर्थात् जो शास्त्र में है उसे सत्य कहेंगे अथवा उसे ग्राह्य समझेंगे, जो वह मानवी तर्क एवं उपयुक्ततासंगत है। एक बार यह निश्चित होने पर हमें भी उसपर संवाद करने में सुविधा होगी।"

वैद्य महाशय : मैं यह बुद्धिवाद से ही सिद्ध करूँगा कि शास्त्रवचन कम-से-कम इस पंचगव्य के मामले में तो सोलह आने ग्राह्य हैं। धर्मस्वरूप आचार जो हमारे त्रिकालदर्शी पूर्वजों ने बताया वह तर्क तथा उपयुक्ततावाद संगत है।

हम : ठीक है, यह स्पष्ट न करते हुए कि जो मनुष्यहितार्थ उपयुक्त है—वह किस तरह उपयुक्त है, इसके विपरीत केवल इतना कहने की कि इस कृत्य से ईश्वर प्रसन्न होता है, अन्यथा उसका प्रकोप होता है, तथा धर्म के पारलौकिक आडंबर में उस आचार को उलझाने की रीति को अब त्याज्य और अहितकारक ही समझना उचित है, भले ही प्राचीन काल में वह कितनी भी आवश्यक क्यों न हो; क्योंकि यह न कहते हुए कि अमुक एक बात उपयुक्त है, बस इतना ही पुनः-पुनः कहते रहने से कि वह बात त्रिकालाबाधित सनातन धर्म है, लोगों को यह बुद्धिभ्रम होता है कि वह आचार अथवा वह बात स्वरूपतः ही स्वयमेव धर्म्य है। उससे जिस स्थिति में उस वस्तु से अथवा आचार से मनुष्य का हित होता है, उस स्थिति में वह वस्तु अथवा आचार धर्म्य समझा जाता है, लोग

उसका अनुसरण करते हैं। गोमाता को ही देखिए न—उसकी उपयोगिता देखकर वह पालनीय सिद्ध हो गई। धीरे-धीरे यह उसे देवी मानकर, जो परलोक में स्वर्ग का लाभ कराती है, पूजनीय, पवित्र तथा मनुष्य से भी श्रेष्ठ समझा जाने लगा। अत: जिस परिस्थिति में गाय राष्ट्र के लिए भौतिक दृष्टि से अनुपयुक्त सिद्ध होती है और गोवध मनुष्यहित साधक कृत्य बन जाता है, ऐसी परिस्थिति में भी गाय स्वरूपत: पूजनीय देवी या माता है, इस तरह की श्रद्धा दृढ़ हो जाने के कारण उसे मारने का 'पातक' करने की अपेक्षा, लोग राष्ट्र की लड़ाइयाँ हारकर, राष्ट्र को भी मरने देते हैं। शत्रु की गायें, केवल उपयुक्तता की दृष्टि में, हमारी शत्रु हैं, यह तुरंत आकलन होता है; शत्रु के अन्न भंडार की तरह उसकी गायों का भी विनाश करना एक आवश्यक सत्कृत्य सिद्ध होता है। परंतु गाय स्वरूपत: दैवी या अवध्य मानी जाने लगी। अत: शत्रु के गोधन को मारने के लिए भी हिंदू सैनिक साधारणतया सिद्ध नहीं होते, कई विदेशी घेरों में शत्रु के गोधन का मांस भक्षण करना नकारकर भारतीय सिपाही भूखे मरते हैं, पर गोमांस को छूते तक नहीं, क्योंकि उनके मन पर अंकित किया गया था कि गोमांस धर्मत: निषिद्ध है। परंतु यदि उन्हें स्पष्टत: इस बात का ज्ञान दिया होता कि गाय एक अत्यंत उपयोगी पशु है, अत: वह रक्षणीय है, तो वही हिंदू लोग यूरोपीय लोगों की तरह ही परशत्रु की गायों को काटकर, उन्हें खाकर उसीपर जीवनयापन करते। अन्न भी परब्रह्म ही है। परंतु जिस तरह शत्रु का घास-अनाज हम आवश्यकता पड़ने पर जलाकर राख कर देते हैं, उसी तरह शत्रु के गोधन को भी नष्ट कर देते। परंतु गाय वास्तव में ही धर्म्य सिद्ध हो गई, पवित्र सिद्ध हो गई, अत: उसका दूध ही नहीं अपितु गोबर-गोमूत्र भी पवित्र सिद्ध हो गया, क्योंकि उसके शरीर के दूध के स्थान पर जिस तरह देवताओं की स्थापना हो गई, उसी तरह पोथी के अनुसार गोबर-गोमूत्र में भी उनकी स्थापना की गई, व्यवहार में शपथपूर्वक हरेक को यही सिखाया गया। गोमूत्र का शास्त्रोक्त श्लोक भी यही प्रतिपादित करता है कि 'मूत्रे गंगा' अर्थात् गाय के मूत्र में गंगा का निवास होता है। फिर क्या? अहो आश्चर्यम्। लाखों लोग यह कहकर गोमूत्र पीने लगे कि इससे पापों का विनाश होता है, 'मनुष्य

पवित्र होता है।'

वैद्य महाशय : जी नहीं। हम जो गोमूत्र पीते हैं वह इसलिए नहीं पीते हैं कि पापों का विनाश होता है। पंचगव्य प्राशन करने का आचार वैद्यशास्त्र के अनुसार है। हमारी यह रूढ़ि बिलकुल अंधश्रद्धायुक्त नहीं है। मैं वैद्यकीय शास्त्र के सहारे सिद्ध करता हूँ कि पंचगव्य प्राशन करना कितना आवश्यक है।

हम : वैद्यकीय आधार बाद में देखेंगे। पहले यह बताइए—यह बात सच है या झूठ कि आज गोबर-गोमूत्र पापमुक्ति के लिए ही लोग पंचगव्य में घोलकर, इतना ही नहीं, वैसे भी पीते हैं। इसमें उन्हें इस बात का ज्ञान नहीं रहता कि वे किसी रोग की दवा ले रहे हैं। इस बात को नकारना मात्र असत्य वचन होगा कि उनमें से बहुतेरे लोग उसे पापमुक्ति के धर्मसम्मत संस्कार के रूप में करते हैं। अपवित्र अशुद्ध वस्त्रों पर जब वृद्ध लोग यूँ ही गोमूत्र के चार छींटे छिड़कते हैं, जब पंडित पुरोहित कहते है, 'सहभोजन के प्रायश्चित्त के तौर पर कड़छी भर गोमूत्र पी लो और छुट्टी करो'। महार *(एक अछूत जाति)* लोगों ने महाड़ गाँव के तालाब पर पानी भरा, इसलिए उसके शुद्धिकरणार्थ सारा गाँव उस कुएँ में अथवा उस ताल में गोमूत्र उँडेलकर उसे और भी मलिन करता है और समझता है, उस जल का शुद्धिकरण हो गया। इस प्रकार प्रतिदिन हजारों प्रसंगों में हम गोमूत्र का उपयोग करते हैं, वह इस भावना से कि उस गोबर-गोमूत्र से पाप क्षालन होता है, पवित्रता आती है—न कि रोग दूर करने की भावना से। इस एक ही बात से यह सिद्ध होता है—जो गो माहात्म्य में शास्त्रवचन है कि 'मूत्रे गंगा', न कि 'मूत्रे औषधयः' इतना ही नहीं, पंचगव्य प्राशन करते समय जिस श्लोक का मंत्रस्वरूप हम उच्चारण करते हैं, वही इस विधान को निर्विवाद सिद्ध करता है। यही है न वह मंत्र 'यत्त्वगस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति मामके। प्राशनात् पंचगव्यस्य दहत्यग्निरिवेन्धनम्'। अब बताइए—इसमें यही प्रतिपादित किया गया है कि पंचगव्य द्वारा वह पाप जल जाता है जो हमारे रोम-रोम में बसा हुआ है, न कि रोग से मुक्ति मिलती है। यह धार्मिक श्लोक है या वैद्यशास्त्रीय?

वैद्य महाशय : यद्यपि यह श्लोक में है, पर वैद्यकीय शास्त्रसम्मत है। हमारे धर्मशास्त्र के हर श्लोक में गूढ़ार्थ भरा हुआ है।

हम : केवल इस तरह की विवेचना मत चाहिए। इस श्लोक का गूढ़ार्थ स्पष्ट करके यह बताइए कि वह किस तरह वैद्यशास्त्रीय है।

वैद्य महाशय : इस श्लोक में जो पाप शब्द है वह 'रोग' के अर्थ में लिया जाए। 'रोम-रोम में बसे हुए रोग ठीक होंगे', इस तरह का अर्थ होगा। यह श्लोक वैद्यशास्त्र की कसौटी पर उतरेगा।

हम : अब तनिक मजा तो देखिए। यह श्लोक तब तक बहुत उपेक्षणीय सिद्ध होता है जब तक वह धर्मशास्त्रीय था। यह विश्वास था कि पंचगव्य से पाप दूर होता है। एक तरह से यह विधान किया जा सकता है कि श्रद्धा पर तर्क की आरी भला क्यों चलाई जाए। परंतु पुराने भोले-भाले श्लोक तर्कशुद्ध सिद्ध करने की चाह से आप उनमें अनावश्यक गूढ़ार्थ ठूँसते हुए जब तर्क के निकष पर उन्हें कसते हैं तब वे ठीक उसी तरह हास्यस्पद हो जाते हैं जैसे दौड़ की होड़ में हिस्सा लेने के लालच में कोई पंगु हँसी का केंद्र बन जाता है। क्या 'पाप' का अर्थ 'रोग' लेना ही विपरीत नहीं है ? यह सत्य कथन कहते समय कि रामकृष्ण परमहंस की मृत्यु पापवश हो गई, आप उसे अक्लमंद की दुम कहेंगे। 'हमारी दवा से रोगी रोगमुक्त होते हैं' इस तरह बोर्ड दुकान पर न लगाते हुए किसी वैद्य ने यदि 'हमारी दवा से रोगी पापमुक्त होते हैं' इस प्रकार का बोर्ड लगाया तो आप उसका उपहास करेंगे। डॉक्टर के घर जाते हुए यदि आप कहेंगे, 'हमारे घर एक पापी है, क्या आप उसे पापमुक्त करेंगे?' तो डॉक्टर अवश्य कहेंगे, 'सज्जनो, आप गलत स्थान पर आ गए हैं। शंकराचार्य यहाँ पर नहीं रहते।' वैद्यकीय शास्त्र जैसे काँटे के नपे-तुले विज्ञान में ऐसे शब्द का, जो इतनी विपरीत धारणा उत्पन्न करता है, जो प्रयोग करता है, उस श्लोक का रचयिता कितने असमंजस में होगा। वैद्यकीय शास्त्र में पांडुरोग, राजयक्ष्मा रोग, वैद्य रोग की चिकित्सा करे, जैसे शब्दप्रयोग हमने शताधिक देखे हैं। परंतु पांडुपाप, राजयक्ष्मा पाप, वैद्य पाप की चिकित्सा करे, इस तरह के प्रयोग हमने नहीं देखे।

वैद्य महाशय : परंतु 'पाप' शब्द का 'रोग' जैसा अर्थ आपको दिखाया तो है ?

हम : फिर भी क्या अंतर पड़ता है ? रोग जैसे सुनिश्चित शब्द को, जो वैद्यकीय विज्ञान की परिभाषा का ही है, प्रयुक्त करने की बजाय पाप शब्द का प्रयोग करना, जो कई उलझनें उत्पन्न करता है,

ग्रंथकार की भूल तो नहीं होगी? रोग शब्द इस वृत्त में ठीक नहीं बैठता? यहाँ वैद्यकीय विज्ञान का सुनिश्चित वचन बनाना था—न कि 'प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबां' का कोई काव्य।

वैद्य महाशय : *(मुसकराकर)* भला उन्हें क्या पता था कि आप जैसे श्रद्धाहीन नास्तिक भविष्य में उनके इस शब्द के इस प्रकार धुर्रे उड़ा देंगे?

हम : *(मुसकराते हुए)* भई, अब फिर श्रद्धा को बीच में क्यों घसीटते हैं? श्रद्धा, विश्वास की दृष्टि से तो उस श्लोक को हमने कब का उपद्रवविरहित, अधिक-से-अधिक भोला-भाला मानकर परे हटा दिया है। आप ही उसे बिलकुल काँटे की, सधी हुई पारिभाषिक वैद्यकशास्त्रीय कसौटी पर रख रहे हैं। दूसरी बात यह है कि आपने जो कहा था कि पंचगव्य माहात्म्य के कर्ता को भला इस बात का ज्ञान कैसे होगा कि हमारे जैसे अज्ञानी लोग भी भविष्य में अस्तित्व में होंगे जो 'पंचगव्य' का 'रोग' अर्थ भी नहीं जान सकते। यह तो उससे भी अधिक आश्चर्य की बात है। अजी, काफी देर से आप दसों बार ठोंक-बजाकर हमारे इन शास्त्रकार पुरखों को 'त्रिकालदर्शी' कह रहे हैं। भला ऐसा कैसे हो सकता है कि उन्हें इस बात का आकलन नहीं हुआ कि भविष्य में सन् १९३५ में अश्रद्ध लोग पैदा होंगे? कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि उनकी उस त्रिकालदर्शी ज्ञानसारणी का यह सन् १९३५ का पन्ना ही फट गया था?

वैद्य महाशय : अच्छा ठी़क है। हम आपकी यह आपत्ति स्वीकार करते हैं कि यह प्रतिपादित न करते हुए कि पंचगव्य वैद्यकीय औषधि है, अतः ग्राह्य है, हमारे धर्मशास्त्रों में उसे पापक्षालक बताया है। और इसी वजह से आज लाखों लोग श्रावणी, प्रायश्चित्त तथा व्यवहार में उसका जो प्राशन करते हैं वह मूलभूत वैद्यकीय उद्देश्य को बिलकुल ही भूलकर मात्र धार्मिक भावनावश ही प्राशन करते हैं। परंतु हमारा यह कहना है कि उससे उसका वैद्यकीय लाभ ही अधिक मात्रा में होगा। लोगों को यह बताया गया कि 'दवा लो'—तो वे इतने नियमित रूप से दवा नहीं पिएँगे, परंतु धर्म के नाम पर कहने से पापविमोचन के लालच से अपेक्षाकृत लाखों की संख्या में नियमित प्राशन करेंगे, क्या यही शास्त्रकारों का पंचगव्य के धार्मिकीकरण में सद्हेतु नहीं था? और क्या उसका परिणाम भी कुल मिलाकर अच्छा नहीं हुआ?

हम : अच्छा परिणाम तो नहीं हुआ। कुल मिलाकर देखा जाए तो बुरा ही हुआ। उस निश्छल, निर्व्याज युग में जो कुछ लाभ इस प्रकार के धर्मीकरण से हुआ होगा या नहीं भी हुआ हो, वह अब तो बहुत ही दुर्घट है। देखिए, किस तरह। वैद्यकीय ग्रंथों में सैकड़ों औषधियों की बस इतनी ही प्रशंसा की गई हो कि अमुक औषधि अमुक रोग पर रामबाण है और उस औषधि से पापक्षालन होता है, पुण्य प्राप्ति होती है आदि निरर्थक प्रशंसा न हो फिर भी हजारों रोगी वैद्य को पैसे देकर उन औषधियों को खरीदते ही हैं न? बिलकुल धर्मभ्रष्ट 'महार' *(अछूत)* किसी औषधालय में डॉक्टर हो, तो उसके हाथों से दवा पीते हैं, उसे उसके जूतों के साथ अपने घर ले आते हैं। यह दवा जो रोगमुक्त करती है—पीना पाप है—इस तरह उसे निषिद्ध करने पर भी रोगी पीते ही हैं। अतः इस तरह यदि केवल यह बता दिया होता कि गोमूत्र-गोबर से अमुक रोग ठीक होता है और उसकी साफ-साफ अनुभूति होती तो पंचगव्य भी उस विशेष रोग पर प्रयुक्त किया जाता, जैसे वैद्यकीय शास्त्रांतर्गत अजवाइन, सौंफ को, धर्म-प्रशंसित न होने पर भी, घर-घर में प्रयुक्त किया जाता है। इसके विपरीत इस गोमूत्र से पापक्षालन होता है; धेनु के नाम पर उसकी पूँछ को स्पर्श करते ही अशुद्धि, अपवित्रता का विनाश होता है, उसका गोमूत्र साक्षात् गंगा ही है आदि वाहियात प्रशंसा करने से उस गोमूत्र-गोबर का असली औषधि गुण लुप्त होकर निरुपयोगी हो गया। और रोगविनाश करने की बजाय यह गोमूत्र-गोबर बुद्धिभ्रंश का तथा अंधविश्वास का एक नया रोग फैलाने का कारण बन गया।

वैद्य महाशय : भई, यह तो आप राई का पहाड़ बना रहे हैं।

हम : जी, नहीं। बल्कि आपके अनुसार जो रोग का अर्थ 'रोम-रोम में बसा हुआ पाप' है—वह पंचगव्य प्राशन करते ही जलकर भस्मीभूत होता है, जैसे अग्नि में ईंधन—'दहत्यग्निरिवेंधनम्'। भई, यह सचमुच ही बात का बतंगड़ बनाना है। भोले-भाले गोरक्षक आते-जाते कहते हैं, 'गोमूंत्र-गोबर खाने से, पंचगव्य द्वारा सभी रोगों का उच्छेद होता है।' अजी, यदि पंचगव्य द्वारा सभी रोग दूर हो जाते हैं अथवा जिस प्रकार अग्नि ईंधन को जला देती है, उसी तरह यच्चयावत् रोग पंचगव्य प्राशन करते ही देहाग्नि में राख हो जाते हैं

तो फिर वाग्भट, चरक आदि को वैद्यकीय ग्रंथों का एक पृष्ठ भी लिखने की आवश्यकता नहीं थी। तमाम औषधियाँ शल्य, रसायन, मात्रा, डॉक्टर, वैद्य, क्ष-किरण, कीटाणु-नाशक सुई लगाना निरर्थक सिद्ध होता। सभी रुग्णालय बंद करके बस गोमूत्रालय खुले रखने भर से स्वास्थ्य-विभाग का काम समाप्त हो जाता। यहाँ-वहाँ यही होता—पंचगव्य प्राशन करो, स्वस्थ हो जाओ—बस, झट मँगनी पट ब्याह। सर्वत्र यही धूमधड़ाका होता। इस प्रकार की मूर्खतापूर्ण अतिशयोक्ति भला आपको अच्छी कैसे लगती है? इस प्रकार के अंधश्रद्धायुक्त मंत्रों में आप आधुनिक वैज्ञानिक औषधीय पाठ बनाकर आधुनिक वैद्यकीय ग्रंथों में किस मुँह से लिखेंगे? यदि गोमूत्र इस प्रकार सवाई संजीवनी होती, तो हम जो उसके हौज में सदियों से डुबकियाँ लगा रहे हैं, आज ताऊन महामारी के ग्रास कैसे होते; और वे यूरोपीय लोग जिन्होंने अपनी सात पुश्तों में उस चौपाए के मल-मूत्र की बूँद भी मुँह में नहीं डाली—ऐसे गोल-मटोल, सुर्ख, हट्टे-कट्टे तथा स्वस्थ कैसे होते? हमारे पड़ोसी मुसलमान, जो बिलकुल हमारे ही वातावरण में पले-पुसे हैं, फटाफट क्यों नहीं मरते? क्योंकि वे गोमूत्र नहीं पीते। गोमूत्र की वैद्यकीय उपयोगिता की उल्टी-सीधी तथा अंधाधुंध प्रशंसा ही उसकी विडंबना का कारण है और इसलिए इन पदार्थों का यह धर्मीकरण नहीं है? क्या कहते हैं—पशु के मल-मूत्र-प्राशन से मनुष्य पवित्र होता है। पंचगव्य प्राशन से बुद्धिभ्रंश का रोग फैल गया है जो इस प्रकार की अंटशंट बातों पर विश्वास कराता है।

वैद्य महाशय : अच्छा है कि आपने इन अंधश्रद्धायुक्त धार्मिक अतिशयोक्ति के विरुद्ध हथियार उठाया है। परंतु हमारे वैद्यकीय ग्रंथों में, जो वैज्ञानिक पद्धति से लिखे हैं—इस प्रकार तिल का ताड़ नहीं बनाया गया है। उनमें यह दिया गया है कि गोमूत्र की दवा किस-किस रोग पर लागू हो सकती है। उसी तरह उसमें यह भी दिया गया है कि गोमूत्र स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। उदाहरण के तौर पर यह स्पष्ट कहा गया है कि गोमूत्र प्रयोग पित्त प्रकृति के लोगों के लिए अलाभकारी होता है। तमाम पित्तप्रवण रोगियों के लिए वह कुपथ्यकारी है।

हम : यह हुई न पते की बात। पित्तविकारों के लिए गोमूत्र दवा नहीं,

हानिकारक है। ठीक है, फिर भी गोमूत्र का धर्मीकरण करने से आज अबलाएँ किसीको भी वह पिलाती हैं, स्वयं पीती हैं। प्रायश्चित्त विधि में पुरोहित वह सभी को देते हैं। हट्टे-कट्टे स्वस्थ लोग जो श्रावणी विधि में इकट्ठे होते हैं, वे ऐसे रुग्ण नहीं होते जो किसी रुग्णालय के सामने भीड़ जमा करते हैं। पंचगव्य उन रोग-पीड़ितों को ही दिया जाए जो गोमूत्र से स्वस्थ होते हैं। पित्त प्रकृति के ब्राह्मणों को चुनकर उन्हें नहीं दिया जाना चाहिए। ऐसी कोई रीति उस संस्कार में नहीं है। अर्थात् यह संस्कार तथा पंचगव्य की यह रूढ़ि मात्र धार्मिक अर्थात् मात्र अंधश्रद्धायुक्त है। वैद्यकीय शास्त्र द्वारा उसका समर्थन नहीं हो सकता। इसके विपरीत सभी को समान रूप में गोमूत्र-गोबर देना वैद्यकीय दृष्टि से हानिकर ही है। वैसे कहा जाए तो गाय का ही क्यों, गधी का मूत्र भी गुणकारक है।

वैद्य महाशय : जी हाँ। औषधि कर्म में आठ तरह के मूत्र बताए गए हैं—बकरी, ऊँटनी, गर्दभी, घोड़ी…

हम : इतना ही नहीं, 'नास्ति मूलमनौषधम्।' इस सूत्र के अनुसार 'नास्ति मूत्रमनौषधम्' कहना भी उचित होगा। नृमूत्र भी अनौषधीय नहीं माना गया।

वैद्य महाशय : बिलकुल नहीं। बल्कि उस गाय के मल-मूत्र को निषिद्ध माना गया है जो भोजन, पकवान खाती है। उसी गाय का मूत्र औषधीय माना गया है, जो जंगल में हरी-हरी घास खाती हो।

हम : इस तरह के नियम हैं, पर वे भी एकरूप नहीं हैं और व्यवहार में तो उनका नामोनिशान तक शेष नहीं रहा। गाय, जो गोशाला में बद्ध, जरा-जर्जर, गंदी-घिनौनी, रोग-पीड़ित, जिसका गोबर दुर्गंधयुक्त हो, जो तपेदिक से बीमार भी हो, फिर भी वह देवी मानी जाती है और गोमूत्र का नाम लेते ही वह गंगाजल समान हो जाता है। इस प्रकार की घिनौनी रूढ़ि का समर्थन कभी वैद्यकीय शास्त्र के आधार पर किया जा सकता है भला? धर्मीकरणवश हमारा वैद्यकीय शास्त्र भी गोमूत्र के मामले में तनिक अंधा ही हो गया है। अतः उसमें जो लिखा गया है कि जो रोग गोमूत्र द्वारा ठीक होते हैं, उनकी अत्याधुनिक चिकित्सा तथा रसायन की कसौटी में गोमूत्र-गोबर के जो औषधीय अथवा कृषिकर्मीय उपयोग होंगे, उस मात्रा में उन्हें सेव्य समझने में रत्ती भर भी आपत्ति नहीं हो

सकती। यह प्रश्न एक गोमूत्र, गाय अथवा पंचगव्य का ही नहीं। प्रत्येक पदार्थ मनुष्य को जिस मात्रा में उपयुक्त हों, उस मात्रा में सेव्य हैं। उसका धर्मीकरण करने से वह वास्तव में ही देवता हो जाता है और इस अंधविश्वासी वृत्ति द्वारा राष्ट्र की मति ही मारी जाती है। इस अंधविश्वासी प्रवृत्ति का उन्मूलन करने के लिए गाय, अश्वत्थ, तुलसी, गोमूत्र जैसी कुछ चीजों को उपलक्षणस्वरूप चुनकर उनकी परिचर्चा में इतना समय हमने व्यतीत किया।

—१९३५

□

दीवाली में अब सूखे का कोई डर नहीं

दीवाली का त्योहार कितना मधुर, कितना स्नेहशील! दीवाली में तो हर ओर आनंद-ही-आनंद! दीवाली आते ही छोटे बच्चों को, लड़के-लड़कियों को, किशोर-किशोरियों को नए-नए सुंदर-सुंदर वस्त्र, जरी की टोपियाँ, रेशमी चोलियाँ, गुलाबी धोतियाँ, शानदार आधुनिक कोट-जैकेट, धोतियों के सुंदर जोड़े और फुलझड़ियाँ, हवाइयाँ, साँप, तारा, अनार, लौंगी, पटाखे आदि नानाविध मजेदार आतिशबाजियों के सपने दिखाई देने लगते हैं। घर-घर में पिताजी के पास 'मुझे यह चाहिए, वह चाहिए', 'ले लो न बाबा' इस प्रकार सादर अनुरोध की अर्जियाँ और इस भय से कि उन्हें कहीं अस्वीकारा तो नहीं जाएगा, माँ से 'माँ, मुझे लेकर ही देना पड़ेगा, हाँ, कहे देता हूँ, मुझे अवश्य वह चीज चाहिए,' इस तरह मचलते हुए मधुर हठीला अनुरोध जारी रहता है। इतने में नानाविध सुंदर, आकर्षक, खिलौने, कपड़े, पटाखे, इत्र, अगरबत्तियाँ, सुगंधित तेल की सामग्री—एक-एक करके घर में लाई जाने लगती है। माँ के हाथ में उनमें से जो भी आए उसकी बच्चों में 'देखूँ तो-देखूँ तो' के साथ खींचातानी शुरू होती है। उसपर घुटनों के बल चलनेवाले शिशु भी जो हाथ में आया वह उठाने लगते हैं। माँ उन्हें सँभाल रही है, उधर बड़े बच्चों की खींचातानी में कोई सुगंधित तेल अथवा इत्र की कुप्पी नीचे गिरकर टूट जाने से वे खिसियाने से हो रहे हैं। तभी वही सुगंध इधर-उधर फैलकर समूचा वातावरण महका-महका सा हो गया है। इस महकते, उमगे-उमगे से वातावरण में माँ चाहकर भी अपने तेवर नहीं चढ़ा सकती।

घर-घर में झाड़ू-बुहार, साफ-सफाई, लीपापोती-सफेदी की चहल-पहल मची हुई है। उधर कोठी में बैठक, टेबल-कुरसियाँ, चित्र, तसवीरें, पुष्पपात्र आदि की शानदार सजावट हो रही है। इधर रसोई में पूरी, गुझियाँ, नमकीन पकवानों की खस्ता करारी चटपटी तैयारी सनसना रही है। बच्चों के मुँह में पानी भर आता है, ललचाई नजरों से वे रसोई में ताकझाँक कर रहे हैं। कोई इक्का-दुक्का फुरतीला

लड़का मौका मिलते ही उन पकवानों में से कुछ चुराकर मुँह में ठूँसते-ठूँसते फौं-फौं कर रही अपनी अम्मा, दादी अथवा भाभी को मुँह चिढ़ा रहा है।

हर ससुराल में नई-नवेली दुलहन अपने पीहर से भैया-दूज के लिए आनेवाले आमंत्रण की सोत्कंठ प्रतीक्षा कर रही है। हर पीहर में ममतामयी माँ इसी धुकधुकी में कि अपने निमंत्रण के अनुसार बिटिया दीवाली में घर आती है या नहीं—उसकी राह पर आँखें बिछाए रहती है।

दीवाली में पूरा हिंदू राष्ट्र हर्षोल्लास की उमंग भरी लूट मचाता है। घर में मिष्टान्न, नगर-नगर में दीपोत्सव, डगर-डगर पर जगर-मगर, स्वस्थ संगीत, प्रियजनों का मिलना; बहना भैया को टीका लगा रही है, मित्रों को, सगे-संबंधियों को प्रीतिभोज के दौर चल रहे हैं—प्रेमोपहार बाँटे जा रहे हैं—सारी जनता चंद्रज्योति के पटाखे, फुलझड़ियों के मजे लेने में लीन है। भई, दीवाली का त्योहार स्वयं ही तो उमंग, हर्षोल्लास की फुलझड़ी है।

कई राष्ट्र, जो एकरूप होकर सदियों से बसते हैं, वह अपनी पुस्तकीय अथवा तार्किक व्याख्या से नहीं। भला हिंदुत्व की शाब्दिक व्याख्या देखकर कितना-कुछ ज्ञात हो सकता है कि हिंदू राष्ट्र एकजीव है या नहीं? गंगा नदी की व्याख्या से उसकी जैसी धारणा मन में होगी अथवा आलेख्यांतर्गत (नक्शा) उसकी बाल जैसी महीन रेखा देखकर उसके प्रवाह की गंभीरता, शीतलता अथवा मधुरता जितनी ज्ञात होगी, उतनी ही राष्ट्र की रूखी तथा शाब्दिक व्याख्या द्वारा उसकी सजीवता का ज्ञान होगा। जिस तरह गंगा के असली रूप का यथावत् ज्ञान तब तक नहीं मिलेगा जब तक गंगा का प्रत्यक्ष दर्शन नहीं किया जाता, उसी प्रकार हिंदू-राष्ट्रों के जीवनौघ का, सजीवता का, एकात्मता का असली ज्ञान उनके कोटि-कोटि हृदयों के सुख-दुःखों की एक ही भावना की एक ही ऊर्मि किस तरह झकझोरती है, वह पूरा-का-पूरा प्रचंड राष्ट्रपुरुष एक ही व्यक्ति समान, एक ही भावनावश किस प्रकार उमड़ता है—इसका अहसास प्रत्यक्ष अनुभूति से ही होगा, अन्यथा नहीं। हाँ, पुस्तकीय तथा तार्किक व्याख्याओं की भी उपयोगिता नकारी नहीं जा सकती—जिस तरह आलेख्यदर्शित तिल सदृश हिमालय। परंतु हिमालय की यदि कुछ यथावत् कल्पना चाहिए तो कश्मीर का दर्शन करना ही होगा। उसी तरह इस हिंदू राष्ट्र की अखंडित परंपरा तथा सामाजिक एकात्मता की कुछ-न-कुछ यथावत् कल्पना चाहिए तो इस दीपावली के त्योहार पर एक नजर तो डालिए। दीवाली हिंदुस्थान की एक सांकेतिक व्याख्या ही है।

कम-से-कम मौर्यकाल अर्थात् गत दो हजार बरसों से यह दीवाली हमारे इस हिंदू समाज में प्रतिवर्ष इसी तरह लकलक करती आई है। मौसम आ जाने पर

कमल वनों में जिस तरह अपने आप बहार आती है, उसी तरह दीवाली का दिन आते ही अपने आप हर हिंदू का मुख कमल खिल-खिल उठता है। उसके लिए राष्ट्रसभा अथवा हिंदू महासभा के किसी प्रस्ताव की आवश्यकता नहीं, न ही किसी प्रचार की आवश्यकता होती है। हर हिंदू के लहू में ही दीवाली का एक अभिज्ञान सजग होता है। कश्मीर घाटी की अत्युच्च पर्वत श्रेणी स्थित इक्के-दुक्के शिवालय से लेकर नेपाल की तराई के घने जंगलों की जंगली छपरी से, भील-गोंड-मल्लाहों की पर्णकुटियों से बड़े-बड़े राजे-महाराजों के विशाल प्रासाद-अट्टालिकाओं तक दीवाली के दीप इस तरह दपदप दमकने लगते हैं, जैसे वे अपने आप ही जल उठे हैं। ऐसी एक भी हिंदू कुटिया नहीं, सुदूर घने जंगलों की, निबिड़ अँधेरे में किसी अकेले प्रहरी की भी झुग्गी नहीं जहाँ दीवाली की रात मिट्टी के दस-पाँच दीप नहीं टिमटिमा रहे हों। ये सामाजिक त्योहार ही हमारी राष्ट्रीय एकता की नसें हैं—राष्ट्रीय अभिज्ञान के, हिंदुत्व के ममत्व के ज्ञानतंतु हैं।

उसपर जो कुछ थोड़े-बहुत त्योहार आज भी जाति-पाँति, पंथ-विशेष यच्चयावत् हिंदुओं को एक ही भावना से, एक ही संस्कार से एकजीव कर रहे हैं, उनमें भी दीवाली ही प्रमुख है। हमारे हिंदुत्व की वैजयंति में सभी मोती, माणिक, रत्न इस दीवाली के सूत्र में स्वयंस्फूर्त पिरोए जाते हैं। वैदिक हिंदुओं की कोटि-कोटि जनता तो दीवाली को अपना एक राष्ट्रीय त्योहार समझती है। परंतु महावीर के स्वर्गारोहण जयंती के रूप में हमारे जैन हिंदू भी इस त्योहार को मनाते हैं, हमारे सिख हिंदू भी यह त्योहार बड़ी धूमधाम के साथ मनाते हैं, लिंगायत हिंदू, आर्यसमाजी हिंदू, ब्रह्मसमाजी हिंदू, देवसमाजी हिंदू—हिंदू मात्र यह त्योहार स्वयंस्फूर्ति के साथ मनाते हैं। कश्मीर से सिंहल तक इसका एक भी अपवाद नहीं। पिछले कम-से-कम दो सहस्र वर्षों से हम यह त्योहार मना रहे हैं। आज भी अखिल हिंदू राष्ट्र का यह एक अतिप्रिय त्योहार है और आगामी कम-से-कम एक सहस्र वर्ष—नहीं, जब तक हिंदू राष्ट्र राष्ट्र रूप में जीवित है, तब तक यह दीवाली, ये पटाखे, यह सुंदर आतिशबाजी, ये अनार, फुलझड़ियाँ जिनसे चिनगी झड़ती है, बिजली के लट्टुओं की वह जगमगाहट, वे स्वादिष्ट पकवान, भैया दूज—उमंगों, हर्षोल्लास से भरपूर दीवाली बस इसी तरह होती रहेगी। इस तर्कसंगत विश्वास से बीमा करनेवाले भी, जो अति सजग तथा सतर्क होते हैं, उसका (दीवाली का) बीमा करने की सहसा हिम्मत नहीं करेंगे।

परंतु इसलिए कि वह मात्र एक-दो हजार वर्षों की परंपरा है, इस त्योहार से हम चिपके रहें, यह उचित है, ऐसा नहीं। राष्ट्रीय जीवन में परंपरा का आंशिक महत्त्व होने पर भी उपयोगिता तथा स्थल-काल विवेक को उससे भी अधिक

प्रमुखता देनी चाहिए। प्रस्तुत अवस्था में, यदि कोई रूढ़ि हानिकारक सिद्ध हो रही हो अथवा मानवी ज्ञान की उज्ज्वलतर रोशनी में यदि कोई धारणा अथवा सिद्धांत गलत सिद्ध हो रहा हो तो उसे त्याज्य ही समझा जाए, भले ही उसके पीछे कितनी भी लंबी-चौड़ी, प्रदीर्घ परंपरा क्यों न हो? परंतु दीवाली का हमारा यह त्योहार स्वयं ही इतना मधुर, प्रेममय, सामाजिक संगठन के लिए सर्वथैव अनुकूल, आज की तार्किकता की कसौटी पर खरा उतरनेवाला है कि उसकी परंपरा खंडित करने का कोई भी कारण दिखाई नहीं देता। इतना ही नहीं, बल्कि दीवाली सदृश जिस त्योहार की परंपरा गौरवशाली तथा उज्ज्वल है, उसकी सामाजिक उपयोगिता भी उस परंपरा द्वारा ही अधिक परिवर्धित होती है। नानाविध ऐतिहासिक स्मृतियाँ तथा हमारे राष्ट्रीय जीवन के सत्व एवं नैरंतर्य का आत्मविश्वास इस परंपरा द्वारा जाग्रत रहता है। सौभाग्यवश किसी भी धार्मिकता की दलदल में दीवाली का त्योहार धचका हुआ नहीं है। अंधविश्वास तथा बुद्धिहीन लोकभ्रम की परतें उसपर ठोस रूप में चढ़ी हुई नहीं हैं। 'नरक चतुर्दशी के दिन भोर होते ही स्नान न करने से बदन पर गंदगी गिर जाती है' जैसे लोकभ्रमों को बच्चों के अतिरिक्त कोई भी सच नहीं मानता और यह उचित होगा कि बच्चों को भी इस तरह की अशुभ गप से दूर रखें। दीवाली के त्योहार में यह कहना गलत नहीं होगा कि मंत्र-तंत्र, जादू-टोना, होम-हवन, गोमूत्र, गोबर आदि कोई भी धार्मिक झमेले नहीं होते। दीवाली एक निर्मल सामाजिक त्योहार है। हमारे निवृत्तिप्रधान राष्ट्र का भी वह एक प्रवृत्तिपरक आनंदोत्सव है। उसके सारे संस्कार, स्नेहशील, शिष्ट, समाज-संगठक, श्रवण-नयनानंदक, स्वास्थ्यप्रद आह्लादक तथा सर्वस्वी निर्मल हैं। घर-बार, गोपुर, नगरों को रँगना, साज-सिंगार के साथ चारों ओर उल्लासपूर्ण, उमंग भरा तथा स्वस्थ वातावरण निर्मित करना; सुगंध-तेल-उबटन मलकर स्नान करना, सुंदर-सुंदर नए रेशमी जरी के वस्त्र धारण करना, स्निग्ध-स्वादिष्ट मिष्टान्नों का सेवन करना, स्नेही मित्रों को निमंत्रित करना, एक-दूसरे को प्रेमोपहार का लेन-देन, दीपोत्सव करना, सारी जनता की आतिशबाजी, चौसर के शिष्टाचारसम्मत आनंद में मग्न रहना, शब्द स्वरूप गंध स्पर्श का आनंद लूटना इस तरह यह त्योहार होता है। उसकी देवी है लक्ष्मी, और संस्कार है आनंद। और उसकी परंपरा श्रीकृष्ण, महावीर आदि अनेक राष्ट्रपुरुषों के ऐतिहासिक विजयोत्साह से निनादित है।

इस प्रकार के राष्ट्रीय त्योहार राष्ट्र को एकजीव तथा एकरूप करने में बहुत उपयोगी सिद्ध होते हैं। इसीलिए आसेतुहिमाचल हिंदूमात्र पिछले दो हजार वर्षों से, इस त्योहार की रंगत में रँगा हुआ है। दीवाली के उस सामाजिक त्योहार को हम सब हिंदू अपना एक राष्ट्रीय कर्तव्य समझकर अत्यंत उत्साहपूर्वक मनाते रहे। हमारी

पूर्व परंपरा में, हमारे हिंदू राष्ट्र के अभ्युदय में आज भी जो कुछ उपयोगी, बलप्रद तथा संगठक तीज-त्योहार हैं और जो जनमानस की बुद्धियुक्त कसौटी पर खरे उतरते हैं, उनमें ही दीवाली का यह राष्ट्रीय त्योहार भी गिना जाता है। दीवाली के लगभग सभी संस्कार-उपचार हिंदू संगठन के लिए पोषक ही हैं तथा प्रत्यक्षत: समाज मानस के अनुसार हैं।

इस प्रकार दीवाली का त्योहार हमें बहुत पसंद होने के कारण हम इस वर्ष भी उसे बड़ी उमंगों के साथ मनाना चाहते थे। परंतु जैसे-जैसे आए दिन सूखा पड़ने के समाचार आने लगे, वैसे-वैसे ही हमारा सारा मजा किरकिरा हो गया। इस प्रकार अन्यमनस्क मनोदशा में हम थे, इतने में हमारे जाने-पहचाने एक भाटिया सज्जन जो बंबई में धर्म प्रचारक का कार्य करते हैं—हमारे कमरे में आए। गले में लटकाया धर्मार्थ दान का बक्सा तथा हाथों में पकड़ा पत्रकों का गट्ठर बैठक पर रखकर लाठी को टेकते हुए पूछने लगे, "क्या पढ़ रहे हैं आप? उसमें ऐसा क्या समाचार है?"

"वराड़ में सूखे ने अपना डेरा-डंडा जमाया है। बेचारे कुछ लोग तो दाने-दाने के लिए इस तरह तरस रहे हैं कि पेड़ों की पत्तियाँ नोंच-खसोटकर अपने पेट की आग बुझा रहे हैं। उन दुखियारों की कैसी दीवाली? इस बरस की अर्थात् सूखे की दीवाली आप और हमने मनाई भी तो केवल एक रूखा कर्तव्य निभाने के रूप में—दु:ख में यही एक सुख था, इसलिए।"

"न, न, इतना परेशान होने की आवश्यकता नहीं है। यह पत्रक देखिए। अजी, इस दीवाली में सूखे का भय काहे को? दीवाली से पहले ही इस सूखे को खदेड़ देंगे। धुआँधार वर्षा होने से हर ओर इस महीने के अंदर-अंदर धन-धान्य की समृद्धि होनी चाहिए। अजी, वेद भगवान् जब हमारे पीछे खड़े हैं तब भला सूखा कष्ट क्यों देगा? लेकिन क्या किया जाए? हम यदि उस वेद भगवान् से मुँह मोड़ लें तो हमें अपने कर्म का कटु फल चखना ही होगा। इसीलिए सूखे का अनिष्ट सामने आते ही हमने उसका उपाय ढूँढ़ने का निश्चय किया। अब इस दीवाली में सूखे के भय का नाम ही क्यों? रामबाण उपाय समय पर करना चाहिए। उस कार्यार्थ सहायता का आयोजन करने के लिए मैं यहाँ आ गया हूँ।"

"भई, कौन सा उपाय, जो इतना अमोघ है कि दीवाली आने से पहले ही सूखे को मार-मारकर भगा देगा, जो मूसलाधार वर्षा करवाने की क्षमता रखता है?" हम अविश्वास का प्रदर्शन करते हुए मुसकराए।

"अजी, क्या पूछते हैं कि कौन सा? पर्जन्यसूक्त का जाप। यदि लोग पर्याप्त द्रव्य की सहायता करें तो पर्जन्य सूक्तात्मक एक महायज्ञ करेंगे।" इतना कहकर उन्होंने बड़े उत्साह के साथ झटपट उस पत्रक के पुलिंदों में से दो-चार पत्रक नोंच-

खसोटकर हमारे हाथ में ठूँस दिए। उनमें से एक में यह जानकारी थी—

'बंबई ऋषिकुल आश्रम दहिसर संस्था के संचालक अपने छात्रगणों के साथ बंबई, आंग्रेवाड़ा, कालबादेवी रोड पर पुरुषोत्तम मास के निमित्त आए हैं, सर्वत्र पर्जन्य के अभाववश सूखे के जो चिह्न दिख रहे हैं, उनके निवारणार्थ उन्होंने पर्जन्यसूक्त का जपानुष्ठान शुरू किया है। सनातनी धर्माभिमानी सज्जनों की सहायता मिलने पर पर्जन्यसूक्त का ही यज्ञ करने का उनका विचार है।''

हम यह पत्रक पढ़ रहे थे, इतने में मित्रवर भाटिया ने कहा, ''यह समाचार 'केसरी' में भी प्रकाशित हो गया है। उक्त ऋषिकुल-संचालक से हमारा बिलकुल परिचय नहीं है, तथापि हमने अपनी ओर से ही उक्त यज्ञकार्यार्थ कुछ द्रव्य इकट्ठा करके उन्हें भेजने का संकल्प किया है और यह दान-पेटी गले में बाँधकर आज बाहर निकल पड़े हैं। आपका विचार लेने हेतु इधर आए हैं।''

''आपके सद्हेतु के लिए धन्यवाद। हो सकता है, ऋषिकुल के उक्त संचालकों का उद्देश्य भी सार्वजनिक कल्याण ही हो। परंतु यह सूखा जो संपूर्ण भारत में कोहराम मचा रहा है, बंबई जैसे महानगर के एक कोने में बैठकर पाँच हजार बार 'बरखा हो बरखा हो' का जाप करने से अथवा यज्ञ का हवन-कुंड लाकर उसमें घी जलाने से भाग जाएगा—भई, ऐसे तर्कहीन विचारों को देखकर हमें हँसी आ रही है। अजी, आप मेरी राय जो माँग रहे हैं, इसलिए कह देता हूँ, मेरी कलम तथा यह स्याही से भरी दवात यहाँ पड़ी है, यदि मैं कोई दवातसूत्र या लेखनीसूत्र का लाख बार जाप करता रहा, 'हे लेखनी माता, तुम स्वयं इस दवात में डूब जाओ; हे दवात मैया, तू स्याही दे दे और तुम सब मिलकर मेरा यह लेख लिख डालो। सरस्वती शारदा तुम्हें बुद्धि दे दे,' तब मेरे उस दवातसूक्त अथवा कलमसूक्त से क्या ये वस्तुएँ तुरंत उठकर कभी यह लेख लिख डालेंगी? अथवा उधर पानी का लोटा और प्याला रखा है। मैं कोई जलसूक्त का यज्ञ करने बैठा और प्रार्थना की, 'हे लोटे महाशय; तथा हे पंचपात्रजी, आप मुझपर कृपा करें। हे लोटे महाशय, आप अपना जल अपने आप उस पंचपात्र में इस तरह लबालब भर दीजिए कि वह जरा भी न छलके। फिर हे पंचपात्रजी, तुम स्वयं मेरे पास आकर हलके से वह जल मेरे होंठों को लगा दो। मैं बहुत तृषार्त हूँ। जल देवताओ, प्रसन्न हो जाओ और लोटे का जल कभी सूखने नहीं देना।' तो भला यह निर्जीव लोटा तथा यह पंचपात्र स्वयं मुझे प्यास लगते ही लप् से उठकर मेरी प्यास बुझाएँगे? आपको इस कल्पना मात्र से भी हँसी आ गई। परंतु इस बात पर आपको हँसी नहीं आती कि बंबई में पर्जन्यसूक्त का जाप करने अथवा यज्ञ करने से आकाश स्थित सभी मेघ जो उस लोटे के समान ही निर्जीव हैं—इकट्ठे होकर सजीव मनुष्य की तरह जाप सुनकर प्रसन्न होते हुए इस

विशाल राष्ट्र की सहस्राधिक योजन भूमि पर धुआँधार बरसें। मात्र प्रार्थना से एक पंचपात्र पानी भी यदि मेरे मुँह में स्वयं जल देवता नहीं डालते तो उसी तरह की प्रार्थना सुनते ही सहस्राधिक योजनों की खेती पर भी वे मूसलाधार वर्षा कैसे करेंगे? भला यह कैसे संभव है?''

''परंतु पर्जन्यसूक्त आपके लोटा पंचपात्र पर विरचित खिल्लीबाज प्रार्थना जैसी मात्र प्रार्थना नहीं है। वह परमपूजनीय वेदों का एक मंत्र है, तथा उसमें गंभीर और दिव्य अर्थ भरा हुआ है।''

''वेदोक्त मंत्रों के संबंध में भी लोगों की इसी तरह की कुछ गूढ़ तथा भ्रामक धारणाएँ होती हैं, इसीलिए उनके अनुसार इन मंत्रों में ही कुछ विपरीत शक्ति भरी हुई है। परंतु मैं कहता हूँ, इस पर्जन्यसूक्त में भी एक सीधी-सादी प्रार्थना है, जैसे मैंने अभी-अभी लेखनीसूक्त अथवा स्याहीसूक्त में की है। क्या कभी आपने उन पर्जन्यसूक्तों को उनके अर्थ के साथ पढ़ा है? ऋग्वेदोक्त मूलभूत सूक्त कभी देखे या कम-से-कम सुने भी हैं?''

''जी नहीं। भई इतना संस्कृत का ज्ञान किसे है जो ऋग्वेद समझ सके। भला कभी किसीने ऋग्वेद का अर्थ बताया है?''

''अवश्य। यदि हम बता दें तो वह गलत कहा जाएगा। परंतु उन सायणाचार्य के भाष्य में, जिसे वैदिक वर्ग ने भी अत्यंत अधिकृत माना है और जिसके आधार पर ही आज तक परंपराभिमानी विद्वान् वेदशास्त्रसंपन्न गुरुजी शताधिक वेदपाठशालाओं में अध्यापन कर रहे हैं—कम-से-कम उसे अस्वीकार तो नहीं किया जा सकता। यदि यह विधान करने की इच्छा न हो कि वेद अर्थशून्य हैं तो सायणभाष्यार्थ, जिसे परम श्रद्धालु ब्राह्मण वैदिक भी स्वीकार करते हैं, उसे मानना ही होगा। आप संस्कृत अच्छी तरह से भले ही नहीं जानते पर मराठी तो जानते हैं। चित्रावशास्त्री जैसे विद्यानिधि ब्राह्मण ने सायणभाष्य के ही प्रमुख आधार से पर्जन्यविषयक सूक्तों की रचना की है। उनमें से दो-एक प्रमुख सूक्तों का अर्थ मैं आपको पढ़कर सुनाता हूँ और आपकी प्रार्थनाएँ मेरे स्याहीसूक्त से अलग प्रतीत नहीं होंगी। मंडूकसूक्त सुनकर तो आप हँसते-हँसते लोटपोट हो जाएँगे। यह विश्वास कि इस तरह की प्रार्थनाओं से सत्य ही देवी-देवता प्रसन्न होते हैं—जिस समय मनुष्य के मन में था, मानवी मन की तत्कालीन प्राथमिक अवस्था में तथा मानवी जीवन की प्राथमिक अनुभूतियों में ये प्रार्थनाएँ बिलकुल स्वाभाविक तथा सम्मान योग्य थीं। तत्कालीन ऋषियों का दोष नहीं है। परंतु अब इस बात की अनुभूति होने पर भी कि युगों की अनुभूतियों से ये भावनाएँ व्यर्थ सिद्ध होती रही हैं, ग्रहण, वर्षा ऋतुओं की निर्मिति के प्राकृतिक नियमों का अब ज्ञान हो चुका है, प्राचीन काल की अपेक्षा इस युग में

विज्ञान का कई गुना अधिक विकास हो गया है, फिर भी इस तरह के मूर्खतापूर्ण उपायों से सूखा टालने का प्रयास करना हम लोगों की निरी मूर्खता है, हास्यास्पद है, अंधविश्वास है। सुनिए एक प्रमुख पर्जन्यसूक्त का अनुवाद—देवापि ऋषिषेण पुत्र कहता है—

'हे बृहस्पते, मेरे पास उस देवता को भेजना जो पर्जन्य वृष्टि करता है—तुम शंतनु के लिए पर्जन्य वृष्टि करो। हे बृहस्पते, तुम हमारे स्तोत्र में निर्दोष स्वर, सतत प्रवाह तथा ओज की उत्पत्ति करो। जिस स्तोत्र में हम शांतनु के लिए पर्जन्य वृष्टि करने की माँग कर रहे हैं, उस स्तोत्र में स्वर्ग मधुर स्तोत्रों का प्रवेश होने दो। आर्ष्टिशेण ऋषि वहाँ बैठे हैं जो देवताओं की प्रसिद्धि जानते हैं—वे ऊपरी अंतरिक्ष के निचले जलमय प्रदेश से सर्वोत्तम पर्जन्य जल उत्पन्न करें। इस जलमय विभाग का ऊपरी जलमय अंश देवताओं ने रोक रखा है। वह उदक उनकी इच्छानुसार उचित भूमि पर वर्षा के रूप में गिरेगा। हे अग्ने, तुम उन मेघों को प्रेरणा दे दो जो पर्जन्य वृष्टि करते हैं। हे अग्ने, ये निन्यानबे गायें तुम्हें अर्पित करता हूँ। द्युलोक से हमारी इच्छानुसार वर्षा होने दो। हे अग्ने, निन्यानबे सहस्र गायें इंद्र को, जो पर्जन्य वृष्टि करता है, अपने भाग के रूप में दे दो। हे अग्ने, शत्रुओं के किले तोड़ दो। सारे रोग दूर करो। राक्षसों को दूर रखो। फैले हुए इस असीम अंतरिक्ष से विपुल मात्रा में पर्जन्यरूपेण उदक छोड़ दो।' *ऋग्वेद म. १०, सू. ९८*

पूर्वपीठिका के अनुसार यह सूक्त तब गाया गया जब शांतनु के राज्य में पूरे बारह बरस वर्षा नहीं हुई थी। इस प्रकार के सूखे वैदिक ऋषि-मुनियों के समय भी हुआ करते। इन सूक्तों के कारण यदि पर्जन्य वृष्टि सोलह आने होती है तो साक्षात् ऋषि-मुनियों के युग में, जब इंद्र अग्नि आह्वान करते ही आ जाते और 'प्रसन्न हो जाओ' कहने मात्र से प्रसन्न हो जाते, उस समय भला यह कैसे हो गया? बारह वर्षों में जिन इंद्र-अग्नि को उन सहस्राधिक लोगों की भयानक यातनाओं के प्रति अपने आप करुणा नहीं आई, इस प्रकार ये निष्ठुर देवतारू, जैसेकि सूक्तों में प्रदान की हुई निन्यानबे अथवा सहस्र गायों की रिश्वत मिलते ही पर्जन्य वृष्टि करते हैं, अन्यथा उस रिश्वत को हड़पने के लिए बारह वर्ष सहस्रों जीवों को भूख-प्यास से तड़पा-तड़पाकर जान से मार डालते हैं—देवताओं के संबंध में यह जो धारणा बनाई गई है, वह देवत्व की नहीं, दानवीय है। यह देवताओं की प्रशंसा है या निंदा? अच्छा, यह दावे के साथ भला कैसे कहा जा सकता है कि बारह वर्षों के पश्चात् राजा के द्वारा करवाए गए यज्ञ के इस सूक्त से पर्जन्य वृष्टि हो गई? दुर्गादेवी के बारह वर्षीय कलियुगीन सूखे में मुसलमान राजा था। उसने तो यज्ञ करवाया ही नहीं—बल्कि विध्वंस ही किया। इसके विपरीत भी पूर्ववत् वर्षा होती ही रही न? बारह वर्षों के

पश्चात् प्रकृति क्रम के अनुसार कभी-न-कभी वर्षा होगी ही होगी। उसी प्रकार पर्जन्य वृष्टि होते ही वह तत्कालीन धर्मश्रद्ध लोगों को राजयज्ञ अथवा इस सूक्त का फल प्रतीत होना भले ही स्वाभाविक हो, ये यज्ञ राजे-महाराजाओं द्वारा न होने पर भी दुर्गादेवी समान प्रदीर्घ सूखे के पश्चात् प्रकृति की प्रतिक्रियास्वरूप वर्षा पर्जन्य सूक्त के बिना भी होती ही है। इस प्रकार का अनुभव सैकड़ों बार आने के पश्चात् भी यह स्वाभाविक ही नहीं कहा जाता कि हम इस प्रकार की प्रार्थनाओं को सूखे पर अमोघ औषधि मान लें, यह बात बुद्धिमानी की तो कतई नहीं कही जा सकती, यह मात्र मूर्खता है।

पर्जन्य की प्रार्थना के विषय में और एक वैदिक सूक्त की बात ध्यान से सुनिए—म. ७ सूक्त १०१ भी पर्जन्य विषयक है। 'जो औषधि बाँटता है तथा जो पानी की लूट मचाता है वह पर्जन्य हमें सुख प्रदान करे। इस पर्जन्य का एक रूप बाँझ गाय के समान है और दूसरा रूप उत्पादक। यह स्तोत्र वह स्वयंसिद्ध पर्जन्य सुने, वह संतुष्ट हो जाए, हमें वर्षा का लाभ हो। वह पर्जन्य एक बैल की तरह कई औषधियों को उत्पन्न करता है, वही चलाचल संपत्ति का मूलाधार है। उस उदक का मुझे लाभ हो। देवताओ, मेरा कल्याण करो।' इस प्रकार वशिष्ठ ऋषि का 'वर्षा देवता' का सूक्त है, उसीके आगे १०३वाँ सूक्त मेढक देवता की प्रार्थना है।

पर्जन्य सूक्त ऋषि-मुनियों ने गाया, तब उनका मेढकों ने अनुमोदन किया। इसलिए वशिष्ठ मुनि ने मंडूक सूक्त का गान किया—इस प्रकार उसकी पीठिका है—वह सूक्त इस प्रकार है—

'मंडूक जोकि व्रताचरणी ब्राह्मणों की तरह एक साल तक चुप बैठे रहे थे, अब ऐसे शब्दों का उच्चारण करने लगे जो पर्जन्य को प्रिय है। एक सूखी मशक अथवा पखाल की तरह पड़े रहे मेढकों के पास जब स्वर्गीय उदक आ गया, तब अपने बछड़े के लिए रँभाती गाय की तरह मंडूक कोलाहल करने लगते हैं। वर्षा काल निकट आने पर तृषार्त मेढकों पर जब पर्जन्य वृष्टि होती है, तब एक मंडूक दूसरे मंडूक के पास शब्द करते जाता है, जैसे कोई बच्चा अपने पिता से तुतले बोल बोलता है। वर्षा से प्रफुल्लित होते हुए एक चित्र-विचित्र रंग का मेढक अन्य हरित वर्ण मेढकों के सुर में अपना सुर मिलाता है—एक दूसरे को पकड़ता है। एक मेढक दूसरे की नकल करता है, जिस तरह एक छात्र अपने अध्यापक की नकल करता है। जो मेढक ग्रीष्म ऋतु में मिट्टी में मिल जाते हैं, वही फिर से सजीव बनकर टर्र-टर्र करते फूलने लगते हैं। एक मेढक गाय जैसा चिल्लाता है तो दूसरा बकरी जैसा 'में-में' करने लगता है। विविध रंगी, विविध ढंगी एक ही 'मंडूक' नामक ये मेढक टर्र-टर्र कर रहे हैं। वीतिहोत्र नामक सोमयाग में ब्राह्मण जिस तरह मत्रोच्चारण

करते हैं, उसी तरह लबालब भरे एक ताल को घेरकर मंडूक डराँव-डराँव शब्द कर रहे हैं। कुछ मंडूक तो सोमरस प्राशन करके धार्मिक ब्राह्मण-पुरोहितों की तरह शब्द करते हैं। प्रवर्ग्य ऋत्विजों की तरह पसीने से लथपथ होते हैं, वर्षा होते ही बाहर प्रकट होते हैं। ये सर्वश्रेष्ठ मेढक देवाज्ञा का पालन करते हैं। इन मेढकों ने हमें धन-संपदा प्रदान की। वर्षा ऋतु के पश्वात् इन मंडूकों ने विपुल गोधन और दीर्घायु हमें प्रदान किया।' *ऋग्वेद मं. ७ सू. १०३*

सुना आपने? वास्तव में यह सूक्त अच्छा है। इसमें अभिव्यक्त नर्म-विनोद मधुर तथा स्वभावोक्ति मनोरंजक है। परंतु यह धारणा रखना कि ये सूक्त ईश्वरोक्त हैं, अथवा इनका जाप करने से वर्षा होती है, मात्र अंधविश्वास नहीं है? 'हमारे पर्जन्य सूक्त पठन से वर्षा होती है' जैसे अंधविश्वास की खिल्ली उड़ाने के लिए महर्षि वशिष्ठ ने 'मंडूक' देवता पर यह सूक्त रचाया होगा, क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि उसमें नर्म-विनोद के तौर पर यह सुझाव दिया होगा कि पर्जन्य सूक्त के मंत्र पठन से वर्षा होती है। यह अंधविश्वासयुक्त धारणा उतनी ही मूर्खतापूर्ण और हास्यास्पद है जितनी 'मेढकों के टर्राने से वर्षा होती है' जैसी प्रशंसा। कम-से-कम अनजाने में उसमें यही ध्वनि उभरी हुई है।

अच्छा, क्या यह बात मिथ्या है कि वैदिक प्रार्थना तथा सूक्तों का पठन होते हुए भी हमारे यहाँ युगों से सूखा तथा अकाल हो ही रहे हैं। इसके विपरीत क्या यह सच नहीं है कि कई मलेच्छ देशों में—जो वेदनिंदक हैं तथा पर्जन्य सूक्त का जिन्हें रत्ती भर भी ज्ञान नहीं है—हमारे जैसा सूखा प्रतिवर्ष नहीं होता और वे धन-धान्यों में हमसे भी अधिक संपन्न हैं; कभी-कभार सौ बरसों में पर्जन्य सूक्त पठन किया और वर्षा हो गई, जैसेकि अंधे के हाथ बटेर लग जाए। कौआ बैठा और डाली साथ-साथ ही टूट गई। पर इससे क्या यह नियम बनाया जा सकता है कि यदि डालियाँ तोड़नी हैं, तो उनपर किसी कौए को बैठा दो? जिस तरह कुल्हाड़ी से अवश्य डाली टूटती है, उसी प्रकार कौआ बैठने से जब तक सभी प्रसंगों में डाली नहीं टूटती तब तक इस तरह का नियम बनाना मूर्खता नहीं है? हमारी अपनी स्मृति में इस प्रकार पच्चीस बार छोटे-मोटे सूखे पड़ गए। पच्चीसों बार पर्जन्य सूक्त के छोटे-मोटे यज्ञ हो गए, परंतु एक बार भी यह स्मरण नहीं हो रहा कि सूखा खत्म हुआ और भारी वर्षा हो गई। क्या आपको भी इसी तरह स्मरण नहीं हो रहा? इतिहास में भी यही नहीं पाया जाता है?''

''सच कहिए, तो मेरा भी अनुभव यही है। इतिहास विषयक प्रतिपादन से मैं भी सहमत हूँ। वर्तमान कलयुग में मंत्र की शक्ति भी लुप्तप्राय हो गई है। परंतु वैदिक काल में वे मंत्र···।''

''मैंने पहले ही आपको दिखाया है। आपके अनुसार जिस युग में ये मंत्र संजीव थे, उस वैदिक युग में इस तरह प्रार्थना द्वारा वर्षा हो रही थी, यह बात ही पूर्णतया असंभवनीय है। वेदों में इसी तरह का प्रमाण उपलब्ध है। इस उक्त सूक्त की पूर्वपीठिका में ही बारह वर्षों के सूखे का उल्लेख है। अजी, अन्य जनों को छोड़िए, परंतु प्रत्यक्ष मंत्रद्रष्टा मुनियों को भी पर्जन्य सूक्त की रट लगाने पर भी अनाज का एक दाना भी नहीं मिला। सूखे ने बड़ी दुर्गत बना दी। तपोभास्कर विश्वामित्र को देखिए, वे वेदपाठक चतुर्वेदी ही नहीं अपितु वेदमंत्र द्रष्टा हैं। परंतु उस युग में भी इस प्रकार का भीषण सूखा पड़ा। पर्जन्य सूक्त क्या विश्वामित्र तथा उस साक्षात् वैदिककालीन मंत्रद्रष्टाओं की पीढ़ी में कोई नहीं जानता था? परंतु उसका रत्ती भर भी लाभ नहीं हुआ। साक्षात् विश्वामित्र ऋषि भी अन्न-अन्न करते हुए श्वपच के घर भी भीख माँगने गए—उधर भी खाने के लिए कुछ नहीं मिला तब उन्होंने वहीं से एक कुत्ते की लाश की टाँग चोरी कर ली और भूख के मारे कलेजा मुँह को आने से वह टाँग भी उन्होंने चटकारे भर-भरकर चचोड़ी। अत: यह धारणा निराधार है कि इन पर्जन्य सूक्तों अथवा प्रार्थनाओं के द्वारा वैदिक काल में भी 'बरखा रानी बरसो' कहते ही वर्षा होती थी।

परंतु ऐसा नहीं कि यह असमर्थता वेद-पुराणांतर्गत प्रार्थना अथवा सूक्तों की ही है। कुरानांतर्गत आयतों में अथवा प्रार्थनाओं में भी पर्जन्य वृष्टि करने की शक्ति नहीं है। न बाइबिल में, न ही अवेस्ता में। दुर्गादेवी का ही बारह वर्षीय सूखा लीजिए। हजारों हिंदुओं के नाम से ही हुई पर्जन्य सूक्तादि प्रार्थनाएँ जिस तरह नाकाम सिद्ध हो गईं, उसी तरह उस समय हर मसजिद में अल्लाह के नाम की गई प्रार्थनाएँ भी व्यर्थ सिद्ध हो गईं, और मुसलमानी राज्य में ही लाखों मुसलमान अन्नान्न दशा में तड़प-तड़पकर मर गए। आज भी हर सूखे में जिस प्रकार पुराण के अनुयायी हिंदू उसी तरह कुरान के अनुयायी मुसलमान दोनों ही सूखे के जबड़े के नीचे कुचले जा रहे हैं। बाइबिल के पुराने टेस्टामेंट में ऐसी कथाएँ हैं जिनमें पैगंबर आदि को भी—जिन्हें आए दिन ईश्वर का दर्शन होता था, सपरिवार भुखमरी की तीव्र यंत्रणा सहनी पड़ी और जेहोवा के भक्तस्वरूप पूरा राष्ट्र ही दाने-दाने को तरसते हुए मिस्र के फरीहा का दासानुदास बन गया। अत: वैदिक अथवा पौराणिक, कुरानीय अथवा बाइबिलीय प्रार्थनाएँ अथवा मंत्र-जाप भी पर्जन्य वृष्टि करता है अथवा सूखा करता है—यह मात्र अंधविश्वास है, अटकलपच्चुओं का बाजार है। पर्जन्य वृष्टि करने अथवा सूखे को नामशेष करने की जो शक्ति मनुष्य में होनी संभव है, वह इस दैवी अज्ञान की पिछलग्गू बनकर नहीं अपितु प्रत्यक्ष विज्ञान की अँगुली थामकर। अबाधित प्रकृति नियम के ज्ञान द्वारा आज भी अपनी इच्छा के

अनुसार पर्जन्य वृष्टि के चंद प्रयोग रूस में सफल हो रहे हैं और जब तक वे पूर्णत: सफल नहीं होते तब तक अन्य मानवीय मार्गों से भी इस सूखे का फन कुचलना संभव है। देखिए, यदि राष्ट्रसत्ता प्रबल, यत्नशील तथा प्रज्ञ हो तो जिस हिंदुस्थान में सूखे के वर्ष में भी इधर-उधर भारी वर्षा होती है तथा असीम जल व्यर्थ जाता है—उसका उचित उपयोग करते हुए कृषि सुधार कार्यवाही में उसे लाना चाहिए। फिर जल्दी से गल्ले का निर्यात करके जहाँ उसकी माँग है—सूखे का फन कुचला जा सकता है। परंतु यहाँ हमारा यह विषय नहीं है।''

''आपका कहना सोलह आने सच है। बताइए, इस मामले में आज ही व्यक्तिगत रूप में मैं क्या कर सकता हूँ?''

''प्रार्थना पर्जन्य सूक्त की मूर्खतावश प्रत्यक्ष सूखे में घी और अनाज जो अभी बचा-खुचा है, अग्नये स्वाहा करने का मूर्खतापूर्ण उपाय त्याग कर इस दीवाली में यही पेटी गले में बाँधकर अन्य प्रचारकों के साथ घर-घर घूमें। दीवाली जैसे-तैसे मनाई तो जाएगी ही। परंतु उदाहरण के तौर पर पटाखों की आतिशबाजी में जो हजारों रुपए सीधे विदेश में जाते हैं, उन्हें बचाते हुए हर परिवार वह द्रव्य अपने अकाल-पीड़ित बांधवों को दान करे, इस तरह याचना करें और यथासंभव उस द्रव्य से अनाज खरीदकर सूखे से जो क्षुधाग्रस्त हैं उनके मुँह में अपने हाथों से दो कौर डाले जाएँ। ठीक है न? चलिए, उठिए, काम पर लग जाइए, अकरणांमंद करणम् श्रेय:। मेरा चंदा सबसे पहले लीजिए।''

—१९३६

□

नंदी बैल और मनुष्य बैल

''ले लो माई, इतना सारा गट्ठर!'' लकड़ी बेचनेवाली औरतें नानू सेठ की पत्नी के गले पड़ने लगीं।

''फिर डाल दो। हाँ, पर हर गट्ठर के ढाई आने से अधिक मैं एक फूटी कौड़ी भी नहीं दूँगी। कहे देती हूँ।''

''भगवान् के लिए ऐसा मत कर, माई! अरी, चार-चार आने आ जाते हैं एक-एक गट्ठर के। घर में बाल-बच्चों को छोड़कर हम भोर होते ही जो निकल पड़ीं, वह इस नगर में अब इस दोपहर के समय तक सिर पर बोझ लादकर दर-दर भटक रही हैं। भला ढाई आने में नून, मिर्च, दाना घर कैसे ले जाएँगे हम? हर गट्ठर के पीछे साढ़े तीन आने ही दे दो और सारे गट्ठर ले लो, माई!''

''एक बार कह जो दिया—ढाई आना गट्ठर के हिसाब से देना है तो दो, नहीं तो अपना रास्ता नापो। अगर कोई तुम्हें हर गट्ठर के पीछे चवन्नी नहीं, अठन्नी भी देने के लिए राजी हो तो मैं मना थोड़े ही कर रही हूँ? तुम्हें जहाँ बन पड़े वहीं दे दो। ऑं, ना-ना, तीन आने नहीं और दो आने नहीं। ढाई आना गट्ठर उचित समझो तो सभी औरतें यहीं पर डाल दो। क्यों? वरना अपना रास्ता नापो। बेकार माई-माई की रट मत लगाती रहो। मुझे खिचखिच करने की बिलकुल फुरसत नहीं है। अगर मंजूर नहीं है, तो चलो खिसको यहाँ से।''

''आगे किधर जाएँ जी ? दोपहर दिन सिर पर चढ़ गया, घर में बच्चे! अच्छा, एक-एक पैसा ज्यादा…''

''क्या मैंने बाँधकर रखा है तुम्हें? जाओ, जाओ जिधर ज्यादा टका मिल रहा है। ढाई आना गट्ठर देना हो तो मैं लूँगी। भई, मुझपर जोर-जबरदस्ती क्यों?''

सौदे की दृष्टि से सेठानी का विधान बिलकुल सरल, सही था। उसे भी तो अपनी गृहस्थी चलानी थी।

आखिर अपना मन खट्टा करके झुँझलाती, भुनभुनाती, बड़बड़ाती हुई वे

सभी औरतें ढाई आना गट्ठर के हिसाब से सौदा तोड़ने को राजी हो गईं। उन औरतों की कमर में एक-एक छोटी सी धोती लिपटी हुई थी। उसीका मुश्किल से काछा मारा हुआ था, उस धोती से कमर के नीचे जाँघों को बालिश्त भर भी ढकना मुश्किल था। ऊपर एक फटी-पुरानी चोली, बदन पसीने से तर, हाथ में पीतल की बटलोई और हाँ, काँच की ढेर सारी मोटी-मोटी चूड़ियाँ। रूपविशेष वे चार-पाँच लकड़ी बेचनेवाली औरतें सेठानी की दिखाई हुई गलियारी की ओर मुड़कर उस घर के पिछवाड़े के द्वार पर गट्ठर रखने चल पड़ीं। धड़ाधड़ एक के ऊपर एक गट्ठर गिरने लगे। सेठानी ने गिनती करके उनके हाथों में पैसे थमाए।

इतने में उन गट्ठरवालियों ने अपनी हमेशा की तिकड़म दिखाकर झगड़ा खड़ा किया। उस औरत को छोड़कर जो ढाई आना गट्ठर के सौदे के लिए राजी हो गई थी—बाकी सभी औरतों ने शोर मचाया—

''नहीं! नहीं! हमने तय नहीं किया था ढाई आने। माई, तुमने तो तीन-तीन आने को कहा था। इसलिए तो हमने गट्ठर डाल दिए। उसका होगा ढाई आने का गट्ठर। नहीं, नहीं, नहीं। हमें नहीं चाहिए आपके पैसे।'' इसी तरह हंगामा मचाते हुए दो-तीन औरतों ने अपने पैसे फेंक दिए और वे अपने-अपने गट्ठर उठाने लगीं। तब सेठानी आग-भभूका हो गई। उसका बड़ा बेटा दरवाजे पर ही खड़ा था। उसने उससे चिल्लाकर कहा, 'गंपू, बबुआ, उठाओ ये पैसे और इन बदमाश औरतों को छूने भी नहीं देना उन गट्ठरों को।''

गंपा लंबा-तड़ंगा, हट्टा-कट्टा युवक था, जो हाई स्कूल में पढ़ता था। वह लपककर आगे बढ़ा।

पैसे उठाते हुए गंपा ने धमकाया, ''चलो हटो, दूर हो जाओ। गट्ठर को छुआ भी तो याद रखो। हाँ, हाँ, नहीं देता, जाओ। पैसे भी नहीं और गट्ठर भी नहीं। हमसे चालाकी करती हैं।''

आखिरी चाल भी निरर्थक हो गई। 'डुबा दो हम गरीबों को,'' 'लूट लिया री हमें, हमारी लकड़ियाँ लूट लीं' इस तरह मुँह से कोसते-कोसते गट्ठरवाली औरतों ने आखिर फेंके हुए पैसे ढाई आने के भाव से वापस ले लिये। पैसों का आपस में बँटवारा करने तक वे पिछला सारा क्रोध-लोभ भूल गईं और हमेशा की रीति के अनुसार गट्ठरों के सौदे में टंटे-झगड़े के कारण जो कमाई घट गई थी, उसे प्यार से पूरा करने का हमेशा का दूसरा अंक शुरू हो गया।

''तनिक पानी तो पिलाओ, माई!''

''अचार की एकाध फाँक तो दे दो बच्चे को, माई!''

''बासी रोटी के कौर नहीं हैं घर में, थोड़ा सा चावल-रोटी तो दे दे, माँ!''

इस प्रकार गिड़गिड़ाने लगीं।

''तुम्हारी जात-पाँत कौन सी है री?'' पहले यह पूछकर सेठानी ने जाति के कोष्ठकानुरूप किसीको अंजुली से, किसीको लोटे से पेट भर पानी पिलाया, थोड़ा बासी, थोड़ा ताजा साग-चावल उनके हाथों पर रख दिया। उन गट्ठरवाली औरतों की चालाकी का क्रोध अब सेठानी के मन में नहीं रहा—गट्ठर बिलकुल ही आँधी के आम जैसे सस्ते में बेचने का दुःख उन औरतों ने अब आया-गया कर दिया। दोनों को उस रोजमर्रे की घिसीपिटी बहस की तथा हाँ-ना की आदत ही थी—वही रिवाज था—गट्ठर के व्यवसाय का वह शिष्टाचार ही था।

तनिक सुस्ताकर वे औरतें रोटी खाने तथा पानी पीने बैठ गईं। भोर होते ही जो बोझ सिर पर लेकर अपने कुनबे से वे निकलीं तो नगर-नगर में दोपहर की चिलचिलाती धूप में घर-घर, डगर-डगर की खाक छानती घूमते-घूमते उनके कन्ने ढीले पड़ गए थे, कमर टूट गई थी, गरमी तथा कष्टों ने उनकी नाक में दम कर दिया था। और आखिर इतनी लकड़ी काटकर उसे बेचने का जो जी-तोड़ परिश्रम उन्होंने किया उससे कमाई हो गई सिर्फ ढाई आने।

सेठजी के मकान के सामने अपने घर की ऊपरी मंजिल की खिड़की के पास रामबाबू खड़े थे। बेचारी गट्ठरवाली औरतें अगले दरवाजे पर प्रति गट्ठर ढाई-तीन आने भाव पर तोल-मोलकर बहस कर रही थीं—वह सारा तमाशा रामबाबू देख रहे थे। उन औरतों को सेठजी के घर के पिछवाड़े के दरवाजे के पास लकड़ियों के गट्ठर रखने के लिए गलियारी में मुड़ते हुए उन्होंने देखा। उनकी परिश्रमी प्रवृत्ति के बारे में रामबाबू के मन में कुछ विचार मँडरा ही रहे थे, सेठजी के मकान के पिछवाड़े के दरवाजे पर सेठानी और उन औरतों का हंगामा चल ही रहा था कि इधर सेठजी के सामनेवाले दरवाजे के पास हाथ में एक डमरू डुम-डुम डुमक, डुम-डुम डुमक बजाता एक जोगी, उसके पीछे एक नंदी बैल[१] तथा गाय की एक टोली आ धमकी। पूरा-का-पूरा रास्ता रोकते हुए वह साधु सेठजी के सामनेवाले दरवाजे के पास अपना डेरा जमाता डमरू बजा-बजाकर गला फाड़कर चिल्लाने लगा—

''गोमाता को धर्म कर, माई! अजी माँजी, नंदी बैल की पूजा कीजिए!''

उस साधु के बदन पर गेरुए रंग की एक कफनी थी जो उस साधु की टाँगों को ढकती थी, ऊपर रुद्राक्ष की एक माला, सिर पर गेरुए रंग का साफा, कृष्ण वर्ण, देखने में कंगला, गँवार, बेढंगा। परंतु उसकी चर्या या स्वर में चिंता और विनय का

---

१. नंदी बैल—वह बैल जिसे सजा-धजाकर अपने साथ घुमाकर साधु, जोगी भीख माँगते हैं। यह बैल शिवजी के नंदी का प्रतीक माना जाता है।

नामोनिशान तक नहीं था। इस तरह का कोई भी भाव उसके चिल्लाने में नहीं था कि वह एक भिखमंगा है। बल्कि अब उसके तेवर चढ़ने लगे थे कि उसके वहाँ पहुँचने से पहले ही कोई भी 'धर्म' लेकर उसका स्वागत करने के लिए खड़ा नहीं था। चलो खड़ा तो नहीं था। पर इतना गला फाड़-फाड़कर चिल्लाने पर भी कोई कान नहीं दे रहा था। वह याचना तो नहीं कर रहा था, 'धर्म' की माँग कर रहा था। नंदी बैल और गोमाता—दो देवताओं का पुरोहित जो था वह।

"भई, बात क्या है? अरे कोई सुन रहा है या नहीं? क्या किसीको नंदी बैल की पूजा नहीं करनी? डुम-डुम डुमक, डुम-डुम डुमक। अजी माई, धर्म करो।"

उसके शोरगुल करने से आखिर दो-चार लोग आते हुए दिखाई दिए जिससे उसने फिर धर्मोपदेश का राग अलापना शुरू किया। लेकिन वह किस तरह? कोई भी भिखारी कम-से-कम एकाध अभंग, श्लोक, गीत कंठस्थ करने का कष्ट उठाता है। परंतु उस साधु महात्मा ने उतना भी परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं समझी। गौमैया की पूँजी पर अपनी आजीविका चलाने का सौभाग्य जो उसे मिला था। उसका धर्मोपदेश, शीघ्रकवित्व, छंद-मुक्तछंद, सरल गद्य भी जैसा सूझा वैसे ही किसी सुर में, जहाँ मन किया वहाँ, जिसे मन किया उस शब्द को खींचते हुए अथवा कभी अखंड भाषण ही वह गाने लगता। आमतौर पर उसका नमूना इस तरह होता—

"दोऽदोन माई। इस गोमाऽऽता को कपड़ा, कुऽऽर-ता दे दे। हलदी-कुंकुम गोऽऽमाऽऽता को। महादेव का-ऽऽ नंदीबैऽऽल भगवान् का। नंदीराऽऽजा। पैसाऽपैसा। गोमाता तैंतीसऽऽकोटि देवताओं की। कीऽऽ पैसा चारा डालोऽऽ हो माऽई। धऽरऽम करोऽऽजीऽ। डुम-डुम डुमुक। डुम-डुम डुमुक। दे दो न माई, नंदी माँऽऽ ग रहा है, पैसाऽऽऽ दान का। महाऽऽदेव का।"

यह हंगामा सुनकर सेठानी भी सामनेवाले द्वार के पास आ गई। उसे देखते ही साधु महाराज ने धर्मोपदेश के अधिकार भरे स्वर में कहा, "माई री! तेरे दर पर नंदी राजा आया है, शंभो महादेव को दान करो। यह आदिमाता गोमाता कामधेनु तुम्हारे द्वार पर आई है, उसपर दया करो। तुम्हारा नंदी बाबा? पीठ पर एक वस्त्र?" हाथ में धरा गराँव खींचते ही नंदी ने अपना सिर हिलाया। बच्चे हँसने लगे, सेठानी मुसकराई और चवन्नी का सिक्का गाय पर उतारकर उसने उसे दे दिया।

रामबाबू भी मुसकराए, पर व्यंग्य से। शंभू महादेव का नंदी और उसे फटा-पुराना कपड़ा चाहिए—पीठ ढकने के लिए। उसके लिए साक्षात् महादेव मनुष्य के सामने हाथ पसारकर भीख माँगता है। और जिसे यह आदि देवी कामधेनु कह रहा है, उस गाय को घास की भीख। कामधेनु घास के लिए दर-दर भटक रही है। इन

भिखमंगों को यह भी नहीं पता कि भीख भी सुसंबद्ध रूप से किस तरह माँगते हैं। ये भिखमंगे एक गुना मूर्ख तो वे दस गुना मूर्ख जो इन्हें भीख देते हैं। धार्मिक अंधविश्वास के कारण सीधे-सादे शब्दों का अर्थ भी नहीं समझ पाते। अन्य सारे व्यवहार में जो चतुर और सतर्क होता है, वह भी काठ का उल्लू और आँख का अंधा बन जाता है। वे अभी थोड़ी देर पहले उन परिश्रमी गट्ठरवालियों से भी ढाई या तीन आने—इतनी बारीकी के साथ जो सेठानी भाव-ताव कर रही थी, उसीने तपाक् से इस मुफ्तखोर टुकड़खोर को नंदी बैल की नेग के रूप में चवन्नी दे डाली। इस प्रश्न ने भी उसके मन को स्पर्श तक नहीं किया कि जो कामधेनु है, वह भला भीख कैसे माँग सकती है?

सेठानी के संकेत पर उसकी बेटी ने हलदी-कुंकुम लाते हुए उस गाय को तिलक लगाया, नंदी को भी लगाया और प्रणाम किया। इतना कुछ होने पर भी वह बजरबट्टू साधु डुमुक-डुमुक डमरू बजाते भीख का तूमार बाँधता ही रहा। "चवन्नी दी आपने, वह गोमैया के लिए पर्याप्त नहीं है जी! यह नंदी कपड़ा माँग रहा है, भगवान् के घर तू दान करेगी तो इस दान का सौ गुना धन तुम्हें वापस मिलेगा, माई!" इस प्रकार बड़बड़ाते हुए माँग ही रहा था और डमरू बजाकर तथा गराँव खींचकर यह प्रमाणपत्र देने के लिए कि उसकी माँगें तथा वचन महादेव नंदीदेव के हैं, नंदी बैल की मुंडी हिलवाकर उसकी अनुमति भी ले रहा था। उसकी कामधेनु आसपास के तिनके खाते, कूड़े के ढेर में मुँह डाल, आँगन के बाहर लगे पेड़ के पत्ते नोंच इस तरह आगे-पीछे का रास्ता रोककर अपनी लीला रचा रही थी।

इतने में उसी सड़क से नगर संस्था (म्युनिसिपालिटी) की बड़ी मैलागाड़ी आ गई। उस गाड़ी पर शहर के मैले से भरी, एक बंद और भारी-भकम टंकी थी जो आड़ी रखी गई थी। उस गाड़ी में एक ही बैल जोड़ा हुआ था जो उस भारी बोझ को सुबह से ढो रहा था और नगर संस्था का भंगी उसे चला रहा था। मध्याह्न के समय तक पसीने से तर, घिनौने तथा भारी बोझ को उठाते, फेंकते टंकी में भरते, गाड़ी से उतारते वह भंगी भी उस बैल जैसा ही निढाल हो गया था। उस बैल तथा भंगी के सिर और चेहरे पर जलधाराएँ टपक रही थीं जो उन दोनों के माथे के पसीने की, अथक परिश्रम की एवं खून की थीं। भंगी सोच रहा था, बारह बजे से पहले वह मैलागाड़ी जैसे-तैसे अपने मुकाम पर कैसे पहुँचे। रोटी खाने की छुट्टी में घर जाकर तनिक छुटकारा मिले। उस सड़क से वह अपनी गाड़ी यथासंभव सावधानी के साथ चला रहा था। यद्यपि वह बेचारा बैल तनिक भी चीं-चपड़ न करते हुए चुपचाप नाक की सीध में गाड़ी खींच रहा था, तथापि उस भंगी की मैलागाड़ी की गंदगी के कारण आसपास के घरों के निवासी तथा दूध के धुले

प्रतिष्ठित राहगीर उस बेचारे भंगी पर ही घृणाजन्य क्रोध उतार रहे थे। उसे ऊटपटाँग बकते, उसपर थू-थू कर रहे थे—'हट जाओ', 'अबे साले रास्ता क्यों रोक रहे हो, गधे की औलाद!'

'राम! राम! आ गई इस चांडाल की गाड़ी', 'अबे, ले जाओ न साले जल्दी से। गंदगी की बदबू से नाक के बाल जल गए, जीना हराम कर देते हैं ये हरामखोर!' इस प्रकार कटु शब्दों, गाली-गलौजों तथा धमकियों की बौछार हर कोई उस बेचारे भंगी पर कर रहा था जो कोल्हू के बैल की तरह अथक परिश्रम करते-करते पस्त हो गया था। जैसेकि जिस गंदगी ने उन सभ्य नागरिकों का जीना हराम किया था, मैले की उस टंकी की सारी गंदगी मानो उस भंगी की करतूत थी। उस गंदगी में जैसे उन सभ्य शिष्ट नागरिकों का कोई हाथ नहीं था। परंतु वही नागरिक जो गंदगी करते हैं, अपनी नाक पर रूमाल तथा उत्तरीय लगाकर हमेशा उस भंगी को, जो उनके नगर की गंदगी साफ करके उसे ढोता है, अत्यंत घृणापूर्वक दुत्कारते हैं। इसपर हम कभी ध्यान नहीं देते कि यह अधम अन्याय प्रतिदिन हमारे हाथों से होता है। भंगी की गाड़ी देखते ही जब हम झट से अपनी गंदगी का गुस्सा उस बेचारे पर उतारते हैं, उसपर चारों ओर से थू-थू करते हुए कहते हैं, 'यह गधा दुर्गंध से जीना दूभर करता है, भरी सड़क से मैलागाड़ी ले जाता है साला!' तो यह याद रखें कि चाहे किसी भी रास्ते से, घर-घर के मैले के डिब्बे, तथा वह गाड़ी ढोने का उस भंगी को कोई शौक नहीं होता। आप अगर हवाई जहाज द्वारा ऊपर से ही हलके से मैले की गाड़ी ले जाने का प्रबंध कर दें अथवा नीचे पाताल लोक द्वारा—तो वह उसी तरह ले जाएगा। और खास बात यह है कि वह गधा, इस प्रकार का बेहद गंदा काम करके चलते समय—पल भर के लिए ही अपना जीना हराम करता है—इसलिए ही आप जैसे अक्ल के दुश्मन भद्र लोग अपना मनचाहा साफ-सुथरा जीवन सुरक्षित रूप से जी सकते हैं, नगरों का स्वास्थ्य ठीक रह सकता है।

उस भंगी की गाड़ी जब उधर से आ रही थी तब इस भिखमंगे जोगी का वह परिवार रास्ता रोककर खड़ा था। भंगी ने दो-तीन बार चिल्लाकर कहा, ''गाय आदि को परे हटाइए, साधु महाराज!'' परंतु साधु तो भीख माँगने के रोने-धोने में मगन था। भंगी ने उसके गाय-बैल को भी 'हट-हट' करके देखा। उन पशुओं को नंदी बैल तथा कामधेनुत्व की पवित्रता आ जाने से सहसा उन्हें कोई रास्ते में दुत्कारता, फटकारता अथवा लताड़ता भी नहीं था। अत: उनमें यही ज्ञान था कि वे अवध्य ही नहीं, अताड्य दैवी जीव हैं। यदि मार खानी ही है तो केवल इस जोगी के हाथों से जो उनका स्वामी है। अन्य लोग पूजा के साथ सिर-आँखों पर बैठाते हैं। इसी आदत के अनुसार वे निश्चिंत होने के कारण उस भंगी के 'हट-हट' की परवाह न करते

हुए रास्ते से हटने का नाम ही नहीं ले रहे थे। मामला पेचीदा हो गया। इतने में उस गाय को उस मैले की बू आने लगी। वह टंकी के अगले छोर से सटकर उसे जीभ से चाटने लगी। उसे 'आदि देवी जगज्जननी गोमाता' भले ही कहा जाए, है तो वह एक साधारण पशु ही।

विवश होकर गाड़ी को रोकते हुए वह भंगी तनिक ठिठक गया, तभी आसपास के घरों में से, राहगीरों से तथा प्रत्यक्ष सेठानी के मुख से एक ही धिक्कार उभरा, ''ऐ भंगड़े, गाड़ी को आगे बढ़ाओ। इस गधे ने तो बदबू से परेशान कर दिया है, साँस लेना दूभर हो गया है। अरे, चलाओ न आगे। यह बला एक बार यहाँ से ले जाओ।''

भंगी खिसियाना सा हो गया। वह इस तरह सकपकाया जैसे कोई चोर रँगे हाथ पकड़ा जाए। उसने बैल पर चाबुक का वार करते हुए गाड़ी आगे बढ़ाई। वह गाय जो उस मैले की टंकी का अगला हिस्सा चाटने लगी थी, बीच में ही टाँग अड़ाती रही, इसलिए उसने उसे चाबुक की छड़ी से पीछे ढकोसा।

यह देखते ही वह मुस्टंडा भिखमंगा साधु शैतान बनकर भौंकने लगा, ''अबे साले! मेरी पवित्र गोमाता को छुआ तूने। उसपर हाथ उठाया? तेरी इतनी हिम्मत? तेरी माँ···'' इस प्रकार की माँ-बहनों की गंदी-गंदी गालियाँ बकते हुए उसने एक पत्थर उठाकर झट से उस भंगी को मारा। वह बाल-बाल बच गया कि उसका निशाना चूक गया। इसलिए दूसरा पत्थर उठाकर वह उसे मार ही रहा था कि रामबाबू, जो अब तक यह सारा तमाशा ऊपर से चुपचाप देख रहे थे और लावे की तरह उबल रहे थे, ऊपर से ही दहाड़े, ''हाँ-हाँ, याद रख। अरे भिखमंगे टुकड़तोड़ जोगे—तू मुफ्त की रोटियाँ तोड़ता है, वह बेचारा भंगी खून-पसीना एक करके मेहनत-मजदूरी करता है और अपना पेट पालता है। वह गाड़ी चला रहा था, तुमने उसका रास्ता रोका और ऊपर से उसे ही सजा दे रहे हो, उसे मारते हो?''

''उसने मेरी पवित्र गाय को अपवित्र किया, उसे ढकोसा, क्या आपने यह नहीं देखा?'' वह दो टके का साधु अपना रोब जमाने लगा, ''एक तो गाय को छुआ, उसने मुझे छू लिया तो मैं भी अपवित्र हो गया। यह क्यों नहीं देखते आप?''

''मैं उतना ही नहीं देख रहा हूँ, कितनी देर से मैं यह भी देख रहा हूँ कि तुम्हारी वह पवित्र गोमाता स्वयं बड़े चाव से वह मैले की टंकी चाट रही है। फिर वह अपवित्र नहीं हो गई? तू कह रहा है, उस भंगी ने तुझे अपवित्र किया, उसका उत्तर यह है कि यदि किसीके छूने से कोई अपवित्र होता है तो यह भंगी ही जो मेहनत की रोटी खाता है, ऐसा करते हुए जो बहुत घिनौना है, समाज की गंदगी साफ करता है, समाज स्वास्थ्य की साधना करता है—तेरे जैसे मुफ्तखोर, रखेड़िया

साधुओं से अधिक पवित्र है। उसके छूने से कोई अपवित्र नहीं होता, यदि होता है तो तेरे जैसे मुफ्त की रोटियाँ तोड़नेवालों के स्पर्श से।''

''मैं मुफ्तखोर हूँ अँ? सारा दिन अपने इस नंदी बैल का दर्शन लोगों को कराने का कष्ट नहीं उठाता क्या? आज तीन पीढ़ियों से अपना यह व्यवसाय हम करते आए हैं।''

''तो केवल तुम ही मुफ्तखोर नहीं, बल्कि तुम्हारी तीन पीढ़ियाँ भी मुफ्तखोर हैं। समाज का एक भी उपयोगी व्यवसाय न करते हुए दर-दर भीख माँगते घूमना ही क्या तेरा व्यवसाय है? कष्ट-परिश्रम है? हाँ, यह सच है कि तुम जैसे लाखों भिखमंगे टुकड़खोरों की यही सुविधाजनक धारणा होती है कि भीख माँगना भी एक व्यवसाय ही है। उसका दोष जितना तुम लोगों पर है, उतना ही हम भीख देनेवाले लोगों पर है, जिनकी यह मर्खतापूर्ण धारणा है कि तुम जैसे मुफ्तखोरों का भरण-पोषण करने में ही धर्म निहित है। अत: यह भी सच है कि आगे से हमें लोगों को यही शिक्षा देनी होगी कि ऐसे मुफ्तखोरों को भीख देना अधर्म है, न कि धर्म।''

गंपू इससे तुरंत सहमत हो गया। उसने समर्थन करते हुए कहा, ''रामबाबू का कहना बिलकुल सही है। मैंने पहले ही अम्मा से कहा, इस टुकड़खोर को चवन्नी बिलकुल मत दो। अम्मा, बेचारे उस परिश्रमी भंगी के सिर पर पत्थर मारने से अच्छा होता कि उसे इस भिखमंगे के सिर पर मारा जाता।'' गंपू ने सेठानी को हिदायत दी।

''यह आवश्यक ही नहीं कि उसके सिर पर पत्थर मारना होगा। उसे सीधा करना हो तो इन लोगों को कभी भीख नहीं देनी चाहिए। मुफ्त में भीख मिल जाती है, इसलिए ही वे भीख माँगने को व्यवसाय कहते हैं। खैरात के टुकड़े खा-खाकर वे बाजार में डकारते फिरते हैं। इस तरह नंदी बैल लेकर इतरानेवाले लोगों को भीख नहीं देने से उनका यह भीख माँगने का धंधा ठप हुआ ही समझो।'' रामबाबू ने सेठानी की ओर देखा।

सेठानीजी समर्थन करने लगीं, ''भाई साहब! पर बेचारे उस नंदी बैल ने और गोमाता ने क्या बिगाड़ा है जी? उन्होंने कौन सा पाप किया है? मैंने इस भिखारी पर दया नहीं की। अपितु वह चवन्नी इस नंदी बैल तथा गाय पर उतारी थी, वे तो देवता हैं न?''

''पशु को देवता कहना भी पाप है। पर यदि यह विधान करना हो तो भंगी की गाड़ी का यह बैल इस निठल्ले नंदी बैल से अधिक पूजनीय, दया-योग्य तथा देवर्षि है। जरा देखिए, भंगी का यह बैल समाज के लिए कितना कष्ट उठाता है, गंदगी के गँदले बोझ सवेरे से शाम तक ढोता है। उसके सामने एक क्या, घास के

चार-चार पूले डाल दो। उसके चारे पर, घास पर समाज का कितना कल्याण साध्य हो सकता है। परंतु इस भिखमंगे साधु ने समाज के परिश्रम पर न केवल अपने आपको ही मुफ्तखोर बनाया, बल्कि इस बैल को 'नंदी' तथा गाय को 'आदिमाता' कहकर मुफ्तखोर बनाया है। यह बैल जो समाजोपयोगी काश्तकारी, गाड़ी खींचना आदि काम नहीं करता, इस भिखमंगे ने इसे भी टुकड़खोर बना छोड़ा है। यह है मनुष्य बैल और वह है इसका नंदी बैल। इस अंधविश्वास के कारण समाज इन दोनों के परिश्रम से वंचित रहता है। एक निकम्मा, निठल्ला, सुस्त मनुष्य और एक निठल्ला बैल। इन दोनों के भरण-पोषण का भार समाज पर अर्थात् आपपर, हमपर व्यर्थ आ पड़ता है। इससे बेहतर है, इस नंदी बैल को हल जोतने के काम पर लगाया जाए और इस मनुष्य बैल को समाज की बेगारी पर लगाया जाए—क्या यही उचित नहीं होगा? हाँ, यही सच्चा धर्म है।''

''और इस गाय के बारे में क्या खयाल है बाबूजी,'' गंपू मुसकराया, ''मैं दो दिन से धर्मशाला में देख रहा हूँ कि यह साधु उसे नाममात्र चारा डालता है। उसका कुछ दूध पीता है और कुछ बेच डालता है। पराए पैसों पर घास और दूध से ऐश कर रहा है यह मुस्टंडा।'' गंपू ने ठहाका लगाया।

''क्या यह सच है साधु बाबा?'' सेठानी तनिक घृणा से मुसकराईं, ''छी:-छी: ! यदि मैं सच्चाई जानती तो चवन्नी ही क्या, घास का तिनका तक नहीं देती इस निगोड़े को, पर यह धर्म है कि नंदी को पूजा जाए...''

''बहनजी, इस धर्म की छाप से ही आँखों के सामने अँधेरा छा जाता है। अन्यथा उन लकड़हारी औरतों की चवन्नी गट्ठर का आपने कितनी डिठियारी, कितनी सतर्कता से परीक्षण किया। यदि वे औरतें कहतीं कि 'माई, ये सोने के गट्ठर हैं—तुम इनकी चवन्नी दोगी तो तुम्हें भगवान् के घर सोने के गट्ठर मिलेंगे' तो आप उनका मजाक उड़ातीं। उनसे कहतीं, यदि ये गट्ठर इतने सोने के हैं तो तुम क्यों दर-दर भटककर इन्हें चवन्नी में बेच रही हो? परंतु जब इस गुरूघंटाल ने कहा, 'बैल नहीं देवता हैं, यह गाय साक्षात् कामधेनु है' तो आपने उसे फटकारा नहीं कि यदि साक्षात् कामधेनु तुम अपने घर में पालते हो तो फिर दर-दर ठोकरें खाकर इस तरह भीख क्यों माँगते हो? यदि गाय, नंदी को घास खिलाना धर्म है तो तुम अपनी देह को कष्ट दो, चार पैसे कमाओ और उन पैसों से उस गाय, नंदी को पाल-पोसकर स्वयं ही उस धर्म का पुण्य क्यों नहीं उठाते? परंतु यह विचार आपके मन में नहीं कौंधा, क्योंकि आपने पोथी-पुराणों में से यही सुना है कि गोमाता को घास दी जाए, नंदी की पूजा की जाए—यह धर्म है। पोथी-पुराणों में कहीं भी तो नहीं सिखाया गया कि लकड़ी बेचनेवाली औरतों को दान दिया जाए, उन्हें मुँहमाँगा दाम

दिया जाए—यही धर्म है। बहनजी, भविष्य में धर्म को भी अच्छी तरह जाँच-परखकर लीजिए, जैसे लकड़ी के गट्ठर खरीदते समय आँखें खोलकर चीज को जाँच-परखकर लेती हैं। किंतु अंधविश्वास के साथ किया गया धर्म तो इस तरह अधर्म होता है। किसी भी भिखमंगे की जाँच-परख किए बिना उसे 'दान' देना पाप है। वही दान उन सत्पात्रों को दिया जाए, जो जी-तोड़ परिश्रम करते हुए समाज के लिए काम करते हैं, जो इस तरह मुफ्तखोर नहीं कि दूसरा कमाए और आप बैठे-बैठे खाएँ। कोखजाया बेटा भी धेले की कमाई न करते घर में निठल्ला बैठा रहे तो उससे भी हम यही कहते हैं कि कुछ कामकाज करो। रुद्राक्ष माला अथवा करताल खरीदने में ये बगुलाभगत अपनी पूँजी उड़ाते हैं और उसी पूँजी पर आजीवन 'साधु', 'जोगी', 'स्वामी' का पाखंड रचाकर समाज का पैसा ऐंठकर अपना जीवनयापन करते हैं। वे आलसी, सुस्त, रँगा सियार तथा टुकड़खोर बनते हैं। उनका पोषण करते-करते समाज उस मात्रा में निर्धन और खोखला बन जाता है। ये दोनों पाप कर्म इस तरह के अंधे दान द्वारा हमसे अनजाने में होते हैं। कम-से-कम दस लाख भिखारी हमारे समाज के धन और लहू का किसी चमजोई या चिंचड़ी समान शोषण कर रहे हैं।''

''रामबाबू, अब कोई भी पाखंडी इस तरह नंदी बैल या किसी मरियल गाय के सहारे लोगों की धर्मभावना पर अपना व्यवसाय करता, उनके नाम से प्राप्त धन पर अपना पेट पालता और उसका दूध स्वयं ही गटककर संडमुसंड बनता मेरे द्वार पर आया तो देखिए, मैं उसे एक धेला भी देने से रहा। हमारे यहाँ अब उसकी दाल नहीं गलेगी। माई, तुम्हें गाय की ही पूजा करनी है न? तो एक स्वस्थ, अच्छी सी गाय स्वयं ही खरीदकर ढेर सारी घास, चारा, पानी खिला-पिलाकर खुद ही उसे पालो। नंदी को देवता कहना है तो वही बैल सच्चा नंदी है जो खेती में जुटा रहता है, अपने परिश्रम से हल-ढेकली (ओखर-सिंचाई के निमित्त पानी खींचनेवाला एक यंत्र) करके जो अनाज उगाता है और घर-बाहर सभी को सुखी, तुष्ट करता है। खेत से थका-माँदा, चूर-चूर होकर जब वह घर लौटेगा तो उसे हरी-भरी घास खिलाओ। काश्तकारों को चवन्नी-दुवन्नी उसके नाम की दिया करो।'' अब गंपू सेठ भी धर्मोपदेशक बन गए, ''इसके अलावा उस घरेलू पालतू गोमाता का दूध दो-एक निर्धन, पर सुशील छात्रों को पीने के लिए दे दिया करो। अथवा उन गोरक्षा संस्थाओं को जो गाय की पैदाइश तथा समाज के लिए प्रत्यक्ष उपयोगी गुणों की वृद्धि करती है, उनमें पलनेवाले गौओं के झुंड को वह दान करो।''

''परंतु बहनजी, बात सुनिए—गाय और बैल पशु हैं—समाजोपयोगी पशु हैं—इसलिए यह दृष्टिकोण रखिए कि उसी तरीके से दान दिया जाए कि उसका

लाभ समाज को हो—तभी वह दान पुण्य होगा। तब आपका दान सावधानी और समझदारी से भरा होगा और उन चौपायों की उपयोगिता बढ़ेगी। इस तरह जाँच-परखकर दान देने की आप जैसे व्यवहारचतुरों को बुद्धि होगी। परंतु गाय-बैल स्वयमेव देवता हैं, इस तरह का धर्म छाप यदि आँखों पर मार दिया तो समझ लीजिए आपकी दान बुद्धि की आँखें फूटीं और इस प्रकार अंधा धर्म आपसे धर्म करवाता है। और गंपू, नंदी बैल ही नहीं अपितु कोई भी भिखमंगा दरवाजे के पास खड़ा रहे तो उससे यही पूछना कि पहले यह बताओ, तुम कुछ ऐसा कष्ट करते हो या नहीं, जो समाजोपयोगी है। काम करो और पेट भरो। काम नहीं हो तो तुम्हें काम देता हूँ जो तुम कर सकोगे, वह काम देना ही एक तरह का सच्चा दान है। दयावश आपको काम का मूल्य, प्रतिमूल्य उचित लगे तो जरा ज्यादा दो। पंरतु किसी मुफ्तखोर भिखमंगे को केवल इसलिए कि वह कफनी या रुद्राक्ष पहनता है अथवा शंख फूँकता है, एक धेला भी मत देना।''

इतने में रामबाबू को घर में किसीने बुलाया। 'अभी आता हूँ,' कहते हुए उनके आँखों से ओझल होते ही उस नंदी बैलवाले ने तैश में आते हुए कहा, ''वह मैलागाड़ी का एक भंगी है और लगता है यह वामन सवाई भंगी है। माई, इस नंदीराज की पीठ ढकने के लिए कपड़ा देती हो न?'' डुम-डुम डुमुक, डुम-डुम डुमक। उसका भीख का डमरू फिर से बजने लगा।

''चल निकल जा यहाँ से।'' हट्टा-कट्टा गंपू दहाड़ा।

सेठानी ने कहा, ''गंपू, क्यों इसके मुँह लगते हो? बहुत हो तो इसे कुछ भी मत दो। तुम जाओ भाई, अपना रास्ता नापो। चवन्नी मिली न तुझे?''

इस प्रकार अनुमान लगाते हुए कि बहनजी अभी तक नरमदिल हैं उसने अपनी झुँझलाहट का अंतिम अस्त्र छोड़ा। उस भिखमंगे को नित्य यह अचूक अनुभव होता हैं कि भोले-भाले लोगों के सामने खीझ प्रकट करने से निश्चित रूप में अधिक दान मिलता है, कम-से-कम दिया हुआ दान तो कोई वापस नहीं लेता।

''ले लो बहनजी, अपनी चवन्नी वापस। भगवान् देख लेंगे तुम्हारे इस बेटे को। गोमाता, नंदीराज, महादेव···''

इतने में उसकी फेंकी हुई वह चवन्नी झट से उठाकर गंपू ने क्रूर कराल आवेश के साथ आक्रमण करते हुए उसे धमकाया, ''अबे जाता है कि नहीं यहाँ से?''

इसके साथ ही वह नंदी बैलवाला एकदम भीगी बिल्ली बन गया और अपने नंदी के गले की रस्सी खींचता हुआ चुपचाप दस कदम पीछे हट गया। परंतु वहीं से गिड़गिड़ाकर उसने कहा, ''मेरी चवन्नी तो वापस दे दो, दादा!'' परंतु गंपू की एक

ही घुड़की से वह चुपचाप आगे बढ़ गया। फिर अपने मन के सामने अपनी प्रतिष्ठा रखने के लिए धीमे से गंपू को एक गाली देते हुए वह कहने लगा, ''यह साला एक और भंगी दिखाई देता है। लगता है इस गली में भंगियों की औलादों का ही जमघट लगा है।''

वहीं पर वह गली समाप्त होती है। यह पता न होने पर कि गंपू के घर का पिछला दरवाजा उसी गली में खुलता है, साधु महाशय नया रास्ता देखकर अपने नंदी और कामधेनु के साथ सारा अटंबर लेकर उसी गलियारे में घुस गए। इतने में उस द्वार से लकड़ीवाली वे औरतें लकड़ियाँ बाँधने की रस्सियाँ हाथ में लेतीं, अपनी मेहनत के मिले हुए ढाई आने की प्राप्ति में यह योजना बनातीं कि कितना नोन, मसाला, तेल खरीदा जाए—आ रही थीं। इन नए ग्राहकों को देखते ही साधु का डमरू फिर बजने लगा।

''डुम-डुम डुमुक, डुम-डुम डुमुक। गोमाता। कामधेनु। चारा दे दो पैसा दे दो ऽऽहो। कुछ दान करो नंदीऽऽराजा को। डालिएऽऽजी। पैऽसा पूऽऽजा ऽऽ। हो नंदी राऽऽजा। डुम-डुम डुमुक, डुम-डुम डुमुक।''

साधु की बकवास ताल-सुर पर जारी थी। उन महिलाओं ने नंदी को प्रणाम किया। गाय तो बिलकुल ही बीच में आ गई। साधु महाशय हाथ फैलाकर 'धऽरऽम गोऽ मैऽऽयाऽऽ को। गोऽमाता कोऽऽ' की रट लगाते हुए पिछलग्गू बन गए। गोमैया का नाम लेने पर उन औरतों को न कहना मुश्किल हो गया। आपस में खुसुर-फुसुर करके एक-दो पैसे निकालकर वे उनके सामने फेंकने ही जा रही थीं कि 'सुनो बहनो, एक दमड़ी भी मत देना इस लुच्चे-लफंगे को' धमकी भरी आवाज आई।

वह गंपू की दहाड़ थी। बौखलाते हुए साधु महाराज उस गलियारे के मुहाने की ओर देखने लगे कि यह बला कहाँ से आ टपकी? सामने देखा तो तमतमाता हुआ गंपू अपने पिछले दरवाजे से निकलता हुआ दिखाई दिया। साधु महाशय के तोते उड़ गए।

''बहनो, इस ढपोरशंखी टुकड़खोर को कुछ मत दो। यह मनुष्य बैल तथा उसका यह नंदी बैल दोनों मुफ्तखोर हैं, मुफ्तखोर; और तुम जंगल-जंगल भटककर लकड़ियाँ चुनती हो, सिर पर ढोती हुई दर-दर भटकती हो, तब कहीं जाकर ढाई आने तुम्हारे हाथ में आते हैं। तुम्हारे गाढ़े पसीने की कमाई यह मुफ्तखोर बिना प्रयास ऐंठे? ना-ना, मैं उसे नहीं ऐंठने दूँगा। इन ढाई आनों में तुम अपने बच्चों के लिए नोन, मिर्च, तेल क्या ले जाओगी? खाक? अबे ओ जोगड़े, तुम इनसे इस पशु पर 'दया-धर्म' करने के लिए कह रहे हो। पर इनके बाल-बच्चों के लिए तुम्हारा दिल नहीं पसीजता? उनपर तुम्हें तरस नहीं आता? अपने बाल-बच्चों के मुँह का

निवाला छीनकर, माइयो, तुम इसे किसलिए पैसे दे रही हो?'' गंपू ने तिलमिलाते हुए पूछा।

''गोमैया के चरणों की विभूति दे रहे थे साधु बाबा हमें।''

''साधु? पाखंडी, ढोंगी, रखेड़िया साधु है यह। पशु के पैरों की विभूति मनुष्य को बेचता है। माइयो, तुम्हारे घर खेती के बैल, गाय, ढोर, पशु, चौपाए तो होंगे न? यदि लगाना ही हो तो उन मेहनती परिश्रमी मवेशियों की विभूति माथे पर लगाया करो, क्योंकि वे तुम्हारे काम तो आते हैं। यह देखो, इस मुफ्तखोर साधु को थोड़ी देर पहले मेरी अम्मा ने चवन्नी दान की। वह कुपात्री दान मैंने नहीं देने दिया, इसलिए कि उसे सत्पात्रों के हाथ दिया जाए। आओ, यह चवन्नी तुम ले लो। तुम्हारे बाल-बच्चे तथा तुम्हारे पशु ही इसके योग्य, सत्पात्र हैं। आओ यह ले लो।''

''न-न, हमें नहीं चाहिए, भैया!'' उन औरतों ने तड़पकर कहा, ''तुम्हारे पैसे हम भला क्यों लें? मेहनत-मजदूरी करके कमाकर हम कौर-दो कौर रूखा-सूखा खाते हैं। भला हम अंधी, लूली, लँगड़ी—विकलांग थोड़े ही हैं? हमें दान किसलिए चाहिए?''

''अबे ओ जोगड़े, सुना तुमने? दिखाई दे रहा है न तुम्हें ? देख इन मेहनती औरतों के विशाल हृदय! अरे तुम और इन औरतों में ये लकड़ी बेचनेवाली औरतें ही सच्चे अर्थ में साधु कहलाने योग्य हैं। तू है निरा पाखंडी, ढोंगी। कम-से-कम अब तो मुफ्तखोरी और यह विभूति बेचना छोड़ दे। अरे, यदि किसीके चरणों की विभूति ही माथे पर लगानी है तो इन औरतों, लकड़ीवाली किसान-मजदूरनियों तथा भंगी के पैरों की, जो मेहनत, परिश्रम का समाजोपयोगी काम करके उसपर अपना पेट पालते हैं—विभूति तेरे माथे पर लगाना उचित होगा। समाज के दिल में अभी तक जो धड़कन है, वह इन्हींके अथक परिश्रम के कारण है। तेरे जैसा मनुष्य, यह पशुपूजा, ये विभूतियाँ, यह मुफ्तखोर गोसाईंपन, तेरा यह नंदी बैल, गाय—ये सारे समाज के अंधविश्वास की मैलागाड़ी हैं—उस भंगी की मैलागाड़ी से भी घिनौनी, त्याज्य। उस भंगी की उस मैलागाड़ी के चलते खेतों के लिए खाद तो बन जाता है, परंतु इस अंधविश्वास की मैलागाड़ी से बुद्धिभ्रष्टता की संक्रामक छूत की बीमारी इधर-उधर, हर ओर फैलती है। उसकी उपयोगिता शून्य। माइयो, दान के तौर पर नहीं तुम्हारे बच्चों को 'चिज्जी' के तौर पर चने-लैया खरीदने के लिए मैं यह चवन्नी दे रहा हूँ। इसमें झेंपने, लज्जित होने की, संकोच करने की आवश्यकता नहीं है। ले लो न।''

गंपू ने जबरदस्ती वह चवन्नी एक लकड़ीवाली के हाथ में थमा दी। तब तक वहाँ खड़ा रहा जब तक उस भिगमंगे के चंगुल से छूटकर उन औरतों ने उस

गलियारे को पार नहीं किया। यह देखकर कि वह जोगड़ा गलियारे के दूसरे छोर की ओर जा रहा है, गंपू घर में वापस लौटा।

गंपू के आँखों से ओझल होते ही उस जोगी के मन में गंपू संबंधी सारा क्रोध एकदम उछल-उछलकर ऊपर आने लगा; और जिस एक वस्तु पर उस भिखमंगे के क्रोध की भरपाई करना संभव था, उसपर अर्थात् अपने नंदी बैल पर ही उसने छड़ी का एक वार इतनी जोर से किया कि वह बेचारा सिर पर पाँव रखकर भागने लगा। और फिर तुरंत उसने बेचारी उस गाय की—जो घास, तिनके चुन-चुनकर खाती हुई सुस्ती से पीछे चल रही थी—नाक पर इतने जोर से एक घूँसा लगाया कि उस मनुष्य का हृदय भी, जो गाय को देवता न मानते हुए, मात्र एक उपयोगी पशु ही मानता है—इस निष्कारण क्रूरतावश तड़प उठे। जिस नंदी को 'देवता' तथा गोमैया को 'देवी' मानकर उनका भरण-पोषण करता हुआ वह ढोंग भरा उपदेश करता था, उन्हीं 'देवी-देवता' पर वह ढपोरशंखी स्वयं पशु जितनी करुणा भी नहीं दिखाता था। इस तरह के कोई दस हजार नंदी बैल और दस लाख रुद्राक्ष, पाखंडी, बगुलाभगत गाँव-गाँव में भटक रहे हैं। समाज यदि गंपू जैसा होगा तो इस तरह के दस लाख टुकड़खोरों को मेहनत-मजदूरी करके अपनी दाल-रोटी कमाने के लिए बाध्य करेगा। ढोंग-धतूरा तथा अंधविश्वास का रोग समाज को आज महामारी सदृश बिलकुल खोखला बना रहा है।

□

चातुर्मास[1]

[रंगोली की एक छोटी टोकरी हाथ में लिये रखमा देवी प्रवेश करती हैं और 'बता दो कोई किसने देखा बनवासी राम मोरा', यह गीत गुनगुनाती रंगोली से गोप की अल्पना रचाने लगती हैं। इतने में शकु, लीला, शालिनी, मालिनी, सीता आदि महिलाएँ आती हैं।]

रखमा. : आइए, आइए, शकुजी, लीला, इस तरफ—कोई इधर बैठे कोई उधर—आइए *(फिर गोपद्म की रचना में मग्न।)*

शकु : यह क्या हो रहा है, मौसी?

रखमा. : अरी इस चातुर्मास में मैंने गोपद्मों का व्रत लिया है। अरी, आज? कितनी बातूनी है। आते-आते ही वह क्या कहते हैं—हिंदू संगठन शुरू किया उसने।

शकु : मौसी, भला इसमें बुरा क्या है? यद्यपि वह आपसे उम्र में छोटी है, तथापि उसके विचार बड़े मँजे हुए, सधे हुए होते हैं। रखमा मौसी, आज आपकी उम्र क्या है?

रखमा. : भई हमारा क्या है। अब दस गए, पाँच रहे। *(अँगुलियाँ गिनकर)* देखो तीन सिंहस्थ[2] तो मुझे अच्छे-खासे याद हैं। तुम्हीं देखो मेरी आयु कितनी होगी।

शकु : मैं स्वयं ही तीस वर्ष पार कर चुकी हूँ, तो मौसी, आप साठ के

---

१. चातुर्मास—चौमासा—आषाढ़ की शुक्ल एकादशी से कार्तिक की शुक्ल एकादशी तक के समय में किए जानेवाले व्रत, होम आदि।

२. सिंहस्थ—बृहस्पति के सिंह राशि में होने पर होनेवाला एक पर्व, जो बारह वर्षों में एक बार होता है।

आस-पास अवश्य होंगी। अरे, लगता है, कमला आ गई। देखो, आवाज दे रही है। हाँ, आइए-आइए—दरवाजा बस भेड़ ही दिया है। खोलिए और भीतर आ जाइए। *(कमला के आते ही)* आइए अध्यापिकाजी, बैठिए।

कमला : रखमा मौसी, कैसी हैं आप? यह क्या हो रहा है?

रखमा. : अरी, गोपद्म रचा रही हूँ। चातुर्मास में गोपद्मों का व्रत अति पवित्र है। रंगोली से एस सौ आठ गोपद्म की प्रतिदिन रचना करनी चाहिए, फिर उनकी पूजा करनी चाहिए, स्वयं कोई अछूता त्यक्त वस्त्र धारण कर भोजन तैयार करके पकवानों से थाली सजाकर गोशाला में ले जाना चाहिए, गोमाता को हलदी-कुंकुम लगाते हुए पुष्पमाला उसके गले में डालकर उसे अपने हाथों से गोग्रास खिलाकर फिर स्वयं भोजन करना चाहिए। इस प्रकार एक सौ आठ गोपद्म अर्थात् गोमाता की खुरों के इस तरह के चिह्न—चार महीने तक रचने से मनुष्य गोलोक नामक स्वर्ग का एक सौ आठ वर्षों तक भोग कर सकता है। हाँ, लेकिन व्रत समापन पर ब्राह्मणों को भोजन पर निमंत्रित कर हर एक को सोने का एक-एक गोपद्म देना चाहिए, अन्यथा स्वर्ग-प्राप्ति नहीं होगी। अरी कमला, तुम कोई व्रत नहीं रखोगी? अध्यापिका होने से आसमान पर तो नहीं उड़ रही हो। अरी, ईश्वर की कुछ सेवा करो, कुछ धर्म-कर्म करो। चल, आज से तू भी गोपद्म का यह व्रत शुरू कर।

कमला : परंतु प्रतिदिन गाय जैसे एक पशु की खुरों के एक सौ आठ चित्र उकेरने से तथा ब्राह्मणों को सोने का गोपद्म देने से ईश्वर की सेवा कैसे साध्य होगी भला? धर्म-कर्म कैसे होगा? धर्म का अर्थ है परोपकार। परोपकारः पुण्याय। अतः कोई ऐसा व्रत करना बेहतर है, जिससे इस लोक में कुछ परोपकार हो। क्या मैं इस प्रकार का कोई व्रत रखूँ तो उससे भगवान् की सेवा नहीं होगी?

रखमा. : हो गई शुरू तुम्हारी वाहियात बातें। अरी पगली, गोमैया की सेवा ही देशसेवा है। जहाँ श्रद्धा है, वहाँ ईश्वर अवश्य है। यह सबकुछ पोथी में ही लिखा है।

कमला : है न? तो अगर पशु में भाव रखने पर ईश्वर प्रसन्न होता है तो हमारे इस हिंदू राष्ट्र के भाई-बहनों की, साक्षात् मानव की सेवा करने से क्या वह प्रसन्न नहीं होगा? पोथी यह भी कहती है कि नर

सेवा ही नारायण सेवा है।

शकु : आपकी बात बिलकुल सही है, कमलाजी! मैं वही व्रत रखूँगी। इन लाख दूर्वा *(दूब जो भगवान् को चढ़ाई जाती है)* से वही सच्चा परोपकार है, सच्ची देशसेवा है—कौन सा व्रत रखूँ?

कमला : देखिए शकुजी, एक बिहार के भूचाल में ही हिंदुओं के तीन हजार अनाथ बालकों को मिशनरी, मौलवियों ने उठाकर उन्हें धर्मभ्रष्ट किया। उनके माता-पिता उनसे वंचित हो गए। इतना ही नहीं, ये तीन हजार वंश अगली पीढ़ी से हिंदुओं के कट्टर दुश्मन बनेंगे। हमारे राष्ट्र का संख्याबल ऐसी दिन-प्रतिदिन की धमाचौकड़ी के कारण कोटि-कोटि घट रहा है। ऐसी अवस्था में हिंदू धर्म का सच्चा व्रत लाख-लाख दूर्वाओं के गट्ठर भगवान् के नाम पर बाँधने का नहीं, अपितु इस प्रकार के एक-एक अनाथ हिंदू बालक-बालिका को बचाना है। परंतु हिंदू सभा के शुरू किए हुए अनाथालयों को कोई भीख भी नहीं देता। हम भी कौड़ी-कौड़ी के लिए मोहताज निर्धन—ऐसे हिंदू अनाथालयों को पैसा कहाँ से देंगे। परंतु इस उद्देश्य से कि हमारे शरीर को हिंदू संगठन के इस तरह के पवित्र कार्यार्थ कष्ट देना तो अपने बस में है—यह भी एक तपस्या ही है—हम पाँच-दस सखियों ने इस प्रकार का व्रत रखा है कि प्रतिदिन हमारे यहाँ के हिंदू सभा के अनाथालय में दो घंटे जाकर वहाँ के बच्चों को मल-मलकर नहलाना, उन्हें भोजन करवाना, घरेलू साबुन से उनके कपड़े धोकर चकाचक करना, जैसे धोबी से धुलकर लोहा होकर आए हैं—हर इतवार को उन्हें हम हिंदू वीरपुंगवों की सुलभ कहानियाँ सुनाते हैं, छोटे-छोटे हवाई जहाज, ध्वनिक्षेपक यंत्र बनाकर हम उन्हें विज्ञान के विविध चमत्कारों से परिचित कराते हैं। झाड़-बुहारकर वहाँ सफाई भी हम ही करते हैं।

रखमा. : छी:! कैसे मुए वे लावारिस बच्चे—न जात न पाँत। उनका मैल साफ करना, उनके गंदे कपड़े धोना? राम-राम! अरी, तुम लोग भंगन हो या धोबन?

शकु : ऐसा क्यों कहती हो, रखमा मौसी? अजी, हम अपने घर के बच्चों के टट्टी से सने हुए गंदे कपड़े नहीं धोते? भई, अपने परिवार के बच्चों की टट्टी क्या सोने की होती है? हिंदू राष्ट्र भी अपना एक विशाल परिवार है। भई, मैं तो इसी प्रकार का हिंदू संगठन का व्रत

रखूँगी। कमलाजी, बताइए न उस अनाथालय के लिए मैं क्या कर सकती हूँ?

कमला : आप? अरे हाँ, आप बहुत अच्छी सिलाई करती हैं न? ऐसा कीजिए, इस चातुर्मास में कम-से-कम सौ झगले तथा कुरते उस अनाथालय को धर्मार्थ नि:शुल्क सिलवा दीजिए। इस सहायता से उस संस्था की कितनी बड़ी चिंता दूर करेंगी आप।

शकु : हाँ-हाँ। पर मैं भला इतना सारा कपड़ा कैसे खरीद सकूँगी?

रखमा. : मैं दूँगी कपड़ा। मेरे इन एक सौ आठ गोपद्मों के पीछे एक सौ आठ बच्चों के झगलों, कुरतों का कपड़ा मैं तुम्हें धर्मार्थ दूँगी। फिर तो मुझपर भी प्रसन्न होगा न तुम्हारा वह हिंदू संगठन देवता? अरी, इस तरह हँस क्यों रही हो? हिंदू संगठन भी एक तरह का देवता ही है। गणपति गणों का देवता है, उसी तरह वह संगठन का देवता भी है। अरी, क्या हम यह बात नहीं जानतीं? परंतु हम ठहरे पुराने विचारों के लोग। तुम्हारी नई-नई कल्पनाएँ हमें अपनी पुरानी भाषा के साँचे में ढालने से ही तुरंत समझ में आती हैं। मैं एक सौ आठ गोपद्मों की पूजा करूँगी ही, पर अनाथालय के एक सौ आठ बच्चों को धर्मार्थ कपड़ा दिए बिना अपने व्रत की परिपूर्ति नहीं मानूँगी। क्यों री कमला?

कमला : मौसी, मैं आपकी बहुत आभारी हूँ। आप जैसी का इतना सहयोग और आशीर्वाद हमारे लिए पर्याप्त है। अच्छा लीला, शालिनी, मालिनी, बताओ तो तुम सभी ने इस चातुर्मास में कौन-कौन से व्रत रखे हैं?

लीला : हम दस जनों में से हर एक ने लाख-लाख बत्तियों का व्रत रखा है। प्रत्येक जन सौ-दो सौ बत्तियों का पलीता प्रतिदिन प्रात:काल पूजागृह अथवा किसी मंदिर में जलाएँगी। इस प्रकार प्रत्येक महिला लखौरी जलाएगी। इसके पश्चात् दस ब्राह्मणों को निमंत्रित करके दस सुवर्ण बत्तियों का दान करेंगी। *(सभी हँसती हैं।)*

कमला : ब्राह्मणों के घर क्या सोने की बत्तियाँ जलाते हैं? लीला, प्राचीन काल में बिजली, गैस, माटी का तेल आदि कुछ नहीं था। तब घर में, मंदिर में मिट्टी के दीप में बत्तियाँ जलाई जाती थीं। तब उस काल में लाख-लाख बत्तियाँ व्यर्थ नहीं जाया करती थीं। घर में, शिवालय में उन्हींको काम में लाया जाता था। परंतु अब यहाँ-वहाँ

सर्वत्र माटी के तेल की लालटेन, गैस तथा बिजली की बत्तियों की चिनगियाँ झड़ती हैं। अब इस जगर-मगर में लाख बत्तियों की खातिर आप पाँच-दस महिलाओं का इतना सारा घी जो कम-से-कम मन भर तो होगा ही—मात्र जलाकर फूँकने में भला क्या तुक है? उसपर बत्तियाँ सुबह सूरज निकलते ही जलानी हैं। कितना व्यर्थ कष्ट। इसलिए तो कहती हूँ, आप वह मन भर घी व्यर्थ जलाने की अपेक्षा अनाथालय के उन बच्चों के मुँह में डाल दीजिए। सिर्फ रुई की बत्तियों की रोशनी में अपने देश की गरीबी, सूखा, दुर्गति का अँधेरा ही दिखाई देता है। परंतु हमारे हिंदू राष्ट्र के बच्चों के जीवन की बुझती लौ यदि जलती रहे, तभी हमारे घरों में यथार्थ में वह उजाला होगा जो उस अँधेरे को दूर करता है।

शकु : पुन: भगवान् को प्राणदान का यही कृत्य अच्छा लगेगा। अरी, यदि मेरी बेटी व्यर्थ ही चूल्हे में वह घी उँडेल दे जो अपने बाल-बच्चों के मुँह में पड़नेवाला था, तो मैं उससे नाराज होऊँगी या प्रसन्न? उसी तरह कई मन यह घी जो ईश्वर के प्रिय बच्चों के मुँह में पड़ना चाहिए, सिर्फ इस तरह जला दिया जाए तो भगवान् नाराज होंगे ही। इसकी अपेक्षा यदि वह ढेर सारा घी भगवान् के ही नाम पर उस अनाथालय के बच्चों के भरण-पोषणार्थ खिलाया जाए तो उसमें ही सच्चा परोपकार होगा। इहलोक में प्रत्यक्ष लाभ तथा परलोक में पुण्य।

शालिनी : चातुर्मास में मैंने केले के पत्ते पर भोजन करने का व्रत लिया है। चार महीने केले के पत्ते पर भोजन और फिर ब्राह्मणों को भोजन खिलाकर उन्हें चाँदी का छोटा-बड़ा एक-एक केले का पत्ता दान करना है।

मालिनी : मैंने भिंडीव्रत लिया है। इस चातुर्मास में भिंडी की सब्जी नहीं खाना और व्रत के अंत में ब्राह्मण को निमंत्रित करके चाँदी की भिंडी का दान करना। हमारे पुरोहित गोपाल बाबू ने बताया है कि इस लोक में चाँदी की भिंडी का दान देने पर मरणोपरांत जीव सोने की भिंडी प्राप्त करता है। *(सभी फिर से खिलखिलाती हैं।)* अरे, यह बार-बार ही:-ही: क्यों कर रही हो तुम लोग।

रखमा. : अरी, हँसें नहीं तो बताओ क्या करें? मेरी जैसी बुढ़िया को भी ब्राह्मणों की यह चालाकी पसंद नहीं है। कौन है री यह गोपाल

पंडित? वही तो नहीं? वाह जी वाह! लोगों के घर बनाने का ठेका लेना तो उसका एक व्यवसाय है ही। घर में गाय-भैंस पालकर गाँव भर को दूध भी बेचता है मुआ। उसका बेटा पुलिस में बड़ा बाबू तो है ही। आजकल ही उसने तीनमंजिला नया मकान बनवाया है। उधर हमारे हिंदुओं के सैकड़ों बच्चे भूख से तड़प-तड़पकर मर रहे हैं; मिशनरी, मुसलिम उन्हें धर्मभ्रष्ट करते हुए हिंदू राष्ट्र के जानी दुश्मन बनाने पर तुले हुए हैं और इधर हम मन-मन घी आग में फूँक रहे हैं और इस प्रकार के धनी, मालदार ब्राह्मणों को चाँदी के केले के पत्ते तथा सोने की भिंडियाँ धर्म के नाम पर दान दे रहे हैं। भई, यह कैसा धर्म? यह तो सरासर अधर्म है। कमला, तेरा कहना सोलह आने सही है। ये पोंगा पंडित बड़े गुरूघंटाल होते हैं। भगवान् के नाम पर ऐसे घाघ भोले-भाले धर्मभीरु लोगों को मनमानी गप मारकर अपना उल्लू सीधा करते हैं।

कमला : परंतु रखमा मौसी, मैं कहती हूँ, यह सरासर अन्याय होगा यदि पूरा ठीकरा ब्राह्मण-पुरोहितों के ही सिर पर फोड़ा जाए। आजकल की ब्राह्मण नारियाँ भी वही व्रत रखकर दूसरों को उसी प्रकार दान करती हैं। ब्राह्मण भी हमारे ही तो भाई-बंधु ठहरे। वे भी अवश्य सुधरेंगे यदि उन्हें सुधारा जाए। असली दोष तो हम सभी के अंधविश्वास का है। भई, ब्राह्मण कहीं जोरा-जोरी करके जबरदस्ती लाठी लेकर हमारे घर तो नहीं घुसते? हम ही उन्हें बुलाते हैं। यदि वे नहीं आते तो हम भी भोजन नहीं करते। फिर वह उतना ही दान ले जाते हैं, जितना हम उसे दे देते हैं। अत: मूलभूत दोष है हमारे अंधविश्वास का। हम अपने विवेक से यह निश्चित करें कि पोथी में सच क्या है और झूठ क्या है। अच्छा, बताइए सीता देवी, आपने कौन सा व्रत रखा है?

सीता : भला मैं कौन सा व्रत रख सकती हूँ? घर में बच्चों को इतनी सी भी मीठी चीज नहीं मिलती। बेचारों को 'मधुकरी'[१] माँगनी पड़ती है। अत: मैंने गत वर्ष अपने बरगद की चारों ओर लक्ष परिक्रमा की, इस चातुर्मास में गोग्रास गुझियों का व्रत मैंने रखा है। हर सोमवार को गुड़ की नौ गुझियाँ बनाती हूँ, उनमें से आठ गोमैया को डालती

---

१. मधुकरी—पक्की रसोई की भिक्षा जो संन्यासी, ब्रह्मचारी के लिए विहित है।

हूँ और एक प्रसाद के तौर पर बच्चों को खिलाती हूँ। मैं अनशन करती हूँ—इस प्रकार सोलह सोमवार करना है।

शकु : हिस्म्! यह निरा वाहियात ढंग नहीं है क्या? एक ओर तो आप कह रही हैं कि बच्चों को मीठा कभी मिलता ही नहीं और इधर गुड़ गुझिया बनाकर एक पशु को आठ-आठ खिला रही हैं और बेचारे बच्चों को एक। अजी, जो गाय इसलिए आवश्यक है कि वह बच्चों को दूध देती है, उसे अपने बाल-बच्चों को भूखा रखकर गुड़-घी खिलाना कहाँ तक उचित है? पशु का भरण-पोषण करना है तो पशु जैसा ही करो। उसे ढेर सारी हरी-भरी घास खिलाओ। यदि गोशाला में बँधा पशु देवता है तो अपने कोखजाए बाल-बच्चे क्या भूत-पिंशाच हैं? यह व्रत तो मनुष्य से पशु के श्रेष्ठ होने का दावा करता है, यह तो दानवीय व्रत है न कि मानवीय।

लीला : उसी तरह तुम्हारा वह बरगद के चारों ओर चक्कर लगाने का व्रत भी क्या अंधविश्वास का ही उदाहरण नहीं है? भला उसमें कौन सा परोपकार का तीर मारा तुमने?

रखमा. : लगता है, तुम सभी कमला की अच्छी चेलियाँ बन गई हो। उसका कहना सही है, ऐसे व्रत ही रखें जिनमें इस लोक में प्रत्यक्ष परोपकार का कुछ कृत्य, राष्ट्र की कुछ सेवा हो। अमुक सब्जी नहीं खाना, केले के पत्ते पर भोजन करना, व्यर्थ ही लाख-लाख बार लट्टू जैसे चक्कर लगाना आदि व्यर्थ देहदंड करने की अपेक्षा मैं तुम्हें एक ऐसा व्रत बताती हूँ कि जिसके द्वारा देहदंड की तपस्या भी हो और राष्ट्रसेवा भी और इस लोक में कुछ-न-कुछ प्रत्यक्ष परोपकार भी हो। देखिए स्वयं निर्धन होते हुए भी विपुल दान देने का पुण्य किस प्रकार जोड़ा जा सकता है।

मेरे आँगन से सटी हुई मेरी बहुत सारी खुली जगह पड़ी है जिसमें जंगल-ही-जंगल है। तुम दस-बीस महिलाएँ प्रतिदिन इधर आकर अपने हाथों से उसकी खुदाई करो, इस चातुर्मास में बैंगन, अरबी, हरी मिर्च, धनिया पत्ता आदि शाक-सब्जी लगाओ। हम अपने परिश्रम से इतनी सब्जियाँ उगाएँगे कि उस अनाथालय के लिए ये सब्जियाँ चार-छह महीनों के लिए पर्याप्त होंगी।

कमला : ठीक है। दूर्वा के गट्ठर बाँधकर भटकने, बत्तियाँ बनाने, गाय के

खुरों के चित्र उकेरने, पेड़ की चारों ओर लाख बार परिक्रमा करने—इन सभी व्यर्थ की बातों से उत्तम कार्य है कि हम अपने धर्म-बांधव, हिंदू राष्ट्र की सेवा में अपनी देह घिसें। यदि भगवान् वृक्ष-नर की सेवा से अधिक संतुष्ट होते होंगे, तो क्रमशः हर व्रत से पारलौकिक फल की प्राप्ति भी होती होगी। अब गौर से देखिए— रखमा मौसी उन सौ अनाथ बच्चों को कपड़ा देंगी, शकुजी झगले तथा कुरतों की सिलाई करेंगी, आप मन भर घी देंगी और ये सभी मिलकर चार महीनों के लिए पर्याप्त सब्जियाँ देंगी। फिर सब मिला-जुलाकर हम उस एक अनाथालय का कितना सारा खर्चा पूरा करेंगी। साथ-साथ हिंदू धर्म, राष्ट्र की कितनी सेवा और कितना परोपकार कर सकेंगी। तो आप सब रखेंगी न यह व्रत?

सब : हम सभी ने अभी, इसी समय इस चातुर्मास में इसी व्रत का निश्चय किया है। आप जाकर उस अनाथालय के संचालकों को इतनी धर्मार्थ सहायता देने का वचन दे दीजिए।

कमला : वे तो फूले नहीं समाएँगे। यह सुनकर उनकी कई चिंताएँ दूर हो जाएँगी। चलिए हम सभी मिलकर उधर जाएँगे। *(जाती हैं)*

□

ताजियों की कहानी

क्या आप ताजियों की कहानी जानते हैं? आप प्रतिवर्ष मुसलमानों का ताबूतों का त्योहार देखते हैं। लक्षाधिक मुसलिम इस त्योहार में नाचते-खेलते दिखाई देते हैं, फिर भी यह त्योहार खुशी का त्योहार नहीं, उसकी जड़ एक अत्यंत दिल दहलानेवाली विदीर्ण शोक कथा में है।

इसलाम धर्म के संस्थापक मोहम्मद पैगंबर के पोते की हत्या की यह वार्षिक स्मृति है।

परंतु इस प्रकार की करुण रस से लथपथ कहानी मात्र कल्पना के सहारे यदि कोई रचता तो भी भावनाओं में वह खलबली मचाती। यद्यपि वह सत्य है, तथापि उसमें सीखने योग्य इतना नहीं है जितना होना चाहिए। क्योंकि मन कहता है, ओह! यह तो मात्र कपोलकल्पित कथा है। यह सत्य कथा थोड़े ही है? प्रत्यक्ष व्यवहार में इस तरह की बे-सिर-पैर की बातों से क्या खाक उपदेश लें? स्वप्नावस्था में तीन फीट के कमरे में तीन हजार सिपाही घुसे हुए दिखाई देते हैं, बिस्तर पर लेटे-लेटे अपने आपको दरिया में फेंका हुआ पाया जाता है, पर नींद खुलते ही भला कोई अपने आपको दरिया में पड़ा हुआ समझकर पानी की ऊपरी सतह पर रहने के समान हाथ-पाँव थोड़े ही चलाने लगता है? स्वप्नस्थित मनोरंजन मात्र सपने के लिए और कल्पित कथाओं की कल्पना मात्र मनोरंजन के लिए ही है।

इसलिए व्यवहार में स्वीकरणीय उपदेशों को मन पर पक्का अंकित करने के लिए अरेबियन नाइट्स जैसी कहानियों का, जो भावनाओं में हलचल पैदा करती हैं, यद्यपि थोड़ा-बहुत उपयोग होता है तथापि सत्यघटित ऐतिहासिक घटनाओं की उनसे कई गुना अधिक मजबूत पकड़ भावनाओं और बुद्धि पर भी होती है। किसी भी किस्म का सत्य मन पर अंकित करना हो तो वह मूलतः लगभग असत्यघटित कल्पित उपन्यास से—उतना ही भावनोद्दीपक होने पर भी ऐतिहासिक घटना द्वारा ही, जो संपूर्ण सत्य है, अधिक प्रभावशाली रूप से अंकित किया जा

सकता है।

यह ताजिये की कहानी उपन्यास सदृश ही अत्यंत चित्ताकर्षक है, फिर भी उतनी ही सत्य है जितना इतिहास।

उसपर भी गिबन, सेल प्रभृति कई अंग्रेज इतिहासकारों के तथा कुरान शरीफ के अभ्यासकों के पास न जाते हुए हम ताजियों की कहानी बुद्धि पुरस्सर जस्टिस अमीर अली सदृश निष्ठावान पर सुविज्ञ मुसलमान लेखक के मुँह से सुनेंगे, जिससे हमें या अन्य लोगों को इस तरह संदेह करने की कोई गुंजाइश नहीं रहेगी कि यह कहानी सुनाते समय मुसलिमेतर लेखकों ने जान-बूझकर वह गलत बताई।

जिस समय मोहम्मद पैगंबर अत्यंत दीन-हीन अवस्था में थे और उनके गाँव में भी जब वे पैगंबर—ईश्वर दूत—के रूप में पहचाने नहीं जाते थे तब उन्होंने एक होनहार, देखने में खूबसूरत तथा ईमानदार लड़का पाला था जिसका नाम अली था। आगे चलकर मोहम्मद पैगंबर ने उसे अपने पुत्र का स्थान दे दिया, क्योंकि पैगंबर का कोई बेटा नहीं था। आगे चलकर मोहम्मद ने अपनी बेटी फातिमा का हाथ उस युवक के हाथ में देकर उसे अपना दामाद भी बनाया।

मोहम्मद पर मुसीबतों के पहाड़ टूटने पर भी अली ने उसका साथ नहीं छोड़ा। अरबों ने जब मोहम्मद पैगंबरत्व को स्वीकार किया था तब उसके बढ़ते वैभव के साथ-साथ अली का महत्त्व भी बढ़ता गया था। परंतु सन् ६२३ ईसवी में मोहम्मद पैगंबर का इंतकाल हो गया। तब उसके पक्ष के लोगों की यह राय होने के बावजूद कि पैगंबर की गद्दी पर अली का ही अधिकार है, विपक्षी दल के लोगों ने खलीफा पद के लिए किसी अन्य व्यक्ति को चुन लिया।

यहीं से इन दोनों पक्षों में घमासान युद्ध छिड़ गया। अली के विरोधी पक्ष का नेतृत्व मोअविया नामक एक बलाढ्य सेनानी ने स्वीकार कर अली को रणभूमि पर हतवीर्य किया और अंत में मुसलमानों के कुछ षड्यंत्रकारियों ने मुसलमानों के पैगंबर के इस अत्यंत विश्वसनीय पुत्रवत् दामाद की सन् ६६९ में क्रूरतापूर्वक हत्या की। और वह भी कब? जब वह सत्पुरुष अली, पैगंबर का वह कृतक पुत्र, मुसलमानों का खलीफा प्रमुख मसजिद में ईश्वर की प्रार्थना कर रहा था, तब। मुसलिम धर्मशास्त्रानुसार ये धाराणाएँ कि निष्ठावान मनुष्य का रक्षक ईश्वर होता है, उसकी जीत ही होती है—इस लोक की विजय के अर्थ में कितनी खोखली हैं, क्या इस घटना से यही स्पष्ट नहीं होता? कुरान अली के पक्ष में था। परंतु यश, कम-से-कम भौतिक सफलता तो उस हत्यारे के छुरे को ही मिली। कुरान के प्रार्थना मंत्र अली के होंठों पर थे, फिर भी उस हत्यारे का छुरा उसके हृदय को आरपार चीरता

हुआ घुस गया। कुरान के मंत्र उसे इस दुनिया में भी नहीं बचा सके।

राजकुमार हसन-हुसैन

मोहम्मद पैगंबर की बेटी फातिमा से—जिससे अली की शादी हुई थी—दो पुत्र हुए थे—हसन और हुसैन। जैसाकि ऊपर कहा गया है, हत्यारों द्वारा अली को मार डालने पर उसके प्रतिपक्ष ने मोअविया का खलीफा पद स्वीकार किया था। परंतु अली के पक्ष की इच्छा थी कि खलीफा पद मोहम्मद पैगंबर के ही वंश में रहे। अली के उक्त पुत्र ही मोहम्मद पैगंबर के वंश के शेष अंकुर थे, अत: हसन-हुसैन के हाथों में ही खलीफा पद की बागडोर रखने के लिए अली का पक्ष एड़ी-चोटी एक करने लगा। अली की हत्या होते ही उन्होंने आनन-फानन में हसन को खलीफा घोषित किया। परंतु इस बात का समाचार मिलते ही कि उधर मोअविया प्रबल सेना के साथ उनपर आक्रमण कर रहा है, उनके होश उड़ गए। भले ही हसन पैगंबर का नवासा हो, परंतु मानवी जगत् में यह ईश्वरदत्त संबंध प्रबल सेना के अभाव में निर्बल सिद्ध हो गया और हसन को अपने खलीफा पद को त्यागकर एक साल के अंदर मोअविया का लोहा मानना पड़ा। दोनों पक्षों में संधि हो गई कि मोअविया ही खलीफा होगा, परंतु उसकी मौत के बाद पैगंबर का दूसरा नवासा हुसैन खलीफा नियुक्त किया जाएगा।

पर अंत में मोअविया ही मुसलिमों का एकमात्र तथा अद्वितीय खलीफा हो गया। क्या उसको इसलिए सफलता मिली कि वह धर्मभीरु था, कुरान का निष्ठापूर्वक पालन करता था, न्यायी, सदाचारी था? इतना ही नहीं, कुरान माननेवालों का वह प्रमुख राज्याध्यक्ष ही नहीं अपितु धर्माध्यक्ष भी हो गया।

यह मोअविया जो तमाम मुसलमानों का निर्विवाद रूप से बना हुआ अति बलवान पहला खलीफा था—कैसा था? इस सिलसिले में अली का ही प्रतिपादन है—

मोअविया उस व्यक्ति का विष अथवा शस्त्र की सहायता से सर्वनाश करवा देता, जिससे दोस्ती रखना उसे मुश्किल लगता अथवा जिसका शत्रुत्व सरजोर हो जाता। हत्या उसका एक प्रबल हथियार था, जिसका वह अभ्यस्त हो चुका था। कुरान की उस दैवी अथवा व्यवहारांतर्गत मानवीय आज्ञा तथा आचार को उतारकर फेंक देने में वह जरा भी नहीं हिचकिचाता था, जो उसकी सत्ता के लिए बाधक बनते। परंतु यदि वह सुविधाजनक हो तो कुरानांतर्गत आचारों का बाह्यश: पालन करने का स्वाँग भी यूँ रचाता कि बस। यह कितना दैव दुर्विलास था कि जिसने साक्षात् मोहम्मद पैगंबर को यातनाएँ दीं, वही उनके वंशजों की पैतृक संपत्ति तथा

राज्य का वारिस सिद्ध हो गया। (हिस्ट्री ऑफ द सारासेंस; पृ. ७१ और ८२)

परंतु इस लौकिक दृष्टि से मोअविया की जो सफलता का रहस्य है, वह इतना साफ-साफ दिखाई देता है, जैसे सूरज की रोशनी। वह अत्यंत साहसी, राजनीतिकुशल, शूर, कुटिल पुरुष था। उसमें वे तमाम गुण विद्यमान थे जो ऐहिक राज्य जीतने के लिए आवश्यक होते हैं। उसकी सेना युयुत्सु थी, उसके पास बढ़िया हथियार थे, अतः लौकिक राज्य जीतने में उसे सफलता मिली और पैगंबर का दैवी वंश जब मटियामेट हो रहा था तब मोअविया द्वारा प्रस्थापित दमिश्क का मुसलिम साम्राज्य तथा धर्माध्यक्षत्व का वह खलीफा पद अपने सीधे-सादे मानवीय वंश में अव्याहत रूप से सौ बरस तक बना रहा।

हसन के हाथ से खलीफा पद तथा साम्राज्य छीनकर मोअविया हाथ पर हाथ धरे नहीं बैठा रहा। अल्पावधि में ही उसके पुत्र यजीद की कुटिल करतूतों ने हसन को जहर पिलाकर मौत के घाट उतार दिया। पैगंबर का, ईश्वरीय दूत का वह प्रत्यक्ष नवासा था—परंतु उसे बचाने के लिए भी मोहम्मद पैगंबर ईश्वर से बीच-बचाव नहीं करा सके। ईश्वर ने पहले अली को षड्यंत्रकारियों के हथियारों पर बलि चढ़ाया, उसी तरह फिर उस सुष्ट हसन को भी, विष का प्याला होंठों से लगाने से पहले उसे सावधान न करते हुए दुष्ट घात का निशाना बनाया।

अब रहा मोहम्मद का दूसरा नवासा हुसैन। खलीफा मोअविया ने पहले यह स्वीकार किया था कि उसके पश्चात् खलीफा पद पर तथा साम्राज्य पर हुसैन को प्रस्थापित किया जाएगा। परंतु उसके बड़े भाई हसन को विष प्रयोग द्वारा जान से मार डालने के बाद यह संधिपत्र भी तोड़कर खलीफा मोअविया ने अपने बाद अपने पुत्र यजीद को ही खलीफा पद देने का निश्चय किया और मुसलमानी साम्राज्य की हर मसजिद से यजीद को ही खलीफा बनाने का आश्वासन लिया गया। सेना ने तथा राजधानी ने यही शपथ ग्रहण की। पराक्रमी मोअविया की सन् ६८० ईस्वी में मौत हो गई। सवाई पराक्रमी पुत्र शहजादा यजीद राजधानी दमिश्क में अपने पिता के विस्तृत शासन तथा मुसलमानी धर्म का धर्माध्यक्ष बन गया।

खलीफा यजीद

जैसाकि ऊपर कहा गया है, मोहम्मद पैगंबर के एक नवासे हसन को इसी यजीद ने जहर देकर मौत के घाट उतार दिया था। मोहम्मद पैगंबर के दूसरे नवासे हुसैन को खलीफा नियुक्त करने की संधि को तोड़कर अब यजीद के ही खलीफा बन जाने से हुसैन की बिरादरी तथा पक्ष के लोग क्षुब्ध हो गए। उनमें से इराकी लोगों ने तो हुसैन को विद्रोह करने के लिए काफी उकसाया। 'आपके हमारे इलाके में

कदम रखते ही सारी जनता एक-दिल होकर विद्रोह करेगी। बस आपके आने भर की देरी है।' इस तरह के बारूद भरे प्रक्षोभक संदेशों का उधर से ताँता सा लग गया। उन संदेशों पर विचार करते हुए इस निश्चय के साथ कि यजीद द्वारा हड़पे गए अपने हक को मैं युद्ध भूमि पर प्राप्त करके ही रहूँगा, पैगंबर के धर्मशील नवासे हुसैन ने खुलेआम इराक की ओर कूच किया। उसके साथ उसके सगे-संबंधी—दो बड़े बेटे, कुछ निष्ठावान अनुयायी, बीवी-बच्चे और मुट्ठी भर सेना ही थी।

हाय हसन! हाय हुसैन!

यजीद बिलकुल यही चाहता था। वह जितना बड़ा शूरवीर, पराक्रमी था उतना ही बड़ा गुरूघंटाल था। उसने तमाम मुसलिम साम्राज्य पर अपनी ऐसी धाक जमाई थी कि वही खलीफा धर्मनिष्ठों का धर्मगुरु है, भले ही वह यथासंभव कुरान की आज्ञा का अपमान करे। इसलिए सारे मुसलमान उसके सामने घुटने टेकते। लाखों मुसलिमों की हमदर्दी साक्षात् पैगंबर के नवासे से थी, जो संत्रस्त होने के बावजूद सत्यपरायण था। परंतु खलीफा यजीद के खिलाफ चीं-चपड़ करने की भला किसकी मजाल थी? ऐसी दशा में यह देखकर कि हुसैन विद्रोह पर तुला हुआ है, खलीफा यजीद संत्रस्त हो गया। उसने स्वयं गुप्तचरों द्वारा हुसैन के पास चारों ओर से प्रक्षोभक समाचार भेजे। 'आओ, हम यजीद के विरुद्ध तुरंत आपसे हाथ मिलाते हैं।' इन संदेशों पर विश्वास रखकर वह सत्यपरायण हुसैन उन मुट्ठी भर ऐरे-गैरे पंचकल्याणियों, लल्लू-पंजू लोगों की टोली के साथ जैसे-जैसे आगे बढ़ता गया, वैसे-वैसे उसे रोकने कोई भी सामने नहीं आया। वह भी बड़ा हैरान हुआ। निष्ठावान मुसलिम कहने लगे, 'अल्लाह सत्य का अभिमानी है। साक्षात् पैगंबर के नवासे के विरोध में होनेवाले शत्रु को अल्लाह ने अंधा बनाया, उसकी बुद्धि भ्रष्ट की। वरना यजीद कोई ऐसा-वैसा दब्बू प्राणी नहीं है। ईश्वर का ही अद्‌भुत चमत्कार है यह।'

सत्य ही वह एक अद्‌भुत चमत्कार था। पर वह ईश्वर की दया का नहीं, अपितु यजीद की राजनीति का था, क्योंकि झूठी आशा दिखाते हुए उसने हुसैन को एक ऐसे स्थान पर पहुँचाया, जहाँ पैगंबर का नवासा निराशा के जाल में अचानक पूरा-पूरा फँस गया।

इराक के जिलाधीश ने उसे बुलाया था। पर वहाँ तक पहुँचना ही कठिन काम था। उधर पहुँचते ही पूरा जिला 'अल्लाह हो अकबर' की घोषणा के साथ हुसैन के पक्ष में उठनेवाला था, इस योजनांतर्गत जो मुश्किल काम था, वह संपन्न हो गया। हुसैन के इराक में प्रवेश करने पर भी किसीने उसे रोका नहीं। परंतु

विद्रोह का निशान हाथ में लिये इराक में कदम रखते ही वही काम बड़ा कठिन सिद्ध हो गया जो आसान लग रहा था। हुसैन कान लगाकर सतर्कता से सुनता रहा। परंतु इराक में इतना सा भी शोरगुल कहीं सुनाई नहीं दिया जिससे सोए हुए लोगों की नींद खुल जाए। 'हुसैन की जय' जैसी घोषणा के साथ एक भी तलवार नहीं खनखनाई।

इतने में ही तलवारें खनखनाईं, सनसनाते तीर भी सूँ-सूँ करने लगे। पर हाय-हाय! यह सब उन मुसलमानों ने नहीं किया जिन्होंने हुसैन की सहायता का वचन दिया था। ये तीर उस मुसलमानी सेना के थे जिसे यजीद ने हुसैन को पकड़कर कत्ल करने के लिए भेजा था।

'दगा! दगा!' हुसैन की टोली में त्राहि-त्राहि मच गई। निरुपाय होकर हुसैन ने एक गाँव के आश्रय में अपने तंबू ठोंककर उस स्थिति में यथासंभव व्यूहरचना करते हुए अपना डेरा-डंडा जमाया, लेकिन दुश्मन ने उस व्यूह के गले में अपना फंदा डाल दिया।

करबला का युद्ध, नहीं कत्लेआम

उस स्थान का नाम करबला था। खलीफा यजीद ने हुसैन को घेरने के लिए जो सेना भेजी थी, उसने हुसैन की टोली पर आक्रमण न करते हुए मात्र उसीपर जुल्म, अत्याचार करने का बीड़ा उठाया था। हुसैन की यह मुट्ठी भर टोली तलवार सूँतकर खड़ी थी, तथापि उसके लिए भी शत्रु पर हमला करना असंभव था। युद्ध तो संभव ही नहीं था। शत्रु ने हुसैन का पानी काटा, दूर से तीरों की वर्षा की। दिन-ब-दिन हुसैन के लोग पानी के बिना छटपटाने लगे। हुसैन ने शत्रु से बात चलाई—'मुझे सही-सलामत वापस लौटने दो। मैं युद्ध नहीं करूँगा।' पर भला उसके युद्ध करने का डर किसे था? मोहम्मद पैगंबर का वह नवासा, पैगंबर के वंश का राजकुमार, जिसे हजारों मुसलमानों ने दैवी अंश मानकर आँखों में बसाया था—वंश का वही अंकुर पानी के बिना छटपटाने लगा, 'मैं आपका लोहा मानता हूँ। परंतु मुझे खलीफा यजीद के पास ले चलो, पर बंदी के रूप में मत ले जाना। एक सम्माननीय वीर पुरुष के रूप में ले जाना।' परंतु 'यदि उसे इधर लाया जाए तो कैदी ही नहीं अपितु नीच, पापी, अपराधी के रूप में लाओ। यही सबसे अच्छा रास्ता है। वैसे उत्तम मार्ग यही है कि उसे जीवित लाना ही नहीं।' यही तो उसके कट्टर शत्रु खलीफा यजीद की आज्ञा थी। अंत में उसी न्यायपरायण हुसैन ने कहा, ''मेरी ही जान के ग्राहक बने हो न तुम लोग? लो, मैं आगे बढ़ता हूँ, मेरी जान ले लो और यह झगड़ा खत्म कर डालो। परंतु इन निष्पाप बच्चों और औरतों को प्यास से तड़पा-तड़पाकर मत मारो।

इन्हें सही-सलामत इस घेरे से बाहर निकलने दो।'' पर खलीफा का सेनानी टस से मस नहीं हुआ और उसने इस अनुरोध को ठुकरा दिया। अब यह देखते हुए कि मौत के सिवा अन्य कोई चारा नहीं, हुसैन ने अपने अनुयायियों से कहा, ''तुम लोग बेकार अपनी जान नहीं गँवाना। जो भी मुझे छोड़कर जाना चाहता है, वह चला जाए—यही उचित है, उसीसे मुझे खुशी होगी।'' पर कोई नहीं गया। इसलाम धर्म के संस्थापक के नवासे पर तलवार चलाने का साहस न होने से यही सोचकर कि यदि लड़ना ही है, जूझना ही है तो हुसैन की तरफ से लड़ें—यजीद की सेना के कुछ धर्मशील मुसलमान सैनिक हुसैन की छावनी में चले आए। यजीद की सेना से लगातार तीर के पीछे तीर सूँ-सूँ करते हुए छूटने लगे। हुसैन के मुट्ठी भर लोगों में से एक-एक वीरश्रेष्ठ गिरने लगा। आखिर पैगंबर का वह नवासा भी घायल हो गया। उसने पानी माँगा। बड़ी मुश्किल से उसे पानी के स्रोत के निकट ले जाया गया। इतने में शत्रु के तीरों की झड़ी बँध गई। पानी की रट लगाता हुसैन फिर तंबू के द्वार पर आ गया। औरतें फूट-फूटकर रोने लगीं। हुसैन के वे पुत्र मर गए जो लड़ रहे थे। एक शिशु बाकी रह गया था। उसका अंतिम चुंबन लेने के लिए हुसैन ने उसे उठाया। इतने में ही शत्रु ने एक तीक्ष्ण बाण से उसे रोक लिया और उसके साथ ही 'या अल्लाह!' इस तरह चिल्लाकर राजकुमार हुसैन तंबू के सामने धम से बैठ गया। 'पानी! पानी!' एक सती ने प्रयत्नों की पराकाष्ठा से एक प्याला पानी प्राप्त किया।

'पानी! पानी!' उस घायल राजकुमार के हाथ में वह प्याला आते ही उसने पानी पीने के लिए उसे बड़े चाव से उठाया। घूँट भरने के लिए उसने अभी अपना सूखा-सूखा ढुकासा मुँह खोला ही था कि उससे पहले ही शत्रु का सनसनाता हुआ तीर उसके खुले मुँह में घुस गया। एक कर्कश चीख मारते हुए वह वीरपुत्र तलवार उठाकर खड़ा हो ही रहा था कि चारों ओर से 'मारो, पीटो' करते हुए शत्रु दौड़ा और हुसैन तलवारों से क्षत-विक्षत होकर अल्लाह को प्यारा हो गया।

इसलाम धर्म-संस्थापक के नवासे पर, मुसलमानों के उस दैवी खलीफा की देह पर, मानवीय खलीफा यजीद तथा क्रूर मुसलिम झूम-झूमकर नाचने लगे। उसकी लाश पर उन नृशंसों ने तीव्र आघात किए, ठोकरें मारीं, उसका सिर भाले में कोंचकर बाजे-गाजे के साथ वे समारोहपूर्वक चल पड़े। परंतु ईश्वर ने उस 'दैवी' परंतु निर्बल खलीफा की सहायतार्थ कुछ भी नहीं किया। *(अमीर अली, पृ. ८६)* बलवान खलीफा यजीद के सामने साक्षात् ईश्वर भी चूँ तक करने का साहस नहीं कर सका।

यजीद का सेनानी अब्दुला राजकुमार हुसैन की वह दुर्गति देखता रहा। उसके नृशंस सैनिक हुसैन का सिर ले आए और जब उसे उसके सामने रखा गया

तब वह गुस्से से पागल हो उठा। हुसैन के प्रति क्रोधवश में उसने अपनी छड़ी से ही उस मृत राजकुमार के रक्तरंजित सिर पर, जो अभी-अभी काटकर लाया गया था, तथा होंठों पर सटासट वार किए।

विशेष बात यह कि यजीद के उन क्रूर सैनिकों में भी कम-से-कम एक प्राणी ऐसा था जो इस क्रूर तथा बीभत्स दृश्य को देखकर तड़प उठा। वह एक वृद्ध मुसलमान था जो अपने आपसे बुदबुदाया, 'हाय! हाय! दैवी पैगंबर के लाड़ले राज-दुलारे नवासे के इन्हीं होंठों का चुंबन लेते हुए पैगंबर के होंठों को मैंने अपनी आँखों से देखा है।'

हुसैन की स्त्रियों को, जो फटे-पुराने चीथड़े पहने हुए थीं, जो मैली-कुचैली लग रही थीं तथा पैगंबर की बहू-बेटियों को जो पानी के लिए तरस रही थीं, मुसलमान सैनिकों के पहरे में खलीफा यजीद के पास भेजने के लिए दमिश्क की ओर रवाना किया गया। टोली के आगे भाले पर खोंसा हुआ हुसैन का मस्तक था। करबला के अति नृशंस कत्लेआम का वह विजयध्वज था।

खलीफा यजीद के भव्य राजमहल के प्राचीर के नीचे दीवार से सटकर राजघराने की ललनाएँ, मोहम्मद पैगंबर की बहू-बेटियाँ—जो मैले-कुचले चीथड़े पहने हुए थीं, मलिन हो गई थीं और जिनके सामने हुसैन का कटा हुआ सिर पड़ा था—बिलख-बिलखकर रो रही थीं। उन सिसकती-भिनकती औरतों ने अपने बाल नोंच-नोंचकर ऐसा विलाप शुरू किया कि पूरी राजधानी आँसुओं से मुँह धोने लगी, अंगार बन गई। यजीद भी तनिक सकपकाया। यह समझते हुए कि यही काफी है, उसने उन्हें मक्का-मदीना की ओर अपने-अपने गाँव रवाना कर दिया।

इस तरह करबला का कत्लेआम हो गया। मुसलमान पैगंबरों के साक्षात् नवासे—हसन और हुसैन का इस प्रकार दयनीय अंत हो गया। करबला में मोहम्मद के वंश की इस प्रकार दुर्गति हुई। इसी कारण उस गाथा को याद करते करबला के उस कत्लेआम की याद में प्रतिवर्ष करोड़ों मुसलिम 'शोक! हाय शोक!' इस तरह बार-बार आक्रोश करते छाती पीटते, दहाड़ें मार-मारकर रोते हैं। करबला की यही करुण गाथा ताबूतों या ताजियों की कथा है। हसन-हुसैन के उस हृदयदाहक अंत का वह शोक दिवस होता है, वह दुःख का स्मारक होता है।

हुसैन की दुर्गति की खबर मिलते ही मुसलमानों के महत्त्वपूर्ण धर्मक्षेत्रों तथा मदीना नगरी, जहाँ स्वयं मोहम्मद पैगंबर रहा करते थे, के निवासी क्रोध-संतप्त हो उठे। उन्होंने यजीद का खलीफा पद रद्द कर दिया और उसके अधिकारी की खूब धुनाई करते हुए उसे भगा दिया। यह समाचार मिलते ही वह पराक्रमी यजीद चोट खाए हुए शेर की तरह आग-भभूका हो गया। शेर से भी अधिक हिंस्र रूप धारण

करके वह अपनी सेना के साथ मदीना पर टूट पड़ा। उसकी दहड़-दहड़ जलती क्रोधाग्नि से पूरा अरब देश थर्रा उठा। यजीद—मुसलिम साम्राज्य का प्रमुख स्वामी, इसलाम धर्म का धर्माध्यक्ष, खलीफा। परंतु उस खलीफा ने ही मुसलमानी धर्मक्षेत्र की पूरी तबाही की। मोहम्मद पैगंबर के छोटे-बड़े चुनिंदे अनुयायी कत्ल किए गए। जो बच गए उन्हें दास बनाया गया, उनकी गरदनें दागी गईं। अली की खिलाफती से जो रुग्णालय सार्वजनिक कार्यालय बनाए गए थे, सभी को मटियामेट कर दिया गया। इतना ही नहीं, खलीफा यजीद ने मुसलमानी पुण्यक्षेत्र स्थित पैगंबर की उस मसजिद की अश्वशाला बनाई और अन्य पवित्र स्थलों की अनन्वित अप्रतिष्ठा की। (हिस्ट्री ऑफ सारासेंस, पृ. ८८)। मदीना की मिट्टी पलीद करके यजीद ने मक्का पर आक्रमण किया और वहाँ स्थित पवित्र 'काबा' तथा अन्य पुण्य स्थलों का भी भारी विध्वंस किया गया।

अंत में यजीद अद्वितीय खलीफा सिद्ध हो गया। ऐहिक राज्य यश, कीर्ति, दबदबा, विजयश्री सबकुछ उसके कदम पर झुककर कोर्निश करते।

इतनी बड़ी विजय उस यजीद को मिली और हसन-हुसैन आदि पैगंबर के पुत्र-पौत्रों का भी सर्वनाश हो गया। भला वह क्यों? क्या हसन-हुसैन का विनाश इसलिए हो गया और यजीद को विजय इसलिए मिल गई कि कुरान की आज्ञाओं का पालन वह हसन-हुसैन से अधिक निष्ठापूर्वक करता था और कुरानीय सदाचारों के प्रति अधिक निष्ठावान अथवा मानवी दृष्टि से न्यायी था? नहीं, नहीं। स्वयं जस्टिस अमीर अली ही संक्षेप में इस तरह समारोप करते हैं कि खलीफा यजीद की धर्मनिष्ठा के संबंध में मुसलमानी ग्रंथकार क्या कहते हैं—

"खलीफा यजीद क्रूरकर्मा तथा विश्वासघाती था। खलीफा यजीद मदिरा सेवन, पवित्र मसजिदों की अप्रतिष्ठा, हत्या, विष प्रयोग, बुरी-ओछी लतें आदि धर्मबाह्य दुराचारों से ग्रस्त था। इन बुरी लतों का मुसलिम धर्म में घोर पातकों में समावेश होता है। वह मुसलमानी धर्म पुरोहितों की हँसी उड़ाने के लिए एक लंगूर को मुल्ला-मौलवी का स्वाँग रचवाकर किसी सजी-धजी गाड़ी में बैठाता और जहाँ-जहाँ वह जाता, वहाँ-वहाँ पीछे-पीछे बाजे-गाजे के साथ समारोहपूर्वक घुमाता।"

मोहम्मद पैगंबर ने अपने मूर्तिभंजक धर्म की स्थापना करने के बाद मक्का पर हमला किया था जो पहले मूर्तिपूजक धर्म का पालन करती थी। उसने उसपर विजय प्राप्त की और स्वयं अपने हाथों वहाँ की प्राचीन मूर्तियों को धड़ाधड़ तोड़ डाला। विजयोन्मादवश मुसलमान चिल्लाने लगे, "देखो, देखो, अपने इन काठ के, पत्थर के देवताओं को। मोहम्मद के हथौड़े के नीचे ये कैसे चूर-चूर हो गए—

कितने निर्बल हैं ये देवता!'' (हिस्ट्री ऑफ सारासेंस, पृ. १६) मोहम्मद का तर्कशास्त्र सत्य था।

मोहम्मद पैगंबर ने मूर्तिपूजकों के देवताओं को निर्बल कहा और मूर्तिभंजक देवताओं की मसजिदें बनबाईं। परंतु खलीफा यजीद ने उन मसजिदों को ध्वस्त करते हुए उनकी अश्वशालाएँ बनाईं और मक्का-मदीना को मटियामेट किया। उस मूर्तिभंजक पैगंबर के वंश का निर्घृणतापूर्वक विध्वंस किया। फिर उसी तर्कशास्त्र के आधार पर क्या यह सिद्ध नहीं होता कि मूर्तिभंजकों का भगवान् भी कितना निर्बल है। हथौड़ा बलवान हो तो वह मूर्तिपूजकों के मंदिरों के समान मूर्तिभंजकों की मसजिदों को भी चूर-चूर कर देता है, उनका भी निर्वंश करता है। सच्चा भगवान् न मोहम्मद का साथ देता है, न यजीद का। ऐहिक साधन उन्हीं बलवानों के हाथ आएँगे जो राजपाट, ऐहिक सत्ता, ऐहिक विजय के स्वामी हैं। आध्यात्मिक मोक्ष की समस्या इस लेख का विषय भी नहीं है।

ये पुराण वचन जिस प्रकार अनुभवों के बलबूते पर तथ्यहीन सिद्ध हो गए कि यज्ञपूजक इंद्र के अनुयायी ही विजयी होते हैं, उसी तरह ये कुरान वचन भी तथ्यहीन सिद्ध हो गए कि यज्ञविध्वंसक मूर्तिभंजक अल्लाह के अनुयायियों की ही 'फतह' होती है। जेहोवा ने बाइबिल में यह वचन दिया कि ज्यू लोगों के ही हाथों विश्व का राजपाट सौंपा जाएगा, परंतु आज विश्व में यदि किसीका छोटा सा भी राज नहीं है तो वे ज्यू लोग ही हैं।

यदि वेद, कुरान, बाइबिल, तौलिद, इंजील आदि धर्मग्रंथ ईश्वरप्रदत्त तथा ईश्वरकृत ही होते, जैसा उनके अनुयायी मानते हैं—तो ईश्वर उनके वचन इस प्रकार झुठला नहीं देता। उसीके पैगंबरों तथा ऋषि-मुनियों के वंशों को इस प्रकार मिट्टी में न मिलाया होता। कभी पुराणों के आचार पालनेवालों का सत्यानाश, तो कभी कुरान के आचार पालनेवालों का सर्वनाश। कभी बाइबिलवालों की दुर्गति। किंबहुना, इन धर्मग्रंथों में जो 'गो-पूजा' करो, 'गो-पूजा मत करो', 'उसे खाओ' जैसी बेधड़क उलटी-सीधी, धोखाधड़ी की आज्ञाएँ देते हुए मनुष्य-मनुष्य में कलह भड़काने का दुष्कर्म कम-से-कम भगवान् जैसों को नहीं करना चाहिए था।

परंतु सच्ची भूल यह प्रतिपादित करने में ही है कि ईश्वर ने यह काम किया। उनमें जो वचन आज असत्य सिद्ध हो गए हैं उन्हें छोड़कर, जो ज्ञान आज मिथ्या सिद्ध हो गए हैं, उन्हें भी त्यागकर बस उतना ही स्वीकार करना उचित होगा जो आज के युग में सत्य प्रतीत होता है। यह स्वीकार करते ही कि किसी भी मानवीय ग्रंथ की तरह ही वे ग्रंथ भी मानव जाति की ही ऐतिहासिक, सामाजिक संपत्ति हैं, ईश्वर के नाम पर सिर फोड़ना बंद हो जाता है। हम सभी को बेबीलोन के इष्टिका

ग्रंथ की तरह उनकी आदरपूर्वक रक्षा करनी चाहिए, साभार आदर करना चाहिए, सावधानीपूर्वक उनका अध्ययन करना चाहिए। पर वही ईश्वर न्याय का त्राता है, सत्य पक्ष विजयी होता है, पुराण पर कुरानवालों की विजय निश्चित होती है आदि मिथ्या अंशों पर निर्भर न रहते हुए राजपाट चलाना या जूता सिलाई का काम करना, ऐहिक साधनों की प्रत्यक्ष रूप में आवश्यकता प्रतीत होती है, क्योंकि ऐहिक विश्व के लिए सच्चा धर्म ऐहिविज्ञान (एक्स्पेरिमेंटल साइंस) ही है।

□

‘नकली’ राजा बन गया

१. चिता पर से उठी हुई लाश।

२. नागा गोसाईं को गद्दी।

३. एक राजकुँवर जिसे बारह बरस तक अपनी पहचान का ही विस्मरण हो गया था।

४. बारह वर्ष पहले मृत घोषित बहन भाई से मिली।

उक्त शीर्षकों में से कोई भी एक शीर्षक अपनी किसी कहानी को दिया जा सकता तो वह कहानी मर्मस्पर्शी बन जाती। फिर कोई ऐसा कथ्य जिससे ये तमाम शीर्षक जिस कहानी को दिए जाते हैं, उसका कथानक भले ही कल्पित हो, तथापि वह बहुत ही रम्याद्‌भुत (रोमांटिक) होगा।

फिर यदि उक्त तमाम चमत्कारपूर्ण घटनाओं से परिपूर्ण कथ्य कल्पित न होकर सत्यघटित हो तो क्या वह संयोग एक अद्‌भुत आश्चर्य नहीं होगा? यदि स्वयं ब्रह्माजी ही कोई उपन्यास लिखने बैठें तो क्या इतिहास को भी उपन्यास से रम्याद्‌भुत होना चाहिए? यह सत्य है कि कभी-कभी घटना (फैक्ट) कल्पित से भी अधिक विस्मयजनक होती है।

बंगाल में हाल ही में जो भोवाल संन्यासी नामक अभियोग का निर्णय हुआ उसमें न्यायालय में प्रमाणों की सूक्ष्मातिसूक्ष्म जाँच-पड़ताल होने से पता चला कि जिस राजकुँवर को उसकी अपनी पत्नी ने ही नकारा था, वही असली राजकुँवर निश्चित किया गया। यह घटना भी एक ऐसा ही आश्चर्य है जो कल्पित कथाओं को भी पीछे छोड़ देगी।

ठग

किसी भी ठग या छलिये की कहानी थोड़ी-बहुत विस्मयजनक होती ही है। फिर वह छलिया चाहे स्वयं चालाक हो अथवा वे लोग चालाक हों जो उसे

छलिया निश्चित करने पर तुले हैं। इसके संबंधित जिज्ञासा जाग उठते ही वह प्रश्न मन को छुए बगैर नहीं रहता। छलिया या नकली का प्रश्न ही मूलत: पहेली बुझानेवाला होने के कारण छलिये की कहानियाँ लोगों को निश्चित रूप में विस्मयजनक प्रतीत होती हैं। जब यह पहेली अनबुझ रहती है, कई बार इन छलियों ने लाखों लोगों को चकमा दिया है। कई बार लाखों ने असली को ही नकली सिद्ध किया है।

मृतकों के छलिये

उदाहरण के तौर पर पानीपत के संग्राम की कहानी लीजिए। जाने-माने, इतिहास प्रसिद्ध भाऊ साहब के छलिया होने के बोलबाले से हजारों मराठों को यही भ्रम हुआ था कि वही असली भाऊ साहब है। उसके नेतृत्व में भारी सेना इकट्ठी हो गई थी और उसे असली भाऊ साहब समझने लगी थी। उस सेना में पुणे पर आक्रमण करने की हिम्मत इसी छलिये ने भर दी थी। इतना ही नहीं, प्रत्यक्ष पार्वती देवी को भी संदेह हो गया था कि यही उनके स्वामी हैं। ये सारी कहानियाँ विख्यात हैं ही। केवल एक ही 'भला बुद्धि का सागर' झाँसे में नहीं आया—वह है नाना फड़नवीस। अत: ऐसा प्रमाण जुटाया गया जो निर्विवाद प्रतीत हो, समूचे राष्ट्र को यह ज्ञात हो गया कि वह एक छलिया है, न कि भाऊ साहब पेशवा। मेख ठोंकने की हथौड़ी से उसका सिर फोड़ा गया और उस छलिये को देहांत दंड दिया गया। इसी हंगामे में दो वीरों—जनकोजी शिंदे और यशवंत राव पवार जो पानीपत के संग्राम में गिर गए थे—के छलिये भी उत्पन्न हो गए थे और उन्होंने ग्वालियर तथा धार की रियासतों पर अपना अधिकार जताकर बहुत हंगामा खड़ा किया था। अंत में उनका कपट भी उजागर हो गया, तथापि कुछ समय के लिए उन्होंने भी कुछ लोगों को सम्मोहित किया ही था।

इंग्लैंड का एक उदाहरण

ऐसा नहीं कि केवल हमारे यहाँ ही इस प्रकार बड़ी-बड़ी ऐतिहासिक हस्तियों के नामधारी छलिये उत्पन्न हुए और उनसे हजारों लोग धोखा खा गए। इसके उदाहरणस्वरूप सर रॉजर टिंचबोर्न नामक व्यक्ति का कांड प्रस्तुत किया जा सकता है कि इन छलियों के मायाजाल में यूरोपीय जनता किस तरह बार-बार धोखा खाती है। साधारण जनों की चमत्कारलोलुपता की सहज प्रवृत्ति 'छलिया' के छलावों से किस तरह यूरोप में भी फैलती है। एक व्यक्ति ने इस तरह एक मुकदमा दायर किया था कि 'मैं सर रॉजर टिंचबोर्न हूँ, कई बरसों पहले लापता होने से मेरी

जायदाद जो लावारिस घोषित की गई है—अब मुझे वापस मिले।' इसी प्रकार प्रतिवादी का कहना था—'यह आदमी सर रॉजर टिंचबोर्न, जो लापता थे, नहीं है। यह क्रीन्सलैंड स्थित 'वाग्गावाग्वा' नामक गाँव का एक कसाई है। सर रॉजर छरहरे बदन के थे तो यह मोटा-ताजा है, वे फ्रेंच भाषा के पंडित थे तो यह एक शब्द भी फ्रेंच में नहीं बोल सकता। वे शिक्षित, शिष्ट थे तो यह अनपढ़, गँवार।' सर रॉजर के परिवार के लगभग सभी सदस्यों ने टका सा जवाब दे दिया कि यह छलिया है, बहुरूपिया है। लेकिन फिर विभिन्न वर्गों के लगभग सौ प्रमुख लोगों ने, जो ईमानदारी से उसे सर रॉजर समझते थे, अदालत में शपथपूर्वक बताया कि वही असली सर रॉजर है। इतना ही नहीं, सर रॉजर की माताजी भी धोखा खा गईं। उनके कोखजाए बेटे का प्रमुख निशान कानों की विशेष रचना थी। वह इस व्यक्ति के कान देखते ही असली सर रॉजर के कानों की रचना से हूबहू मेल खा गई और प्रथम दर्शन में ही उस माँ ने उसके अपना ही पुत्र होने की रट लगाई। यह जिद उन्होंने अंत तक नहीं छोड़ी। इस एक ही खबर का कि माँ ने अपने बेटे को पहचाना—जनता पर ऐसा सिक्का जम गया कि हजारों अंग्रेजों ने उस व्यक्ति को असली सर रॉजर के रूप में सिर पर बिठा लिया। जब इंग्लैंड जैसे विकसित देश के लोग भी इस प्रकार के कांड का शिकार बनते हैं, तब सहजतापूर्वक यह दिखाई देता है कि जनसाधारण की धारणाएँ कुछ प्रसंगों में एक स्पर्शजन्य, संक्रामक रोग जैसी होती हैं और 'पंचमुखी परमेश्वर' (पंचों का कहना ईश्वरीय वाक्य के समान है) जैसी कहावत भी एक अंधविश्वासमूलक सूक्त किस प्रकार बन जाती है। आखिर सर जॉन कोलेरिज ने उस आदमी के संपूर्ण वृत्तांत की जाँच करते हुए उस छलावे का भंडाफोड़ दिया और डॉक्टर ने यह सिद्ध किया कि उसकी सनकी माँ को पागलपन के दौरे पड़ते हैं। उसके बाद ही बेशुमार धन फुँकवाकर इस मुकदमे का निर्णय किया गया। यह मुकदमा सौ दिनों तक अबाधित रूप में जारी था और पंचों के एकमतानुरूप न्यायाधीश ने यह निर्णय दिया कि वह दुस्साहसी व्यक्ति सर रॉजर नहीं बल्कि एक चालाक, लुच्चा, छलिया है।

जो कभी जन्मा ही नहीं

जिस प्रकार इतिहास में ऐसे व्यक्तियों के छलिये विख्यात हैं जो पैदा होकर लापता हैं अथवा मर चुके हैं, उसी प्रकार इतिहास के ही अनुसार उन व्यक्तियों के छलिये भी आ धमकते हैं जिन्होंने कभी जन्म ही नहीं लिया। इसका भी एक उदाहरण देते हैं। कोल्हापुर के राजे संभाजी महाराज सन् १७६० में निस्संतान मर गए। उस समय उनकी छोटी पत्नी कुसादेवी के पाँव भारी थे। पेशवे कई दिनों से

यह नीति अपनाना चाहते थे कि कोल्हापुर के राज्य को, जो पहले मराठों के साम्राज्य से अलग हो गया था, पुन: सतारा के राज्य से जोड़कर संपूर्ण महाराष्ट्रीय शक्ति को एककेंद्री तथा एकमुखी बनाएँ। उसके अनुसार यह देखते हुए कि कोल्हापुर का असली स्वामी नहीं बचा, माधवराव पेशवा ने सतारा और कोल्हापुर की रियासतों, जो पहले अंत:कलहवश दो हो गई थीं, को एक करते हुए मराठों का एकछत्र राज्य बनाने का संकल्प किया। परंतु संभाजी की विधवा पत्नियों ने जिद पकड़ी कि कोल्हापुर को अलग ही रखा जाए। इस सिलसिले में उन्होंने एक चिट्‌ठी लिखी। राज्य निर्वंश होने का प्रश्न ही समाप्त हो गया, क्योंकि 'कुसादेवी बैसाख कृष्णा ७, सोंमवार को प्रसूत हो गई। उसने एक राजकुँवर को जन्म दिया है। इसलिए पेशवा के पास चल संदेश भेजा गया कि 'आपका मुँह मीठा करने के लिए शक्कर भेजी है, उसको स्वीकार करें।' परंतु इस समाचार की यथार्थता के संबंध में पेशवा के मन में संदेह उत्पन्न हो गया। तब नाराज होकर संभाजी की पत्नियों ने एक चिट्‌ठी में उन्हें फटकारा—'हमारे खानदान के सिलसिले में इस प्रकार क्लिष्ट अनुचित धाराणाएँ इससे पहले कभी नहीं बनी थीं। भविष्य में भी नहीं होंगी। आप स्वयं यहाँ पधारकर जाँच-पड़ताल के साथ तसल्ली करें; और तब कहें ! यह कथन झूठ हो। ऐसा नहीं कि उनके मुँह से हाँ निकलने पर यह राजा होगा, अन्यथा ब्रह्मदेवता का लिखित मिथ्या सिद्ध होता है।'

परंतु माधवराव पेशवा ने कच्ची गोलियाँ थोड़े ही खेली थीं ? उन्होंने बारीकी के साथ जाँच-पड़ताल करके उतने ही ठोस प्रमाण के साथ सच्चाई पर रोशनी डाली। आखिर संभाजी की पत्नी ने स्वीकार किया, 'हमारा यह स्वाँग कि कुसादेवी को पुत्र प्राप्ति हो गई—बिलकुल झूठ था।' अत: वह बालक जिसने वास्तव में जन्म ही नहीं लिया था पर कोल्हापुर के युवराज का छलिया बन गया था, सरासर झूठ सिद्ध हो गया। उसके असली माता-पिता को गिरफ्तार किया गया और उन्हें दंड भी दिया गया। पर इस प्रकार अपने उपद्रवी व्यवहार के कारण जीजादेवी-कुसादेवी के मुँह पर कालिख तो लग गई, परंतु आगे चलकर उन्हें क्षमा करते हुए माधवराव पेशवा ने उन्हें किसीको गोद लेने की अनुज्ञा दी। (सर देसाई—मध्यविभाग ४, पृ. १३४)

परंतु हमारे देश में तथा अन्य देशों के इतिहास में इस प्रकार के जो कई छलिये होने के मनोरंजक किस्से हैं, उन सबमें बंगाल के इस भोवाल संन्यासी अभियोग कांड की तरह चमत्कारपूर्ण तथा रोमहर्षक वृत्त बहुत ही दुर्लभ हैं। क्योंकि इस मामले में केवल इतनी ही चमत्कृति नहीं है कि कोई छलिया खड़ा रहा अथवा किसी असली व्यक्ति पर बनावटीपन का आरोप लगाया गया, उसकी

हर घटना अलग-अलग तरह से अपने रोमांच के कारण दिल को छूनेवाली है।

भोवाल राजकुँवर कांड

पहला आश्चर्य

बंगाल में भोवाल नामक एक छोटी सी रियायत है जिसकी वार्षिक आय साधारणत: आठ-दस लाख रुपए होगी। उसके विगत स्वामी थे स्व. राजेंद्रनारायण राय। उनके द्वितीय पुत्र कुमार रामेंद्रनारायण राय थे। उनकी पत्नी थीं विभावती देवी। पिता की मृत्यु के पश्चात् अपने हिस्से की जायदाद का भोग करते हुए सन् १९०९ में कुमार रामेंद्रनारायण अपनी पत्नी विभावती देवी के साथ दार्जिलिंग नामक एक नितांत रमणीय पहाड़ी प्रदेश में आबोहवा बदलने तथा घूमने गए। उनके साथ विभावती के भाई उनके साले साहब—सत्येंद्रनाथ बनर्जी, पारिवारिक चिकित्सक डॉक्टर आशुतोष, अनेक सेवक-सेविकाएँ—इस प्रकार एक बड़ा परिवार था। दार्जिलिंग में अभी वे शीतल जलवायु का आनंद उठा ही रहे थे कि अचानक उन्हें अतिसार जैसी बीमारी ने घेर लिया। चिकित्सा के पश्चात् डॉक्टर आशुतोष आदि लोगों ने, संभवत: किसी भयंकर साजिश के कारण, राजकुँवर को संखिया खिलाया। उस विष से वे मूर्च्छित हो गए। उनकी मूर्च्छितावस्था लंबी होने से अंत में सर्वसम्मति से यह निश्चित किया गया कि राजकुँवर की मृत्यु हो गई। पत्नी विभावती, उसका भाई, वह डॉक्टर सभी ने मिलकर उसी रात शव को श्मशान में ले जाने की योजना बनाते हुए जल्दी-जल्दी अरथी उठाई। मरघट पहुँचकर चिता सजाई गई। अब शव उसपर रखवाकर उसे अग्नि दी ही जा रही थी कि संयोगवश तूफान आ गया। मूसलाधार वर्षा होने लगी। साँय-साँय करती तूफानी हवा में खड़ा रहना भी मुश्किल हो गया। अत: अब वहाँ जैसे-तैसे अपनी जान बचाना ही अत्यावश्यक लगा। आखिर शव को चिता पर ही छोड़कर सब लोग घबराए हुए वापस घर लौट आए।

दूसरा आश्चर्य

इतने में एक दूसरा चमत्कार घटा। आश्चर्यजनक रूप से जिस तरह चिता पर शव रखते ही भयानक तूफानी तथा मूसलाधार बरसात जिस तरह अकस्मात् शुरू हो गई थी जिससे उस शव की अग्नि से रक्षा हो गई, और वे लोग उस शव को चिता पर ही छोड़कर घर भाग गए, उसी तरह नागा संन्यासी संयोगवश भटकते-भटकते वहाँ आ गए। कदाचित् राजकुँवर के सर्वसम्मति से निश्चित किए गए निधन के इस षड्यंत्र की खबर उस षड्यंत्र में शामिल कुछ लोगों की मूर्खता के कारण नागा

संन्यासियों को उस स्थान पर आते समय मिली हो।

अघोर स्थल पर, अघोर वेला में, अघोर संकट में कूदना, सहना, भटकना, और श्मशान में जंगल के हिंस्र जानवरों से कई जीवों को दारुण संकटों से छुटकारा दिलाना इस अघोरपंथी सर्वसंग परित्यागी परंतु बलशाली संगठित मठसंस्था के नाग-संप्रदाय का व्रत है।

तीसरा आश्चर्य

इन नाग संप्रदायी साधुओं ने श्मशान में आकर देखा तो चिता पर शव के रूप में एक मरणासन्न व्यक्ति मूर्च्छितावस्था में पड़ा था। नरम-नरम रेशमी बिस्तरों पर लेटते हुए दवा-दारू, परहेज का अच्छा प्रबंध तथा शुश्रूषा होते हुए भी इस विघातक रोगी का स्वस्थ होना सर्वथा असाध्य था। परंतु वह रुग्ण जो बीमारी की भंयकर मरणासन्न अवस्था में लकड़ी-उपलों की चिता में ठूँसा गया था और ऐसी तूफानी झंझा में तथा मूसलाधार वर्षा में श्मशान में पड़ा हुआ था, मरा नहीं, बल्कि असाध्य मृतावस्था मूर्च्छा सुधरकर उसके हृदय में जीवन की धड़कनें वापस लौटीं तथा बंद पड़ी नब्ज फिर से धड़कने लगी। विषमप्यमृतं क्वचिद्भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया!

उन परोपकाररत नागा गोसाइयों ने उस शव की धुकधुकी को देखते हुए उठाकर उसे एक विजन तथा सुनसान गुफा में ले जा रखा। दवा-दारू के उपचारों में वे गोसाईं बहुत ही निपुण थे। वनस्पति आदि उपचारों से उन्होंने राजकुँवर को पुनः जीवन प्रदान किया तथा उससे अपना कुछ भी पूर्ववृत्त कथन न करते हुए उसे अपने संप्रदाय में समा लिया। वह पुनः स्वस्थ हो गया।

चौथा आश्चर्य

चौथा आश्चर्य यह कि उस मरणासन्न मूर्च्छा की लपेट में आकर उस राजकुँवर की पूर्वस्मृति आमूलात् नष्ट हो चुकी थी। उसे कुछ भी याद नहीं आ रहा था कि वह कौन है, कहाँ से आया है, किसका है। नागा लोगों के महंतों ने उन्हें जो कुछ ज्ञात भी था उसे राज ही रखा—उसकी विस्मृतावस्था बारह बरस तक टिकी रही।

उस अद्‌भुत विस्मृति में ही उस राजकुँवर को कभी-कभी जिज्ञासा होती—वह मूलतः कौन है? वह महंत से यह प्रश्न भी पूछता, पर वे कहते, ''बेटा, यथासमय तुझे अपने आप ही सबकुछ याद आ जाएगा। तनिक सब्र करो।'' क्योंकि दैवी कुछ भी नहीं था। धीरे-धीरे यदि उसका मज्जापिंड पुनः मजबूत होकर पूर्ववत्

स्वस्थ हो जाए तो वही स्मृति-केंद्र पुन: स्वकार्यक्षम होते ही वह स्मृतिभ्रंश उतने ही अकस्मात् रूप से नष्ट होकर पूर्वस्मृति का पुनरुदय हो जाता है।

नाग संप्रदाय के अनुसार उस नवशिष्य की यथाक्रम अभिवृद्धि हुई और फिर कश्मीर के मुख्य महंत बाबा धरमदास नाग के हाथों उसे नाग संप्रदाय की महादीक्षा भी दी गई। कुल बारह वर्ष राजकुँवर यह अहसास रंचमात्र न करते हुए कि वह राजकुँवर है, अपने आपको केवल नागा गोसाईं ही समझता था। अत: उस संप्रदायानुरूप दिगंबरावस्था में ही वह महंत के आदेशानुसार देश-विदेश दर-दर भटकता रहा।

उधर क्या हुआ?

राजकुँवर रामेंद्रनारायण का शव उस तूफान में वैसे ही छोड़कर उसके साले आदि लोग जो भाग गए थे, वे तूफान थमते ही रात समाप्त होने से पहले उस श्मशान में पुन: चिता जलाने आ गए—देखा तो वह शव अदृश्य! फिर भी धैर्य न छोड़ते हुए किसी अन्य मृत व्यक्ति का शव उठाकर इस बहाने से कि यही राजकुँवर का शव है, उसे अग्नि दे दी। इस बात से इस उत्कट अनुमान की संभावना होती है कि राजकुँवर को संखिया खिलाने में तथा उस मूर्च्छितावस्था को मृत्यु समझकर उन्हें झटपट जलाने के लिए ले जाने में उस चांडाल चौकड़ी का पूर्वनियोजित षड्यंत्र रहा होगा।

राजकुँवर के ही नाम से दूसरा शव जलाने के बाद उन लोगों ने सर्वत्र घोषित किया कि राजकुँवर रामेंद्र का स्वर्गवास हो गया है। राजकुँवर की धर्मपत्नी विभावती उस समय बारह-तेरह बरस की थी, अर्थात् उसका अभिभावकत्व उसके भाई के पास आ गया। उसने उसके हाथों अपने बहनोई के, जिसे मृत घोषित किया गया था, क्रिया-कर्म विधिवत् करवाए। उसके हिस्से की राजसंस्थान की एक-तिहाई—दो-तीन लाख रुपए प्रतिवर्ष—आय सरकारी कायदे से उसके नाम करवाई। उसके चालकत्व तथा अभिभावकत्व के बहाने उस धन का संपूर्ण भोग अपने हाथों में ले लिया और उसे अपने ही घर रख लिया।

उस आय का यथेच्छ उपभोग करते हुए ये भाई-बहन पूरे बारह बरस तक चैन से रहे।

इधर उस पुनर्जीवित राजकुँवर को नागा संन्यासी लोग पंजाब ले गए, इस सद्भावना के साथ कि वह चांडाल चौकड़ी उसका बाल भी बाँका न कर सके। उधर वह राजकुँवर अपने आपको ही पूर्णतया विस्मृत करते हुए नागा संन्यासी मंडल में उसी तरह पूर्वापर एक नागा संन्यासी समझकर रहने लगा। परंतु वह अवधि समाप्त होते-होते ही—

पाँचवाँ आश्चर्य

एक घटना ऐसी घटी कि उसकी प्रसुप्त पूर्वस्मृति अपने आप धीरे-धीरे जगने लगी। वह बार-बार अनुरोध करने लगा कि 'मेरा असली पूर्ववृत्त अब मुझे इस तरह याद आ रहा है कि मैं अवश्य भोवाल का राजकुमार रामेंद्रनारायण हूँ, मुझे अपने परिवार के लोगों से एक बार मिलना है। इस प्रकार योजना बनाकर कि वह नागा गोसाईं के ही वेश में स्वग्राम जाए ताकि उसे कुछ अपाय न हो, नागा महंत महाशय ने उसे बंगाल जाने की अनुज्ञा दी और उसका पूर्ववृत्त उसे बताया। उस योजना के अनुसार सन् १९२० में वह राजकुँवर नागा गोसाईं के ही रूप में ढाका स्टेशन पर उतरा। भोवाल उसी जिले में पड़ता था। वहाँ कदम रखते ही उसे ऐसा लगा कि वह वातावरण और वह दृश्य पहले अनेक बार उसने देखा है। वहीं पर विभिन्न वस्तुओं को देखते-देखते उसकी कई पूर्वस्मृतियाँ जाग उठीं। ढाका नगरी से यात्रा करते-करते एक नदी तट पर ठहरकर वहीं उसने अपना डेरा-डंडा जमाया। उसकी लंबी दाढ़ी, सिर पर जटाजूट, सारा शरीर विभूति चर्चित, आचार-नाम-परंपरा नाग संप्रदाय की, परंतु फिर भी बातों-ही-बातों में लोगों में खुसुर-फुसुर शुरू हो गई कि ठीक है न? हाँ-हाँ! यही है वह भोवाल का मँझला राजकुँवर। सारे शहर में यह अद्भुत समाचार फैलते ही पास-पड़ोस के गाँव के लोग भी उसे देखने आने लगे। सन् १९२१ में निकटवर्तीय कासिमपुर के भूमिदार उस जटाजूटधारी गोसाईं महाराज को अपने गाँव ले गए। वहाँ पर उतरते ही सभी लोगों ने भोवाल के मँझले राजकुँवर के नाम से उसकी जय-जयकार की। भोवाल वहाँ से बिलकुल पास था। उधर यह समाचार पहुँचते ही पूरी रियासत के गाँव-गाँव के लोग अपने राजकुँवर के दर्शनार्थ आने लगे। जिस-तिसके मुँह से यही उद्गार 'यही है वह! यही है वह!' निकलने लगे। इसके पश्चात् लोग उन्हें अनुरोधपूर्वक जयदेवपुर में ले आए जहाँ उनकी बहन ज्योतिर्मयी देवी और मातामही रानी सत्यभामा देवी थीं। वहाँ भी वे नागा गोसाईं के रूप में ही थे। परंतु उनकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म परीक्षा लेते-लेते उन दोनों को पूरा विश्वास हो गया कि—यही है अपना भाई, अपना नाती। तब प्रजा ने बहुत अनुरोध किया कि राजकुँवर को अब प्रकट होना चाहिए। राजकुँवर संकोच करने लगा, पर अंत में जटाभार उतारा गया, सब लोगों ने 'यही है! यही है!' के साथ जय-जयकार की। तब राजकुँवर ने अपने ही मुख से अपना रोमहर्षक वृत्त, जो नागा संन्यासियों ने उसे अंतिम दिन बताया था, प्रकट किया। उस दिन पूरी रियासत से आई हुई चालीस हजार जनता की विशाल सभा में प्रजाजनों ने प्रस्ताव के साथ यह उद्घोषणा की कि 'यही है कुमार रामेंद्रनारायण'। इतना ही नहीं, अपने अधिपति के नाते सैकड़ों लोग स्वेच्छा से उन्हें करभार भी अर्पित करने लगे।

छठवाँ आश्चर्य

नागा गोसाईं, जो राजकुमार सिद्ध हो गया, वही तत्काल राजकुँवर का 'ठग' सिद्ध हो गया।

यह देखते हुए कि रियासत भोवाल की प्रजा में यह आंदोलन फैला हुआ है, ढाका जिले का कलेक्टर उसपर पाबंदी लगाना आवश्यक समझने लगा। उस समय कोर्ट ऑफ वॉर्ड्स के अधिकार में वह रिसायत थी। उन्होंने इस नागा गोसाईं को राजकुँवर के बदले में ठग घोषित किया और ३ जून, १९२१ को रियासत का करभार आदि लेने पर पाबंदी लगवाते हुए उसे वहाँ से चले जाने का आदेश दे दिया। इसी वजह से राजकुँवर के भाग्य ने फिर से एक बार पलटी खाई। उसने इस तथ्य को निर्विवाद रूप में सत्य सिद्ध करने के लिए कि वह ठग या छलिया नहीं, सचमुच ही राजकुमार है, अपनी पत्नी विभावती को अपने पास बुलाया। परंतु सबसे बड़ा तथा सबसे दुःखद आश्चर्य यह था कि रानी विभावती ने ही 'यह रखेड़िया जोगड़ा मेरा पति नहीं हो सकता। यह मेरे मृत पति का नाम लेकर ठगनेवाला ठग है' इस तरह सरकार तथा जनता के सामने साफ-साफ घोषित किया और उसके निमंत्रण को दुत्कारते हुए उसके पास जाने से इनकार किया। अर्थात् उसके भाई ने भी, जिसके साथ वह पिछले बारह बरसों से रह रही थी, उसके इस झूठ का प्रथम समर्थन करते हुए विभावती के लिए, जो परिपाटी के अनुसार जायदाद की स्वामिनी निश्चित हो चुकी थी, लगभग सभी उच्च सरकारी अधिकारियों का पूर्ण समर्थन प्राप्त किया।

यह सुनते ही कि उसकी ही धर्मपत्नी ने उसे ठग घोषित किया है, राजकुँवर को परम दुःख हुआ। 'यदि वैधव्य दशा में ही वह अपने आपको सुखी समझ रही है तो भला उसके सुख को मैं मिट्टी में क्यों घोलूँ और यह मामला आगे अदालत के सामने लाकर इस प्रकार अपनी ही बदनामी का ढिंढोरा क्यों पीटूँ?' यह सोचकर वह हाथ पर हाथ धरे चुप बैठा रहा। परंतु उसकी बहन तथा उसकी नानी खीझती हुई इस जिद पर उतरीं कि अपना उत्तराधिकार तुम्हें सिद्ध करना ही होगा। तब कहीं सन् १९३० के अप्रैल महीने में राजकुँवर रामेंद्रनारायण ने अदालत में इस रियासत पर अपने ही अधिकार का दावा किया।

एक अत्यंत जटिल एवं अद्भुत रम्य अभियोग

यह अभियोग शुरू होते ही उसकी ओर हजारों लोगों का ध्यान आकर्षित हो गया। यह मुकदमा कुल छह वर्षों तक जारी रहा। विभावती ने भरी अदालत में दो टूक जबाब दे दिया कि 'इस जोगड़े का चेहरा किसी भी तरह मेरे दिवंगत पति से मेल नहीं खाता। मेरे समक्ष मेरे पति के शव को अग्नि दी गई थी। यह सरासर झूठ

है कि हम लोगों ने किसी अन्य व्यक्ति का शव जलाया। यह आदमी पंजाब के औजला गाँव का निवासी है, यह धरमदास नामक नागा संन्यासी का शिष्य है। इन लोगों ने पूरा षड्यंत्र रचा है और यह मेरे स्वर्गवासी पति का एक नीच छलिया है।'

विभावती तथा राजकुँवर दोनों पक्षों की ओर से अनेक बड़े-बड़े अंग्रेजी, हिंदी सरकारी अधिकारी, डॉक्टर, राय साहब, वकील तथा सार्वजनिक नेताओं को गवाह के रूप में आमंत्रित किया गया था। पंजाब से नागा संन्यासी, इंग्लैंड से अवकाश प्राप्त सरकारी अधिकारी, देशी-विदेशी मनोवैज्ञानिक, बड़े-बड़े बैरिस्टर, रियासत के सैकड़ों स्त्री-पुरुष वहाँ आते हुए शपथपूर्वक दावे के साथ एक-दूसरे से बिलकुल विपरीत बयान दे गए। डॉक्टर मुखर्जी, डॉक्टर राय, प्रि. सुरेंद्रनाथ मित्र, जे. गुप्त, आई. सी. एस., डॉ. कालबर्ट, ले. क. बकलेहिल आदि कई महान् हस्तियाँ रामेंद्रनारायण के पक्ष में बयान दे गईं। वास्तव में इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि पूरे बारह वर्षों के पश्चात् यह सिद्ध करना कि वह मैं ही हूँ, जो इतनी असंभवनीय घटनाओं में भी जीवित रहा और अपनी पत्नी द्वारा ठग घोषित करने के विपरीत उसकी सभी सिफारिशों को झुठलाना, वह भी बड़े-बड़े सरकारी अधिकारी, अपने ही कई सगे-संबंधी तथा शिष्ट जन रानी विभावती की ओर से शपथपूर्वक, डंके की चोट पर कह रहे थे कि यह मनुष्य ठग है, छलिया है, न कि राजकुँवर। इस प्रकार के ठोस प्रमाण नकारना रामेंद्रनारायण के लिए बहुत ही कठिन था। इसीलिए तो दोनों पक्षों की ओर से इस अभियोग में कुल पंद्रह सौ गवाह आए, दो हजार चुनिंदे निदर्शक (एक्जिबिट्स), डेढ़ सौ चुने हुए छायाचित्रों का प्रदर्शन किया गया। इस अभियोग ने अंत में लोगों को इतना आकर्षित किया कि 'भोवाल दैनिक' नामक एक विशेष अखबार प्रकाशित होना शुरू हुआ और वह ढाई साल तक अस्तित्व में रहा।

यह सिद्ध करते समय कि यही राजकुँवर है, अनुवंशविज्ञान के जो अनेक चमत्कारपूर्ण प्रमाण सामने आ गए थे, साधारण तौर पर उनकी जानकारी उपयुक्त होने के कारण कुछ उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं—

राजकुँवर की 'मृत्यु' से पहले के जूतों का एक जोड़ा प्रतिवादी ने ही सामने पेश किया। विभावती के पक्ष के अनुसार राजकुँवर के पैरों की एक खास बनावट थी जो इस ठग के पैरों से बिलकुल ही नहीं मिलती है। परंतु उन जूतों का निरीक्षण करने के पश्चात् यह सिद्ध हो गया कि वादी के पैरों का वही गठन है और वह जूता उसके पैरों से सोलह आने मेल खा रहा है।

पहले की तसवीरों में राजकुँवर के दाएँ हाथों की अँगुलियों की लंबाई असमान परंतु बाएँ हाथ की समान दिखाई देती हैं। यह विशेषता उस 'ठग' की

अँगुलियों में भी हूबहू पाई जाती है। यह बात छाया फोटोग्राफिक स्पेशलिस्ट मि. विंटरटर्न ने सिद्ध करके यह अभिप्राय प्रदर्शित किया कि यही रामेंद्रनारायण हैं।

इससे भी अधिक विस्मयजनक प्रमाण यह था कि स्व. राजेंद्रनारायण, उनकी बहन कृपामयी, उनकी कन्या ज्योतिर्मयी और उनके बड़े तथा छोटे सुपुत्र इन सभी के टखनों की चमड़ी मोटी, खुरदरी तथा झुर्रीदार हुआ करती थी। कर्नल मैकजिल ख्राइस्ट ने बताया कि यह एक आनुवंशिक रोग है और टखनों की परीक्षा में ठग कहलानेवाले स्व. राजेंद्रनारायण के मँझले बेटे वादी रामेंद्रनारायण के टखनों पर भी उस रोग की छाप ज्यों-की-त्यों अंकित हुई थी। अर्थात् यही रामेंद्रनारायण असली राजकुँवर हैं।

एक और प्रमाण सामने आ गया, जिससे पूरी अदालत के विस्मय का ठिकाना ही नहीं रहा। विभावती ने ही मृत राजकुँवर के कुछ छायाचित्र पेश किए थे। ध्यान से उनका निरीक्षण करने पर विख्यात छायाचित्रकार श्री गांगुली ने न्यायाधीश महाशय को यह दिखा दिया कि हर छायाचित्र में पलकों के नीचे एक प्रकाश बिंदु पाया जा रहा है। यह प्रकाश बिंदु उभरने का यह कारण हो सकता है कि उस स्थान पर राजकुँवर के चेहरे पर कुछ-न-कुछ शारीरिक विशेषता हो। उसीके अनुसार वादी रामेंद्रनारायण की मुद्रा गौर से देखने पर यह दिखाई दिया कि उसी स्थान पर पलकों के पास एक तिल सदृश मांस की फुंसी उभरी हुई है। हर छायाचित्र विशेषज्ञ (फोटो-स्पेशलिस्ट) ने यह प्रमाण अकाट्य, अखंडनीय ही माना।

कुछ मनोवैज्ञानिकों के अनुसार बारह वर्षों तक किसी प्रबल मानसिक सदमे के साथ पूर्वस्मृति पूर्णतया लुप्त होना और बाद में धीरे-धीरे उसका पुनः जाग्रत होना असंभव है। इसके विपरीत कुछ जाने-माने मनोवैज्ञानिकों ने डंके की चोट पर बताया कि ऐसा होना संभव है।

इस प्रकार इस अत्यंत जटिल, पेचीदा, विस्तृत तथा विविध प्रमाणों की छानबीन के पश्चात् अंत में जज साहब श्री पन्नालालजी ने २४ अगस्त, १९३६ को इस अभूतपूर्व मुकदमे का निर्णय किया कि वादी ठग नहीं, छलिया नहीं, बल्कि राजकुँवर रामेंद्रनारायण ही है।

जज साहब के इस निर्णय के साथ ही भोवाल रियासत के प्रजाजनों में तुमुल हर्षोल्लास की एक लहर उमड़ पड़ी। घर-घर में दीपोत्सव मनाया गया। घर-घर में सैकड़ों आबालवृद्ध स्त्री-पुरुषों की आँखों से हर्षपूर्ण आँसुओं की झड़ी लग गई।

जज साहब ने विभावती के संबंध में लिखा कि द्रव्य लोभवश तथा इस कारण से कि वैधव्य दशा में सारी दौलत पर उसीका अबाधित अनुशासन रहे, जिससे वह हाथ धोना नहीं चाहती थी, अतः उसने जान-बूझकर यह झूठमूठ का हंगामा

किया कि उसका पति ठग है, छलिया है। इस दुष्कर्म के लिए उसे उसके कुटिल, नीच भाई ने ही उकसाया था। उस चांडाल चौकड़ी ने, जो उसकी सहायता कर रही थी, यह षड्यंत्र बारह साल पहले रचा था। विभावती के अपने भाई की छत्रछाया ही होने के कारण वह स्वयं और उसके सगे-संबंधी विभावती की जायदाद का उपभोग कर रहे थे। इन सारे ऐशो-आराम, भोग-विलासों का त्याग करने के लिए वे कतई तैयार नहीं थे और इसीलिए उन्होंने यह सारा अधम कांड खड़ा कर दिया।

पूरे छह बरसों तक चले इस अभियोग में लाखों रुपयों का व्यय राजकुँवर की बहन ने ही मुख्यत: उठाया था। परंतु जीत उसीके पक्ष में होने के कारण तथा रियासत की बागडोर राजकुँवर रामेंद्रनारायण के हाथ में आने के कारण उसे इस व्यय, परिश्रम, कष्टों से प्राप्त दु:ख भी सुखद प्रतीत हो रहा था। 'क्लेश: फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते।'

विभावती को—जो रियासत की राजलक्ष्मी ही नहीं थी अपितु जिसने अपने पति को चिता पर जला हुआ घोषित करने का प्रयास भी किया था—आज फिर से कम-से-कम प्रतिबंधित अधिकार से पत्नी-रूप में उसी पति के हाथों सौंपा गया है। कितना अनमेल जोड़ है यह!

—१९३६

□

दर्जी जो कुरते के लिए मनुष्यों को ब्योंतता है

आप सभी उन दर्जियों से भलीभाँति परिचित होंगे जो ऐसे कुरते ब्योंतते हैं जो मनुष्य के बदन की नाप से मेल खाते हैं। कपड़ा उतना ही काटते हैं जितना जरूरी हो। कुरते का घेरा भी उतना चौड़ा रखते हैं जितना उस आदमी की छाती का घेरा हो। जिस आदमी का कुरता सीना हो, उसकी बाँहों की लंबाई के अनुसार कुरते की बाँहें लंबी या छोटी काटकर दर्जी ऐसा कुरता ब्योंतते हैं, जो उस आदमी के बदन पर ठीक-ठाक बैठे। आदमी के डील-डौल, उसके शरीर की बनावट के अनुसार वे कुरता बड़ा या छोटा काटते हैं।

परंतु क्या कभी आपने ऐसा दर्जी देखा है, जो इस तरह कुरता नहीं काटता जो शरीर की बनावट से मेल खाए, बल्कि उस शरीर को ही इस प्रकार काटता है, जो उस कुरते की बनावट, नाप से मेल खाए। उसके कुरते की नाप, उसका आकार कभी नहीं बदलेगा—इतना घेरा, इतनी लंबी बाँहें, इतना बड़ा गला, बस! उस निश्चित, नपे-तुले आकार से अलग रंचमात्र अधिक बड़ा अथवा अधिक छोटा कुरता सिलाई करना अथवा पहनना उस जाति के दर्जी के शास्त्र में घोर पाप समझा जाता है। कुरते की बात हो तो हर आदमी को बिलकुल उसी तरह का कुरता ही पहनना होगा। सिलाई के टाँके भी निश्चित। इस नियम के कारण उस जाति के दर्जियों की दुकान में यदि कोई व्यक्ति जाए तो ये दर्जी उस व्यक्ति के बदन के अनुसार कुरते का कपड़ा नहीं फाड़ते, अपितु अपने उस सुनिश्चित नपे-तुले कुरते के अनुसार उस व्यक्ति का बदन ब्योंतते हैं। उस कुरते से वह आदमी यदि छोटा हो तो वह तब तक नंगे बदन घूमे जब तक वह उतना बड़ा नहीं होता, जितना वह कुरता। अथवा यदि उसका बदन छोटा हो वह उस घेरेदार, लच्छेदार कुरते का खलेरा जैसे-तैसे भी बन पड़े वैसे ही अपने बदन पर सँभाले। कुरता बदन पर डालने की बजाय बदन को ही उस कुरते में ठूँसना चाहिए। अच्छा, पर कोई ऐसा व्यक्ति आ जाए जिसे कुरता छोटा हो तो? फिर इस जाति

के दर्जी उस कुरते का वह निश्चित आकार छोड़कर अधिक कपड़ा कभी नहीं काटेंगे, अपितु कुरते के अनुसार उस बदन को ब्योंतेंगे। कुरते की बाँह उनके शास्त्रानुसार जितनी लंबी हो—इस संदर्भ में उनका जो पूर्वापर जाति नियम है, उससे बाँह से अधिक लंबाई का हाथ आने पर, ये दर्जी ग्राहक का हाथ काटेंगे पर बाँह की लंबाई कदापि नहीं बढ़ाएँगे। कुरते के शास्त्रीय गले से उस व्यक्ति के गले का घेर अधिक हो तो ये दर्जी उस गले को तराशकर आकार का करेंगे, पर कुरते के गले का घेर बढ़ाकर उस जाति के परंपरागत कुलधर्म को कभी भंग नहीं करेंगे।

उनकी जाति के जिस किसी एक महान् पूर्वज ने इस सृष्टि की उत्पत्ति के पहले दिन ब्रह्माजी के दिए हुए कपड़े का पहला कुरता सिलाई किया, उस कपड़े से अधिक पतले अथवा अधिक मोटे कपड़े का प्रयोग करना अथवा अन्य किसीको करने देना इस तरह के दर्जी एक अधार्मिक कृत्य समझते हैं। एक निश्चित रूप कपड़े का वह भी निश्चित साँचे में ढला हुआ कुरता पहनकर मनुष्य को रहना चाहिए, फिर चाहे वह कड़ाके की सर्दी के ठंडे उत्तर ध्रुव पर रहे अथवा धधकती सहारा मरुभूमि के आसपास के उष्ण प्रदेश में रहे। यदि वह यह नहीं कर सकता तो इससे भी अधिक उत्तम मार्ग यह है कि वह उस गाँव के बाहर कदम ही न रखे, जहाँ उस कपड़े का कुरता बनानेवाले धर्मनिष्ठ लोग रहते हैं। गाँव में चाहे भीख माँगने का प्रसंग क्यों न आए, अथवा उस गाँव से बाहर कहीं सोने की खान में मुफ्त में सोना धोने की सुविधा भी क्यों न हो, वह उस सुविधा के लिए अपने गाँव की सीमा का उल्लंघन कभी न करे, क्योंकि कहीं उधर उस कुरते को बदलने का उसे मोह हो जाए तो?

इस दर्जी धर्म का और एक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है। वह यह कि मनुष्य के अंगभूत गुणावगुणों से यह निश्चित करना पाखंड है कि मनुष्य पापी है या पुण्यवान, महान् है या नीच, मक्कार ऊँचा है या टुच्चा। वह आदमी इस निश्चित साँचे में ढले, निश्चित लंबाई-चौड़ाई का यह धार्मिक कुरता धारण करता है या उसे अपने शरीर के अनुरूप बदलते जलवायु से मेल खानेवाले विभिन्न किस्म के कुरते बदलता रहता है, इससे यह निश्चित करना चाहिए कि वह आदमी धार्मिक है अथवा अधार्मिक, सात्त्विक है या तामसी, साधु है या ठग। यदि वह शरीर की नाप से कुरते बनाता है तो वह अवश्य परले दर्जे का मक्कार, नीच तथा ओछा होगा और उस शास्त्रीय कुरते के अनुरूप यदि वह अपना शरीर ब्योंतेगा तो वह महान् साधु तथा धार्मिक पुरुष होगा।

इस तरह के दर्जी लोगों को भला ऐसे ग्राहक भी कहाँ से मिलेंगे जो

उनके कुरते के अनुसार अपना शरीर ब्योंतने देंगे? जी हाँ, यह सरासर आपकी भूल होगी, यदि आप इस तरह सोचते हैं तो। क्योंकि इस जाति के दर्जियों के पास एक पोथी है जो इस तरह का अभिशाप देती है कि यदि मनुष्य इन नपे-तुले कुरतों को छोड़कर अन्य प्रकार के कुरतों का अपने शरीर की लंबाई-चौड़ाई की तथा आबोहवा की सुविधा-असुविधा मात्र की बदलती आवश्यकता के अनुसार प्रयोग करे तो वह मनुष्य घोर नरक में 'वंश के साथ' पड़ेगा और मुसलमानों की निष्ठा है कि वह पोथी किसी मनुष्य द्वारा लिखित नहीं है, अपितु साक्षात् ईश्वर ने अपने चाकू से अपनी नरकट की कलम तराशकर स्वयं लिखी है। अर्थात् हिंदू जिस अर्थ से अपने वेदों को 'श्रुति' कहते हैं, इसलिए इसमें दिए हुए छोटे-मोटे आचार भी त्रिकालाबाधित माने जाने लगे। इतना ही नहीं, मोहम्मद पैगंबर की मृत्यु के पश्चात् उसका कुरता भी उसके राजदंड की तरह मुसलमानी धर्मपीठ एवं राजपीठ के अध्यक्षत्व का एक प्रतीक—एक अपरिवर्तनीय दिव्य चिह्न माना गया। मोहम्मद महाशय की मृत्यु के पश्चात् उनकी गद्दी का स्वामी तथा मुसलमानों का सर्वोच्च धर्माध्यक्ष जो बन गया, उसे खलीफा कहा जाता और खलीफा को ही मोहम्मद पैगंबर का कुरता पहनने का अधिकार होता। खलीफा पद के लिए कई इच्छार्थी खड़े रहते, लड़ते-झगड़ते एक-दूसरों के हजारों सैनिकों का कत्ल करते। इस युद्ध में मुसलमान ही मुसलमानों के लहू की बरसात करते और एक ही समय विभिन्न इलाकों में तीन-तीन विभिन्न बलवान सेनापति अपने आपको असली खलीफा घोषित करके राज करते। उसमें बगदाद के उमय्यद खलीफा का वंश बड़ा बलवान निकला। मोहम्मद का राजदंड तथा यह पवित्र कुरता उन्हींके अधिकार में रहता।

बगदाद के इन खलीफों में कुछ महा बलवान तथा सत्वशील निकले। वे मोहम्मद का वह पवित्र कुरता धर्मोपदेश के समय पहनते।

जो खलीफा पद के लायक सिद्ध होगा अथवा जो इतना बलवान हो कि उस पद को छीनकर अपने अधिकार में कर सके, उसे खलीफा होते ही कुरता धारण करने का अधिकार मिलता। परंतु अंधविश्वासयुक्त धर्मभावना की अंततः जो विकृत स्वरूप में परिणति होती है—वही मनुष्य स्वभावानुसार मुसलमानों में भी हो गई। अंत में जो पूज्य खलीफा हो उसीके बदन पर यह पवित्र कुरता होगा, इस तरह की प्रवृत्ति के बदले यह प्रवृत्ति फैल गई कि यह पवित्र कुरता जिसके बदन पर हो, वही खलीफा समान पूजनीय होता है।

हमारे धर्म में जो श्रद्धेय संन्यासी होता है वह गेरुए रंग की कफनी पहनता है। देखते-देखते जिसके शरीर पर गेरुए रंग की कफनी हो वही संन्यासी समान

सहज रूप में पूजनीय प्रतीत होने लगा और गेरुआ रंगधारी कफनी देखते ही उस व्यक्ति को संन्यासी समझकर चोरों को भी सम्मान तथा भिक्षा प्राप्ति सुलभ हो गई। यह बात ठीक उसी तरह है।

इस प्रकार के बुद्धिहीन अंधविश्वास की बगदाद में—मुसलमानी राजधानी में—ऐसी प्रतिष्ठा हो गई कि खलीफा का कुरता ही लगभग खलीफा हो गया। खलीफा पद के लिए उचित गुण उस व्यक्ति में चाहे हों या न हों, उसके शरीर पर यह पवित्र कुरता तो है न? यदि यह कुरता है तो वही खलीफा है।

निर्बल, मूर्ख अनुयायियों के नेता भी इसी प्रकार निर्बल तथा मूर्ख होते हैं। उमय्यद खलीफा की इसी प्रकार अवनति हुई। खलीफा पद पर अजीबो-गरीब सनकी, झक्की, व्यक्ति आने लगे। परंतु बाह्य आचारों के खोखले मुखौटे को ही जहाँ सच्चा सुख समझा जाने लगा, वहाँ सिर्फ मुखौटे की चिंता ही पर्याप्त समझी जाने लगी। इसी तरह के अवनत काल में इस पवित्र कुरते ने बड़े मनोरंजक, मजेदार प्रसंग खड़े किए। उदाहरण के तौर पर अवनत काल के इस उमय्यद वंशीय खलीफा के दूसरे वालिद का एक दिलचस्प किस्सा देखिए।

इस खलीफा को, जो मुसलमानी साम्राज्य का सम्राट् तथा संपूर्ण विश्व का धर्माध्यक्ष 'शंकराचार्य' था, इस राजधानी की भव्य मसजिद में प्रार्थना विधि देखनी पड़ती थी। एक दिन इस समारोह में जाने के लिए उसके मन में आलस उत्पन्न हो गया। इसलिए उसने एक सुंदर रमणी को खलीफा पद का प्रमुख प्रतीक—वह पवित्र कुरता—पहनाकर प्रार्थना का पौरोहित्य करने भेजा। संपूर्ण मुसलमानी साम्राज्य की ओर से मुसलमानी धर्म के खलीफा के नाते उसने प्रार्थना समारोह संपन्न किया और उस रमणी की प्रार्थना का खलीफा की प्रार्थना के समान ही उन धर्मनिष्ठ अनुयायियों ने अनुसरण किया।

व्यक्ति चाहे कोई भी, कैसा भी हो—वह प्रधान खलीफा नहीं—अपितु प्रधान खलीफा था खिलाफत का वह पवित्र कुरता। आगे चलकर कई उथल-पुथल, क्रांति विद्रोह होते-होते आपसी कलहों में अरबी मुसलमानी सत्ता इतनी निर्बल हो गई कि बगदाद के खलीफों के महलों में वेतनधारी तुर्क—मूलतः मुसलमान धर्मानुयायी न होते हुए भी—अपनी शूरता, पराक्रम के बलबूते इस मुसलमानी खिलाफत की सत्ता को निगलने लगे थे। खलीफा उनके हाथों की कठपुतली बन गया। तुर्की सेना के सरदार यह तय करते कि किसे गद्दी पर बैठाया जाए, किसका पत्ता काटा जाए। इसी प्रकार के एक बलवान तुर्क सेनापति का सर्वत्र रौब बँध गया था। तभी अब्बासी खलीफा वासिक की मृत्यु हो गई। मृत्यु पूर्व अपना उत्तराधिकारी तय करने का अधिकार खलीफा को था। उसीके

अनुसार इस खलीफा वासिक ने मृत्यु पूर्व बताया कि 'मेरे पश्चात् मेरे बेटे को खलीफा बनाया जाए।'

यही परिपाटी थी। मुसलिम समाज ने खलीफा की आज्ञा सिर-आँखों पर मानते हुए कहा, 'उसी बालक को खलीफा बनाएँगे।'

परंतु यह उस तुर्क सेनापति के लिए इष्ट नहीं था। उसे अपने ही पुट्ठे के एक खलीफा वंशीय को खलीफा बनाना था। पर असली कारण न बताते हुए उसने बस इतना ही कहा, 'नहीं, वह बालक खलीफा बनने लायक नहीं है।'

भला वह क्यों?

खलीफा के आदेश को ठुकराकर किसी दूसरे व्यक्ति को खलीफा बनाने के लिए कुछ ऐसा ठोस कारण बताना अनिवार्य था, जो कट्टर मुसलमानों की धर्मभावना को जँचता। तुर्क सेनापति अपने मन का कारण नहीं बता सका, क्योंकि वह धार्मिक सनातनी कारण नहीं था। अच्छा, वह बालक छोटा है, अत: खलीफा पद के लिए योग्य कोई अन्य पराक्रमी अथवा साधुशील पुरुष की आवश्यकता बताना भी अस्वीकार्य था, क्योंकि पराक्रम, वीरता की दृष्टि से व्यक्ति के लायक अथवा नालायक होने का प्रश्न उसमें था ही नहीं। वे लगभग उस धर्मश्रद्ध 'सनातनी' दर्जी जातीय लोग थे। व्यक्ति चाहे कैसा भी हो योग्यता का वह रूढ़ियुक्त पुराना मुखौटा उसने पहना है या नहीं? बस इतनी ही उनकी समस्या होती। खलीफा जिसे कहे, वही उसका उत्तराधिकारी—यही धर्म शासन था। उसके अनुसार वह बालक ही खलीफा होने के लायक था। भला उसे अयोग्य क्यों कहा जाए?

केवल धर्मश्रद्धा के आक्षेप की ही बाधा होने से उस चालाक, धूर्त तुर्क सेनापति ने वही कारण बताया जो धर्मश्रद्धा को उचित लगता हो तथा उस बालक की अयोग्यता भी निर्विवाद रूप में सिद्ध करता हो। उस तुर्क सेनापति ने कहा, 'यद्यपि खलीफा ने मरते समय अपने बेटे को खलीफा बनाने के लिए कहा था, तथापि वह खलीफा पद के लायक नहीं है; क्योंकि वह इतना छोटा है कि उस प्रमुख संस्कार को संपन्न करना ही उसके लिए सर्वथा असंभव है जो खलीफा बनने के लिए आवश्यक है। खलीफा के लिए जो अवश्यंभावी पवित्र कुरता पहनना अनिवार्य है, वह कुरता ही उस बालक के शरीर की नाप का नहीं है। वह कुरता—वह धर्मदंड—सँभालना उसके लिए मुश्किल होगा। उसके लिए वह कुरता बहुत ही बड़ा होगा। इसलिए वह बालक खलीफा पद के लायक नहीं है। खलीफा होने के लिए ऐसा ही मनुष्य चाहिए जिसे वह कुरता ठीक-ठाक आए और जो उस धर्मदंड को सँभाल सके।'

यह शास्त्रनिर्णय सर्वथा 'सनातनी' जातीय दर्जीशास्त्र के अनुसार ही था।

वह लायक पुरुष कौन है जो खलीफा पद के योग्य होगा? वही जिसे खलीफा पद का वह पुराना, पवित्र कुरता ठीक-ठाक आए। उसीके अनुसार उसीको खलीफ़ा नियुक्त किया गया, जिसके बदन पर वह कुरता एकदम ठीक-ठाक बैठा। भई, दर्जी हो तो ऐसा, जो कुरते के लिए योग्य मनुष्य ब्योंतता हो।

—१९३४

□

जच्चा

दस-बारह हजार हिंदुओं की बसावट का गाँव था वह। बोर्ड ने एक बरामदेनुमा धर्मशाला भी बनवाई थी, जो गाँव के मध्य एक मार्ग के छोर पर थी। श्री गोदास सुखे उस मार्ग से गुजरते हुए देख रहे थे कि उस धर्मशाला के पास पाँच- दस लोग इकट्‌ठे हो गए हैं। 'भई, क्या कर रहे हैं ये लोग?' इस तरह मन-ही-मन सोचते हुए उन्होंने भी उधर का रुख अपनाया। देखा तो एक मरियल सी जरा-जर्जर और ठूँठ गाय रास्ता भूलकर नीचे लुढ़क गई है और उधर खड़े लोग एक-दूसरे से पूछ रहे हैं, 'क्या कहा? मारा? किसने? कहाँ? गाय को छड़ी से मारा?'

'गाय को छड़ी से मारा'—ये शब्द कानों में पड़ते ही गोदास सुखे सारे लोगों को हाथ से ढकेलते हुए सीधे उस गाय के समीप आ गए। उन्हें देखते ही एक लड़के ने कहा, ''यह जरा-जर्जर गाय पिछले दो-चार दिनों से संध्या समय यहाँ पर बैठी रहती है। पड़ोस के किसी कर्मचारी ने, उसके रास्ते में आने के कारण, इसे मेरे सामने छड़ी से मारा। मैंने चूँ-चपड़ नहीं की, अन्यथा वह मुझे भी मारता। परंतु इसे रास्ते से हटाकर उसके जाते ही मैंने आने-जानेवाले इन दो-चार सज्जनों को बताया, देखो, यहाँ मारा।'' यह कहते हुए उसने गाय की पीठ की ओर निर्देश किया। परंतु वहाँ कोई साँट-वाँट नहीं उभरा था। गोदास सुखे तैश में आते हुए ऊँचे स्वर में उस लड़के को फटकारने लगे, ''बस, बस! कायर कहीं के। हाथ में चूड़ियाँ पहन रखी हैं तूने? गोमाता पर हाथ उठानेवाले उस पापी का तूने सिर क्यों नहीं काट लिया? गाय रास्ते में बैठी थी तो उसे उस मार्ग को छोड़कर गटर की ओर से जाना चाहिए था। छड़ी का प्रयोग करके उसे रास्ते से हटानेवाला वह पथिक अवश्य कसाई होगा। बेचारी जराजीर्ण गाय! माता समान पूज्य! इतने सारे हिंदुओं के होते हुए उसका संवर्धन, उसकी रक्षा करने का प्रयास तुममें से एक ने भी नहीं किया?''

यह कहते हुए गोदास सुखे ने अपने उत्तरीय से एक गोग्रास पेटी निकाली और उसे खनकाते हुए सभी के सामने घुमाने लगे, ''गोग्रास भिक्षा डालो।'' एक-

दो जनों ने दुवन्नी-चवन्नी डाल दी।

गोदास सुखे चलते-फिरते गो-सेवक थे। पहले वे संस्था की ओर से घूमते थे, परंतु संस्था ने जब उन्हें 'बावन गज का धूर्त, चालाक' घोषित किया तो उन्होंने उस संस्था को ही 'धूर्त, झूठी' घोषित करते हुए ईंट का जवाब पत्थर से दिया। अब वे स्वतंत्र रूप से गो-सेवा का प्रचार करते-करते हाल ही में उस गाँव में आए थे। उस गाय की हालत देखते ही उन्हें तनिक दुःख भी हुआ। उसके साथ ही उन्होंने यह अनुमान लगाया कि उनका प्रचार कार्य प्रस्तावित करने के लिए यह प्रत्यक्ष उदाहरण इस गाँव में सिद्ध होगा। उन्होंने लप् से गाय को खड़ा किया, एक बड़ा सा रस्सा उसके गले में बाँधा और उस रस्से को थामते हुए एक गोसावी गीत गाते हुए उस जमावड़े के साथ आगे बढ़े।

उनका असली नाम गोपाल बाबू था। जब तक वे उस गोरक्षा संस्था में थे, तब तक अपने असली नाम का प्रयोग करते, परंतु उस संस्था से जब बाहर निकले, तब उस संस्था के विरुद्ध उनके द्वारा उठाई गई कई आपत्तियों में एक यह भी थी कि किसी भी हिंदू संस्था का अपने आपको गोरक्षा संस्था कहलाना हिंदू धर्म के मुख पर कालिख पोतना है। यही नहीं, गोरक्षक कहलाने का अर्थ—गाय देवी है और मनुष्य उसका रक्षक—इस तरह विपरीत भाव प्रकट करते हुए उस देवी की महानता एवं शक्ति को मनुष्य से कम समझना है, उस देवी की निंदा करना है। भई, गाय देवी है, मनुष्य उसका रक्षक, उसका अभिभावक अर्थात् वह उससे अधिक शक्तिमान महादेव हुआ। इसकी अपेक्षा मनुष्य का 'मैं गोमाता का सेवक हूँ' कहना अधिक शोभा देगा। 'गाय की रक्षा करता हूँ,' कहना देवताओं को दुर्बल तथा भक्त को सबल सिद्ध करना है। इसलिए सभी गो-विषयक हिंदू संस्थाओं को चाहिए कि वे अपनी गोरक्षण संस्था का नाम त्यागकर अपने आपको गो-पूजक एवं गो-सेवक कहलाएँ और प्रत्येक कार्यकर्ता अपने लिए गोदास, गोभक्त, गोरज आदि नाम ले, जो गोमाता की महानता व्यक्त करते हैं। गोपाल नाम श्रीकृष्ण को शोभा देता था, क्योंकि वे गो देवता से भी श्रेष्ठ जगत्पालक परमात्मा का अवतार थे। परंतु मनुष्य अपने आपको गो देवी का या विश्वजननी का पालक या रक्षक कहे, यह तो हद हो गई भई! इस तरह आवेशपूर्ण प्रतिपादन करते हुए गोपाल बाबू सुखे ने भरी सभा में अपने असली नाम गोपाल का त्याग करते हुए गोदास सुखे नाम धारण किया।

धर्मशाला के सामने उस गाय की गौरव गाथा के चलते उस सायबान जैसी धर्मशाला के भीतर सामने ही एक पच्चीस वर्षीय महिला उस गाय जैसी ही दीन-हीन एक कोने में दुबककर बैठी हुई थी। उसने कमर पर फटे-पुराने वस्त्र लपेटे

हुए थे; पास ही चिथड़ों की एक गठरी और मिट्टी के दो बरतन पड़े थे। उसका चेहरा इतना उतरा हुआ था कि ऐसा लगता था, वह अब रोई तब रोई। किसीके उसकी ओर देखते ही वह झट से अपना मुँह फेर लेती। गाय पर दया करके गोदास को खेद प्रकट करते हुए तथा अपने हाथों से उस गाय को बार-बार सहलाते-पुचकारते देखकर उसने दस बार सोचा कि इस भले आदमी के सामने हाथ पसारे। परंतु वह समाज से डरती थी। उस गाँव के कुछ लोगों ने पिछले एक महीने से उसे भीख माँगते हुए देखा था। उसकी आसन्न-प्रसवावस्था देखकर लोग गाँव के अड्डे पर खुसुर-फुसुर करते और उसे अपने घर के सामने बैठने नहीं देते, गाली-गलौज कर उसे भगा देते। इसीलिए वह दुबकर बैठ गई थी। परंतु इस तरह उचित अनुमान लगाकर कि उस नए गो-सेवक सज्जन की दयाशीलता का आसरा उस जरा-जर्जर गाय ने भी पा लिया, फिर मैं तो गाय से भी निरी गऊ हूँ, इसलिए मैं भी अवश्य पा लूँगी। गाय के जुलूस के चलते-लड़खड़ाते पाँवों से वह आसन्न-प्रसवा अबला गोदास स्वामी के रास्ते से तनिक किनारे आते ही उनके सम्मुख आँचल पसारकर खड़ी हो गई, "बाबूजी, मैं चार दिनों से भूखी हूँ; मुझे बच्चा होनेवाला है, मुझे दो पैसे⋯"

उसकी बात समाप्त होने से पहले ही क्रोध से लाल-पीले होकर गोदास स्वामी दहाड़े, "चल परे हट! भिखमंगी कहीं की! इस गोमाता के चारे के लिए ही पर्याप्त धन संचय नहीं हो रहा है और तू हाथ-पैरों की हट्टी-कट्टी साँडनी⋯जा हाथ-पैर चला और अपना पेट पाल। गाय के मुख से ग्रास छीनकर अपना पेट भरने में तुझे रत्ती भर भी लाज नहीं आती? इतनी सी भी मानवता, ममता नहीं है तुझमें? अजी, देश के करोड़ों रुपए इन निखट्टू, आलसी, गोबरगणेश भिखमंगों को पालने-पोसने में पानी की तरह बहते हैं। और ये बेचारी जरा-जर्जर गौएँ भूख से बिलबिलाती, तड़प-तड़पकर जीती रहती हैं।"

इतने में स्वामीजी के कान में किसीने उस नारी के पेट की ओर संकेत करते हुए चुगली की। उसके साथ ही आग-भभूका होकर स्वामीजी चिंघाड़े, "अरे, उस मरजादी को खदेड़ना ही है न? अरी कलमुँही⋯" इस तरह हाथ नचाते-नचाते लोग जो गीत गा रहे थे, उसका स्थायी पद आते ही स्वामीजी ने उसमें अपना ऊँचा तथा भारी स्वर मिलाया—"भीख दे दो गो मैया को राखो हमारे हिंदू धर्म को।"

इतने में रामू भैया वैद्य वहाँ आ गए और लोगों से ऐसा न करने की प्रार्थना करते, उस महिला को धीरज बँधाते हुए कहने लगे, "तुम कहाँ से आई हो, माई? क्या तुम्हारे ससुराल-पीहर में कोई नहीं?" इतना पूछने की देरी थी कि उनके दस-पाँच मित्रों ने उनका हाथ पकड़ते हुए शोर मचाया, "हाँ, हाँ! रामू भैया, आप उससे

बात कर रहे हैं? भाई, आप जैसे प्रतिष्ठित व्यक्ति पर व्यर्थ ही कीचड़ उछाला जाएगा। आगे बढ़िए, हम सब बताते हैं।''

'भिक्षा डालो गो मैया का'—इस टेक पर पूरा रास्ता प्रतिध्वनित करते हुए आने-जानेवालों को रोककर पाई-पैसा वसूल करते हुए उस जरा-जर्जर गाय का जुलूस आगे बढ़ा।

सामने से हरी-भरी घास का गट्ठर उठाए हुए एक घसियारिन आ रही थी। बेचारी रास्ते के एकदम किनारे से चल रही थी, ताकि उस जुलूस का रास्ता न रुके। गोदास सुखे का ध्यान उस गाय से पहले ही उस हरे-भरे गट्ठर की ओर आकर्षित हुआ था। उनका संकेत मिलते ही दो-चार लोगों ने उस महिला को धमकाया, ''चलो, चलो, गट्ठर नीचे उतारो।''

उस स्त्री के यह प्रश्न करते ही कि 'पैसा कौन देगा?' सभी ने हंगामा किया, ''अरी मूर्ख, यह गोग्रास गाय है। धर्म-गाय से कहीं कोई पैसा माँगता है?''

''पर घर के भूखे बाल-बच्चों के लिए चावल कैसे ले जाऊँ, भैया? आज वे क्या खाएँगे?''

''और यह गोमाता क्या खाएगी? गो मैया के नाम पर आज की रात बच्चों को भूखे रहने दो। स्वर्ग में तुम कामधेनु पाओगी।'' स्वामी ने उसका समाधान किया।

''देखते क्या हो? उठाओ इसका गट्ठर।'' कहते हुए दो-तीन जने गट्ठर को खींचने लगे। अपना बचाव करने के लिए अंतिम उपाय सोचकर वह चिल्लाई, ''हाँ-हाँ! मैं अछूत हूँ। तुम लोगों को छूत-छात होगी, दूर हटो।''

परंतु उसके अनुमान से ठीक विपरीत परिणाम हो गया। धींगामुश्ती करनेवाले वे लोग पागल हो गए और उसे कसकर एक थप्पड़ रसीद करते हुए चिल्लाए, ''तो पहले तुझे क्या साँप सूँघ गया था? चुड़ैल! छुआछूत हो गई न हमें।''

उसे बचाने के लिए रामू भैया भागे-भागे आ गए। लोगों को पुचकारते हुए उन्होंने कहा, ''कब से देख रहा हूँ, उस गाय जैसे एक चौपाए को सहला रहे हो और यह महार (एक अस्पृश्य जाति) है तो इसे दुत्कार रहे हो, मनुष्य होते हुए भी इसकी छुआछूत मानते हो? भई, यह भूतदया है या धर्म?''

यह सुनते ही स्वामीजी का पारा सातवें आसमान पर चढ़ गया, ''ओ बछिया के ताऊ! गाय को पशु कहते हुए तुम्हारी जिह्वा झड़ क्यों नहीं जाती? गाय पशु होने पर भी विश्वव्यापी देवी है।''

बाबाजी का क्रोध शांत करने के लिए रामू भैया ने उनकी पीठ पर धीरे-धीरे हाथ फेरते हुए कहा, ''जो विश्वव्यापी देवी पशुओं में है, वह मनुष्यों में नहीं?

उसपर 'महार' मनुष्य नहीं ?''

इस प्रश्न से अधिक कि रामू भैया अछूत की छूत होते हुए उन्हें भी छूकर वे भ्रष्ट कर रहे हैं, इसी बात का अधिक क्रोध होने का बहाना बनाकर उस मुँहतोड़ प्रश्न से उपजी बौखलाहट को बाबाजी ने जैसे-तैसे छिपाया। इस प्रश्न से लोगों का ध्यान हटाकर छुआछूत का मामला आगे कर, जो लोगों को अधिक जँचता है, बाबाजी रामू भैया का हाथ झटकते हुए गरज पड़े, ''आप पूरे भंगी हैं, भंगी। बड़े आए कहनेवाले कि महार को छू लें। शिव, शिव! कैसा पाखंड!'' झट से स्वामीजी ने गाय की पूँछ आँखों पर फेर ली और उस चौपाए के पैरों तले की मुट्ठी भर मिट्टी, उस पवित्र गोरज को लोगों पर बिखेरते हुए स्वयं उस भभूत को माथे पर लगाते हुए उस हरिजन के छूतछात का अस्थायी रूप में प्रायश्चित्त किया। गाय के मुँह में उस हरे चारे की ढेर सारी गड्डियाँ अपने हाथों से ठूँसते हुए जुलूस आगे बढ़ने लगा, 'गोमाता को भिक्षा दो और हिंदू धर्म की रक्षा करो।'

मार्ग में मुसलमान जुलूस में सम्मिलित लोगों से सटकर आवाजाही कर रहे थे। कुछ 'खी-खी' हँसते हुए ठिठोली कर रहे थे। उनकी छुआछूत किसीको नहीं हुई, किसीने उन्हें टोका भी नहीं।

थोड़ी देर के बाद गोदास स्वामी उस महिला के घर आ गए, जहाँ वे ठहरे हुए थे। उस महिला का पुत्र घर का कर्ता-धर्ता, हिंदू संगठन का महाभिमानी। परंतु बुद्धिनिष्ठ युवा वकील। अपनी माँ का आदर करते हुए ही उसने गोदास स्वामी को अपने घर ठहराया था। उसके द्वार पर जुलूस के आते ही स्वामी ने वकील को आदेश दिया कि वह उस गाय को अपने घर में पाले। वकील ने मुसकराते हुए कहा, ''अजी, हमारे घर में न गोशाला है, न आँगन। यदि आपकी इच्छा हो तो जिस कोठी पर आप जैसे गो-सेवकों को ठहराया है, वहीं पर इसे भी रख दूँ। गाय को चारा दे देता हूँ, उस खुले मैदान में गाय को बाँधकर रखें।''

इतने में वकील की माँ बाहर आ गई। स्वामीजी की कथा सुनते ही वह अपने पुत्र पर रुष्ट हो गई, ''अरे अभागे, घर में आई हुई लक्ष्मी का इस तरह निरादर कर रहे हो? आज की रात तो इसे यहीं बाँधके रखो—उस सायबान में बाँधो—चलो उठाओ यह बैठक, अपनी वकालत बँगले में रखो। नीचे मेरा ही शासन रहेगा, समझे?'' माँ की आज्ञा से वकील साहब मुसकराते हुए चुप हो गए।

गाय को ऊपर लाया गया। वहाँ बिछी हुई गद्दियाँ, कुरसियाँ हटवाकर ओसारे का गोशाला में रूपांतर किया गया। माँ भीतर से आरती की सामग्री ले आईं। उस मिट्टी से सनी, गँदली गाय को हलदी-कुंकुम लगाकर फूलों से आरती उतारी गई, तब कहीं माँ ने संतोष की साँस ली।

उन्होंने पुत्र से कहा, ''बेटे, तैंतीस कोटि देवताओं की पूजा एक साथ करनी हो तो गाय की ही पूजा करो।''

स्वामीजी ने अपनी निश्चित लय में कहा, ''सर्वांभूती परमेश्वर है। हमारे हिंदू धर्म की यह अत्युदार सीख आत्मसात् करने के लिए देखा न, गो-पूजा कितना बढ़िया साधन है। पशु और मानव का आत्मैक्य। भूतदया की परिसीमा।''

दो-तीन दिन तक गाय उधर ही थी। उस गोभक्त महिला का यह धर्मकृत्य देखकर हर कोई उसकी प्रशंसा करता था। पास-पड़ोसियों में से किसी महिला ने फूल चढ़ाए, किसीने पकवान, चटनी, सब्जियाँ, खीर, घी से सजी-सजाई थाली का भोग गाय के सामने रखा। पड़ोस की एक निर्धन अबला के पुत्र बेचारे मधुकरी (पके अन्न की भिक्षा माँगकर निर्वाह करनेवाले) थे, परंतु उसने गुँझियों के गोग्रास का व्रत लेकर गुड़ की नौ गुँझियाँ बनाईं, उनमें से आठ अछूता धूत वस्त्र पहनकर उस गाय को खिलाईं, और एक अपने मधुकरी पुत्रों में बाट दी—गोमाता का प्रसाद।

इस तरह बड़े ठाट-बाट में तीन दिन बीतने के पश्चात् एक सेठ बड़े प्रेम से उस गाय को अपने घर ले गया। तब वहाँ इकट्ठे हुए लोगों में से पाँच-दस श्रद्धालु लोगों को घोर निराशा हुई। गोमाता की सेवा का उनका अवसर जो चला गया।

और इधर उस धर्मशाला में? उस जुलूस में ठेला-ठेली, धक्कम-धक्का करके खदेड़ी गई वह आसन्न-प्रसवा हिंदू अबला पुन: उस धर्मशाला में जाकर उसी कोने में दुबककर आँसू बहाती रही। रात के समय उसके पेट में भयंकर पीड़ा होने लगी। उसकी कराह रास्ते से गुजरनेवाले हिंदुओं ने सुनी। उन्होंने धर्मशाला में झाँककर देखा भी कि बात क्या है, परंतु एक स्त्री को रोते-कराहते, पीड़ा से छटपटाते हुए देखकर 'भई होगी कोई बला, छोड़ो' कहते हुए घृणा से नाक-भौं सिकोड़कर वे चले जाते। दो-तीन जनों ने उसे पहचाना। परंतु वे इस भय से कि कहीं उसकी प्रसूति का झंझट उनके गले न पड़ जाए—'मरने दो साली को, हमें इससे क्या लेना-देना! अजी, यह तो वही है। अपने पाप का फल भुगतने दो, जहन्नुम में जाए!' इस तरह आपस में खुसुर-फुसुर करते हुए वहाँ से खिसक गए।

रात के घुप अँधेरे में उसी कोने में वह नारी प्रसूत हुई। अपने पास वह एक चिथड़ों का पलीता हमेशा रखती, उसने उसे सुलगाया। बच्चे को देखा, वह जीवित था। आँवलनाल काटने के लिए कुछ भी नहीं था। कोने में पड़े पत्थरों के ढेर में से दो नुकीली धारवाले पत्थर उठाए और उसने उसका आँवलनाल काटा। शिशु चिल्लाने लगा, फिर भी उसे लपेटकर रखा और वह अकेली ही निकटवर्ती नदी में नहा-धोकर आ गई।

कभी-कभी विपदा ही स्वास्थ्यप्रद होती है और रामबाण औषधि भी। यहाँ

न खटिया, न दाई, न शांतिपाठ, न सेंक-सेंगड़ी, न ही पलना। प्रसूति में जच्चा की कितनी आकुल शुश्रूषा होती है। परंतु यहाँ कुछ भी न करते हुए जच्चा-बच्चा दोनों सकुशल रहे। लोग आते-जाते हँसी उड़ाते। स्कूली बच्चे तथा इधर-उधर भटकते बच्चे कभी पास आते और कौतुकभरी दृष्टि से देखते। कोई सज्जन, शिष्ट व्यक्ति उधर फटका भी नहीं। धर्मात्मा, पुरोहित, गो-सेवक, साधु, ब्राह्मण, चौधरी, सेठ किसीने भी उधर करवट नहीं ली। भई, वह गाय थोड़े ही थी, जिसकी सेवा 'हिंदू धर्म की रक्षा के लिए आवश्यक हो? वह ठहरी एक परित्यक्ता हिंदू अबला और उसका वह एक अनाथ हिंदू पिल्ला।' भला उसकी सुरक्षा का हिंदू धर्म रक्षा से क्या लेना-देना? बल्कि उन दोनों का कुशल-क्षेम पूछना भी पाप, असभ्यता। इसीलिए किसीने भी उधर ध्यान नहीं दिया। हाँ, पर अड्डे-अड्डे पर उसकी खिल्ली अवश्य उड़ाई जा रही थी। कोई-न-कोई अचानक अपने मित्रों में गपशप करते-करते बत्तीसी निकालकर पूछता, 'क्यों भाई, धर्मशाला में जन्मे चिरंजीव की खातिर कहीं तुम तो मिठाई नहीं बाँट रहे हो?'

परंतु रात नौ बजे एक व्यक्ति तीन दिनों से वहाँ आता। यदि उस अबला से किसीका संबंध था, तो मात्र उसी व्यक्ति का।

कौन था वह? कोई साधु-संन्यासी? अँधेरे में चोरी-छिपे क्यों आता है?

उस स्त्री के बारे में सबसे अधिक चिंता, अकुलाहट हो रही थी रामू भैया वैद्य को। उस जुलूस में उस स्त्री से बात करते समय उनके जिस मित्र ने उनका हाथ पकड़कर उन्हें खींचा था, उनसे तथा अन्य लोगों से उन्होंने यही सुना था कि छोटी उम्र में ही उस स्त्री का पति मुंबई में लापता हो गया था। पिछले पाँच-एक सालों से वह पड़ोस के गाँव में चौधरी के घर में मेहनत-मजदूरी करती थी। उसके पेट से होते ही उस गाँव के हिंदू समाज ने जाति का प्रश्न उठाया। चौधरी ने उसे निकाल दिया। उस स्त्री के अनुसार बच्चा उस चौधरी का ही था। मारपीट होने से गाँव छोड़कर उस शहर की धर्मशाला में आकर वह ठहर गई—उसी गाय की तरह निढाल। यह बात सुनते ही रामू भैया को उसपर तरस आ गया। उन्हें और एक भय होने लगा कि कहीं यह अबला पड़ोस के मिशन-विशन के जाल में न फँस जाए। उससे मिलने का उनका मन करता। परंतु उन्हें भी उतना साहस, उतनी हिम्मत जुटाने के लिए तीन दिन लगे। अंत में यह ठानकर कि समाज चाहे कुछ भी कहे, उसकी खोज-खबर लेने के लिए कम-से-कम एक बार तो जाना ही चाहिए। वे दिन के समय दोपहर में दो युवा छात्रों को साथ लेकर गए। उस स्त्री के पास बासी भोजन पड़ा था। उन्होंने मीठी-मीठी बातों से उसके पेट में प्रवेश किया। उन्हें ज्ञात हो गया कि जो एक ही व्यक्ति रात में उससे आकर मिलता है, उसे थोड़ा-बहुत भोजन देता है; एक-दो फटे

पुराने वस्त्र भी जिसने दिए, वह दूसरा-तीसरा कोई नहीं—उस गाँव का एक मुसलमान भंगी है।

क्या उसपर तरस खाकर भूतदया दिखाने के लिए वह दान दे रहा है? बिना कुछ प्रतिमूल्य लिये वह यह धर्मकृत्य कर रहा है? वह इसलिए उसे नहीं खिलाता था कि भूखे को खाना खिलाना एक धर्मकृत्य है—इस उद्देश्य से वह उस स्त्री को खाने की चीजें देता और कहता, 'देखो, हिंदू होकर मुसलमानों के टुकड़ों से पेट भर रही हो—अब तुम हिंदू नहीं रही।' और उन चंद टुकड़ों के प्रतिमूल्य स्वरूप उसने उस अबला को चेतावनी दी थी, 'यह बच्चा जब मैं माँगूँ तब मुझे दे देना—वरना जान से मार डालूँगा।'

रामू भैया को यह रामकहानी सुनाते समय वह बाँस की तरह थरथर काँप रही थी…कहीं वह शैतान आकर उसकी तथा उनकी भी जान न ले ले। रामू भैया ने उसे धीरज बँधाया, "यदि हम तुम्हारी पूरी-पूरी सहायता करें तो तुम उस मुसलमान की रोटियाँ नहीं तोड़ोगी न? उसे अपना बच्चा नहीं दोगी न? तुम्हारा रक्तबीज हिंदू धर्म का है न?" उसमें भी आवेश भर रहा था कि एक हताशा ने उसे घेर लिया, "पर अब क्या किया जाए? कौन सा हिंदू मुझे अपनी बिरादरी में वापस ले लेगा? मेरा मुन्ना भी बिना जात-पाँत का। भला वह हिंदू कैसे रहेगा?"

"क्यों नहीं? अवश्य रहेगा। तुम उसकी चिंता मत करो। मैं रत्नागिरि हिंदू सभा के एक गाँव का कार्यकर्ता हूँ। हम तुम्हें बिरादरी में, हिंदू धर्म में ले लेंगे। मैं स्वयं ही तुम्हें भोजन और बच्चे को दूध दूँगा। पुलिस की सहायता से उस मुसलमान का भी बंदोबस्त करूँगा। ये थोड़े से पैसे रख लो। भोजन और दूध अभी भिजवाता हूँ।"

किसी हिंदू के मुख से इस तरह की सांत्वना भरी अमृतवाणी सुनने का उसके जीवन में यह तो पहला ही प्रसंग था। उसे भी यह बात नहीं जँच रही थी कि मुसलमान के हाथ का खाने के बाद हिंदू हिंदू कैसे रह सकता है। परंतु सहायता तो मिल रही है, इसीलिए वह चुप रही। रामू भैया के चरणों पर उसने अपना बच्चा रख दिया, "आप तो साक्षात् मेरे भगवान् हैं जिसने मेरे धर्म की रक्षा की। परंतु पहले इस धर्मशाला से मुझे घर ले चलिए, अन्यथा वह मुआ मुसलमान मुझे कच्चा चबा जाएगा। यदि आप मुझे ले चलें तो आपके शब्दों पर विश्वास किया जा सकता है।"

रामू भैया वापस आ गए। थोड़ा सा भोजन और दूध उन्होंने भिजवाया। उस गाँव के एक-दो युवकों ने ही यह काम करने का साहस दिखाया। बाकी रामू भैया जिस किसीसे पूछते, वही 'पाखंडी! धर्मद्रोही! लुच्चा! कहीं इसीका तो संबंध नहीं होगा उस स्त्री से' कहते हुए रामू भैया की पीठ पीछे उनकी छि:-थू करते।

रामू भैया किराए के एक मकान में रहते थे। उस भ्रष्ट स्त्री को किसीके घर ठहराने की उनकी योजना का पता चलते ही पूर्व सावधानी के तौर पर मकान मालिक ने कहा, ''पहले ही तुम्हारे बारे में शिकायतें आती रही हैं कि तुम अछूतों को छूकर घर में छुआछूत मचाते हो। अब मुसलमान के हाथ का खानेवाली आवारा चुड़ैल की यह बला घर में लाने का इरादा हो तो तुम्हें घर छोड़कर जाना होगा। नंगा नाच नाचना हो तो बाहर नाचो, हमें कोई कष्ट न होगा।''

रामू भैया ने कहा, ''मैं उसे आपके घर बलपूर्वक नहीं लाऊँगा। परंतु वह गाय पालने के लिए जो माँग रहे थे, वह भी तो दासी ही थी न? मुसलमानों के हाथ का वह भी खाती थी न?।''

''परंतु वह पशु होता है—पशु धर्म तो…''

''हाय-हाय! इतना समझते हुए भी उस पशु को गोशाला में रखते हो, धूत वस्त्र पहनकर उसकी पूजा करते हो, गोमूत्र प्राशन करके उसे अपने हाथों से पकवान खिलाते हो। फिर यह हिंदू महिला ठहरी—एक मनुष्य, हिंदू का बच्चा मनुष्य जीव, उसे मुसलमानों के चंगुल से छुड़ाकर हिंदू के घर लाकर दो कौर…'' रामू भैया का वाक्य पूरा होने से पहले ही मकान मालिक ने उनकी बोलती बंद की, ''प्राचीन ऋषि-मुनि मूर्ख थे, गधे थे और तुम बुद्धिमान हो! कहाँ वह कुलटा और वह लावारिस पिल्ला, कहाँ वे अछूत पापी और कहाँ वह विश्वजननी पवित्र गायत्री माता। होने दो उसे मुसलमान। ऐसी कुलच्छनी कुलटाओं का मुसलमान बनना ही ठीक है।''

''ऐसी ही हिंदुओं से लताड़ी गई, अपमानित स्त्रियों की कोख से हिंदुओं के जानी दुश्मनों का जन्म होता है। और यह बच्चा मुसलमान होते ही अठारह वर्ष के अंदर-अंदर इसी गायत्री का हत्यारा एक कसाई बनेगा। उसका पूरा वंश गोमांस भक्षक-गोहंता होगा। गो-भक्तों की संख्या घटकर गो-हत्यारों की संख्या बढ़ेगी।''

''बस करो फलसफा झाड़ना। मैं अपना घर भ्रष्ट करना नहीं चाहता, बस!''

रामू भैया उस गाँव के सेठ, पुरोहित, मराठा चौधरी यथासंभव सभी घरों में गए। परंतु जो भूतदयावान लोग उस मरियल गाय को पालने के लिए एक पाँव पर तैयार हो गए थे, उनमें से एक भी उस अबला का आश्रयदाता बनने के लिए तैयार नहीं था, न ही वे उसे गोशाला में रहने देते। फिर इतरजनों की तो बात ही क्या करें।

वह गाँव बारह हजार हिंदुओं की बस्ती का था। मुसलमानों की बस्ती मुश्किल से तीन सौ की होगी। इन बारह हजार हिंदुओं को इसकी रत्ती भर भी चिंता

नहीं थी कि उन्हींके धर्म की एक स्त्री और एक बच्चा परधर्मीय होने जा रहे हैं। उस प्रसूता नारी को एक घर, आँगन या गोशाला में भी आश्रय नहीं मिल रहा था, जो एक गाय को मिला था। इन तीन सौ मुसलमानों में कुछ महिलाएँ भी थीं जो ऐसे षड्यंत्र की रचना कर रही थीं कि कैसे 'काफिर' नारी को तथा उसके बच्चे को इसलाम धर्म में घसीटा जाए। उन्हें बलपूर्वक भगाया जाए। वे स्वयं आगे बढ़कर इस षड्यंत्र का समर्थन कर रही थीं कि वे अपने परदे में भी उसे छिपाकर रखेंगी।

उधर उस धर्मशाला में उस मुलमान भंगी को इस बात की भनक लगी कि रामू भैया ने उस स्त्री को भोजन दिया। वह दिन ढलते ही उधर आ धमका। उस स्त्री के हकीकत बयान करते ही वह उस बच्चे को खींचने लगा। वह स्त्री चिल्लाने लगी। एक-एक करते बीस-पच्चीस हिंदू वहाँ इकट्ठे हो गए, पर सारे चुप। उस मुसलमान ने 'काफिर' पर, 'काफिरों के धर्म' पर गालियों की बौछार की। उस स्त्री को धमकाया, ''बच्चा नहीं देना है तो मेरी सारी चीजें लौटाओ।'' उसकी चीथड़ों की गठरी तथा बच्चे पर डाला हुआ धोती का टुकड़ा भी वह झपटने लगा। उस नंग-धड़ंग बच्चे को उठाकर वह स्त्री कोने में दुबककर बिलख-बिलखकर रोने लगी। वह आशा भरी दृष्टि से हिंदुओं के मुख ताक रही थी कि कोई माई का लाल आगे बढ़े, परंतु कोई भी आगे नहीं बढ़ा। मुसलमान ने कपड़े उठाए और धर्मशाला के सामने आम रास्ते पर उन्हें आग लगाई और 'मैं रात को फिर आऊँगा और देख लूँगा, तुझे कपड़े और खाना कौन देता है। उसकी और तेरी जान ले लूँगा मैं।' इस तरह धमकाकर उस होली के पास ही वह कुंडली मारकर बैठ गया।

उस भीड़-भड़क्के में गोदास स्वामीजी थोड़ी देर के लिए खड़े थे। उसी धर्मशाला में यह सुनकर कि किसीने लुढ़की हुई गाय की पीठ पर छड़ी मारी थी, उनका कलेजा छलनी हो गया था। परंतु अब उस अबला को उस दुष्ट द्वारा सताया जाते हुए देखकर वे टस से मस नहीं हुए। 'ऐसी घटनाएँ हम जैसे शिष्ट जनों के दखल देने योग्य नहीं हैं।' इसी हेकड़ी के साथ उन्होंने अपना रास्ता नापा। संकटमुक्त करने योग्य भला वह स्त्री कोई जरा-जर्जर गाय थोड़े ही थी? वह ठहरी एक जाति से निकाली हुई हिंदू जच्चा नारी और उसका वह नवजात शिशु।

उस एक मुसलमान को इस बात का पूरा अहसास था कि भले ही यहाँ वह अकेला हो, तथापि तमाम मुसलिम बिरादरी उसके पीछे डटकर खड़ी है। उधर उपस्थित प्रत्येक हिंदू को भी इस बात का पूरा-पूरा अहसास था। पर उन्हें एक और वास्तविकता का भी भान था कि उनके पीछे हिंदू समाज नाम की कोई चीज नहीं है, वे सचमुच ही बिलकुल अकेले हैं। हाँ, किसीने इतना साहस अवश्य दिखाया कि

भागे-भागे जाकर रामू भैया को इस घटना की जानकारी दी। रामू भैया ने पुलिस को खबर दी। दूर से उसी रास्ते से पुलिस को आते देखकर उस मेहतर मियाँ का धर्म-नशा उड़न-छू हो गया और वह वहाँ से नौ-दो ग्यारह हो गए।

तथापि रामू भैया ने सोचा, इस महिला को अब उस धर्मशाला में पल भर के लिए भी रखना खतरे से खाली नहीं है। पर इसे रखा कहाँ जाए? गाँव में तो कोई पशुशाला में भी उसे रखने के लिए तैयार नहीं था। अत: उन्होंने रत्नागिरि हिंदूसभा को टेलिग्राम भेजा।

परंतु अब मध्यरात्रि में उसे यहाँ से निकालकर कहाँ रखा जाए? वह युवा वकील रामू भैया के सहयोगी थे। आखिर रामू भैया ने उन्हींसे अनुरोध किया। उस वकील की माँ कितनी ममतामयी, साध्वी, गोभक्त वृद्धा! उस दीन-दु:खी गाय के लिए भी उनका जी कितना पसीजा था! फिर यह तो नारी जात, उसपर जच्चा, छाती से चिपका हुआ तीन दिन का दूध पीता शिशु। अवश्य उसका मन पिघलेगा। ''तनिक नाक-भौं सिकोड़कर ना-नु करेगी पर मेरी अम्मा मान जाएगी। ले आइए उस स्त्री को आज रात भर के लिए। हाँ, कल उसे तुरत मोटर से रत्नागिरि रवाना करना होगा।'' उस युवा वकील का सहारा मिलते ही रामू भैया उस जच्चा-बच्चा को बड़ी कठिनाई के साथ उन दो युवा शिष्यों की सहायता से रातोरात ले आए।

घर में युवा वकील की माँ की क्रोध से भरी कहा-सुनी उन्होंने बाहर से ही सुनी। दरवाजा खोलने का साहस उस वकील से नहीं हो रहा था। रामू भैया ने ही जोर-जोर से दरवाजा पीटना शुरू किया। अंत में वकील ने दरवाजा खोला, बाहर की बत्ती जलाई। वह अबला थर-थर काँपती हुई अपने शिशु को छाती से चिपकाकर दूध पिला रही थी। वकील के बाहर आते ही वह हड़बड़ाकर उठने लगी। इतने में वकील की वह धर्मपरायणा गोभक्त माँ फुफकारती हुई बाहर निकली और उस जच्चा स्त्री को देखते ही उसने चीख-चीखकर आसमान सिर पर उठा लिया, ''कहाँ से आ गई यह चुड़ैल। और यह पिल्ला! न जात-पाँत का ठिकाना, न कुल का। उसे भीतर लेकर सारा घर भ्रष्ट करोगे तो मैं अभी घर से बाहर निकलती हूँ। मुझे इस घर का पानी तक नहीं पीना।'' वैसे उनका स्वभाव बड़ा दयालु था। परंतु पोथी का प्रभाव! पोथी ने उनकी दया पर जो चश्मा चढ़ाया, उसीमें से तो देखेगी वह। गोदास स्वामी भी वहीं पर ठहरे हुए थे। रामू भैया उनके सामने हाथ जोड़कर कहने लगे, ''आप माँजी को तनिक समझाइए न!'' माथे पर बल लाते हुए गोदास स्वामी अकड़कर गरज उठे, ''भई, हम ठहरे गोदास। वर्णाश्रम धर्म के कट्टर अभिमानी। तुम लोग सब मटियामेट करना चाहते हो। अछूतों को छूते हो। ऐसी कुलच्छनी कुलटाएँ तुम्हारी प्रेम भाजन। इसने मुसलमानों के हाथ का खाया है और कहते हो

इसे हिंदू कहा जाय! ऐसी पतिता पापिन को इस कुलीन सदाचारी ब्राह्मण परिवार के घर आसरा देने के लिए मैं अनुमति दूँ? वह कोई गायत्री गोमाता थोड़े ही है, जिसके पदरज से यह कुल पवित्र हो जाए।'' वकील प्रायः सभी हिंदू बुद्धिवादियों की तरह कृति से विकलांग था, इच्छा होने के बावजूद अपनी माँ का विरोध करने का साहस उसमें नहीं था।

इतने में यह हंगामा, उस बच्चे का रोना, उस स्त्री का बिलखना सुनकर आस-पड़ोस की बनिया, ब्राह्मण महिलाएँ वहाँ आ गईं।

'भ्रष्टचार! इस धर्मभ्रष्ट वकील को बिरादरी से खारिज करना चाहिए, कल से इसका कुआँ बंद करो।' इस प्रकार हर कोई उसे धिक्कारने लगा। वकील साहब के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं, ''इसकी सहायता के लिए पैसे देता हूँ, पर इस स्त्री को यहाँ से ले जाओ।'' इस तरह वे गिड़गिड़ाने लगे।

अंत में एक चौक के कोने की एक दुकान में तख्त पर एक दुकानदार ने उस स्त्री को रात भर के लिए सोने की अनुमति देने की उदारता दिखाई—रामू भैया ने पहरा दिया। सवेरे रत्नागिरि की मोटर से रामू भैया ने उस स्त्री तथा बच्चे को रत्नागिरि हिंदूसभा में पहुँचा दिया।

रत्नागिरि में पाँव रखते ही उस स्त्री तथा उसके बच्चे के पैरों में पड़ी छुआछूत, जातिबंदी, शुद्धिबंदी की बेड़ियाँ अपने आप तड़ातड़ टूट गईं। 'मुसलमान के हाथ का खाया? बस! भई, इसमें कौन सी बड़ी बात हुई? धर्म का स्थान हृदय है, न कि पेट। जात-पाँत खून में तथा बीज में होती है न कि चावल की पतीली में।' संगठन स्मृति का अधिराज बने हिंदुत्वाभिमानी रत्नागिरि में उसके चारों ओर इकट्ठे हुए हिंदुओं ने इस प्रकार उसे धीरज बँधाया। अखिल हिंदू जलपान गृह में उस समय ब्राह्मण, बनिया, मराठा जो भी लोग थे उन्होंने उसी टेबुल पर जाकर अल्पाहार लिया, जिसपर वह बैठी थी। पतितपावन के सभामंडल में बच्चे को भगवान् के सामने रखा गया। शिष्ट परिवार की आने-जानेवाली महिलाएँ धोती, साबुन, दवा एवं धीरज देते हुए उससे अपनापन जताने लगीं। ब्राह्मण आदि नारियों ने उसे भोजन के समय अपने साथ बैठाया। दो-तीन दिनों में ही चार-पाँच परिवारों ने पालने के लिए उसकी माँग की। अब एक प्रतिष्ठित हिंदू संगठनाभिमानी महिला माँ-बेटा दोनों को पाल रही है।

(इस कहानी की घटनाएँ जो आँखें खुली रखकर देखते हैं, वे बार-बार अनुभव करते ही होंगे। परंतु इस कहानी के आधार पर कहता हूँ, यह प्रश्न करनेवाले कि 'ईश्वर सर्वव्यापी है, क्या वह पशु में नहीं है' अनेक गोभक्त नेता धूत वस्त्र धारण करके गाय की पूजा तो करते हैं परंतु वे किसी अछूत की छाया की भी

छुआछूत मानते हैं। ये लोग अपने हाथों से गाय को गोग्रास खिलाते हैं, शुद्धिकृत ब्राह्मण को भी अपने घर अपने साथ भोजन नहीं कराते। यह तो जो विपद्ग्रस्त अबला को एक मुसलमान भंगी ने आग लगाकर उसके बच्चे को छीनकर ले जाने की धमकी दी, तब उस सद्यः प्रसूता, परित्यक्ता हिंदू नारी को उस शहर के किसी आँगन में भी रखने के लिए कोई तैयार नहीं था, इसलिए रत्नागिरि हिंदूसभा के पास उसे रवाना किया गया—यह दूसरा आधार है। इन वास्तविक अनुभवों के ताने-बाने से बुनी हुई इस कहानी को, कहानी होते हुए भी साधारणतः क्या सत्यकथा ही नहीं मानना चाहिए?)

□

प्रार्थना

''मेरे ताश के पत्ते कहाँ रखे हैं, माँ?''

''वह देखो, उस आले में। अरी, गणेशजी की झाँकी के आले में। क्या तेरा हाथ नहीं पहुँचता? ठहर जा बेटी, मैं निकालकर देती हूँ।'' कहती हुई विमला—फुदक-फुदककर दौड़नेवाली उस बिटिया की माँ उठी और उसने अपनी नन्ही-मुन्नी बिटिया रानी को खेलने के लिए ताश की गड्डी निकालकर दी। उस झाँकी के रंगीन आले में जब ताश की गड्डी निकालने के लिए वह गई, तब विमला ने देखा, वहाँ एक जाला चिपका हुआ है। उसने घृणा से 'छि:-छि:' करते हुए नाक-भौं सिकोड़कर ताश की उस गड्डी को दो-तीन फटकारों के साथ मकड़ी का जाला इतनी जल्दी एवं सहजतापूर्वक तोड़कर निकाल दिया कि अपनी बिटिया की ओर मुड़ते समय उसे उस जाले के टूटने की स्मृति भी नहीं रही।

मकड़ी के जाले की एक-दो लसलसी गेंडुलियाँ ताश की गड्डी से चिपकी हुई देखकर जब छोटी मुन्नी ने कहा, ''देखो माँ, ताश की गड्डी पर कुछ चिपका है।'' तब विमला का ध्यान पुन: उस ओर आकर्षित हुआ। उस गेंडुली को झटकते हुए उसने मुन्नी से कहा, ''जाला है! मकड़ी को देखा है न? उसका घर है यह...''

''तो फिर उसे मसलकर क्यों तोड़ डाला? माँ, अब वह बेचारी कहाँ रहेगी? बेघर होने से वह रो रही होगी!''

''तो क्या? दूसरा घर बनाएगी। यदि उसकी इच्छा हो तो। दिन भर मकड़ी अपना जाला बुनती ही रहती है और कोई-न-कोई आते-जाते उसे झटक देता है। इस झाँकी का यह आला कितना सुंदर है! हमने क्या इसे इसलिए सीमेंट का पलस्तर चढ़ाकर इसकी लिपाई-पुताई की कि कीड़े-मकोड़ों को जाला बनाने में सुविधा हो।''

''माँ, पर ये कीड़े-मकोड़े तो यही सोचते होंगे न?'' उनकी मजेदार बातें सुनकर विमला का सत्रह-अठारह साल का कुशाग्र पुत्र उधर आकर कहने लगा,

''उस दिन मैंने उस मकड़ी को जाला बुनते हुए देखा था। भई, कितनी मगन और कितनी कुशल! कोई मँजा हुआ इंजीनियर भी इतना प्रवीण नहीं हो सकता। उसने प्रथमत: उस जाले को केवल उन्हीं महीन तंतुओं का खिंचाव दिया, जहाँ आवश्यकता थी। प्रथमत: बड़े-बड़े तंतुवृत्त की रचना करके, फिर उनके खड़े लंबे तंतुओं के धागे तेजी के साथ उलझाते हुए, रुककर, चिपकाकर उनके पेट में से निकलती हुई लसलसे धागों की सूत की लच्छी सुलझाते हुए वह आगे बढ़ रही थी कि मैं दंग रह गया। मानो कोई कुशल जुलाहा अपने हथकरघे में सटासट डंडियाँ चलाते हुए ताने-बाने से लच्छियाँ झरझर सुलझाते हुए आगे बढ़ रहा हो। उसके तिल भर के दिमाग में बुनाई का पूरा शास्त्र और चावल के दाने जैसे उसके पेट में आधा-आधा मील लंबी लच्छियाँ समाई हुई देखकर मैंने दाँतों तले अँगुली दबाई। इसीलिए अपनी इस झाँकी के आले में उसे जाला बुनते देखकर भी इस कीड़े को जान से मारना अथवा उस जाले को एक फटकार से निकाल देना मुझसे नहीं हुआ। एक बार मैंने यूँ ही उसके जाले पर जोर से अँगुली दबाई तो बेचारी घबराई हुई इस धागे से उस धागे पर भागती हुई, उसके हिसाब से अपने राज के सुरक्षित हिस्से पर जाकर ही सुस्ताई। फिर यह देखकर कि संकट टल चुका है, वह पुन: अपनी राजधानी के मध्य बिंदु पर आकर खड़ी हो गई। जिस तरह हम वास्तु-शांति करते हुए अपने राजमहल में प्रवेश करते हैं और भगवान् के सामने आभार प्रकट करते हैं कि 'उसकी कितनी कृपा! उसने हमें रहने के लिए घर दिया,' उसी तरह वह मकड़ी भी ईश्वर की प्रार्थना करती हुई उसका आभार प्रकट कर रही होगी।''

''वाह जी वाह! इतना बड़ा घर और सुंदर झाँकी का वह आला क्या इसलिए बना है कि वह कीड़ा अपना जाला बुनकर उसमें सुख से रहे। ईश्वर की, परमेश्वर की भी ये कीड़े-मकोड़े लाख प्रार्थना करें, पर उनकी सुविधा के लिए ईश्वर मनुष्य के घर नहीं देते। दिया-बत्ती की वेला में मैं जो यह दीप जलाती हूँ वह क्या इसलिए कि ये कीड़-मकोड़े देख सकें? उसी तरह ये ऊँची-ऊँची इमारतें, राजमहल जो मनुष्य बनाता है, वह इसलिए नहीं कि ये मकड़ियाँ जाला बुनकर उसमें सुखपूर्वक रहें। यह बात भले ही उन कीड़े-मकोड़ों की समझ से बाहर हो, पर ईश्वर समझता है, बेटे…''

''और भले ही ईश्वर की समझ में आता हो, तथापि हम मनुष्य नहीं जानते कि इस सुविधा के लिए इस विराट् विश्व की रचना नहीं हुई कि हम मानव उसमें ये उत्तुंग इमारतें, राजमहल बनाकर उनमें सुख से रहें। हमारी राय में यह दीपक इसलिए नहीं जलाया गया कि कीड़े देख सकें; परंतु हमारे वेद, बाइबिल, कुरान जैसे धर्मग्रंथों में भी कहा गया है कि मनुष्य देख सके, सुख से जी सके इसलिए ईश्वर ने

इस प्रचंड सूर्य को जलाया है। कृमि-कीटकों की मूर्खतापूर्ण प्रार्थना के लिए मनुष्य की असुविधा यदि ईश्वर दूर नहीं करेगा तो फिर इस अनंत कोटि ब्रह्मांड की सुविधा-असुविधा की ओर गौर न करते हुए 'हम मनुष्यों के घरौंदे की ही रक्षा करें।' इस प्रकार हम मानवों द्वारा की गई प्रार्थना ईश्वर सुनेगा, इसपर विश्वास कैसे किया जा सकता है? फिर प्रार्थना करने से ईश्वर प्रसन्न अवश्य होता है। राम-नाम जपो, अल्लाह-अल्लाह करो, तुरंत ईश्वर सहायतार्थ आएगा ही; इस तरह हमारे पुराण, कुरानादि पोथियों में जो कहा जाता है, वह क्या अंधविश्वास नहीं है?''

''बस! विक्रम, अंट-शंट बकना बंद करो।'' विमला की वृद्ध सास, माँ-बेटे का संवाद मंदिर के पास स्तोत्र पठन करते हुए सुन रही थीं। उन्होंने सोचा, विक्रम कुछ अधिक बक रहा है इसलिए वह उसे डाँटने लगीं, ''चार अक्षर गिट-पिट क्या कर लिया, बच्चे इसी तरह छिछोरापन दिखाने लगते हैं। पोथी-पुराणों को भोंडा मत कहो, विक्रम! भई, कब अक्ल आएगी तुझे।''

उनके संभाषण के चलते उस छोटी मुन्नी ने ताश के पत्तों का तंबू बहुत ही हलके हाथों से खड़ा किया था। इतने कठिन शिल्पकार्य से निपटकर तीसरी मंजिल पर कलशनुमा अंतिम तंबू उभारने में सफलता प्राप्त होते ही हर्षोत्फुल्ल होकर वह तालियाँ बजा-बजाकर नाचने लगी, ''देखो, देखो, मेरा तंबू। माँ, दादी, भैया! यह मेरी गुड़िया की हवेली है। अभी-अभी आप लोग बात कर रहे थे, उस राजमहल से मेरी हवेली मजबूत है। भैया, दूर ही हो जाइए। मेरे ताश के महल पर फूँक मारोगे तो देखो...।''

विक्रम हँस पड़ा, ''अच्छा? हमारे मजबूत राजमहल से भी अधिक तुम्हारा ताश का तंबू पक्का है? फिर एक फूँक से क्यों डरती हो?''

मुन्नी ने बड़ी शान से सिर झटककर व्यंग्य किया, ''बस करो! आपके मजबूत राजमहल फूँक मारते ही नहीं ढहते? कल आप ही ने तो मुझे वह चित्र दिखाया था न! बिहार में एक पूरा नगर जमीन फटने से धड़ाधड़ ढह गया था?'' इतना कहते ही उस सात-आठ वर्षीया बालिका के सुंदर मुखमंडल पर जैसे भावी गृहस्थी की चिंता की छाया फैल गई और उसने करुणा भरे स्वर में दादी से पूछा, ''दादी! मेरा यह तंबू भी आज रात उसी तरह धरती फटने से कहीं ढह तो नहीं जाएगा? कल मेरी गुड़िया इस घर में रहने आएगी।''

''चुप भी कर। शुभ-शुभ बोला कर, मुन्नी! इधर आ जा, मैं स्तोत्र पठन कर रही हूँ। भगवान् के सामने हाथ जोड़कर बैठ। भगवान् की प्रार्थना करते हुए यह स्तोत्र पठन करने से ईश्वर सारे संकट, दुःख दूर करते हैं। तुम्हारा ताश का तंबू नहीं गिरेगा, बेटी, इधर आ, भगवान् से हाथ जोड़कर प्रार्थना करें।''

बड़ी श्रद्धा के साथ वह बालिका अपनी दादी के निकट जा बैठी। नित्य नियमानुसार दादी माँ जब कुछ संस्कृत, कुछ प्राकृत स्तोत्रों का श्रद्धापूर्वक पाठ कर रही थीं तब छोटी मुन्नी मन-ही-मन ईश्वर से विनय कर रही थी, 'हे भगवान्, मेरा ताश का यह तंबू कभी गिरने मत देना।'

दादी माँ अपने नित्य नियमानुसार सारे स्तोत्रों का पाठ कर रही थीं। उस प्रत्येक स्तोत्र की फलश्रुति सत्य है, इसपर उनकी श्रद्धा के कारण उनका मन पूर्णतया निश्चिंत होता था कि ये सारे स्तोत्र अंतर्मन से बोलने से संसार के सारे दुःख, निर्धनता, रोग, दुर्घटनाएँ, अकाल मृत्यु आदि से घबराने की आवश्यकता नहीं। सात चिरंजीवों का वह 'अश्वत्थामा बलिर्व्यासो' श्लोक बोलकर उन्होंने इस श्लोक का भी पाठ किया, 'सप्तैतान् संस्मरेन्नित्य मार्कंडेयं तथाष्टमम्। जीवेत् वर्षशतं साग्रमपमृत्यु विवर्जित:।' 'वाराणस्युत्तरे तीरे सुमंतुर्ना वै द्विज:। तस्य स्मरणमात्रेण निर्धनो धनवान् भवेत्॥' इस श्लोक का भी पाठ किया 'हरि हरं हरिश्चद्रं हनुमंतं हलायुधं। एतेषां स्मरणात् सायं हानिस्तस्य न बाध्यते।' इस प्रकार अनेक श्लोकों के पठन से अकाल मृत्यु, निर्धनता, हानि आदि सारी अलाया-बलाया दूर करने का समाधाान उन्हें प्राप्त हो गया। इस विश्वास के साथ कि केवल 'स्मरणमात्रेण' यह चमत्कार हो सकता है, उन्होंने अपनी नन्ही-मुन्नी पोती से भी उन नामों का स्मरण करवाया, स्तोत्रों का पाठ करवाया। विक्रम भी दादी की चिरौरियों के कारण तथा बतौर एक मजेदार अनुभव के हाथ जोड़कर चुपचाप स्तोत्र सुन रहा था। एक बार उसने बीच में ही अपना मुँह खोला। उसकी दादी ने जब 'सोमनाथं वैजनाथं धन्वंतरिमथाश्विनौ। एतेषां स्मरणात् हानिर्व्याधिस्तस्य न बाध्यते।' इस श्लोक का पाठ किया तब वह युवक खिलखिलाकर हँस पड़ा, ''दादी, सोमनाथ का अपना मंदिर जब उस दुष्ट मोहम्मद ने तोड़ा तब अपने निजी मंदिर तथा मूर्ति की हानि भी जब वह नहीं रोक सका तो अपने 'स्मरणमात्रेण' सारे संसार की रक्षा कैसे करेगा वह?'' परंतु दादी ने तुरंत धमकाया, ''एक बार तुमसे कहा न कि वाहियात बातें मत करो।'' तब उसने पुन: ऊपरी तौर पर समझदारी का चोला पहना, परंतु मन-ही-मन वह हँसता ही रहा।

सारे स्तोत्र समाप्त होने के पश्चात् दादी अम्मा ने भगवान् का भभूत पोता और बहू को भी लगाया। सभी को निर्विघ्न रखने के लिए ईश्वर से प्रार्थना की। मुन्नी ने वह भभूत ताश के अपने तंबू को भी लगाया। अब वह तंबू कतई नहीं गिरेगा, कल उसमें रहने के लिए आनेवाली उसकी गुड़िया अपनी इस हवेली में अपने बाल-बच्चों सहित दूधो नहाएगी, पूतो फलेगी और तब तक सुखपूर्वक रहेगी जब तक वह अपनी दादी अम्मा जितनी बूढ़ी नहीं होती। प्यार भरे इस विश्वास के साथ वह हर्षोत्फुल्ल बालिका निश्चिंत होकर सो गई। विक्रम ने ठिठोली करते हुए

दादी अम्मा से कहा, ''इस भस्म के स्पर्श से मुन्नी का ताश का यह महल राजमहल जैसा मजबूत हो गया न दादी माँ? तनिक अँगुली से हिलाकर देखूँ?''

''जाने भी दो, विक्रम! उस नन्ही सी जान को दिलासा मिल गई न? बस!''

''और दादी माँ, तुम्हारे स्तोत्र पाठ से वृद्ध-बच्चों को विश्वास मिलता है, इससे अधिक उनसे भी क्या लाभ? अब इन स्तोत्रों में जैसे कहा है कि केवल 'स्मरणमात्रेण' हम सब शतायुषी होंगे, धन-धान्य, स्वास्थ्य प्राप्त करेंगे, दुर्घटना-मृत्यु टलेगी, यह भी क्या मन को छोटे बच्चे जैसा समझाना नहीं है?''

''विक्रम, तुम्हें छोटा मुँह बड़ी बात करने की आदत ही है।'' विक्रम की बात जँचने पर भी अपनी सासू माँ का पक्ष लेने का नाटक करते हुए विमला ने अपने युवा बेटे को मुसकराते हुए मीठी झिड़की दी।

''अच्छा, भाई जाने दो।'' कहते हुए विक्रम ने सोने के कमरे का रुख किया। छोटी मुन्नी ताश के अपने महल के निरापद भविष्य से जितनी प्रसन्न होकर सोई थी, उतनी ही श्रद्धा के साथ कि ईश्वर उनकी सच्ची भक्ति भावना से प्रसन्न होगा ही और स्तोत्र लिखित फलश्रुति के सत्य सिद्ध होने से उनका घर-बार, बाल-बच्चे, गृहस्थी सुख से ओतप्रोत होगी, वह धर्मपरायण दादी माँ प्रमुदित मन से निद्राधीन हो गईं।

उस शाम उस परिवार की दादी माँ एवं मुन्नी ने जिस तरह से ईश्वर की मन से प्रार्थना की, उसी तरह संपूर्ण नगर में, घर-घर में, मंदिर-मंदिर में, मसजिदों में, गिरजाघरों में नित्यक्रमानुसार सायं प्रार्थना हो रही थी। मंदिरों में 'सर्वेपिसुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणी पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखमाप्नुयात्।' इस तरह के प्रशांत स्वर में ब्रह्मवृंद अत्युदार शब्दों का उच्चारण कर रहे थे। दिन में पचीस-पचास, सौ बार नमाज पढ़ने का व्रत लिये हुए विभिन्न संप्रदाय के मुसलिम अपनी दरगाहों, मसजिदों में अंतिम नमाज पढ़ रहे थे। गिरजाघरों में ईसाई, अगियारी में उस नगर के इने-गिने पारसी, कुछ ज्यू—प्रायः सभी अपनी भलाई एवं शत्रु के बुरे के लिए भगवान् से प्रार्थना कर रहे थे। कुछ सभी की भलाई की प्रार्थना भी कर रहे थे। पर 'मेरा बुरा करो, मेरी कोई दुर्घटना हो, हमें अकाल मृत्यु दो, मेरा घर-बार ढहने दो, मेरे बाल-बच्चों को कुचल-कुचलकर मार डालो' इस प्रकार उस नगर के घर, मंदिर, मसजिद, गिरजाघरों में हिंदू, मुसलिम, ईसाई, आबालवृद्ध, नारी-पुरुष कोई भी प्रार्थना नहीं कर रहा था। यदि यह धारणा उचित है कि प्रार्थना की नींव पर उभारी गई आशा-आकांक्षाएँ पत्थर-मिट्टी की नींव पर खड़े सीधे-सादे खपरैल के घर समान ही दृढ़ नींव पर आधारित होती हैं, उस संध्या समय तथा रात्रि में प्रति संध्या तथा रात्रि की तरह ही इस नगरी के सहस्राधिक कंठों से एक ही प्रार्थना

निकलती है कि हे ईश्वर, दीर्घायु करो, धन दो, सुख दो, स्वास्थ्य दो, संतति दो, मेरी भलाई करो, अर्थात् वह नगरी उतनी ही चिरंजीव एवं चिरस्थायी होनी चाहिए जितना कि हिमालय। कम-से-कम उसमें रहनेवाले प्रार्थनारत, मन से ईश्वर की आराधना करनेवाले सहस्राधिक नागरिकों को उतना ही संकटमुक्त होना चाहिए जितना पाखंडी, नास्तिक मास्कोवासी, जो बिलकुल ही प्रार्थना नहीं करते। क्योंकि उस नगरी में हर कोई 'मेरा भला कर, हे भगवान्, मेरा घर-बार, मेरे बीवी-बच्चों को सही-सलामत रखो' इसी तरह ही प्रार्थना कर रहा था। कोई भी इस तरह की प्रार्थना या आशा नहीं कर रहा था कि 'हे भगवान्, मेरा, मेरे बाल-बच्चों का, सभी का झट से सर्वनाश कर डालो। आकाश फट पड़ने दो, पाताल फटने दो।'

परंतु हाय, हाय! ठीक वही नहीं हुआ जिसकी सभी प्रार्थना कर रहे थे, ईश्वर ने वह नहीं किया। ईश्वर ने ठीक वही किया जिसकी किसीने भी प्रार्थना नहीं की, किसीने चिंतन भी नहीं किया था।

कड़-कड़-कड़ कड़कड़ाता हुआ आकाश ढहने लगा, तड़ित सौदामिनी के तड़ातड़ चाबुक उड़ाते हुए कोई महारुद्र जैसे महाभूतों की खाल उधेड़ते हुए फुफकार उठा, पाताल फट पड़ा। प्रचंड सुरंगों की पंक्ति-की-पंक्ति भूमि के गर्भ से फटकर असंख्य पहाड़ियाँ पत्थर के समान ऊपर की ओर उठ गईं और फिर भूमि रेजा-रेजा हो गई, सागर की प्रचंड ऊर्मियाँ आकाश में उठीं और बड़ी-बड़ी भँवरों में डूब गईं। नगरी स्थित सारे-के-सारे मंदिर, मसजिद, गिरजाघर, घर-हवेलियाँ धड़ाधड़ ढहते, भहराते हुए भूमि में समा गए। पूरा नगर दहल उठा। धक्कम-धक्का से तमाम घर एक-दूसरे से टकराकर चूर-चूर हो गए। बैठे हुए लोग उठते-उठते, उठनेवाले भागते-भागते, घर में रहनेवाले घर में, बाहर निकलनेवाले बाहर, जिसने जहाँ भी कदम रखे वहाँ धरती फटने से हजारों लोग पाताल में समा गए। गृह निर्माण के बड़े-बड़े प्रचंड पाषाण, वृक्ष, दीवारें ढेर-के-ढेर गिरकर हजारों लोग जिंदा गड़ गए, कुचल गए। एक-दो घंटे के अंदर ही भीषण भूकंप की चपेट में पूरी-की-पूरी क्वेटा नगरी स्वाहा हो गई। न मंदिर की रक्षा भगवान् ने की, न मसजिद की रक्षा अल्लाह ने, न जीसस, न जेहोवा ने। प्रकृति की इच्छा को कोई भी रोक नहीं सका—मनुष्य की प्रार्थना भी।

विमला ने अपने घर की उस झाँकी के आले में बनाए गए जाले को अपनी सुविधा के बीच आते ही मकड़ी की आशा-आकांक्षा, सुविधा-असुविधा की परवाह न करते हुए एक झटके के साथ तोड़कर मसल डाला। उसी तरह सृष्टि के उस आले में मनुष्य रूपी मकड़ियों द्वारा बुने गए क्वेटा नगरी के जाले को प्रकृति ने अपनी सुविधा के आड़े आते ही क्रोध रूपी झाड़ू की एक फटकार के साथ झटककर मसल

डाला, उसका नामोनिशान तक मिटा दिया। भूख से बिलखते दूध पीते बच्चों के होंठों पर आया दूध का घूँट गले के नीचे भी नहीं उतरा कि जिस सृष्टि ने उनके सिर पत्थरों से कुचल डाले, वहाँ वह सृष्टि अथवा सृष्टि का नियंता पोथी-पुराणों के लंबे-लंबे संस्कृत स्तोत्र अथवा कुरानांतर्गत अरबी आयत थोड़े ही सुननेवाला था? भूगर्भ में जो अत्युग्र विस्फोटकों के सागर समान विशाल हौज सदियों से उबलते-उबलते अब विस्फोट बिंदु तक पहुँच चुके थे, यह प्रचंड सृष्टि शक्ति 'सप्तैते चिरंजीविनां' अथवा सोरटी सोमनाथ के 'स्मरणमात्रेण' अथवा नमाजोपरांत की गई किसी मुल्ला-मौलवी की दुआओं से थोड़े ही पसीजनेवाली थी? विश्व-नियम के पूर्वनियोजित उपक्रम में थोड़े ही परिवर्तन करनेवाली थी?

प्रार्थना! उस प्यारी सी नन्ही-मुन्नी की प्रार्थना एक तरह से सफल हो गई। 'हे भगवान्, मेरा ताश का महल उतना ही मजबूत बना दो जितनी ईंट-पत्थरों की मजबूत हवेली है।' इस तरह अंतर्मन से प्रार्थना करती हुई वह अल्हड़ बाला निद्राधीन हो गई। ऐसा प्रतीत होता है, उस मासूम की प्रार्थना भगवान् ने सुन ली। उसका वह ताश का तंबू सचमुच ही उतना ही मजबूत सिद्ध हुआ जितने क्वेटा नगरी में बनाए हुए महल! जैसे वे भूकंप की एक साधारण सी फूँक से, एक झटके में ढह गए, वैसे ही वह ताश का तंबू।

मुन्नी को सीने से लगाए दादी माँ को सोए अभी दो घंटे भी नहीं हुए, इतने में बाहर दूर-दूर कर्णकटु भयानक आवाजों से जैसे हजारों तोपें एक साथ दागी गई हों, सारा वायुमंडल दनदना उठा। हजारों लोगों की चीखें। गर्जन-तर्जन के आर्त स्वर एक साथ गूँज उठे। अध्ययन कक्ष से विक्रम तपाक से उठा। क्वेटा नगरी में यह कट्टर धर्मांध मुसलमानों की प्रमुख बस्ती थी जिसमें हिंदू थे मुट्ठी भर। पड़ोसी बलूची टोलियाँ हमेशा हिंदुओं पर डाकेजनी करती हुई उनकी धुनाई करतीं। जब से विक्रम का परिवार नौकरी के निमित्त क्वेटा में आया था, तब से वह 'हिंदूरक्षक दल' का स्वयंसेवक हो गया था। उसने सोचा हिंदुओं पर डाका डाला गया है। वह झट से खंजर और लाठी लेकर दरवाजा खोलकर बाहर निकला ही था कि पाँवों तले संपूर्ण धरती भूकंप से थर्रा गई और वह लड़खड़ाते हुए सीढ़ी पर लुढ़क गया, जैसे ऊँचे नारियल के पेड़ पर चढ़ा हुआ मनुष्य तूफान में उस पेड़ के हिलते ही डगमगाने लग जाए। उसके पीछे ही कड़-कड़-कड़ कर्कश ध्वनि के साथ उसका घर गिर गया। घर धरती में इस तरह धँस गया था, जैसे आदमकद ऊँचाई के गड्ढे में बड़ा सा पत्थर गिर जाय। दादी माँ, जो 'अपमृत्यु' स्मरणमात्रेण टालनेवाले मार्कंडेय स्तोत्र का स्मरण करते-करते निद्राधीन हुई थीं और भभूत लगाकर जिसे सीने से लगाया था, उस मुन्नी का भी मकान के प्रचंड प्रस्तरों में दबकर कचूमर निकल गया। परंतु

विमला, जो उसी गड्ढे में थोड़ी दूरी पर धँसी हुई थी, उसने तो कोई स्तोत्र पठन नहीं किया था, उसका कचूमर नहीं निकला। उसके तीनों ओर बड़ी-बड़ी शिलाएँ गिरी थीं। उस आघात से वह सुन्न हो गई थी। छत की कुछ लकड़ियाँ उसकी छाती पर गिरीं और वह बेहोश हो गई; लेकिन मरी नहीं।

जब उसे नीमहोश आया तब उसकी पथराई आँखों को ऊपर से गड्ढे में उतरती एक सूर्य किरण दिखाई दी। रात में घटित उस भीषण दुर्घटना का धुँधला-सा अहसास हुआ और 'मुन्नी! मेरी मुन्नी! मेरा विक्रम! मेरे बच्चे!' इस तरह नीमहोश में वह चीखी।

"ठहरो! यहाँ कोई घायल मनुष्य है।" गड्ढे में से आई हुई उसकी चीख-पुकार सुनकर एक सैनिक ऊपर से चिल्लाया। कल रात भीषण भूकंप में जो धरती में गड़ गए थे, उनकी यथासंभव सहायता के लिए सरकारी आज्ञा के अनुसार चार-पाँच सैनिकों का दल उस इलाके में घूम रहा था। उन्होंने तुरंत वह ढेर खोदकर देखा, तो जैसे किसी गुफा में पड़े रत्न का दर्शन हो, उसी तरह तीन ऊँचे-ऊँचे पत्थरों के बीच नीमबेहोशी की अवस्था में उस महिला का मुख दिखाई दिया। लकड़ियों के ढेर में से सैनिकों ने घायल विमला को बाहर निकाला। उन्हीं पत्थरों के नीचे कुचली हुई उसके अपनों की लाशें बाहर निकालीं और इस खबर मात्र से विमला पुनः बेहोश हो गई।

उनकी यह कैसी दुर्गति जो यह मानते हैं कि मार्कंडेय के 'स्मरणमात्र' से सृष्टि शक्ति अपना प्रचंड व्यापार जलक (कौड़ी) बदल लेती है और अकाल मृत्यु, दुर्घटनाएँ टल जाती हैं। सबसे आश्चर्य यह है कि मृतकों में हजारों ऐसे थे जो अत्यंत सच्चरित्र थे, आजीवन राम-रहीम की पूजा-अर्चना, नमाज, प्रार्थना करते आए थे और जो बच गए थे उनमें अनेक लोग अत्यंत दुश्चरित्र, लुच्चे, लुटेरे, शराबी, कबाबी, पापी थे।

रुग्णालय में भूकंप पीड़ित घायलों की अस्थायी रूप से शुश्रूषा होने के पश्चात् उनकी इच्छानुसार उन्हें अपने-अपने गाँव भेजना शुरू हो गया। बेचारी विमला! वह बच गई, ठीक भी हुआ, पर कहाँ जाएगी? युवावस्था में ही पति की मृत्यु के पश्चात् विक्रम और मुन्नी ये दो बच्चे ही उसका जीवन तथा वह श्रद्धामयी, ममतामयी सासू माँ ही जीवन का आधार थीं। जो उससे प्रश्न करता, 'बहनजी, कहाँ जाएँगी आप?' उन्हें वह रो-रोकर उत्तर देती, 'जहाँ ये तीनों गए वहाँ—यमपुरी में।' अंत में उसका एक दूर का संबंधी नागपुर में था, वहीं जाने का उसने निश्चय किया। सरकारी अधिकारियों ने हजारों भूकंप पीड़ितों को जितनी शीघ्रतापूर्वक हो सके, उतनी शीघ्रता से संकट से उबारने के लिए निःशुल्क रेल सेवा उपलब्ध कराई थी।

उनमें से कराची जानेवाली एक गाड़ी में सैकड़ों अन्य स्त्रियों के साथ विमला को भी भेजा गया। कराची के आगे सभी अपना प्रबंध स्वयं करें कि कहाँ जाना है—यह सूचित किए जाने के कारण जैसे-जैसे कराची निकट आने लगा, वैसे-वैसे विमला का हृदय जोर-जोर से धड़कने लगा कि आगे क्या करे?

रात के समय कराची स्टेशन में गाड़ी घुसते ही महिलाओं के डिब्बे के सामने विभिन्न दलों के पाँच-दस स्वयंसेवक नम्रतापूर्वक खड़े रहे। उनमें से मुसलमान स्वयंसेवकों का एक दल हिंदू विपद्ग्रस्तों को बलपूर्वक अपने शिविर में ले जाने का प्रयास कर रहा था। हनुमान दल के हिंदू स्वयंसेवक उन्हें उनके चंगुल से बचाने का प्रयास कर रहे थे। परंतु विमला और अन्य दो हिंदू स्त्रियाँ परिदाद शाह के चंगुल में फँस ही गईं। परिदाद पठान ने विनयपूर्वक कहा, ''मेरी बहनो, यह मनुष्य मात्र पर टूटी हुई सृष्टि-क्षोभ की विपदा है। भला इसमें कौन हिंदू और कौन मुसलमान! ऐसे नाजुक समय में हमारी एकता की आवश्यकता है।''

विमला को परिदाद की दिखावटी सहानुभूति पर संदेह हुआ। उसने मन-ही-मन कहा—अवश्य दाल में कुछ काला है। परंतु घबरा जाने से डूबना निश्चित है। निर्भयता के साथ प्रसंगावधान रखना चाहिए, तभी कोई उपाय मिलेगा।

विमला ने एक-दो बार डपटकर पूछा, कहाँ ले जाया जा रहा है। परंतु परिदाद ने ध्यान नहीं दिया। आखिर विमला आवेश में आ गई। जोर-जोर से चिल्लाती हुई वह नीचे बैठ गई। 'हिंदू हनुमान' दल के कुछ स्वयंसेवक स्टेशन पर घूम रहे थे। एक युवा हिंदू स्वयंसेवक उस महिला को ठीक तरह से निरखकर आपे से बाहर हो गया। वह परिदाद पर आक्रमण करते हुए इन स्त्रियों को चुपचाप हिंदुओं के हवाले करने की धौंस जमाने लगा। परिदाद ने छुरा निकालते हुए कहा, ''अरे हट जाओ, यह मेरी ब्याहता बीवी है।'' उस हिंदू युवक ने भी 'अरे हरामी! यह मेरी माँ है' कहते हुए छुरा निकाला। पुलिस आ गई।

प्रकाश होते ही विमला ने उस हिंदू युवक की ओर ध्यान से देखा और वह एकदम उसकी ओर भागी, ''विक्रम! यह तो मेरा विक्रम है। मेरा प्रिय पुत्र।'' इस तरह कहते हुए वह उसके गले लग गई। उसकी हिचकियाँ बँध गई थीं।

जी हाँ! वह विक्रम ही था। भूकंप के झटके के साथ ही वह घर से बाहर सीढ़ी पर आ गया और इसीलिए घर के नीचे दबने से बच गया। वहाँ से छूटकर भटकते-भटकते हिंदू रक्षक दल में प्रवेश करके वह क्वेटा भूकंप से इधर-उधर भटकते अनाथ हिंदुओं की यथाशक्ति सहायता कर रहा था।

पुलिस उन सभी को थाने ले गई। देखा तो परिदाद एक फरार डाकू है। तुरंत पुराना वॉरंट उसपर लागू किया गया। क्वेटा में उसने दो हिंदू साहूकारों की जान

लेकर उनकी संपत्ति लूटी थी। उसके पास वे सारे नोट, मोती, अलंकार बरामद हुए। उसके साथियों के बयान से सिद्ध हो गया कि पिछले दो वर्षों से यह टोली हिंदू स्त्री-बच्चों का अपहरण करके उन्हें सरहद के उस पार पठान टोलियों को बेच रही थी। क्वेटा भूकंप तो उनके लिए एक स्वर्णावसर ही था। इन हिंदू स्त्रियों को भी परिदाद इसी तरह अगुवा करने वाला था। विमला तथा अन्य हिंदू स्त्रियों को विक्रम के हवाले किया गया। विक्रम आर्य समाज के आश्रम में आ गया। उसका एक मित्र था। उसे वृत्तपत्र दिखाते हुए कहा, ''देखो! महात्मा गांधी ने भूकंप के संकट से मनुष्य जाति को मुक्ति दिलानेवाले एक अद्‌भुत उपाय की खोज की है।'' विक्रम ने लापरवाही से पूछा, ''भई, कौन सा उपाय है?'' मित्र ने कहा, ''प्रार्थना। ईश्वर की प्रार्थना करो। भूकंप से मुक्ति मिलेगी।''

''बस? गांधीजी से पहले ही मेरी दादी ने यह उपाय बताया था। परंतु भई, हमने देखा, यह प्रार्थना भूकंप भगाने की अपेक्षा उसे तत्काल बुलाने का रामबाण उपाय सिद्ध हुई। इस मामले में मेरी दादी महात्मा गांधी से अधिक युक्तिसंगत बात करतीं। यद्यपि दादी और गांधीजी एकमत थे कि प्रार्थना से भूकंप का संकट टाला जा सकता है, तथापि अस्पृश्यता का पालन करने से भूकंप होता है। मेरी दादी इतनी तो बहकी-बहकी बातें नहीं करतीं कि अजी यह क्वेटा नगरी, जिसमें हजारों मुसलमानों की बस्ती ही अधिक है, जो अस्पृश्यता का पालन नहीं करते, घड़ी भर में ही भूकंप से मटियामेट हो गई। उसकी यह दुर्दशा देखकर सनातनी लोग यह दावा क्यों न करें कि क्वेटा को भूकंप का भयंकर दंड भुगतना पड़ा, क्योंकि उसमें अस्पृश्यता का पालन नहीं किया जाता था।''

''परंतु तुम भगवान् का इस दया के लिए धन्यवाद तो करो जो उसने तुम्हें बचाया। भई, तुम कैसे बच गए?''

''मैं कभी प्रार्थना नहीं करता था, इसलिए इस तरह का विधान मैं क्यों करूँ? अरे, अंगूर के पके हुए फलों का गुच्छा बट्टे के नीचे पीसते हैं, उसी तरह दूध पीते हजारों कोमल शिशुओं को भूकंप के बट्टे के नीचे जिसने रौंद डाला, वह भगवान् है या शैतान? दुष्ट है या दयावान? वास्तविक बात यह है कि मनुष्य की दुष्टता तथा दयाशीलता के मापदंड से ईश्वर को नापना ही मूर्खता है। प्रकृति की प्रचंड उथल-पुथल में उस समय एक गणित के अनुसार भूकंप आया। इसलिए नहीं आया कि मुझसे या मेरी दादी से कोई विद्वेष भावना रखता था। उस भूचाल में जिस तरह लाखों धूलिकण तहस-नहस होकर उड़ गए, उसी तरह मुझ जैसा एक कण भूमि में न जाकर संयोग की हवा के झोंके से उड़कर यहाँ आ गिरा; न कि मुझपर दया करने की मुख्य तथा अग्रगामी बुद्धि से किसीने मेरी रक्षा की; इसलिए। प्रार्थना!

जो गांधीजी प्रार्थना एवं भूख हड़ताल से गुरुवायुरपुर का मंदिर खोलने के लिए उस तुच्छ जामोरिन का हृदय परिवर्तन नहीं कर सके, वही गांधीजी, प्रार्थना द्वारा भूकंप को रोका जा सकता है, इस तरह की ऊटपटाँग बातें करते हैं और तुम लोग सुनते हो। जाओ तुम सब लोग वर्धा और करो प्रार्थना कि मेरी यह घड़ी बंद हो जाए। कहो कि आप अपनी प्रार्थना से मेरी इस छोटी सी हाथघड़ी के आलपिन जितने लंबक की कंपन भी नहीं रोक पाओगे। और आपकी प्रार्थना से भूकंप के प्रस्फोटक की पर्वत श्रेणियाँ उठाकर फेंकनेवाले आंदोलनों का विरोध होगा, आपका यह कथन पागलपन नहीं तो और क्या है? प्रार्थना आशा है, न कि प्रार्थना पूर्ति की ठोस प्रतिभूति।''

□

आवश्यकता है काले को गोरा बनानेवाले वैज्ञानिक की

श्री रमाकांत, जिन्होंने बरसों यूरोप में रहकर मोतियों के व्यापार में धनी-मानी बनकर प्रतिष्ठा प्राप्त की थी, अपने लखपति मित्र घनश्याम के साथ, जो यूरोप-अमेरिका में थोड़े दिन यात्रा करके देश-विदेश घूमने का अपना शौक पूरा कर रहे थे, पेरिस नगरी के अत्यंत रमणीय 'शांझेलीझे' नामक राजमार्ग से सौंदर्य का आनंद उठाते हुए स्थल-माहात्म्य को बखानते जा रहे थे। मार्ग में 'प्लेस दी ला कंकार्ड' अर्थात् 'एकता उद्यान' जैसे पेरिस स्थित प्रख्यात स्थल पर आकर ये दोनों भारतीय सज्जन एकांत में पड़े एक कोच पर बैठकर विश्राम करने लगे। रमाकांत ने कहा, ''सुंदरता तथा शोभा में पेरिस नगरी विश्व की सारी नगरियों की महारानी है महारानी! और इस महारानी के राजप्रासाद स्थित यह 'प्लेस दी ला कंकार्ड—'एकता उद्यान' एक पवित्र मंदिर है। पूरी तरह से तहस-नहस, छिन्न-विच्छिन्न हो गए फ्रांस को विख्यात फ्रेंच राज्यक्रांति के साँचे में ढालकर फ्रेंच के लोगों ने अपनी मातृभूमि की जिस अखंड मूर्ति का निर्माण किया, उसीका यह चिरस्मारक है—'एकता उद्यान।' देखो, देखो ये सुंदर पुतले, ये मूर्तियाँ। फ्रांस के विभिन्न राज्यों की प्रतिनिधि प्रतिमाएँ, फ्रांस के उपांग, ये सारे उस राष्ट्रीय यज्ञाग्नि में अपने-अपने जीवनों की आहुति देकर एकदेह, एकजीव, एकप्राण हो गए; और वह देह है, फ्रेंच भूमि। वही एकजीव है फ्रांसीसी राष्ट्र और उस राष्ट्रीय एकात्मता का मूर्तिमान प्रतीक ही यह 'एकता उद्यान' है। इस 'प्लेस दी ला कंकार्ड' से ही उठे जिस महामंत्र ने भविष्य में त्रिखंड को झकझोरा था, वह महामंत्र इसी धरती पर उद्घोषित हुआ—स्वतंत्रता, समता और विश्वबंधुता।''

''झकझोरा होगा सारा त्रिखंड उस मंत्र ने,'' रमाकांत के आवेश का उपहास करते हुए घनश्याम ने कहा, ''भई, रावण ने भी इसी तरह कैलाश पर्वत को झंझोड़ा

था। इससे यह थोड़े सिद्ध होता है कि रावण राक्षस नहीं था? भूकंप भी अनेक द्वीपों को झकझोकर लाखों ढपोरशंखी लोगों को पाताल में जीवित गाड़ देता है, क्या यह उत्पात नहीं है? उसी तरह है इन ढोंगी, दंभी, गोरे लोगों का 'समता और स्वतंत्रता' का महामंत्र! अजी, राष्ट्रीय अथवा आर्थिक समता तथा बंधुता तो छोड़िए, जिस समता के लिए उनकी जेब की एक दमड़ी भी खर्च नहीं होती, उसी वर्णविषयक समता का पालन ये गोरे लोग कहाँ करते हैं? जहाँ भी जाओ वहाँ हम भारतीय लोगों का उपहास, खिल्ली उड़ाना और हमें कुत्ते जैसा हड़-हड़, करना! क्यों? इन लोगों से विद्या, धन, कर्तव्य में हम व्यक्तिशः कुछ कम हैं इसलिए नहीं, अपितु इनका रंग गोरा और हमारा काला है, इसलिए! ब्रिटेन में मुझे छोड़ो, परंतु हमारे ईश्वरतुल्य पूज्य विवेकानंद, तिलक, लाजपतराय, गोखले जैसे महान् पुरुषों के भी रास्ते से गुजरते समय फिरंगियों के गुंडे, वाहियात बच्चे भी उनको 'ब्लैकी'-'ब्लैकी' करते हुए, उन्हें चिढ़ाते हुए पीछे पड़ते हैं। विश्वविद्यालयों में काले लोगों को प्रवेश नहीं, छात्रावास में प्रवेश नहीं, क्रीड़ा क्षेत्र में काले लोगों के साथ खेलना अपमानजनक। जहाँ भी जाओ, काला होने के नाते उनमें से अत्यंत पाजी गोरा भी हमें हेकड़ी जताएगा, हमारा मखौल उड़ाएगा, हमें नहीं छूएगा। परंतु सोचो, आज ब्रिटेन और हमारे संबंध स्वामी-सेवक जैसे होने के कारण उनके इस वर्णद्वेष को इस तरह प्रखर विषैली धारा पिलाई जाती होगी। परंतु जिनसे हमारा लेन-देन का अथवा जित-जेते का अर्थार्थी कोई संबंध नहीं, केवल मानवता का ही नाता है, उस अमेरिका, जर्मनी, इतना ही नहीं फ्रांस में भी जहाँ आपके इस समता के महामंत्र का उद्घोष होता है, केवल कृष्णवर्णीय होने के नाते हम भारतीय लोगों का पग-पग पर अपमान होता है। इसे देखकर गोरे लोगों के लिए मेरे कलेजे में आग लगती है। कल ही देख लिया न, सार्वजनिक दुकान की साफ फलक लगी हुई उस चाय की दुकान में मुझे, जो विद्या में उनसे श्रेष्ठ है तथा धन-दौलत इतनी कि उनके जैसे दस नौकर जिसके घर में काम कर रहे हैं; और मेरे विद्वान् देशबंधु को गोरे लोगों ने किस तरह आने से रोका और दो कौड़ी की वे बाजारू, फ्रेंच लौंडियाँ कैसी दाँत निकालने लगीं! कैसा है यह अमानुषिक वर्णद्वेष!''

''अमानुषिक नहीं! असमर्थनीय कहो, असहनीय कहा जा सकता है किंतु अमानुषिक नहीं।'' घनश्याम को रोककर तथा उसे शांत करते हुए रमाकांत ने कहा, ''यूरोपियन लोग काले रंग से घृणा करते हैं, जिसके लिए अभी आपने वर्णद्वेष शब्द की योजना की। उसमें कम-से-कम वर्ण शब्द से हमारा प्राचीन ऋणानुबंध है। हमारी वर्ण-व्यवस्था को गोरे-काले रंग की रुचि-अरुचि का दिठौना नहीं लगाया गया था। जो गोरा वह द्विज, उच्च; जो काला, वह शूद्र। सत्व का रंग श्वेत, तम का

कृष्ण। परंतु गोरे वर्ण का पता ब्राह्मण बस्ती में और काले रंग का शूद्रों की बस्ती में, इस तरह लिख लेने पर भी प्रतिलोम, अनुलोम तथा गांधर्व विवाह के मंडप से तथा लताकुंजों में से इन पत्तों को सतत फेंटा जाता था। करते-करते, और गरमियों की तपिश सहते-सहते उनका काला-गोरा जैसा वर्णभेद गायब हो गया। ब्राह्मणों में कृष्ण वर्ण एवं शूद्रों में श्वेत वर्ण घुल-मिल गया। शेष जो बचा वह वर्णभेद नहीं था, वस्तुत: वह वर्ण विद्वेष, जातिद्वेष था। अत: हमारे यहाँ गोरे-काले रंगों के कलह की तीव्रता अब उतनी नहीं रही। तथापि हम भी क्या गोरे रंग से अधिक काले रंग को हीन, तुच्छ नहीं समझते ? काला रंग हम श्याम वर्णियों को क्या प्रिय होता है ? इतना ही नहीं, श्याम वर्ण में भी कम-अधिक श्यामलता के अनुसार हम भी स्याह काले वर्ण से घृणा ही करते हैं। जिसके संबंध में हमें घृणा व्यक्त करनी है, उसे हम 'कलमुँहा' कहते हैं। मलिन हो तो गँदला कहते हैं। बहू को 'राम! राम! कैसी काली-कलूटी मत्थे मढ़ दी है हमारे' कहकर चोंच मारनेवाली नक्कू सास हमारे यहाँ भी तो है ही। आलोक, उज्ज्वलता तथा सौम्य चमक-दमक मनुष्य के नेत्रगत ज्ञानतंतुओं को आह्लाददायक हो, इसी तरह उनका स्वाभाविक गठन होने के कारण किसी भी मनुष्य को काला रंग उद्वेगजनक प्रतीत होता है। मन में किसी तरह की भी विशेष जातीय अथवा राष्ट्रीय उद्धत वृत्ति अथवा विरोध न होते हुए भी श्याम वर्णियों को उलटे तवे जैसा काला-कलूटा हब्शी देखते ही जिस तरह एक स्वाभाविक नकारात्मक प्रवृत्ति उत्पन्न होती है, कि इन हब्शियों से हम जितने उज्ज्वल हैं, उतने ही इतावली अथवा दुग्ध-धवल गोरे-चिट्टे रूसी आदि लोगों के लिए हमारा श्याम वर्ण आँख की किरकिरी बनना स्वाभाविक है, इसपर हमें गौर करना चाहिए। शारीरिक आकर्षण की दृष्टि से कृष्ण वर्ण हमारी थोड़ी सी त्रुटि ही है। अब गोरे लोगों ने सहजतापूर्वक उसे त्रुटि समझा तो हमें इतना क्रोधित नहीं होना चाहिए। इस तरह यदि वे उपहास करें तो वह उनकी सभ्यता को कलंक लगाता है, न कि हमारी—यह जानकर यथासंभव उसकी उपेक्षा करें।''

''परंतु जब कृष्ण वर्ण को देखते ही गोरे लोगों का उद्वेग, जिसे तुम स्वाभाविक समझते हो, सहजता की मर्यादा लाँघकर शरारती उपद्रव का रूप धारण करता है, तब ? उनका वर्णद्वेष, जातिद्वेष एवं राष्ट्रद्वेष का ही दुष्ट हथियार होना चाहता है, तब ? तब भी हमें क्रोधित नहीं होना चाहिए ? अजी, इंग्लैंड में एक बार भरी सभा में एक मिशनरी महाशय गंभीरतापूर्वक कहने लगे, 'एशिया, अफ्रीका, अमेरिका स्थित काले लोगों पर यूरोपीय लोगों का अधिकार जमाना उचित है। यह ईश्वरीय संकेत ही होना चाहिए और वही संकेत देने के लिए ईश्वर ने हमारा वर्ण गोरा किया और उनका काला। क्योंकि किसी भी जाति के साहित्य में अथवा समाज में शुचिता,

पवित्रता, शुद्धता, स्वास्थ्य, बल तथा प्रभुत्व का रंग श्वेत, गौर और स्वच्छ ही निर्दिष्ट किया जाता है तथा काला रंग हीनता, क्रूरता एवं गंदगी का प्रतीक समझा जाता है।' उनकी इस बकबक का अंत:स्थ दुष्ट मंतव्य राष्ट्रविद्वेष के सिवा अन्य कुछ भी नहीं, यह भाँपकर मुझे बड़ा क्रोध आया और प्रत्युत्तर का समय आते ही मैंने तपाक से खड़े होकर उस ढपोरशंखी, ढोंगी मिशनरी को आड़े हाथों ले लिया, 'ईश्वर, ईश्वर के दूत, देवताओं का वर्ण गौर, शुभ्र, निर्मल ही वर्णित होने के कारण जो-जो गोरा या श्वेत है, वह देवता या देवदूत होना चाहिए, आपका यह तर्क हमें सौ प्रतिशत ठीक लगा। अब हाथी प्राय: काला होता है और हजारों सूअर सफेद होते हैं, इसलिए हमें यह मानना होगा कि सूअर ही हाथी से अधिक बलवान तथा शुभ है। शरीर पर कोढ़ फूटने के बाद कृष्णवर्णीय व्यक्ति भी इतना गोरा-चिट्टा हो जाता है कि दूर से देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि कोई गोरा मिशनरी ही आ रहा है। तब तो कोढ़ी को हमें देवदूत समान सम्मान देना चाहिए। व्याघ्र-सिंहों से जंगल के खरगोश एकदम हिमधवल होते हैं। अर्थात् आगे चलकर राज्य का अधिशासन व्याघ्र-सिंहों को पदच्युत करके सारे खरगोशों को ही अर्पित करना होगा, शेर-सिंहों को खरगोशों से भयभीत होकर रहना होगा। ग्रीक सेना के उस सिकंदरी सेनापति को भारतीय चंद्रगुप्त ने रणभूमि में जब धूल चटाई, तब उसके यूनानी अधिपति सेल्युकस ने चंद्रगुप्त के चरणों पर न केवल जयश्री, धनश्री बल्कि अपनी राजकुमारी को भी करभार के रूप में अर्पित किया। अत: वे सारे लक्षाधिक पराभूत गोरे यूनानी सैनिक एवं यूनानी सेनापति सेल्युकस उन श्यामल भारतीय सैनिकों से, विजयी चंद्रगुप्त से सैकड़ों गुना अधिक काले-कलूटे होने चाहिए—इस तरह एक सर्वथा नया संशोधन इतिहास में करना होगा। हम भारतीयों की श्वेतवर्णीय जातियों से तुम जितने अधिक गोरे हो, उतने ही रूसी लोग तुम्हारे ताम्रमुख से अधिक गोरे हैं, वे तो बिलकुल वैदिक 'हंसवर्णीय' हैं। अर्थात् बिरतानिया पर रूसी लोगों का अधिकार हो, यह तुम्हारे सूत्रों के अनुसार ईश्वर की इच्छा होनी चाहिए। तो अब कहो, इंग्लैंड का शाही राजमुकुट रूसी लोगों के हवाले कब करें?' मेरे इन तर्कों की झड़ी के साथ वह ऐसा घुल गया जैसे पानी में फेंका माटी का ढेला और मेरे प्रत्येक वाक्य के साथ उन सैकड़ों श्वेतवर्णीय स्त्री-पुरुषों की तालियों की गड़गड़ाहट गूँज उठी।'' घनश्याम ने कहा।

''और क्या! साँवले वर्ण के लिए कोई मर्यादा लाँघकर अपनी दुष्ट बुद्धि से उसका अपमान करने लगे तो उसके ऐसे ही दाँत खट्टे करने चाहिए कि उसे छठी का दूध याद आ जाए।'' रमाकांत ने समर्थन किया।

घनश्याम आगे बोले, ''अजी, इन गोरे लोगों के बड़े-बड़े विद्वान् एवं दार्शनिक

सूरमा इसी तरह ठोस सिद्धांत प्रस्तुत करते हैं कि श्वेतवर्णीय जातियाँ ही स्वभावत: अधिकार की पात्र हैं और कृष्णवर्णीय लोग स्वभावत: ही जीवनपर्यंत कलह में निबाह करनेवाले हैं, क्या यह आश्चर्यजनक नहीं है?''

रमाकांत ने समाधान किया, ''भला इसमें आश्चर्य कैसा? बुद्धिमान लोग भी क्या लुच्चे-लफंगे नहीं होते? अजी, गोरे मूर्ख मिशनरियों की बात छोड़िए, अरस्तू जैसा दार्शनिकों का मुकुटमणि व्यक्ति भी एक बार इसी तरह की अनर्गल प्रलाप कर चुका है कि ईश्वर ने पूरे विश्व पर प्रभुत्व जमाने के लिए यूनान का निर्माण किया है, क्योंकि विश्व के मध्य में रहकर ही विश्व पर राजपाट किया जा सकता है; इसलिए यूनान देश विश्व के मध्य में—एशिया, यूरोप तथा अफ्रीका के संगम पर निर्मित किया गया है। अर्थात् यह स्पष्ट है कि वही विश्वराज्य का ईश्वरनिर्मित केंद्र है। अरस्तू के ज्ञात विश्व पर यूनान का अधिकार होने के कारण उसके मन में यह सिद्धांत उपजा। आगे चलकर वही यूनान रोम का पादपीठ बन गया और आज स्थिति ऐसी है कि विश्व के नक्शे में सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा देखने से ही ज्ञात होता है कि आज उसका अस्तित्व है या नहीं। पिछले शतक का ही उदाहरण देखिए। इस सिद्धांत ने सर्वत्र धूम मचाई थी कि यूरोप अर्थात् सारे पश्चिमी राष्ट्र अधिकार जमाने के लिए स्वभावत: ही सक्षम हैं और सारे पूर्वी राष्ट्र दास होने के लिए सक्षम। इतने में जापान ने रूस की कमर तोड़ दी। तब जापान को एक अपवाद माना गया; और इंग्लैंड तथा जापान ये दोनों प्रबल राष्ट्र इस गोलार्ध की उत्तरीय शीत कक्षा में होने से और कुछ पोंगे पंडितों के कारण यह नया सिद्धांत निकला कि उत्तरीय शीत कक्षा स्थित देश ही दक्षिणी कक्षीय देशों के विजेता हैं। परंतु रोम ने तो दक्षिणी कक्षा में होकर भी इस उत्तरीय शीतप्रधान ब्रिटेन को सदियों से अपने चरणों की दासी बना रखा था। कृष्णवर्णीय रोम साम्राज्य में ब्रिटेन के हिमधवल वर्ण का अस्तित्व इसलिए उपयुक्त सिद्ध हो गया था कि रोमन सैनिकों एवं सरदारों के लिए ब्रिटेन की हिम कन्याओं की प्रिय दासियों के नाते पूर्ति की जाती थी। प्रकृति एवं ईश्वर के नाम से अपनी लूटमार एवं अहंकार का समर्थन करने का दोष मनुष्य मात्र में उत्पन्न हुआ है। ठगों के अत्याचारों की भी एक देवी थी तथा शैतान भी सुविधानुसार अपने मन की पुष्टि के लिए बाइबिल का आधार ले लेते हैं।''

''तो फिर आपने अभी थोड़ी देर पहले कैसे कहा कि काला रंग एक स्वाभाविक त्रुटि है?'' घनश्याम ने पूछा।

रमाकांत ने समाधान किया, ''हम लोगों में यह त्रुटि कहने से क्या सिद्ध होता है कि उन गोरे लोगों में कुछ भी दोष नहीं और वे हमसे सर्वतोपरि श्रेष्ठ हैं तथा विश्व के अंत तक सर्वश्रेष्ठ ही रहेंगे? शारीरिक वर्ण का संबंध मुख्यत: व्यक्ति से,

राष्ट्रीय शक्ति से, क्षमता से अथवा कर्तृत्व से सुतराम भी नहीं होता। आज हमारा श्यामवर्णीय भारतीय राष्ट्र यदि श्वेतवर्णीय यूरोपियनों से राष्ट्रशक्ति में उन्नीस सिद्ध हो रहा हो, अवनत हो तो वह हमारे सामाजिक, राजनीतिक धार्मिक दुर्गुण एवं मूर्खता का परिणाम है, न कि हमारे श्याम वर्ण एवं उनके श्वेत वर्ण का। जब उन्हें दुर्गुण और मूर्खता नहीं समझा जाता था तब राष्ट्र की दृष्टि से श्याम होते हुए भी हम सारे विश्व के लिए भारी पड़ रहे थे। ये दुर्गुण छूटते ही पुनः इसी तरह भारी पड़ेंगे। लंकाधीश, गोरे रावण के दसों मस्तक काटनेवाला अयोध्या का वह राजकुमार घनश्यामल ही था। वह गीताद्रष्टा सुदर्शनधारी श्रीकृष्ण भी घनश्याम ही था। आज भी अर्धजगत् जिसके चरणों की धूल भभूत समझकर मस्तक पर धारण करता है, उस देवकल्प बुद्ध से क्या कोई यूरोपियन टामी अधिक श्रेष्ठ सिद्ध होगा? इसलिए कि वह अधिक गोरा है? जापानियों की मूँछें नहीं होतीं, इसलिए जैसे वे घनी मूँछवाले रूसियों से पौरुष में हीन नहीं सिद्ध होते उसी तरह इसलिए कि हमारा रंग काला है हम भी हीन नहीं हुए। हाँ, जापानियों के व्यक्तिगत ठिगनेपन के कारण राष्ट्रीय शक्ति ईषद् न्यून होने की संभावना हो सकती है, किंतु हमारी व्यक्तिगत कृष्णवर्णीयता का अथवा उनके व्यक्तिगत गौरवर्णीयता का राष्ट्रीय शक्ति से अथवा श्रेष्ठता से रत्ती भर भी संबंध नहीं हो सकता।''

''और व्यक्तिगत श्रेष्ठता से काले-गोरे रंग का भला कैसा संबंध है? आज भी भारतीय छात्र यूरोप, अमेरिका के किसी भी विश्वविद्यालय में गोरे छात्र से राई भर भी पीछे नहीं होते। परकीय देश की, भाषा विषयक पक्षपातपूर्ण विपत्तियों का उसे सामना करना पड़ता है, फिर भी उन गोरे छात्रों में जिन्हें इस तरह की किसी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता, भारतीय छात्र अनेक स्थानों पर व्यक्तिशः श्रेष्ठ ही सिद्ध होता है। वैद्यक, कानून, शिल्प, यंत्र, गणित किसी भी विषय में यूरोपियन विश्वविद्यालय में भारतीय युवक प्रथम दस क्रमांकों में चमकता है। कई बार तो वह प्रथम क्रमांक भी चटकाता है। इस बौद्धिक समानता के साथ-साथ ही सैनिक योग्यता में भारतीय सैनिक व्यक्तिगत रूप में गोरे सैनिक से तुल्यबल अवश्य है। जर्मन महायुद्ध में यूरोप स्थित नवीनतम अस्त्र-शस्त्रयुक्त, शूर गोरी जर्मन सेना के साथ हमारे सिख, गुरखा सैनिकों ने जिस जुझारू वृत्ति के साथ युद्ध किया, इससे यह बात संपूर्ण यूरोप ने निर्विवाद रूप में स्वीकार की है। वही बात श्रमिक शक्ति की है। मॉरीशस से गुयाना तक, कनाडा से कैलिफोर्निया तक अतिशीत अथवा अत्युष्ण किसी भी वायुयान में भारतीय श्रमजीवी किसी भी राजशक्ति के ममत्व का समर्थन न होते हुए भी यूरोपियन श्रमिकों की चढ़ा-उतरी में दृढ़ रहता है। इतना ही नहीं, अपने सादगीपूर्ण रहन-सहन तथा परिश्रम क्षमता से उनका

प्रबल प्रतिद्वंद्वी बन सकता है। फिजी, गुयाना, अफ्रीका, मॉरीशस आदि विश्व के अनेक देशों में दास बनकर अनुबंध के साथ जानेवाले लाखों भारतीय श्रमिकों ने केवल अपनी सहिष्णुता तथा परिश्रम के बलबूते पर उधर बड़े-बड़े भारतीय उपनिवेशों की निर्मिति की; और धीरे-धीरे जिन गोरे बागवानों के गुलाम बनकर वे गए थे, उन्हींके तुल्यबल धनवान बागवान भी इन्हीं भारतीय श्रमिकों में से कर्तव्यशाली पुरुष बन गए हैं। अत: हमारे कृष्ण वर्ण के कारण यूरोपियन गोरे लोगों की अपेक्षा किसी भी तरह से शौर्य, धैर्य, बुद्धि, सहाय, श्रम-क्षमता आदि पौरुष के व्यक्तिगत गुणों की दृष्टि से हममें रत्ती भर भी हीनता नहीं है। तो फिर काला वर्ण हमारी त्रुटि, हमारे व्यक्तित्व स्थित एवं स्वाभाविक त्रुटि के रूप में किस अर्थ से और क्यों समझा जाए?'' घनश्याम ने तर्क दिया।

रमाकांत ने प्रत्युत्तर दिया, ''मैं केवल दोयम अर्थ में इस त्रुटि को मानता हूँ। इससे हमारी शारीरिक सुंदरता में अंशत: बाधा पहुँचती है। सुंदरता मानवता का कोई भी महत्त्वपूर्ण गुण नहीं है, तथापि यह अलौकिक सुंदरता होने पर भी शील न हो तो मनुष्य राक्षस समान भयंकर होता है—यह सत्य है, तथापि यह तथ्य भी स्मरणीय है कि शील और सुंदरता दोनों होने पर मनुष्य ईश्वरीय दूत के समान शोभायमान होता है।''

घनश्याम ने कहा, ''इसे मैं स्वीकार करता हूँ। परंतु गौर वर्ण ही सुंदरता का मापदंड नहीं है। सुंदरता में भी, शारीरिक सुंदरता में भी, शरीर का सुंदर गठन, सुडौल देहयष्टि मात्र शुभ्रता से अधिक नयनानंदकारी होती है। सुडौल देहयष्टि और तराशे हुए मुखमंडल में हम भारतीयों का सौंदर्य यूरोपियनों से उन्नीस नहीं होता। जैसाकि मैंने पहले कहा, सूअर हिमगौर होते हैं और गजराज कृष्णवर्णीय परंतु सूअर सूअर है और हाथी हाथी।''

रमाकांत ने प्रतिवाद किया, ''परंतु हाथी होकर भी यदि वह अधिक गौरवर्णीय होता तो जहाँ तक शोभा-सौंदर्य का सवाल है, वह अधिक इच्छुक नहीं होता? ऐरावत हिमधवल था, अत: देवताओं ने उसे रत्न कहा। गौरवर्णीय गजराज को हम भी राज्य लक्ष्मी का भूषण समझते हैं। वही बात आधुनिक शरीर सौंदर्य विषयक है। सुगठित एवं सुडौल देहयष्टि के होते हुए हिमगौर अथवा हिमगौर कांति की प्राकृतिक देन द्वारा ही वे शरीर सुंदरता में श्रेष्ठ सिद्ध होते हैं। कुछ भी हो, इसे नकारने में कोई तुक नहीं कि शुभ्र कांति शरीर सौंदर्य का एक अनुपेक्षणीय घटक है और कृष्ण वर्ण सुंदरता के लिए बाधक है। सुवर्णालंकार यदि किसी हब्शी स्त्री को पहनाए जाएँ तो वह अपने स्वाभाविक रूप से अधिक अच्छी लगेगी, परंतु जिस तरह उन अलंकारों की प्रभा से उसका कृष्ण वर्ण तनिक उजला हो जाता है, उसी तरह उसकी कोलतार

जैसी स्याह छाया से उन आभूषणों पर भी किंचित् मलिनता फैले बिना नहीं रहती। किसी ईषत् श्यामल कन्या पर वही सुवर्णालंकार अधिक फबते हैं और वह स्वर्ण मोती स्वर्ण मोती समान ही दिखाई देता है। परंतु किसी गौरवर्णीय कन्या की कांति आभूषणों से खिल उठती है। उसकी सुंदरता जैसे उमड़-उमड़कर बहने लगती है। वे सुवर्णालंकार उस कांति से, सोने से भी अधिक चमचमाते हुए तथा मोतियों से अधिक तेजस्वी प्रतीत होते हैं। मनुष्य अनेक गुणों में प्राणियों का महाराजा है। सुंदरता में भी सुंदर प्राणियों के महाराजा के रूप में जब वह सोहता है, तब उसकी श्रेष्ठता को वह चार चाँद लगा देता है और सुंदरता में भी प्रकृति की रानी की शोभा पाने के लिए मानवी सुंदरता की हिमप्रभ देहकांति स्वर्ण संपुट में ही अधिक खिलती है। मयूर जैसे सुंदर प्राणी अथवा मनोहर मृग को कोई काली-कलूटी बाला सहलाती खड़ी हो तो सुंदरता की दृष्टि से वह उसकी दासी ही प्रतीत होगी, न कि स्वामिनी। परंतु कोई गौरांगना उसे सहलाती हो तो वह सुंदरता में भी महाराज्ञी प्रतीत होगी।''

''पर मैं कहता हूँ, हम आर्यों का रंग वैदिक काल में तो हिमवर्णीय था, हमारी कांति स्वर्णकांति थी। यह बात तत्कालीन वैदिक वर्णनों से स्पष्ट है। पर आगे चलकर हमारा वर्ण इतना काला कैसे हो गया?'' घनश्याम ने पूछा।

रमाकांत ने बताया, ''इसके अनेक कारण बताए जा सकते हैं। परंतु अन्य कृष्णवर्णियों के संग प्रतिलोम, अनुलोम, अथवा संकर रक्तबीज प्रभृति दोयम कारणों को छोड़कर हम भारतीय आर्यों का गौर वर्ण काला होने का प्रमुख कारण है, हमारे देश का तापमान। इसलिए भारत में कश्मीर जैसे शीत प्रदेश में हिमधवल गौर वर्ण आज भी टिका हुआ है और मद्रास जैसे उष्ण प्रदेश में ब्राह्मण भी ऐसे स्याह हैं, जैसी भील जाति। जो यूरोपियन लोग ब्राजील प्रभृति उष्ण अमेरिका में अथवा अत्युष्ण अफ्रीका में उपनिवेश बसाकर रहे, उनके गौरवर्ण में चार-पाँच पीढ़ियों में ही लक्षणीय कालापन छा गया है। फिर आज पाँच हजार वर्षों के उष्ण तापमान से हम भारतीय आर्य अगर काले हो गए तो इसमें आश्चर्य कैसा?''

घनश्याम ने उपहास किसा, ''यदि पाँच हजार वर्षों में हमारा गौर वर्ण इतना स्याह पड़ चुका है तो अगले पाँच हजार वर्षों में अफ्रीकावासी उष्ण तापमान से हब्शियों की तरह कोयले जैसा काला-कलूटा तो नहीं हो जाएँगे? और एक मजेदार आशंका मन में उभरी है कि आज उलटे तवे जैसे कृष्णवर्णीय हब्शियों के कालेपन पर अफ्रीका की भीषण गरमी के आघात होते-होते आगे चलकर उनका वर्ण माणिकरत्न समान तेज पुंज तो नहीं होगा? क्योंकि सुना है किसी-किसी स्थान पर कोयले से रत्न, लाल बनते हैं?''

''परंतु इसलिए कि दस हजार वर्षों के पश्चात् माणिकरत्न जैसा चमकता

रंग बन जाएगा, इससे पूर्व पाँच हजार वर्ष कोयले समान काला-कलूटा रहते हुए इतराना क्या उचित है? कोयले से रत्न बनता है, तुम्हारी यह भावना मन में रखकर पूछ रहा हूँ।'' रमाकांत ने पूछा।

घनश्याम बोला, ''अजी, सिद्ध नहीं होगा तो क्या होगा? जैसे आपका कहना है कि उष्ण वायुमान का यह प्राकृतिक परिणाम है, तो हिंदुस्थान के नागरिकों के दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक काले पड़ने के सिवा अन्य कोई चारा नहीं है। शारीरिक सुंदरता की इस कमी को, भले ही वह अत्यंत नगण्य ही क्यों न हो, मिटाना हमारे लिए असंभव है। मजबूती में हम व्यक्तिशः तुल्यबल अथवा श्रेष्ठ होते हुए भी दिखावटीपन में सदैव हीन ही रहेंगे। भला प्राकृतिक वायुमंडल में कोई परिवर्तन ला सकता है?''

रमाकांत ने तर्क दिया, ''प्रकृति। प्रकृति के उन नियमों में, जो मनुष्य के लिए सुविधाजनक नहीं होते, प्रकृति ही परिवर्तन करके प्रतिनियम बनाकर देती है। वही विष के लिए प्रतिविष और रोगों के लिए औषधि देती आई है। काली जाति में दो भेद किए जा सकते हैं। मनुष्य की उत्पत्ति बंदरों, मर्कटों का विकास है तो इस प्राणी में कुछ लाल मुँहवाले, कुछ काले मुँह के तो कुछ श्वेत होते हैं। इससे उनमें मनुष्यत्व आने लगा, उसी तरह मानव में उस वंश परंपरा के अनुसार मूलतः ही काला, ताम्र तथा श्वेत वर्ण उतरा होगा। जिन मानव जातियों के लिए इस तरह का प्रमाण कहीं नहीं मिलता कि वे कभी गोरी थीं, उनके लिए यह स्पष्टीकरण लागू होगा। परंतु यह सौ प्रतिशत निश्चित है कि हम भारतीय आर्यों का वर्ण मूलतः हंस जैसा धवल था, इसलिए आज हम जो काले पड़ते जा रहे हैं, वह मुख्यतः उष्ण वायुमान का ही अर्वाचीन परिणाम होगा न कि अपरिवर्तनीयता से निश्चित आनुवंशिक, क्योंकि आज भी हमारे यहाँ ऐसे लोग हैं जो स्पेनी, पोर्तुगीज जैसे श्वेतवर्णीय हैं। अर्थात् जबकि सभी आर्यों को उष्ण वायुमान में रहना पड़ता है, फिर भी आज सभी काले नहीं हुए; एक परिवार के भाई-बहनों में भी कुछ इतने गोरे होते हैं कि यूरोप के स्पेन, इटली के लोगों में सहजतापूर्वक घुल-मिल जाएँ, और कुछ काले होते हैं। इसका अर्थ यह है कि प्रकृति के बटुवे में कुछ ऐसी माताएँ भी हैं, जो हमारे स्वाभाविक श्वेत वर्ण पर भारतीय उष्ण वायुमंडल के होनेवाले काले परिणाम को पराभूत करती हुई इस वायुमंडल में भी श्वेत वर्ण बनाए रखती हैं।''

घनश्याम आगे बोला, ''जैसा आप कह रहे हैं, वैसी माता उपलब्ध होना क्या संभव है?''

रमाकांत ने समाधान किया, ''आज तक मनुष्य ने जिस शास्त्र की उपेक्षा की है, वह गर्भशास्त्र है। अन्य पदार्थों पर जैसे मनमाने विच्छेदनात्मक अथवा

विश्लेषणात्मक प्रयोग किए जा सकते हैं, उसी तरह गर्भ पर करना अत्यंत कठिन है, यह भी इस उपेक्षा का कारण है। परंतु अब मनुष्य जीवन से अत्यंत सुबद्ध मनुष्य-ज्ञात सभी शास्त्रों में अत्यंत पिछड़े इस गर्भशास्त्र की ओर वैज्ञानिकों का ध्यान आकर्षित होने लगा है। मनुष्य की लंबाई बढ़ानेवाली ग्रंथियाँ कौन सी हैं, मस्तिष्क के अंतर्गत ज्ञानपिंड अथवा ज्ञानतंतुओं के कार्य क्या हैं, विभिन्न अन्न, जल, प्रकाश के गर्भ पर कौन-कौन से विभिन्न परिणाम होते हैं, आनुवंशिकता का परिणाम कहाँ तक अपरिवर्तनीय समझना होगा और परिवर्तन (वेरिएशन), शारीरिक हो या मानसिक, कहाँ और कैसे हो सकता है आदि अनेक महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक सिद्धांत हमारे ज्ञान के दायरे में आ रहे हैं। पुत्र अथवा वांछित संतान को ही जन्म देने का वैज्ञानिक नियम भी प्रायः प्राप्त हो ही चुका है। जन्म से पूर्व ही गर्भ का लिंग निर्णय करना भी संभव होने लगा है। इतना ही नहीं, अनेक प्रकरणों में जन्म के पश्चात् भी शल्यक्रिया आदि उपायों से लिंग-परिवर्तन करना संभव हो गया है। कल तक हम जिन्हें मृत समझकर दफनाते या जलाते थे, हृदय विषयक ऐसे रोगों का उपचार होने के कारण मृतकों को जीवित करना संभव होने लगा है। और तो और, बिना पुरुष संयोग के केवल टीका लगवाने मात्र से ही स्त्रियों के लिए गर्भ संभव तथा प्रजनन साध्य होने लगा है। यह बात डॉ. कोएर्नर के आश्चर्यजनक प्रयोगों से अब सर्वसंगत हो चुकी है। और दो सौ वर्षों के भीतर यदि वैज्ञानिकों ने गर्भविज्ञान पर जोरदार आक्रमण किया और वैज्ञानिक प्रयोगों की सतत बौछार की तो माँग के अनुसार मनुष्य को गढ़ना सुलभ होगा। जैसे हम अपनी-अपनी इच्छानुसार कपड़ा ब्योंतते हैं, वैसे ही लंबाई, पुरुष या स्त्री, ऐसा रंग, ऐसी मुद्रा, ऐसे बाल, इतनी बुद्धि आदि परिमाण लेकर मनुष्य की निर्मिति की गई तो कोई आश्चर्य नहीं होगा। क्योंकि प्रकृति भी जब नियमों के आधार पर ही मनुष्य का गठन करती है, तब उन नियमों का ज्ञान होते ही मनुष्य के लिए वांछित चयन करना संभव होना चाहिए। अनेक उदाहरणों में अपवादों को छोड़कर आज तक का यही अनुभव है कि वह शक्ति प्रकृति ने ही मनुष्य में रखी है।''

''परंतु इस तरह जिन-जिन वैज्ञानिकों ने मनुष्य निर्मिति की खोज की, उन्हें अभी तक रंग-परिवर्तन का शोध नहीं ज्ञात हुआ—इससे वह कठिन ही प्रतीत होता है। क्यों?'' घनश्याम ने आगे पूछा।

रमाकांत ने उत्तर दिया, ''उसका एक कारण है। यूरोपियन वैज्ञानिक ही आज अनुसंधान के नेता हैं। वे श्वेतवर्णीय हैं अतः उन्हें रंग-परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है, इसलिए उन्होंने इसके लिए एड़ी-चोटी एक नहीं की। परंतु ब्राजील जैसे उष्ण प्रदेश में जो गोरे उपनिवेशवाले काले पड़ने लगे हैं, उनका ध्यान श्वेत वर्ण बनाए रखने की ओर गया है। उन्होंने इस कार्य में बहुत प्रगति की है। सुना है काले

चूहों पर प्रयोग होते हैं। परंतु कृष्ण वर्ण को धोकर देह को श्वेतवर्णी करने की आवश्यकता आज भारत में अत्यावश्यक होने से भारतीय वैज्ञानिकों को यह प्रश्न तुरंत हाथ में लेना होगा। यदि वे उसपर अपने बौद्धिक बल का सतत प्रहार करें, तो अंततः एक ऐसे रसायन की उपलब्धि अवश्य होगी जिसका टीका लगवाने से अथवा गर्भ में उसका संचय करने से इस पीढ़ी अथवा भविष्यकालीन पीढ़ियों का वर्ण हमारे पूर्वजों की तरह पुनः गोरा-चिट्टा हो सकता है।''

घनश्याम बोले, ''सचमुच ही यदि इस तरह रंग-परिवर्तन की खोज हुई तो मुझे आपसे भी अधिक हर्ष होगा। यद्यपि शौर्य, धैर्य, युक्ति, दया, दाक्षिण्य प्रभृति मानवता के किसी भी महत्त्वपूर्ण शाश्वत गुण में भारतीय व्यक्ति यूरोपियन व्यक्ति के व्यक्तिशः तुल्यबल सिद्ध होता है और शारीरिक सुंदरता के सापेक्षतः उपेक्षणीय दिखावटी गुणों में भी दैहिक सुघड़ता में हीनतर सिद्ध नहीं होता, तथापि जिसके अभाव से कोई भी असुविधा नहीं होती, परंतु जिसके होने से वह प्रिय प्रतीत होता है उस श्वेत वर्ण का यदि हमें लाभ हो तो सोने पे सुहागा। तो फिर अब सर्वप्रथम विशेषतः हमारे भारतीय वैज्ञानिकों का ध्यान इस वर्ण-परिवर्तन पर प्रबलतापूर्वक जाए, ऐसा प्रयास आप कीजिए, और सर्वत्र प्रसिद्ध विज्ञापन लहराने दीजिए कि 'आवश्यकता है, अपने शरीर का कृष्ण वर्ण बदलकर गोरा करनेवाले रसायन की'। यह काम आपका और जैसा मैंने कहा कि जो अन्वेषक ऐसे उपाय की खोज करें, उसे दस लाख रुपए अज्ञात पुरस्कार भेजने का काम मेरा।''

रमाकांत बोले, ''अच्छा, तो मैं इस कार्य में जुट जाता हूँ। पर मेरा भी पता अज्ञात रखते हुए...''

इतना कहते-कहते दोनों उस अँधेरे में लुप्त हो गए।

यह लेख भी प्रेषक के पते के बिना वापस आया है। वैसे देखा जाए तो किसी भी मानवी लेख का मूल प्रेषक कौन है, इसका पता किसीको भी नहीं लगता।

□

गर्दभ संगठन

पिछले एक-दो वर्षों में हिंदू संगठन का आंदोलन जैसे-जैसे प्रबल होता गया, वैसे-वैसे ही तराई के जंगल से सीधे मालाबार सिंधु तट तक जंगलों, गाँवों में बिखरे गर्दभ समाज में बड़ी खलबली मच गई। गर्दभों के कर्ता-धर्ता नेता जन इसलिए लाज से पानी-पानी होने लगे कि हिंदू लोग अपने भारतीय राष्ट्र को संगठित न करते हुए आराम से कुम्हार का बोझ ढो रहे हैं, अत: उन्होंने भी गर्दभ संगठन का आंदोलन छेड़ने की ठान ली। उसके अनुसार विभिन्न जंगलों में यह तय हुआ कि भटकते हुए जंगली गर्दभों के झुंड अपने-अपने प्रतिनिधियों को चुनकर उन्हें नागरी गर्दभों की समितियों में भेजें और हिंदुस्थान की किसी भी प्रमुख नगरी में प्रतिवर्ष अखिल भारतीय गर्दभ ज्ञानी सम्मेलन का एक राष्ट्रीय हंगामा आयोजित करें। उनके अधिवेशन भी आरंभ हो गए। उनमें से आजकल ही आयोजित गोष्ठी की जानकारी को हम पाठकों के सामने रख रहे हैं, ताकि उस आंदोलन का स्वरूप स्पष्ट हो सके।

इस सभा का आयोजन करने के लिए नगर के कुम्हार बाड़े के सामने स्थित एक विस्तृत मैदान निश्चित किया गया। अनेक युवा गर्दभों ने उसे फूँक-फूँककर साफ करके रखा था। इस सभा के लिए जगह-जगह के अखिल गर्दभीय मजलिस-ए-आम की शाखाओं से प्रतिनिधि भेजे गए थे। श्रीगणेश होते ही सभा के कार्यवाहक ने उपस्थित गर्दभों में जो अत्यंत मेधावी-सुधी था, उसका नाम सुझाया। समर्थन मिलने पर वह बुद्धिमान गर्दभ अध्यक्ष पद पर विराजमान हो गया। अपने अध्यक्षीय भाषण में उसने कहा, ''वस्तुत: हमारा गर्दभीय राष्ट्र हिंदू राष्ट्र से भी पहले अस्तित्व में था। पुराणों में जिन तत्कालीन राष्ट्रों का उल्लेख किया गया है, उनमें किरातादिक नामों के साथ 'गर्दभा:' नामक जाति का भी उल्लेख है। वस्तुत: इस भारतभूमि के मूल निवासी हम गदर्भ ही हैं; क्योंकि विज्ञान की खोज से यह निश्चित हो चुका है कि मनुष्य जाति का गर्दभों के पश्चात् जन्म हुआ। न, न, मैं तो छाती ठोंककर दावे के साथ कहता हूँ कि प्रत्येक मनुष्य का बालक जन्मत: गधा ही होता है। विकृत

शिक्षा के कारण आगे चलकर उसे अपने गधेपन से वंचित कर मानवता के परधर्म में ढकेल दिया जाता है। इस दृष्टि से देखा जाए तो हमारा आद्य कर्तव्य है—प्रत्येक मनुष्य के शिशु को इन मानवी काफिरों के हाथों से मुक्त कराके अपनी गर्दभ संस्कृति में वापस ले आना। मेरी दूसरी सूचना यह है कि हम गर्दभ, मनुष्य से पहले इस भूमि के स्वामी हैं, अत: हम अपने आपको 'आदि मानव' संबोधित करें। मुझे तो ईश्वर की स्पष्ट आज्ञा हो चुकी है कि 'हे गर्दभ, जाओ, सारे विश्व को अपना गर्दभीय संदेश पहुँचाओ।' इस ईश्वरीय प्रेरणा के अनुसार मैं हिंदू संगठन के अध्यक्ष डॉ. मुंजे से लेकर श्री शंकराचार्य तक स्वयं जाकर अपना दिव्य संदेश पहुँचाऊँगा। वस्तुत: आज तक सैकड़ों हिंदू स्वयं ही हमारे इस गर्दभीय संदेश का पालन करते थे। परंतु इस हिंदू गठन के दुष्टतापूर्ण आंदोलन से हिंदू राष्ट्र पर हमारी गर्दभीय संस्कृति का जो दबदबा था, वह कम हो गया है। इससे आजकल हिंदुओं में गधापन इतना नहीं पाया जाता जितना कि प्राचीन काल में पाया जाता था। इतना ही नहीं अपितु इसके विपरीत हममें से ही कई लब्धप्रतिष्ठ गदर्भ नागरिकों को ही शुद्धिकरण के साथ मानवता की दीक्षा दी जा रही है। हमें यह समझना चाहिए कि उनके संगठन का प्रतिकार करना हम सभी कट्टर गर्दभों का पावन धर्मकार्य है। ये हिंदू लोग कितने मूर्ख हैं, देखिए। वे कहते हैं, 'ईश्वर ने हमें मानवता का जो संदेश दिया है, वही संपूर्ण धर्म है।' उनसे मैं हठात् पूछता हूँ, 'भई, किसके कान अधिक लंबे हैं? तुम मानवों के या हम गर्दभों के? यदि आप इस सत्य को नकारते नहीं, तो फिर तुम्हारे कान छोटे और हमारे इतने लंबे करने में भगवान् का विशेष उद्देश्य है या नहीं? वह उद्देश्य क्या यही नहीं है कि तुम लोगों से हमारे कान अधिक लंबे और बड़े छेदवाले होने से ईश्वर के वचन तुम लोगों से अधिक शीघ्रतापूर्वक तथा अधिक पूर्ण रूप में हम सुन सकें? तुम्हारे छोटे-छोटे कानों में ईश्वर का संपूर्ण संदेश नहीं समा सकता था, इसीलिए तो उसने हमें लंबकर्ण बनाया ताकि उनमें वह संदेश पूर्णतया समा सके। यह सत्य सूर्य-प्रकाश समान स्पष्ट होते हुए भी हिंदू लोग अपनी मानवता को ही संपूर्ण धर्म समझकर हमारे गधेपन को अपूर्ण धर्म समझते हैं—यह उन हिंदुओं का कितना बड़ा गधापन है! छि:-छि:!' यह विचार मन में आते ही इन हिंदू गठनवादियों की ढपोरशंखी से मेरे तन-बदन में आग लग जाती है। दाँत-होंठ पीसकर मुझे उनका डटकर विरोध करने की इच्छा होती है।''

इतना कहते हुए सात्त्विक क्रोध से फड़फड़ाते हुए अध्यक्षीय गर्दभराज ने झट से मुड़कर तथा सभी की ओर पीठ दिखाकर हिंदू संगठन का तीव्र विरोध करने के लिए इतनी जोर से दुलत्ती झाड़ी कि उसके सामने रखा टेबुल तड़ाक से उड़कर श्रोतावृंद से जा टकराया। उसके साथ सारे सदस्य अपनी-अपनी दुलत्तियाँ जोर-जोर

से झाड़ने लगे। उस राष्ट्रीय उत्साह के आवेश में किसी भी गर्दभ को इसका भान नहीं रहा कि किसकी दुलत्तियाँ किसे लग रही हैं। जिसे इस बात का रत्ती भर भी ध्यान नहीं था कि यह सभा किस पक्ष की है, वह अनाड़ी, अपरिचित व्यक्ति भी, उधर मची हुई भगदड़, लत्ती-प्रहारों की दे-मार से ही इसका अचूक अनुमान लगा सकता है कि यह गर्दभीय मजलिस-ए-आम का राष्ट्रीय हंगामा होगा। उधर इस सभागृह में सैकड़ों दुलत्तियाँ झाड़ने तथा गर्जन-तर्जन से अधिक प्रोत्साहित होकर अध्यक्ष महोदय का भाषण प्रबल आवेग के साथ सतत फरफराने लगा। उस संपूर्ण गर्दभ समाज में ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं था जो अध्यक्ष महोदय की वाक्पटुता, विषय के प्रस्तुतीकरण से टक्कर लेने की क्षमता रखता हो। एक बार व्याख्यान के आवेश में वे गरजने लगते तब ऐसे सोहने लगते, जैसे गर्दभों में वनराज सिंह।

इस गर्जन-तर्जन के आवेश में वह सभा इस तरह पूर्णतया निमग्न थी, इतने में अचानक दो-चार मनुष्य प्राणी अत्यंत विनम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर उस सभा के भीतर प्रवेश करते हुए दिखाई दिए। अध्यक्ष महादेय ने उन्हें रोका, ''आपका परिचय? गर्दभों के इस राष्ट्रीय हंगामे में आने की अनुमति भला आपको किसने दी?''

''विश्व प्रेम ने।'' उनमें से एक सज्जन ने अत्यंत विनम्रतापूर्वक कहा, ''विश्व प्रेम से आकर्षित होकर हम आप लोगों में हिलने-मिलने के लिए आए हैं। क्या मनुष्य, क्या गर्दभ, सब एक ही ईश्वर की संतान हैं। यह मानवता और यह गर्दभीयता, इस प्रकार धर्माधर्म तथा संस्कृति की अनुचित धारणाओं से अंधे बने लोग गर्दभ और मनुष्यों में अकारण ही शत्रुता की भावना का बीजारोपण कर रहे हैं। हमें यह स्वीकार्य न होने से हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि अब हम दोनों में जाति-धर्म निर्विशिष्ट भावना से प्रेरित एकता प्रस्थापित हो।''

यह सुनते ही एक वृद्ध गर्दभ ने कहा, ''कहीं आपके मन में कोई कपट भावना तो नहीं? हिंदू संगठन के समर्थक जीवमात्र की एकता की इसी तरह तत्त्व पूर्ण बातें करते हैं, परंतु जब हम उनके पास एकता करने के लिए गए और हमने उनसे कहा, 'आप एकता की कामना करते हैं तो अपनी मानवता की संकीर्ण संस्कृति को छोड़कर हमारी गर्दभीय संस्कृति को स्वीकार करें,' तब उनकी एकता की पोल खुल गई, क्योंकि उन्होंने स्पष्ट किया, 'एकता का वास्तविक मार्ग यही है कि गर्दभ मानवता को स्वीकार करे, न कि मानव गधा बने। क्योंकि मानवीय संस्कृति गर्दभीय संस्कृति से श्रेष्ठ है। भई इसका क्या प्रमाण है कि आप भी इसी प्रकार के किसी हिंदू संगठन के तो नहीं है?' ''

''हमारे व्यवहार से।'' उन्होंने कहा, ''आप हमें हमारे आचरण से परख

सकते हैं कि हम मनुष्य हैं या गधे।'' इसपर अध्यक्ष ने कहा, ''आचरण से परखने के लिए समय लगता है। इसके अतिरिक्त हमारे गर्दभ समाज में शिक्षा का इतना प्रसार नहीं हुआ है कि आप लोगों के व्यवहार से हमें यह ज्ञान प्राप्त हो कि आप गर्दभ हैं या मानव। अत: यदि आप सत्य ही विश्व प्रेम से प्रेरित हैं, तो आपको बाह्याचरण में भी हमारी गर्दभी संस्कृति के अनुसार ही चलना होगा। हिंदू संगठन का यह उपदेश कि गधों को मनुष्य के समान आचरण करना चाहिए तभी एकता होगी, चालाकी है। तुम्हारे मन में सचमुच ही विश्व प्रेम उमड़ रहा है तो तुम मनुष्य गर्दभ क्यों नहीं हो जाते?''

''अवश्य होना चाहिए। भला इसमें कौन सा तीर मारा है।'' नवागत मानवों ने कहा, ''हमने भी हिंदू माता की कोख से जन्म लिया है, तथापि उन हठी हिंदू संगठनवालों से हमारा कोई संबंध नहीं है। विश्व प्रेम ही हमारा धर्म है, अत: आपकी गर्दभीय संस्कृति का अवलंबन करते हुए भी हम आपके साथ एकात्मता स्थापित करना चाहते हैं। यह मानव और यह गर्दभ, इस तरह की मूर्खतापूर्ण धारणा को हम त्याज्य समझते हैं।''

''तब तो आप लोग गर्दभ समाज में सम्मिलित होने योग्य हैं।'' अध्यक्ष महोदय ने कहा, ''तथापि ठोंक-बजा लिया जाए, इसलिए आपसे पुन: एक बार साफ-साफ पूछता हूँ कि आप हिंदुओं की पुरातन मानवी संस्कृति का त्याग करके हमारी गर्दभीय संस्कृति को स्वीकार करने के लिए तैयार हैं?''

''हाँ, हाँ, हाँ। विश्व प्रेम का उपनेत्र लगाया है—हमें मानवता और गर्दभीयता में रत्ती भर भी अंतर प्रतीत नहीं होता।'' सभी मानव चिल्लाए।

हर्षोत्फुल्ल होकर अध्यक्ष गर्दभाचार्य अपने अखिल गर्दभ बंधुओं से कहने लगे, ''मित्रो! प्राचीन काल से ही शताधिक हिंदू हमारी गर्दभीय संस्कृति को स्वीकार करते आए हैं। इस हिंदू संगठन के दुष्टतापूर्ण आंदोलन के कारण वह प्रवाह सूखने लगा, तथापि आज भी इनके जैसे कुछ मानव, विश्व प्रेम से क्यों न हो, हमारी गर्दभीय संस्कृति के अनुयायी होने की इच्छा कर रहे हैं। यह घटना अत्यंत उत्साहवर्धक है। अब से इन नवागत मनुष्यों को गर्दभ समझा जाय; और हे मानवो, आप भी हम गर्दभों से एकरस होने के लिए वैसा ही आचरण करें जैसा हम करते हैं। तो चलिए, आप लोग केवल पिछले पैरों को, जो आप हाथों जैसा उठाते हैं, थामकर चारों पैरों पर खड़े रहें।''

इस आदेश के साथ ही वे सारे सज्जन भूमि पर अपने हाथ टिकाकर चारों पैरों पर चलने लगे। परंतु प्रथमत: उन्हें ठीक-ठाक चलना कठिन होते हुए देखकर सभी गर्दभ हँसते-हँसते लोट-पोट हो गए। इतने में उस वृद्ध गर्दभ ने

पुनः कहा, "हाँ, हाँ! गर्दभजनो, इस तरह शिष्टता का उल्लंघन न करें। इन नवागतों को गर्दभचाल की शिक्षा देने की अपेक्षा आप इसलिए बत्तीसी निकाल रहे हैं कि उन्हें आप जैसा चलना नहीं आता? अच्छा, अब इनके छोटे-छोटे कान लंबे करने चाहिए, जैसे हमारे हैं। क्यों? उन्हें तनिक खींचना होगा। भई, तुम्हें पीड़ा तो नहीं होगी?"

उन सज्जनों ने कहा, "न, न! आज तक कइयों ने हमारे कान उमेठे हैं। हम इसके अभ्यस्त हो चुके हैं। आप हमारे कान खींचें…" उस सभा में उपस्थित दो नेता गर्दभों ने उनके कान मुँह में रखकर थोड़े-बहुत खींचे भी। परंतु यह देखकर कि वे अधिकाधिक लंबे होने की अपेक्षा अधिकाधिक लाल हो रहे हैं, अध्यक्ष गर्दभाचार्य ने तनिक क्रुद्ध होकर उन गर्दभों से, जो कान खींच रहे थे कहा, "अरे, कैसे गधे हो तुम! रहने दो। खींचकर कहीं कान बढ़ते हैं भला? पहले उन कानों की जड़ के पास कल से पानी डालो, तब वे बढ़ेंगे। अब हे नवागत बंधु, गर्दभ संगठन के प्रधान कार्यकारी मंडल ने हमारी गर्दभीय संस्कृति को प्रसृत करने के लिए शिक्षा संस्था आरंभ करने की योजना बनाई है। हमारी महत्त्वाकांक्षा है कि गर्दभों की गणना पिछड़ी हुई जातियों में न होकर आप हिंदुओं में से आप जैसी ही प्रगत जाति में हो। फिर आपकी बिरादरी हमारी बिरादरी से आगे बढ़कर रोटी-बेटी का व्यवहार करेगी।"

"करेगी क्यों? हम तो अभी करने के लिए तैयार हैं।" उन नवागतों ने उत्साह से कहा, "आप नई संस्था के झंझट में क्यों पड़ रहे हैं? हमारी शिक्षा संस्था विश्व प्रेम की नींव पर ही खड़ी है, अतः उसमें हम छात्रों को 'मानवता और गर्दभीयता—इनमें रत्ती भर भी अंतर नहीं होता' यही शिक्षा देते हैं। उसी संस्था में आप अपने बुद्धिमान गर्दभों को भेजें। मनुष्य और गधे में राई भर भी अंतर न मानकर, सभी एक निराकार ईश्वर की संतान हैं, यही सत्य सिद्ध करने का हमने बीड़ा उठाया है। इसके लिए हमारी कन्याओं ने एक विश्व प्रेमी संघ की स्थापना की है। उन्होंने प्रतिज्ञा की है कि वे गर्दभ वर का ही वरण करेंगी और विश्व प्रेम मात्र व्याख्या में ही न रखते हुए 'शुनि चैव खपाक च समदर्शी' होकर प्रत्यक्ष आचरण करके दिखाएँगी।"

यह सुनते ही सभागत श्रोतावृंद हर्षातिरेक से एक साथ गर्जना करने लगे। अध्यक्ष महोदय भी प्रसन्न हुए और सभी ने उन नवागतों का, जो उनके समाज में प्रवेश करने की कामना करते थे, हृदय से स्वागत करते हुए कहा, "आपको, जो गर्दभीयता पर हमसे भी अधिक गर्व करते हैं, हम अपनी ही बिरादरी के मानते हैं। आइए।"

अध्यक्ष महोदय ने कहा, ''आज मानवता पर गर्दभीयता की विजय हो गई है। शीघ्र ही हमारा गर्दभ संगठन हिंदू संगठन की नाक काटेगा। अब समय बहुत हो चुका है। अत: सभा समाप्त करनी होगी।''

अध्यक्ष महोदय का भाषण समाप्त होते ही कार्यवाहक ने अध्यक्ष महोदय के प्रति आभार प्रदर्शन करते हुए कहा, ''गर्दभाचार्य समान हमारी गर्दभीय संस्कृति का अभिमानी विरला ही होगा। उनमें हमारी गर्दभीयता की समस्त बुद्धि समाई हुई है। आज तक इतना महान् गर्दभ हम गधों में नहीं हुआ। उस जाति के और उसी तरह जिन्होंने हम गर्दभों के साथ आज ही रोटी-बेटी का व्यवहार करने का साहस प्रदर्शित किया, उन नवागत मानव गर्दभों का भी मैं आभारी हूँ।''

अंत में गर्दभ-संगठन की जय-जयकार की आकाश में गूँजती हिनहिनाहटों के साथ पैन गर्दभीय मजलिस-ए-आम बरखास्त हो गई।

□

शेंदाड़पुर का शिवाजी उत्सव

पिछले पखवाड़े में नागोजीराव ने एक धाँधली की थी, क्योंकि उनके निवास से पवित्र बने शेंदाड़पुर में इस वर्ष पहली बार शिवाजी उत्सव मनाने की योजना बन रही थी।

यद्यपि महाराष्ट्र के अनेक नगरों में पिछले पच्चीस वर्षों से शिवाजी उत्सव संपन्न हो रहा था, तथापि शेंदाड़पुर के नागरिकों ने आज तक उससे जो मुख मोड़ रखा था, वह इसलिए नहीं कि उस उत्सव का सामना करने का साहस उनमें नहीं था। पुणे के ठट्ठेबाज लोग उन्हें इसी तरह नीचा दिखाते, परंतु शेंदाड़पुर के नागरिकों द्वारा आज तक इस उत्सव से मुख मोड़ने का प्रमुख कारण यह था कि पहले कई साल यह उत्सव कुछ संदेहास्पद व्यवहार के लोगों की एक युक्ति थी, जो जाति-जाति में कलह का बीज बो देती। उस समय उत्सव में हिस्सा लेना एक सुरक्षित सभ्यता अथवा निरापद तथा निरपवाद राष्ट्राभिमान का कृत्य नहीं समझा जाता था। परंतु अब वह उत्सवांतर्गत विष निकाल दिए जाने से वह अब पानी से भी पतला 'पानी तेरा रंग कैसा—जिसमें मिलाए उस जैसा' बन गया। उसमें राष्ट्र का कोई भी व्यक्ति हिस्सा ले सकता था। अत: उस उत्सव को अब संपूर्ण राष्ट्रीय स्वरूप प्राप्त हो गया है। उसमें अब हिंदू, मुसलमान, ईसाई, सिख, पारसी, नीग्रो, यहूदी, हब्शी, ईरानी, तूरानी आदि न केवल हिंदुस्थान के, बल्कि विश्व की किसी भी जाति के सज्जन खुले मन से सुरक्षित रूप में शामिल किए जा सकते हैं। गवर्नर, कमिश्नर भी उसके अध्यक्ष हो सकते हैं। खाँ साहब, मुल्लाजी, पादरी प्रमुख वक्ता बन सकते हैं। इस तरह उसे अत्यंत शुद्ध राष्ट्रीय स्वरूप प्राप्त हो गया तो अब शेंदाड़पुर के राष्ट्राभिमानी नागरिकों को वह प्रिय प्रतीत होने लगा। अत: नागोजीराव जैसे सज्जन ने भी, जो पहले इस उत्सव से दो पग दूर रहते थे, इस वर्ष से 'शिवाजी महाराज की जय' के गर्जन-तर्जन के साथ की गई घोषणाओं से शेंदाड़पुर का वायुमंडल गुँजाने में दो पग आगे रहने की ठान ली थी। उसपर

नागोजीराव का कवित्व भी इसी उत्सव में पहली बार विश्व के सामने उजागर होनेवाला था। इससे ही शिवाजी महाराज विषयक नागोजीराव के मन में उमड़ते अभिमान ने उनकी नाक में दम करके छोड़ा था। उत्सव के प्रति सभी में अपूर्व उत्साह का संचार कराने के उद्देश्य से उत्सव मंडल के कार्यवाहक श्री कविवर नागोजीरावं स्वयं गाँव में घूम रहे थे। 'शिवाजी महाराज की जय' इस प्रकार घर-घर जाकर गर्जना कर रहे थे। लौटते समय 'मेरा प्रथम कविता गान भी इस समारोह की शोभा तथा आकर्षण है' इस प्रकार बोल रहे थे।

इस उत्सव के लिए दो कविताएँ रचने का कार्य दो वर्ष पूर्व ही नागोजीराव ने अपने हाथ में ले लिया था। परंतु कविवर नागोजीराव की उन दो कविताओं का रचना कार्य अब भी अधूरा था, पर वह जारी था--इसपर ही वे बड़ा गर्व करते। कहते, 'देखिए, यह कैसे अपने आप ही सिद्ध होता है कि शिल्प से भी काव्य की श्रेष्ठता कितनी महान् है। कविता करना ईंट, पत्थर, चूने से इमारत खड़ी करना नहीं है जी! ताजमहल खड़ा करने में जो बरसों का समय लगा वह उसके शिल्प निर्माण कार्य हेतु नहीं; पत्थरों का निर्माण कार्य म्रात्र दस दिनों का ही था। परंतु इतने वर्षों का समय जो लगा वह ताजमहल की प्रत्येक भित्ति तथा प्रत्येक स्तंभ पर जो काव्यमय चरण उकेरे गए हैं, काव्य के उन अक्षरों की खुदाई के लिए। तथापि वे चरण मात्र उकेरने ही थे, न कि उनकी रचना करनी थी। उसका निर्माण, नींव में थोड़े से पूरण से लेकर शिखर के पत्थर तक सारा कार्य 'एक ही हाथ' से करना था! (नागोजीराव 'एक लेखनी से' ही कहने जा रहे थे, परंतु उन दो कविताओं की निर्मिति में महाशय ने कम-से-कम दो सौ बत्तीस लेखनियाँ घिसी थीं।)

कवि बनने का निश्चय नागोजीराव ने दो वर्ष पूर्व किया था, उसी का यह परिणाम निकला था। असाधारण बुद्धि एवं अलौकिक कर्तृत्व संबंधी प्रचंड आत्मविश्वास होने के कारण नागोजीराव की यह दृढ़ धारणा थी कि वे इस विश्व में किसी-न-किसी नाते अपूर्व ख्याति प्राप्त करेंगे। प्रथमतः उन्होंने प्रो. परांजपे की गरिमा देखकर रँग्लर होने का निश्चय किया। परंतु हाई स्कूल में दशांश अपूर्णांक का रोड़ा अटकने से आरंभ में ही टाँय-टाँय फिस्स हो गई। अंग्रेजी की चौथी कक्षा जीवट वृत्ति के साथ दो वर्ष में उत्तीर्ण करने के लिए एड़ी-चोटी एक की और तीसरा वर्ष भी इसी कार्य में व्यतीत करना चाहते थे। उन्हें ज्ञात हो गया था कि मैट्रिक करके भी दस रुपल्ली की नौकरी नहीं मिलती, फिर भी उन्होंने निश्चय किया कि भले ही मुझे साठ वर्ष की आयु तक मैट्रिक की परीक्षा देनी पड़ी, पर इस जनम में मैट्रिक करके ही रहूँगा। इस प्रकार चौथी के अध्यापक के सामने जो भीष्म प्रतिज्ञा की थी उसको भंग करने के लिए उन्हें उत्तम बहाना मिल गया और बाईस वर्ष की उम्र में

उन्होंने अंग्रेजी चौथी से अपना नाम कटवाकर पाठशाला को राम-राम ठोंका। उसके पश्चात् यह सुनकर कि सट्टे में एक व्यापारी को विपुल धन प्राप्त हुआ है, महाशय ने अपने घर की सारी पूँजी सट्टे में लगा दी, और वह उसमें ही स्वाहा हो गई। उनके खरीदे हुए लॉटरी के टिकटों की अब तक ताश की गड्डी बन चुकी थी और उसी कारणवश उनकी जेब तार-तार हो गई थी। अलौकिकत्व संपादन करने के लिए एक बार उन्होंने सार्वजनिक आंदोलन में हिस्सा लिया। प्रथमत: पगड़ी फेंककर खद्दर की टोपी धारण की, फिर उसे फेंककर सिर मुड़वाकर गंजे बने फिरे। परंतु पहले ही सिर पर इने-गिने केश बचे थे, अत: गंजा बना उनका सिर उस पक्ष में भी समरस नहीं हो सका।

ऐसी अवस्था में झल्लाकर उन्होंने अपनी रामकहानी अपने एक मित्र छंदो पंत को सुनाकर कहा, ''मेरा ठोस सिद्धांत है कि मुझमें अलौकिक होने योग्य अनेक गुण हैं, तथापि इस जगत् में मैं अब तक कुछ भी नहीं कर सका। अब क्या किया जाए?'' यह सुनते ही छंदो पंत ने कहा, ''मित्र, यह सत्य है न, तुम कुछ भी नहीं बन सके? अरे बावले, तो फिर तुम्हें कवि होने योग्य होना ही चाहिए। तुम कवि बन जाओ। मैं भी इसी तरह दर-दर भटका, कुछ भी साध्य नहीं हुआ, तब कविता करने लगा। अब तुम देख ही रहे हो कि कवि सम्मेलन में मेरा कितना गौरव हुआ। छंदो पंत—यह उपाधि तो मैं प्राप्त कर ही सका।''

''हाँ, हाँ, परंतु कविता करना क्या गुड़ियों का खेल है? उसका शास्त्र तो सीखना होगा न? यदि दशमिक भग्नांशवत् कोई झंझट बीच में फिर से आ टपका तो?''

''न, न भाई! काव्य-शास्त्र में भग्नांश का प्रश्न कहाँ से आएगा? कवि स्वयमेव ही एक पूर्णांक है। पते की बात कहता हूँ, सुनो। काव्य की परिभाषा जानते हो? जिसे शास्त्र का अंकुश नहीं वह काव्य है। 'निरंकुशा: कवय:,' यह है उसका सूत्र। यह कवि का जन्मसिद्ध ताम्रपत्र है।''

''ठीक है, ठीक है। परंतु निरंकुश होते हुए भी कवि पर छंदोबंधन का कोई अनुशासन तो है ही न?''

''छंद? बंधन? जला दो, जला दो वे बंधन! मैं इसीलिए तो मुक्तबंध नामक एक कवि मंडल का सदस्य बन गया हूँ, ताकि कवियों के लिए उतनी भी बाधा न रहे। कवियों के लिए बंधन ही नहीं, कवि तो जन्मजात निरंकुश है, तो पुन: छंद बंधन का पालन करो, उन्हें यह बताना क्या 'वदतोव्याघात' नहीं है? तुम मुक्तबंध छंद में ही काव्य रचना करो। गद्य की पंक्तियाँ तुम लिख सकते हो न? उन्हें सीधे एक ही पंक्ति में न लिखते हुए एक के नीचे एक लिखते जाओ! बस! हो गया

मुक्तबंध छंद!''

''वाह जी वाह! क्या किल्ली ऐंठी है! बाधा भी टली और कालिदास तथा सभी लौकिक कवियों से एक निजी अद्‍भुतता, अपूर्वता का भी लाभ होगा। अड़चनों के बिना अलौकिकता! चलो, छंदों की समस्या हल हो गई। परंतु सुना है कविता में ऐसे संस्कृत शब्दों की प्रचुरता होनी चाहिए, जो शिष्ट जनों को कर्णमधुर लगें। ऐसी बात नहीं कि मैं संस्कृत का क ख ग भी नहीं जानता। हाँ, यह जानना तनिक कठिन होता है कि कौन सा शब्द संस्कृत है और कौन सा असंस्कृत। उसपर सुना है, भाषाशुद्धि का कोई बचकाना विवाद कुछ उपद्रवी जन कर रहे हैं। उनके उपद्रव के कारण 'दिल', 'आदमी', 'दुनिया' जैसे सौ प्रतिशत शुद्ध संस्कृत शब्दों का भी प्रयोग कविता में करना कठिन हो गया है। हमारे मुख में तो छप्पन भाषाओं के अंग्रेजी, उर्दू, हाटेंटाट, तुर्की शब्द बसे हुए हैं। सट्टा, बाजार, बंदरगाह, चोर बाजार में यह बाजारू बोली ही तुम्हारी शुद्ध संस्कृत से अथवा किंग्ज अंग्रेजी से अधिक हमारे काम आती है। वह बाजारू बोली ही मेरी वर्तमान मातृभाषा है। क्या उसमें कविता लिखने में कोई आपत्ति होगी?''

''हाँ! हाँ! अरे, तुम्हें बाजारू बोली भलीभाँति आती है? तो फिर बावले, भविष्यकालीन महाकवि होने में तुम ही बाजी मारोगे। अरे, अब उस अतीतकालीन संस्कृत तथा भाषाशुद्धि को कौन पूछता है? उस शिवाजी तथा चिपलूणकर की भाषाशुद्धि की दुर्गत ही बनेगी। जानते हो अब राष्ट्रभाषा का स्थान कौन लेगा? न ज्ञानेश्वर की मराठी, न टैगोर की बँगला, न ही तुलसीदास की हिंदी। सट्टा बाजार की यह भाषा ही अब राष्ट्रपद के महत्पद पर आरूढ़ होगी। अरबी, तुर्की, फारसी, यहूदी, पोर्तुगीज, फ्रेंच, अंग्रेजी कम-से-कम इतनी सारी भाषाओं के प्रतिनिधि शब्द उसमें होंगे। क्रमशः उस हिंदू, मुसलमान, यहूदी, ईसाई प्रभृति हिंदुस्थान के नागरिकों की संख्या के अनुपात में प्रत्येक राज्य की बोली में उन विदेशी शब्दों को मूलभूत स्वदेशी भाषाओं से लेना चाहिए। उदाहरण के लिए—बंगाली में सैकड़ों हिंदी शब्द इतने प्रतिशत, मुसलमानी शब्द इतने प्रतिशत, जितने प्रतिशत ईसाई बस्ती उतने अंग्रेजी, पोर्तुगीज फ्रेंच शब्द! उसपर भी मुसलमानी समाज का पिछड़ापन एक बड़ा सद्‍गुण है, एक बड़ी आधिकारिक महानता। उनके हमपर किए हुए महा उपकार के कारण उस राष्ट्रभाषा में उनके उर्दू शब्दों को विशेष प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए। यह बात निश्चित हुई ही है, अतः यदि तुम सत्य ही सट्टा बाजार तथा चोर बाजार की भाषा जानते हो तो उसमें प्रचुर मात्रा में उर्दू एवं अन्य भाषीय शब्द आने के कारण तुम अपनी कविता धड़ल्ले से करना आरंभ करो। भई, टैगोर की बंगला कविता बँगाल के बाहर कोई पढ़ता है? परंतु यदि तुम उस भावी राष्ट्रीय भाषा की

उर्दू-बहुल बाजारू भाषा में कविता करोगे तो तुम्हारी उस बाजारू कविता का पूरे हिंदुस्थान में घर-घर पठन होगा। सौ बातों की एक बात यह कि अब तुम उठो और काव्य-रचना कार्य में जुट जाओ।''

इस झटके के साथ नागोजीराव तुरंत उठे और घर जाकर उन्होंने दो-चार कविताएँ प्रथमत: सुलेखन के नमूने के तौर पर मराठी भाषा में रातोरात लिखीं। मुक्तबंध छंद में रचना के उद्देश्य से निकले थे, परंतु अबोधता से वह कविता छंदोबद्ध हो गई। आद्य कवि की भी यही दशा हुई थी। शोक-संतप्त होकर वे चीखना चाहते थे पर अनुष्टुप की रचना कर बैठे।

'परकीय शब्दों में मराठी प्रत्यय के लगाने से शुद्ध मराठी होती है' इस विश्वविजयी शास्त्राधार पर विरचित उस कविता का थोड़ा सा नमूना प्रस्तुत करते हैं—

(धुन—बाजीराव नाना। तर तूंबी भर दाना॥ कुछ इसी तरह)

रोमांस के राज में चल तय करें दूर की मंजिल।
प्रिये, तू पोएट्री एंड मैं एक तेरी गजल॥
इश्क से बेजार हूँ मैं टेक[१] न मेरी दाद।
गली-गली में शाउटूँगा[२] तेरी खद्दर जिंदाबाद॥
स्पीक एक वर्ड तो, रोता हूँ बिलख-बिलख।
रिक्वेस्ट न रिजेक्टो, मैं चाटूँगा तेरे पग॥
दिल की गोशाला में दया की जो गाय।
भरने दो स्तन दूध से उसके। डोंट मी[३] अनॉय॥
स्तोत्र स्वीटहार्टे[४]! तेरी सिंगता[५] हूँ बार-बार।
खुदी[६] तू मेरी मैं तेरा खुदाई खिदमतगार॥ १॥

इस कविता की विश्वव्यापी मराठी पर मूर्ख लोग हँसे थे, परंतु आज अनेक

---

१. अन्य परकीय शब्दों में प्रत्यय लगाने पर यदि वे मराठी बनते हैं, तो उसी न्याय से अंग्रेजी क्रियापद भी आत्मसात् करें, इस मत के आधार पर टेक—ले लो।

२. शाउटूँगा—गर्जना करूँगा।

३. मी—मुझे।

४. स्वीटहार्ट—प्रिये।

५. सिंगता—गाता हूँ।

६. खुदी—ईश्वर। उसे हिंदी में अपनाने के लिए हिंदी व्याकरण के हथौड़े से ठोंककर उसका स्त्रीलिंग बनाया, जैसे—देव की देवी, उसी तरह खुदा की खुदी।

कवि अपनी मराठी कविता में खुदाई, खिदमतगार और जिंदाबाद आदि शब्दों का सचमुच प्रकट रूप में प्रयोग करते हैं। इस बात पर पिछले वर्ष की कुछ मराठी पत्रिकाएँ उलट-पुलट करते हुए ही पाठक गौर करेंगे।

इस कविता से नागोजीराव कविमंडल में झलकने लगे। फिर भी उन्हें खुली सभा में अपना काव्य स्वयं ही गाने का अवसर भाषाशुद्धिवाले पुराने कवियों की जलन से आज तक कहीं भी नहीं मिला था। वह अवसर शेंदाड़पुर के इस शिवाजी उत्सव को बड़े स्तर पर संपन्न करने के लिए नागोजीराव ने उसके कार्यवाहक पद को स्वयं स्वीकार करते हुए एक अत्यंत रंगारंग तथा शानदार कार्यक्रम आयोजित किया था।

परंतु इस कार्यक्रम को उत्सव मंडल की सम्मति की मुहर लगवाने के लिए उन्हें बहुत पापड़ बेलने पड़े। हाँ, सत्कार्य में नित्य ही अनेक आपत्तियाँ आती हैं। प्रथमत: उस जिले के लोकप्रिय कलेक्टर मि. ब्लैकस्टोन ने सभी सरकारी कर्मचारियों को संबोधित करते हुए जो एक परिपत्र निकाला था, उसपर विचार करना पड़ा। उस परिपत्र में लिखा था—

'शिवाजी उत्सव को यदि सचमुच ही राष्ट्रीय स्वरूप मिला हो तो सरकारी कर्मचारियों को उसमें हिस्सा लेने में कोई आपत्ति नहीं। वास्तविक राष्ट्रीय स्वरूप इस तरह है कि इस उत्सव के कार्यक्रम में मुसलमान, ईसाई, यहूदी, यूरोपियन सभी के प्रतिनिधि संतोषपूर्वक आ सकेंगे। शिवाजी के चरित्र के ऐसे ही अंश का चयन करें और जनता के सामने प्रस्तुत करें जिससे सरकारी कर्मचारी और नागरिक दोनों की शांति और सुव्यवस्था का बाल भी बाँका न हो। राष्ट्र की वर्तमान स्थिति शिवकालीन परिस्थितियों से अवनत हो गई है, अत: उसे सुधारने के लिए शिवाजी आए थे, इस तरह का कोई भी अंड-बंड उल्लेख उसमें न हो। अधिक-से-अधिक वर्तमान शांति, सुखमय परिस्थितियाँ तत्कालीन धूमधाम, आपाधापी, लूटपाट, मारपीट, जंगली-बर्बर परिस्थितियों से कितनी सवाई हैं और आज यदि शिवाजी महाराज होते तो वे भी शांति और शिक्षा के ये लाभ देखकर प्रथमत: प्राइमरी स्कूल, फिर हाई स्कूल और अंत में रामकृष्ण मिशन की बात करते। बस केवल इसी अर्थ में इस शिवाजी उत्सव में वर्तमान स्थितियों का उल्लेख हो, अन्यथा केवल ऐतिहासिक दृष्टि से तत्कालीन घटनाओं का ही ऊहापोह करें और उस शिवाजी उत्सव का समापन Britania! Britania rules the wave ! इस प्रकार किसी बढ़िया तथा अनापत्तिजनक साम्राज्य-गीत में किया जाए। इस प्रकार के कार्यक्रम के साथ जो-जो शिवाजी उत्सव संपन्न हो, उसमें सरकारी कर्मचारियों को हिस्सा लेने में कोई आपत्ति नहीं, वे उनमें अवश्य सम्मिलित हों।'

कलेक्टर का परिपत्र नागोजी कवि के काव्य पर एक वज्राघात था। क्योंकि, उस शिवाजी उत्सवार्थ कलेक्टर के परिपत्र में निषेधाज्ञा थी। 'भूमाता कसाई के छूरे के नीचे रँभाती है। आओ, शिवाजी! बीजापुर के रास्ते में जिस प्रकार उस गाय को मुक्त किया उसी तरह हे शिवराया! आओ, इस गाय को भी मुक्त करो' आदि पाँच-दस पंक्तियाँ तो इतनी ज्वलंत थीं कि तालियों की गड़गड़ाहट गूँज उठती। परंतु हाय, कवि नागोजी की वही मार्के की पंक्तियाँ हटा दी गई थीं, क्योंकि वैसी कविता रखी गई तो सरकारी अधिकारी नहीं आएँगे और शिवाजी उत्सव मनाने का साहस शेंदाड़पुर के शिष्ट नागरिकों ने जो इस वर्ष किया वह इसी आधार पर कि उसमें सरकारी अधिकारी भी उपस्थित रहें। उत्सव मंडल के अध्यक्ष रायबहादुर पाटोले ने स्पष्ट कह दिया कि यदि शिवाजी उत्सव को राष्ट्रीय स्वरूप देना हो तो सरकारी कर्मचारी, जो राष्ट्र का अत्यंत महत्त्वपूर्ण वर्ग है, उसमें सम्मिलित होना ही चाहिए और अराष्ट्रीय शिवाजी उत्सव हमें नहीं मनाना है। अत: सर्वसम्मति से यही तय हो गया। सभी कार्यक्रमों में केवल सरकारी परिपत्र द्वारा आयोजित अंश रखा गया। ऐसे निबंध, भाषण और कविताओं का ही, जिनमें शिवाजी महाराज की चरित्र विषयक केवल ऐतिहासिक चर्चा की गई है, इस नए कार्यक्रम में समावेश किया गया। यह समझते ही स्वयं कलेक्टर महोदय मि. ब्लैकस्टोन अध्यक्ष पद स्वीकारने के लिए तैयार हो गए।

इतने में दूसरी अड़चन अचानक आ धमकी। यह सोचकर कि चलो, शिव चरित्र की ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन तो निषिद्ध नहीं, नागोजी कवि ने अफजल खान वध पर कविता करने का निश्चय किया। उन्होंने यह उद्देश्य सामने रखकर दो पदों की रचना की भी। केवल इतिहास को सामने रखकर ही लिखना, वर्तमान का उल्लेख भी नहीं, और स्वागत समिति की बैठक में रायबहादुर पाटोले की पूर्ण सम्मति से नया कार्यक्रम पढ़ा। उसमें अफजल खान वध पर रचित पोवाड़े का गान भी होगा, इस वाक्य का उन्होंने उच्चारण क्या किया कि अचानक कोई ऐसे दहाड़ा, ऐसे दहाड़ा जैसे उसके शरीर में साक्षात् अफजल खान का संचार हुआ हो, 'Stop! Stop that humbug!' इस तरह कोई चिल्लाया। देखा तो यह खानबहादुर फाजल खान साहब थे, उत्सवमंडली के उपाध्यक्ष।

खानबहादुर ने अपनी टूटी-फूटी मराठी में दो-टूक जबाब दिया, "आग लगा दो हिस्ट्री को! इस उत्सव में ऐसा एक भी लफ्ज न कहा जाए जिससे पाक मुसलमानों के दामन पर धब्बा लगे। उस काफिर शिवाजी का हम नाम तक सुनना नहीं चाहते, पर क्या करें। कलेक्टर साहब की ही चिट्ठी आई कि राष्ट्रीय स्वरूप का कार्यक्रम है, आप बेशक पधारें, इसीलिए तो उस बुतपरस्त शिवाजी का नाम भी

सुनने के लिए राजी हो गया। फिर तुमने यह क्या बदमाशी की! अफजल खान का वध! हूँ! वध-उध की बात हम बिलकुल नहीं सुनेंगे। भई, इतिहास की जरूरत ही क्या है इस हंगामे में? ज्यादा-से-ज्यादा किसी ऐसी कविता की रचना करो जिसमें अफजल खान ने ही शिवाजी का वध किया हो, वरना हम चले।''

''हाँ! हाँ! खानबहादुर साहब! ठहरिए, माफी चाहते हैं। सुनो तो सही, हम आपकी सारी बात मानते हैं। फिर तो ठीक है न?'' कविवर रायबहादुर पाटोले ने इस तरह का निर्णय किया। उसके साथ ही नागोजी रचित अफजल खान का पोवाड़ा नहीं, पर वीररसपूर्ण कुछ भी काव्य जो शिवाजी से संबंधित हो, निषिद्ध घोषित किया गया। मन-ही-मन कुढ़ते, झल्लाते परंतु ऊपरी तौर पर सौम्यता का अवतार बनते नागोजीराव ने इस शिवाजी उत्सव में कार्यवाहक के नाते पूछा, ''तो फिर यही ठीक है कि शिव चरित्र पर कुछ भी नहीं बोला जाए! इतिहास-कथन भी रद्द किया जाए। क्यों? शिवाजी विषयक ये सारे निबंध वापस लौटाता हूँ।''

रायबहादुर पाटोले ने तनिक सोचकर कहा, ''ठहरो। यदि शिव चरित्र का वह हिस्सा निकाला जाए जो खानबहादुर की आँख की किरकिरी बना था तो बात बन जाएगी। शिव चरित्र से ऐसा बहुत कुछ निकाला जा सकता है जिससे मुसलमानों की भावनाओं को चोट पहुँचे। क्यों खाँ साहब, आप ही चुनकर दें।''

उस राष्ट्रीय शिवाजी उत्सव में खानबहादुर-सम्मत ऐसा शिवाजी-चरित्र पठन करना तय हुआ जिससे मुसलमानों की भावनाओं को ठेस न लगे। वह एक श्लोकी रामायण की तरह केवल चार चरणों का ही था—शिवाजी मुसलमानों के अंकित शाहजी नामक एक सरदार का पुत्र था। उसकी माता का नाम जीजाबाई था। वह किसी एक तारीख (१६२० से १६३० के बीच) में जन्मा। (जन्मतिथि वर्ष विवादग्रस्त होने के कारण राष्ट्रीय उत्सव में दोनों पक्षों का समाधान हो सके, इसलिए निश्चित तिथि और वर्ष नहीं बताया गया) जन्म के पश्चात् बहुत दिनों तक जीवित रहकर सन् १६८० में उसकी मृत्यु हो गई।

इस सर्वसम्मत राष्ट्रीय शिव चरित्र पर भी खानबहादुर का एक अभिप्राय अंकित हो गया। यही कि शिवाजी का जन्म होना ही मुसलमानों की भावनाओं को ठेस पहुँचाता है। इस एक उल्लेख की ओर मुसलमान भाई गौर न करें और सहिष्णुता दिखाएँ।

शिवाजी का यह राष्ट्रीय चरित्र स्कूलों में पढ़ाने में कोई हर्ज नहीं, इस तरह नागपुर राष्ट्रभाषा समिति ने शिवा बावनिस रद्द करने के पश्चात् गांधीजी की रुचि के अनुसार निर्णय दिया।

परंतु नागोजी कवि के सामने जो प्रमुख प्रश्न था, उसे कैसे सुलझाया जाए?

अब ऐसे कौन से विषय पर काव्य रचें जो इस शिवाजी उत्सव में नई राष्ट्रीय कसौटी पर खरा उतरे और मुसलमानों को भी जँचे? इतने में उन्हें एक युक्ति सूझी। शिवाजी उत्सव का अर्थ है पराक्रम, विक्रम। परिवर्तित परिस्थितियों में विक्रमों का क्षेत्र बदलेगा, परंतु महानता में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। अत: उसकी परिस्थितियों में जो विक्रम था, वह शिवाजी ने किया। उसी तरह सद्य: परिस्थितियों में जो विक्रम है, वह आज करनेवाला मनुष्य भी ऐसे उत्सव में सम्मानित होने योग्य ही होगा। इस उत्सव में उसीपर काव्य रचना करते हुए उसका गान करें।

सौभाग्यवश शेंदाड़पुर के नागरिकों में ही इसी तरह के एक पराक्रमी वीर का अभी-अभी उदय हो रहा था। वहाँ के नरु नाई ने चौबीस घंटे सतत उस्तरा चलाने का जागतिक विक्रम किया था। सैकड़ों लोगों का मुंडन करते-करते अंत में सर मुड़ाने के लिए, हजामत करने के लिए, मूँछें उतारने के लिए जब कोई मनुष्य मिलना बंद हो गया तब उसने लगे हाथों भैंसों के बाल मूँड़ना प्रारंभ किया। परंतु चौबीस घंटे लगातार उसने उस्तरा-कैंची जो चलाई थी, उसे पल भर के लिए भी नीचे नहीं रखा था। संपूर्ण विश्व के नाइयों में दाढ़ी-मूँछ बनाने में उसने उच्चांक प्राप्त करके केश कर्तन का जो विक्रम किया, उससे इस युग में महाराष्ट्र के नाम को चार चाँद लग गए थे। यूरोप में भी पराक्रम किए जाते हैं, परंतु यूरोपीय लोगों में इस प्रकार का सच्चा पौरुष कृत्य करके उसमें उच्चांक प्राप्त करने की क्षमता कहाँ होती है? हवाई जहाज अच्छी अवस्था में हो तो कोई भी उड़ान भरेगा। वह यंत्र का प्रताप है, न कि पौरुष का। परंतु चौबीस घंटे सतत बीड़ियाँ फूँकते अथवा सतत चाय ढकोसते अथवा सतत केश कर्तन करने में पुरुषशक्ति का वास्तविक प्रताप, शौर्य अभिव्यक्त होता है। क्योंकि यहाँ यंत्रशक्ति का सवाल नहीं। यहाँ तो हस्तशक्ति, श्वसन शक्ति अथवा उदरशक्ति का कमाल होता है। उसपर केश कर्तन की चीमड़ता में उच्चांक प्राप्त करना, रेकॉर्ड बनाना, यह तो विशुद्ध पौरुषेय कृत्य है। क्योंकि हमारे यहाँ अभी तक महिलाओं का केश कर्तन नहीं होता, न ही उन्हें दाढ़ी-मूँछें निकलती हैं, अत: चिकनी-चुपड़ी दाढ़ी बनानी हो, मूँछें उखाड़नी हों तो प्राय: पुरुषों की ही उखाड़नी पड़ती हैं। केश कर्तन का प्रमुख संबंध मुख्यत: पुरुषों से ही होने के कारण यह वास्तविक पौरुषेय कृत्य सिद्ध होता है। हजामत बनाने में उच्चांक प्राप्त करना ही निर्मल, खालिस पुरुषार्थ सिद्ध होता है। ये सारे मौलिक विचार कविता में भरने की योजना बनाकर कवि ने कार्यक्रम में वह अंश भी प्रसिद्ध कर डाला।

'चौबीस घंटे सतत केश-कर्तन करने में जिसने विश्व रेकॉर्ड तोड़ा, उस श्मश्रूविक्रामक नरु नाई का गौरव। उस वीरपुंगव पर विरंचित कविता का प्रशस्ति काव्य गायन। आइए, देखिए और सुनिए।' इस तरह के विज्ञापन भड़कीले रंगों में

इधर-उधर लहराने लगते ही शिवाजी उत्सव के दिन जनता की रेलपेल हो गई। लोग इस तरह ठसाठस भर गए कि वहाँ अब चींटी भी पग नहीं रख सकती थी।

उसपर राष्ट्रीय शिवाजी उत्सव! हिंदू ही नहीं अपितु मुसलमान, यहूदी, पारसी, सरकारी, अर्धसरकारी, गैरसरकारी मनुष्य मात्र का भीड़-भड़क्का हो गया। शिवाजी उत्सव ही क्यों, किसी भी प्रश्न को इस तरह का राष्ट्रीय रूप दिया जाए तो वह किस तरह महानता की चोटी पर पहुँचता है, राष्ट्रीय एकता अपने आप किस तरह होती है, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण था। अंततः उत्सव आरंभ हो ही गया। स्वयं कलेक्टर मि. ब्लैकस्टोन अध्यक्ष स्थान को विभूषित कर रहे थे। उन्होंने रायबहादुर पाटोले को शिव-चरित्र कथन करने का आदेश दिया। उन्होंने ऊपर चार पंक्तियों का चरित्र जैसे-तैसे पढ़ लिया। इतने में दर्शकों में शोरगुल होने लगा, 'हुश्! हुश्! बस करो। भई नरु नाई कहाँ है? नागो कवि उठो।' तब नागो कवि लपककर उठे और दर्शकों के व्यवहार का समर्थन गरजदार शब्दों में करने लगे—

"मैं जानता हूँ, शिव-चरित्र सुनने के लिए आप यहाँ नहीं आए हैं। प्राइमरी की क्रमिक पुस्तकें, इतिहास, पोवाड़ा, नाटक, उपन्यास जिसमें देखो शिवाजी का चरित्र उकेरा जाता है। उसे सुनते-सुनते आप लोगों के कान पक गए हैं। वर्तमान राष्ट्रीय कार्यकारी पीढ़ी को अपच हो गया है। उन्हें अब कोई ऐसा आधुनिक पराक्रमी पुरुष चाहिए, जिससे कि आज उपयुक्त प्रेरणा मिले। वर्तमान राष्ट्रीय पीढ़ी को भला वह दकियानूसी पराक्रमी शिवाजी कैसी शिक्षा दे सकता है? जो लोग उनके चरित्र का गान करते हैं, वही कहते हैं कि सद्यः स्थिति में शिव-चरित्र से कुछ सीखना हो तो यही कि वैसी मूर्खता न करना जैसीकि शिवाजी ने की थी, यही बुद्धिमानी है। अतः पूर्वकालीन एक महान् हस्ती के रूप में शिवाजी महाराज को मान्यता प्राप्त हुई है, तथापि उनका उत्सव मनाने के अतिरिक्त आज उनके पराक्रम का हमें क्या लाभ है? वर्तमान पीढ़ी के सम्मुख ऐसे ही सुधारित पराक्रमों के आदर्श रखने चाहिए जिनका प्रत्यक्ष उपयोग है। ऐसे ही एक पराक्रमी वीर का सम्मान आज हम करेंगे। देखिए, वह वीरपुंगव। (इतना कहते ही परदा हटाकर नरु नाई कूदकर आगे बढ़ता है।) यह देखो नरु नाई (तालियों की प्रचंड गड़गड़ाहट। इसके साथ ही कवि नागो आग-भभूका होते हुए दहाड़ते हैं।) देखिए रायगढ़ का वह पुराना शिवाजी और यह देखिए हमारे शेंदाड़पुर का आधुनिक शिवाजी! इसका उस्तरा उस शिवाजी की भवानी तलवार से भी कई गुना अधिक दमक रहा है। उसकी यह छुरहरी (नाई का थैला या पेटी जिसमें वह अपने औजार रखता है) अर्जुन के अक्षय्य तूणीर को भी नीचा दिखा रही है। यदि यहाँ पर शिवाजी महाराज उपस्थित रहते तो इसमें मुझे कोई संदेह नहीं कि उन्होंने Misguided Patriotism

की उस भवानी तलवार को फेंककर नरु नाई का यह Spiritual Safety Razor हाथ में पकड़ा होता।''

इतने में पिटारों की सजी-सजाई भँडोली पर रखी महाराज की तसवीर जैसे धक्का लगकर गिरने लगी और उसे सँभालने के लिए श्री लुडवुडे आगे आ ही रहे थे कि तसवीर जोर-जोर से हिलने लगी। निचला पिटारा भी चरमराता हुआ डगमगया। दो-तीन जने उसे पुन: पक्का करने में जुट गए। इधर नागो कवि अपने धाराप्रवाही भाषण के आवेश में वाक्‌पटुता की बुलंदी के कगार पर आकर गरजने लगे, ''यदि आज यहाँ पर शिवाजी आ जाते···''

इतने में धाड़-धाड़-धाड़। जैसे एक साथ सैकड़ों तोपें दागी जाएँ ऐसा एक प्रचंड धमाका हो गया। संपूर्ण सभागृह थर्राकर हिलने लगा। उस तसवीर के नीचे की भँडोली कड़-कड़-कड़ करती हुई ढह गई, और उस तसवीर में से कवच-कुंडल, मुकुट मंडित भवानी तलवार सूँतते हुए साक्षात् गो-ब्राह्मण प्रतिपालक छत्रपति शिवाजी महाराज 'हर-हर महादेव' की गर्जना करते हुए सामने खड़े हो गए!

महाराज सिंह जैसे दहाड़े, ''अभी-अभी किसने कहा कि 'यदि आज यहाँ शिवाजी आ जाते?' यह देखो, मैं आ गया हूँ। कहो, क्या चाहिए?''

इस सिंह गर्जना के साथ संपूर्ण सभा बाँस की तरह थर-थर काँपने लगी। खानबहादुर फाजल खान साहब 'तोबा! तोबा! दगा!' इस तरह चिल्लाते हुए मंच से कूदकर भागने लगे। रायबहादुर पाटोले अपनी कुरसी पर ही ढेर हो गए। इतना घाघ बना अंग्रेज कलेक्टर ब्लैकस्टोन, इस अद्‌भुत चमत्कार के साथ दिन में तारे देखते-देखते चक्कर खाने लगा। इस मूर्च्छा में उसे आभास होने लगा कि महाशय सूरत के एक गोदाम में हैं, मरहट्टों की चमचमाती हुई नंगी तलवारें चारों ओर से आक्रमण कर रही हैं, टेबल के स्थान पर बोरियों का ढेर पड़ा है। बेचारे भीगी बिल्ली बने उन बोरियों की राशि की ओट में अर्थात् टेबल के नीचे दुबक गए।

और बेचारा नागो कवि! धम से नीचे गिर रहा था, परंतु महाराज ने उसका एक कान खट से उमेठकर उसे खड़ा करते हुए पूछा, ''क्यों रे, मुझे किसलिए बुला रहा था? और क्या अंट-शंट बक रहा था? आँ?''

कविराज की तो घिग्घी बँध गई। जीभ तालू से चिपक गई। सिटपिटाते हुए कहने लगे, ''म···म···महाराज श···श···क्षमा करें। यदि यह जानता कि आप सचमुच ही पधारेंगे तो कभी भी आपको बुलाने का साहस नहीं करता जी! 'आओ, शिव भूपाल' इस तरह तो हर कोई गाता है, अत: मैं भी कुछ यूँ ही बक गया। म···म···म··· म··· मुझे···च···च···चक्कर आ रहा है जी! मैं आपके पाँव पड़ता हूँ, पहले आप मेरा कान छोड़िए। इस दास को कुछ समय के लिए मूर्च्छा में ही पड़े रहने दें।''

''ठीक है!'' महाराज मुसकराए, ''लो, छोड़ देता हूँ। परंतु स्मरण रखो तुम सब लोग, फिर कभी किसीने किसी भी शिवाजी उत्सव में 'आओ' कहा तो महाराष्ट्र में मैं···शिवाजी शहाजी भोंसले पुनः आ जाऊँगा।''

''नहीं, नहीं! अन्य जो भी दंड दीजिए, हम सहेंगे, परंतु महाराष्ट्र को इतना भयंकर दंड मत दीजिए। हम अधिक-से-अधिक शिवाजी उत्सव का भार उठा सकते हैं, परंतु शिवाजी का नहीं। भई, हमारी पीढ़ी के लिए यह नरु नाई और उसका पराक्रम ही पर्याप्त है। उसका Safety Razor उसे अथवा बकरी के दूध पर पले-बढ़े किसी अन्य कापुरुष को हमारा शिवाजी बनाओ। परंतु महाराज, आप तो शेरनी के दूध पर पले-बढ़े शेर हैं। आप स्वयं ही अपनी धाक हम गरीबों पर मत जमाइए। हम शिवाजी उत्सव चाहे जितने भी मनाएँगे।''

''नहीं! अरे शेंदाड़पुर के गौवरैलो, तुम्हारा यह कथन सही है कि तुम्हें शिवाजी नहीं चाहिए। परंतु इसीलिए तुम लोग भविष्य में कभी शिवाजी उत्सव नहीं मनाना। यदि पुनः कभी इस तरह राष्ट्रीय-शिवाजी उत्सव मनाकर चंद्रराव मोरे की तरह हमारी अवमानना करने की चेष्टा की तो···तो आँखें खोलकर यह देखो···'' जैसे लाखों विद्युत् ज्वालाएँ टूट पड़ी हों, इस तरह एक असहनीय आलोक जगमगा उठा, भवानी तलवार के उस रेले के साथ सारी सभा मूर्च्छित हो गई।

नागो कवि भी मूर्च्छित हो गए। परंतु कभी-कभी 'मेरी कविता···अरे कविता गान···वैसे ही रह गया··· कविता' इस तरह चौंकते हुए वे बड़बड़ाते रहे।

□

आधिदैविकता और मानवता

कोंकण (महाराष्ट्र का पश्चिमी तटवर्ती प्रदेश) में 'देवसकी' (ईश्वर की मन्नत मानना) शब्द जिस-तिसके मुख में रचा-बसा हुआ है। इसका पारिभाषिक अर्थ इस तरह है कि हैजा, प्लेग, अवर्षण, सूखा, माता निकलना, तपेदिक, भूकंप आदि जो भीषण विपत्तियाँ आती हैं—वे ईश्वरीय प्रकोप के कारण; और जो उनके निराकरण के सुलभ-से-सुलभ एवं अमोघ अस्त्र हैं उस प्रत्येक क्रुद्ध देवी-देवता की चिरौरियाँ करना, मिन्नतें करना। प्लेग आ धमकने से बहिरोबा देवता को बकरे की बलि चढ़ाना, हैजा फैलने से मरी माता के नाम पर मुरगियाँ, वर्षा न होने पर शिवलिंग पर संतत धारा अथवा रुद्र की अथवा वेदोक्त पर्जन्य सूक्तों का पारायण जिसमें मंडूक देवता का स्तवन है और 'हे हरे-भरे मंडूक, प्रसन्न हो और वर्षा करो' आदि स्तवनों का पठन करने से वर्षा होती है। यह वेद-वचन है, वेदोक्त आधिदैविकता। सर्वारिष्टा शांति प्रीत्यर्थ। 'श्रीराम, जय राम जय जय राम' यह मंत्र कोटि बार जपने से हो गया कार्य सफल। भरतखंड पर आनेवाली सारी आपत्तियाँ, अनिष्ट दूर करने के लिए यह रामबाण टोटका है पुराणोक्त आधिदैविकता। देवता की मनुहार करने का कोंकण के घर-घर में रिवाज है। मराठे, भंडारी, ब्राह्मण, महार आदि ग्रामवासी देवलक (मंदिर का अब्राह्मण पुजारी) से किसी भी महामारी अथवा विपदा में ईश्वर पर फूल चढ़ाते हैं; और अमुक-अमुक बाजू का फूल गिरने से यह-वह होगा, इस प्रकार निश्चित करते हुए प्रतीक्षा करते हैं। उस ओर का फूल गिरने का वही कारण। अथवा पुजारीजी संत-महालक्ष्मी से देवता का संचार कराते हुए पूछते हैं, 'हे ईश्वर, प्लेग की महामारी क्यों फैली है? आग क्यों लगी? हैजा क्यों फैला? वर्षा कब होगी?' जिनके शरीर में ईश्वर का संचार हुआ है वे पुजारी, महालक्ष्मी जितने काठ के उल्लू होते हैं, उतना ही बेचारा ईश्वर। इन पुजारी-ढोंगी साधु-महालक्ष्मी के, जिन्हें वैद्यकीय अथवा वैज्ञानिक कारणों का रत्ती भर भी ज्ञान नहीं होता, कारण और उपाय प्रायः अलल बछेड़ापन के होते हैं। ताऊन (प्लेग) क्यों हो गया? फिर

निश्चित उत्तर, 'बहिरोबा के बलि के बकरों की थक बाकी है।' पिछले पाँच वर्षों से मरी माता को भरपेट मुरगियाँ नहीं मिलीं अतः ताऊन हो गया, हैजा भड़क उठा, बरखा रानी रूठ गई। यह है प्राकृतिक आधिदैविकता। सभी प्रकार की मिन्नतों में प्रमुख निष्ठा, मूल तत्त्व यही है कि किसी भी रोग की महामारी, संक्रमण, आपत्तियाँ, सृष्टिक्षोभ आदि घटनाएँ ईश्वर के क्रोध एवं लोभ से घटती हैं। वह ईश्वर की इच्छा है। प्रकृति के अबाधित नियमागत 'क्रम' नहीं और इस प्रकरण में बचाव का उपाय है देवता की हाँ जी-हाँ जी करना, पूजा-प्रार्थना, श्राद्धादि पारलौकिक आचार पालन, यज्ञ, बलि आदि देवताओं को प्रसन्न करने की विद्याएँ, आधिभौतिक नहीं, अपितु आधिदैविक।

ब्राह्मणों की मृत्यु क्यों होती है?

मनुस्मृति में पाँचवें अध्याय के आरंभ में ही महर्षि ने 'अनलप्रभवं भृगुम्' प्रश्न किया कि 'कथं मृत्युः प्रभवति वेदशास्त्रविदां प्रभो'—ब्राह्मण की मृत्यु क्यों होती है? उसपर महर्षि भृगु ने उत्तर दिया, 'श्रूयताम् येन दोषेण मृत्युर्विप्रान् जिघांसति। अनभ्यासेन वेदानाम् आचारस्य च वर्जनात्। आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्रान् जिघांसति।' वेदों का अध्ययन नहीं किया, 'आचारों' का त्याग किया, आलस्य बढ़ गया। इससे वेदज्ञ विप्रों की मृत्यु होती है। इस उत्तर में सब कारण किस प्रकार आधिदैविक हैं, यह तत्काल ज्ञात होगा और इसलिए इसमें कोई आश्चर्य प्रतीत नहीं होता कि स्वयं ही व्यवहार में वे किस प्रकार मिथ्या सिद्ध होते हैं। 'आचार' का अर्थ है स्नानसंध्या, पितृतर्पणादि धार्मिक आचार, अन्नदोष। लहसुन, प्याज, पेवस (गाय-भैंस के ब्याने के दिन से सात दिनों तक का दूध औंटाकर बनाई जानेवाली एक मिठाई), खीर आदि पदार्थ सेवन यदि विप्र करे तो वह तत्काल 'पतित' होता है, फिर नर्क में जाता है। यह अन्नदोष है और इस प्रकार के धार्मिक अन्नदोष से, आचार-त्याग से तथा वेदाभ्यास न करने से मृत्यु होती है। इस धार्मिक तथा आधिदैविक कारण मीमांसा को आधिभौतिक कारणमीमांसा अर्थात् विज्ञान द्वारा किसी भी कांड में मिथ्या सिद्ध किया कि उस मामले में 'देवसकी-मिन्नत मनौती' का प्रदेश समाप्त होता है और 'मानवता' का प्रांत प्रारंभ होता है।

लहसुन, प्याज कुछ रोगों के लिए हितकर उपकारक हैं। उनका सेवन करने से ब्राह्मण मरते नहीं, जीवित रहते हैं। सैकड़ों, सहस्रों ब्राह्मण प्याज, लहसुन, पेवस, तोरई आजन्म सेवन करते हैं। मनुस्मृति लिखित सौ-सवा सौ 'अन्नदोष' नित्य ही करते हैं फिर भी वे दीर्घायु होते हैं, कभी तत्काल नहीं मरते; और जो लहसुन, प्याज नहीं खाते वे प्रत्येक संक्रामक रोग में आनन-फानन मरते हैं। कोई ब्राह्मण ऋग्वेद का

पाठ कर रहा है, इसलिए उसे डसने के लिए कभी प्लेग की पिस्सू रुकती है भला? और ऐसा भी नहीं होता कि उतने समय में इस बात की खोज-खबर लेते-लेते कि वेद जिस-जिस ब्राह्मण ने नहीं पढ़ा, उस-उसको वह डस रही है। प्लेग, हैजा, माता का टीका लेने पर ऐसे निन्यानबे प्रतिशत ब्राह्मण जीवित रहते हैं, जिन्होंने कभी वेद पठन नहीं किया अथवा मनुस्मृति के अंतर्गत आचार एवं अन्नदोष नहीं माने। ऐसे आस्तिक ब्राह्मण जो वेदाभ्यासरत हैं और यथासंभव स्नानसंध्याशील हैं, सापेक्षत: अन्नदोष टालते हैं; प्लेग, कौलरा, माता के चंगुल में फँसते ही टीका नहीं लगाने अथवा भौतिक औषधियों का सेवन नहीं करने से तो उनमें से नब्बे प्रतिशत प्राय: फटाफट मर जाते हैं। यह प्रत्यक्ष अनुभव मनुस्मृति की मिन्नत-मनौतियों, अथवा हमारे कोंकण के 'ईश्वर से शिकायत' या देवलक की देवता भक्ति को एक अंधविश्वास के अतिरिक्त रत्ती भर भी महत्त्व नहीं देता।

रोग, भूकंप, उत्पात ये सब सृष्टिक्रम के अबाधित कार्य-कारण भावना के परिणाम हैं। इन नियमों का जिस अनुपात में हमें आकलन होगा, उसी तरह उस घटना में मनुष्य सृष्टि और उन उत्पातों से अपनी रक्षा करने में समर्थ होगा। अंधविश्वासात्मक प्रार्थना, पूजा अथवा भोग चढ़ाने से सृष्टिक्रम में परिवर्तन कदापि नहीं हो सकता। रोग के औषधि-प्रयोग द्वारा अमोघ, रामबाण सिद्ध होते ही देवी-देवताओं के इस मनुहार का महत्त्व धीरे-धीरे घटकर मानवता का स्वामित्व प्रस्थापित होता है। मनुष्य अनुमान, दैवी उपायों के जाल में फँसकर निश्चित और अमोघ मानुषी आधिभौतिक उपायों पर निर्भर रहता है।

जो राष्ट्र 'आधिदैविकता' की अंधविश्वासी सीढ़ी को पार करते हुए 'मानवता' की सीढ़ी पर चढ़ते हैं और मनुष्य के प्रयोगसिद्ध तथा साक्षात् ज्ञान से 'धार्मिक' छाप की धारणाओं का, जिन्हें मिथ्या सिद्ध किया गया है, तुरंत त्याग करते हैं, ऐसे राष्ट्र प्रकृति के जीवन-कलह में अपना बचाव करते हैं।

वर्तमान सभी राष्ट्रों में यदि कोई इस आधिदैविकता जैसे अंधविश्वासी अटकलपच्चू के युग से मानवता के विज्ञान के युग में प्रवेश पा सका हो, संपन्न-समृद्ध बन रहा हो तो वह है यूरोपीय जानपद।

सभी प्राचीन धर्मग्रंथों में फिर वह भले ही वेद हो, बाइबिल हो अथवा कुरान, 'आधिदैविकता' के अटकलपच्चू का ही सिक्का जमा हुआ दिखाई देता है। उस समय वह स्वाभाविक ही था। दो सौ वर्ष पूर्व यूरोप में भी भूकंप, रोग, उत्पात देवताओं के प्रकोप से होते हैं, प्रार्थना, पूजा, मंत्र-तंत्र से इनका शमन होता है—ईसाई धर्म की इसी शिक्षा, इसी आधिदैविकता की सर्वत्र धूम मची हुई थी। लिस्बन में फ्रेंच राज्यक्रांति से पहले भूकंप हुआ, वह प्रोटेस्टेंटपंथियों के 'पापों' का फल है

और उसका शमन उनके प्रायश्चित्त से ही होगा, इस मुद्दे को लेकर बावेला मचा, दंगा-फसाद हुए। इसी कारणवश प्रोटेस्टेंटपंथियों को नृशंस यंत्रणाएँ दी गईं। फ्रेंच राज्यक्रांति के पश्चात् यूरोप तेजी से विज्ञानवादी बनने लगा। सृष्टि नियमों का ज्ञान ही उनका शास्त्र और यही उनका धर्म होने लगा, देव-देवसकी के आधिदैविक प्रशासन का अस्त हुआ और मानवता के राज का अरुणादेय हो गया। परिणामत: यूरोप जो पूजा-प्रार्थना, धूप-दीप, धार्मिक अर्थवाले पाप-पुण्य—इन सभी की सबसे कम चिंता करता था, आज संपूर्ण मानव जाति में समर्थ, दीर्घायुसंपन्न एवं जगत्-सम्राट् महाद्वीप बन गया।

परंतु जिस तरह यूरोप ईसाई अंधश्रद्धा, टोटकों से मुक्त हुआ वैसे अभी तक एशिया नहीं हुआ है। भारतीय हिंदू क्या, मुसलमान क्या और क्या बौद्ध हिंदू—सभी हजारों वर्ष पुराने धार्मिक ग्रंथों में जो अटकलपच्चूयुक्त सृष्टिज्ञान तथा अज्ञान ग्रथित है, उसके बाहर पग रखना ही पाप मानते रहे, अत: वे सब आज भी निरर्थक देवसकी में फँसे हुए हैं। हैजा, माता, ताऊन आदि भयंकर बीमारियों के टीके डेढ़ सौ वर्ष पहले मनुष्य को ज्ञात नहीं थे, फिर इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है कि बाइबिल, कुरान आदि प्राचीन धर्मग्रंथों के समय उन संक्रामक बीमारियों द्वारा एक ही झटके में हजारों लोग कराल काल के मुख में जाते। तब पैगंबरों की भी मति कुंठित हो जाती और कुरान तथा बाइबिल के पन्ने-पन्ने पर उनका आक्रोश उभरता, 'यह देवता का प्रकोप है। नमाज पढ़ो, प्रार्थना करो, पूजा करो।' मुसलमान सोचते, मोहम्मद पैगंबर सच्चा है और इस अनन्य पैगंबर को आप नहीं मानते, इसीलिए देवता ने यह संक्रामक रोग भेजा। ज्यू सोचते, मूर्ति पूजा करने से ही यह छूत की बीमारी आ गई। यही अनुमान और उपाय, उपचार सृष्टि के वैद्यक ग्रंथों में न देखते हुए स्वरचित वैदिक ग्रंथों में, अपने-अपने धर्मग्रंथों में ढूँढ़ते। जितने ताव से तथा आवेश के साथ जप-जाप्य, सतत धारा, पीर-पैगंबर पूजा, गंडा-ताबीज, जंतर-मंतर, झाड़-फूँक का उपदेश वे करते उतने जोर से प्रकाश, शुद्ध वायु, शुद्ध पानी, जंतु विनाशक औषधियाँ आदि प्रत्यक्ष उपचारों के संबंध में कोई कुछ भी नहीं कहता। हाँ, तत्कालीन मनुष्य के लिए प्राकृतिक ज्ञान के अभाव के कारण यह अस्वाभाविक भी नहीं था। परंतु इससे मनुष्य का जो दिशाभ्रम हो गया वह तो इस हैजे की बीमारी, इस छुतहा बीमारी से भी मनुष्य के लिए हानिकारक सिद्ध हुआ। अंधविश्वास की आधिदैविकता की यह बीमारी आज भी समाप्त नहीं हुई है। हैजे पर रामबाण औषधि विज्ञान ने ढूँढ़ निकाली है, उसे हमारे देश में लाकर मनुष्य को टीका लगवाना चाहिए। अन्य टीके शरीर में लगते हैं, पर आधिदैविकता की संक्रामक बीमारी का यह वैज्ञानिक टीका मनुष्य के मन में लगाना होगा।

अंधविश्वास के दुष्परिणामों के उदाहरण इसीलिए बार-बार प्रसिद्ध करने चाहिए। हैजा, ताऊन जैसी संक्रामक बीमारियों की तरह ही निरीह, भोली-भाली अंधविश्वास की यह बीमारी भी किस तरह सैकड़ों लोगों को मृत्युमुख में ढकेलती है, इसका अनुभव हमारे देश में आज भी पग-पग पर होता है।

कुछ समय पूर्व रत्नागिरि में माता की छुतहा बीमारी फैली। हिंदुओं में टीका लगाने का कार्य चल रहा था। टीका लगवाने से हिंदुओं में मृत्यु के अधिक उदाहरण नहीं दिखाई दिए। परंतु पिछड़ी हुई मुसलमान बस्ती में अज्ञान, शिक्षा का अभाव तथा धर्मांधता हिंदुओं से भी अधिक मात्रा में होती है, अत: अज्ञानी मुसलमान बस्ती में कोई भी टीका लगवाने के लिए तैयार नहीं था। प्रत्येक व्यक्ति पीर की मन्नत मनाता, गंडा-ताबीज आदि बातों पर निर्भर रहता। बीमारी बढ़ने से फटाफट लोग मरने लगे। जिन समझदार मुसलमानों ने टीके लगवाए वे स्वस्थ रहे, इसका साक्षात् अनुभव करने पर देवसकी भी लड़खड़ाई और अज्ञानी मुसलमान भी शीघ्रतापूर्वक टीका लगवाने लगे और बच गए। इसी देवसकी की मूर्खता से रत्नागिरि स्थित दाभोके (तहसील संगमेश्वर) जैसे छोटे गाँव के अछूतों की बस्ती में नासमझ अछूतों पर कहर बरपाया गया। उनके सौभाग्यवश रत्नागिरि के डि.डे. कलेक्टर श्री मुंडकूर महाशय यूँ ही उस गाँव में गए थे, इसलिए संकट टल गया। अन्यथा वह बस्ती निर्मनुष्य हो जाती। देवसकी की आत्मविघातक मूर्खता का एक हृदयविदारक परंतु परिणामकारण उदारहण नीचे दे रहे हैं।

रत्नागिरि जिले में दाभोके गाँव संगमेश्वर तहसील में है। इस जिले की बड़ी-बड़ी अछूत बस्तियों में से एक है दाभोके की अछूत बस्ती। दिसंबर महीने में उसमें कम-अधिक एक सौ दस घर तथा छह सौ मनुष्य थे। इन अछूतों में से कुछ दूसरे गाँव खारेपाटण में रोजगार के लिए गए थे। उधर हैजे की बीमारी लगने से वे दाभोल में आकर मर गए। उनके संसर्गवश इस बस्ती में हैजे का संक्रमण होने लगा। एक के पीछे एक पहले तीन मौतें होते ही अछूत लोगों के छक्के छूटने लगे। उनकी पुरातन धारणा के अनुसार देवता का प्रकोप हो गया। कौलरा—हैजा एक विशिष्ट रोग है। वह कुछ कीटाणुओं से होता है, उन कीटाणुओं के लिए प्रतिकारक टीका लगवाने से यह बीमारी दूर होती है; विपुल प्रकाश, स्वच्छता, शुद्ध जलवायु, आदि प्रतिरोधक हैं जो इस बीमारी को फैलने नहीं देते। एक सरल उपपत्ति उन अछूतों को समझाने-बुझाने पर भी वह उन्हें एकदम फीकी पिलपिली लगती, जो इस भयंकर संक्रामक बीमारी की आसुरी सफलता के लिए अशोभनीय थी। वे इस बीमारी से भयंकर रूप से भयभीत होते। वे केवल उसे ही हैजे का वास्तविक कारण समझते और एक ऐसी उपपत्ति बताते जो इस भय का उतना ही रोमहर्षक कारण हो सकता।

अत: ऐसी कोई रोमहर्षक तथा कुपित उपपत्ति ही उन्हें जँचती। इस कसौटी पर कि हैजा एक रोग है, यह नई फीकी सी कारण-मीमांसा देने की अपेक्षा उन्हें उस गुरु पर ही अधिक विश्वास होगा जो यह स्पष्ट करेगा कि हैजा एक महामारी है; मरी माता उसकी एक महाकुपित देवी है, वह भयंकर रूप से क्रुद्ध हो गई है और बकासुर की तरह उसे बकरों की बलि चढ़ानी होगी; वह औषधियों से ठीक नहीं होती। मंत्र, पूजा, भोग, नमस्कार, बलिदान से ही उसके प्रसन्न होने की संभावना है। डॉक्टर का यहाँ प्रश्न ही नहीं था। हैजे को वे संक्रामक रोग मानते तो डॉक्टर का प्रश्न होता। इस बीमारी का अर्थ है—मरी माता देवी, जो एक फुफकारती शेरनी की तरह आपे से बाहर हो गई है, द्वारा मनुष्य को दिया गया भयंकर दंड। इसे रद्द कर सकती है हमारी पुजारन। संतमाई, यह चुड़ैल। क्योंकि यह मरी माता की मरजी सँभाल सकती है। यही जानती है कि किस तरह मरी माता के सामने हमारी फरियाद प्रस्तुत करनी है। मरी माता के सामने जाने की वकालत की सनद केवल उसे ही प्राप्त है। उस मुए डॉक्टर, वैद्य को कौन पूछता है? परंपरागत आधिदैविकता की विशेष भावना के अनुसार वे सारे 'महार' (अछूत) अपनी बस्ती की एक साध्वी की शरण में आ गए।

मरी माता की अछूत-बस्ती की साध्वी जो देवसकी के सारे टोने-टोटके जानती है

उसने तत्काल धोती कसकर हैजे पर जंतर-मंतर, छा-छू की झड़ लगाना शुरू किया। भई, उस अछूत बस्ती के घर बाहर-भीतर से झाड़-पोंछकर फिनेल से साफ करके, प्रकाशित करके स्वस्थ बनाने की आवश्यकता ही क्या थी? हैजा कभी घर में थोड़े ही होता है? यह विपत्ति तो किसी भी अन्य मनुष्य की तरह आँगन से दहलीज पर तथा ड्योढ़ी से भीतर प्रवेश करेगी। इस प्रकार गूढ़ विचार करते हुए उस 'साध्वी' ने प्रत्येक अछूत के आँगन में ही हैजे के लिए पहरेदार रखे—गोबर की तीन-तीन पट्टियों के वृत्त खींचकर अभिमंत्रित पट्टियों पर चाक से छोटे-छोटे वृत्त खींचे। इन वृत्तों में लाल मिरचियाँ जलाईं ताकि ड्योढ़ी तक पहुँचने से पहले ही वह बला हैजे की महामारी दम घुटकर, नाक में मिर्च जाने से छटपटाने लगे। टोने पर नून-राई से नजर उतारकर उसे मिर्च की धूनी में सतत फेंकते हुए वह साध्वी टोनों के मंत्रों की बौछार करती रही। उसके पश्चात् उसने इस बात का अवलोकन किया कि इस बस्ती में मरी माता का कितना लेना-देना शेष है। उधार, रेहन, खरीदा हुआ, बंधक तथा हफ्तों का कुल कतरब्योंत किया और यह तय किया कि अछूत बस्ती से मरी माता के लिए औसत तीन भैंसें आनी बाकी हैं। इतना सब स्पष्ट होने पर उस

अछूत बस्ती के आबालवृद्धों के साथ मरी माता के सम्मुख साध्वी ने नारियल रखकर मन्नत माँगी कि 'यह हैजा रोको। हम लगे हाथ तुम्हारे लिए तीन भैंसों की बलि चढ़ाकर पिछला बाकी चुकाएँगे।' उस बाकी के लिए हैजे का आसेधक (नाजिर) भेजकर मरी माता, जो उन अछूतों के प्राण जब्त कर रही थी; और उस नीलामी में मृत्यु उन्हें फटाफट बोली लगाकर खरीद रही थी, वह भीषण नीलामी अब रुकनी ही चाहिए, इस प्रकार उस साध्वी ने उन्हें आश्वस्त किया और उन अछूतों ने उसकी बात मान ली।

परंतु इधर? इधर घर-घर में लोग फटाफट मरने लगे। आज सुबह जो हट्टा-कट्टा स्वस्थ महार उठता, संध्या समय तक उसीका दम उखड़ने लगता और कल सुबह तक वह इस जगत् से लुप्त हो जाता। दस्त, उलटियाँ, सड़ाँध से पहले ही गंदगी से भरी वे सँकरी झुग्गियाँ गंदगी से भर गईं। परंतु सारे परिवार वहीं रहते। देखते-देखते उन्नीस व्यक्ति मर गए और यदि केवल टोने-टोटकों के उपचारों की बौछार ही वे सहते रहते तो हैजे की यह महामारी उनमें से एक को भी जीवित नहीं छोड़ती।

परंतु उनके सौभाग्य से डिप्टी कलेक्टर श्री मुंडकूर महाशय नित्य के दौरे पर उसी समय उस गाँव में आए। देखा तो उस हरिजन बस्ती में कौलरा। पंद्रह-बीस लोग तो फट से मर भी गए हैं। उस गाँव का पुलिस चौधरी एक अनाड़ी, गँवार हरिजन ही था। उससे पूछा, ''तुमने इस मृत्यु-घटना का प्रतिवृत्त क्यों नहीं भेजा? और इस संकट का सामना करने के लिए कौन सी उपाय-योजना की है?'' उसने कहा, ''संकटों से टकराने के लिए हमारी साध्वी माँ पहले से ही प्राणपण से जूझ रही है। उसने घर-घर में गोबर के अभिमंत्रित वृत्त खींचकर उन्हें पार कर भीतर घुसने के लिए हैजे पर पाबंदी लगाई है। देवी के सामने नारियल रखा है, तीन भैंसों को बलि चढ़ाने की मनौती मानी है। देवता के सम्मुख फरियाद भी की है।'' हैजे को हटाने के लिए उन अछूतों द्वारा किया गया कड़ा बंदोबस्त देखकर मुंडकूर महाशय ने सबसे पहले उस साध्वी को बुलाया और जब तक हैजे का समूल विनाश नहीं होता तब तक उसके गाँव में पाँव भी रखने पर पाबंदी लगाई, उसे गाँव से निष्कासित किया। इस घोर अपमानजनक आदेश से चिढ़कर अद्‌भुत चमत्कार करनेवाली वह चुड़ैल मुंडकूर महाशय के चारों ओर गोबर के तिपट्टे खींचकर अपने मंत्रबल से घेराबंदी करके रखेंगी—इस तरह भी किसीने अटकलपच्चू लगाया। परंतु पता नहीं क्या हुआ? थर-थर काँपती हुई वह साध्वी चुपचाप चलती बनी। उस अछूत बस्ती से उस साध्वी के जाते ही अब बच गई एक ही आपत्ति, हैजा।

तहसीलदार तथा देवरूख के सरकारी डॉक्टर माडली को हैजा का टीका

लेकर अछूतों को लगाने के लिए तुरंत गाँव भेजा गया। औषधियाँ मँगाई गईं। परंतु देखा तो अछूत लोगों ने तोते की तरह आँख फेर लीं। हम टीका नहीं लगवाएँगे। औषधियों से क्या पेट जला देना है हमारा? उन्हें लाख समझाया, परंतु टीका लगवाने के लिए कोई भी घर से बाहर पाँव रखने के लिए तैयार नहीं था। अंत में हार कर संध्या समय तहसीलदार तथा डॉक्टर वापस लौटे। टीके की बात छोड़ो, औषधि तो लो, कहते हुए दवाएँ दीं। परंतु उनके पीठ फेरते ही इन लोगों ने गुपचुप औषधियाँ उँडेल दीं, टीका न लगवाने के दृढ़ निश्चय के साथ।

औषधियों से पेट जलेंगे, हैजे की बीमारी थोड़े ही हटेगी? भला यह बीमारी केवल औषधियों के सेवन से दूर होनेवाली थोड़े ही थी? भई, मरी माता का कोप! उसकी औषधि है—देवसकी, उनका डॉक्टर है वह साध्वी पुजारन चुड़ैल। 'तहसीलदार हुआ तो क्या हुआ? भई, है तो आखिर मनुष्य ही न? मनुष्य की औषधियों की, मानवता की यह बात ही नहीं; यह तो देवसकी ठहरी देवसकी।' इस तरह धर्मश्रद्ध महारों में से अक्ल के सभी दुश्मनों ने तहसीलदार प्रभृति सभी जनों को बछिया का ताऊ ठहराया। उनकी बस्ती में सभी अंगार पर लोटने लगे कि हैजे की यह बीमारी चलेगी पर तहसीलदार की छाया तक यहाँ नहीं पड़नी चाहिए। उस दिन उस तंग बस्ती में तीस लोगों को हैजा को गया। वे लोग फटाफट मर ही रहे थे, जिन्हें इससे पहले हैजा हो गया था। मंत्र-तंत्र वाली गोबर की पट्टियाँ लाँघकर हैजे की बीमारी घर-घर में घुस ही रही थी।

तहसीलदार के लाख समझाने से भी अछूतों के कानों पर जूँ नहीं रेंगी, यह समाचार मिलते ही अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के साथ कलेक्टर श्री मुंडकूर स्वयं सवेरे-सवेरे अछूतों की बस्ती में आ गए। (तारीख ८ जनवरी, १९३६) चिरौरियाँ, मनुहारों से जिन्होंने उनकी बात मानी, उन्हें टीके लगवाए। जो बहुत कहने पर भी टस से मस नहीं हुए उन्हें पकड़कर जबरदस्ती टीके लगवाए। लगभग सौ लोगों को टीके लगवाए, तब लस ही खत्म हो गया। अतः मुंडकूर महाशय तुरंत मोटर से रत्नागिरि रवाना होकर वहाँ के सरकारी डॉक्टर श्री देसाई तथा सरकारी रुग्णालय में पड़ा सारा लस-संचय तथा हैजे की औषधियाँ लेकर दाभोल लौटे और एक सौ तीस अछूतों को टीका लगवाया तो वह लस भी खत्म हुआ। तब चार-पाँच बजे कलेक्टर मोटर से कोल्हापुर गए तथा इकतीस रियासती अधिकारियों की सहानुभूति से वहाँ के प्रमुख रायबहादुर धनवड़े का लस-संचय प्राप्त कर तारीख ९ जनवरी, १९३६ के दिन सुबह पुनः बस्ती में आ गए। उधर देखा तो हैजे ने कहर बरसाया था। यहाँ-वहाँ सर्वत्र दस्त, उलटियाँ, रोना-धोना, कराहना, दौड़-धूप। माता-पिता मर चुके हैं, उनकी मृत देह के पास छोटे-छोटे बच्चे बिलख रहे हैं। कोई निकट नहीं,

पड़ोसियों के यहाँ भी कोई मर रहा है, जिधर देखो वहाँ गंदगी, कूड़ा-करकट! उसपर अछूत कलेक्टर पर भड़क उठे हैं। अब वे उन सरकारी तथा स्वयंसेवी डॉक्टर आदि को घर में घुसने पर रोक लगा रहे हैं। कुछ घरों में दो-दो, तीन-तीन मृत देह कोठरी में फेंककर बाहर से ताला लगवाकर बंद किया गया था और उसी झुग्गी की दूसरी कोठरी में घर के अन्य लोग सो रहे थे, रह रहे थे। अत: यह कहने की कतई आवश्यकता नहीं कि बीमारी का संक्रमण कितनी तेजी के साथ हो रहा था। ऐसी अवस्था में पहली बात है लाश दफनाने की। उनमें जो थोड़े-बहुत हट्टे-कट्टे अछूत थे, उन्हें टीका लगवाकर दफनाने का आदेश दिया गया। बेचारे ये लोग कितने गड्ढे खोदते? उनके अंजर-पंजर ढीले पड़ गए और उन्होंने औजार फेंक दिए। तब स्वयं तहसीलदार श्री पाड़लकर और अन्य लोग लाशें उठाने के लिए आगे बढ़े। उनकी इस असीम आस्था, आत्मीयता के परिणामस्वरूप कुछ अछूत भी आगे बढ़े और एक शर्त पर लाश दफनाने के लिए तैयार हो गए। वह शर्त थी ब्रांडी। उसे भी मानकर प्रत्येक को थोड़ी-थोड़ी ब्रांडी पिलाई गई। तब कहीं लाशों को दफनाया जा सका। इसमें आश्चर्य नहीं कि उस विषाक्त एवं घातक वातावरण में स्वयंसेवक तथा सरकारी कर्मचारी भी सकपका गए। वे लोग भी बस्ती में मौत के मुँह में हाथ डालकर खटने के लिए झिझकने लगे हैं, यह देखकर स्वयं मुंडकूर महाशय ने कलेजा दहलानेवाले शब्दों में समझाया, ''अब हम लोग ही पीछे हट गए तो इस बस्ती की दुर्गति की कोई सीमा ही नहीं रहेगी। धर्म और मानवता यही है कि इन बेचारे गरीब अज्ञानी अछूत जीवों को मृत्यु के मुँह में छोड़कर हम वापस न लौटें। हम सब एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। अब हमारी अवस्था भी वही होगी जो इन गरीबों की हो गई है। ये दीन-दुःखी बच्चे जिनपर से माता-पिता की छत्रछाया उठ चुकी है, ये अनाथ युवतियाँ, वृद्धजन। देखो, कम-से-कम मैं तो इन्हें इस मौत के गड्ढे में जीवित रूप में दफनाने नहीं दूँगा। मैं इन्हें छोड़कर नहीं जाऊँगा। हैजे में चाहे मेरे प्राण क्यों न चले जाएँ। उस करुणाघन अधिकारी की आँखों से आँसुओं की झड़ी बँध गई। उनके आँसू अकारथ नहीं गए। सभी ने यही प्रण किया। सभी ने प्रथम अपने आपको टीका लगवाया और उस अछूत बस्ती में ये सारे उच्चपदस्थ अधिकारी एवं अन्य स्वयंसेवक पुनः कलेजा तोड़-तोड़कर खटने लगे।

परंतु उस रात अछूतों ने एक निराली ही किल्ली ऐंठी। उन्होंने अपने में से कुछ मरणोन्मुख लोगों को बाहर निकालकर उन्हें दो-तीन गोशालाओं में फेंक दिया। जिन्हें अभी-अभी बीमारी की बाधा हुई थी, और कुछ ठीक स्थिति में थे, उन्हें अपने साथ ले लिया, बरतन आदि जितना सामान लिया जा सकता था, उसे गठरी में बाँधकर सिर पर उठाया और रातोरात बस्ती छोड़कर वे जंगल में भाग गए।

शेष बचे-खुचे अनाथ बच्चे-वृद्ध उस वीरान, खंडहर बनी बस्ती में, गंदगी भरे उन घरों में, गोशाला में दस्त-उलटियों से सने, लिड़बिड़ाते, कराहते, मरते रोगियों में घुल-मिल गए। कलेक्टर आदि लोगों ने सुबह उठकर देखा तो सारे अछूत चंपत हो गए थे। यह अनायास किया गया स्थलांतर एक तरफ उपयुक्त तो दूसरी तरफ भयंकर, क्योंकि ये भगोड़े अछूत गाँव-गाँव में वह छुतहा बीमारी फैलाएँगे। अतः आसपास के गाँवों में तुरंत कठोर आदेश दिए गए कि किसी भी दाभोल निवासी व्यक्ति को गाँव में न घुसने दें। जंगल में आसपास ही अछूतों को रोका गया था। उस समय श्री शेंडये अपने सहकर्मी श्री शेय्ये एवं श्री तेंडुलकर के साथ हरिजन संघ के स्वयंसेवकों की टोली लेकर सहायतार्थ आ गए। वहीं के दो मिशनरी स्कूल के अध्यापक सातवलेकर बंधु पहले से ही अथक परिश्रम में जुटे थे। सभी ने मिलकर हरिजनों के घर साफ करना आरंभ किया। खपरैल निकालकर भीतर आवश्यक प्रकाश किया। अपने हाथों से घर, रास्ते बुहारकर साफ किए, लीपे-पोते। अनाथ बच्चों को रुग्णों से अलग-थलग रखा। सारी लाशें दफनाईं। भगोड़े हरिजनों का पीछा करते हुए वे जहाँ तितर-बितर होकर पेड़-पौधों के नीचे बैठे हुए थे, वहाँ उन तक औषधियाँ पहुँचाईं। हरिजन औषधियों को फेंक देते थे, अतः दिन में तीन बार ये सारे लोग दूर-दूर की उन हरिजन टोलियों में फेरे-चक्कर लगाकर अपनी आँखों के सामने उन्हें दवा पिलाने लगे। शेष बचे लोगों को टीका लगवाया। इस तरह नाना उपाय-उपचारों से पंद्रह तारीख तक हैजे की महामारी आखिर काबू में आ गई। बीमारी की बाधा लगे हुए पूरे सौ हरिजन बच गए। अनाथ बच्चे दस-पंद्रह, उनमें एक शिशु तो छह मास का। यह भी प्रश्न सामने था कि उसका क्या किया जाए? मिशनरी उसे पालने के लिए तो ले जाती है, पर धर्मांतरण की शर्त पर। यह प्रसंग देखकर रत्नागिरि हिंदूसभा ने सूचित किया कि उन सभी अनाथ बालकों को रत्नागिरि भेज दें, वहाँ हम उन्हें पालेंगे।

रत्नागिरि एवं देवरूख के नागरिकों ने भी उस संकट में भूखे, कंगाल बने हरिजन परिवारों के लिए कपड़े आदि धर्मार्थ इकट्ठा करते हुए श्री मुंडकूर महाशय के पास भेजे। उन्होंने उसका यथोचित बँटवारा किया। सभी ने अनाथ बालकों को ममता एवं प्रेम से सँभाला।

उन छह सौ हरिजनों ने आधिदैविकता के कारण मृत्यु को आमंत्रित किया था। यदि समय पर उन्हें श्री मुंडकूर महाशय समान दयालु सज्जन की 'मानवता' का हाथ नहीं मिलता तो प्रायः सभी हैजे का शिकार बने बगैर नहीं रहते। इतनी दौड़-धूप करने पर भी उस छोटी सी हरिजनों बस्ती में पचास जने आठ दिनों के अंदर हैजे की बलि चढ़ गए। लगभग सौ हरिजनों को हैजे की चपेट में आ जाने पर भी मौत

का ग्रास बनते-बनते उन्हें बलात् खींचकर बचाया गया था। समय पर पकड़-पकड़कर उन्हें टीका लगवाने से शेष बच गए थे। सत्य ही श्री मुंडकूर महाशय एवं उनके साथियों ने अपने प्राण संकट में डालकर पाँच सौ हरिजनों के प्राण बचाए थे। जिलाधीश श्री जोशी महाशय ने अपने अधिकारी के नीचे काम करनेवाले सभी अधिकारियों को यथासंभव आधार एवं प्रात्सोहन दिया था। कम-से-कम इस कांड में इन सभी अधिकारियों ने सरकारी नौकरों को सचमुच ही जनता के सेवक होना चाहिए, इस तत्त्व एवं विचार को सार्थक किया। यह उनके लिए भूषणास्पद है। जिन स्वयंसेवकों ने केवल कर्तव्य भावना से स्वेच्छया इस संकट में जी तोड़कर परिश्रम किया, उनका महत्त्व तो स्पृहणीय है ही।

रोग-बीमारी किसी देवता का प्रकोप, मरजी, इच्छा नहीं, अत: यह आधिदैविकता का विषय नहीं है। प्रार्थना, पूजा एवं बलिदान से देवता प्रसन्न होकर रोग ठीक नहीं करता। उसके प्रतिकार का साधन धर्मशास्त्र नहीं। बीमारी सृष्टिक्रम के अबाधित नियमों का परिणाम; और स्वास्थ्य-विद्या एवं वैद्यकीय शास्त्र—यही है उसके प्रतिकार का साधन। उनमें से सृष्टि विज्ञान के अनुसार मानवी उपचार करने से रोग दूर होते हैं। टीका लगवाने पर 'पापी' मनुष्य को भी सहसा ताऊन (प्लेग), माता, हैजा नहीं होता। टीका नहीं लगाने से वेदज्ञ विप्र भी रोग में तड़प-तड़पकर मरता है। यह सरल सत्य इस हरिजन बस्ती में आधिदैविकता और मानवता में घटित संघर्ष के कारण किसी भी कल्पित कथा से कितने परिणामकारक रूप में सामने आ गया है। ये दोनों पंथ जैसे प्रयोगशाला में हेतुत: कसौटी पर लग गए। भोली-भाली 'देवसकी'(आधिदैविकता) प्राय: मृत्यु की ओर ले जाती है और विज्ञान-प्रवणता मानवता पर विजय प्राप्त करती है।

न केवल हैजे पर बल्कि अस्पृश्यता पर भी वह एक विजय थी

एक और दृष्टि से यह सामयिक घटना महत्त्वपूर्ण थी। 'अस्पृश्यों' की यंत्रणा विषयक हमारी कठोरतम आलोचना करने पर भी आज तक उनका हम प्रतिरोध ही करते आए हैं। अत: यह संभव है कि हम उधर कान न दें। परंतु आंबेडकर जैसे कुछ लोग जो स्पृश्यों के विषय में समान रूप में अपनी कुढ़न व्यक्त कर रहे हैं, उसका प्रतिवाद करना भी कृतघ्नता ही होगी। स्पृश्य अस्पृश्यता निवारणार्थ जी तोड़कर परिश्रम करता हुआ किस तरह बढ़ रहा है, अपने 'सनातनी' कुटुंबीय सगे-संबंधियों का भी असंतोष सहते हुए, उनके प्रेम का त्याग करते हुए अस्पृश्यता निवारणार्थ बढ़ता हुआ वर्ग किस तरह प्रामाणिकता के साथ कार्यरत है, यह भी

दाभोल की हरिजन बस्ती पर छाए हुए हैजे के संकट की वास्तविकता से क्या स्पष्ट नहीं होता ? स्पृश्य अस्पृश्यों का किस तरह शोषण, उत्पीड़न करते हैं, यह जिस तरह उजागर करना आवश्यक है, उसी तरह यह भी गोपनीय नहीं रखना चाहिए कि अस्पृश्यता निवारणार्थ निरपेक्ष रूप में प्रयत्नरत रहनेवाला स्पृश्य वर्ग भी किस तरह तेजी से बढ़ रहा है। दाभोल की हरिजन बस्ती में अपना निजी जीवन संकट में डाले हुए छोटे-बड़े सभी लोगों को जिस तरह भूतदया का भान था, उतना ही अस्पृश्यता की अंत्येष्टि मनाकर किसीसे भी घिन न करते हुए प्रयत्नशील रहना, अस्पृश्यों की विशेष सेवा करना यह स्पष्ट भान तो था ही। अन्यथा ये लोग संकट में भी हरिजनों का स्पर्श नहीं करते, जैसे अन्य सनातनी स्पृश्य लोग करते हैं। परंतु उन अधिकारी तथा अनधिकारी जनसेवकों ने, ब्राह्मण, प्रभु, मराठे, वैश्य आदि अनेक स्पृश्य जातीय सज्जनों ने उन हरिजन बंधुओं की इतनी आत्मीयता से सेवा की, जैसे अपने भाई-बहनों की करते हैं। उनके दस्त, उलटियाँ, गंदगी साफ करते हुए अपने हाथों से उनके घरों को लीपा-पोता। लाशें दफनाईं, दवा पिलाकर सेवा करते हुए उन्हें मृत्यु मुख से मुक्त कराने के लिए स्वयं कराल काल की डाढ़ में हाथ डाला। ऐसे आदर्श उदाहरण की कृतज्ञता से प्रशंसा करना अस्पृश्योद्धार कार्य के लिए अवश्य प्रेरणादायी सिद्ध होगा। अस्पृश्यों में भी महार-भंगी के लिए अथवा जानवरों के लिए जो सहानुभूति जताई जाती है, उसका प्रदर्शन जो स्पृश्य करते हैं, उनका आभारी रहने में ही हरिजनों का हित है, कल्याण है।

(मार्च १९३६, किर्लोस्कर)

□

दुर्घटना या आत्मघात

"करो, प्रणाम करो बेटा, इस बरगद के पेड़ को। हाँ, हाँ, ठीक है, ठीक है। देखो, भगवान् है वह।" भीमा चौधराइन ने अपने ढाई वर्षीय शिशु से भक्तिभाव के साथ वटवृक्ष की जड़ पर माथा टेकने के लिए कहा। अपने विवाह के पश्चात् पिछले आठ वर्षों से वह नित्य नियमित रूप से उस वटवृक्ष के सौ-सौ फेरे किए बगैर अन्न-जल ग्रहण नहीं करती थी। यद्यपि उस गाँव के चौधरी के प्राचीन कुल में वह ब्याही थी, तथापि उनके पास नाममात्र को नंबरदारी रह गई थी। इसपर भी वह परिवार एकदम निर्धन था। उसपर डेढ़ वर्ष पूर्व उसके पति का प्लेग में निधन हो गया था—कंगाली में आटा गीला। तब से अपनी इकलौती संतान के साथ वह इस बरगद के समीप बिखरी हुई पाँच-दस झुग्गियों में से एक में रहती थी। दिन-रात जब भी समय मिलता तब बीड़ियाँ बटती और उन्हें एक मराठा पान-तंबाकूवाले दुकानदार को घर में बैठे-बैठे बेचकर उस टटपुँजिया धन से जैसे-तैसे अपना पेट पालती थी। वह अधेड़ उम्र की थी। उस नन्हे शिशु के सिवा उसका आगा-पीछा कुछ भी नहीं था। वह वटवृक्ष ही उसका भगवान् और वह शिशु ही उसका प्राण।

वटवृक्ष के फेरे समाप्त कर, उस शिशु से प्रणाम करवाकर उसने उसे प्रसाद का घूँट भर दूध पिलाया। यही थी उसकी रोज की दूध की खुराक। परंतु वह बूँद भर दूध वटवृक्ष के ईश्वर के प्रसाद का था। वह सोचती, अन्य मन भर दूध-दही से जो पुष्टता मुन्ने को नहीं मिलेगी, वही वटवृक्ष के इस प्रसाद से मिलेगी। इस शिशु का जन्म भी वटवृक्ष का प्रसाद ही था, क्योंकि विवाह होते ही पास-पड़ोस की चार महिलाओं के कहने पर उसने वटवृक्ष की परिक्रमा का जो व्रत लिया था, वह बेटे के लिए ही था। इस तरह की मन्नत माँगे बिना भी उसके साथ की महिलाओं को एक नहीं, तीन-तीन बेटे हुए थे। परंतु उसकी यह धारणा थी कि पाँच वर्ष परिक्रमा करने से प्राप्त शिशु उस वटवृक्ष की सेवा एवं प्रसाद से ही हुआ है। उस धर्मश्रद्ध भावुक हिंदू बस्ती में जो वट-पीपल को देवता मानती थी, उसकी श्रद्धा को सराहा जाता।

इतना ही नहीं, अपितु उसकी यह श्रद्धा उस वटवृक्ष के जाग्रत देवता की पूजा विशेष भक्ति-भावना से सुदूर फैलाने का कारण होती।

सामनेवाली बंजर भूमि पर ऐसा ही एक पुराना खूसट, शुष्क, खोखला बरगद का पेड़ था। मिशनरी साहब ने यह बंजर भूमि खरीदकर अन्य स्थानों से सूखे से पीड़ित धर्मभ्रष्ट किए अथवा भगाए गए बच्चों को पालने के लिए एक मिशन की चाल तथा कोठी बनाई थी। तब निकटवर्ती वटवृक्ष और उसकी अवस्था के दो-तीन रोगग्रस्त पीपल वृक्षों को कोठी और चाल की रचना के आड़े आते देखकर जड़ से उखाड़ दिया गया। इसके पश्चात् उस बंजर भूमि के पास जो नए पथ का निर्माण हुआ, उसके दोनों तरफ नए वट और पीपल भलीभाँति उरेहकर लगाए कि उसके संलग्न कमान के नीचे वह पथ किसी सुदीर्घ कुंज के समान ऐन गरमी में भी शीतल प्रतीत हो। उस वट, पीपल की तिरछी-तिरछी शाखाएँ प्रतिवर्ष काट-छाँटकर उन्हें प्रशिक्षित पालतू हाथी की सूँड में धरे चँवर की तरह डुलाने-झुलाने के लिए बाध्य किया था। उस मिशन को, जो वट-पीपल को जड़ से उखाड़ती थी, प्रत्यही उसकी शाखाएँ काटती थी, एक भी परिक्रमा नहीं करती थी, किसी वट-पीपल ने बच्चे न होने का अभिशाप कैसे नहीं दिया? इसके विपरीत उस मिशन में पले-बढ़े बच्चे अधिक स्वस्थ, गोल-मटोल तथा बढ़ती हुई संख्या में कैसे होते थे? इतना ही नहीं, अपितु एक-दो प्रसंगों में आजकल ही उनके बँगले की दो-तीन महिलाओं ने सुंदर, स्वस्थ जुड़वाँ बच्चों को जन्म दिया था; वे फुदक-फुदककर उन पालतू वट-पीपल की छाँव में खेलते रहते। तब उन कटे हुए वट-पीपल के क्रुद्ध बरुआ के भूत ने (ब्रह्मचारी के भूत ने) आज तक उन्हें जरा सा भी खरोंचा क्यों नहीं? इस प्रकार डॉ. मोहिते, जो उस विभाग की ओर से उस गाँव की नगर संस्था में सदस्य चुने गए थे, भीमा से पूछते। उसे समझाते कि जब बरगद का वह पेड़ पोला-खोखला, रोगी, छायाशून्य तथा कभी भी गिरनेवाला है, तब यही उचित तथा इष्ट है कि उसके आसपास खड़ी झुग्गियों पर मँडरा रहे एक संकट को टालने के लिए उसे जड़ से उखाड़ दिया जाए।

डॉ. मोहिते भीमा के दूर के संबंधी थे। उन्हें म्युनिसिपलटी के चुनाव में जिताने के लिए बेचारी का निजी वोट तो नहीं था, फिर भी दो-तीन संबंधियों के वोट उसीके प्रयास से मिले थे। परंतु आगे चलकर डॉ. मोहिते ने अपने इलाके में रास्ते, गलियाँ, आँगन, चौक स्वच्छ, सुरक्षित एवं सुघड़ करते हुए वहाँ का स्वास्थ्य सुधरे, इस विचार से कार्यारंभ किया। गड्ढे-चिरा भरकर रास्तों में सुधार किया, गली-गली में सड़ रहे कूड़े-करकट के ढेर, घरों की पंक्तियों में जमे पानी के डबरे, सड़े-गिरे हुए चबूतरे, अस्त-व्यस्त फैले हुए झाड़-झंखड़ सारा साफ-सूफ

तथा ठीक-ठाक किया। अब प्रमुख सड़क के ही कोने में तिरछा आगे बढ़ा हुआ बरगद का वह पेड़, पत्थर के एक ढेर से जिसका पुराना, खोखला, शुष्क तना ऊपर उठ गया है, जिसकी एक आड़ी, अस्त-व्यस्त झुकी हुई शाखा सड़क के माथे पर तनी हुई सोटी के समान खड़ी है, नूतन पल्लवी के कुछ गुच्छे बस नाममात्र ही प्रतिवर्ष फूटते हैं, वृक्ष नहीं अपितु एक गड़ा हुआ बल्ला-सा ही प्रतीत होता है। इतने निर्जीव, निःसत्व, छाया विरहित उस वृक्ष को देखकर टेढ़ा-मेढ़ा तिरछा खड़ा वह ढेर हटाकर, सड़क पर उस ढेर के आसपास टेढ़ी-मेढ़ी बनाई गई झुग्गी-झोंपड़ियों में बसे लोगों का संकट निवाराण करने की एक योजना डॉ. मोहिते ने बनाई। परंतु उनकी योजना की भनक लगते ही उस बस्ती में शोरगुल होने लगा—'हमारा बरगद! हमारा वटराज देवता! हम इसे गिराने नहीं देंगे। हमारी धर्मभावनाओं को ठेस न पहुँचाएँ।'

भीमा चौधराइन, डॉ. मोहिते को जो उसकी पूजा का वटवृक्ष उखाड़ने की योजना बना रहे थे, पानी पी-पीकर कोसने लगी। जिस समय नगर संस्था में यह प्रस्ताव आनेवाला था, उससे पूर्व ही उन बस्तीवासियों ने वटवृक्ष को गिराकर हमारी धार्मिक भावनाओं को ठेस न पहुँचाएँ, इस प्रकार की एक विरोधपरक अर्जी भेजने का विचार किया। उस अर्जी पर सभी के हस्ताक्षर लेने का कार्य जोर-शोर से हो रहा था। अर्थात् इसके विरुद्ध उन लोगों की अर्जी भी तैयार हो रही थी, जिन्हें वटवृक्ष तोड़ना स्वीकार्य था। परंतु उसपर हस्ताक्षर मिलना कठिन होने से उस दिन स्वयं डॉ. मोहिते घर-घर जाकर लोगों को समझा रहे थे। उसी इलाके में स्थित एक मिशन की संचालिका एक अमेरिकन महिला थीं—मिस लूसी। वृक्ष कट जाए, यह उनका अभिमत था। वे भी नगर संस्था की मिशनरी सदस्या थीं, इसलिए वटवृक्ष हटाने के लिए अनुकूल वोट प्राप्ति के कार्यार्थ घर-घर घूम रही थीं, परंतु वटवृक्ष मामले से अधिक—हिंदू धर्म अंधश्रद्धा से परिपूर्ण और ईसाई धर्म अंधश्रद्धा से किस तरह सर्वस्वी उदासीन है, मिस लूसी इस अवसर का उपयोग इसका तूमार बाँधने में ही प्रमुखता से कर रही थीं।

भीमा अपने बच्चे को वटवृक्ष के तले माथा टेकने के लिए बोलकर पूजा-अर्चना से निपटकर उस ढेर से नीचे बच्चे को उतारकर जो अपनी झुग्गी के पास आई तो देखा कि मिस लूसी मुसकराती हुई वहाँ खड़ी हैं। उन्होंने कहा, भीमा इस पक्ष की राय पर हस्ताक्षर करो जो वटवृक्ष काटना चाहता है। तब 'मैं कल बताऊँगी' कहते हुए भीमा ने बात को टाल दिया। मिस लूसी उन झुग्गीवासियों में सदैव घुल-मिलकर बच्चों को मिठाई बाँटतीं, बाइबिल के गीत गातीं। एक बार जब गद्‌गद स्वर में भीमा ने उनसे कहा कि 'वटवृक्ष की पूजा का प्रसाद है यह मेरा मुन्ना।' तब मिस

लूसी ने उस विषय का रुख अपने प्रिय विषय की ओर मोड़ते हुए कहा, ''यह सच है। पर माँ का प्यार तो तुम्हारा है। इस प्रेम से देवी-देवता भी गद्गद हो जाते हैं। हमारी मदर मेरी की ओर देखो न! ठहरो, मैं गाकर बताती हूँ।'' मेरी की छाती से यीशु की मूर्ति देखकर कैसे झरझर दूध बहने लगा, वह कैसे पेन्हाने लगी, इस प्रसंग पर उन्होंने बाइबिल की कथा पर एक मराठी गीत गाना आरंभ किया। गोरी मेम साहब, मराठी गीत, उसकी मधुर आवाज, फिर क्या! इच्छा न होते हुए भी भीमा का मन गाना सुनने के लिए लालायित हो उठा। पास-पड़ोस की पाँच-दस महिलाएँ, बच्चे भी आ गए। इस गीत के चलते डॉ. मोहिते भी हस्ताक्षर का एक कागज लेकर वहाँ आ गए। उन्हें देखते ही मिस लूसी उठ खड़ी हुईं और झट से विषय पलटकर कहने लगीं, ''हैलो डॉक्टर! देखो तुम्हारे हिंदू लोगों में कितनी अंधश्रद्धा भरी हुई है। यह औरत समझती है कि इस बरगद के प्रसाद से उसका बेटा हुआ। भई, विश्वास ही कैसे करते हैं ये लोग ऐसी बेसिर-पैर की बातों पर। आप जैसे रेशनलिस्ट इन्हें सुधारते क्यों नहीं?''

डॉ. मोहिते ने मुसकराते हुए कहा, ''लूसी साहिबा, मेरे जैसे सच्चे रेशनलिस्ट के संबंध में पूछा जाय, तो भई, मुझे तो आप दोनों ही समान रूप में अंधविश्वासी प्रतीत होती हैं। अजी, स्मरण करो वह गीत जो आप अभी-अभी बड़ी श्रद्धा से गा रही थीं। आपका यह विधान कि बरगद के पेड़ के प्रसाद से बेटा हुआ, भीमा की ऐसी श्रद्धा बुद्धिवाद द्वारा त्याज्य है, उतना ही क्या यह भी त्याज्य नहीं है कि कुमारी मेरी की कोख से ईश्वर के तेज से यीशु का जन्म हुआ?''

''परंतु यह हमारी धर्मभावना है।''

''और वटवृक्ष ईश्वर का प्रतीक। उसके प्रसाद से बच्चा होता है, यह इस भीमा की धर्मभावना है। उसकी यह भावना एक पागलपन है, मूर्खता है—इस प्रकार बुद्धिवाद के, रेशनलिज्म के प्रचारार्थ यदि आप कहती हैं और यह अच्छा ही करती हैं, तो इसी बुद्धिवाद की कसौटी पर आपकी धर्मभावना पर प्रश्नचिह्न लगाने का अधिकार मुझे भी होना चाहिए। अजी, पृथ्वी गोल-गोल घूमती है, यह कह रहे वैज्ञानिक को भी ईसाइयों ने इसलिए मौत के घाट उतारा था कि वह धर्मभावना को ठेस पहुँचाता है, अर्थात् पृथ्वी घूम रही है इस कथन पर भी दंड मिला। इतना ही नहीं, कोलंबस को, जिसने अमेरिका महाद्वीप की खोज की, इस आरोपवश कि बाइबिल में न बताए गए देश का अस्तित्व बताकर हमारी धर्मभावनाओं को ठेस पहुँचाता है, ईसाई धर्मगुरुओं ने क्या अपराधी घोषित नहीं किया था? अंधविश्वास का ठेका केवल हिंदुओं को ही दिया गया है, आपकी यह धारणा तथा शेखी बघारना भी अंधश्रद्धा ही है। सच्चा बुद्धिवादी, जो-जो धारणाएँ असत्य अथवा जनहितार्थ

प्रत्यक्ष रूप में हानिकर हैं, उन्हें सुधारने की चेष्टा करता है, फिर वे ईसाई हों, या मुसलमान। और इस प्रकार की मूर्खतापूर्ण धारणाएँ सर्वधर्मीय लोगों के धर्म की खाल ओढ़कर फैली हुई हैं। हिंदू धर्म की अधंश्रद्धात्मक धारणाएँ निकालकर उनके गले में मुसलिम अथवा ईसाई अंधश्रद्धा का पत्थर मढ़ना बुद्धिवाद के प्रचार का कोई प्रामाणिक पंथ नहीं है।''

इतने में सामने चर्च में ग्यारह के टोल बजे। यह सोचकर कि मिस लूसी के सम्मुख भीमा मन की गाँठ नहीं खोलेगी और घर लौटने का समय भी हो गया, इसलिए डॉ. मोहिते भीमा से 'अब मुझे जाना ही होगा। संध्या समय आऊँगा' कहते हुए मिस लूसी के साथ बातें करते वापस लौटे। भीमा की जान में जान आ गई। क्योंकि संकोचवश डॉ. मोहिते के अनुरोध के सामने उसे घुटने टेकने पड़ते, जिसे वह टालना चाहती थी। उसकी यही इच्छा थी कि 'वृक्ष को तोड़ा न जाए'। इस अर्जी पर हस्ताक्षर माँगनेवाले लोग उसे पहले आकर मिलें।

'हे वटवृक्ष देवता, तुम्हें गिरानेवालों के दाँत खट्टे होने दो।' इस तरह भीमा ने पूजा समाप्त होते समय वटवृक्ष से मन्नत भी माँगी थी।

इतने में पच्चीस-तीस जनों का झुंड लेकर भिंगार्डे वकील बवंडर जैसे भाँय-भाँय करते हुए उस बस्ती में आ धमके। 'हस्ताक्षर करो। वटवृक्ष गिरानेवालों का घमंड तोड़ दो। तुम लोग किस पक्ष के हो? वटगिरे या वटराखे? सनातनी या सुधारक?' इस तरह उन लोगों ने एक ही प्रश्न किया। वे हस्ता!क्षर के ऊपर हस्ताक्षर लेते रहे। हस्ताक्षर नहीं तो अँगूठे का ठप्पा। उस बस्ती में प्राय: अधिक संख्या वटराखे जनों की थी। भीमा ने आगे बढ़कर स्वेच्छया हस्ताक्षर किया और वटवृक्ष का देवता कितना जाग्रत है, यह स्वानुभव से आस्थापूर्वक बताया। अपनी गोद में उठाए बच्चे की ठुड्डी पकड़ते भीमा ने आँसू बहाते हुए कहा, ''मेरी परिक्रमा के व्रत से वटराज प्रसन्न हुए और यह मुन्ना मुझे दे दिया। मेरी वंशबेल का यह फूल है। आगे चलकर मुन्ने के पिता यहीं पर प्लेग में जिस दिन चल बसे उस दिन मैंने इस बच्चे को इसी वृक्ष के चरणों पर डालकर कहा था, 'हे भगवान् वृक्षराज, अब तुम ही मेरे मुन्ने की रक्षा करो। तुम्हारी छाँव में, तुम्हारे चरणों में यह मेरा मुन्ना बड़ा होकर रुई जैसे शुक्रबाल होने तक सुख से रहे। दूधो नहाए पूतो फले। इसे चिरंजीव होने दो।' '' पाँच-दस बार उसने आने-जानेवाले पाँच-दस लोगों से यही कहा और प्रत्येक बार कथा का पूर्णविराम होने पर मुन्ने को पाँच-दस बार चूम लिया।

वटराखे पक्ष का जमघट वापस जा रहा था। सबसे आगे भिंगार्डे वकील तैश में आकर प्रतिज्ञा कर रहे थे, ''इस साले, वट गिरानेवालों के दाँत तोड़ दूँ, तभी भिंगार्डे नाम लगाऊँ। इस सारे पाखंड की जड़ है यह धर्म डुबाऊ डॉ. मोहिते। पर

उसका भी क्या दोष? तुम मतदाता ही असली दोषी हो जो ऐसे आस्तीन के साँप को म्युनिसीपलटी की आस्तीन में रखते हो। पुनः कभी उसे चुनाव में जिताओगे?''

सभी लोग एकमुखी भोंपू की तरह चीखे, ''खड़ा तो होने दो ससुरे को अब। अब हम भिंगार्डे वकील को ही विजयी बनाएँगे। वकील महोदय, आपको ही खड़ा रहना होगा, हाँ। हम इस बरगद को गिरने देंगे, पर भिंगार्डे वकील को चुनाव में मुँह की खानी नहीं पड़ेगी।''

लोगों की प्रतिज्ञा सुनते ही भिंगार्डे तपाक से बकने जा रहे थे कि 'अब बरगद गिरे या बचे, मुझे कोई चिंता नहीं।' परंतु उन्होंने बड़ी कठिनाई से अपने आपको रोका। भिंगार्डे बनिया जाति के थे। पीछे कभी मंदिर में कथा-वाचन के समय ब्राह्मणों ने इन्हें अबीर लगाने से इनकार किया था। तब वे अपने को सुधारवादी समझकर ब्राह्मणों को गिन-गिनकर गालियाँ देते थे। प्रायश्चित्त स्वरूप पिछले चुनाव में उन्हें मुँह की खानी पड़ी और डॉ. मोहिते जीत गए। अब भी बिना कहे यह स्पष्ट है कि यह बरगद गिराने का विरोध करने का अभियान उन्होंने अपने हाथ क्यों लिया। सनातनी ब्राह्मणों के बहुसंख्य वोट उन्हें निश्चित मिलनेवाले थे। धर्मबोरन डॉ. मोहिते को शीघ्र ही होनेवाले चुनाव में चारों खाने चित करने की बाजी बरगद जैसा तुरुप का पत्ता मिलने पर अब वे मार ही चुके थे। वकालत एवं चुनाव में वादी या प्रतिवादी तथा मत प्राप्त करानेवाला जो सुलभतम उपाय था, वह सनातन धर्म ही उनकी परिभाषा थी।

नगर-संस्था की सभा में उस बरगद को गिराकर उसकी पर्णराशि निकालकर सड़क सीधी करने का प्रस्ताव जिस दिन आया, उसी दिन बरगद न गिराया जाए, इस आशय का आवेदनपत्र भी दाखिल हो गया, जिसपर सैकड़ों नागरिकों के हस्ताक्षर किए हुए थे। वटरक्षक और वटभक्षक इन दो पक्षों में होड़ सीमा से अधिक बढ़ गई। प्रायः सभी सदस्यों को यह स्वीकार था कि इस ढहते ऊँचे ढेर के पास उस पोपले पतनोन्मुख शाखाओं तथा उस तने का संकट सड़क से आने-जानेवाले नागरिकों के सिर पर तलवार समान लटक रहा है। परंतु विरोध गहराई तक फैला हुआ था। अंत में अध्यक्ष महोदय ने समझा-बुझाकर उस ओर की बस्ती को पेड़ गिराने के पक्ष में लाने का प्रयास करने के लिए उधर के पच्चीस नेताओं की सभा आयोजित करते हुए समझौता कराने का अभिमत दिया। स्वयं अध्यक्ष महोदय भी उस नियुक्ति मंडल में थे ही। जब तक यह समझौता नहीं होता तब तक उस सड़क के उपमार्ग के दोनों मुहानों पर 'रास्ता बंद' का बोर्ड लगाया जाए और गाड़ियों आदि पर पाबंदी लगाई जाए। इस तरह कुछ अस्थायी व्यवस्था की गई। मनुष्यों के लिए रास्ता बंद किया गया परंतु उस शुष्क, खोखले, ढहते हुए वृक्ष को तोड़ा नहीं गया। वृक्ष की सुविधा

के लिए मनुष्य को असुविधा—भई, वृक्ष देवता और मनुष्य? वह किस झाड़ की पत्ती है?

समझाने-बुझानेवालों से सभा भर गई। उस बस्ती के पच्चीस-तीस नेता और अध्यक्ष महोदय के साथ नगरसंस्था के अनेक सदस्य उपस्थित थे। वटरक्षक पक्ष के सैकड़ों लोगों को सभागृह के बाहर लोकमत की धाक जमाने के लिए भिंगार्डे वकील ने जमा किया था। स्वयं भिंगार्डे, हरभट शास्त्री प्रभृति नेता इसी नाते सभा में उपस्थित थे। नगर संस्था सभासद् के नाते मिस लूसी तथा पीरजादे भी उपस्थित थे।

प्रथमत: यह स्पष्ट करने के लिए कि वटवृक्ष क्यों नहीं गिराया जाना चाहिए, हरभट शास्त्री खड़े हो गए, ''वटवृक्ष एक देवता है। शास्त्र में कहा है कि उसकी पूजा करें, परिक्रमा करें, परंतु उसे कभी न काटें। जो हिंदू वट को तोड़ेंगे वे 'पतंति नरके घोरे', इस तरह शास्त्र का स्पष्ट दंड है। मेरे दादाजी को एक भूमि दानस्वरूप प्राप्त हो गई। उन्होंने उसपर छोटा सा घर बनाया। परंतु यह वटवृक्ष इस तरह बीच में खड़ा था कि ऐसी कठिनाई में भी उन्होंने वटवृक्ष न तोड़ते हुए घर तिरछा बनाया, पर वटवृक्ष को नहीं गिराया। इसके विपरीत उसके चारों ओर छोटा सा चौक छोड़कर खपरैलों में से वहाँ चिमनी जैसा मार्ग खुला किया। उसके पत्ते, कूड़ा आदि सभी उन खपरैलों पर, घर के बाहर-भीतर भी गिरता। उससे सटकर जो भित्तियाँ थीं, वटवृक्ष की जड़ों से उनमें से जो एक भित्ति ढह गई, उसे फिर से बनाया; परंतु उस धर्मपरायण ब्राह्मण ने वृक्ष का बाल तक बाँका नहीं किया। आज भी हम उसी घर में रहते हैं। जब तक उसकी पूजा नहीं करते, उसे भोग नहीं चढ़ाते, हम अन्न-जल ग्रहण नहीं करते। अत: हम हिंदुओं की धर्मभावना यह नहीं होने देगी।''

''वटवृक्ष काटने का अर्थ हिंदू धर्म का उच्छेद करना और वटपूजा करना हिंदू होना है, इस तरह हिंदू धर्म की छिछली तथा बेकार परिभाषा भई, मैंने तो किसी भी ग्रंथ में नहीं देखी।'' डॉ. मोहिते शांत चित्त के साथ बोलने लगे। इतने में भिंगार्डे वकील बीच में ही उठकर अंगार उगलने लगे, ''आपको ऐसी परिभाषा भले ही न मिली हो, तथापि मुझे मिली है। अजी, हमारे धर्म में तो वटवृक्ष की पूजा बताई गई है। हम कोई धर्मांध पगले नहीं, अपितु आप जिस विज्ञान की शपथ लेते हैं, उसी विज्ञान के आधार पर इस वटवृक्ष की महत्ता देख रहे हैं। उसकी शाखाएँ औषधि, उसकी छाया, पत्ते, दूध उसका अणुरेणु किसी महात्मा के शरीर समान मनुष्य हित के लिए समर्पित हैं। यदि वह ढह गया तो मरणोत्तर भी इस वटवृक्ष की देह—लकड़ियाँ, सूखे पत्ते अपनी झोंपड़ियों के लिए बल्ले तथा ईंधन के लिए काम आएँगे। अर्थात् परोपकार में वटवृक्ष किसी हुतात्मा से भी श्रेष्ठ है, क्योंकि मरणोत्तर

किसी हुतात्मा की हड्डियाँ बल्लियों के रूप में हमारे काम नहीं आतीं, उसके शरीर का कोई भी हिस्सा हमारे चूल्हों का ईंधन नहीं बन सकता। अरे मूर्खो, इसीलिए हमारे त्रिकालदर्शी ऋषियों ने वटवृक्ष को ईश्वर माना। वटवृक्ष ईश्वर का प्रतीक है, ईश्वर का भभूत है! वट ही ईश्वर है। वह मनुष्य असली हिंदू नहीं कहलाएगा जो वटवृक्ष पर, पीपल पर कुल्हाड़ी के प्रहार करेगा! वह तो मुसलमान ही है!!''

भिंगार्डे वकील तैश में आकर और भी बोलना चाहते थे, परंतु मूल वक्ता डॉ. मोहिते के भाषण के चलते 'आप बीच में ही बोल रहे हैं,' इस तरह घंटी बजा-बजाकर अध्यक्ष महोदय द्वारा धमकाने से वे तनिक ठिठक गए। इतने में दूसरा ही कांड खड़ा हो गया! साधारण तौर पर यह तय किया गया था कि हिंदुओं के रूढ़ि विषयक विवाद में किसी हिंदू द्वारा यथासंभव मुँह न खोला जाए। इस प्रकार के शिष्टाचार का अवलंबन मिस लूसी और पीरजादे द्वारा किया जाए। परंतु भिंगार्डे वकील के अंतिम वचन सुनकर पीरजादे अपनी हँसी को रोक नहीं सके। उन्होंने ठहाका लगाया, जिससे चिढ़कर भिंगार्डे वकील ने पूछा, ''भई, वहाँ बैठे वह माननीय सदस्य इतना हँस क्यों रहे हैं? यहाँ कोई नौटंकी नहीं चल रही है।''

भिंगार्डे की चुनौती सुनकर पीरजादे का लहू भी खौलने लगा, ''मुँह नहीं खोलना चाहता था, वकील साब! परंतु अब खुद ही पूछ रहे हैं सो कह देता हूँ। अभी-अभी आपने ठोस गर्जना की है न कि जो वट-पीपल को तोड़ता है वह हिंदू नहीं, मुसलमान है। अत: मन में संदेह उभरा कि आप कौन हैं? हिंदू या मुसलमान? क्योंकि, चार साल पहले इन्हीं भिंगार्डे वकील ने मेरी जमीन खरीदी। उसमें चार-पाँच बरगद, पीपल के पेड़ थे। तब इन्हीं वकील साब ने खुद उन्हें काटकर फेंक दिया, और एक सुडौल बँगला खड़ा किया। माफ कीजिए, वकील साहब, लेकिन यह बात सच है या झूठ?''

पूरी सभा हँसी-कहकहों से गूँज उठी। भिंगार्डे भी हँसने लगे। पर वे ठहरे वकील! कुछ-न-कुछ उत्तर देंगे ही। फट से बोल पड़े, ''अजी, उस समय मैं भी सुधारवादी था।''

''तो अब फिर दो दिन के लिए सुधारवादी बनें और गिरा दें बरगद का वह पेड़।'' पीरजादे जनप्रियता के प्रवाह में फँसकर बहकने लगे, ''उस बरगद के कारण सड़क पर दो-चार इनसान जान से हाथ धो बैठेंगे, भाई! तुम हिंदुओं का यह कैसा अंधविश्वास! हम एक क्या ऐसे सैकड़ों पेड़ उखाड़ेंगे पर सड़क नहीं रुकने देंगे। हम मुसलमानों में सारे 'रैशनल'! पेड़ की पूजा! हूँ!'' कहते हुए पीरजादे साहब ने फिर से ठहाका लगाया। परंतु इस समय वे अकेले ही हँस रहे थे। डॉ. मोहिते तुरंत खड़े होकर बोलने लगे, ''खाँ साहब, मुसलमानों में पेड़ की पूजा नहीं होती, हड्डियों

की होती है। वटवृक्ष को गिराया न जाए, उससे हमारी धर्मभावनाओं को ठेस पहुँचती है। इस तरह हिंदू मात्र युक्ति, तर्क लड़ाकर लड़ रहे हैं परंतु पिछले वर्ष ही हिंदुओं की भरी-पूरी बस्ती गें एक घर के भीतरी चौक में कुछ कबरनुमा रचना होने से और कुछ मुसलमान धुनियों को उस घर में काम के लिए जाते हुए देखकर, वह पीर की जगह है, इस तरह युक्ति लड़ाकर हंगामा खड़ा किया गया, धींगामुश्ती की गई और उस घर को गिराकर उधर दरगाह की स्थापना कर दी थी। यही नहीं, नमाज पढ़ते समय कोई रुकावट न आ जाए इसलिए संपूर्ण हिंदू बस्ती में वाद्य बजाना बंद किया जाए, यहाँ तक अपनी हेकड़ी जताई थी। तब आप स्वयं उन मुसलमानों के विधान के समर्थनार्थ लाठी पकड़कर लड़ने के लिए तैयार हो गए थे। पीर की उन चार अस्थियों को सम्मान के साथ वहाँ से निकालकर कहीं अन्यत्र दफनाया जाता तो? इस तरह हड्डियों के कारण हिंदुस्थान में कई राजमार्ग बंद किए जाते हैं। मसजिद के पास राजमार्ग से जाते समय वाद्य न बजाएँ, इसके लिए प्रतिवर्ष मुसलमानों के दंगे-फसादों में कितने सिर फूटते हैं? खाँ साहब, सभी धर्मानुयायियों में धर्मांधता आज किसी-न-किसी रूप में ठसाठस भरी हुई है। मनुष्य हित में आड़े आनेवाली अंधविश्वासपूर्ण धर्मभावनाओं को, चाहे वे किसी भी समाज में हों, जो सुधारने की इच्छा करता है वही असली बुद्धिवादी है, क्योंकि धर्म का अर्थ है मनुष्य-समाज के उद्धार का, धारण का मार्ग। भिंगार्डे वकील मेरे विरुद्ध बोलने लगे, वही मेरे विधेय के समर्थक बने। उन्होंने कहा, 'वटपूजा और देव प्रतीक मानने में हमारे पूर्वजों ने भूल नहीं की, क्योंकि वट-पीपल वृक्ष मनुष्य के लिए उपयुक्त हैं।' मैं भी यही कह रहा हूँ। परंतु उसमें से निकलता हुआ उपसिद्धांत भी भिंगार्डे वकील कैसे नकार सकते हैं भला? सिद्धांत यह है कि 'गाय, बैल जैसे पशु अथवा वट-पीपल जैसे वृक्ष दोनों मनुष्यों के लिए अत्यंत उपयुक्त हैं। इसलिए इनमें उनके लिए प्रेम, आस्था हो, उसी अनुपात में वे हमें तनिक पूजनीय भी लगते हैं। उनकी रक्षा, पालन, लाड़-दुलार करना हमारा कर्तव्य है और इसी अर्थ में वह हमारा धर्म है! परंतु क्या इसीका उपसिद्धांत भी यह नहीं कि जब उनके विनाश से ही मनुष्य जाति एवं राष्ट्र का हित साध्य होनेवाला होता है, तब वे पालनीय तथा रक्षणीय नहीं रहते और उनका विनाश ही मनुष्य धर्म अथवा राष्ट्रधर्म होगा।

इसके कारणवश मनुष्य हानि भी हुई तो भी वट गिरना नहीं चाहिए, यह कहना निरी मूर्खता है। भिंगार्डे वकील ने इस कृत्य को बुद्धिमानी सिद्ध करने के लिए अपने बुद्धिवाद से यही तर्क किया। धार्मिक अज्ञान का समर्थन विज्ञान से, आधुनिक साइंस से करने के इच्छुक इन सारे नीम हकीम लोगों का तर्क इसी तरह उनके गले पड़ता है। इससे अधिक अच्छा है कि कोई भी ढोंगी, ढपोरशंखी युक्तिवाद

का मुखौटा न लगाते हुए हमारे शास्त्री बाबू जैसे स्पष्ट कहते हैं कि 'वट-पीपल देवता हैं। शास्त्र में कहा है कि तोड़ देने से वे हमें अभिशाप देते हैं। इसे हम भी मानते हैं।' कहा जाए ये लोग धर्मांध होते हुए भी लुच्चे-लफंगे नहीं होते। तथापि उनसे बस इतना ही पूछना पर्याप्त है कि वट-पीपल जैसे पदार्थ यदि वास्तव में देवता हैं तो वे कुल्हाड़ी से काटने, आग में जलाने पर नष्ट कैसे होते हैं? तूफान में टूट कैसे जाते हैं? और टूटने या कटने पर वह वटराज अथवा मुंजोबा (ब्रह्मचारी का भूत) क्रुद्ध होता है तो जब ये मुसलमान, ईसाई अथवा हमारे जैसे सुधारवादी हिंदू उन्हें या अन्य वृक्षों को अपनी सुविधा के लिए तोड़ते अथवा जलाते हैं, तो वे हमारा बाल भी बाँका क्यों नहीं करते?"

"अजी डॉक्टर साहब, आप क्या हवा से झगड़ा मोल ले रहे हैं? मैंने कब कहा कि वट-पीपल देवता हैं? ये सारे भावनाओं के खेल हैं। शास्त्र में स्पष्ट कहा है कि 'न काष्ठे न च पाषाणे न शिलाया न च मृण्मये। भावे हि विद्यते देवी तस्मात् भावे ही कारणम्।' हम वटवृक्ष पर देवता की भावना रखकर उसकी पूजा करते हैं, अतः यदि हमने उसे तोड़ा-काटा तो हमें पाप लगता है और पाप विनाश करता है, परंतु ईसाई, मुसलमान वट-पीपल को पेड़ ही मानते हैं, वे उसे दैवी नहीं मानते, अतः उनके द्वारा वट-पीपल तोड़ने से उन्हें पाप नहीं लगता, न ही भगवान् उन्हें दंड देता है। वटवृक्ष हमारे मन्नत माँगने से प्रसन्न होता है, यह भी हमारी भावना का ही फलित है!" शास्त्रीजी ने कहा।

"वाह! शास्त्रीजी, कितनी मार्के की बात कही आपने। अजी, तो फिर इस तरह की अज्ञानमूलक भावना ही न रखें, यही उत्तम मार्ग है। भई, राक्षस को पहले जान-बूझकर राजा कहो और फिर उसे राजा मानकर बलि चढ़ाओ, ऐसा क्यों? रस्सी को साँप समझें और भय से काँपते हुए उससे दूर भी भागें? हम भी अगर गाय-बैलों को पशु तथा वट-पीपल को वृक्ष ही मानें और उनकी पूजा न करें तो हमें भी पाप नहीं लगेगा। उपयुक्तता का मूलभूत कारण विस्मृत हो जाने से ही ये पदार्थ रक्षणीय तथा पूजनीय देवता प्रतीत होने लगे। लेकिन मनुष्य के अज्ञान-युग के प्रमाद विज्ञान-युग में अब त्याज्य समझे जाने चाहिए।"

इतने में बाहर खड़े लोगों में कोलाहल होने लगा। डॉ. मोहिते का भाषण उस कोलाहल में दबने लगा। जनता भीतर घुसने लगी। 'भिंगार्डे वकील' के नाम का डंका बजने लगा। भिंगार्डे जैसे इसी क्षण की प्रतीक्षा में थे। तपाक से उठकर द्वार के पास गए और हाथ में एक चिट्ठी पकड़े हाँफते हुए कहने लगे, "बंद करो सभा! लोगों का क्षोभ काबू से बाहर जा रहा है। यह देखो। यह चिट्ठी भीमा चौधराइन की ओर से आई है। इसमें लिखा है, 'यदि वटवृक्ष गिराओगे तो मैं उस स्थान पर

आमरण अनशन करूँगी।' लोग चिल्ला रहे थे, 'सभा बंद करो! हम पेड़ गिराने नहीं देंगे।' अध्यक्ष महोदय 'समझौता असंभव! सभा बंद।' कहते हुए चले गए। 'सनातन धर्म की जय' की घोषणा करते करते लोग भी धीरे-धीरे वापस लौटे। हर कोई भीमा की श्रद्धा एवं भावुकता की भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहा था।

सभा काई जैसी फट गई। तब संध्या समय होने के साथ-साथ हलकी-हलकी वर्षा भी होने लगी थी। फिर भी भिंगार्डे वकील अकेले ही भीमा के घर गए, ''क्यों? कैसी रही? कैसी रामबाण युक्ति बैठी? मेरी सूचना के अनुसार चिट्ठी लिखवाकर तुमने ठीक समय पर भेजी। काम सोलह आने सिद्ध हो गया। अब देखता हूँ किस माई के लाल में वटवृक्ष गिराने का साहस है।''

भिंगार्डे का आवेश देखकर भीमा को संतोष हुआ। वर्षा का जोर बढ़ने लगा था। वकील घर गए। वटराज के चरणों की धूलि को भभूत समझकर मुन्ने के माथे पर लगाकर 'मेरे मुन्ने को वटराज शतायु करे' कहते हुए भीमा ने मुन्ने को सुलाया। दिन भर की थकी-हारी वह महिला भी तुरंत निद्राधीन हो गई। हवा साँय-साँय कर रही थी, वर्षा धुआँधार हो रही थी।

रात के बारह का समय हुआ। बाँस की फट्टियों का पल्ला लगी एक बैलगाड़ी उस सड़क से लंबी यात्रा तय करती हुई आ रही थी। अकस्मात् बरसती इस मूसलाधार वर्षा तथा सनसनाती हवा में फँसकर वह धीरे-धीरे टटोलती हुई बढ़ रही थी। इतने में कड़ाड़-कड़ाड़ जैसी प्रचंड ध्वनि दो-चार बार गूँज उठी। बरगद की एक लंबी शाखा टूटकर उस गाड़ी की फट्टियों से धड़ाम से टकराई, जैसे दूर तक घुमाकर एक झटके के साथ उछाली गई भारी गदा। सारी फट्टियाँ, जैसे किसी फिरंगी की टोपी उछाली इस प्रकार उछलीं और गाड़ी उलट गई। गाड़ीवान उस आवेगपूर्ण फटकारे के साथ अपने ही स्थान पर गतप्राण हो गया। इतने में जड़ से ही जर्जर वटवृक्ष का लंबा-तड़ंगा तना लड़खड़ाता हुआ उलटी ओर से ढहकर पायताने बसी झुग्गियों पर गिर पड़ा।

'ओ माँ! हाय! हाय!' इस तरह की प्रदीर्घ कर्कश चीख बरगद के वेग से भरहाई उस झोंपड़ी से गूँज उठी। वह चीख भीमा चौधराइन की थी। पेड़ के भारी तने के नीचे दबकर उसका मस्तक चकनाचूर हो गया था और उसीके नीचे हाय! हाय! उसका प्यारा चाँद का टुकड़ा भी कुचला गया था।

□

भक्तिविजय का खोया हुआ नूतन अध्याय

कथा का मूलभूत आधार बिलकुल सत्य घटना है। परंतु लिखते समय नाम और गाँव निकालकर थोड़ी कल्पना से काम लिया गया है, इसलिए उसे कथा कहा जाए—यदि सत्यकथा शब्द का अर्थ किया जाए तो यह सौ प्रतिशत सत्यकथा है, क्योंकि ऐसी घटना वास्तव में घटी है और वह भी चार-पाँच साल पहले।

जिस विठोबा के मंदिर में यह घटना घटी, वह उस नगर में एक छोटा सा मंदिर था जो दूरवर्ती बस्ती में बनाया गया था। इसमें मराठा भंडारी आदि वर्ग के कामगार मजदूर कभी-कभी आते-जाते रहते थे। एक धर्मपरायण और निर्धनवर्गीय अधेड़ उम्र का व्यक्ति नित्य नियमित रूप से मंदिर में जाकर विट्ठल की पूजा करता। दिन भर काम-धंधे से निपटकर रात के समय अकेला-दुकेला कैसे भी हो, करताल लेकर नियमित रूप से बेढंगा, बेसुरा क्यों न हो, भजन करता और गाते-गाते तल्लीन होकर वहीं लुढ़ककर सो जाता।

उसके भाई-बंदों में से किसी महिला ने उसके घर-बार में से हिस्से की प्राप्ति के लिए बखेड़ा खड़ा किया था। उसे किसीने बताया कि इस भोले-भाले मनुष्य का काँटा यदि रास्ते से हट जाए, तो! और वह भयंकर विचार उसे जँच गया। गुंडों की संगत में वह फँस गई थी। उन्होंने कुछ निश्चित रकम लेकर उसका काम पूरा करने की जिम्मेदारी ली थी।

उस चांडाल चौकड़ी को छोड़कर साधारणतः एक भोले-भाले मनुष्य के रूप में ही वह लोगों में परिचित था। उसकी धर्मपरायणता को देखकर कोई-कोई उसे बाबाजी कहता। यह सुनकर कि उससे झगड़ा करनेवाली उस महिला के पिट्ठू बने उन गुंडों ने उसे मारपीट करने की धमकी दी है, एक-दो जनों ने महाराज को चेतावनी दी थी कि 'रात-बेरात सँभलकर रहना।' कबीर की सैकड़ों कथाओं का पारायण बाबाजी ने किया था, उनमें से कोई एक कथा कहते हुए वे कहते, 'क्या अकेला, क्या दुकेला; मेरा रक्षक है पांडुरंग, वही मेरी रक्षा करेगा।' कहते हुए

दीपक के उस टिमटिमाते धुँधले से प्रकाश में विट्ठल की मूर्ति की ओर देखकर अभंग गाते—

'जहाँ मैं जाता वहाँ तू मेरा साथी,
थामकर हाथ सँभालते हो…'

"खून! खून! बाप रे! भीषण खून!!!" तड़के कोई मनुष्य विठोबा के मंदिर से गुजर रहा था कि अकस्मात् वह जोर-जोर से शोर मचाने लगा।

आसपास के घरों-झुग्गियों के दरवाजे, खिड़कियाँ खाड़-खाड़ खुलने लगीं और कोई नंगे शरीर तो कोई नंगे सिर बिस्तर से उठकर उधर दौड़ पड़ा।

बाबाजी को किसीने भयंकर अस्त्रों से घायल करके पड़ोस के खेत में फेंक दिया था। खून के तालाब में मरणासन्न पड़े बाबाजी को उस शोर मचानेवाले पथिक ने देखा। इकट्ठे हुए मराठा भंडारी वर्ग के स्त्री-पुरुष दुःख प्रकट कर रहे थे।

बाबाजी कराह रहे थे। कभी-कभी मरणाघात से हिचकियाँ लेते। परंतु वे मरे नहीं थे। भीड़ में से किसीने कहा, "सुना? बाबाजी के मुख से 'विट्ठल! विट्ठल' हिचकी के साथ यही शब्द निकल रहा है। इस गुहार के साथ ही ईश्वर तक बात पहुँच गई तो विठोबा अब भी उनकी सहायता करेंगे। बाबाजी कहा ही करते थे, जहाँ मैं जाता, वहाँ तू ही मेरा साथी…"

पुलिसवाले जल्दी-जल्दी पहली बनाकर बाबाजी को रुग्णालय में भेजने लगे। कुछ लोग वापस जा रहे थे तो कुछ आ रहे थे, कुछ आपस में बातें कर रहे थे, 'बाबाजी विठोबा का नामघोष कर रहे हैं।' 'बाबाजी नहीं मरेंगे।' 'अजी, मरना ही होता तो इतने गहरे घाव से थोड़े ही बचते?' 'अजी, वे मंदिर में होते तो घायल ही नहीं होते।' 'विठोबा जाग्रत देवता हैं, पर ईश्वर की पीठ पीछे इस खेत में हत्यारों ने छल किया, धोखा किया, उसके लिए क्या किया जाए?' 'भगवान् द्वारका में थे इसलिए द्रौपदी माता को दुष्ट दुःशासन ने इतनी पीड़ा दी। परंतु उसकी गुहार सुनते ही भगवान् दौड़ पड़े, तब भी कोई उसका बाल बाँका नहीं कर सका।'

पुलिस भी कह रही थी कि 'उन हत्यारों का कच्चा चिट्ठा हमें मिल गया है। अंत में उन्हींका सर्वनाश होगा।'

'अजी, सत्यमेव जयते। नानृतम्।' पूजा के लिए जा रहे पुजारी भी, छुआछूत न हो, इसलिए रास्ते के किनारे से जाते-जाते कह गए।

वहाँ इकट्ठा हुए झुंड में से उसी वाक्य को मन में दोहराती हुई लड़कियाँ स्कूल गईं। बच्चे स्कूल गए। महिलाओं ने घर का रुख किया। सब्जीवालियाँ मंडी की ओर चली गईं। श्रमिक अपने-अपने काम-धंधे में लग गए। सुबह के दस बजे। पुलिस घटनास्थल पर पहरा दे रही थी। उनमें से एक-दो जनों ने मंदिर जाकर

विठोबा पर पानी डालकर जल्दी-जल्दी जैसे-तैसे पूजा के नियमों का पालन किया। फिर वे भी चले गए थे।

साढ़े दस बज चुकने के कारण पांडुरंग राव, जो प्रमुख वकील होते हुए भी सार्वजनिक कथा-कीर्तन में हिस्सा लेते थे, स्नान संध्याशील थे, कोर्ट जाने के लिए उठना ही चाहते थे परंतु उनकी बैठक में बैठे हुए लोग वाद-विवाद में रंग भर जाने के कारण वहाँ से हिलने का नाम नहीं ले रहे थे। हर कोई बाबाजी की हत्या की कुछ नई अद्‌भुत जानकारी लेकर वहाँ आता था। पांडुरंग राव स्वयं संतलीला मृतादि ग्रंथ के बड़े प्रेमी थे, अतः बाबाजी विषयक घटित चमत्कार भरी घटनाओं का उन्हें भी विस्मय होने लगा। इतने में वहाँ के चौधरी, जिनका नाम मोरे था, को उधर आते हुए देखकर पांडुरंग राव ने कहा, ''अब तुम लोग चुप रहो। अब ये मोरे ही कुछ समाचार देंगे जो वहाँ इसी काम के लिए गए थे। अब चौधरी ही सत्य कथन करेंगे, जो सुसंगत जानकारी पाने के लिए उधर गए थे।''

''सच? क्या कहते हैं आप, पांडुरंग राव! अजी, उसने जो 'विट्‌ठल! विट्‌ठल!' का उद्‌घोष किया था, उस गुहार से द्रवित होकर उधर विठोबा की आँखों से सावन-भादों झरने लगे। मूर्ति को पसीना छूट गया और इधर बाबाजी एकदम उठकर भजन कर रहे हैं। बिना किसी औषधि के खून बहना बंद हो गया!''

''आश्चर्य! क्या कहा? विठोबा रोने लगे? बिलकुल अपनी आँखों से देखते हैं लोग?'' इस तरह उद्‌गारों, प्रश्नों, आश्चर्यों की झड़ी लग गई। मोरे ने उसकी अंतिम बूँद को झेलते हुए कहा, ''यह क्यों पूछ रहे हो कि किसीने प्रत्यक्ष देखा? सैकड़ों लोग देखकर आ रहे हैं विट्‌ठल के मंदिर से! सारा बाजार इस खबर से गरम है कि विठोबा रो रहे हैं और बाबाजी उठकर बैठे हैं। भक्त के दुःख से ईश्वर का कलेजा पसीजा, नयनों से आँसुओं का तार नहीं टूट रहा। मानो वे आघात भक्त पर नहीं, भगवान् पर ही हुए हों।''

''संत चोखोबा संबंधित भी ऐसी ही एक आख्यायिका है।'' पांडुरंग राव ने गंभीरतापूर्वक कहा, ''उन्हें लगाए गए थप्पड़ों से भगवान् के गालों पर सूजन आ गई थी। चोखोबा के मस्तक पर लाठी का प्रहार होता तो विट्‌ठल की मूर्ति के मस्तक पर गुंबा उभरता। ग्रंथों में लिखे गए चमत्कारों का आज हम प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हैं। सुधारवादियों के कारण भक्ति के प्रति नगर-निवासियों की कम होती श्रद्धा को पुनः अटल कराने के लिए ही विट्‌ठल ने यह नाटक तो नहीं किया?''

''मैं कहता हूँ, डॉ. विचारे को ही, जो इन सुधारकों के अग्रणी हैं, यह चमत्कार दिखाया जाए। डॉ. विचारे का लोकमत पर बड़ा दबदबा है।''

''मैं भी यही कहनेवाला था, मोरे, डॉ. विचारे मेरे मित्र हैं। वे बुद्धिवादी हैं

परंतु हठी नहीं। उसपर प्रत्यक्ष घटना को बुद्धिवादी भी कैसे नकार सकता है? परंतु यदि मैं उनके यहाँ गया तो कोर्ट को देर होगी। संध्या समय डॉ. विचारे को साथ लेते हुए मैं ही स्वयं मंदिर में पहुँचता हूँ।''

पांडुरंग राव की इस अड़चन की खिल्ली उड़ाते हुए मोरे ने कहा, ''कोर्ट! भई, आप वकीलों को लेने के लिए वैकुंठ से विमान भी आए, तो भी आप उसे वापस कर देंगे, क्योंकि कोर्ट जाने में जो देर हो रही होगी आपको। अजी, भगवान् की अद्‌भुत लीला जो ज्ञानेश्वर-तुकाराम काल में भी कभी घटी नहीं, आज यहाँ पर प्रत्यक्ष घट रही है—भक्त के दुःख से विह्वल होकर भगवान् रो रहे हैं। यह अद्‌भुत उत्सव देखते नहीं आ रहे और कहते हैं कि कोर्ट को देर होगी, संध्या समय जाएँगे। संध्या समय तक मूर्ति का रोना बंद हुआ तो? नहीं, आपकी एक नहीं सुनेंगे, वकील साहब! अभी, इसी समय डॉ. विचारे के पास चलते हैं और उन्हें लेकर विट्‌ठल-मंदिर में जाएँगे।''

सभी ने 'हाँ, हाँ, अभी चलिए' बस यही हल्ला मचाया। वही तय हो गया। चौधरी मोरे और पांडुरंग राव वकील डॉ. विचारे के पास जाने के लिए निकले, साथ में कुछ अन्य लोग भी चल पड़े।

मार्ग में स्कूल से निकले बच्चे, दोपहर के स्कूल में जा रहे बच्चे, बाजार में खड़े लोगों के झुंड, आवाजाही करते राहगीर हर कोई एक-दूसरे से पूछ रहा था, कह रहा था—अद्‌भुत घटना, विट्‌ठल रो रहे हैं!

पांडुरंग राव को ऐसा प्रतीत हुआ, वे ज्ञानेश्वर-तुकाराम के ही धर्मश्रद्ध काल में विचर रहे हैं। भैंसा वेद बोल रहा है। पंढरीनाथ का मंदिर घूम रहा है। भगवान् जनी के साथ चक्की पर आटा पीस रहे हैं, रोहिदास के साथ जूते सी रहे हैं। इस तरह के अद्‌भुत वृत्तांत उस समय लोग एक-दूसरे को इसी तरह उत्तेजित हो-होकर सुनाते होंगे। इस विचार में तन्मय होकर वे सोचने लगे, 'आह! यदि आज कोई महीपति होते तो! बाबाजी की भक्तिविजय का तथा भगवान् के रुदन का कितना रसीला वर्णन करते।' उनका चित्त उस विचार में इतना तल्लीन हो गया कि चलते-चलते, महीपति आज होते तो उस रसभीने अध्याय में लिखी हुई ओवियाँ भी मन-ही-मन पढ़ने लगे, 'ॐ नमोजी पंढरीराया। अतर्क्य ममता अतर्क्य माया। भक्तदुःखे देवराया। रत्नपुर में रोए थे॥ १॥ धन्य-धन्य वह बाबाजी संत। जिसके कारण भगवंत। कटी रखकर हस्त। रोता रहे॥ २॥ संत को हत्यारों ने घेरा। किए नृशंस प्रहारा इस दुःख से मंदिर में भगवान् रो पड़े॥ ३॥ भक्तिविजयांतर्गत नौंवे अध्याय से ओवियों[१] की रूपरेखा जम ही रही थी कि डॉ. विचारे का घर आ गया।

---

१. ओवी—मराठी पद्य में प्रचलित एक छंद जिसमें चार चरण होते हैं।

''आइए पांडुरंगजी! पहले ही से मेरे घर में लोग ठसाठस भरे हुए हैं। हर कोई यही रट लगा रहा है कि विठोबा रो रहा है। अद्‌भुत चमत्कार!'' डॉ. विचारे ने हँसते हुए कहा।

''तो फिर आप दो-टूक उत्तर दीजिए न भई, मेरा इस चमत्कार पर रत्ती भर भी विश्वास नहीं है। फिर सैकड़ों लोगों ने अपनी आँखों से भी यह घटना देखी तो क्या हुआ? सारे अंधे ही होंगे न?'' पांडुरंग राव ने तनिक झुँझलाते हुए टोका।

''अजी, यदि चमत्कार हुआ हो, और वह चमत्कार सिद्ध हो तो मैं उसपर अवश्य विश्वास करूँगा। क्योंकि हम उसे ही चमत्कार कहते हैं जब ऐसी घटना होती है जो आज तक अनदेखी हो अथवा ऐसी घटना जिसका निर्णय कार्य-कारण संबंध से करना असंभव प्रतीत होता है, बस उतना ही उसका चमत्कारित्व। हम नहीं समझते कि प्रकृति के सारे नियमों का आकलन मनुष्य को हो चुका है। उलटे हम तो कहते हैं, प्रकृति के विश्वरूप का राई भर दर्शन भी अभी तक हम मानवों ने नहीं किया है। पूर्ण रूप देखना असंभव ही है। अत: चमत्कारों के लिए जगह तो हमेशा ही रहेगी। प्रश्न यह नहीं कि जो घटना हो गई है, वह चमत्कारपूर्ण है या सरल। प्रश्न यह है कि जिस घटना के होने का सब लोग दावा कर रहे हैं, वह सत्य ही घटी है या नहीं? अच्छा, क्या यह समाचार सोलह आने पक्का है कि बाबाजी जीवित हो गए, लहू का बहना अपने आप रुक गया?''

''सौ प्रतिशत पक्का। बाबाजी एकदम भले-चंगे हो गए हैं। स्वयं सिविल सर्जन डॉक्टर ने दाँतों तले अँगुली दबा ली, सैकड़ों लोग देखकर हक्के-बक्के रह गए।'' मोरे ने उत्तेजना भरे स्वर में कहा, ''बाबाजी की नित्य नियमित प्रार्थना थी, 'जहाँ मैं जाता हूँ, वहाँ तू ही मेरा साथी, हाथ पकड़कर चलाते हो मुझे।' यह यूँ ही नहीं करते थे वे।''

''ठहरिए, स्वयं सिविल सर्जन महोदय ही आ रहे हैं। आइए, आइए, पहले यह बताइए, बाबाजी कैसे हैं?''

डॉ. विचारे के इस प्रश्न से सिविल सर्जन तनिक भौंचक्क होकर पूछने लगे, ''कौन बाबाजी? वही जिनके हत्याकांड का हंगामा हो रहा था? क्यों? उनकी इतनी पूछताछ क्यों हो रही है? हम रुग्णालय में उन्हें मृतप्राय अवस्था में उठा ले आए थे। दस-पाँच मिनटों में ही उन्होंने दम तोड़ दिया।''

पांडुरंग चौंकते हुए कुरसी से उछल पड़े, ''क्या कह रहे हैं आप! वे एकदम स्वस्थ हो गए, उनका रक्तस्राव अपने आप बंद हो गया, आप डॉक्टरों ने भी दाँतों तले अँगुली दबाई, यह सब...''

''सफेद झूठ। बाबाजी की मृत्यु हुई, तब मैंने दाँतों तले अँगुली नहीं दबाई

थी। परंतु आप लोगों की यह अंधविश्वासी कहानी सुनकर अब दाँतों तले अँगुली जरूर देना चाहता हूँ। किसने बताया आपको?''

''चौधरी ने! इन्होंने कहा, 'सैकड़ों लोग देखकर आए हैं'—क्यों चौधरीजी?''

डॉ. विचारे ने अपनी हँसी दबाई। परंतु इसलिए कि यह मामला हद से आगे न बढ़े उन्होंने गंभीरता से सिविल सर्जन से पूछा, ''अच्छा, परंतु यह तो सच है न कि मरने से पहले खेत में घायलावस्था में वे सैकड़ों लोगों के सामने 'विट्ठल विट्ठल' का नामघोष कर रहे थे?''

सिविल सर्जन पुन: घृणा से गरदन झटककर उबल पड़े, ''सरासर झूठ। अजी, उनकी हत्या का हल्ला मचने से दस-पाँच लोग इकट्ठा हो ही रहे थे कि सरकारी अधिकारी के नाते मैं वहाँ पहुँच गया। सैकड़ों लोग कहाँ से आए, भई? बाबाजी मूर्च्छित, मृतप्राय अवस्था में थे। दस-पाँच हिचकियाँ जरूर रही होंगी! उनकी उखड़ी-उखड़ी साँस को अब कोई 'कोहं? सोहं!' इस तरह अजपा गायत्री का नाम देना चाहें, तो मैं कुछ नहीं कहूँगा। अजी, मरणकाल का झटका, दो-चार हिचकियाँ बस! इसके सिवा 'चूँ' तक करने से पहले ही बाबाजी राम-राम हो चुके थे।''

''अच्छा, जाने दो।'' डॉ. विचारे बिना किसी व्यंग्य के ऐसे सधे हुए स्वर में बोलने लगे, जैसे कोर्ट में न्यायाधीश, ''अब यह बताएँ, विट्ठल की मूर्ति की आँखों से भक्त के घायल होने के कारण दु:खाश्रुओं की धारा बह रही है, उनका शरीर पसीने से तर हो गया है, इस तरह का समाचार पूरे गाँव में फैला है तो यह घटना किसीने अपनी आँखों से देखी है?''

''सैकड़ों लोगों ने।'' सारा प्रदेश शत्रु जीत रहा है, यह देखकर सबसे अंतिम ऊपरी किला उसके हाथ नहीं लगने दूँगा, इस अडिग आन-बान से शूर सेनापति जिस तरह अडिग कुंडली मारकर बैठता है, डटा रहता है, उसी निश्चय के साथ मोरे ने कहा, ''सैकड़ों लोगों ने अपनी आँखों से देखा।''

''आपने स्वयं देखा?''

''नहीं। मैं अभी उधर जा ही रहा हूँ।''

''अच्छा, पांडुरंग राव, आपने स्वयं देखा?''

''जी नहीं। सुना है, साने और गाडगिल ने अपनी आँखों से देखा है।''

''वे दोनों यहीं पर हैं। आपसे पहले ही आए थे। क्यों साने, आपने थोड़ी देर पहले जो अनुभव बताया, उसे दोहराइए।'' डॉ. विचारे ने उनसे अनुरोध किया।

''जैसे मैंने थोड़ी देर पहले कहा कि यह बात सुनकर मैं आश्चर्यचकित हो मंदिर में गया। परंतु वहाँ के भीड़-भड़क्के में मूर्ति के पास पहुँच नहीं सका। उसपर

गर्भगृह में घुप अँधेरा। मैंने तो कुछ नहीं देखा। परंतु गाडगिल आगे ही थे, उन्होंने कहा, मूर्ति की आँखों से आँसू बह रहे हैं, अत: मैंने भी वही कहा।'' साने का प्रमाण समाप्त हो गया। सारे लोग हँसने लगे। परंतु यह देखकर कि डॉ. विचारे हँस नहीं रहे, सभी ने अपनी हँसी को रोक लिया। डॉ. विचारे ने गाडगिल से पूछा, ''आपका अनुभव?''

''मैंने उस अँधेरे गर्भगृह में बस इतना ही देखा कि विट्ठल की मूर्ति की आँखें और गाल गीले से हैं और कुछ महिलाएँ कह रही थीं कि हाय! हाय! विठोबा रो रहा है।''

''परंतु गाडगिल, आप स्वयं मुझसे कह रहे थे न कि विठोबा की आँखों से आँसुओं की धारा बह रही है?'' साने ने टोका।

''और बस उतना ही सत्य है।'' डॉ. विचारे ने सभी की ओर देखते हुए कहा, ''ये चंद्रचूड़ यहीं पर हैं। ये और मैं पुलिस की पूछताछ शुरू होते ही वहाँ गए। उस समय दस-पाँच लोग भी वहाँ नहीं पहुँचे थे। उस समय कोई उस मूर्ति के मस्तक पर पानी डालकर तथा चरणों पर एक-दो फूल चढ़ाकर जल्दी-जल्दी वहाँ से चला गया। उस मंदिर में केवल बाबाजी ही ठीक-ठाक पूजा करते थे। अब मूर्ति का शरीर पोंछने के लिए कौन आएगा? वह गीला ही रह गया। हम लोग पूछताछ करके और कुल परिस्थितियाँ देखकर वापस लौटे तो मूर्ति के मुँह पर उस जल की बूँदें तथा नमी देखकर दो-तीन लोगों को आश्चर्य से 'देखिए, विठोबा की आँखों से पानी बह रहा है' कहते हुए हमने सुना। उसका वास्तविक कारण भी हमने उन्हें स्पष्ट किया, परंतु ऐसा प्रतीत हुआ, उन्हें वह नहीं जँचा। हम वापस लौटे, देखा दो-तीन घंटों में पूरे गाँव में 'विठोबा रो रहे हैं' यही गप फैली हुई है!! दूसरी बात यह है कि प्रथमत: जब विठोबा के सामने उन दुष्टों ने बाबाजी पर धावा बोला…''

''गलत! गलत!'' मोरे निराशा के आवेश में बीच में उफनने लगे, ''भगवान् के सामने बाबाजी पर हमला नहीं हुआ। मार्ग में, भगवान् के पीछे खेत में उन्हें घेर लिया। भगवान् के सामने उन दुष्टों की हिम्मत कैसे होती?''

''नहीं, नहीं। क्या बक रहे हो?'' सिविल सर्जन घृणा से सिर को झटका देते हुए झल्लाए, ''अजी, नित्य की तरह बाबाजी को मंदिर में सोते हुए पड़ोस के लोगों ने देखा। आधी रात में छप्पर से उतरकर बाबाजी के मुँह में कपड़ा ठूँसकर उनपर दो-चार प्रहार करते हुए हत्यारों ने उन्हें घसीटते हुए बाहर निकालकर खेत में फेंक दिया। उखड़े हुए खपरैल, मुँह में ठूँसा हुआ कपड़ा, मंदिर की दहलीज पर गिरे हुए लहू के धब्बे, वहाँ से खेत तक लहू से लथपथ राह—सारे प्रमाण मेरे सामने देखकर पंचनामे में दर्ज किए गए।''

पांडुरंग राव का मन एकदम खट्टा हो गया, जैसे बड़ी सुघड़ता के साथ रची हुई गौरी की साज-सज्जा अचानक नीचे की चौकी के ढह जाने से लड़कियों का मन मुरझा जाता है। चमत्कार से चमत्कार जोड़ते-जोड़ते कैसा रसभीना प्रासादिक श्रद्धाशील अध्याय उनके मन में जुड़ रहा था, जो कथा-भक्ति विजय में ही सोहता। कोई कोट-पतलूनवाला राक्षस महीपति के हाथ से वह अध्याय छीनकर उसकी धज्जियाँ उड़ा रहा है, इस तरह उन्हें आभास होने लगा। चौधरी मोरे तो क्रोध में आपा खोकर खुलेआम उस सिविल सर्जन को राक्षस कहने जा ही रहे थे, पर इतने में डॉ. विचारे अत्यंत कोमल स्वर में उनकी मनुहार करने लगे, ''आप सभी इस बात पर गौर करें कि भोली, भावुक भक्ति से ईश्वर की महत्ता बढ़ाने के लिए हम उसे मनुष्यों की तरह दुर्बल ही बना देते हैं। सच्ची भक्ति वही है जो मनुष्य को भगवान् बनाए। भई, भगवान् को नेत्रहीन, दुर्बल, रोनी सूरतवाला, दु:खी बावला बनाए, वह भक्ति है या अंधश्रद्धा! बाबाजी जो कहते थे—

जहाँ मैं जाता हूँ, तू ही मेरा साथी,
हाथ पकड़कर मेरा सँभालोगे॥

तात्त्विक अर्थ से इसे न देखकर शब्दश: सच मानना हो तो उन दुष्टों ने उन्हें मंदिर में न पकड़ते हुए खेत में घेर लिया इसमें क्या फर्क पड़ता है? खेत में भी भगवान् उनके साथ थे ही। फिर उधर भी उन्हें क्यों नहीं सँभाला? भगवान् ने उन्हें पूर्व सूचना क्यों नहीं दी कि हत्यारे आ रहे हैं। सत्यस्वरूप भगवान् भक्त की रक्षा के लिए उन दुष्टों को पकड़कर उनके विनाशार्थ उनके पीछे भागते या किसी अबला के समान ईंट पर खड़े रहकर आँसू बहाते रहते? प्राय: सभी संत विषयक कथाएँ इसी तरह सुनी-सुनाई कहानियों पर विरचित सुरस उपन्यास हैं। रसभीने परंतु अतथ्य, कुपथ्यकारी। कहते हैं भगवान् रोते हैं। वह भक्तों का प्रतिशोध नहीं लेता, केवल आँसू बहाता है।''

''अथवा उस मुसलमान सुलतान को, जिसने संत दामाजी को असीम यंत्रणा दी, हाथ पकड़कर राजगद्दी से नीचे घसीटने की बजाय उलटे जोहार करते हुए जुरमाना भरता रहा।'' सिविल सर्जन ने बीच में ही कहा, ''परंतु वह कहानी भी जितनी सुंदर उतनी ही असत्य सिद्ध हो गई, महाशय!''

डॉ. विचारे ने कहा, ''विठू नामक एक महार (अछूत) ने जुरमाना भर दिया। जैसे आज किसी घात में रहे सत्याग्रही के लिए उसका कोई आप्त बेनाम रूप से जुरमाना भरता है और उसे मुक्त करता है। इस विठू महार का घराना विद्यमान है और उनके पास इस घटना के लेख हैं। परंतु आज जिस अंधश्रद्धा ने विठोबा को रुलाया, उसीने उस विठू महार को विट्ठल का अवतार बनाया। अच्छा हुआ, आज

कोई महीपति महाराष्ट्र में नहीं, अन्यथा आज की यह रामकहानी फैलते-फैलते उधर पहुँच जाती और उस बेचारे श्रद्धालु ग्रंथकार ने प्रामाणिकता के साथ उसे भक्तिविजय का एक प्रासादिक अध्याय बना दिया होता। खैर, जो हुआ सो हुआ। पर मैं कहता हूँ, यदि वह जाग्रत देवता हो और उसे हत्यारों को मारना संभव नहीं हो, तथापि वह कम-से-कम इतना तो करे कि आज या कल पुलिस के सपने में आकर वह इतना कहे कि हत्यारे कौन हैं और उनके लहू से सने कपड़े, हथियारों का ठिकाना बताकर पकड़वा दें। ईश्वर को गुप्तचर से भी अधिक अंतर्ज्ञानी होना चाहिए। इतना कुछ हो जाए तो उसे चमत्कार कहेंगे।

कुछ दिनों के पश्चात् पुलिस ने दो-चार गुंडों को पकड़कर उनपर मुकदमा चलाया, परंतु कच्चे प्रमाण के कारण वे आरोपी निर्दोष सिद्ध होकर छूट गए। उस हत्याकांड को ही नहीं, अपितु उसकी स्मृति को भी सभी ने रद्दी की टोकरी में फेंक दिया है। कभी स्मरण हुआ भी तो 'विठोबा रोता है' जैसे चमत्कार के रूप में नहीं, अपितु हास-परिहास के रूप में!

□

छूतछात की मूर्खता

"कालू! अभी स्कूल से आ रहे हो? अन्य बच्चे तो कभी के घर पहुँच गए और तुम अब घर पहुँच रहे हो? दस बजे स्कूल की छुट्टी होती है और दस कदम पर घर पहुँचने में तुम्हें इतनी देर? ठहर कलमुँहे, यह देख, कलछी लाल-लाल हो रही है, ऐसे कसकर दागती हूँ कि बस! आओ भीतर चौक में आ जाओ! अरे हटो-हटो, धींगरा कहीं का! हाथ-पाँव धोए बिना रसोई में पाँव नहीं रखना चाहिए। बड़े उपकार किए मुझपर जो जूतों के साथ भीतर नहीं घुसे।"

"किसे पड़ी है भीतर आने की!" कालू ही-ही करते हुए दाँत निकालकर बोला, "तुमने ही कहा था, आओ दागती हूँ तो आ गया। पर चाची, आज गरम कलछी नहीं, पहले चॉकलेट की पेटी निकालो। पिछले महीने तक मेरा मराठी चौथी में चौतीसवाँ क्रमांक होता था, इसलिए मुझे नीचा दिखाती थीं न?"

"फिर आज कौन सा तीर मारके आ रहे हो? बड़े तीसमार खाँ बनकर आए हो? पिछले महीने में जो तुम्हारा चौतीसवाँ क्रमांक था अब तैंतीस तो नहीं हुआ? चलो, एक क्रमांक भी ऊपर गए तो चॉकलेट दूँगी, हाँ!"

"तो फिर सुनो! आज हमारे नए क्रमांक लग गए, उसमें मेरा अठारहवाँ क्रमांक आया है।"

"क्या कह रहे हो? कालू, यदि झूठ सिद्ध हुआ तो ऐसा करारा थप्पड़ लगाऊँगी···"

"तुम्हारी सौगंध! चाची, सचमुच ही आज कक्षा में मेरा अठारहवाँ क्रमांक आया।"

"मेरे वीर! हमारे कालू की बुद्धि इतनी गई बीती तो नहीं है। परंतु है तनिक वाहियात और उठल्लू। इस महीने में अध्ययन करोगे तो एकदम सोलह क्रमांक ऊपर उठ जाओगे न? यह लो, चॉकलेट की भरी हुई पेटी ही लो, बबुआ! देखो, पुरस्कार मिला न? यदि अगले महीने में और सोलह क्रमांक ऊपर उठोगे तो ऐसी

दो-दो पेटियाँ दूँगी अपने राजा बेटे को! तेरे जैसे बुद्धिमान लड़के का तो अध्ययन करने से क्रमांक ऊपर ही जाना चाहिए।''

''अरी चाची, पढ़ाई किसलिए?'' चॉकलेट की पेटी उठाए रसोईघर से दूसरे सुरक्षित कमरे में जाते हुए ढेर सारे चॉकलेट भकोसने के कारण कालू अटक-अटककर कहने लगा, ''भई, पढ़ाई की क्या आवश्यकता है? अपनी कक्षा में चौंतीसवें क्रमांक से आज जो मैं एकदम सोलह क्रमांक ऊपर चढ़कर आ गया, वह बिना अध्ययन किए ही; यही खूबी है। ऐसे मुँह-आँखें फाड़-फाड़कर क्या देख रही हो? तुम्हारी सौंगध! मैंने पढ़ाई-वढ़ाई कुछ भी नहीं की। सुनो, ऐसा हुआ, बताता हूँ...'' और चॉकलेट मुँह में ठूँसते तथा इतमीनान से पाँव हिलाते हुए मुसकराकर कालू कहने लगा, ''अरी, मेरी कक्षा में कुल चौंतीस बच्चे हैं न? तब मैं चौंतीसवाँ नहीं था? अब आज क्या हुआ, पता है? हमारे स्कूल के प्रतिद्वंद्वियों का वह दांडेकर स्कूल है न? उन्होंने हमारे स्कूल के कई बच्चों के अभिभावकों को हमारे स्कूल के विरुद्ध भड़काया। इसलिए हमारे स्कूल के पंद्रह-सोलह छात्र हमारा स्कूल छोड़कर इस महीने से दांडकेर के स्कूल में चले गए। शेष बच्चे रहे अठारह! तब गुरुजी ने कहा, सब मिलकर एक पंक्ति में बैठो और अपने नए क्रमांक गिन लो। तब मैं केवल थोड़ा सा सरका और अठाहरवाँ हो गया। इसी तरह अवसर मिला तो पहला क्रमांक भी मिलेगा, चाची! इसके लिए पढ़ाई का झंझट भला किसलिए?''

इतने में झटके के साथ बेलन उस स्थान से टकराया जहाँ कालू बैठा हुआ था। परंतु अनुभव से कालू ताड़ गया कि बेलन फेंका जाएगा। इसलिए पहले ही तैयार होकर वह झट से पीछे कूदा और फिर एक छलाँग में बेलन उठाकर पीछे हटते-हटते सायबान में आ गया, जहाँ जूते-चप्पलें रखी जाती हैं और फिर उधर ही बेलन छोड़कर वह खिलखिलाता हुआ वापस लौटा। उसका पीछा करते अनु चाची भी आगे बढ़ती रहीं। परंतु यह देखकर कि कालू जूते रखने के स्थान पर पहुँच गया है, उनका सारा आवेश ठंडा पड़ गया और क्रोध करने के बदले वे घिघियाने लगीं, ''अरे, जूते हैं। नासपीटे, मेरे बेलन को अपवित्र मत करो। भगवान् के लिए मुझे वापस लौटा दो। ना-ना-ना, फिर कभी फेंककर नहीं मारूँगी। अरे, मत छुओ उन जूतों को।''

''तो फिर कभी मारोगी नहीं न?''

उन दोनों के बीच में अनुबंध निश्चित हो ही रहा था कि इतने में एक डाकिए की आवाज उन्होंने सुनी, ''विष्णुपंत देवधर।'' पीछे-पीछे एक लिफाफा सर्रर से द्वार के पास गिर गया।

"बाबूजी की चिट्ठी है। क्या मैं ही खोलूँ?" माँ की मौखिक आज्ञा माँगते-माँगते ही कालू ने लिफाफा खोला।

"खोल ही दिया। पर एक अक्षर भी पढ़ सकोगे भला?"

"क्या समझ रखा है मुझे? अरी, अब मराठी चौथी में अठारहवाँ क्रमांक है मेरा! वाह! अक्षर कितने सुंदर जैसे मोती पिरोए हैं। सुनो, पढ़ रहा हूँ…"

कुछ अटकते हुए पर कुल मिलाकर अर्थ स्पष्ट समझने योग्य रीति से कालू ने पत्र पढ़ लिया। बस पाँच-दस पंक्तियाँ ही थीं, पर उन्हें सुनते-सुनते अनु चाची को जैसे काठ मार गया। उस पत्र के ठोस सारांश पर उन्होंने गौर किया—वह इस प्रकार था—'ब्रह्मावर्त में विष्णुपंत देवधर के चचेरे दादाजी के परिवार में एक वृद्ध की मृत्यु हो चुकी थी, आज चौथा दिवस था। अर्थात् चचेरे ददिया ससुर की शाखांतर्गत आया सूतक अनु चाची के परिवार पर भी लागू था। उस समाचार से तनिक संज्ञाशून्य होकर अनु चाची खड़ी थीं, इतने में कालू दीवार की पटनी पर वह पत्र रखने के लिए कूदकर गद्दियों के ढेर पर चढ़ गया। उस धक्के के साथ अनु चाची इस तरह चीखीं जैसे बिच्छू ने डस लिया हो।

"अरे कलमुँहे, निगोड़े—सूतक है न। पहले नीचे उतरो। मुए ने छूतछात से सत्यानाश कर दिया।"

खिलंदड़ कालू भी उनकी कर्कश चीख से चौंक पड़ा। थोड़ा दुबककर परे हट गया। इतनें में विष्णुपंत घर आ गए, "क्या हुआ, भई?" पत्नी से पूछते ही अनु चाची ने पति की ओर आग्नेय दृष्टि से देखते हुए समाचार सुना दिया—

"होना क्या है? ब्रह्मावर्त में अपने कोई चचेरे दादाजी के भाई-बंद हैं न? तुम्हारे और मेरे जनम में एक-दूसरे का मुख भी नहीं देखा। उनका कोई मर-खप गया है। अच्छा, मृत्यु हुई सो हो ही गई, नौवें दिन तो खबर देनी चाहिए थी न? फिर बस स्नान किया और सूतक पूरा हो गया। परंतु पूरे जनम में जिन्हें एक भी चिट्ठी डालने की जल्दी नहीं होती, मरते समय तो उन्हें सारे-के-सारे भाई-बंदों को सात पीढ़ियों का संबंध कुरेद-कुरेदकर सूतक पत्र भेजने की उतावली होती है। आज चौथा दिवस है सूतक का। इतने में हाथ में चिट्ठी पड़ी। अब पूरे छह दिन इस तरह बड़े कष्ट से, ठिठुरते हुए रहना है। जनम-जनम का वैर निकाला नासपीटों ने। अरे अरे, चूल्हे पर रखी दाल जल रही है! अब कौन उतारेगा उसे। भिकी भी स्कूल से अभी तक नहीं लौटी।"

अनु चाची इसी तरह कुढ़ती हुई, जल-भुनकर वहीं खड़ी थीं और उधर विष्णुपंत इतमीनान से चिट्ठी पढ़ रहे थे, कुछ स्मरण कर रहे थे। उन्होंने अपने सगे दादाजी को भी नहीं देखा था। चचेरे दादाजी की ब्रह्मावर्त शाखा का नाम वे जानते

थे बस, इससे अधिक उन्हें कुछ भी परिचय नहीं था। कुछ बरस पहले इसी तरह उधर किसीकी मृत्यु हो गई थी। उस समय भी इसी तरह सूतक लगा था। किसी की मृत्यु हो जाती तो उन दोनों में पत्र-व्यवहार होता, बस इतना ही उस पीढ़ी में उन दो कुल शाखांतर्गत भाई-बंदों का आपसी पत्र-व्यवहार था।

अनु चाची एक सुशील धर्मपरायण स्त्री थीं जिसे पावित्र्य, शुचिता प्रिय थी और छूतछात से घृणा। जितनी ममतामयी, उतनी शीघ्रकोपी। विष्णुपंत अपनी पत्नी की मरजी के अनुसार ही घर के सारे व्यवहार रखते। उनका धर्माचरण इतना कर्मठ नहीं था, न ही उन्होंने उसे पूर्णतया त्याग दिया था। अनु चाची को आजकल हलका-हलका ज्वर रहता, जिससे वह अधिक ही चिड़चिड़ी हो गई थीं। परंतु घर में कामवाली रखने की शक्ति उस परिवार में नहीं थी, न ही अनु चाची की कर्मठता उसका घर में आना, काम करना सह सकती थी। अत: घर का सारा कामकाज वे अपने हाथों से ही करतीं, परिणामस्वरूप उनका ज्वर अधिकाधिक बढ़ते जाने से उनका स्वास्थ्य गिर रहा था। सूतक का विघ्न आते ही शरीर पर लिपटे धूत वस्त्र के साथ इधर-उधर सर्वत्र उन्हें छूतछात ही दिखाई देने लगी, वे सिटपिटा सी गईं। चूल्हे पर रखी दाल ज्यों-ज्यों अधिकाधिक जलने लगी, त्यों-त्यों अपनी बारह वर्षीया कन्या भिकी को स्कूल से लौटने के लिए विलंब होते देखकर उनका पारा धीरे-धीरे आसमान पर चढ़ने लगा।

आखिर भिकी आ गई। पेट में चूहे कूद रहे थे। हमेशा की तरह बस्ता फेंककर लाड़ से भुनभुनाती हुई माँ के पास आई, "माँ, कुछ खाने को दो न।" इतने में झल्लाकर उसकी ओर लपकती हुई अनु चाची चिल्लाईं, "अरी, मुझे छूना मत! छूना मत! मुझे ही खा ले कलमुँही! हट पीछे, मैं शौच में हूँ।"

बेचारी भिकी! पीछे हटती हुई, सूतक की यह छूतछात कोई भयंकर संकट तो नहीं, सोचती हुई घबराकर टुकुर-टुकुर ताकने लगी। कन्या होने के नाते उसे सूतक नहीं, अब वही नहा-धोकर जैसे-तैसे भोजन बनाएगी और छह दिन तक जब तक सूतक पूरा नहीं होता तब तक पानी, झाड़-बुहार सबकुछ करके गृहस्थी की गाड़ी हाँकनी है, यह बात उसे समझ आते ही भारी कदमों से वह बारह वर्षीया बालिका चुपचाप कामकाज में जुट गई। अनु चाची दूर एक कोने में बैठकर भिकी को आदेश के ऊपर आदेश दे रही थीं और पल-पल में 'अरी छू लेगी, सँभल के' चिल्लाकर उससे काम करवा रही थीं।

प्रत्येक पग की छुआछूत के, पदार्थ की छूतछात के धर्मशास्त्र स्वतंत्र साधारण नियम कुछ भी नहीं। गेहूँ के लिए छूतछात नहीं, उन्हें चुनने में कोई आपत्ति नहीं, परंतु आटे के लिए छूतछात है, उसे छूना नहीं। नदी के लिए छूतछात नहीं, कुएँ के

लिए है, कुएँ में पड़े मेढक, मछली, पानी खींचते समय घटीयंत्र पर बैठे उड़ते कौए की छूतछात नहीं, मनुष्य की है। नए कोरे कपड़ों की छूतछात नहीं, धूत वस्त्रों की है। तेल का प्रयोग कर सकते हैं, घी का नहीं; गोमूत्र प्राशन कर सकते हैं, गोदुग्ध नहीं; उत्तरीय वस्त्र की पगड़ी जैसी घुग्घी लपेट सकते हैं, परंतु फेंटा पगड़ी नहीं। सूखी धरती पर पाँव रखना मना है। इस तरह पोथी में तथा पोथी के बाहर की रूढ़ि, ससुराल-पीहर में रटे-रटाए धर्मशास्त्र प्रणीत असंख्य नियम जो अनु चाची को ज्ञात थे, उनका पग-पग पर भंग करते तथा पालन करते-करते बेचारी भिकी की नन्ही सी जान थककर चूर हो गई। उसे सूतक का पालन नहीं करना था, पर कालू को तो करना था।

कालू एक जन्मजात सुधारवादी था। चाची की नजर बचाकर सहज रूप में हँसते-हँसते वह भिकी को एक चपत लगाता। परंतु दिन में चार-पाँच बार तो चाची की सूक्ष्म दृष्टि को भिकी सूतक के छूतछात हुए पदार्थ की तथा सूतकी कालू भिकी को मजाक में छूते हुए दिखाई देता। फिर अनु चाची की गाली-गलौज में बेचारी भिकी को प्रथम तपना पड़ता। फिर ठंडे पानी में सचैल स्नान से ठिठुरना पड़ता। वे दिन थे भी कड़ाके की सर्दी के। परंतु अनु चाची के सूतकशास्त्र का विधान स्पष्ट था। ठंडे पानी से स्नान करने से ही छूतछात दूर हो सकती है, न कि गरम पानी से। भिकी केवल बारह वर्ष की स्कूली बच्ची! वह क्या भोजन बनाएगी, बड़े-बड़े भगोने उठाएगी, शुचिता में पानी भरेगी? परंतु कच्चा-पक्का जैसा-तैसा बनाकर उसे गृहस्थी का भार ढोना पड़ा। कालू चैन की बंसी बजा रहा था। वह अनु चाची की नाक में दम करता, बिछौनी के ढेर पर सवार हो गया था। अनु चाची ने शास्त्रार्थ स्पष्ट किया, ''भिके, गद्दियाँ धोई नहीं जातीं, बस उनपर गोमूत्र छिड़कने का काम होगा। परंतु चद्दरें धुलनी होंगी।'' कालू के अनुसार—धोना ही है तो गद्दियाँ धो डालो, अन्यथा चद्दरों पर भी गोमूत्र छिड़कने से छूतछात समाप्त होनी चाहिए। अनु चाची ने उसकी राय पर गौर नहीं किया और गद्दियों पर गोमूत्र छिड़कना ही पर्याप्त समझा। लेकिन उनका शुद्धिकरण होते ही कालू एक हाथ में गोमूत्र लेकर गद्दियों के ढेर पर सवार होकर पुनः नाचने लगा। अनु चाची के चिल्लाकर दौड़ने से, हाथ का गोमूत्र छिड़ककर वह कहता, 'देखो छूतछात उड़न-छू हो गई, तुम्हारे ही शास्त्र का पालन कर रहा हूँ।' ऐसे समय पर उसे दो-चार झापड़ रसीद किए जाते। तब कालू सोचता—किसी पोथी में 'सूतक के समय झापड़ न मारें' ऐसा भी नियम लिखा होता तो उसमें कोई तुक था।

सूतक में शक्कर सेवन न करें, यह नियम अनु चाची ने ताक पर रख दिया था। वह कहतीं, 'चाय में चीनी डालने में कोई आपत्ति नहीं। हाँ, मात्र चीनी का

सेवन न करें।' कालू के अनुसार या तो दोनों स्थान पर चीनी का सेवन करें या दोनों में न करें। अनु चाची अपने शास्त्र के अनुसार सूतक में चाय पीतीं। कालू अपने शास्त्र के अनुसार चाची के सम्मुख चाय के समय खुलेआम तथा चाची की ओट में भिकी की पानी भरने में सहायता करके उसके मूल्यस्वरूप गुपचुप चीनी खाता।

विष्णुपंत का स्वभाव अत्यंत सरल, शांत था। अपने कार्य में मगन रहते घर-बार उन्होंने अनु चाची के हवाले कर दिया था। वे अनु चाची, भिकी, कालू सभी को अपने-अपने विचारों के अुनसार आचरण करने देते। घर में वे स्वयं अनु चाची की मरजी तथा बाहर अपने मित्र डॉ. पुरंदरे के विचारों के अनुसार व्यवहार करते।

उन्हीं डॉ. पुरंदरे के पास जाना आज विष्णुपंत के लिए आवश्यक हो गया। ठंडे पानी से नहाना, झाड़ू-बुहार, दोनों समय का भोजन, चूल्हा-चौका, भोजन लगाना—इतना सारा काम बारह वर्षीया भिकी की शक्ति से बाहर होने के कारण तीसरे ही दिन वह बुखार से तवे जैसी जलने लगी। इधर अनु चाची के शरीर में पहले से ही ज्वर ने घर किया था। उसपर सर्दियों में चटाई पर सोना, ठंडे पानी से नहाना, भिकी का कच्चा-पक्का भोजन खाना, पथ्य छोड़कर कुपथ्य करना, यह सूतक धर्म है। उसी कारणवश अनु चाची का ज्वर भी बढ़ गया। शरीर में असहनीय पीड़ा हो रही थी। घर की दुर्दशा देखकर अपने काम से निपटकर तीसरे दिन संध्या समय विष्णुपंत कचहरी से घर लौटे। डॉ. पुरंदरे के घर, जो उनके एकमेव विश्वासपात्र सज्जन थे, औषधि लेने तथा थोड़ी गपशप करने गए। सूतक के कारण घर-बार विपत्तियों में किस तरह डूब गया है, विष्णुपंत के यह वर्णन करने पर डॉ. पुरंदरे वहीं बैठे हुए अपने दो मित्रों की ओर मुड़कर कहने लगे—

''देखो, सूतक की यह रूढ़ि आज कितनी अर्थशून्य एवं कष्टप्रद हो गई है? क्यों गोपू शास्त्री, सूतक में शक्कर नहीं खाना, गद्दी पर नहीं सोना, घर से बाहर नहीं निकलना, सर्दी के दिन हों या न हों, ठंडे पानी में नहाना और वस्त्रों के ढेर साफ-सुथरे होने पर भी केवल अँगुली से छू लिया, इसलिए पुनः उन्हें धोना और एक व्यक्ति की जान जाने पर दस जीवित व्यक्तियों का जीना दूभर करना, क्या इसे धर्म कहा जा सकता है? जिन रूढ़ियों से रत्ती भर भी सामाजिक लाभ नहीं होता, बल्कि मनुष्य मात्र को अकारण कष्ट-ही-कष्ट सहना पड़ता है, वह अधर्म है। यह सूतक प्रथा उनमें से ही एक अत्यंत बुद्धिशून्य अंधविश्वासी प्रथा है।''

गोपू शास्त्री ने व्यंग्य से पूछा, ''तो आपका अभिप्राय यह है कि अपने प्रिय व्यक्ति की मृत्यु पर दुःखी आप्तजन रबड़ी, जलेबी, लड्डू, पेड़े, बर्फी भर पेट खा-पीकर मखमली, रेशमी गद्दियों पर विश्राम करें? अजी, जिनके किसी प्रियजन की

मृत्यु होती है न उसे शर्करा भी संखिया समान प्रतीत होती है, हँसी का विस्मरण हो जाता है। सुखोपभोग विषवत् लगने लगते हैं। इसे ही हम मानवता या मनुष्यधर्म कहते हैं। इसे ही सूतक की रूढ़ि माना जाता है, यही शास्त्र कहलाता है।''

डॉ. पुरंदरे मुसकराए, ''अजी, यहीं पर तो रहस्य है। दु:ख मानने का शास्त्र, दु:ख मानने की रूढ़ि—परस्पर विरोधी इन दो शब्दों में सूतक के वर्तमान ढोंग-पाखंडपूर्ण ढकोसले की आपने ऐसी विडंबना की है जो मेरे लिए असंभव था।''

''डॉ. पुरंदरे के कथन का प्रत्यक्ष प्रमाण चाहिए तो हमारी रानीजी एवं युवराज कालू की ही गवाही ले लीजिए। सूतक की चिट्ठी मिलते ही मेरी पत्नी की आँखें भर आईं। वह मेरे चचेरे दादाजी की शाखा के एक वृद्ध गोत्रज की मृत्यु के दु:ख से नहीं, अपितु उनकी मृत्यु का पत्र इस तरह नहीं भेजा गया कि नौवें दिन वह हमारे हाथ में आ जाए बल्कि इस तरह जल्दी भेजा गया कि हमें छह दिनों तक सूतक में सड़ना होगा, इस क्रोध से जल-भुनने के कारण। 'मुओं से हमारा पिछले जनम का कुछ वैर होगा' यही हमारी शीघ्रकोपी महारानीजी का सूतक का समाचार मिलते ही निकाला हुआ पहला दुखोद्‌गार था। रूढ़ बना हुआ दु:ख ही दु:ख का मिथ्याचार है। मन में रत्ती भर दु:ख न होते हुए भी मेरी पत्नी मन:पूर्वक इतना परिश्रम, कष्ट उठा रही है, जिससे वह स्वयं तथा उसकी नन्ही-मुन्नी आज ज्वर से तप रही है—यह सब झंझट वह केवल इसलिए मोल ले रही है कि वैसा करना शास्त्रोक्त है।'' विष्णुपंत बोले।

''उसपर यह देखिए।'' डॉ. पुरंदरे ने शांत स्वर में कहा, ''सगी माता अथवा सगे पिता की मृत्यु का दु:ख जिस तरह पुत्रों को होता है, वैसा ही कन्याओं को भी होता है। परंतु कन्याओं को सूतक का पालन नहीं करना होता। माँ के मर जाने पर भी कन्याओं के मीठा खाने, गद्दियों पर सोने में धर्म की पाबंदी नहीं, उनके वस्त्रों को कोई छूतछात नहीं, परंतु दूर के उन संबंधियों को, जिन्हें कोखजायी बेटी से उस मृत स्त्री का दु:ख शतगुनों कम होगा, सूतक का कठोर पालन करना पड़ता है। इसके विपरीत जिससे मैंने आजन्म वैर किया, विद्वेष किया, उस भाई-बंधु की मृत्यु का सूतक मुझे पालना है। परंतु यदि मेरे किसी अंतरंग सखा या सखी की मृत्यु हो गई, जिनके दु:ख से मुझे जीवन नीरस, वीरान लगने लगा हो, असह्य यातनाएँ हो रही हों, फिर भी मुझे उनकी मृत्यु के सूतक का कतई पालन नहीं करना पड़ता। अत: दु:ख होने के कारण लोग शास्त्रोक्त सूतक का पालन करते हैं अथवा वर्तमान सूतक प्रणाली तथा उसकी मूर्खता भरी छूतछात की बला का समर्थन मानवता की संवेदानाओं से हो सकता है यह युक्ति, ये दोनों बातें पूर्णतया मिथ्या सिद्ध होती हैं।

अच्छा, मृत व्यक्ति के वियोग से दु:खी होकर जिन्हें शोक सचमुच दहाड़ें

मार-मारकर रुला रहा है, विह्वल कर रहा है, उन्हें भी इस सूतक के कारण हम बलपूर्वक दस दिन कष्ट भुगतने के लिए जो बाध्य करते हैं, क्या उसे धर्म कहा जा सकता है? वह मात्र नृशंसता है। आरोग्यशास्त्र की दृष्टि से तो इस तरह के शोक विह्वल परिवार के सदस्यों की मानसिक व्यथा दूर करने के लिए तथा उसके कारण उनका स्वास्थ्य गिरने से वे भी रोगों का शिकार न बनें, इसके लिए उन्हें धीरज बँधाकर सात्त्विक स्वादिष्ट भोजन बलपूर्वक एवं समय पर देना चाहिए। ऐसे वस्त्र जो ठंडी हवा से रक्षा करें, स्नान, बाहर घूमना-फिरना यही उपचार समझा-बुझाकर करने चाहिए। उनसे सच्चा प्रेम, ममता करनेवालों को उन्हें छाती से लगाकर उनकी पीठ पर ममता भरा हाथ फेरना चाहिए। परंतु उनके मन जब दुःखी, विह्वल एवं घायल होते हैं, उसी समय सूतक द्वारा हम उनके शरीर को भी विह्वल एवं घायल कर देते हैं। किसी कुष्ठ रोगी की तरह 'छुआछूत' की रट लगाकर उन्हें दुत्कारते हुए कोई भी उन्हें छूता तक नहीं। चटाई पर सोना, रूखा-सूखा देर-सवेर का दूसरों का दिया हुआ भोजन गले में उतारना, काम-धंधा ठप, घर से बाहर निकलना दूभर। प्रत्येक वस्तु माँगना, ऐंठे हुए शरीर से दिन-रात बिताना, इस तरह वर्तमान स्थित सूतक की वाहियात तथा अर्थशून्य रूढ़ि के कारण शरीर और मन दोनों को ही मानसिक दुःख के साथ-साथ सूतक का कठोर कष्ट भी सहना पड़ता है जिससे उनका मन अधिकाधिक उदास, वीरान बनकर ऊब जाता है। मैं ऐसे परिवार कई बार देखता हूँ, जिनमें रोगवश कोई मरा और सूतकवश दो-दो, तीन-तीन जनों का स्वास्थ्य गिरने से वे बीमार हो जाते हैं। प्रियजन की मृत्यु से जो परिवार पहले ही दुःख-शोक विह्वल है, उसमें आबालवृद्ध की सूतक के कष्ट से उपेक्षा, दुर्गति करना, छूतछातवश उन्हें दुत्कारना अत्यंत निर्दयता है एवं उनके स्वास्थ्य के लिए घातक है। इसलिए सूतक की रूढ़ि त्याज्य है और जिन्हें सूतक का दुःख नहीं होता उनसे उसका ढोंग करवाना मिथ्याचार है। अतः सूतक उस मामले में भी त्याज्य है। अजी, धड़ल्ले से पैसा-पंसेरी दाम देकर लाश के सामने किराए के लोग लाकर उनसे दहाड़ें मारकर, छाती पीट-पीटकर रोना-धोना करवाने की रूढ़ियाँ हैं—इस तरह का सूतक धर्म पालन करना क्या भोंडापन नहीं है? 'मोल लिया है रुलाने को, न आँसू न ममता,' इस तरह की रूढ़ि का पालन आज भी सैकड़ों लोगों में छूतछात की दीवानी सूतकी रूढ़ि की तरह 'धर्म' स्वरूप हो रहा है। सूतक में छूतछात की जो महामारी घर-बार को अपने चंगुल में फँसाती है, क्या वह एकमात्र सनकीपन नहीं है?''

''क्यों? डॉक्टर! अब आप तो बहकने लगे हैं, हाँ।'' वहीं बैठे एक समाजशास्त्री बी.ए. 'ऑनर्स' ने विस्मय से कहा, ''अजी, यूरोपीयन साहब लोग भी

आजकल हमारे सूतकजन्य छूतछात के आचार की भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे हैं। जहाँ मृत्यु की घटना होती है तथा उस परिवार में जो बिगड़ा हुआ वातावरण होता है, उसकी छूत समाज में न फैले, इसलिए उस परिवार को कोई भी न छूए, दस दिन तक घर से बाहर न निकले, उनके कपड़े धुलवाए आदि नियम हमारे त्रिकालदर्शी पूर्वजों ने बनाए हैं, महाराज, आप हैं कहाँ? अजी, गोपू शास्त्री का वह शास्त्रोक्त रहने दो परंतु बुद्धिमान साहब लोग भी प्लेग में क्वारंटाइन सेग्रिगेशन प्रभृति जो उपाय आयोजित करते हैं, वे भी हमारी सूतकांतर्गत रूढ़ि से सूझे हैं। है कोई माई का लाल जो इस विधान को झुठला सके कि दस दिन सूतक का पालन करने का साहब लोगों ने निश्चय किया था? साहब भी सूतक का समर्थन ही करते हैं समझे? भई, समाजशास्त्र का प्रश्न है यह, कोई मजाक नहीं।''

''हाँ, हाँ, हाँ! प्रोफेसर महाशय, सच कहूँ, वह 'शास्त्रोक्त' जो प्राचीन रूढ़ियों का समर्थन करता है, एक बार समझदारी की बात होती है, परंतु भई तुम्हारा यह 'साहबोक्त' उस रूढ़ि की असहनीय विडंबना है। क्या कहा, साहब भी सूतक का समर्थन करते हैं!! साहब लोगों में भी कोई काठ का उल्लू नहीं होता? मेयो भी एक साहब है। रूढ़ि की निंदा साहबोक्त होने पर भी कपटपूर्ण है, उसी तरह कुछ साहब लोगों द्वारा हमारी मूर्खतापूर्ण रूढ़ि की की हुई प्रशंसा भी एक छलावा है, कपट है। कुछ हितशत्रु अंग्रेज इसलिए हमारी और हमारे मूर्खतापूर्ण आचारों की प्रशंसा करते हैं कि वह मूर्खता करते ही रहें। साहबोक्त भी हमें ठोंक-बजाकर, परखकर लेना चाहिए। कहाँ पोथीनिष्ठ सूतक की छूतछात और कहाँ क्वारंटाइन सेग्रिगेशन की बुद्धिनिष्ठ प्रणाली? संक्रामक रोग से मृत्यु होने से क्वारंटाइन सेग्रिगेशन उपयुक्त है परंतु किसीकी मृत्यु साँप के डसने से, गड्ढे में गिरने से, मोटर दुर्घटना में हो जाय तो तभी सूतक की छूतछात मानते हैं। उसपर प्लेग से अथवा महामारी से घर में बाप की मृत्यु हो गई, तो बेटों के लिए सूतक, परंतु उसी पिता के सिरहाने बैठी कन्याओं के लिए नहीं। कन्याओं के सर्व संचार से क्या संक्रमण नहीं फैलता? इन विष्णुपंत का कोई संबंधी ब्रह्मावर्त में मर गया और सूतक छूतछात का पालन विष्णुपंत के गोत्रजों के परिवार को करना पड़ रहा है पुणे, मद्रास, सिंध और विलायत में। मरने का आप्त पत्र सारे गोत्रजों में संक्रामक बीमारी की तरह फैलता है। चिट्ठी पहुँचते ही दूर देश में केवल उस विशेष संबंध के व्यक्तियों में रोगाणु सनसनाने लगते हैं और उसी घर में उसी जलवायु का सेवन करनेवाले निवासियों को उसकी बाधा न पहुँचे? यह वैद्यकशास्त्र है या मूर्खता? ज़िस घर में सूतक प्रवेश करता है वहाँ मृत्यु की घटना हो या न हो, परंतु वे लोग घर से बाहर नहीं निकल सकते। परंतु शहर का कोई भी व्यक्ति उनके घर कभी भी आता-जाता, खाता-पीता

रहे, यह है सूतकशास्त्र! क्या यह सेग्रिगेशन तत्त्व है? प्लेग की महामारी क्या कोई पालतू कुत्ता है कि स्वामी के साथ बाहर निकल जाए, पर बाहर के लोग आएँ तो उनके पीछे नहीं जाती, उन्हें काटती भी नहीं? भयानक महामारी में भी सूतक का वही ढंग! दसवें दिन गोमूत्र छिड़का कि घर, कपड़ा, मनुष्य सबकुछ शुद्ध-ही-शुद्ध हो गया। परंतु क्या इसे 'डिसइंफेक्शन' कहा जा सकता है? खपरैल उखाड़कर, कड़ी जंतुघ्न दवाइयों का फव्वारा मारकर, औषधीय धुएँ से कपड़े, वस्तुओं को भाप देकर भी यह महामारी काबू में नहीं आती तो क्या घर में, रास्ते पर चार बूँद गोमूत्र छिड़कने से उसे भगाया जा सकता है? 'छूतछात' एक धार्मिक अंधविश्वास पर आधारित भावना है और 'डिसइंफेक्शन क्वारंटाइन' प्रभृति स्वास्थ्यकारी साधन से वैद्यकीय उद्देश्य का मूलभूत संबंध ही नहीं है। मूलत: यह प्रथा धार्मिक, परलोक-कल्पनामूलक है।'' डॉ. पुरंदरे ने कहा।

विष्णुपंत बोले, ''यही कारण मैंने सोचा था। हाँ डॉक्टर, जब मैंने मिस्र आदि देश की 'ममी' तथा 'पिरामिड्स' की जानकारी पढ़ी। मृत राजा अथवा रंक परलोक में जाते ही इहलोक की गृहस्थी ऐसे ही उधर भी सजाता है, यह पूर्वापर धार्मिक धारणा होने के कारण ही मनुष्य के मरते ही उसकी कब्र में थाली, कटोरा, कपड़े, दीपक, पलंग यथाशक्ति दफनाए जाते थे जैसे दूसरे गाँव में घर बसाते समय केवल चुनिंदा सामान ही साथ ले जाते हैं।''

डॉ. पुरंदरे ने आगे बताया, ''केवल घरेलू सामान ही नहीं, अपितु मनुष्यों को भी। पूर्वकाल में किसीकी मृत्यु होने पर उसकी कब्र में उसके गुलामों को भी जीवित गाड़ दिया जाता था। महाराजे हों तो उनकी प्रिय पत्नियों को भी जीवित गाड़ दिया जाता था। जापान जैसे देश में सम्राट् की मृत्यु होते ही उसका सेनापति, प्रधानमंत्री आज भी किंचित् 'हाराकरी' (अपने आपको छुरा घोंपकर प्राणार्पण) करते हैं। यह भी अतिप्राचीन कालीन इसी सूतकी भावना की शेष स्मृति है। प्राचीन काल में इसी प्रकार मंत्रिमंडल को भी परलोक भेजा जाता। हमारे यहाँ शव के साथ सतीगमन करनेवाली पतिव्रता भी परलोक में पति की गृहस्थी में गृहिणी की कमी न रहे, इसी मूलभूत भावना की उदात्तीभूत साक्ष्य है। जो प्रेमविह्वल होकर प्रियतम की खातिर प्राणार्पण करती उसकी बात वारी-न्यारी। इस तरह का प्राणार्पण माता अपनी प्रिय संतान के वियोग से, वीर कीर्ति के लिए तथा हुतात्मा देश के लिए करते हैं। वह बात अलग है। परंतु सूतकांतर्गत 'कर्तव्य', 'शास्त्र' रूढ़ि के रूप में जिन स्त्रियों को सतीगमन करना पड़ा, 'मृत को सर्दी में काम आएगी' इसलिए कंबल, आधारार्थ सोटी, दूध के लिए गाय जो ब्राह्मण को देनी पड़ती, वह इसी भावना का अवशेष है। उस समय बाइस्किल नहीं थी, अन्यथा गरुण पुराणांतर्गत सूतकशास्त्र में कुछ ऐसा

भी वचन सहज रूप में पाया जाता कि मृत व्यक्ति परलोक की सड़कों पर तेजी से चल सके, इसलिए ब्राह्मण को एक-एक साइकिल दी जाए। मुसलमान, ईसाइयों के सूतकी आचार भी उन्हीं आदि मानवों के धर्ममतों के अवशेष, उनकी कब्रें पिरामिड्स की औरस संतान। कब्रों में कृमि कीटाणुओं के रक्तमांस भक्षण करने पर भी जो अस्थि-पंजर शेष रहते हैं, उनमें जगत् के अंतिम दिन साँसें फूँककर ईश्वर पुनर्जीवित करेंगे और उनका न्याय होगा, यह मूलभूत भावना। सारांश, मनुष्य जाति में आज जो सूतकीय आचार शास्त्र के रूप में रूढ़ हैं, उसकी जड़ में वैद्यकीय अथवा वैज्ञानिक कोई भी कसौटी नहीं। वे पारलौकिक एवं पुरानी दकियानूसी धर्म-धारणाओं के अंधश्रद्धात्मक अवशेष हैं। यह समझकर कि प्राचीन ज्ञान तथा अज्ञान के अनुपात में वे ठीक ही थे, यह प्रश्न टाला जाने पर भी अब भविष्य में हमारे सूतक विषयक आचार वर्तमान विज्ञान तथा वैद्यक की कसौटी पर लगाकर, समाज हिताय उपयुक्त सिद्ध होंगे, ऐसे आचार रखें। इस छुआछूत की मूर्खता का तत्काल त्याग करें।''

विष्णुपंत ने पूछा, ''परंतु मृतकों के स्मृतिप्रीत्यर्थ एक सामाजिक संस्कार के रूप में कम-से-कम सूतक की आवश्यकता नहीं है?''

डॉ. पुरंदरे ने उत्तर दिया, ''अवश्य। बस इतना ही इसका उपयोग है। प्राचीन काल में राजा आदि कुछ लोगों की मृत्यु निमित्त वर्ष-छह महीनों के लिए सूतक का पालन किया जाता था। इस तरह की सूतक प्रथाएँ समाज व्यवहार में अत्यंत कष्टप्रद होंगी, यह स्पष्ट रूप में कहकर कई स्मृतियों में राजा, मंत्री, सैनिक, शिल्पी आदि जनों को 'सद्यः शौचाः प्रकीर्तिताः' समझकर समाज के कामकाज ठप न हों, इसलिए अपवाद रूप समझा जाता, दीर्घकालीन सूतक पालन बंद किया गया। इसी विचारधारा को भविष्य में भी अपनाकर छूतछात की अन्य प्रथाओं का त्याग करना चाहिए जिससे मृतकों के शोकविह्वल परिवार का स्वास्थ्य खराब न हो। उनके कोमल मन को दिलासा मिले, इसी तरह की शुश्रूषा संबंधियों द्वारा होनी चाहिए। वैद्यकीय दृष्टि से आवश्यक सफाई, जंतुघ्न निरोगीकरण आदि उपायों से गृहस्थी तथा मनुष्य की शुद्धि की जाए। वह प्रश्न डॉक्टरों, वैद्यों का है न कि ब्राह्मणों, भिक्षुकों का। मृतक व्यक्ति की साधार कुलवृत्तांत की कथा करें। उसका गुणगान करें, उसके नाम से यथाशक्ति कुछ रकम किसी समाज हितकारी संस्था को अथवा किसी सुयोग्य, सत्पात्र विद्वान् को अथवा छात्र को दान करें। सामाजिक प्रदर्शनार्थ सूतक के निदर्शक स्वरूप कोई कष्ट विरहित बाह्य चिह्न का कुटुंबीय सदस्य एवं दुःखित जन दस दिन तक प्रयोग करें। सौ बात की एक बात यह कि किसी सार्वजनिक व्यक्ति के निधन पर आज हम सार्वजनिक सूतक का जिस तरह केवल दुःख प्रदर्शक, स्मृतिमूलक तथा कृतज्ञताव्यंजक, इस तरह जनिक उद्देश्य तथा

पद्धति से ही पालन करते हैं, उसी तरह पारिवारिक सूतकों का भी पालन करें।''

विष्णुपंत जी बोले, ''अजी, परंतु इस तत्त्वज्ञान का पालन अब हमारे परिवार के लिए कैसे किया जाए? हमने तो अब छूतछात की मूर्खता को त्याग दिया। परंतु हमारी धर्मपत्नी ज्वर में इसी तरह तड़पती रहेंगी, प्राण त्याग भी करेंगी पंरतु सूतक प्रथा का त्याग कभी नहीं करेंगी। इस सूतक का कष्ट घर की औरतों को ही अधिक भुगतना पड़ता है। परंतु वे ही हैं जो उसके पालन में रत्ती भर अंतर नहीं पड़ने देंगी।''

डॉ. पुरंदरे ने सहमति जताई, ''हाँ, सो तो है। उन रूढ़ियों का, जिनमें नारी का शोषण होता है, भंग करने में नारी ही पच्चर मारती है। प्राय: महिलाओं की यही धारणा होती है कि सुधारकों के प्रति नाक-भौं सिकोड़ने के लिए ही ईश्वर ने उन्हें नक्कू बनाया है। खैर! आज ये दो दवाइयाँ अपनी पत्नी तथा कन्या को दीजिए, कल मैं स्वयं आकर उन्हें देखता हूँ।''

दूसरे दिन डॉ. पुरंदरे ने विष्णुपंत के घर जाकर देखा तो अनु चाची का ज्वर चरम सीमा तक पहुँच चुका था। उनकी छाती में भयंकर पीड़ा थी। नलिका (स्टेथेस्कोप) लगाकर उनका परीक्षण करने डॉक्टर जा रहे थे, लेकिन अनु चाची ने उन्हें छूने की अनुमति नहीं दी। चटाई, कंबल के छोर सिकोड़कर 'कूर्मोङ्गानीव सर्वश:' इस तरह अपने आपको पूरी तरह समेटकर वह दुराग्रही नारी अड़कर बैठ गई। डॉक्टर ने कहा, ''सुनिए, छूतछात होगी तो मुझे ही न? आपको तो नहीं।'' इसपर अनु चाची ने तपाक से कहा, ''इसीलिए तो मैं छूने नहीं दूँगी, क्योंकि आप स्नान नहीं करेंगे और पूरे गाँव में छूआछूत की अशुचिता फैलाएँगे।''

भिकी भी ज्वर से आँवे की तरह धधक रही थी। विष्णुपंत ने सोचा, कब दसवाँ दिन आएगा। उसके पश्चात् ही अनु चाची का इलाज करना संभव होगा। अनु चाची सूखकर काँटा हो गई थीं। उनसे उठा भी नहीं जाता था। परंतु जैसे-तैसे उठकर सारे आन्हिक निपटतीं। अंत में चक्कर आ गया और रात में बाई चढ़ गई। परंतु तड़के ही आखिर दसवें दिन का उदय हो गया। उस दिन उस दुरवस्था में भी अनु चाची भोर होते ही उठ गईं, अपना बिछौना बगल में दबाया और इस विचार से कि दिन निकलने पर उन्हें कोई भी ठंडे पानी से नहाने नहीं देगा, सब अशुचिता फैलाएँगे, वह तड़के ही गाँव की नदी की ओर निकल गईं।

वहाँ से उन्हें कंधे पर उठाकर घर लाया गया। डॉक्टर ने दवा-दारू का बहुत प्रयास किया। परंतु वायु प्रकोप, बाई का झटका नीचे उतर नहीं रहा था। किसीको भी देखतीं कि अनु चाची बेकाबू होकर चीखने लगतीं, ''चलो, दूर हटो, दूर हटो। मुझे छुओगे। सूतक···''

…और पहले सूतक के बारहवें दिन अनु चाची के प्राण-पखेरू उड़ गए और विष्णुपंत के सामने दूसरा वास्तविक सूतक आ गया। दुःख एवं दुर्दशा की असली सूतकी छाया उनके घर पर फैली हुई थी। परंतु उन्हें और उनके दोनों बच्चों को डॉ. पुरंदरे अपने घर ले आए थे और पहले ही दिन से किसी छूतछात की अशुचिता की दुत्कार, तिरस्कार न करते हुए अपने परिवार में समान भावना से उन्हें सांत्वना दी, उन्हें सँभाला, इसलिए तो निबाह हो गया।

□

व्रतानुष्ठान

हम हिंदुओं में ही नहीं अपितु मुसलामान, बुद्ध, ईसाई आदि सभी पोथीनिष्ठ—'किताबी' समाज में, जो अंधविश्वास के चंगुल में फँस गया है, व्रतवैकल्प विधियों का ढकोसला इतना बढ़ गया है कि उस प्रत्येक समाज में विज्ञान-प्रसार की गति अवरुद्ध होती है। ज्ञान का विकास रुक जाता है। पंगु बुद्धि पंगु ही रहती है। यूरोपीय राष्ट्र इस अंधविश्वास से बहुतांश में मुक्त हो गए हैं और विज्ञाननिष्ठ बन चुके हैं। इस लेख में विशेषत: हम हिंदुओं के लिए यह चर्चा करेंगे कि इस तरह के विज्ञाननिष्ठ प्रगति के व्रत कौन से हैं, और अज्ञाननिष्ठ कौन से हैं।

व्रतविधि का उद्देश्य धार्मिक दृष्टि से भी दो प्रकार का होता है। एक भगवान् की आराधना और दूसरा इच्छितफल की प्राप्ति। यह इच्छितफल की प्राप्ति व्यक्तिगत और सांघिक, इस तरह उभयविध होती है।

इन दो उद्देश्यों में से भगवान् की आराधना यद्यपि उनके अनेक प्रतीकों—अश्वत्थ, गोमाता, श्रीगौरी, गणपति, तुलसी, महसोबा, बहिरोबा आदि—नाना रूपों की होने पर भी चूँकि ईश्वर एक ही है, अत: 'आकाशात् पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम्। सर्व देवनमस्कार: केशवं प्रतिगच्छति॥' इस शास्त्रोक्त न्याय से भगवान् को ही प्राप्त होती है, अत: वही संतुष्ट होकर क्रमश: प्रत्येक इच्छितफल उन व्रतानुष्ठान के परिणामस्वरूप हमें देता है। ऊपरी तौर पर ये व्रतानुष्ठान नाना देवताओं के लिए करने पर भी तत्त्वत: एक ही भगवान् के संतोषार्थ किए जाते हैं। सर्व यज्ञों-तपों का भोक्ता तथा सर्व इच्छित फलों का दाता वह प्रत्येक प्रतीक नहीं; जिसके ये प्रतीक हैं, वह भगवान् ही है—यह तत्त्व श्रीभगवद्गीता सदृश तत्त्वज्ञानमय महान् ग्रंथ से लेकर व्रतखंड सदृश आचार ग्रंथ तक सर्वमान्य है। व्रतानुष्ठान की यह आस्तिक दृष्टि से भी सर्वमान्य स्वरूप उपपत्ति जैसी थी, स्वरूप में स्वीकृत होने पर भी जो व्रत उस नारायण को संतुष्ट करे, वह श्रुतिस्मृति पुराणोक्त श्रद्धा को भी, जो पारमार्थिक दृष्टि को विश्वसनीय मानती है, अपनी-अपनी इष्ट फल प्राप्ति कराने में

समर्थ है—इस तरह की निष्ठा रखने में कोई आपत्ति नहीं है।

नारायण का वास्तविक प्रतीक है नर

नारायण को नर द्वारा की गई सेवा से अधिक संतोषप्रद साधन अन्य कौन से प्रतीक द्वारा की गई सेवा से हो सकता है? वटवृक्ष की पूजा करने से, गाय-बैल की पूजा करने से, साँप को दूध पिलाने से भगवान् प्रसन्न होते हैं तो अनाथ शिशु को सड़क पर फेंका हुआ देखकर उसे दूध पिलाने से भला भगवान् क्यों प्रसन्न नहीं होंगे? जो दुःखी है, पीड़ित है उसे अपनाना, साधु-संतों का यह मनुष्य सेवा का परोपकारी व्रत क्या भगवान् को प्रसन्नता नहीं देगा? तृषार्त को जल, आतप-ताप से झुलसे हुए को छाया, अज्ञानी को ज्ञानदान, आसन्न मृतक को प्राणदान जैसे पुण्यकर्म करने का व्रत भी क्या व्रत नहीं होता? श्रुतिस्मृति पुराणोक्त धार्मिक दृष्टि से भी मनुष्य सेवा का ही ऐसा महाव्रत जो भगवान् को संतुष्ट नहीं करता हो तो प्याऊ खोलना, मार्गों पर वृक्षारोपण, कथा-कीर्तन करना, आचारों की गणना पुण्यप्रद कैसे समझा जाए? परंतु हिंदू, मुसलमान, ईसाई, यहूदी, पारसी आदि सभी धर्मों में इन कर्मों को पुण्यकृत्य ही समझा जाता है। वृक्ष, पशु, पाषाण, मृत्तिका इन सभी में ईश्वर है, ये सारे उसके प्रतीक हो सकते हैं। तब उस मानव को उस भगवान् का सर्वोच्च प्रतीक नहीं मानना चाहिए जो उस ईश्वर की जड़ सृष्टि का ही नहीं, अपितु जिसे शास्त्र की चेतना शक्ति का भी परम व्यक्त अंश मानते हैं? शास्त्रानुसार नारायण के परम व्यक्त प्रतीक नर द्वारा की गई सेवा अन्य किसी भी प्रतीक द्वारा की गई सेवा से अधिक नारायण को संतोषप्रद होनी चाहिए। पोथी में कहा हुआ वचन कि उन अन्य प्रतीकों की सेवा से जो-जो ऐहिक इच्छितफल प्राप्त होता है अथवा पारलौकिक पुण्य मिलता है, यह सत्य हो तो यह भी सत्य होना चाहिए कि मनुष्य की सेवा एवं परोपकार द्वारा प्राप्त वह प्रत्येक ऐहिक अथवा पारलौकिक फल अन्य किसी भी व्रत से अधिक निश्चित रूप में व्रतधारी को मिलना चाहिए। अर्थात् व्रतानुष्ठान के जो आत्मशुद्धि, इच्छितफल प्राप्ति तथा पारलौकिक पुण्यादि हेतु हैं, वे सब मनुष्य सेवा द्वारा, परोपकारयुक्त व्रत द्वारा प्राप्त होते हैं। इसलिए व्रत का चयन करते समय हम ऐसे ही व्रत चुनें, जिनके कारण मनुष्य जाति का कुछ-न-कुछ प्रत्यक्ष हित साध्य हो। हमारे समाज अथवा राष्ट्र की कुछ-न-कुछ इसी देह में तथा इसी दृष्टि के सामने फलदायी उपयुक्त सेवा हो सके और मनुष्य के अज्ञान एवं अंधश्रद्धा को प्रोत्साहित न करते हुए उसका ज्ञान तथा सुखवर्धन हो, तो इसी व्रतविधि द्वारा भगवान् को प्रसन्न करने का पारलौकिक पुण्य संपादन करते हुए, राष्ट्र और मानवता का हित साध्य करने का ऐहिक फल भी हम यहीं

पर प्राप्त कर सकते हैं।

व्रत द्वारा ईश्वर प्रसन्न होता है, परलोक स्थित भले-बुरे फल यहीं के ऐहिक भले-बुरे कृत्यों द्वारा प्राप्त हो सकते हैं। मनुष्य जिसे भला-बुरा समझता है, ईश्वर भी उसे ही भला-बुरा मानता है। जिनकी इस तरह की भावना होती है, उन्हें व्रतानुष्ठान का चयन करते समय उपयुक्त कसौटी का उपयोग हो, वह सम्मत प्रतीत हो, इसी दृष्टि से ऊपर युक्तिक्रम किया है जो उसका समर्थन करे। क्योंकि जिनकी निष्ठा दैव, परलोक, नीति-अनीति विषयक मूलतः धार्मिक स्वरूप की नहीं है, जिनका यह ठोस सिद्धांत है कि सृष्टि नियमों के अबाधित कार्य-कारण भाव को ईश्वर की काल्पनिक प्रसन्नता एवं कोप से परिवर्तित कर लेने की आशा भोले-भाले मनुष्य का सुख-स्वप्न है और उस दृष्टि से हो रहे व्रतानुष्ठान मूलतः मिथ्या हैं, उनका इस विषय तक संबंध ही नहीं पहुँचता। वे व्रतानुष्ठान से परे पहुँचे हुए हैं। उन्हें व्रतों का चयन करने का विवेक बताना मूलतः ही असंबद्ध होगा।

अतः एक ओर नितांत पोथीनिष्ठ अंधश्रद्ध वर्ग को छोड़कर तथा दूसरी ओर नितांत विज्ञाननिष्ठ प्रत्यक्षवादी वर्ग को छोड़कर जो मध्यम वर्ग शेष रहता है, और जो विपुल संख्या में है, उसे ही संबोधित करके ऊपर यह विवेचन किया है कि व्रतों का चयन कैसे और क्यों किया जाए? यह बहुसंख्यक वर्ग धर्मपरायण है, परंतु अंधश्रद्ध नहीं। विज्ञाननिष्ठ न होने पर भी बुद्धिवाद से संपूर्ण वंचित नहीं। व्रतानुष्ठान की ओर उसकी प्रवृत्ति होने पर भी, ये व्रत मूर्खतापूर्ण अज्ञान पर आधारित न हों और यथासंभव समाज को प्रत्यक्ष रूप में ऐहिक दृष्टि से भी उपयुक्त हो, इस तत्त्व को सहसा नकारा नहीं जा सकता। वह बहुसंख्यक वर्ग इसलिए व्रतों का चयन करते समय निम्नांकित सूत्रों पर गौर करते हुए उन्हीं व्रतों का आचरण करने के लिए तैयार होगा जो इन कसौटी पर खरे उतरेंगे! इस लेख में उपयुक्त तर्कानुसार निश्चित की हुई व्रतों की कसौटी का समारोपण जिन सूत्रों में संक्षेप में करना संभव है, वे इस तरह हैं—

१. जिन व्रतांतर्गत देवता तथा उनके वर्णन वर्तमान प्रयोगक्षम विज्ञान से पूर्णतया मिथ्या सिद्ध हो चुके हैं; सृष्टिविज्ञान के प्राचीन अज्ञानवश ही जिन घटनाओं को अथवा निर्जीव वस्तुओं को सजीव देवता समझा गया, उन्हें प्रसन्न करने के लिए जिन व्रतों का प्रचार किया गया, उन सारे व्रतों को आज त्याज्य समझा जाए। मनुष्य के वर्तमान वैज्ञानिक सिद्धांतों के प्रसार से जनता को अधिक सजग करने की बजाय ये व्रत उसे नेत्रहीन ही रखना चाहते हैं। जो बुद्धि विकास में बाधा पहुँचाते हैं, इस तरह के व्रत असत्य की पूजा करते हैं। वे पूर्णतया मिथ्याचारी होते

हैं। इस वर्ग के उदाहरणस्वरूप आकाश ज्योतिर्गोल विषयक ग्रहण सक्रांत सूर्यचंद्र पूजा प्रभृति प्रीत्यर्थ की जानेवाली हमारी धर्मविधि देखिए।

२. भगवान् को प्रसन्न करने के लिए, आत्मशुद्धि के लिए भूतदयाप्रीत्यर्थ अथवा कुछ काम्य हेतुओं की सिद्धि के लिए जो-जो व्रत हों, उनका आचरण करते समय उनके पुराने रूप आज निरर्थक, अंधविश्वासी एवं चालाकी से भरे दिखाई देंगे, उनका त्याग करते हुए उसी उद्देश्य से, उसी काम्यफलार्थ, उन्हीं व्रतों का आचरण ऐसे रूप में किया जाए जिससे उन कर्म एवं दान से वर्तमान परिस्थितियों में हमारे हिंदू राष्ट्र के लिए आवश्यक कुछ हितकारी, कल्याणमय सेवा होगी। इस दान से अथवा कर्म से मेरे राष्ट्र की कुछ प्रत्यक्ष सेवा हो रही है न? बस यही निकष। प्रत्येक व्रतविधि इस निकष पर खरी नहीं उतरी तो उसका पूर्णतया त्याग करें और उसी काम्य अथवा निष्काम उद्देश्य से हिंदू राष्ट्र की प्रत्यक्ष सेवा जिससे होगी, उस विधि से वह व्रत पूर्ण करें। नर की प्रत्यक्ष सेवा से अर्थात् राष्ट्र की प्रत्यक्ष सेवा से नारायण की सेवा का योग्यतर अन्य साधन मनुष्य के हाथ में नहीं होने से, शास्त्र भी नर को ही नारायण की पूजनीय अवतार विभूति मानने के कारण उस राष्ट्र सेवा से भगवान् किसी भी अन्य पूजा से अधिक संतुष्ट होना ही चाहिए और प्रत्येक काम्यफल उस प्रत्येक अधिकारी तक वह अवश्य पहुँचाता होगा। हाँ, यदि उन व्रतों की पारलौकिक अथवा काम्य फलश्रुति सत्य हो तो! परंतु यद्यपि क्वचित् वह पारलौकिक फल कल्पित सिद्ध हुआ अथवा निष्फल हुआ, तभी उस व्रतार्थ किए हुए राष्ट्रसेवा से अकारथ नहीं होंगे। क्योंकि उनके कारण कम-से-कम वह ऐहिक फल झोली में अवश्य पड़ेगा, जो प्रत्यक्ष रूप में हमारे हिंदू राष्ट्र के अर्थात् हिंदूधर्म कल्याणार्थ सहयोग देगा।

३. ज्योतिर्गोल विषयक सारी पूजा-अर्चा तथा व्रतानुष्ठान सोलह आने मिथ्या होने के कारण आज उनका त्याग करें।

ग्रहण

इस तरह की त्याज्य धर्मविधि का उत्तम उदाहरण है। प्राचीन काल में बर्बर अवस्था में मनुष्य को ग्रहणों के नियम ज्ञात नहीं थे। अतः आकाश में सूर्य अथवा चंद्र को देखते-देखते ही लुप्त होता हुआ देखकर वह कितने आश्चर्य एवं भय का

अनुभव करता होगा, इसकी कल्पना आज भी सहजतापूर्वक की जा सकती है। आकाश में एक साथ जब दो-दो सूरज दिखाई देने लगें तो आज हमें भी उसी तरह भयविह्वल अधीरता प्रतीत होगी। ऐतिहासिक काल में भी जंगली अवस्था के मानव की इस भयविह्वलता के अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं। उदाहरण के लिए, कोलंबस विषयक आख्यायिका देखिए। अमेरिका के मूल वासी जंगली लोग बता नहीं सकते थे कि ग्रहण कब होता है, अत: ग्रहण को वे ईश्वरीय प्रकोप का ही अनियमित तथा भयप्रद चिह्न समझते थे। कोलंबस के लोग ग्रहण को पहले बता सकते थे, अत: उन्होंने अमेरिकियों को डराया कि यदि तुम लोग हमारी शरण में नहीं आओगे, हमारा लोहा नहीं मानोगे तो हमारा भगवान् आनेवाले अमुक दिन, अमुक समय आकाश से सूरज को ही गायब कर देगा। उसकी धमकी के अनुसार उस निश्चित समय सूरज गायब रहने लगा, क्योंकि वह ग्रहण का दिन था। घबराए हुए मूल निवासी कोलंबस की शरण में जाकर 'ईश्वरीय प्रकोप को शांत करो' इस प्रकार प्रार्थना करने लगे। तब कोलंबस के लोगों ने आशीर्वाद दिया कि 'अमुक समय पर सूरज को वापस लौटाएँगे' और ठीक उसी समय सूरज आकाश में पुन: पूर्णरूपेण प्रकाशमान हो गया। इस सरल भविष्यवाणी से उन मूलवासियों पर कोलंबस की सेना की अद्‌भुत शक्ति का कितना गहरा असर हुआ होगा कि वे अमेरिकी उन नवागतों को अजेय 'राक्षसदूत' अथवा 'देवदूत' समझने लगे। इस प्रकार के बर्बर अज्ञानकाल में ग्रहण लगते ही भयभीत होकर उस ईश्वरीय प्रकोप को पुण्यकृत्यों से शांत करने के लिए 'दो दान, छूटे गिंहाण' इसी तरह चिल्लाते और दान देते, स्नान करते, सूर्य का सूतक छूटते ही कपड़े धोकर, झाड़ू-बुहार, लीपा-पोती करके वे संकट की छूआछात से मुक्त होते, यह स्वाभाविक ही था। ऐसा प्रतीत होता है कि कई जातियाँ प्राय: टोने-टोटके से ग्रहण लगवाने का आभास निर्माण करती हैं और उसे सत्य समझकर अन्य लोगों को उन्हें दान से संतुष्ट करने के लिए बाध्य करती होंगी। राहु-केतु—ये दैत्य, राक्षस, उनके वंशज तथा आप्त हैं वह उग्र माँग (अछूत जाति), सपेरे, ओझा, महार आदि चांडाल वर्ग जो गाँव से बाहर रहता है। अत: प्राय: यही चिल्लाकर घूमने का रिवाज हुआ होगा—'दे दान छूटे ग्रहण! दान दोगे तो टोना-टोटका पीछे हटवाकर इस ग्रहण से हम मुक्ति दिलवाएँगे।'

कुछ भी हो, परंतु आज विज्ञान ने ग्रहणों के नियम तथा कारण इतने सुनिश्चित कर दिए हैं, जैसे दो दूनी चार। आप चाहे कितना भी दान करें, ग्रहण एक पल के भी पहले नहीं छूटता और दान न करो तो भी एक पल अधिक के लिए नहीं टिकता। उधर देवता, दानवों के बीच कोई भी युद्ध नहीं होता। वह संपूर्ण कथा एक सुंदर रूपक है। जैसे हितोपदेशांतर्गत कुत्ता-बिल्ली की कल्पित कहानियाँ होती हैं, वैसी

ही सर्वांशी कल्पित। उससे भगवान् के क्रोध-कृपा का रत्ती भर भी संबंध नहीं है।

आज त्याज्य समझी गई रूढ़ियाँ प्राचीन अज्ञान एवं भिन्न परिस्थितियों के समय वास्तविक एवं हितकारी प्रतीत होना स्वाभाविक ही है। एक वर्ग ऐसा है, जो यह समर्थन पर्याप्त न समझकर उसका समर्थन वर्तमान वैज्ञानिक दृष्टि से करना चाहता है। उस वर्ग का तर्क तो इस रूढ़ि को और भी अधिक हास्यास्पद बनाता है। इस ग्रहण के संबंध में ही देखिए—वे कहेंगे, 'अजी, ग्रहणकाल में संपूर्ण वायुमंडल में कुछ अस्थिरता सी छा जाती है।' 'अच्छा, छा जाती है। फिर?' 'उसका मानव शरीर पर तथा पृथ्वीतलीय वस्तुओं पर परिणाम होता है।' 'अच्छा, होता है। स्वास्थ्य अबाधित रखने के लिए ही त्रिकालादर्शी महर्षियों ने ये रूढ़ियाँ कीं कि ग्रहणकाल में कुछ भी न खाएँ; अचार का मर्तबान, पापड़ के कनस्तर, आँवले-मुरब्बे की शीशी सभी पर तुलसी पत्र रखें; चांडाल, माँग, हरिजनों को फटे-पुराने वस्त्र दें; ब्राह्मण को दान करें; ग्रहण लगते और छूटते समय स्नान करें; गायत्री जप-जाप्य की धूम मचाएँ।'

ग्रहण के कारण वातावरण में चाहे जो परिवर्तन होते हैं तथापि कनस्तर, बोतलें, मर्तबानों पर तुलसी के पत्ते रखने से भीतर के अचार, पापड़, मुरब्बे आदि खाद्य वस्तुओं पर अनिष्ट परिणाम नहीं होते, अत: सृष्टि विज्ञान का नियम बड़ा ही अजीब है। और यदि कनस्तरों, मर्तबानों, वस्त्रों आदि पर तुलसी पत्र रखने से ग्रहण का संकट टल जाता है, तो फिर पूरे घर पर ही तुलसी के पत्तों को डालकर छुट्टी क्यों न करें? फिर घर के कपड़े आदि सब वस्तुओं पर तुलसी पत्र डालने की आवश्यकता ही नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि ग्रहण के समय भोजन करने से केवल हिंदू लोगों का ही स्वास्थ्य खराब होता है। क्योंकि यूरोप, अमेरिका, चीन, जापान सारा विश्व ग्रहण के समय भोजन करता है, जीता है। भीषण संक्रामक रोग, ग्रहण में पानी पीने से, कपड़े धोने से, अछूत अथवा ब्राह्मणों को दान न देने से, जप-जाप्य न करने से उधर किसी भी तरह का संक्रामक रोग फैलने का समाचार सुनाई नहीं देता। वहाँ का वायुमान अलग, हिंदुस्थान का अलग, इसलिए पुन: एक मौलिक विज्ञान के नाम पर मारने की आपके लिए कोई गुंजाइश नहीं। क्योंकि पहले एक ही गाँव में सटे हुए घरों में तथा कस्बे में हिंदू, मुसलमान, ज्यू, ईसाई, पारसी रहते थे। उनमें से तुलसी पत्र के नीचे रखा हुआ अचार खाने से वह जीवित रहा और तुलसी पत्र के बिना रखे हुए मर्तबान का अचार और ताजा गरमागरम चावल ग्रहणकाल में खाकर उठते ही उसका पेट फूलने से वह मर गया, इस तरह कभी नहीं होता।

मनुस्मृति में निषेध है कि 'नेक्षीतोद्मन्तमादित्यं स्नातं ग्रस्तं कदाचन। नोपस्पष्टं न वारिस्थं न मध्यनभसी गतम्॥' (अ.४, ३७) सूर्योदय के समय, ग्रहण लगते

समय, खग्रास ग्रहण में, आकाश में अथवा पानी में सूरज को देखना है तो हम उसे कहाँ देखें ? चित्रों में ? सूर्य से संबंधित वैज्ञानिक जानकारी का अच्छा निरीक्षण ग्रहण के समय ही संभव होता है, इसलिए यूरोपीय ज्योतिर्विद महत्प्रयास से सहस्रों मीलों की यात्रा करके वहाँ जाते हैं, जहाँ खग्रास सूर्यग्रहण होता है। वे उधर अनिमेष निरीक्षण करते हैं। परंतु हमारी मनुस्मृति कहती है, खग्रास सूर्यग्रहण कभी न देखें।

सूर्य-चंद्र ग्रहण से संबंधित प्राचीन काल अज्ञानयुग की इस प्रकार की अनेक विक्षिप्त धारणाएँ, जो आज बिलकुल गलत सिद्ध हो चुकी हैं, विश्व के पूरे मानव समाज में प्रचलित थीं, केवल हम हिंदुओं में ही नहीं। परंतु वर्तमान यूरोपियन समाज जैसे विज्ञाननिष्ठ प्रगत लोगों ने यह देखते ही कि वे प्रत्यक्षसिद्ध ज्ञान के विपरीत हैं, उनका जिस तरह त्याग किया, उसी तरह हमें भी करना चाहिए और ग्रहण विषयक उपर्युक्त वर्णित सभी अंधविश्वास, अज्ञानजन्य विधि-विधानों का पूर्णतया त्याग करना चाहिए।

संक्रांति

जो बात ग्रहण की है, वही उन धर्म-विधियों की है जिन्हें हम संक्रांति के उपलक्ष्य में करते हैं। सूर्य और चंद्रमा ये वास्तविक सजीव, दु:ख-सुख का पूर्ण ज्ञान रखनेवाले प्राणी नहीं, राहु-केतु कोई भयानक, कराल दैत्य हैं—जिस प्रकार जनता की निरर्थक धारणाएँ बनाने में ग्रहण के कल्पित रूपक एवं कथाएँ कारण बनीं, उसी तरह संक्रांति के उपलक्ष्य में प्रतिवर्ष पंचांग में प्रसिद्ध हो रहे निरर्थक रूपक लाखों साधारण लोगों का मकर संक्रमण की साधारण घटना विषयक अज्ञान धर्म के नाम पर वृद्धिगत करने एवं बनाए रखने की धोखाधड़ी कर रहे हैं। यह वैज्ञानिक सत्य है कि प्रत्येक ज्योतिर्गोल की गतिस्थिति का पृथ्वी तथा मनुष्य पर प्रभाव होता है जैसे वर्षा, धूप, प्लेग का होता है, ठीक उसी तरह। परंतु उस संक्रांत प्रभृति ज्योतिर्गोलों की नियमबद्ध गतिस्थिति को देवता समझकर उनपर गंध, फूल चढ़ाकर अथवा उसके उपलक्ष्य में मटकों, ठिलियों का दान करके इन व्रताचरणों से उस परिणाम को टाला जा सकता है, यह शिक्षा देकर घर-घर घूमना मात्र ठग-विद्या करना है। ज्योतिर्गोलों की गतिस्थिति का प्रभाव गणित के उत्तरों समान सुनिश्चित सृष्टिक्रम के फलित हैं। मैंने अपने गाँव के किसी शामभट को भोजन पर आंमत्रित किया अथवा न भी किया, इससे भला वे घटेंगे-बढ़ेंगे कैसे ? चार पंजे बीस—जिस तरह गंध, तिल चढ़ाने, मटकों का दान करने से बीस का दस कभी नहीं होगा, तीस भी नहीं, वह बीस ही रहेगा, उसी तरह मकर संक्रमण ग्रहण आदि ज्योतिर्गोलों की गतिस्थिति के फलित हैं।

इस पंचांग पर छपा हुआ संक्रांति का विचित्र स्वाँग और उसका मूर्खतापूर्ण आडंबर देखिए। 'वह पक्षी जाति का है' और फिर भी उस पक्षी के मनुष्य समान ललाट पर चंदन का तिलक लगाकर हाथ में केवड़े की पंखुड़ियाँ दे दी हैं। वह पश्चिम से आती है, पूर्व की ओर जाती है और देखती है आग्नेय दिशा की ओर। एक दिशा से जाते और कहीं और देखते हुए ठोकरें खा रही वर्तमान हिंदू मनोवृत्ति का वह एक सुयोग्य ध्येय है और क्या! सौभाग्य से उसका एक ही मुख है, पर हाथ आठ हैं और उसके होंठ और नाक लंबी है, मकर संक्रमण इस घटना की नाक है! कल यह कहकर कि गुरुत्वाकर्षण के लंबे बाल हैं, उन्हें कमिनिया तेल लगाया है। किसी आधुनिक देवता की यदि कोई पूजा करने लगे तो उसे हँसना नहीं चाहिए। उस अर्थ वाले एक संस्कृत अनुष्टुप की रचना करके भविष्यपुराण के सतत बढ़ते अध्याय में उसे घुसेड़ दिया कि हो गया काम! परंतु इस वर्ष की संक्रांति ने एक बहुत ही उचित कृत्य किया, वह यह कि उसका वाहन है गर्दभ! हो सकता है इस तरह की ऊटपटाँग धारणा को ढोने के लिए बैल भी अपनी बुद्धि को लांछन लगाना नहीं चाहता हो, इसलिए ही प्राय: हवाई जहाज के इस युग में भी गर्दभ वाहन ही उसे भाया होगा। भला ऐसे नेक काम में कार्यभार सँभालने की चतुराई गर्दभ महाशय के बिना अन्य किसमें पाई जा सकती है?

संक्रांति के इस पर्वकाल में गाय-भैंस को दूहना नहीं, घास काटना नहीं, दाँत माँजना नहीं! वैसे ही गंदे बासी मुँह से उस पर्व के स्तोत्र के तीव्र भपारे छोड़ते रहो। और सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि दान दिया जाए, ब्राह्मण को दान। ऊनी वस्त्र, घी, भूमि, गाय और सुवर्ण का दान! हमारे देहाती बालभट को एक बार घी, गाय, सोना दान किया कि तुरंत पृथ्वी और सूर्य की गतिस्थिति यथावत् होकर मकर संक्रमण की सुख प्राप्ति होगी। परंतु यदि उस समय यजमान ने दाँत माँजे अथवा बालभट को घी नहीं मिला तो···तो कैसा अनर्थ होगा! वह मकर संक्रमण खट से ठोकरें खाता रहेगा, सूर्य, पृथ्वी, ब्रह्मांड उसी स्थान पर थम जाएगा।

और 'इस संक्रांति की कृपा से पश्चिम दिशा के लोग सुखी होंगे और पूर्व दिशा पर उसके कोप से संकटों का पहाड़ टूट पड़ेगा, उन लोगों की दुर्दशा होगी!' ठीक ही है, क्योंकि पूर्व दिशा वासी बेचारे हिंदू कम-से-कम उसकी पूजा-अर्चा करते हैं, उसके स्तोत्र गाते हैं, उसके नाम से दान करते हैं। उसका सारा ठाट-बाट, टूम-टाम रखकर उसके सामने थर-थर काँपते रहते हैं, अत: यह स्वाभाविक ही है कि उनपर संक्रांत आ जाए। पश्चिम के लोग यद्यपि उसके सामने कौड़ी धूप भी नहीं जलाते, उसके व्रतों की खिल्ली उड़ाते हैं, उसके पर्वकाल में दूध पीते हैं, मांस भक्षण करते हैं, मदिरा सेवन करते हैं, दमड़ी का दान नहीं करते, दाँत माँजते हैं

तथापि कोई भी उनके दाँत खट्टे नहीं करता। संक्रांत दाँत खट्टे करती है 'पूर्व' के लोगों अर्थात् हिंदुओं के, क्योंकि पश्चिम की ओर वक्र दृष्टि से देखने का उसमें साहस नहीं। पश्चिम को छेड़ने से मशीनगन, तोपों, बमों का सामना करना होगा। अत: आज सदियों से संक्रांत उनका बाल भी बाँका नहीं कर सकी पर सदियों से संक्रांत इस हिंदुस्थान की छाती पर मूँग दल रही है, उठने का नाम ही नहीं लेती। इससे भी क्या यही उजागर नहीं होता कि संक्रांति को प्रसन्न करने के लिए बताए गए वाहियात व्रत और धर्मविधि कितनी मूर्खतापूर्ण एवं मिथ्या है?

अत: इन धर्मांध कथाओं एवं व्रतों को, जो प्राचीन युग में जितने क्षम्य थे, उतने ही इस विज्ञान युग में अक्षम्य सिद्ध हो चुके हैं, अब पंचांग में छापकर अज्ञ जनता की आँखों में कोई धूल न झोंके, यही उचित धर्म है। गधे पर आरूढ़ संक्रांति के उस विक्षिप्त चित्र का त्याग करके कम-से-कम आगे ज्योतिषशास्त्रांतर्गत संक्रमण की आधुनिक एवं सत्य जानकारी ही जंत्री में छापें। मकर संक्रमण का वह वास्तविक भौतिक अर्थ शिष्ट जन घर-घर जाकर पढ़ें और अज्ञजनों को विज्ञ करने का पुण्य काम करें। संक्रांति को प्रसन्न करने के लिए वह अंधविश्वासी व्रत एवं विधि त्यागकर इस त्योहार पर इष्ट मित्रों से 'तिल-गुड़ लो, मधुर वाणी बोलो' इस तरह स्नेहपूर्ण विनती करते हुए तिलवा[१] देने का और उसी तरह स्निग्ध मधुर मिलन जारी रखें। इस त्योहार को 'सार्वजनिक तिल-गुड़' समारोह का जो स्वरूप मिल रहा है, वह स्वागत योग्य है, यह रूढ़ि समाज संगठन की दृष्टि से उत्तम है।

शनि प्रभृति ग्रहोपग्रह

इनका कराया गया बोलबाला भी आज ऐसे ही निरर्थक सिद्ध हो चुका है। यह मात्र अंधविश्वास है कि ये देवता हैं। परंतु इससे अधिक हास्यास्पद अंधविश्वास यह है कि पृथ्वी पर पड़े हुए किसी भी पत्थर पर सिंदूर और तेल डालकर शनिमाहात्म्य की पोथी पढ़ी या किसी ऐरे-गैरे पंचकल्याणी को दो मुट्ठी चावल देने से यह शनि और मंगल प्रसन्न होते हैं, और नहीं देने से क्रुद्ध होते हैं, इस तरह उपदेश देना। भई कैसा शनि और कैसा शनिमाहात्म्य। अजी, इस ब्रह्मांड की विशाल म्युनिसिपलटी द्वारा आकाश प्रांगण में सृष्टि नियमानुसार जलाई गई ये सारी लालटेनें हैं। हर लालटेन में विशिष्ट तेज का केरोसिन डाला है। आप चाहें लाख गालियाँ दें फिर भी जले बिना नहीं रहेंगी। यह तेजोमय घासलेट (माटी का तेल) जलते समय अधिक

---

१. तिल और गुड़ या चीनी के मेल से बननेवाली एक मिठाई जो स्निग्धता एवं माधुर्य के प्रतीक स्वरूप संक्रांति में बाँटी जाती है।

प्रसन्न होकर विशेष आँच देना नहीं छोड़ सकता, चाहे आप इस पत्थर को तेल तथा सिंदूर के कितने ही लेप चढ़ाएँ, और केरोसिन खत्म होते ही, आप चाहे कितनी ही गिड़गिड़ाकर प्रार्थना करें, फिर भी वे बुझे बिना नहीं रहेंगे। यदि शनि, शनिमाहात्म्य की निरर्थक पोथी से प्रसन्न होता है तो लकड़ी के इस खंभे पर लगाई गई इस गाँव की सड़क पर जलती घासलेटी लालटेन भी किसी लालटेन माहात्म्य से प्रसन्न क्यों न हो जाए? क्यों न बिना घासलेट के जलती रहे? शनिमाहात्म्य की तरह लालटेन माहात्म्य की रचना करना कोई कठिन काम नहीं है। इसी तरह लालटेन माहात्म्य की रचना करके शनिचर का उपोषण करते हुए, आसन पर विराजमान होकर इस लालटेन की प्रसन्नता के लिए भक्ति भाव से यदि हम यह पोथी पढ़ने लगें—

ओम जय जयाजी लालटेना,
म्युनिसिपल यशोमंदिला,
तमसासुर की धुंधी को
उतारती हो तत्क्षण में॥ १॥
रॉकेल कनस्तर जिसका हो पिता,
दियासलाई धन्य हो माता,
हे लालटेन देवी समर्था,
दीपज्योतिर्नमोस्तुते॥ २॥
यह लालटेनवाला नौकर,
तेरे डिब्बे में है रॉकेल
डाले थोड़ा, चोरी करे ज्यादा
अँधेरे की रात्रि में,
इसी कारणवश मैं माँगूँ मिन्नत,
अस्ताचल जब जाए दिन
बुझाए न तू! पर आलोक
बिना घासलेट के॥ ३॥
ओम् जय जयाजी लालटेना
पूरी करे यदि मेरी मन्नत
ब्राह्मण खिलाऊँगा दस-बीस…
कहीं तुम्हारे ही खंभे की,
ठोकरें हमें खानी न पड़ें॥ ४॥

इस तरह के लालटेन माहात्म्य गाने से जैसे यह लालटेन बिना केरोसिन के

नहीं जलेगी, उसी तरह वह शनि पूरे आकाश भर भभकता हुआ आग का गोला!

उसी तरह यह सूर्य और चंद्र

यह दिन का सम्राट् और वह तारकाधीश रजनीकांत देखो। यह अन्न, यह जल, यह सुगंध, यह उष्णता और यह जीवन जिसके अस्तित्व से प्राणिमात्र को भूमंडल पर यह सब प्राप्त हो सकता है, उस सूर्य का कैसे वर्णन करें? उसका वह भव्य-दिव्य, हिरण्यमय, दपदप करता हुआ तेजोमंडल देखते ही मनुष्य की आँखें ही नहीं, बुद्धि भी चकाचौंध हो जाती है। इस महान् विभूति से आदर और उसके अत्यंत अनंत उपकारों की कृतज्ञता से भरकर वेदकालीन रसिक ऋषि-मुनि ही क्या, वर्तमान का कोई रूखा, नीरस नास्तिक भी उस भगवान् अंशुमाली का वंदन किए बिना नहीं रह सकता। उसी तरह जब 'ततः कुमुदनाथेन कामिनीगंडपांडुना! नेत्रांनदेन चन्द्रेण माहेन्द्री दिगलंकृता' होकर सोहने लगती है, तब उस पूर्ण चंद्रमा के दर्शन के साथ-साथ सागर का खारा पानी भी जहाँ उद्वेलित होता है, वहाँ हृदय के सारे रस उल्लसित होने लगते हैं, इसमें कैसा आश्चर्य? यह सोलह आने स्वाभाविक ही है कि प्रेमादर से भरा हुआ मन पल भर के लिए सजीव तथा निर्जीव सृष्टि का अलगाव भूलकर युग-युग से उन तेजोद्वय की पूजा करता आया है, उसे भजने की इच्छा करता है।

परंतु यह बात पूर्णतया अलग है कि छत्रपति शिवाजी महाराज का पुतला देखकर हम आदरपूर्वक नतमस्तक होकर उसे प्रणाम करते हैं, उसे पुष्पगुच्छ अर्पित करते हैं और उस पुतले को सजीव शिवाजी ही समझकर उसे प्रसन्न करने के लिए उपोषण करना, उसके पाँव दबाना, उसे असली घोड़ा समझकर उसे उसपर सवार होने का अनुरोध करना और इस तरह के व्रत से यह अपेक्षा मन में सँजोना कि यह पुतला अश्वारूढ़ होकर पुनः हिंदुस्थान स्वतंत्र करने के लिए निकलेगा, यह बात अलग है। उसी तरह सूर्य-चंद्र दर्शन से प्रेम और आदर उत्पन्न होना अलग और उन्हें सजीव देवता समझकर उनका स्तवन करने से, उन्हें अर्घ्य देने से अथवा बाहर सूर्य-नमस्कार करने से वे हमें इष्ट फल देते हैं और यदि ऐसा न करें तो क्रुद्ध होकर हमारी हानि करते हैं, इस तरह श्रद्धा रखना अलग। उसपर यह सोचिए कि—

यह सूर्य जिस तरह प्राणदायक है, उसी तरह प्राणहारक भी है

सर्दी से ठिठुरते हुए मनुष्य को सूर्य-किरणें प्राणदायी प्रतीत होती है, परंतु उन्हीं किरणों के ताप की अधिकता से मनुष्य की मृत्यु भी होती है; सूर्य-शनि को प्रसन्न करने का व्रत करें या न करें। उष्णता के निश्चित परिणाम मनुष्य के जीने-

मरने का कारण बन जाते हैं। व्रत, सूर्य के क्रोध या प्रसन्नता से उनमें रत्ती भर भी परिवर्तन नहीं हो सकता। यह सूर्य ही है जो मनुष्य जगत् के प्रभाव के लिए कारण बन गया है, उसके प्रलय का कारण भी होनेवाला है; नहीं हो चुका है। मनुष्य जाति की अज्ञानावस्था में यह धारणा होना स्वाभाविक था कि व्रतविधियों तथा प्रणामों से वे प्रसन्न होते हैं और इन विधियों का जो पालन नहीं करते, उनसे अधिक उन लोगों से ममता, प्रेम भरा व्यवहार करेंगे जो इनका पालन करते हैं। उस समय सूर्य-शनि की आंतरिक रचना एवं गुणों का मनुष्य को ज्ञान नहीं था, परंतु अब युगों से किए गए उलटे-सीधे अनुभवों से मनुष्य समझ चुका है कि ये ज्योतिर्गोल निर्जीव एवं निश्चित सृष्टि नियमों से बद्ध हैं। उन अनुभवों से देखिए ये व्रतविधान किस तरह मिथ्या सिद्ध होते हैं—

कोई ब्राह्मण अथवा सूर्यपूजक पारसी उष्ण कटिबंध (सर्दी-गरमी की कमी-बेशी के विचार से किए गए पृथ्वी के विषुवत रेखा के समानांतर पाँच विभागों में से एक) में ऐन मध्याह्न समय नंगे सिर-पैर से सूर्य को संतोष देनेवाले गायत्री मंत्र का सूखपूर्वक जाप करते हुए चले तो भी गरमी की आँच उसे किसी नास्तिक से रत्ती भर भी कम नहीं लगेगी। इसके विपरीत वह ब्राह्मण अथवा म्लेच्छ जिसने जीवन में कभी गायत्री के अक्षर का भी उच्चारण नहीं किया हो, सदैव सूर्यनारायण को गाली-गालौज करता हो, परंतु पाँव में एक हाथ का चमड़े का जोड़ा और सिर पर डेढ़ रुपल्ली का छाता लेकर चला हो तो उसे उस मध्याह्न के सूरज की आँच वैज्ञानिक अनुपात से कम ही लगेगी। अर्थात् सूर्य को प्रसन्न करने का धार्मिक साधन वह जप-जाप नहीं, अपितु वह वैज्ञानिक साधन जूते तथा छाता हैं। जप से अधिक उन जूतों से ही शनि-सूरज की पीड़ा बहुतांश में कम होती है।

अजी, इस भारतवर्ष में जिन हिंदुओं ने सायं-प्रातः-अपराह्न समय में सूर्य के लिए भक्तिभाव से अर्घ्य की सतत धारा युग-युग से बहती रखी है; जहाँ विश्वामित्र को सूर्यस्तवनात्मक गायत्री महामंत्र प्रथमतः प्रस्फुरित हो गया, उस प्राचीनतम क्षण से आज तक सतत अखंड उद्घोष जारी रखा है, उन्हींके हिंदू साम्राज्य पर से आज सदियों से सूरज ने मुँह फेर लिया है। हमारी आशाओं के साम्राज्य से कभी इसका अंत नहीं होता? जिन्होंने युग-युगों से एक बार भी उसे अर्घ्य नहीं दिया, जो गायत्री के घातक हैं, सूर्य-नमस्कार के बिना भी जिनकी स्नायु फौलादी होती हैं, वज्रमुष्टि कलाइयाँ होती हैं, जो ऐन सूर्यग्रहण में भोजन करते हैं, सूर्यवंश के उच्छेदक हैं, राहु-केतु के वेदबाह्य साथी हैं, उन्हींके साम्राज्य में आज कभी सूर्यास्त नहीं होता। प्राचीन सूर्योपासक बेबीलोन और मिस्र की बात छोड़िए, वे आज नामशेष हो गए हैं; परंतु आज जो दो राष्ट्र सूर्योपासक हैं वे हैं

फारस और भारत, उन्हीं राष्ट्रों पर आज एकछत्री राज है निराशा भरी काली अँधेरी रात्रि का। व्रतविधि से सूर्य प्रसन्न नहीं होता, न ही व्रतविधि त्याग से सूर्य क्रोधित होता है। इसका इससे अधिक सटीक प्रत्यक्ष प्रमाण और कौन सा हो सकता है भला? सूर्य सूर्य के नियमों से प्रवृत्त होता है और निवृत्त भी, न कि हमारे व्रतानुष्ठान से, न ही स्वेच्छया। वही बात शनि, संक्रांति, ग्रहणों की, मंगल की। उन सभी निरर्थक राम-कहानियों की। युगों से हमने रास्ते के प्रत्येक पत्थर को शनि समझकर सिंदूर पोतकर तेल भी मला! परंतु भारत उस शनि महाराज की साढ़ेसाती के चंगुल में नित्य ही फँसा रहेगा। संक्रांत हमेशा हमारे ही सिर पर सवार होगी। मंगल का अमंगल ही केवल हमारे लिए! जो इन सभी के लिए एक दमड़ी की भी धूप नहीं जलाते, उनकी पाँचों अँगुलियाँ घी में।

व्रत से नहीं, विज्ञान से

अत: व्रतों का चयन करते समय पहला विवेक यही करना है कि ज्योतिर्गोल निर्जीव वस्तु है। उन सूर्य, शनि, मंगल, ग्रहण, सक्रांति प्रभृति ज्योतिर्गोल विषयक वस्तुओं तथा घटनाओं को प्रसन्न करने के लिए किसी भी व्रतानुष्ठान का पालन अथवा धर्मविधि करना त्याज्य एवं अधर्म्य समझना चाहिए, क्योंकि वह असत्य की पूजा होगी। इससे सृष्ट पदार्थों के स्वरूप से संबंधित शक्ति के परिणाम संबंधी वास्तविक ज्ञान का प्रबोधन एवं प्रसार करने के हितकर कार्य में इस तरह की अंधश्रद्ध धारणाएँ रोड़े अटकाती हैं। उनकी गतिस्थिति के मनुष्य पर जो प्रतिकूल परिणाम होते हैं गुरुत्वाकर्षण, भूकंप प्रभृति घटनाओं तथा सृष्टि नियमों के प्रतिकूल परिणामों की तरह ही टालने के लिए विज्ञान के प्रत्यक्षनिष्ठ तथा प्रयोगसिद्ध उपायों से ही प्रयत्नरत होना चाहिए, न कि पोथीनिष्ठ तथा मिथ्या व्रतानुष्ठान विधियों से।

सारांश

१. धार्मिक श्रद्धा की दृष्टि से भी ईश्वर सत्य-स्वरूप है। सत्य का अर्थ है, जो जैसा है उसे वैसा ही स्वीकार करना। सृष्टि एवं सृष्टिकर्ता का ज्ञान और उपासना उस सत्य की ही उपासना होनी चाहिए। 'न हि सत्यात्परो धर्मः नानृतात्पातक परम्' यह लक्षण मात्र सत्य बोलने के एक व्यावहारिक आचार का ही नहीं, अपितु उपरि निर्देशित अत्यंत व्यापक तात्त्विक अर्थ में ही सभी शिष्ट धर्मों में शिष्टाचारसम्मत है। अत: जिन-जिन व्रतों में तथा जिस उपासना में सृष्टि के यथातथ्य स्वरूप की विकृति ज्ञात होती है, वे सारे व्रत असत्य की ही उपासना के कारण अधर्म्य सिद्ध होते हैं। मानव जाति में सत्य का प्रसार करने के धर्मकार्य में इस व्रत से बाधा पहुँचती है और

असत्य के प्रसारण का पाप मत्थे मढ़ा जाता है। सहस्रों वर्ष पहले अनेक वस्तुओं के सत्य-स्वरूप का ज्ञान सत्य प्रतीत होता था। उसकी उपासना के व्रत, कथा, आख्यानों का उन्होंने प्रसार किया, उसमें उनका इतना दोष नहीं। परंतु उसपर त्रिकालाबाधित धार्मिक सत्य की मुहर लगाने की भूल से हजारों वर्ष पूर्व का वह मानवी अज्ञान चिर करने का पाप हमें नहीं करना चाहिए। प्रत्यक्ष निष्ठा और प्रयोगक्षम विज्ञान के विकास से जो-जो प्राचीन सृष्ट पदार्थ विषयक धारणाएँ आज पूर्णतया मिथ्या सिद्ध हो गई हैं, उन्हें उस काल में धर्म्य समझा जाने पर भी आज उनका त्याग करना चाहिए और उस असत्य की नींव पर खड़े तद्विषयक सारे व्रतों तथा उपासनाओं का त्याग करना चाहिए।

२. आज ऐसे सैकड़ों व्रतों का, जो केवल असत्य की ही पूजा सिद्ध होते हैं, एक उदाहरण है ज्योतिर्गोल विषयक व्रतों का गुट। प्राचीन काल में सारे विश्व के मानवों की यही धारणा थी कि चंद्र, सूर्य, शनि, शुक्र, मंगल आदि ज्योतिर्गोल स्वतंत्र तथा सजीव देवता हैं और वे मनुष्य की स्तुति-निंदा से प्रसन्न अथवा प्रक्षुब्ध हो सकते हैं; न केवल हमारे हिंदू धर्म में, बल्कि प्राचीन काल के प्राय: सभी राष्ट्रों तथा धर्मों में यह धारणा और उसपर आधारित उनकी उपासनाएँ, व्रतानुष्ठान प्रचलित थे। परंतु अब खगोलशास्त्र के विकास के कारण यह प्रयोग सिद्ध हो चुका है कि ये सारे ज्योतिर्गोल निर्जीव पदार्थ हैं, उनकी गतिस्थितियाँ गणित के मनुष्यों पर हो रहे परिणामों में मनुष्यों की स्तुति-निंदा, ब्राह्मण भोजन, अस्पृश्य महारों को दान, पत्थर पर तेल-सिंदूर पोतने से अथवा शनिचर, मंगलवार के उपोषण, अथवा अर्घ्यप्रदान से, शनिमाहात्म्य अथवा सूर्यमाहात्म्य के पारायणों से रत्ती भर भी परिवर्तन नहीं हो सकता। उनके परिणाम टालने का मार्ग शनिमाहात्म्य प्रणीत निरर्थक कथानुसार व्यवहार करना नहीं अपितु गणित, रसायन, वैद्यक इन प्रयोगक्षम विज्ञानों के नियम समझ लेना और उनके आधार पर उचित वैज्ञानिक फलदायी उपायों का आयोजन करना है। मनुष्य को यह ज्ञान अब हुआ है, तथापि प्राचीन अज्ञान को 'धर्म' समझकर अपनाना तथा क्रमशः एक-एक उपासना तथा व्रतानुष्ठान करते रहना असत्य की ही पूजा होने के कारण यह पूर्णतया अधर्म है।

एकदम नया उदाहरण लीजिए रेलगाड़ी का। हिंदुस्थान में सर्वप्रथम जब आगिनगाड़ी आई तब सैकड़ों ग्रामवासियों को वह एक देवी प्रतीत हुई। न घोड़ा, न बैल, न गधा जुता हुआ, परंतु किसी शेरनी जैसी सूँ-सूँ करती हुई तूफान की तरह दौड़ती है। जैसे कोई अद्भुत प्राणी किसी अगम्य जंगल से निकला और गाँव में घुस गया। फिर उसकी प्रजा बढ़कर जिधर देखो उधर आगिनगाड़ी ही आगिनगाड़ी। इसका तो जाल-सा बुन गया देश भर में। किसी सुरंग का मुहाना फट से पत्थर उठाते

ही खुल जाए और भीतर से साँपों के झुंड-के-झुंड सरसराते हुए तेजी से बाहर निकलकर इधर-उधर सरपट भागने लगें ठीक ऐसा ही एक आश्चर्य! कई बरसों तक अनेक ग्रामवासी लौहपथ के तारों के पास प्रतीक्षा करते खड़े रहते और आगिन गाड़ी का आगमन होते ही उस देवी को प्रसन्न करने के लिए खटा-खट मनौती के नारियल फोड़ते। एक बात अच्छी हुई कि केवल अज्ञ, गँवारों में ही यह भावना पनपी, पुरोहित वर्ग ने इसको स्वीकार नहीं किया! परंतु यदि किसी पंडित को उस देवी पर कुछ संस्कृत अनुष्टुप रचने की युक्ति सूझती तो आगिनगाड़ी विषयक उस अज्ञान पर धर्म की लीपापोती कर मन्नतों से प्रसन्न होनेवाले देवताओं में आगिनगाड़ी के और एक व्रत की भरती होगी। परंतु धार्मिक वर्ग को किसी अन्य कारण से ऐसी बुद्धि नहीं हुई और उस गँवारपन पर धार्मिक ठप्पा लगकर उसे चिरंतन बनाने का भारी संकट टल गया। कारण यह था कि आगिनगाड़ी अपने डिब्बों में अछूतों सहित सभी को एक साथ बैठाती थी, धूत वस्त्र पहनकर बैठने की उस कलमुँही ने कोई भी सुविधा नहीं रखी थी। स्पष्ट है, धार्मिक पूजा के लिए वह अयोग्य सिद्ध हो गई। हाँ, धार्मिक निंदा के लिए पात्र सिद्ध हो ही गई। बरसों तक आगिनगाड़ी की सुविधा होते हुए भी उपाध्याय तथा धर्मपरायण वर्ग बैलगाड़ी से ही तीर्थयात्रा आदि के लिए जाते और आगिनगाड़ी से अथवा आगबोट (धुआँकश) से यात्रा करने के पश्चात् कपड़ों के साथ स्नान किए बगैर घर में प्रवेश नहीं करते। परंतु आगिनगाड़ी अथवा धुआँकश का सारा रहस्य हजारों लोगों को प्रत्यक्ष समझ में आते ही अब बेचारी गाड़ी को केवल शिष्टाचारवश भी कोई प्रणाम नहीं करता था। फिर मिन्नत-मनौती का नारियल फोड़ना तो दूर! आगिनगाड़ी, आगबोट, मोटर में भी दुर्घटनाएँ होती हैं। प्राणहानि भी होती है। परंतु यह उनके प्रकोप से होती है, यह समझकर गँवार देहाती भी उसमें सवार होते समय उनके नीचे मुरगे की बलि चढ़ाकर अथवा कुंकुम लगाकर उन्हें प्रसन्न करने की चेष्टा नहीं करते। दुर्घटना को टालने के लिए सड़क ठीक करना, गाड़ी के ब्रेक्स ठीक हैं या नहीं यह देखना, उसका इंजन, गति, पैट्रोल यथावत् अनुपात में रखना इन प्रत्यक्षसिद्ध उपायों का ही अवलंबन करता है।

आगिनगाड़ी, आगबोट, मोटरों की तरह ही निर्जीव एवं भावनाशून्य होनेवाले इन ज्योतिर्गोलों को भी हमें यंत्र ही समझना चाहिए। आगे प्रत्येक पंचांग में कम-से-कम तिलक पंचांग में मकर संक्रमण का वैज्ञानिक अर्थ दिया जाए। ग्रहण के वैज्ञानिक कारण दिए जाएँ, ग्रहों के व्यास और गति, सूर्यमाला और पृथ्वी की आवश्यक आकृति वैज्ञानिक परिभाषा में निवेदित करें और संक्रांति के उस स्वाँग तथा ग्रहण आदि के वे ऊटपटाँग निरर्थक वर्णन पूर्णतया निकाल दिए जाएँ। पंचांग प्रवर्तक मंडल जैसी सुज्ञ संस्थाएँ लोगों से धड़ल्ले से झूठ बोलकर उन्हें असत्य तथा

अज्ञान में कैसे रखती हैं ? विवेक की कसौटी लगाने से विज्ञान द्वारा जो साफ असत्य सिद्ध हो गया है और प्रत्यक्ष प्रयोग से जो इस तरह असत्य होने की अनुभूति आ सकती है उसकी उपासना, पूजा और प्रचारार्थ कारणीभूत ये चंद्र-सूर्य ग्रहोपग्रह आदि ज्योतिर्गोल तथा ग्रहणों के साथ ज्योतिर्घटना से संबंधित पचास-साठ व्रतानुष्ठान केवल असत्य की पूजा एवं अधर्म सिद्ध होते हैं। प्राचीन काल में अज्ञान के अँधेरे में रज्जु को साँप समझने से भय होने लगा जो स्वाभाविक समझा जा सकता है। परंतु विज्ञान के आलोक में वह साँप नहीं, रस्सी ही है, यह स्पष्ट होने पर भी वह साँप है इस तरह लोगों की आँखों में धूल झोंकना, उन्हें डराना और उसपर सोटी के प्रहार करना अथवा उसे दूध पिलाने का दिखावा करना मात्र पागलपन और कुछ हद तक ठग विद्या है।

३. विज्ञान ने आज जो सत्य निर्विवाद रूप में प्रत्यक्ष के आधार पर सिद्ध किए हैं। उनके प्रचार में बाधा डालनेवाले अज्ञानमय व्रत जैसे पूर्णतया त्याग देने चाहिए। व्रतानुष्ठान के रूपों का कोई भी ऐहिक फल न देते हुए मात्र पुराणांतर्गत निरर्थक कथाओं के आधार पर प्रचार किया जाता है। उन व्रतानुष्ठानों के ऐसे रूपों में भी परिवर्तन लाना होगा। प्रत्येक व्रत को इसी निकष पर परखना होगा कि इस व्रत से अपना, अपने राष्ट्र का, अथवा कुल मानव जाति का कुछ-न-कुछ तो प्रत्यक्ष लाभ हो रहा है या नहीं ? यदि इस तरह प्रत्यक्ष ऐहिक लाभ हो रहा हो, तभी समझिए कि उस व्रतानुष्ठानार्थ व्यय किया गया समय और धन कुछ सत्कार्य में लगा है, अन्यथा ऐसे व्रतानुष्ठान का पालन न करें। व्रतों का पारलौकिक लाभ प्राप्त करना हो तो वह प्राप्त होने पर भी उसके अतिरिक्त कुछ-न-कुछ प्रत्यक्ष लाभ भी मनुष्य जाति को प्राप्त होना चाहिए। उन्हीं व्रतों का इस तरह दोहरे रूप में तथा प्रणाली से आचरण करें जो इस निकष पर खरे उतरते हों। यदि क्वचित् उनसे होनेवाला कल्पित अथवा संभवनीय पारलौकिक लाभ मिथ्या सिद्ध होने पर भी उसमें व्यय किए गए समय एवं धन दोनों का ऐहिक लाभ निश्चित रूप में प्राप्त होगा, तो ये व्रत एकदम व्यर्थ होने की आपत्ति का सामना करना नहीं होगा। इस दूसरे प्रकार के व्रत को यह कसौटी किस तरह लगानी है, यह स्पष्ट करने के लिए इस लेख में उदाहरणस्वरूप ऐसे ही कुछ व्रतों की छानबीन की योजना की गई है।

लक्ष-लक्ष बाती तथा लक्ष दूर्वा व्रत

भगवान् की सेवा के लिए किए जानेवाले ये व्रत, मकर संक्रमण जैसे एक व्यापार की नाक है और वह व्यापार गधे पर सवार है, इस प्रकार के असत्य से भरी फैली हुई गप नहीं अपितु ये अत्यंत सात्त्विक होते हैं, अतः इतने अपेक्षा रखनेवाले

भी नहीं। परंतु इसमें इतना ही विवेक करना है कि भगवान् को प्रसन्न करने के लिए किए गए इस परिश्रम का प्रत्यक्ष व्यवहार में आज कितना लाभ हो रहा है? प्राचीन काल में बड़े-बड़े मंदिरों के गर्भगृह अंधकारमय होते थे। घर में भी दीवार पर दीपक झलमल जलते। उसके लिए बनाई गई रुई की बत्तियाँ एक आवश्यकता ही होती। मंदिरों में उनका उपयोग होता, घर में भी। परंतु सहस्रों वर्ष पहले हाथ से बनाई गई बत्तियों के युग में भी अब परिवर्तन आया है। प्राचीन प्रसिद्ध देवालयों के गर्भगृहों में भी अब बिजली एवं गैस की जगमगाती बत्तियों की ही शोभा रही है। घर-बार, गाँवों में लालटेन, ढिबरी तथा नगरों में बिजली तथा गैस के दीपक कमरे-कमरे में जगरमगर कर रहे हैं। फिर अब जहाँ गैस तथा बिजली की चकाचौंध हो रही है, वहीं पर एक झलमला या दीवट इसलिए जलाना कि अपने परदादा के समय जलाते थे, क्या हास्यास्पद नहीं है? मोटरकार में बैल जोड़ना अथवा तोपों का गोला धनुष की डोरी से फेंकना जितना विसंगत, मूर्खतापूर्ण है उतना ही झाड़-फानूसों से चमचम करते गर्भगृह में बत्तियों के दीपक की टिमटिमाती लौ धुँआली रखना भी मूर्खता ही है। अतः जिस मंदिर अथवा जिस घर में हाथ से बनाई गई टिमटिमाती बत्तियों के दीपक का उपयोग नहीं होता वहाँ लक्ष बातियों का यह व्रत रखना समय, रुई एवं तेल का अपव्यय है। अतः इस व्रत को अब कचरे के ढेर में डालना ही उचित है।

तथापि इस व्रतांतर्गत हेतु को, जो ईश्वर की सेवा के श्रद्धालु मन को ऊपर करता है, छोड़ना नहीं चाहिए। उसी उद्देश्य को लेकर परंतु इस रूप में जिस योग से प्रत्यक्ष व्यवहार में आज मानव जाति को अल्पस्वरूप कल्याण भी साध्य होगा उस व्रत का आचरण करें। एक उपाय यह सुझाया जा सकता है कि तकली पर बढ़िया सूत कातकर अमुक मात्रा में किसी प्रामाणिक निर्धन जुलाहे को भगवान् के नाम पर दान करें अथवा हथकरघे पर स्वयं बुनें और वह खद्दर दीन-हीन परंतु किसी श्रमजीवी सुशील परिवार को दे दें। इस प्रकार के जनकल्याण से, नर-सेवा से यदि लक्ष बातियाँ और तेल बिना कारण जलाने से संतोष होता हो तो नारायण अधिक ही संतुष्ट होंगे, इसमें कोई संदेह नहीं।

वही बात लाख दूर्वा की

पिछवाड़े के बगीचे तथा खंडहरों में घंटों तिनका-तिनका तृण चुनते हुए समय नष्ट करना और वह सारा गट्ठर गणेशजी के सिर पर डालना, पूजा के लिए चुने गए विभिन्न वृक्षों के पत्ते और दूर्वा अर्पित करते समय उस बोझ तले गणेश-गौरी की बित्ता भर मूर्तियों का दम घुट जाता है। किसी भक्त ने यदि अपनी स्त्री को

ज्वार और धान के डंठल समर्पित करने का प्रेम संकल्प करे और उसे बैठाकर चारों ओर से, ऊपर-नीचे यह न देखते हुए कि उसे कान, नाक, आँख, मुख में उंगल घुस रहे हैं या नहीं, कहा 'अर्पयामि' और रचो पुआल, इस प्रकार अर्पण करता रहा तो उस भक्त की भक्ति वह स्त्री जिसका दम घुट रह है, कहाँ तक सहेगी भला? फिर सगुण भक्ति की दृष्टि से कहना हो तो क्या यह देखना आवश्यक नहीं कि गौरी-गणेश की उस मूर्ति को अपने घास-पत्तों के बोझ तले दबाते समय उनकी कितनी दुर्गति होती होगी? उस मूर्ति के सामने इतनी खाली जगह रखें कि वह साँस ले सके। उसपर यह लाख दूर्वा-घास का ढेर गणेशजी को ही क्यों अर्पित करें? क्या गणेशजी घास खाते हैं? घास का गट्ठर चढ़ाना हो तो गाय पर चढ़ाएँ। वह घास खाकर पशु ही प्रसन्न होंगे, और कोई नहीं। गाय पीने के लिए दूध देगी। परंतु मोदक (एक पकवान) भक्षी एवं जो गंदा, घिनौना है उसे ही चाव से खानेवाली 'गोमाता' को स्वादिष्ट पंच पकवानों का भोजन गोग्रास के रूप में चढ़ाया जाता है। यह व्रत है या पाखंड? यह मूर्खता जो निरर्थक पोथियों के प्रभाव से पात्रापात्रता का जरा भी विचार नहीं करती, आज उसका आचरण नहीं किया जाता? पोथी ही चाहिए तो भगवद्गीता है न? हम सब भी उसे उपनिषद् तुल्य पूज्य समझते हैं। उसमें भी कहा गया है कि 'देशे काले च पात्रे' जो-जो दान है, वही सात्त्विक है और 'अदशेकाले यद्दानमपत्रेभ्यश्च दीयते। दीयते बहुलयासं तत् तामसमुदाहृतम्।' इसके अनुसार व्रतात्मक दान तथा दानात्मक व्रत में अब हमें 'देश' तथा 'काल' के अनुसार पात्रापात्र का विवेक करना ही होगा।

अत: हरी-भरी घास अथवा वनस्पति विषयक व्रत ही करना है तो किसी किसान स्त्री की तरह धोती काछकर तथा हाथ में हँसिया थामकर हरे-भरे लहलहाते जंगल का रुख अपनाएँ और किसी खंडहर में लाख-लाख दूर्वा चुनने में घंटों व्यय करने की अपेक्षा उसी समय खट से घास का हरा-भरा गट्ठर काटकर भगवान् के नाम पर गाय को खिलाएँ अथवा सुगंधित पुष्पों की राशि के गजरे बनाकर श्रमिक कन्याओं को भेंटस्वरूप दे दें अथवा अपने या अपने किसी संबंधी के आँगन में पानी भरकर फुलवारी लगाएँ और मालती, सुवर्ण चंपा, जुही, गुलाब के सुंदर फूल नित्य ही भगवान् पर चढ़ाएँ। हाँ, सारे-के-सारे फूलों का ढेर भगवान् पर न चढ़ाएँ, बस उतने ही वहाँ रखें जितने मंदिर की शोभा बढ़ाते हैं, शेष फूलों के हार गूँथकर कुशलतापूर्वक घर के द्वार पर अथवा घर के कमरों में सजाएँ। अपने घर की ओर जिनके भाग्य में फूल नहीं हैं, निर्धन कुमारियों के ऐसे केश-कलापों में स्वयं पानी देकर खिलाई हुई फुलवारी के ताजा, उत्फुल्ल फूलों के गजरे पहनाएँ जिस योग से जहाँ-जहाँ वे विचरण करेंगी वहाँ-वहाँ सुंदरता एवं सुगंधि से वातावरण महकता

रहे। इस प्रकार स्वास्थ्यप्रद तथा आनंदमय सुंदरता की पूजा भी एक व्रत ही है। क्या महर्षि वाल्मीकि जैसे वानप्रस्थी ने भी सीता जैसी संयमशील ललना को इसी प्रकार का एक व्रत कथन करते हुए बड़े लाड़-दुलार के साथ यह आश्वासन नहीं दिया था—

'पयोघटैराश्रमबालवृक्षान् संवर्धयंति स्वबलानुरूपैः।
असंशयं प्राक्तनयोपपत्तेः स्तनंधयप्रीतिमवाप्स्यसि त्वम्॥'

वट-पीपल की लाख परिक्रमा

इस वर्ग के व्रत भी इसी कसौटी पर परखें। वनस्पति के साथ जीवैक्य की भावना का अनुभव करना है या उसका संवर्धन करना है तो उसकी परिक्रमा करने का मार्ग त्याज्य है। ये विशाल विस्तारशील वृक्ष हमारे उषा प्रदेशीय जनों को उसकी छायाशीलता के कारण अत्यंत वत्सल प्रतीत हों और उसके संबंध में कृतज्ञता व्यक्त करने की इच्छा हो, यह तो हमारी दयाशील संस्कृति के अनुरूप ही है, परंतु इसके लिए उस वृक्ष को ईश्वर बनाना संस्कृति के आँचल में बुद्धिहीनता का दोष बाँधना ही है। इन विशाल तथा उपयोगी वृक्षों का उनकी अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार संवर्धन करना, उनका पोषण करना, अन्य उपयुक्त वनस्पतियों को उनकी निजी प्रकृति के अनुसार खाद-पानी देना ही मतैक्य प्रदर्शन करने की उचित रीति है। भई, ये ही वृक्ष भला क्यों? तो मनुष्य के लिए ये उपयुक्त हैं, इसलिए। तो फिर भरी बस्ती में खड़े वट-पीपल को, जो बस्ती की शोभा बिगाड़ते हैं तथा जो ऐन राह पर खड़े हैं तोड़ना नहीं, इस हठ के कारण उसके अचानक तेज हवा से ढहकर गिरने से उसके नीचे मनुष्य हानि होती है, इस तरह की घटनाएँ इस देश में घटती हैं। ये घटनाएँ हमारी शिष्ट दयाशीलता नहीं दिखातीं, वह हमारी बर्बर नृशंसता का प्रदर्शन करती हैं।

वट-पीपल वृक्षों के नीचे आतप पीड़ित पथिक को जिस तरह सुखद छाया प्राप्त होती है, उसी तरह उनकी प्रचंड शाखाएँ ढहने से प्रसंगवश उन्हें अपने प्राणों से हाथ भी धोना पड़ता है। ये बुद्धिहीन वृक्ष जान-बूझकर अपनी रक्षा नहीं करते। उनकी परिक्रमा करें या उनपर लता प्रहार, जब तक शाखाएँ दृढ़ हैं तब तक छाया देना और खोखली बनते ही भहराकर गिरते-गिरते नीचे परिक्रमा कर रहे बालक-बालिकाएँ, जो भी मिलें उन्हें चकनाचूर करना ही उनकी भावनाशून्य यांत्रिक प्रक्रिया है। एक बार गधे की पीठ पर हाथ फेरें, उसे प्रेम से पुचकारें तो वह संतुष्ट होकर हमारे शरीर से सटने लगता है, अपना काम अधिक लगन से करता है, परंतु

यदि उससे कुछ छेड़छाड़ की तो लातों का प्रसाद देता है, परंतु उस गधे जितना भी मनुष्य प्रेम के प्रेमलोभ अथवा हित-अहित का सुसंवादी भान जिस वट-पीपल को नहीं, उनकी लाख-लाख परिक्रमा करने में क्या तुक है? वृक्षों में जैसी चेतना है वैसी पत्थरों में भी है, नागफनी में भी है, परंतु इसलिए क्या नागफनी छीलकर खाई जाती है, जैसे गन्ना?

इस पात्रापात्रता के विचार की तरह उपयोगिता की दृष्टि से भी ये व्रत अधिक त्याज्य हैं। पुरानी भोली-भाली दृष्टि उस वट-पीपल को देवता समझकर परिक्रमा करती हैं, यह भी सहनीय है। परंतु ऐसा एक दल होता है जो इस प्रकार की पुरानी मूर्खता को नूतन पढ़त मूर्खों का वैज्ञानिक अथवा व्यावहारिक दृष्टि से भी समर्थन करते हैं, उनका वह समर्थन उस भोलेपन को अधिक ही धिक्कारित करके छोड़ता है। देखिए, स्त्रियाँ वट-पीपल की लक्ष परिक्रमा करें इस तरह हमारे दूरंदेशी, दयावान ऋषि कथित व्रत का ये पढ़े-लिखे मूर्ख इस तरह समर्थन करते हैं कि हर समय घर में ही बैठी रहनेवाली महिलाओं को तपेदिक आदि विकार न हो। अत: इस व्रत के निमित्त यह व्यायाम उन्हें बताया गया है, यही उसकी उपयोगिता है। इस विषय में बस इतना ही कहा जा सकता है कि स्त्रियों को अपने आँगन के वटवृक्ष के चारों ओर पालतू मुरगियों जैसी गोल-गोल घुमानेवाली यह दया भी उन्हें तब तक घर के दड़बे में कैद करके रखने, जब तक वे तपेदिक आदि विकार से ग्रस्त न हों, ऐसी क्रूरता से ही मेल खाती है। प्राय: गाँव के गाड़ी खड़ी करने के गंदगी से भरे स्थान पर अथवा आँगन अथवा गली-कूचों के छोर के दमघुटे वातावरण में ही ये वट-पीपल वृक्ष होते हैं। उनके चारों ओर सैकड़ों चक्कर लगाने के व्यायाम से तपेदिक का रोग हटने की अपेक्षा उसके और बढ़ने की ही अधिक आशंका है। यह तो बड़ा भाग्य समझना चाहिए कि तपेदिक की रोगिणी स्त्री लाख फेरे लेते-लेते सिर चकराकर अपनी जगह पर ही मुक्त न हो।

तपेदिक से बचानेवाला व्यायाम ही महिलाओं को बताना था तो क्या उन सर्वज्ञ महर्षियों की दृष्टि गाँव के पास लहलहाते खुले खेतों को देखने योग्य भी दूरंदेशी नहीं थी? नित्य ही संध्या समय स्त्रियाँ गाँव से बाहर खुले वातावरण की मुक्त सैर करें, इस तरह का व्रत होता तो वह 'व्यायामार्थ' कहा जा सकता है। सच बात तो यह है कि प्राचीन काल में सारे विश्व में पेड़-पौधों को देवता समझकर उनकी पूजा करने की जो प्रचलित रीति थी, उसी रीति का हमारे हिंदू धर्म में शेष रहा हुआ यह अज्ञान है। उसका व्यावहारिक लाभ दो कौड़ी का भी नहीं।

एक बार हमने इसी तरह का अभिप्राय व्यक्त किया, तब एक सनातन धर्म के प्रामाणिक अभिमानी व्यक्ति ने कहा, ''इस वट-पीपल की लक्ष परिक्रमा के व्रत

को ऐसे शिक्षाबद्ध अनुशासन में रखना कि उससे कुछ व्यावहारिक लोकोपयोगी लाभ भी हो, उसको पूरा-पूरा धिक्कारना नहीं है?'' तब हमने कहा, ''इस व्रत से कुछ ऐहिक लाभ भी प्राप्त करने की कोई युक्ति नहीं सूझ रही है। हाँ, एक उपाय है। इस वटवृक्ष के पास तेल का एक कोल्हू बैठाया जाए। उसकी साँकल उस व्रतस्थ महिला की करधनी में अटकाई जाए। कोल्हू में तिल डालने के पश्चात् वह परिक्रमा करना आरंभ करे, ताकि जो हजार-बारह सौ परिक्रमाएँ हों, उनकी समाप्ति तक उस कोल्हू से कम-से-कम डेढ़ सेर तेल मिल जाएगा। ईश्वर के नाम से वह तेल किसी श्रमजीवी परंतु निर्धन परिवार को दान करें, ताकि उनका एक महीने का सब्जी छौंकने का खर्चा निकले। यदि ऐसा करने की इच्छा न हो तों पारलौकिक दृष्टि से एकदम निरर्थक तथा व्यावहारिक दृष्टि से सौ प्रतिशत निठल्ले व्रत करने में समय और परिश्रम का अपव्यय न करें।

महिला जनो, फेरे लेने का ही व्रत करना हो तो स्वदेशी वस्तुओं के प्रचारार्थ प्रतिदिन पचास परिवारों से मिलकर प्रचार करने का व्रत लें। आप पाँच-पाँच महिलाएँ, ईश्वर कार्य समझकर मान-अपमान की चिंता न करते हुए पचास घर प्रतिदिन बारी-बारी से भेंट करें और उस परिवार में स्वदेशी वस्त्र, चूड़ियाँ, स्टोव, शीशे की वस्तुएँ, धारकाम (कटलरी), कपड़ा आदि वस्तुओं का प्रयोग करने के लिए महिलाओं को प्रवृत्त करने की चेष्टा करें। जिन्होंने इस तरह निश्चय किया है वे अपने निश्चय पर अडिग हैं या नहीं, इसका एक वर्ष सतत निरीक्षण करें। यदि आवश्यकता हो तो वह स्वदेशी सामान दुकान के माल से अधिक सस्ते में दोगे तो इस तरह के आंदोलन के अनुभव का विश्वास दिलाते हैं कि आपका गाँव सौ-सौ व्याख्यानों अथवा वृत्तपत्रीय अग्रलेखों से जो नहीं हो सकता, वह स्वदेशी का कट्टर ग्राहक होकर रहेगा। व्याख्यान तथा स्वदेशी के लेख महीना-डेढ़ महीना हुड़दंग मचाते हैं। परंतु इस तरह के घर-घर में सतत किए गए प्रचार से, निरीक्षण से स्वदेशी की धीमी और सतत ज्योति प्रज्वलित रखी जाती है। अच्छा, इस स्वदेशी की चेतना की ज्योति इसी तरह घर-घर प्रज्वलित रखने से जनता को जो मानसिक राष्ट्रीय शिक्षा मिलेगी, जो आर्थिक उन्नति होगी, स्वदेशी कामगार, मजदूरों के मुँह में चावल का दाना पड़ेगा, विदेश में जानेवाला पैसा स्वदेश में ही रहेगा, उस स्वदेश सेवा से, नर-नारी की सेवा से वह नारायण वट-पीपल की चारों ओर बैल सदृश लाख-लाख परिक्रमा करने से अथवा लक्ष बातियों की रुई व्यर्थ जलाने से अथवा लक्ष दूर्वा एवं बेलपत्र का गट्ठर चढ़ाने से जितना संतुष्ट होता है, उससे लाख गुना अधिक संतुष्ट नहीं होगा और उस वट-पीपल की परिक्रमा से आपको जो भी काम्यफल मिलनेवाला है, वह भी इन व्रतों से दिए बिना ईश्वर कैसा

रहेगा ? मिशनरी महिलाएँ जिस तरह ईसाई धर्म का उपदेश देती हुई आपकी बस्ती में घूमती हैं, उसी तरह आप भी धर्मभ्रष्ट नव ईसाई बस्ती में शुद्धि का उपदेश करती घूमें। इसी व्रत का पालन करें। यह अनुरोध नहीं कि अमुक प्रकार की ही लोक सेवा करें। आप व्यक्तिशः जितना कर सकती हैं, वही लोक सेवा करें। परंतु इस लोक में ऐसे व्रत करें जो कुछ-न-कुछ फलदायी हैं, लोकोपकारक हैं, जिनसे कुछ पुण्यकृत्य साध्य हो, इसीसे राष्ट्रसेवा होगी। वट-पीपल की सेवा से पारलौकिक दृष्टि से आप जिस फल की कामना करती हैं, वह इस लोक सेवा के प्रत्यक्ष परोपकारी व्रत से अवश्य प्राप्त होगा। क्योंकि कुछ भी हो, नारायण का नर वट-पीपल, पत्थर-पाषाण, गोबर-मिट्टी की जड़ मूर्ति से नर की सचेतन मूर्ति में ही अधिक उत्कटतापूर्वक आया है, इसे नकारने का साहस किसी भी ऊटपटाँग-से-ऊटपटाँग निरर्थक पोथी को भी नहीं है। नर की सेवा समान कोई भी पूजा, व्रत नारायण को संतोष नहीं देता। 'सारं सारं समुद् धृत्य' जो शास्त्रोक्त है, वह यही कि 'परोपकारः पुण्याय पापाय परपीड़नम्।' विरक्त भक्ति की तन्मयता में भी तुकाराम जानते थे कि 'जो कोई दुःखी पीड़ित हो, उसे जो अपना कहे। वही उसे ही साधु कहलाए, ईश वही पर ही जाने॥''

व्रत की पोथी हो तो प्रथमतः उसे पढ़ें, अथश्री से नहीं अपितु इतिश्री से!

ज्योतिर्गोल विषयक व्रतों को सृष्टि नियमों के अज्ञानवश प्रचलित होने के कारण अज्ञानजन्य कहा जा सकता है। उपरिनिर्दिष्ट लाख दूर्वा व्रतादि वर्ग को अंधविश्वास कहा जा सकता है। परंतु उससे अलग जो और एक सैकड़ों व्रतों का वर्ग है, उसका पाखंड नाम ही सार्थक प्रतीत होता है। उनका प्रमुख उद्देश्य दक्षिणा और दान हड़पने के यथासंभव बहाने ढूँढ़ निकालना है बस! इसके सिवा इन पोथियों का कोई अन्य उद्देश्य दिखाई नहीं देता। उनकी निरर्थक उपपत्तियाँ, वे खोखले फल, वे वाहियात विधि-विधान और अंत में वह निश्चित 'दक्षिणः पांतु' यह सब पढ़ते ही यह शुद्ध ढकोसला ही प्रतीत होता है। उदाहरणस्वरूप—ये एक-दो कथाएँ देखिए—

कोयल व्रत : सुसंस्कृत अनुष्टुप में प्रदीर्घ रचना की हुई इस पोथी का सारांश इस तरह है। एक दिन दक्ष यज्ञ विध्वंसनार्थ शंकर-पार्वती में वैमनस्य उत्पन्न हो गया। भगवान् शंकर के अभिशाप से पार्वती कोयल बन गईं। उःशाप मिलने से पुनः पार्वती बन गईं। इसके लिए सभी महिलाएँ युग-युग से कोयल व्रत करें, अर्थात् एक निश्चित दिन कोयल का पूजन करें। परंतु वह कैसे? उत्तम पक्ष यह है कि

सुवर्ण की कोयल बनाएँ, उसके नेत्र मोती के, पैर चाँदी के तथा चाँदी के वृक्ष पर उसे बैठाएँ। स्नान, उपोषण करके उनकी पूजा-अर्चना होने के पश्चात् वह सोने-मोती की कोयल उस चाँदी के वृक्ष के साथ ब्राह्मण को दान करें। आज भी महिलाएँ इसी तरह इस व्रत का आचरण करती हैं।

अजी, यह भक्ति है या आँखों में धूल झोंकना। कहते हैं कि शंकर-पार्वती का लाख बरस पहले झगड़ा हुआ, परंतु उसके पश्चात् दोनों में सुलह हो जाने से वे सुख-संतोषपूर्वक रहने लगे; हँसे, नाचे, चौसर खेले, उनकी संतानें हुईं। ये सारी वार्त्ताएँ भूलोक पर बासी हो चुकी हैं और इस बेतार के युग में भी शंकर-पार्वती का कुछ अमंगल होने की सूचना नहीं आई। तब यह स्पष्ट है कि वे आज भी अपनी सुखी-संपन्न गृहस्थी बसाए हुए हैं। अब किसी एक दंपती के क्षणिक कलह-प्रसंग में पार्वती कोयल हो गई इसलिए सोने की बनाओ, उसकी पूजा करो, यह प्रथा युगों से क्यों चली आई है? पार्वती कोयल ही रहतीं तो वही कोयल मिलते ही कोई भी उसे प्रणाम करता। परंतु वह तो पुन: पार्वती हो गईं। भई, पार्वती एक कोयल बनी इसलिए सारी कोयलें पार्वती थोड़े होती हैं? ईश्वर एक बार सूअर (वराह) हो गए इसलिए आज भी गढ़ो सूअर और करो उसकी पूजा। ऐसा थोड़ा कर सकते हैं? अच्छा, इतना करके भी कोयल ही पूजनी हो तो उत्तम मार्ग है कोयल के जीवित चकुले को पकड़कर उसे हरे-भरे वृक्ष पर प्रस्थापित करते हुए उसकी पूजा करें, चाहें तो उसे पालें। परंतु इस झमेले में भला ब्राह्मण को कैसे लाभ होगा? इसलिए पार्वती रूपी जीवित कोयल के होते हुए भी पूजा करनी है, निर्जीव सोने की कोयल की। पार्वती की कोयल के नेत्र अच्छे-खासे तेजस्वी होते हुए पूजनीय कोयल के नेत्र धवल मोती के हो गए। अच्छा, सोना-रूपा-मोती की कोयल चलो बन गई। पूजा समाप्ति के पश्चात् यजमान उसे भक्तिभावना से अपने मंदिर में रखें, यह तो स्वाभाविक ही है। पर नहीं, उसे तुरंत ब्राह्मण की झोली में डालना चाहिए। तभी वह व्रत सफल होगा, अन्यथा इत्यंभूत निष्फल। अर्थात् इस व्रत का सारा मर्म पोथी के अंतिम पृष्ठ पर 'दक्षिणा: पांतु' में ही मिलता है।

संकट सोमवार : सोमवार का पूरा दिवस यथासंभव मुँह में जल की बूँद भी न डालते हुए निर्जला उपोषण करें। संध्या समय घी और गुड़ मिलाकर रोटी के तीन लड्डू बनाएँ। एक गोमाता को, एक देव ब्राह्मण को दें और एक स्वयं खाएँ। इस तरह सोलह सोमवार तक कठोर उपोषण करें। अंत में यथासंभव सोलह ब्राह्मण दंपती को आमंत्रित करके आटा-घी-गुड़ के लड्डू बनाकर भरपेट भोजन कराएँ। गोमाता को पत्तल पर पूरा भोजन परोसकर दें और फिर उपोषण व्रत छोड़कर भोजन करें। वे बेचारी स्त्री कठोर सोलह सोमवार उपोषण करें और उसका प्रत्यक्ष फल

मिले उन सोलह जोड़ों को, वह भी स्वादिष्ट मिष्टान्नपूर्ण भोजन; और गाय को भी। मनुष्य उपोषण करे और गाय-पशु को लड्डू खिलाएँ। इस वाहियात व्यवहार से जैसा पोथी कहती है, प्रसन्न हो या न हो, परंतु निस्संदेह प्रत्यक्ष प्रसन्न यदि कोई होंगे तो, तो वे सोलह ब्राह्मण दंपती। 'दक्षिणाः पांतु' के अतिरिक्त इस व्रत का इतना तूमार बाँधने का अन्य उद्देश्य क्या हो सकता है भला?

अतः व्रतों की इन पोथियों से संबंधित एक साधारण नियम ही कहने की इच्छा होती है कि देवताओं के बड़े-बड़े नाम, अद्भुत कथाएँ, स्वर्गीय पुष्पितावाक् बातें—इनके ढेर में पोथी रचयिता की चाल छिपी हुई होती है। परंतु अंतिम पृष्ठ पर न ढूँढ़ते हुए भी उसकी चालबाजी सहजतापूर्वक ज्ञात होती है। अतः हाथ में पोथी उठाते ही उसका अंत में पारायण करना आरंभ करें, इतिश्री को प्रथमतः पढ़ें। यदि उस अंतिम पृष्ठ पर 'दक्षिणाः पांतु' पर ही प्रमुख जोर दिया गया तो नब्बे प्रतिशत यह समझकर कि इस व्रत का रचयिता कोई ईश्वरभक्त नहीं, एक बगुलाभगत ढोंगी है, बेखटके उसका त्याग करें।

और जिस व्रत से आज विज्ञान ने स्पष्ट रूप में मिथ्या सिद्ध किए गए किसी भी भौतिक अथवा भावनिक असत्य का प्रसार करने का पाप नहीं होता, जिस व्रत में ईश्वर प्रीत्यर्थ करणीय दान से अथवा उपोषण, परिक्रमा, देहदंड प्रभृति आत्मक्लेश द्वारा प्रत्यक्ष व्यवहार में हमारे हिंदू धर्म का और राष्ट्र की सद्यः स्थितियों में कुछ ऐहिक हित भी साध्य होगा, मनुष्य की स्पष्ट कल्याणकारी सेवा करने से परोपकार होगा, उसी व्रत का आचरण करें, ताकि उस योग से प्रत्यक्ष रूप में ऐहिक फल भी प्राप्त होगा।

व्रताचरण करें तो इस तरह

उदाहरण : महिला वर्ग के लिए ही कहना हो तो इस चातुर्मास[१] में यथाशक्ति, यथास्थिति, यथामति हमारे विपद्ग्रस्त प्राणप्रिय हिंदू राष्ट्रसेवा प्रीत्यर्थ निम्न निर्दिष्ट अथवा उद्देश्य से ऐसे व्रतों में से एक-एक महिला एक-एक व्रत रखें तो कितनी राष्ट्रसेवा होगी! 'अपने बगीचे में स्वयं परिश्रम करते हुए धनिया पत्ता, बैगन, हरी मिर्चीयाँ आदि शाक-सब्जियाँ लगाऊँगी और हे ईश्वर, तुम्हारे नाम से अनाथ छात्रालय जैसी किसी प्रामाणिक संस्था को चार महीने प्रतिदिन ताजा सब्जी भेजूँगी।' इस तरह का व्रत लक्षबाती, फूल-पत्ते अर्पण करने के व्रत से क्या कई गुना अधिक

---

१. चातुर्मास—आषाढ़ शुक्ल एकादशी से कार्तिक की शुक्ल एकादशी तक के समय में किए जानेवाले व्रत, होम आदि।

भगवत्प्रिय तथा राष्ट्रहितकर नहीं होगा? अथवा कुछ ऐसा व्रत ले लीजिए कि 'इस चातुर्मास में अपने हाथों से बुने हुए अथवा सीए हुए पच्चीस कुरते और ब्लाउज की जोड़ियाँ, जो हीन-दीन पूर्वास्पृश्यों के बच्चे स्कूल जाते हैं उनमें से योग्य, होनहार बच्चों में बाँटूँगी।' चतुर्थी के इक्कीस 'मोदक' (गणेशजी का प्रिय पकवान) अथवा सोमवार के सोलह दंपती साहूकारी अथवा बीमे की दलाली अथवा व्यापार करनेवाले पेटपोसुवा ब्राह्मणों के लिए रखने से अधिक अच्छा है, उतना ही सामान अथवा पैसे दक्षिणा मसूरकर महाराज के आश्रम को दूँगी, जो आज हिंदू संगठन कार्य वास्तविक रामदासी आनबान से कर रहे हैं। आनेवाले चातुर्मास में एक स्वदेशी शर्करा की समस्या ही हाथ में ले ली, तभी प्रत्येक जिले के नगर में दस-बीस महिलाएँ प्रतिदिन 'मैं दस परिवारों के घर जाकर स्वदेशी शर्करा का प्रचार करूँगी' इस व्रत को स्वीकार करें तो चार महीनों में उस नगर में कम-से-कम चार हजार रुपए विदेशी चीनी के बच जाएँगे। अजी, करके तो देखें। हमारा विश्वास अनुभवजन्य है। अथवा संपूर्ण वर्ष में 'सौ रुपए की स्वदेशी चूड़ियाँ घर-घर घूमकर बेचूँगी।' अथवा 'तुलसी विवाह के लिए ढोल, बाजे-गाजे की मूर्खता करने की अपेक्षा उस व्रत का खर्च बचाकर दो शुद्धिकृत हिंदू, जो अनाथ परंतु सत्पात्र हैं, उनके योगक्षेम व्ययार्थ दे दूँगी।' अथवा उस कार्यार्थ प्रत्यक्ष कार्यकर्त्री हिंदूसभा को और आर्य समाज को दान करूँगी। रत्नागिरि हिंदूसभा जैसी जो संस्थाएँ शुद्धि कार्यरत हैं, उनके मुल्ला-मिशन के चंगुल से मुक्त किए गए शिशुओं तथा अनाथ बालक-बालिकाओं का पालन-पोषण करते-करते नाक में दम आ जाता है। अमरावती की हिंदूसभा जो सौ रुपए मिलते ही सौ विधर्मियों को हिंदू करके दिखाती है, द्रव्य सहायता के बिना अवरुद्ध है, ऐसे प्रत्यक्ष कार्यार्थ एक रुपया भी दान करें तो एक वंश हिंदू राष्ट्र के पक्ष में लाने का श्रेय संपादन करेंगी। लहू की एक बूँद में, जो हिंदू धर्म का क्षय रोकती है, और वृद्धि करते हुए या उसका टपकना रोककर पुण्य लाभ होगा, उसकी बराबरी पाँच सौ अर्घ्य सूर्यार्पण करने से नहीं होगी। पानी ही डालना है तो उस व्रत का जल किसी तृषार्त के मुख में डालिए, पूजा की थाली अथवा नदी में नहीं। वह बंबई का श्रद्धानंद आश्रम देखिए। उसने मुल्ला-मिशन के चंगुल से हजारों हिंदू अबलाओं को बचाया। परंतु शिशु-सदन खोलने के लिए गाँठ में कौड़ी भी नहीं होने के कारण उसकी समझ में नहीं आ रहा है कि उन स्त्रियों का क्या करना है। साहूकारी का व्यवसाय कर रहे उन ब्राह्मणों को, भिक्षुकों को, सोने-रूपे की बनाई हुई कोयल देने की अपेक्षा कोई धनी महिला यदि उस श्रद्धानंद महिलाश्रम की महिलाओं के लिए चातुर्मास के उपलक्ष्य में बारह धोतियाँ दान करें अथवा अपने परिवार के किसी मृत व्यक्ति के स्मरणार्थ एक सहस्र अथवा एक लाख यथाशक्ति

जो भी हो, दान शिशु-सदन निर्मिति हेतु से करें तो नगर के किसी व्यवसायी भिक्षुक को अंत्येष्टि प्रीत्यर्थ गाय, बरतन, वस्त्र दान करने की अपेक्षा उस दीन, दयावान ईश्वर को वह शतगुना अधिक प्रिय नहीं होगा ? अथवा उस सुयोग्य परंतु निर्धन छात्र का, जो विमान विद्या सीख रहा है, व्यय भार उठाने का व्रत लीजिए।

महिला जनो, यदि यह हिंदू राष्ट्र जीवित रहेगा, बचेगा, जीतेगा, तभी हिंदू धर्म भी जीवित रहेगा, जीतेगा। यदि यह हिंदू राष्ट्र मर जाए, हिंदुस्थान अहिंदुस्थान बन जाए तो हिंदू संस्कृति, यह हिंदू धर्म भी मृत हुआ समझिए। ऐसी अवस्था में आप हिंदू महिलाओं को वास्तविक धार्मिक व्रत का आचरण करना हो तो प्रतिदिन कुछ ऐसा सेवाव्रत धारण करें जो वर्तमान स्थितियों में इस हिंदू राष्ट्र के लिए प्रत्यक्ष फलदायी हो। आपके द्रव्य का दान, आपके श्रम का दान, आपके अन्न का दान प्रसंगवश आपकी सारी आनबान, आपका सारा सम्मान तथा आवश्यक हो तो अपने प्राणों का भी दान अपने प्राणप्रिय हिंदू राष्ट्र के लिए ही करें। यही है वर्तमान ऐहिक धर्म, यही है वर्तमान पारलौकिक धर्म। व्रतविधि में आज यही विवेक है।

□□□

प्रथम राजनेता जिन्होंने विदेशी वस्त्रों की होली जलाई। (पुणे में ७ जुलाई, १९०५ को)

★

प्रथम भारतीय नागरिक ज़िन पर हेग के अंतरराष्ट्रीय न्यायालय में मुकदमा चलाया गया।

★

प्रथम छात्र जिनकी बैरिस्टर की उपाधि राजनिष्ठा की शपथ लेने से इनकार करने के कारण रोक ली गई।

★

प्रथम राजनीतिक बंदी जिन्हें दो जन्मों का कारावास मिला।

★

प्रथम साहित्यकार जिन्होंने, लेखनी और कागज से वंचित होने पर भी, अंदमान जेल की दीवारों पर कीलों, काँटों और यहाँ तक कि नाखूनों से विपुल साहित्य का सृजन किया और ऐसी सहस्रों पंक्तियों को वर्षों तक कंठस्थ कराकर अपने सहबंदियों द्वारा देशवासियों तक पहुँचाया।

★

प्रथम भारतीय लेखक जिनकी पुस्तकें, मुद्रित व प्रकाशित होने से पूर्व ही, दो-दो सरकारों ने जब्त कीं।

जिस देश में जन्म लिया और जिसका अन्न खाया, उसके ऋण से मुक्त हुए बिना अपने लिए स्वर्ग के द्वार कदापि नहीं खुल सकते।

स्वतंत्रता हमें मिली नहीं, स्वतंत्रता को बड़े-से-बड़ा बलिदान देकर प्राप्त किया गया है। 'स्वतंत्रता मिली' कहना सर्वथा मिथ्या है !

काल स्वयं मुझसे डरा है, मैं नहीं। फाँसी का फंदा चूमकर, कराल काल के स्तंभों को झकझोरकर मैं अनेक बार लौट आया हूँ। फिर भी जीवित रहा, यह शायद काल की ही भूल थी।

देवकार्य हेतु निर्वंश होनेवाली वंशलता अमर हो जाती है और उसकी लोकहित-परिमल की सुगंधि समस्त दिशाओं में व्याप्त हो जाती है।

देशद्रोहियों की प्रथम पंक्ति में खड़े रहने से कहीं अच्छा है देशभक्तों की अंतिम पंक्ति में खड़ा होना ।

अपनी कुलदेवी माँ अष्टभुजा के चरणों में बैठकर शपथ लेता हूँ कि मातृभूमि को विदेशियों से मुक्त कराने के लिए आजीवन सशस्त्र क्रांति का ध्वज लेकर जूझता रहूँगा, चाहे इस प्रयास में हम तीनों भाइयों की भी वही नियति क्यों न हो जो चाफेकर बंधुओं की हुई।

प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
www.indianabooks.com

ISO 9001 : 2000 प्रकाशक